इकाई 1

विकास और प्रगति: आर्थिक और सामाजिक पक्ष

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 विकास और प्रगति की व्याख्या

1.3 विकास और प्रगति पर कॉम्टे, मोर्गन, मार्क्स और स्पेंसर

1.4 विकास और प्रगति पर टोनीज, दुर्खाइम, वेबर, हॉबहाउस और पारसंस

1.5 वृद्धि परिवर्तन और आधुनिकीकरण के रूप में विकास

1.6 विकास के पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी-दुनिया के मॉडल

1.7 विकास के सामाजिक एवं मानवीय आयाम

1.8 विकास रणनीतियों में प्रतिमानात्मक बदलाव

1.9 सारांश

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विकास और प्रगति के परिप्रेक्ष्यों को समझा सकेंगे;
- वृद्धि और आधुनिकीकरण के रूप में विकास को स्पष्ट कर सकेंगे;
- विकास के सामाजिक एवं मानवीय आयामों पर रोशनी डाल सकेंगे; और
- विकास संबंधीवाद संवाद में प्रतिमानात्मक बदलाव को स्पष्ट कर सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1.1 प्रस्तावना

किसी व्यक्ति या समूह की उन्नति को दर्शाने के लिए विकास और प्रगति की अवधारणाओं को सकारात्मक रूप में प्रयोग किया जाता है। मानव समाज ने एक लंबा सफर तय किया है। उसकी तरह विकास की अवधारणा ने भी लंबा सफर तय किया है। सदियों तक विकास को प्रगति, तत्पश्चात वृद्धि, बदलाव, परिवर्तन, धारणा-अंतरण, आधुनिकीकरण आदि के रूप में जाना गया है। अब इसे हम (आर्थिक के साथ-साथ) सामाजिक और मानव विकास के रूप में देखते हैं। मानव समाज की विकास यात्रा कई चरणों से होकर गुजरी है। जैसे असभ्य से बर्बरता, बर्बरता से सभ्यता, धर्मविज्ञानी (theological) से पराभौतिक (metaphysical), पराभौतिक से वैज्ञानिक, सरल से जटिल, जटिल से और जटिल, एकरूप से बहुरूप, अविकसित से विकसित, प्राचीन से सामंतवादी, सामंतवादी से पूंजीवादी, पारंपरिक प्रौद्योगिक यांत्रिक समेकता (Mechanic solidarity) से औद्योगिक (जैव समेकता organic solidarity) प्राक्-विवेकी, प्राक-पूंजीवादी से विवेकी पूंजीवादी (rational capitalist) आदिम से मध्यवर्ती, ग्रामीण से नगर इत्यादि। समाजशास्त्रीय साहित्य में इन सोपानों को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों या विचारधाराओं से देखा और दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से समझा गया है। इस इकाई में प्रगति और विकास के प्रमुख परिप्रेक्ष्यों पर रोशनी डाली गई है। पहले हमने यह जाना है कि मोर्गन, कॉम्टे, स्पेंसर, हॉबहाउस, मार्क्स, वेबर, मैकक्लीलैंड दुर्खाइम और पारसंस जैसे विचारकों ने अपने विकासवादी सिद्धांतों में इन धारणाओं को कैसे समझा है। इसके बाद हमने यह समझाने का प्रयास किया है कि समकालीन विश्व ने विकास को आर्थिक और सामाजिक मायनों में कैसे समझा है।

विकास के पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी दुनिया के मॉडलों को विस्तार से समझाने के अलावा हमने इसकी आर्थिक धारणा को भी स्पष्ट किया है, जिसमें सकल घरेलू उत्पाद को विकास का पैमाना माना जाता है। बीसवीं शताब्दी के सत्तर के दशक में विकास संबंधी परिप्रेक्ष्यों में प्रतिमानात्मक बदलाव (paradigm shift) आया। इसके फलस्वरूप विकास के उभरते परिप्रेक्ष्य में मानव और सामाजिक विकास की धारणाओं ने मुख्य स्थान हासिल कर लिया है। उपेक्षित लोगों और महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में शामिल करने और विकास में राज्य की भूमिका को फिर से परिभाषित करने की दिशा में नई रणनीतियां भी सामने आई हैं। इसलिए इकाई के आखिरी भाग में विकास की पुर्नप्रतिपादित रणनीति यानी उपेक्षित और संबंधित मुद्दों को समझने का प्रयास किया गया है।

यह इकाई इस पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। इसलिए हमने इसमें कई मुद्दे उठाए हैं। आगे की इकाइयों में इन मुद्दों का विस्तार से विश्लेषण किया जाएगा। आइए पहले विकास और प्रगति की अवधारणाओं को समझ लें।

1.2 विकास और प्रगति की व्याख्या

जब हम विकास की बात करते हैं तो उससे जुड़ी अनेक धारणाओं से हमारा सामना होता है। यथा क्रमविकास (evolution) प्रगति (progress) परिवर्तन, वृद्धि, कायांतरण इत्यादि। असल में हमारे लिए इन सभी धारणाओं को अच्छी तरह से समझ लेना जरूरी है, हालांकि इन्हें हम जाने-अनजाने एक दूसरे की जगह प्रयोग करते हैं।

क्रम-विकास की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'इवॉल्वेयर' (evolvere) से हुई है जिसका अर्थ संस्कृत शब्द 'विकास' से काफी जुड़ा है। क्रम-विकास की अवधारणा को किसी सजीव प्राणी यानी पेड़-पौधे, जंतु इत्यादि की आंतरिक वृद्धि के अर्थ में प्रयुक्त होती है। आंतरिक वृद्धि को आनुक्रमिक संक्रवण के विभिन्न चरणों के रूप में भी देखा जाता है। उदाहरण के लिए बीज पहले पौध में विकसित होते हैं, इसके बाद पौधों फिर पेड़ों में विकसित होते हैं। तत्पश्चात उनमें परिपक्वता आती है और फिर जरण की प्रक्रिया शुरू होती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

दूसरी ओर प्रगति की धारणा का प्रयोग 'आगे बढ़ने' के अर्थ में किया जाता है, संस्कृत में जिसे 'प्रगत' कहा जाता है। इसलिए प्रगति का मूल अर्थ किसी वांछित लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ना या उन्नति करना है। प्रगति और वांछित लक्ष्य अनेक प्रकार के हो सकते हैं। जैसे स्वास्थ्य के क्षेत्र में ज्ञान अर्जन में प्रगति, किसी स्थान की दिशा में हमारा आगे बढ़ना इत्यादि। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगति को नैतिक अर्थ में भी लिया जाता रहा है। इसका अभिप्राय उन परम मूल्यों की दिशा में आगे बढ़ना है जिनकी प्राप्ति के लिए मानवजाति युगों से यत्न कर रही है (गिस्बर्ट 1994: 467)। लेकिन मानव के नैतिक मूल्य और उनको जांचने परखने के मानक भी उतने है विविध है जितने कि मानव समाज से विविधताएँ प्रगति के विभिन्न सूचकों की प्राप्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करती है।

विकास और प्रगति की अवधारणाओं को समाजशास्त्रियों ने विविध परिप्रेक्ष्य से जाना है। जैसे द्वंद्व, प्रकार्यात्मक नव-द्वंद्व, संरचनात्मक प्रकार्यात्मक इत्यादि। इस इकाई में मिले इन परिप्रेक्ष्यों को आरंभिक परिप्रेक्ष्य का दर्जा देंगे जिनमें हम मार्क्स, वेबर, दुर्खाइम और पारसंस को शामिल करेंगे। अगली इकाई में परिवर्तन और आधुनिकीकरण पर चर्चा करते हुए हम इन सभी विचारकों को विभिन्न विचारधाराओं के आधार पर वर्गों में बांटेंगे।

1.3 विकास और प्रगति पर कॉम्टे, मोर्गन, मार्क्स और स्पेंसर

मानव शास्त्रियों और समाजशास्त्रियों का आरंभिक विषय, विकासवादी दृष्टि से मानव समाज

के विकास और प्रगति का अध्ययन करना था। मानव समाज की मात्रा विकास और प्रगति के जिन जिन चरणों से होकर गुजरी है उनका अध्ययन करने के लिए आज भी मोर्गन, कॉम्टे स्पेंसर, मार्क्स, दुर्खीम, वेबर जैसे अनेक चिंतकों के महान विचारों को लिया जाता है। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध में इतिहास के दर्शन को, जिससे आगे चलकर प्रगति की सामान्य अवधारणा विकसित हुई, विशेषकर हेगेल और सेंट-सिमोन के लेखों से भारी महत्ता हासिल हुई। कालांतर में अगस्त कॉम्टे, कार्ल मार्क्स इत्यादि दार्शनिकों के कार्य पर हमें इन विद्वानों की छाप देखने को मिलती है। आइए पहले सेंट-सिमोन के शिष्य अगस्त कॉम्टे के कार्य पर दृष्टि डालते हैं।

अ) **अगस्त कॉम्टे** (1798-1857)

समाजशास्त्र का जनक कहे जाने वाले अगस्त कॉम्टे ने मानव समाज में होने वाले परिवर्तन, विकास और प्रगति को अपने अध्ययन का विषय बनाया। समाज के अध्ययन को उन्होंने दो भागों में बाँटा। सामाजिक स्थैतिकी (समाज की प्रमुख संस्थाओं या संस्थानिक समष्टि का अध्ययन) और सामाजिक गतिकी (विकास और परिवर्तन का अध्ययन) कॉम्टे की दृष्टि में मानव समाज और इतिहास एक दूसरे से अलग नहीं थे। उनके लिए यूरोप का इतिहास मानवजाति के इतिहास का ही पर्याय था। (अरन 1965:65)। इसी के अनुरूप उन्होंने कई सामान्यीकरण किए।

कॉम्टे का कहना है कि कुछ खास किस्म के समाज खत्म हो रहे थे, तो वहीं और समाज जन्म ले रहे थे। खत्म होने समाज धर्मविज्ञानी और सैन्य समाज थे। मध्ययुगीन समाज को कैथोलिक चर्च द्वारा प्रतिपादित लोकातीत आस्था ने एकता में बांधा था। धर्मविज्ञानी चिंतन उस सैन्य गतिविधि की प्रधानता के समकालीन था, जिसकी अभिव्यक्ति इस बात में होती थी कि सबसे ऊंचा दर्जा योद्धाओं को दिया जाता था। जिस समाज का जन्म हो रहा था वह वैज्ञानिक और औद्योगिक समाज था। इस समाज में वैज्ञानिकों ने धर्मविज्ञानियों का स्थान ले लिया। योद्धाओं का स्थान, उद्योगपतियों, व्यापारियों, प्रबंधकों और वित्तदाताओं ने ले ली। असल में आदमी ने जिस क्षण से वैज्ञानिक ढंग से सोचना शुरू किया, उसी क्षण से समूहों ही मुख्य गतिविधि मनुष्य के विरुद्ध मनुष्य का युद्ध खत्म हो जाती है और प्रकृति से संघर्ष, यानी प्राकृतिक संस्थानों के व्यवस्थित दोहन का रूप धारण कर लेती है। (वही 64)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मानव विकास के तीन चरणों के सिद्धांत का प्रतिपादन करके कॉम्टे ने प्रगति की धारणा को एक विश्वजनीय आयाम और गहरा अर्थ दिया। उनका मानना था कि मानव मस्तिष्क प्रगति के तीन चरणों से होकर गुजरता है। ये हैं: धर्म-विज्ञानी, पराभौतिक और सकारात्मक। धर्म-विज्ञानी अवस्था में मनुष्य किसी भी घटना को ऐसी शक्तियों से जोड़कर देखता है, जो मनुष्य के तुलनीय हैं। पराभौतिक अवस्था में मनुष्य किसी घटना को प्रकति से जोड़कर देखता है। साकारात्मक वैज्ञानिक अवस्था में किसी घटना और उसकी कड़ियों को मनुष्य तर्क की कसौटी में परखता है। कॉम्टे के लिए वह विधि जिसने गणित, खगोलशास्त्र, भौतिकी, रसायनशास्त्र और जीवविज्ञान पर विजय पाई है अंततः राजनीति में भी सफल होगी और समाज के सकारात्मक विज्ञान की स्थापना करेगी, जिसे हम समाजशास्त्र कहते हैं। (वही 66)।

समाजशास्त्र को व्यवस्था और प्रगति के विज्ञान के रूप में परिभाषित और उसे सामाजिक स्थैतिकी (व्यवस्था) और सामाजिक गतिकी (प्रगति) में विभाजित करते हुए अगस्त कॉम्टे ने यही निष्कर्ष निकाला था कि व्यवस्था के जरिए ही प्रगति संभव है। औद्योगिक क्रांति के आरंभिक वर्षों में हो रहे सामाजिक बदलावों को उन्होंने एक विकासवादी प्रक्रिया के रूप में जानने-समझने का प्रयास किया। विकास का सिद्धांत कहता है कि समाज अनेक चरणों से होकर गुजरते हैं, जो एक सरल रूप से शुरू होते हैं और विकास की प्रक्रिया जैसे-जैसे आगे बढ़ती है वे जटिल होते जाते हैं। इसी के आधार पर कॉम्टे ने विकासवादी परिवर्तन का सिद्धांत गढ़ा और क्रमिक परिवर्तन को बुद्धि-कौशल, विशेषकर वैज्ञानिक सोच के विकास से जोड़ा।

'तीन अवस्थाओं का सिद्धांत' यह कहता है कि बौद्धिक प्रगति के साथ नैतिक विकास भी होता है जिसमें सामाजिक संस्थाओं में भी अनेक परिवर्तन होते हैं। कॉम्टे ने भौतिक और नैतिक प्रगति को प्रगति का अनिवार्य स्वरूप माना है और सामाजिक परिवर्तन को आंतरिक शक्तियों का परिणाम माना है। यह परिवर्तन एकरेखीय बेड़ा है।

ब) मोर्गन (1818-1881)

मानव समाज के निश्चित क्रम को व्यवस्थित ढंग से रखने का काम सबसे पहले मोर्गन ने किया था। उन्होंने तीन युगों का पता लगाया जिनसे होते हुए मानव समाज गुजरा। ये हैं: असभ्यावस्था (जंगलीपन), बर्बरता और सभ्यता जीविकोपार्जन के साधनों के विकास में हुए प्रगति के आधार पर उन्होंने जंगलीपन और बर्बर-अवस्था निम्न, मध्य और उच्च क्रमों में विभाजित किया। उनका कहना था, "इस दिशा में उनकी प्रगति पर पृथ्वी पर मानव की श्रेष्ठता का पूरा सवाल टिका था। मनुष्य ही एकमात्र प्राणी हैं, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि उसने भोजन के उत्पादन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लिया है। मानव प्रगति के महायुगों को कमोबेश सीधे जीविकोपार्जन के स्रोतों के विस्तार से जोड़ा गया है"। (एंगेल्स 1970 : 204) आइए थोड़ा और विस्तार से जानते हैं कि मनुष्य ने जंगलीपन में बर्बरता की अवस्था और फिर सभ्यता की अवस्था तक की यात्रा किस तरह की।

जंगलीपन या असभ्यावस्था

क) **निम्नावस्थाः** इस चरण में मनुष्य उष्ण या उपोष्ण वनों में पेड़ों पर रहता था। कंद, मूल और फल उसका भोजन थे।

ख) **मध्यावस्थाः** इस चरण में आकर आदमी ने आग और खाने में मछली का उपयोग शुरू कर दिया था। नए भोजन से उन्हें एक स्थान पर रहने की बाध्यता नहीं रही और आदमी का भौगोलिक आवागमन शुरू हो चला। इस चरण पर मनुष्य का मुख्य हथियार अपरिष्कृत पत्थर थे।

ग) **उच्चावस्थाः** मनुष्य ने धनुष और तीर का आविष्कार कर लिया था। उसके भोजन में अब वन्य जंतु शामिल हो चुके थे और आखेट उसका सामान्य पेशा बन चुका था। काठ के घड़े और बर्तनों का चलन शुरू हो चुका था।

MAADHYAM IAS

बर्बरता

क) **निम्नावस्थाः** कुम्हारी (मिट्टी के बर्तन बनाने की कला) की शुरुआत से आदमी ने बर्बरता के चरण में प्रवेश किया।

ख) **मध्यावस्थाः** इसका आरंभ पूर्व में पशुओं को पालतू बनाने से और पश्चिम में खाद्य पौधों की खेती से हुआ, सिंचाई के साधनों की शुरुआत हुई। मकान बनाने के लिए धूप में खुदाई ईंटों और पत्थरों का प्रयोग।

ग) **उच्चावस्थाः** यह एक प्रति संक्रमणकालीन अवस्था है। इसकी शुरुआत लौह अयस्क के प्रगलन (गलाने) से होती है और वर्णानुक्रमिक लेखन के आविष्कार और साहित्यिक दस्तावेजों के लिए इसके उपयोग के जरिए सभ्यता में पहुँचती है। पशु द्वारा खींचे जाने वाले लोहे की फाल, बड़े पैमाने पर जमीन में खेती, जीविकोपार्जन के साधनों में असीमित वृद्धि, जनसंख्या में तेज वृद्धि इस चरण की विशेषता रही।

सभ्यता

इस अवधि में प्राकृतिक उत्पादों के और दोहन तथा परिआर्जन, उद्योग और कला के ज्ञान हासिल हुआ (वहीः 209)। अपनी विकासयात्रा के इस चरण में मानव समाज ने जीवन के विभिन्न पहलुओं को परिष्कत बना लिया है।

स) कार्ल मार्क्स (1818-1883)

पिछली अवस्थाओं में पूंजीवादी समाज की प्रगति उसकी संरचना और कार्यप्रणाली की व्याख्या कार्ल मार्क्स ने की है। मार्क्स समाज के आमूल परिवर्तन की बात करते हैं। इसके लिए उन्होंने मानव विकास के एक व्यापक सिद्धांत का प्रतिपादन किया, जिसके अनुसार समाज के भौतिक ढाँचे में नैसर्गिक अंतर्विरोध मौजूद होते हैं। उनका कहना है कि समाज की वास्तविक बुनियाद उसका आर्थिक ढांचा है, जिस पर वह टिका होता है।

मार्क्स के अनुसार

"सामाजिक उत्पादन में आदमी निश्चित संबंध बनाता है, जो उसके लिए अपरिहार्य है और मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र हैं, उनके उत्पादन के संबंध उनकी उत्पादन की भौतिक शक्तियों के विकास की निश्चित अवस्था के अनुरूप होते हैं।"

इन उत्पादन संबंधों का योग ही समाज का आर्थिक ढाँचा बनाता है। यही वह असली बुनियाद है जिस पर 'वैधानिक और राजनीतिक ऊपरी ढाँचे विकसित होते हैं' और सामाजिक चेतना के निश्चित स्वरूप जिसके अनुरूप होते हैं। भौतिक जीवन में उत्पादन रीति ही जीवन को सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के सामान्य स्वरूप को निर्धारित करती है... तब सामाजिक क्रांति के युग का सूत्रपात होता है। आर्थिक बुनियाद में बदलाव आते ही समूचा विशाल ऊपरी ढाँचा कमोवेश तेजी से बदल जाता है। (मार्क्स 1992)। मार्क्स के अनुसार मानव समाज की विकास यात्रा में एशियाई, प्राचीन, सामंती और पूंजीवादी' ये प्रमुख उत्पादन रीतियाँ या युग आए हैं। एशियाई उत्पादन रीति पाश्च्य समाज में देखने को नहीं मिलती है। आदिम समुदायों की विशेषता है कि उनमें स्वामित्व सामुदायिक होता है, और राज्य उन्हें अपने अधीन रखता है। प्राचीन उत्पादन रीति में दासप्रथा और सामंती उत्पादन रीति में दासत्व कृषिदासप्रथा उत्पादन प्रणाली की बुनियाद बनते हैं। उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली में सामान का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है, मुक्त श्रम बाजार का उदय होता है और प्रौद्योगिकी का तेजी से विकास होता है। मार्क्स भविष्यवाणी करते हैं कि समाजवाद हिंसक क्रांति के जरिए पूंजीवाद की जगह ले लेगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मार्क्स तर्क देते हैं कि समाज की उदीयमान उत्पादन शक्तियां मौजूदा उत्पादन संबंधों से टकराती हैं। नई उत्पादक शक्तियों का उदय और उनमें निहित अंतर्विरोध मानव इतिहास का सार हैं। मार्क्स के अनुसार "अब तक के मौजूदा समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है"। द्विभाजी वर्ग आधारित समाजों को एक प्रचंड वर्ग संघर्ष के जरिए उखाड़ दिया जाएगा और उनकी जगह एक वर्गविहीन, राज्यविहीन समाज के युग का सूत्रपात होगा, जिसमें हर व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और योग्यता के अनुसार योगदान करेगा और अपनी जरूरत के अनुसार पाएगा।

द) हरबर्ट स्पेंसर (1820-1903)

हरबर्ट स्पेंसर को प्रगति और ऐतिहासिक विकास के एकत्व और अपरिवर्तनीयता पर विश्वास था। उनके चिंतन का मुख्य विषय समाज का उत्तरोत्तर विकास सिद्धांत था। चार्ल्स डार्विन की कृति 'द ओरिजिन ऑफ स्पिशीज़' (1859) से वे बेहद प्रभावित थे।

स्पेंसर का मानना था कि युगों से एक सरल एकरूप या समजातीय ढांचे से जटिल बहुविध या बहुजातीय ढांचे में सामाजिक विकास होता रहा है। इस प्रकार उन्होंने सजीव प्राणियों और मानव समाज को सादृश्य मानकर विकास की प्रक्रियाओं के माध्यम से उनकी प्रगति को व्याख्या की। उनके अनुसार विकास की प्रक्रिया में अपनी रचना के आधार पर समाज सरल से विभिन्न सार के संयुक्त समाजों की दिशा में बढ़ते हैं। कुछ सरल समाज का समूह संयुक्त समाज की रचना करता है; इसी प्रकार कुछ संयुक्त समाजों का समूह दोगुना संयुक्त समाज बनाता है। दोगुना संयुक्त समाजों के समूह से तिगुना संयुक्त समाज बनता है। स्पेंसर के अनुसार

सरल समाज कुलों में एकीकृत परिवारों से, तो दोगुना संयुक्त समाज, कबीलों में गठित कुलों से बने होते हैं। तिगुना संयुक्त समाज में कबीले मिलकर राष्ट्र या राज्य का निर्माण करते हैं। (टिमाशेफ 1967 : 40)। विश्लेषण के एक मॉडल के रूप में सैन्य से औद्योगिक समाजों के विकास पर भी स्पेंसर ने प्रकाश डाला है। यथा अनिवार्य सहयोग, सत्ता और सामाजिक नियंत्रण का एक केन्द्रित पैटर्न, समाज क्रम-परंपरावादी अवधारणों को बल प्रदान करने वाले मिथक और विकास, कठोर अनुशासन और सार्वजनिक और निजी जीवनक्षेत्रों में भारी समानता ये सब सैन्य समाज की विशेषताएं थी। दूसरी ओर औद्योगिक समाज में स्वैच्छिक सहयोग, वैयक्तिक अधिकारों का सम्मान, सरकार के राजनीतिक नियंत्रण से आर्थिक क्षेत्र संस्थाओं का विकास ये सब विशेषताएं मिलती हैं। (वही: 42)।

यहां एक बात पर गौर करना बेहद जरूरी है कि स्पेंसर के विकास मॉडल से यूरोप और अमेरिका में मुक्त बाजार के अबंध सिद्धांत (laissezfaire doctrine) के उदय और उसके विस्तार को समझा जा सकता है।

स्पेंसर का मानना था कि समाज की प्रगति के पीछे सबसे बड़ा हाथ जनसंख्या दबाव का होता है। सामाजिक विकास और प्रगति के अपने सिद्धांत में उन्होंने नाना प्रकार के कारकों को शामिल कर उसे व्यापक स्वरूप दिया। मानव समाज को उन्होंने जैविक प्राणी माना और इसीलिए 'विकास' का अध्ययन उन्होंने भीतर से होने वाले परिवर्तन के अर्थ में किया। उन्होंने समाज और जीव और सामाजिक और आर्थिक विकास के बीच सादश्यता स्थापित की। उनका कहना था कि "आकार में वृद्धि होने पर समाज की संरचनात्मक जटिलता भी बढ़ जाती है"।

अभ्यास 1.1
मोर्गन द्वारा प्रतिपादित मानव समाज की प्रगति के मूलभूत सिद्धांत क्या हैं? कॉम्टे से ये किस प्रकार भिन्न हैं?

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

1.4 विकास और प्रगति पर टोनीज, दुर्खाइम, वेबर, हॉबहाउस और पारसंस

प्रगति और विकास की अवधारणा का अनेक विद्वानों ने अन्वेषण किया जिससे पुराने और नए के बीच अंतराल स्पष्ट होता है। इस भाग में मुख्यतः टोनीज, वेबर, दुर्खाइम, हॉबहाउस और पारसंस के विचारों पर चर्चा करेंगे।

क) टोनीज (1855-1936)

टोनीज का मत था कि जेमीनस्काफ्ट (Gemeinschaft) में मनुष्य को उसकी प्राकृतिक दशा यानी कि रक्त संबंध, विवाह, पति और पत्नी, मां और बच्चे और भाई-बहनों में मजबूत संबंध के द्वारा एक-दूसरे से बंधा रहता है। इनके जेमीनस्काफ्ट में नातेदारी समूह, आस-पड़ोस और मित्रता प्रमुख समूह हैं, जो एक साझी इच्छा के द्वारा संचालित होते हैं। यह साझी इच्छा, साझे विश्वास, मूल्य और आचरण के तौर-तरीकों में विकसित होती है। वहीं 'गेंसेलस्काफ्ट' में साझी इच्छा नहीं होती, बल्कि उसमें व्यक्ति निजी-स्वार्थ से संचालित होता है। यहां प्रत्येक संबंध को उसका कीमत या हैसियत से आंका जाता है, जिसका निर्धारण उसके उत्पादन में लगे श्रम से किया जाता है। इस तरह जेसेलस्काफ्ट में संबंध एक उत्पादन संबंध होता है।

इन सिद्धांतों के जरिए सामाजिक विकास को रेखीय क्रम में समझने का प्रयास किया गया। टोनीज की दृष्टि में विकास का अर्थ जेमीनस्काफ्ट या मानव समुदाय की क्षति है। उनका मानना था कि औद्योगिक क्रांति परिवार के विचार को छिन्न भिन्न किए दे रही है उसकी जगह तथ्यों और प्रगुणता को महत्व दे रही है। विशेषकर उत्तरी अमेरिकी और यूरोप के समाजों का ध्यान निजी-स्वार्थ पर केन्द्रित हो चला था, जिसे टोनीज ने जेसेलस्काफ्ट कहा।

ख) दुर्खाइम (1858-1917)

समाज को दुर्खाइम जैसे दार्शनिक ने भी एक विकासवादी योजना की दृष्टि से देखा। वे सामाजिक समेकता (Social solidarity) की बात करते थे। इससे उनका तात्पर्य नैतिक विश्वास और विचार थे, जो सामाजिक जीवन में अंतर्निहित "सामान्यबुद्धि" को परिभाषित करते हैं। एक सामाजिक विकासवादी की तरह दुर्खाइम भी मानते थे कि यांत्रिक सुदृढ़ता (Mechanical solidarity), जो कि प्रोगौद्योगिक समाजों की विशेषता थी, वह लोगों में सहमति और अनन्यता पर आधारित थी। वहीं औद्योगिक समाजों में जैव सुदृढ़ता (Organic solidarity) कई प्रकार के मतभेदों को सहने की सहमती से आई। इनमें द्वंद्वों या टकरावों का समाधान नाना प्रकार के सांस्थानिक व्यवस्थाओं जैसे न्यायालय, श्रमिक संगठन और राजनीतिक दल के माध्यम से किया जाता है।

प्रोगौद्योगिक समाजों में श्रम का विभाजन नहीं होता। इनमें हर व्यक्ति समान तरीके से काम करता और उपभोग करता है, न तो कोई मतविभाजन होता है और न ही कोई वैयक्तिकता (individuality) दूसरी ओर जैव सुदृढ़ता में क्रियाकलापों में विशेषता और श्रम विभाजन उन्नत होता है। इसमें उत्पादन, विवरण और उपभोग विशेष तरीके से होता है (दुर्खाईम 1965: 133)।

सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या दुर्खाइम ने नैतिकता के बंधनों में परिवर्तनों के परिणाम के रूप में की, जिसे उन्होंने सामाजिक सुदृढ़ता पर आधारित समाज औद्योगिकीकरण, बहुरूपता, विभेदन, क्रियाकलापों में विशेष्यता और वैयक्तिकता में वृद्धि के द्वारा जैव सुदृढ़ता में बदल जाते हैं। उनके अनुसार जनसंख्या वृद्धि की समस्या, प्राकृतिक संसाधनों में ह्रास और बढ़ती वैयक्तिकता (यानी भौतिक और नैतिक घनत्व में वृद्धि) की समस्या का समाधान औद्योगिक समाज में, यानी जैव सुदृढ़ता में, श्रम विभाजन के द्वारा किया जाता है। अब चूंकि प्रत्येक व्यक्ति विशेष होता है और फिर वैयक्तिकता का आदर भी किया जाता है, इसलिए हर व्यक्ति श्रम विभाजन के बंधन में सामाजिक रूप से जुड़ जाता है। जैव सुदृढ़ता में श्रम विभाजन असल में वैयक्तिक विशेष्यता को तंत्र में मिलाने का काम करता है। पर असामान्य श्रम-विभाजन प्रतिमानहीनता की स्थिति पैदा कर सकता है, जिसे दुर्खाइम 'एनोमी' (Anomie) कहते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बॉक्स 1.1: भौतिक और नैतिक घनत्व दुर्खाइम के मत में भौतिक घनत्व का तात्पर्य एक निश्चित स्थान में जनसंख्या में वृद्धि से था। नैतिक घनत्व जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप व्यक्तियों के बीच बढ़ता अन्योन्यक्रिया को दर्शाता है।

समाज में श्रम विभाजन के विकास को दुर्खाइम ने लोगों में बढ़ते सम्पर्क (नैतिक घनत्व) के साथ जोड़कर देखा, क्योंकि संपर्क का घनत्व तभी कोई प्रभाव पैदा कर सकता है जब व्यक्तियों के बीच की वास्तविक दूरी खत्म हो जाए, जिसका सीधा सा अर्थ भौतिक घनत्व में वृद्धि है। यहाँ दुर्खाइम का तात्पर्य यह है कि नैतिक घनत्व में तब तक वृद्धि नहीं हो सकती है जब तक उसके साथ-साथ भौतिक घनत्व में वृद्धि न हो। यह प्रक्रिया तीन तरह से होती है।

1) **लोगों का जमावड़ा**: लोग एक जगह पर इकट्ठा हो जाते हैं। इस तरह कृषि की शुरुआत होती है और यह प्रक्रिया शहरों के बन जाने पर भी जारी रहती है।
2) **शहर**: व्यक्तियों को जब एक-दूसरे से बहुत घनिष्ठ सम्पर्क रखने की जरूरत पड़ती है, तो इससे शहरों की उत्पत्ति होती है। शहरों की संख्या में तभी वृद्धि और विस्तार हो सकता है जब नैतिक घनत्व भी बढ़े।
3) **यातायात और संचार**: यातायात और संचार के साधनों में और उनकी गति में वृद्धि से वह खाई पटने लगती है जो समाज के हिस्सों को एक-दूसरे से अलग रखती है। इसके फलस्वरूप समाज का घनत्व बढ़ता है।

स्रोत: दुर्खाइम 1933 और 1984।

ग) **मैक्स वेबर** (1864-1920)

मानव समाज के विकास के प्रश्नों का विश्लेषण मैक्स वेबर ने पूंजीवाद के अपने अध्ययन के परिप्रेक्ष्य से किया था। उनका कहना था कि प्रगति के प्रतीक के रूप में पूंजीवाद का उदय कार्य-नैतिकता, बचत, मितव्ययी जीवनशैली के विश्वासों, मूल्यों और दृष्टिकोणों को तर्कसंगत बनाने से हुआ है। वेबर के अनुसार पूंजीवादी औद्योगिकरण पश्चिमी यूरोप के कुछ चुनिंदा देशों में हुआ और अन्य में नहीं, क्योंकि इन देशों के केल्विनवादी प्रोटेस्टैंट मतावलंबियों ने अपने विचारों, धार्मिक विश्वासों और मूल्यों को तर्कसंगत बनाकर सांसारिक वैराग्य वाली जीवनशैली विकसित की ताकि वे उपभोग कम कर सकें और उद्योग-धंधों में निवेश को बढ़ावा दे सकें। इस तरह वे ईश्वर की इच्छा के अनुरूप दुनिया को वैभवशाली बनाना चाहते थे। भारत के बारे में वेबर का कहना था कि हिन्दुस्तान में पारंपरिक मूल्यों जैसे धर्म, कर्म, मोक्ष, संसार और जातिगत मूल्यों का बोलबाला है, जिनके कारण यहां विवेकी पूंजीवाद (Rational Capitalism) नहीं पनप सका। संक्षेप में, वेबर ने पारंपरिक प्रोगौद्योगिक से पूंजीवाद समाज में मानव समाज के विकास का अध्ययन किया। उनके अनुसार यह विकास धार्मिक विश्वासों को तार्किक बनाने की प्रक्रिया से हुआ।

डेविड़ मैकक्लीलैंड ने मैक्स वेबर की तरह उन आंतरिक कारकों पर बल दिया था, जैसे अपनी नियति को संवारने के लिए व्यक्तियों को मौके प्रदान कराने वाले मूल्य और प्रेरणा। पिछड़ेपन, गरीबी, कुपोषण इत्यादि पारंपरिक और गैर-पारंपरिक सोच से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। उनका मानना था कि इन समस्याओं के निवारण के लिए पिछड़े क्षेत्रों के लोगों में "उपलब्धि हासिल करने की आवश्यकता" को बढ़ावा देने के उद्देश्य से शैक्षिक कार्यक्रमों और तकनीकी सहायता की जरूरत पड़ती है। मैकक्लैंड का निष्कर्ष था कि आधुनिकीकरण और विकास संस्कृति, विचारों और प्रौद्योगिकी के प्रसार से हासिल किया जा सकता है।

घ) **एल.टी. हॉबहाउस** (1864-1929)

काम्टे के दर्शन के आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि 'मानव मस्तिष्क का विकास सामाजिक विकास में निर्णायक कारक' था स्पेंसर से सामाजिक विकास के विचार को लेकर उसकी व्याख्या पैमाने, जटिलता और आंतरिक विभेदन में वृद्धि की प्रक्रिया के रूप में की। हॉबहाउस के अनुसार मस्तिष्क का विकास सामाजिक विकास को लेकर आता है, "और चूंकि इस मानसिक विकास में तर्कसंगत नैतिकता के आदर्श की दिशा में नैतिक विचारों का विकास शामिल है, जिससे प्रमुख सामाजिक संस्थाओं का कायापलट होता है। इसलिए इसे प्रगतिशील कहा जा सकता है। (बॉटोमोर 1962 : 293)।

ङ) **पारसंस**

विभिन्न चरणों से होते हुए मानव समाज के विकास की व्याख्या के लिए पारसंस ने विकासवादी परिप्रेक्ष्य को लिया। उन्होंने विकासवादी सार्विकों (Evolutionary Universals) की अवधारणा प्रस्तुत की। इससे उनका यह तात्पर्य था कि ऐतिहासिक विशिष्टताओं के बावजूद प्रत्येक सामाजिक प्रणाली का विकास कुछ सामान्य दिशाओं में हुआ है। उन्होंने पूरे विश्व में आदिम समाज से लेकर आधुनिक औद्योगिक समाज तक सामाजिक प्रणाली के विकास की प्रमुख अवस्थाओं के ऐतिहासिक और तुलनात्मक विश्लेषण पर भी जोर दिया। पारसंस ने निम्न प्रकार के विकासीय समाजों का विश्लेषण किया: आदिम/पुरागत, मध्यवर्ती और आधुनिक।

आदिम समाजों का सामाजिक गठन प्रारंभिक होता है और उनकी आर्थिक गतिविधियां भी प्रारंभिक होती है, जैसे कि भोजन संग्रहण, आखेट, पशुपालन और खेती-बाड़ी ताकि जीवित रहने के लिए जरूरी चीजें मनुष्य को मिल जाएं। ये समाज प्रारंभिक प्रौद्योगिक का प्रयोग करते हैं। इनकी सांस्कृति अभिव्यक्तियां जीववाद (Animism), जादू-टोने और धर्म से जुड़ी होती हैं। इनमें राजनैतिक तंत्र बेहद सरल होता है, जिसे समुदाय की सामूहिक भूमिका चलाती है।

मध्यवर्ती समाजों का विकास आदिम समाजों में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप मानव बस्तियों, कस्बों और नगरों में दोहरे विभाजन के फलस्वरूप होता है और इससे समाज में पेशागत विभेदन और नए वर्गों का उदय भी होता है। इस तरह स्तरीकरण की विस्तृत प्रणाली जन्म लेती है, जिसका आधार व्यक्ति के सत्ता पर नियंत्रण, धन-संपदा या हैसियत होता है या जो जाति-व्यवस्था के स्वरूप में उभरती है। तब सामाजिक नियंत्रण के लिए सामान्यीकृत नियम और संहिताबद्ध प्रतिमान विकसित होते हैं जो सामंतवाद या राजवाही के रूप में मौजूद व्यवस्थाबद्ध राजनीतिक ढांचे को पुष्ट बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। पारंपरिक चीन, भारत, इस्लामी और रोमन साम्राज्य ठेठ मध्यवर्ती समाज हैं।

पारसंस के अनुसार, आधुनिक समाज मानवता को पाश्चात्य जगत का अनूठा योगदान हैं, जिनका विकास औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप हुआ। औद्योगिक क्रांति ने प्रौद्योगिकी और विज्ञान की सहायता से उत्पादन प्रक्रियाओं को आमूल बदल डाला। फ्रांसीसी क्रांति ने समता, बंधुत्व और न्याय जैसे विचारों को जन्म दिया, जिससे लोकतांत्रिक शासन और संधि सामाजिक हैसियत (achieved social status) मार्ग प्रशस्त हुआ। शिक्षा ने उदार विचारों के धर्मनिरपेक्षकरण और सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया शुरू की। पारसंस के अनुसार आधुनिक समाज की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं: सर्वरक्षावादी कानून (Universalistic law) मुद्रा और बैंकिंग के आधुनिक संस्थानों का विकास, तार्किक नौकरशाही और लोकतांत्रिक समाज का विकास (पारसंस पर अधिक जानकारी के लिए MSO-001 पढ़िए)।

अभ्यास 1.2
मार्क्स और पारसंस ने मानव समाज के विकास के जो विकासवादी मॉडल दिए हैं उनमें तुलना और अंतर करिए।

1.5 वृद्धि, परिवर्तन और आधुनिकीकरण के रूप में विकास

MAADHYAM IAS

विकास को लेकर हालांकि अनेक बोधात्मक असहमतियाँ हैं, इसे उत्पादकता, आधुनिकीकरण, शहरीकरण और औद्योगकीकरण की रफ्तार में वृद्धि के रूप में भी लिया जाता है। इस अवधारणा में विकास को निर्मित-वस्तुओं और सेवाओं में भारी उछाल, सांस्थानिक व्यवस्थाओं के मद्देनजर समाज का प्रागाधुनिक से आधुनिक समाज में कार्यांतरण, अर्थ-व्यवस्था का कृषि से औद्योगिक व्यवस्था में रूपांतरण, जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर पलायन, आर्थिक क्रियाकलापों का कृषि से गैर-कृषि क्रियाकलापों की दिशा में परिवर्तन इत्यादि के रूप में देखा जाता है।

इस भाग में हम द्वितीय विश्वयुद्ध के उत्तरार्ध में विकास के आम तौर पर जिन-जिन अर्थों में लिया गया है, उस पर चर्चा करेंगे। विकास की इन अवधारणाओं का समाज पर क्या प्रभाव पड़ा है, हम संक्षेप में इसकी भी चर्चा करेंगे।

विकास के अनेक *अर्थ*: विकास को अनेक अर्थों में लिया गया है, जैसे वृद्धि के रूप में विकास परिवर्तन के रूप में विकास और आधुनिकीकरण के रूप में विकास।

क) वृद्धि: आर्थिक दृष्टि से वृद्धि के रूप में विकास का तात्पर्य उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन की क्षमता में वृद्धि और उसके साथ-साथ उपभोग के प्रतिरूप में भी वृद्धि से है (लिटिल, मार्गलिन एवं मार्गलिन (1990:1) वृद्धि के रूप में विकास को मनुष्य की रोटी, कपड़ा, मकान चिकित्सा और शिक्षा संबंधी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से वृद्धि की दृष्टि से परिभाषित किया जा सकता है। (स्ट्रीटन एवं सहयोगी, मार्गलिन एवं मार्गलिन 1990:2)। वृद्धि का तीसरा अर्थ विकास की संभावनाओं के विस्तार, व्यक्तिगत विकल्पों में क्षमताओं और कार्यशीलता में वृद्धि के बतौर देखा जाता है। (सेन,

मार्गलिन एवं मार्गलिन 1990:2)। उपरोक्त अर्थों में विकास का अर्थ साकारात्मक, प्रगतिवादी, स्वाभाविक रूप से लाभकर और अवश्वकारी होना है।

ख) परिवर्तन और कायांतरण: परिवर्तन और कायांतरण के रूप में विकास का तात्पर्य मानव समाजों में परिवर्तन की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से है। (स्कींजवर्स 1993)।

ग) आधुनिकीकरण: विकास को आधुनिकीकरण के रूप में भी लिया जाता है, हालांकि कुछ विद्वान दोनों को एक नहीं मानते। आधुनिकीकरण को अक्सर विकास के जरिए के रूप में भी देखा जाता है। आर्थिक कार्यक्षेत्र में इसे औद्योगीकरण, शहरीकरण और कृषि में प्रौद्योगिकीय रूपांतरण की प्रक्रियाओं के रूप में लिया जाता है। राजनीतिक कार्यक्षेत्र में आधुनिकीकरण के लिए सत्ता और विशेषकर नौकरशाही को तार्किक बनाना जरूरी है। सामाजिक कार्यक्षेत्र में आधुनिकीकरण का अर्थ प्रदत्त संबंधों का कमजोर पड़ना और प्रगति के मामले में व्यक्तिगत उपलब्धि को महता मिलना है। सांस्कृतिक क्षेत्र में यह विज्ञान में वृद्धि और धर्मनिरपेक्षीकरण है, जिसके साथ-साथ शिक्षित जनसंख्या में विस्तार है, जो संसार के 'मोहभंग' की दिशा में ले जाता है (मार्गलिंन 1990)। आधुनिकता के इस अर्थ में विकास को पश्चात्यीकरण कहा गया है, जिसमें पश्चात्य जगत को शेष विश्व के लिए प्रगति का मॉडल माना जाता है। इस अर्थ में विकास एक तुलनात्मक विशेषण बन जाता है। यह पश्चात्य केन्द्रित इस धारणा पर आधारित है कि विश्व विकास की रेखीय प्रक्रिया से गुजरा है, जिसमें विश्व इतिहास और विकास की अगुवाई पशिचम ने की है। एक सजातीय विश्व (homogeneous world) का लक्ष्य हासिल करने के लिए अन्य देशों को उसके पीछे चलना होगा है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब अमेरिका का राष्ट्रपति हैरी एस. ट्रमैन ने विकास के युग का सूत्रपात किया जब से इस शब्द ने एक विशेष अर्थ हासिल कर लिया है। ट्रमैन ने सार्वजनिक रूप से कहा था कि उनके देश ने विज्ञान और उद्योग के क्षेत्र में जो तरक्की हासिल की है। उसके लाभों को "अल्पविकसित" क्षेत्रों की उन्नति और वृद्धि के लिए सुलभ बनाने की दृष्टि से एक नया साहसिक कार्यक्रम चलाने की जरूरत है। पुराने उपनिवेशवाद और विदेशी लाभ के लिए शोषण को नकारते हुए उन्होंने विकास के एक ऐसे कार्यक्रम की घोषणा की जो लोकतांत्रिक उचित व्यवहार पर आधारित था (ऐस्टीवा 1992)। इस घोषणा के बाद से विकास का अभिप्राय 'अल्पविकास' की दयनीय दशा से उबरना लिया जाने लगा।

MAADHYAM IAS

विकास और उसका प्रभाव: चूंकि विकास को प्राय: उत्पादकता में वृद्धि, आर्थिक समृद्ध और बाजारोन्मुखी अर्थ-व्यवस्था में परिभाषित किया जाता था, इसलिए अल्पविकास का अर्थ था गरीबी, निम्न उत्पादकता और पिछड़ापन। यह आशा थी कि आर्थिक वृद्धि की वह रास्ता है जिस पर विकास तेजी से दौड़ता है। इसलिए 1950 के दशक बाद से औद्योगीकरण और सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) की वृद्धि पर दुराग्रह की हद तक ध्यान केन्द्रित रहा है। यह मान लिया गया है कि इन देशों में तेज वृद्धि का एक स्वाभाविक परिणाम यह रहेगा कि मौजूदा सामाजिक दशा में सकारात्मक बदलाव आएगा। मगर इस दुराग्रह के अनेक दुष्परिणाम निकले।

क) विकास का अर्थ चूंकि औद्योगिक विकास था, इसलिए लाभ और संसाधनों को उद्योगों को बढ़ाना देने में खर्च किया गया पर ऐसा करते समय समाज का जीवनयापन संबंधी जरूरतों को अनदेखा किया गया। जाहिर है इसके फलस्वरूप अनेकोनेक लोगों की आजीविका की कीमत पर बाजार का विस्तार हुआ। इससे जहां एक ओर भोग-विलास की वस्तुओं और सेवाओं का जन्म हुआ दूसरी ओर इसके परिणामस्वरूप भारी प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का इस कदर सरण हुआ है कि मानवजाति के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है।

ख) वृद्धि-उन्मुखी विकास के साथ असामनताओं और सामाजिक विघटन भी बड़ा। हर जगह इस बात के प्रमाण दिखाई दिए कि विकास ने एक क्षेत्र को या तो अछूता छोड़ दिया है या फिर गरीबी और प्रगतिरोध के नए क्षेत्र पैदा कर दिए हैं, फलस्वरूप आबादी के हिस्से हाशिए में चले गए और वे सामाजिक और आर्थिक प्रगति के फलों से वंचित रह गए। विकास की प्रचलित प्रक्रियाओं से उपजे इन अन्यायपूर्ण परिणामों को गुंडर फ्रांक ने जाना। उन्होंने 'अल्पविकास का विकास' का नारा दिया क्योंकि विकास की जो प्रक्रिया चल रही है वह कुछ लोगों और अंचलों को विकसित बनाती है तो अन्य अल्पविकसित या पिछड़े रह जाते हैं। विश्व प्रणाली की वैश्विक गतिका का परिणाम यह है।

ग) आर्थिक वृद्धि कई तरह से प्रकट हुई हैं। जैसे: विकासशील देशों की अर्थ-व्यवस्था का अंतराष्ट्रीयकरण, राष्ट्रों के पास उपलब्ध वित पूँजी में भारी उछाल, उत्पादन और उपभोग की प्रक्रियाओं और पैटर्न को प्रभावित करने वाले यंत्रीकरण (Mechanisation)। इसका मतलब धन-संपदा का कुछ व्यक्तियों या देशों के हाथों संचय हो जाना, धन-संपदा के वितरण में भारी विषमताएँ, कल्याणकारी राज्य का हट जाना और देशों के राजनीतिक और आर्थिक जीवन में सेना की बढ़ती भूमिका भी है। आर्थिक विकास तथा आर्थिक व्यवस्थाओं को केन्द्रित करने से बृहत आधार पर कभी भी विकास का उद्गम संभव नहीं।

घ) यह आर्थिक मॉडल यांत्रिक (Mechamistic) है और इसमें आर्थिक तार्किकता की जो धारणा निहित है, वह तीसरी दुनिया के देशों के अनुकूल नहीं है। उदाहरण के लिए उदार बाजार-व्यवस्था का मतलब गरीब लोगों की बहुत बड़ी आबादी का अर्थ-व्यवस्था से अपवर्णन है, यानी वे इसके लाभों से पूरी तरह वंचित रह जाते हैं क्योंकि इसमें उनकी कोई भागीदारी नहीं होती। गरीबी हटाने का यह कोई तरीका नहीं, जबकि गरीबी हटाना ही तीसरी दुनिया के लिए सबसे बड़ा विकासात्मक मुद्दा है।

ङ) कुछके अंचलों बढ़ते आय-स्तर, दिन दोगुना रात चौगुना होता निर्यात और आर्थिक वृद्धि में इजाफे से जनसाधारण में बढ़ती गरीबी, लुप्त होते संसाधनों, बेरोजगारी, बेगारी, अपर्याप्त आवास और बढ़ते विदेशी कर्ज़ की भयावह समस्याओं को झुठलाया नहीं जा सकता, जो राष्ट्रीय संप्रभुता के लिए खतरा बनने के अलावा यह श्रृंखलाबद्ध प्रतिक्रियाओं को जन्म देती हैं, जो राष्ट्रीय संसाधनों और क्षमताओं का इस कदर सरण कर सकती हैं जिसकी भरपाई कभी नहीं हो सकती।

इस तरह का आर्थिक विकास अगर चिंता, अलगाव, विखंडन, मानवद्वेष और कार्य-विरति को जन्म देता है, तो वह मानवता की प्रगति के अपने उद्देश्य को खुद ही त्याग देता है। इसके बावजूद निरक्षरता, बेरोजगारी, उत्पादक परिसम्पतियों और ज्ञान की कमी के कारण लोग जिस तरह असहाय महसूस करते हैं उसे दूर करने के लिए हमें विकास की जरूरत है। मानवता का एक बहुत बड़ा समूह निम्न स्तरीय जीवन और गरीबी से जूझ रहा है। हम इस सच्चाई को बदलने की जरूरत से नजरें नहीं चुरा सकते। हमें संभावनाओं के विस्तार की दिशा में करना होगा ताकि लोग अपने को परिपूर्ण कर सकें। पर वहीं हमें ऐसे विकास से सावधान रहना होगा, जिसका मतलब "परिवर्तन के प्रति द्विआधारी, यंत्रवादी, अपचयवादी और अंततः स्व-विध्वंसक सोच" रहा है। (रहनीमा 1997)।

उपरोक्त चर्चा से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि विकास का अब तक का लेखा-जोखा ज्यादा आशावादी तो नहीं है, पर गरीबी और पिछड़ेपन की समस्याओं को दूर करने की संभावनाएँ भी इसी विकास में मौजूद हैं, जिनसे मनुष्य लंबे समय से जूझ रहा है। आइए अब आर्थिक विकास के विभिन्न मॉडलों के बारे में जानें।

1.6 विकास के पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी-दुनिया के मॉडल

आर्थिक विकास आधुनिक राज्य का प्रमुख सरोकार रहा है। पर यह सरोकार राज्य की विचारधारा और सत्ता के ढांचे (Power structure) से गहरा जुड़ा रहा है। सत्ता का ढांचा और राज्य की विचारधारा का स्वरूप चूंकि विविध प्रकार के आर्थिक विकास के मॉडल उभरे हैं। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद के काल में 1970 के दशक तक विकास संबंधी वाद-संवाद अपनिवेश खत्म होने की प्रक्रिया राष्ट्र-राज्यों के आर्थिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता और शीतयुद्ध की छाया से तय हुआ। एक ओर पश्चिम और दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अमेरिका का औद्योगिक और राजनीतिक उदय हुआ, तो दूसरी ओर रूस और साम्यवादी राज्य विश्वपटल पर उभरे। लेकिन इन देशों के उदय के अलावा एक बड़ा धड़ा प्रगतिरूद्ध राष्ट्रों का भी रहा, निम्न उत्पादकता, औद्योगिक पिछड़ापन और गरीबी जिनकी पहचान बनी। इस प्रकार पहली दूसरी और तीसरी दुनिया के क्रमशः पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी दुनिया के विकास मॉडलों का जन्म हुआ।

पूंजीवादी मॉडल में संपत्ति और उत्पादन के साधनों का स्वामित्व निजी हाथों में होता है, आर्थिक उद्यमों पर राज्य का नियंत्रण न्यूनतम होता है और अर्थ व्यवस्था मुक्त होती है, जिसे स्पर्धा नियमित करती है। विकास का यह मॉडल सतत वृद्धि और आधुनिकीकरण पर विशेष जोर देता है। जिसके शुरुआती चरण में राज्य को भारी निवेश करना होता है। इस परिप्रेक्ष्य में "आर्थिक विकास औद्योगिकीकरण और अपूर्ण-रोजगारी ग्रामीण श्रम का शहरी औद्योगिक क्षेत्र में ज्यादा उत्पादन काम-धंधों में स्थानांतरण के इर्दगिर्द घूमता है। राज्य को घरेलू और विदेशी बचत से एक निवेश 'पूल' (Investment pool) बनाना पड़ता है, जिससे यह निदेशित औद्योगिक विकास के कार्यक्रम के वित्त प्रदान कर सकता है"। (कोरब्रिज 1995:2)।

लेकिन पहली दुनिया के इस विकास मॉडल को उस समाजवादी मॉडल के विस्तार से उत्पन्न अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसका प्रतिनिधित्व दूसरी दुनिया कर रही थी। समाजवादी मॉडल विकास के पूंजीवादी मॉडल का उल्ट था, क्योंकि यह संपत्ति और उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व को खत्म करता था, बल्कि यह उत्पादन के साधनों पर राज्य स्वामित्व, राज्य के स्वामित्व में सार्वजनिक उपक्रमों, राज्य द्वारा नियमित अर्थ-व्यवस्था और आर्थिक विकास के लिए राज्य द्वारा केन्द्रीयकृत नियोजन की बात करता था। पूंजीवादी और समाजवादी ये दोनों मॉडल मुख्य रूप से आर्थिक वृद्धिपर ही जोर देते थे। पर समाजवादी मॉडल की एक विशेषता थी। इसमें आबादी के सभी वर्गों में इस आर्थिक वृद्धि के फलों के समान वितरण पर विशेष ध्यान दिया गया।

तीसरी दुनिया में एशिया, अफ्रीका और लातीनी अमेरिकी के पूर्व-उपनिवेश नव-स्वतंत्र और गुटनिरपेक्ष देश आते हैं, जो औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हैं। असल में तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य पहली और दूसरी दुनिया की परस्पर-विरोधी विचारधाराओं में जकड़े हुए हैं। अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक ताने-बाने, ऐतिहासिक अनुभवों और प्रौद्योगिक और आर्थिक विकास के स्तर के लिहाज से इन देशों में भारी विविधता है। आर्थिक और प्रौद्योगिक दृष्टि से यह देश अल्प-विकसित हैं। अपने औपनिवेशिकोत्तर काल में ये देश राष्ट्र-निर्माण और तेज सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। ये देश विकास के विविध मॉडलों पर प्रयोग कर रहे हैं। उदाहरण के लिए भारत ने अपने विकास के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था का मॉडल अपनाया है। यह पूंजीवादी और समाजवादी मॉडलों के बीच का रास्ता है।

1950 के दशक में एक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि वृद्धि सिद्धांत प्रतिपादक सामाजिक, सांस्कृतिक

और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में किया जाने लगा। यह विकास के आधुनिकीकरण परिप्रेक्ष्य के उदय के साथ हुआ आधुनिकीकरण का सिद्धांत पूंजीवादी और समाजवादी सामाजिक और सामाजिक व्यवस्थाओं से जुड़ा था। तीसरी दुनिया के समाजों ने भी आधुनिकीकरण का रास्ता अपनाया, जिसमें कुछ को सफलता मिली तो कुछ को नहीं।

ऐतिहासिक अनुभव और विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने पूरी दुनिया में सिर्फ आधुनिकता के विविध प्रतिरूपों को ही जन्म नहीं दिया है, बल्कि इसने राष्ट्रों के बीच असंतुलित आर्थिक और राजनीतिक संबंध को भी जन्म दिया है।

परामिक्ता सिद्धांतकारों का तर्क है कि असमान व्यापार संबंधों और पूंजीवादी विकास ने दक्षिणी गोलार्ध के देशों को पूंजी, प्रौद्योगिकी और बाजार के लिए उत्तरी गोलार्ध के देशों पर निर्भर कर दिया है जैसे, पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका। फ्रांक का मत है कि पूंजीवादी देशों के आर्थिक प्रभाव की जद में आने से विकासशील देश उन पर आश्रित हो गए हैं। (इस पाठ्यक्रम के आगे के ब्लॉकों में आप आधुनिकीकरण और परमिता सिद्धांतों के बारे में विस्तार से जानेंगे)।

अभ्यास 1.3
विकास के विभिन्न मॉडलों का समाजशास्त्रीय मीमांसा लिखें।

यह एक महत्वपूर्ण बात है कि 1980 के दशक से विकास के प्रमुख सिद्धांतों को लेकर गंभीर शंकाएं उठ रही हैं। "साम्यवाद के धराशायी हो जाने से विकास की वामपंथी रणनीतियों की विश्वसनीयता पूर्णतः नहीं तो आंशिक रूप से ही सही संदेह के घेरे में आ गई हैं। पर वहीं जिन सिद्धांतों ने पश्चिमी पूंजीवादी मॉडल पर आधारित विकास का रास्ता अपनाने की पैरवी की थी वे भी सभी लाभ नहीं दे पाए हैं जिनका वादा उन्होंने किया था।" तीसरी दुनिया के देश विकसित देशों के संचित ऋण के तले दबे हुए हैं। पश्चिम ने विशेषकर विश्व बैंक (WB) और अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष (IMF) के माध्यम से इन देशों पर "ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम (Structure Adjustment Programmes) थोपे हैं। इससे वे मुक्त बाज़ार के प्रवीण चालन में आने वाले अवरोधों को दूर कर आर्थिक वृद्धि के लिए स्थितियां पैदा करना चाहते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम ने समूची तीसरी दुनिया में आर्थिक वृद्धि को गति नहीं दी है। (टी.पारफिट 2002:2)। इस प्रकार पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए, आइए अब विकास के सामाजिक और मानवीय आयामों के बारे जानें।

अभ्यास 1.4
द्वितीय विश्व-युद्ध के उत्तरार्ध में विकास को किन-किन अर्थों में लिया गया?

1.7 विकास के सामाजिक एवं मानवीय आयाम

जैसा कि हमने पीछे बताया है, पारंपरिक (क्लासिकी) परिभाषा में विकास की चर्चा हमेशा आर्थिक अर्थों के साथ की जाती है और इसे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) या प्रति-व्यक्ति आय के रूप में लिया जाता है। इस परिभाषा में विकास को वृद्धि के तुल्य माना जाता है और कहा जाता है कि वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं में प्रमात्रा वृद्धि (Quantum increase) से विकास होता है। इसमें यह भी मान लिया गया कि वृद्धि-विकास के थोड़ा-थोड़ा करके नीचे पहुँचने वाले प्रभाव (Trickle down effect) से समाज में लाभों, संसाधनों और अवसरों का समान रूप से बंटवारा होगा। विकास की इस प्रक्रिया ने मानवता के हित में वांछित परिणाम नहीं दिए हैं, खासकर विकासशील देशों में।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

तीसरी दुनिया के देशों में विकास का जो पैटर्न पिछले कुछेक दशकों से चला रहा है। उसमें निम्न रुझान देखने को मिल रहे हैं।

- तेजी से वृद्धि कर रहे विकासशील देशों ने सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) में जो उच्च वृद्धि दर्ज की है, उससे इन देशों की आबादी के बड़े हिस्सों की सामाजिक-आर्थिक वंचना में कोई कमी नहीं आ सकी है।
- औद्योगिक देशों की उच्च आय वहां नशाखोरी, शराबखोरी, एड्स, बेघरपन, हिंसा और पारिवारिक संबंधों में टूटन जैसी तेजी से फैल रही सामाजिक चिंताओं से सुरक्षा प्रदान नहीं कर पाई है।
- पर वहीं कुछ कम आय वाले देशों ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि अगर उपलब्ध साधनों-संसाधनों को प्रवीणता से बुनियादी मानवीय क्षमताओं को उन्नत करने में लगाया जाए तो मानव विकास का उच्च स्तर हासिल करना संभव है। (यूएनडीपी 1990:10)।

इससे मद्देनजर विकास को देखने के नजरिए में बदलाव आया है। यह बात मानी जाने लगी है कि मानव कल्याण के लिए आर्थिक वृद्धि जरूरी तो है, लेकिन इसे मानव के लिए विकल्पों को सुधारने उन्हें व्यापाक बनाने के माध्यम के रूप ही देखा जाना चाहिए। वर्ष 1990 में प्रकाशित मानव विकास रिपोर्ट स्पष्ट शब्दों में कहती है:

"हम इस अटल सत्य को फिर से जानने लगे हैं कि लोगों को सभी विकास के केन्द्र में होना चाहिए। विकास का प्रयोजन लोगों को अधिक विकल्प देना है। उनका एक विकल्प आय तक पहुंच है— यह साध्य नहीं, बल्कि मानव कल्याण प्राप्ति का साधन है। पर अन्य विकल्प भी है जैसे दीर्घायु, ज्ञान, राजनीतिक स्वतंत्रता, निजी सुरक्षा, सामुदायिक भागीदारी और मानवाधिकारों की गारंटी। लोगों को महज, आर्थिक प्राणी बनाकर उन्हें एक ही आयाम में नहीं समेटा जा सकता। उन्हें और विकास की प्रक्रिया को वह समूचा स्पेक्ट्रम आकर्षक बना देता है, जिसके जरिए मानव क्षमताओं को विस्तार दिया जाता है, और काम में लाया जाता है। अब यह महसूस किया जाने लगा है कि किसी राष्ट्र की असली संपदा उसके लोग हैं। विकास का मूल उद्देश्य लोगों के लिए योग्य बनाने वाला वातावरण (Enabling environment) पैदा करना है, तांकि वे लंबा, स्वस्थ और रचनात्मक जीवन जी सकें। राष्ट्रीय आय और उसकी वृद्धि को नापने के लिए की जाने वाली आँकड़ों की बाजीगरी हमारा ध्यान इस सच्चाई से दूर हटा देती है कि विकास का पहला उद्देश्य लोगों को लाभ पहुंचाना है।" (यूएनडीपी 1990)। इस बात को ध्यान में रखते हुए आइए मानव विकास की अवधारणा पर चर्चा करते हैं।

क) मानव विकास

राष्ट्र संघ विकास लोगों को सुलभ विकल्पों के विश्लेषण की प्रक्रिया है। सिद्धांतत: ये विकल्प असीम और कालावधि में बदल सकते हैं। पर विकास के सभी सोपान इस प्रकार हैं: (क) लोग दीर्घ और स्वस्थ जीवन जी सकें, (ख) वे ज्ञान अर्जित कर सकें, (ग) और एक संतोषजनक जीवन-स्तर हासिल करने के लिए जरूरी संसाधनों तक उनकी पहुंच। ये अनिवार्य विकल्प उपलब्ध नहीं हों, तो अन्य प्रकार के विकल्प के दरवाजे भी लोगों के लिए नहीं खुल पाते हैं। मानव विकास की इतिश्री यहीं पर नहीं हो जाती। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता से लेकर रचनात्मक और उत्पादक बनने और निजी आत्म-सम्मान और गारंटीशुदा मानवाधिकारों का आनंद उठाने तक ये तमाम अतिरिक्त विकल्प भी मानव विकास के अभिन्न अंग हैं।

यूएनडीपी के अनुसार मानव विकास दो पहलू हैं: (क) मानव क्षमताओं का निर्माण जैसे उन्नत स्वास्थ्य, ज्ञान और संसाधनों तक पहुँच। (ख) लोगों का इन क्षमताओं को उत्पादक कार्यों में लगाना, जैसे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक मामलों में सक्रिय रहना।

मानव के विकास का तराजू अगर इन दोनों पलड़ों को बराबर संतुलन में रखकर नहीं चलेगा, तो इससे भारी मानव कुंठा पैदा होगी। मानव विकास की इस अवधारणा के अनुसार: "आमदनी एक विकल्प मात्र है, लोग जिसे लेना चाहेंगे, वह एक महत्व विकल्प जो है। पर यह उनके जीवन का निचोड़ नहीं। इसलिए विकास का मतलब लोगों की आमदनी और संपदा में इजाफे से अधिक होना चाहिए। यह लोगों पर केन्द्रित होना चाहिए। (वहीं: 10)।

बॉक्स 1.2: विकास के प्रति मानवीय नजरिया

विकास के प्रति मानवीय नजरिया परंपरागत नजरियों से भिन्न है, जैसेः आर्थिक वृद्धि, मानव पूंजी निर्माण, मानव संसाधन विकास, मानव कल्याण मूलभूत मानवीय आवश्यकता संबंधी नजरिए। जैसा कि पीछे बताया गया है आर्थिक वृद्धि यानी उत्पादन (GDP) में वृद्धि मानव विकास के लिए आवश्यक तो है, पर्याप्त नहीं। मानव पूंजी निर्माण और मानव संसाधन विकास के सिद्धांत मनुष्य को एक साधन के रूप में देखते हैं, साध्य के रूप में नहीं। इनका सरोकार आपूर्ति के पक्ष से है। मानव कल्याण का नजरिया लोगों को विकास के लाभों का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता मान कर चलता है, उसमें भागीदार नहीं। मूलभूत आवश्यकता का नजरिया मानव विकल्पों के मुद्दे के बजाए आबादी के वंचित वर्गों की न्यूनतम बुनियादी जरूरतों जैसे भोजन, मकान, कपड़ा इत्यादि को पूरा करने पर जोर देता है। (यूएनडीपी 1990: 11)।

मानव विकास का नजरिया उत्पादन और संसाधनों के वितरण, मानव क्षमताओं के विस्तार और उपयोग, विकल्पों के विस्तार, आजीविका की सुरक्षा, भागीदारी की प्रक्रिया, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता इन सब को बराबर का महत्व देता है। यह एक राज्य की सामाजिक विकास की रणनीति में प्रतिमानात्मक बदलाव (Paradigm shift) की ओर इशारा करता है।

MAADHYAM IAS

ख) बेरहम, जड़विहीन वृद्धि के प्रति चिंता

वृद्धि-विकास के पारंपरिक रास्ते में चलकर विश्व का ध्रुवीकरण और अधिक हुआ है। तथा गरीब और अमीर के बीच की खाई और गहरा गई है। अपनी मानव-विकास रिपोर्ट (1996) में यूएनडीपी कहती है, कि विश्व की निर्धनतम 20 प्रतिशत आबादी की आमदनी पिछले 30 वर्षों में 2.3 प्रतिशत से घटकर 1.4 प्रतिशत हो गई। इसके विपरीत सबसे धनी की आमदनी 70 प्रतिशत से 85 प्रतिशत हो गई। औद्योगिक और विकासशील देशों की प्रतिव्यक्ति आय में अंतर तीन गुना हो गया है। क्षेत्रीय असंतुलन अलग से है। यूएनडीपी ने 1990 दशक के उत्तरार्ध में इस रोजगार विहीन, बेरहम, बेआवाज़, जड़विहीन और धनविहीन वृद्धि के प्रति चिंता प्रकट की है।

यह वृद्धि रोज़गार विहीन रही क्योंकि इसमें अर्थ-व्यवस्था तो बढ़ी मगर इससे रोजगार के अवसरों में कोई विस्तार नहीं हुआ कि जिससे आबादी के बढ़े हिस्से लाभान्वित हो सकें। विकासशील देशों में रोजगार विहीन वृद्धि का अर्थ लाखों लोगों का कृषि और अन्य औपचारिक क्षेत्रों में कम उत्पादकता वाले काम पर आश्रित रहना, जहां काम के घंटे तो ज्यादा होते हैं पर आमदनी बहुत कम। विकास की यह प्रक्रिया बेरहम बन गई क्योंकि आर्थिक वृद्धि का लाभ ज्यादातर धनी लोगों का ही मिला। लाखों-करोड़ों लोग गरीबी से अभिशाप्त हैं। इस तरह की बेरहम वृद्धि से लोगों की सांस्कृतिक पहचान मिटने लगी है। ऐसे में प्रभावी बहुसंख्यक संस्कृति को विस्तार तो मिला है, लेकिन अल्पसंख्यक संस्कृतियों की कीमत पर, जो हाशिए में धकेली जा रही हैं। यह वृद्धि बेआवाज भी है, क्योंकि कई जगह इसने निर्णय लेने की प्रक्रिया में लोगों की लोकतांत्रिक भागीदारी सुनिश्चित नहीं की है। इस बेआवाज प्रक्रिया में महिलाओं को आर्थिक विकास में हाशिये की भूमिका मिलती है। कुछ देशों में तेज आर्थिक वृद्धि वनों

के विनाश, नदियों के प्रदूषण, जैव-विविधता के विनाश और प्राकृतिक संसाधनों के शरण की कीमत पर हासिल की गई है। इस भविष्यविहीन वृद्धि में वर्तमान पीढ़ी उन संस्थानों की बर्बादी कर रही है, जिनकी जरूरत भावी पीढ़ियों को पड़ेगी। यह भविष्यविहीन वृद्धि औद्योगिक देशों को विकासशील देशों के गरीब लोगों की कीमत पर लाभ पहुंचा रही है। इन सब सच्चाईयों को ध्यान में रखते हुए यूएनडीपी का कहना है कि जो विकास मौजूदा असमानताओं को कायम रखता हो उसे न तो जारी रखा जा सकता है और न ही जारी रखा जाना चाहिए (मानव-विकास रिपोर्ट 1996:4)।

ग) स्वतंत्रता के रूप में विकास

यहां यह जानना जरूरी है कि विकास को अमर्त्य सेन (1999) जैसे अर्थशास्त्री किस प्रकार की स्वतंत्रता के रूप में देख रहे हैं। सेन के अनुसार विकास को लोगों को मिलने वाली वास्तविक स्वतंत्रता को बढ़ाने की अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया है। वास्तविक आमदनी और आर्थिक वृद्धि का विस्तार जरूरी नहीं कि सफल विकास का परिचायक हो क्योंकि कुछ देश अधिक लाभ और प्रति-व्यक्ति आय प्राप्त तो कर लेते हैं, पर जीवन की गुणवता के मामले में उनकी उपलब्धियां कम ही रहती हैं। दूसरी ओर ऐसे देश भी हैं जिनका लाभ और प्रति व्यक्ति आय दोनों कम हैं, पर मानव विकास सूचकों में आगे हैं। विकास का मुख्य प्रयोजन यहां लोगों के जीवन को उन्नत बनाना है, बेहतर बनाना है, जिसका तात्पर्य उन सभी चीजों को विस्तार देना है, जो आदमी कर सकता है। सेन के अनुसार विकास का लक्ष्य निरक्षरता, बीमारी, गरीबी, संसाधनों तक पहुंच की कमी, नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता की कमी इन सब बाधाओं को दूर करना है। वे इस बात को नहीं नकारते कि नियोजन और नीति निर्माण का प्रमुख लक्ष्य आर्थिक समृद्धि होना चाहिए। मगर यह एक मध्यवर्ती लक्ष्य मात्र है, जो विकास के अंतिक लक्ष्य यानी मानव जीवन के विकास को प्राप्त करने में सहायक बनेगा। विकास का मूल उद्देश्य और उसके प्रमुख साधन स्वतंत्रता का विस्तार करना, उसे नित नया आयाम देना है क्योंकि एक तरह की स्वतंत्रता अन्य तरह की स्वतंत्रताओं को बढ़ाने में सहायक होती है। आर्थिक वृद्धि में एक बड़ा कारक आर्थिक अवसरों तक पहुँच तो है ही, इस आर्थिक वृद्धि को मजबूत करने में सहायक स्वतंत्रताओं (जैसे राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक सुविधाएं, सामाजिक अवसर, पारदर्शिता की गारंटी और संरक्षी सुरक्षा) का योगदान रहता है और वहीं मानव की क्षमताओं की पूर्ण प्राप्ति में काम आने वाली सभी स्वतंत्रताओं का मार्ग प्रशस्त करने की दिशा में यही आर्थिक वृद्धि करती है।

अभ्यास 1.5

मानव विकास का नजरिया विकास के वृद्धि नजरिए से किस तरह भिन्न है?

1.8 विकास रणनीतियों में प्रतिमानात्मक बदलाव

उपनिवेशोत्तर विकासशील देशों की विकास रणनीति में 1970 दशक के पूर्वाध से भारी बदलाव आया है। उदाहरण के लिए भारत ने स्वतंत्रता के तत्काल बाद "स्थिरता के साथ वृद्धि" की विकास रणनीति अपनायी। इसके तहत मुख्यत: औद्योगीकरण, कृषि के आधुनिकीकरण, ढाँचे के विस्तार, शिक्षा और जन संचार पर ध्यान दिया गया। लेकिन अजीविका की सुरक्षा, साक्षरता-शिक्षा, स्वास्थ्य-सुविधाओं, घर और जीवन की अन्य बुनियादी जरूरतों से आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा वंचित होने लगा तो 1970 के दशक से विकास संबंधी संवाद में "सामाजिक न्याय" के दर्शन को शामिल किया गया। यह महत्वपूर्ण बात है कि विकास का केन्द्रबिंदु समाज का वंचित तबका बन गया है। फिर 1990 के दशक की शुरुआत विशेषकर भूमंडलीकरण का सूत्रपात होने के बाद से हाशिए पर रह गए तबकों को मुख्यधारा में लाने के लिए "सशक्तीकरण के साथ विकास की रणनीति अपनायी गई है। (सिंहराय 2001)। अर्थ-व्यवस्था के समाजवादी मॉडल के धराशायी हो जाने तेजी से फैलते नव-उदार भूमंडलीकरण नए ढाँचेगत समायोजन

कार्यक्रमों की शुरुआत, विश्व व्यापार संगठन (WTO) के बनने और GATT और GATS जैसी सधियों के बन जाने से विकास की प्रक्रियाओं में भारी बदलाव आ गया है। इस नव-उदार विकासवाद ने विकास की अवधारणा को एक नया आयाम दे दिया है, जिसमें एक विश्व, एक बाज़ार और एक विचारधारा का दर्शन काम कर रहा है।

क) राज्य की भूमिका की पुर्नव्याख्या करना

विश्व विकास रिपोर्ट (1997) ने सामाजिक और आर्थिक विकास में राज्य की एक प्रभावशाली भूमिका की जरूरत पर बल दिया है, मगर उसे यह भूमिका एक नए रूप में निभानी होगी। इस रिपोर्ट के अनुसार राज्य आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए अनिवार्य है– वृद्धि का प्रत्यक्ष प्रदाता के रूप में नहीं, बल्कि एक भागीदार, उत्प्रेरक और सुगमकारी के रूप में। दुनिया बदल रही है और उसके साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक विकास में राज्य की भूमिका को लेकर हमारे विचार भी बदल रहे हैं। राज्य द्वारा निर्देशित और नियंत्रित अर्थ-व्यवस्थाओं का धराशायी होना, कल्याणकारी राज्यों का वित्तीय संकट, विश्व के अनेक हिस्सों में मानवीय आपात-स्थितियों का विस्फोट, निजी निवेशकों में शासन-सरकार के प्रति बढ़ता अविश्वास, भ्रष्टाचार और गरीबी में वृद्धि, एक ओर विश्व अर्थ-व्यवस्था में प्रौद्योगिकीय बदलाव और दूसरी ओर जमीनी स्तर पर लाभबंदी का प्रकटन और नागरिक समाज का बढ़ता दबाव इन सब नाटकीय घटनाओं के मद्देनजर राज्य की जिम्मेदारियों को फिर से पुनर्भाषित करने की जरूरत समझी गई है ताकि इनमें से कुछ समस्याओं का समाधान किया जा सके। विश्व बैंक (1997) के अनुसार इसके लिए सामूहिक कारवाइयों का रणनीतिक चयन करना होगा, जिन्हें राज्य मिलजुलकर आगे बढ़ाएंगे। इसके साथ-साथ सामूहिक वस्तुओं-सेवाओं को पहुंचाने के लिए नागरिकों और समुदायों को शामिल कर राज्य के बोझ को हल्का करने की दिशा में प्रयास करने होंगे। विश्व बैंक आगे कहता है कि मानव कल्याण को बढ़ावा देने के लिए राज्य की क्षमता को बढ़ाना होगा। राज्य की इस क्षमता को सामूहिक कारवाइयों को निपुणता से अंजाम देने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया गया है।

ख) हाशिये पर धकेले गए तबकों के सशक्तीकरण पर ध्यान

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

विश्व विकास शिखर वार्ता (1995) "जन पहल", "जन-सशक्तीकरण" और "जन-क्षमताओं को सशक्त" बनाने की बात करती है। विकास के उद्देश्यों के सिलसिले में शिखर वार्ता कहती है कि "लोगों, खासकर महिलाओं का सशक्तीकरण, उनकी क्षमताओं को मज़बूत बनाना ही विकास का मुख्य उद्देश्य और संसाधन है। सशक्तीकरण के लिए समाज के संचालन और हित तय करने वाले निर्णयों को तय करने, उनके कार्यान्वयन और मूल्यांकन में पूर्ण जन-भागीदारी जरूरी है"। (वर्ल्ड डेवलपमेंट सम्मिट, 1995)।

पूर्ण जन भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए राज्य को "अंतर्राष्ट्रीय कानूनों दायित्वों के संगत संविधान, कानूनों और प्रविधियों के" अनुरूप "स्थिर कानूनी ढांचा" प्रदान करना होगा, जो "नागरिक समाज के स्वतंत्रता और प्रतिनिधि संगठनों के साथ भागीदारी को बढ़ावा दे, नागरिक समाज और स्थानीय समुदायों की क्षमताओं और अवसरों को मजबूती प्रदान करे ताकि वे अपने संगठनों, संसाधनों और क्रियाकलापों का विकास कर सकें" (वर्ल्ड डेवलपमेंट सम्मिट, 1995)।

यह स्पष्ट हो जाता है कि "स्थिर कानूनी ढाँचे", राज्य द्वारा "सामूहिक कारवाई का रणनीतिक चयन", "राज्य की नागरिक समाज के साथ संभावित भागीदारी और अपने संगठन बनाने के लिए नागरिक समाज की राज्य द्वारा प्रायोजित पहल" के इन परिप्रेक्ष्यों के मद्देनजर कुछ महत्वपूर्ण आयाम उभरते हैं। ये हैं: समाज के कमजोर, हाशिए में धकेले जा रहे वर्गों के सशक्तीकरण के लिए पहल राष्ट्र के प्रदत्त कानून के अनुरूप होनी चाहिए, (ख) जब और जैसी जरूरत पड़े राज्य जन-पहल को सहयोजित करेगा, (ग) हाशिए के तबकों के सशक्तीकरण में नागरिक

समाज संगठन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। राज्य के सक्रिय हस्तक्षेप के अतिरिक्त, सशक्तीकरण के संग विकास के उभरते संवाद में नागरिक समाज महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

1.9 सारांश

विकास और प्रगति सामाजिक प्रक्रियाएं हैं। सारे विश्व में इन प्रक्रियाओं का स्वरूप एक-सा नहीं है क्योंकि भौगोलिक, आर्थिक तकनीकी और राजनीतिक उन्नति के आधार पर मानव समाज जगह-जगह फैला हुआ है। मगर तमाम भिन्नताओं के बावजूद समाजशास्त्री विकास और प्रगति के लिए व्यापक परिप्रेक्ष्यों को गढ़ने में प्रयत्नशील रहते हैं। इन परिप्रेक्ष्यों का स्वरूप कभी-कभी विरोधाभासी रहा है। इस इकाई में हमने विकास पर क्लासिक समाजशास्त्री चिंतकों के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों पर चर्चा की है। पूंजीवादी, समाजवादी और तीसरी दुनिया के देशों द्वारा प्रतिवादित और प्रयोग में लाए गए विकास के विभिन्न मॉडलों की चर्चा भी हमने यहां की है। 1970 के दशक उत्तरार्ध में विकास संबंधी परिप्रेक्ष्य में बदलाव आया और मानव विकास की अवधारणा और हाशिए के लोगों के सशक्तीकरण के साथ विकास की रणनीति भी उभरी है। आपने इन सबके बारे में भी इस इकाई में जाना। इस तरह से इस इकाई ने पाठ्यक्रम में आगे की इकाइयों में आने वाले विकास के समाजशास्त्र के विस्तृत विश्लेषण की भूमिका तैयार की है।

1.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दुबे, एस.सी. 1992, *अंडरस्टैंडिग चेंज,* विकास पब्लिशिंग हाउस; नई दिल्ली।

मैकमाइकल, पी. 1996, *डेवलपमेंट एंड सोशल चेंज: ए ग्लोबल पर्सपेक्टिव,* फाइन फोर्ज प्रेस: थाउजैंड ओक्स।

सिंहराय, डी.के. 2003, सोशल डेवलपमेंट एंड द एंपावरमेंट ऑफ द मार्जिनलाइसड ग्रुप्स: पर्सपेक्टिवस एंड स्ट्रैटजीज़, सेज पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 2

परिवर्तन, आधुनिकीकरण और विकास

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 सामाजिक परिवर्तन : सिद्धान्त (अवधारणा), विशेषताएँ और कारण

2.3 सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य

2.4 आधुनिकीकरण : सिद्धान्त और विशेषताएँ (लक्षण)

2.5 आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य

2.6 आधुनिकीकरण सिद्धान्त के आलोचक

2.7 विकास : शर्तें एवं बाधाएँ

2.8 नये विकास अनुभवों के सम्बन्ध में

2.9 सारांश

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

यह इकाई निम्नलिखित को समझने में सहायक होगी:

- परिवर्तन के विभिन्न सिद्धान्त, आधुनिकीकरण और विकास;
- परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य, आधुनिकीकरण और विकास;
- परिवर्तन की स्थितियाँ और बाधाएँ : आधुनिकीकरण और विकास; और
- भारत के विकासात्मक अनुभव।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की पूर्व इकाई में हम उन्नति, विस्तार और वृद्धि के परिप्रेक्ष्य से विकास की चर्चा कर चुके हैं। इस इकाई में हम विकास का वर्णन परिवर्तन और आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में करेंगे। पहले की इकाई में आपने देखा होगा कि क्रमिक विकास, उन्नति और वृद्धि की प्रक्रियाओं के साथ-साथ हमने मानव समाज में विकास के मुद्दे से जुड़े परिवर्तन और आधुनिकीकरण की, चर्चा भी की है। इस अध्याय में हम विशेष रूप से विस्तार से यह जानेंगे कि परिवर्तन और आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं के किस प्रकार विकास के मुद्दे से जोड़ा गया है।

यह इकाई सामाजिक परिवर्तन की मुख्य विशेषताओं और इसके कारणों की चर्चा के साथ प्रारम्भ होती है। समाज शास्त्री और मानव विज्ञानियों ने परिवर्तन की प्रक्रिया के भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्यों से देखा और समझा है। हमने परिवर्तन के इन्हीं परिप्रेक्ष्यों की यहाँ एक झलक प्रस्तुत की है। परिवर्तन की तुलना में आधुनिकीकरण एक नयी अवधारणा है। यह एक नई प्रक्रिया भी है। आधुनिकीकरण की विशेषताओं के वर्णन के साथ-साथ हमने इस अवधारणा की आलोचना भी प्रस्तुत की है। इस इकाई के अन्तिम भाग में विकास की प्रक्रिया, विकास को तेज़ और मन्द करने वाली परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। इस इकाई में कुछ विकासात्मक अनुभव भी सम्मिलित किए गए हैं।

2.2 सामाजिक परिवर्तन : सिद्धान्त (अवधारणा), विशेषताएँ और कारण

विकास के समाज शास्त्र का मुख्य संबंध परिवर्तन से है। प्रत्येक समय के समाज में जीवन के हर पहलू–सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिकी, जनसांख्यकीय, पर्यावरणीय इत्यादि को प्रभावित किया गया है। समाज विज्ञानियों ने सामाजिक परिवर्तन को सम्बन्धों, संगठन, संस्कृति, संस्थाओं में बदलाव के रूप में रेखांकित किया है।

मैकवर और पेज (Maclver & Page) (1949) के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन ही परिवर्तन है। यह प्रक्रिया कई प्रकार के परिवर्तनों--जैसे जीवन की मानव निर्मित परिस्थितियों में परिवर्तन, मनुष्यों के व्यवहार और विश्वास में परिवर्तन, और वस्तुओं की भौतिक और जैविक प्रकृति में परिवर्तन जो मनुष्य के नियन्त्रण से बाहर हैं–से प्रभावित होती हैं। लुन्डबर्ग (Lundberg) के अनुसार, "निष्क्रिय अथवा सुस्त पड़े मानवीय सम्बन्धों और आचरण की स्थापित रूपरेखा में किसी भी प्रकार के सुधार को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। इसी अन्दाज़ में जड्सन और लैंडिस (1960) (Judson & Landies) लिखते हैं कि समाज के सामाजिक सम्बन्धों की संरचना और कार्यशैली में बदलाव सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। कोनिग (Koenig) की सोच है कि लोगों की जीवन शैली में होने वाले बदलाव और सुधार सामाजिक परिवर्तन कहलाते हैं। एम.ई. जान्स (ME Jones) के अनुसार सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक ढाँचे, सामाजिक व्यवहार और सामाजिक संगठनों के किसी पहलू में सुधार अथवा परिवर्तन का वर्णन करने के लिए 'सामाजिक परिवर्तन' शब्दावली का प्रयोग किया जाता है।

किंग्सले डेविस (1949) (Kingslay Davis) के लिए सामाजिक परिवर्तन ऐसे परिवर्तन हैं जो समाज के संगठन ढाँचे और गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। रॉबर्ट ए. निस्बेट (1949) (Robert A. Nisbet) के विचार से एक पक्की पहचान के साथ समय-समय पर हुए शृंखलाबद्ध बदलावों को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। जॉन जे मैक्यूनिस (1997) (John J. Macionis) के अनुसार संस्कृति और सामाजिक संस्थाओं में समय के साथ हुए बदलाव को ही सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

सामाजिक परिवर्तन की पहचान के कुछ विशेष लक्षण हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं: सामाजिक परिवर्तन हर जगह होते हैं परन्तु परिवर्तन की दर अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होती है। कभी-कभी सामाजिक परिवर्तन जानबूझ कर किए जाते हैं परन्तु आमतौर में अनियोजित होते हैं। सामाजिक परिवर्तनों से विवाद पैदा हो सकता है तथा कुछ परिवर्तन अन्य परिवर्तनों से अधिक महत्त्व रखते हैं जैसे निजी कम्प्यूटरों की खोज, पैच डोल्स (Patch Dolls) से अधिक महत्वपूर्ण है।

सामाजिक परिवर्तन के कारण

सामाजिक परिवर्तनों के कई कारण हैं। आईये उनमें कुछ कारणों पर यहां चर्चा करें।

क) **सांस्कृतिक परिवर्तन:** समाज में परिवर्तन का एक बड़ा भाग संस्कृति में परिवर्तन के कारण होता है। संस्कृति ऐसी व्यवस्था है जिसमें निरन्तर कुछ जुड़ता अथवा घटता रहता है। अविष्कार, खोज और प्रचार-प्रसार को सांस्कृतिक परिवर्तन का मुख्य स्रोत माना गया है। अविष्कार नए उत्पाद, नए विचार और सामाजिक ढाँचों को जन्म देते हैं। यह नया गठन अथवा उपलब्ध ज्ञान का नया प्रयोग होता है। अविष्कारों को भौतिक (जैसे टेलिफोन, हवाई जहाज़) और सामाजिक (जैसे अक्षर ज्ञान, भाषा, सरकार इत्यादि) वर्गों में बांटा जा सकता है। प्रत्येक अविष्कार का आकार, कार्य और अर्थ नया होता है और इसके प्रभाव को दीर्घकालिक सम्भावनाएं होती हैं।

खोज का अर्थ है कुछ ऐसा ढूँढ लेना जिसे पहले न पाया गया हो अथवा पहले से उपलब्ध किसी वस्तु में कुछ नया खोज निकालना। प्रत्येक खोज संस्कृति में कुछ नया जोड़ती है और प्रयोग में लाए जाने पर सामाजिक परिवर्तन का कारण बनती है।

विसरण (Diffusion) अन्य समाजों में विचारों, संस्कृति और वस्तुओं को फैलाने की प्रक्रिया है। यह समाज के अन्दर और समाजों की बीच व्यापार, प्रवास और जनसंचार के माध्यम से होता है। यह दोनों ओर से चलने वाली प्रक्रिया है।

ख) **विचार और परिवर्तन:** नए विचार और नए सन्दर्भ में पुराने विचारों में बदलाव के कारण से समाज में बहुत परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए मैक्स वेबर ने यह स्थापित किया कि धार्मिक विचारों में तार्किकता आने से प्रोटेस्टेन्टों की दुनिया में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए।

ग) **जन सांख्यकीय परिवर्तन:** जन्मदर में वृद्धि और मृत्यु दर में कमी तथा जनसंख्या की अदला-बदली से समाज में बड़े परिवर्तन होते हैं। समाज में जनसांख्यिक बदलाव से भी परिवर्तन होते हैं।

घ) **संघर्ष और परिवर्तन:** तनाव और संघर्ष से भी सामाजिक परिवर्तन होते हैं। संरचनात्मक तनाव, अभाव, सांस्कृतिक पुनर्चेतना संघर्ष के मुख्य कारण रहे हैं। इसके साथ ही वर्ग, जाति, लिंग, वंश और सम्पति इत्याति के आधार पर सामाजिक वर्गीकरण भी समाज में संघर्ष के मुख्य कारण रहे हैं।

ङ) **सामाजिक आन्दोलन और परिवर्तन:** समाज में मूल्यों, तौर-तरीकों, संस्थाओं, सांस्कृतिक सम्बन्धों और समाज की परम्पराओं में वांछित परिवर्तन लाने के लिए लोगों के समूहों के संगठित प्रयास सामाजिक आन्दोलन होते हैं। ये नई पहचान और नये परिप्रेक्ष्य भी पैदा करते हैं।

MAADHYAM IAS

सोचिये और कीजिये 2:1

कई बड़ी प्रक्रियाओं जैसे शहरीकरण, औद्योगिकीकरण, आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, भूमण्डलीकरण, शिक्षा और साक्षरता के प्रसार, नये कानूनों के लागू होने, जनसंचार की पैठ और संचार साधनों के विस्तार इत्यादि के कारण से सामाजिक परिवर्तन होते हैं। इनमें से बहुत सी प्रक्रियाएँ परस्पर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इनमें से किसी एक प्रक्रिया को चुनिये और उससे अपने समाज में हुए परिवर्तन पर प्रभाव को समझाईये।

2.3 सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य

पिछली इकाई में हमने विकास के परिप्रेक्ष्यों पर विस्तार से चर्चा की है। परिवर्तन एक बड़े केनवस अथवा विकास, उन्नति, बदलाव, वृद्धि, आधुनिकीकरण इत्यादि की रूपरेखा को दर्शाता है। हमने पिछली इकाई में इन प्रक्रियाओं का विशेष रूप से वर्णन किया है। आइये हम संक्षेप में देखें कि इन परिप्रेक्ष्यों को परिवर्तन का वर्णन करते समय किस प्रकार प्रयोग किया गया है।

क) **विकासवादी परिप्रेक्ष्य:** उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में विकासवादी अवधारणा को मानव के सामाजिक और जीव विज्ञान की दोनों क्षेत्रों में हुए विकास के हर पहलू को समझाने में मुख्य स्थान प्राप्त हुआ। उदाहरण के लिए मोरगन के मानवता के तीन युग जंगलीपन, असभ्यता और क्रूरता तथा सभ्यत तथा अगस्त कामते के मानवीय मस्तिष्क पर विचार। कामते मानव मस्तिष्क (बुद्धि) को मिथ्यावाद अध्यात्मवाद और पराभौतिक तथा सकारात्मक—तीन ऐतिहासिक दौरों से गुज़रने का तर्क देते हैं। स्पेन्सर का मानव समाज के सम्बन्ध में विचार है कि सरल संगठनात्मक अभिरचनाओं की तुलना में अधिक जटिल एवं प्रत्येक अंग (भाग) की बढ़ती विशेषता वाले ढांचे से गुज़रना प्राकृतिक विकास है।

ख) **संघर्ष परिप्रेक्ष्य:** इस परिप्रेक्ष्य को व्यक्तियों और समूहों के बीच तनावों और संघर्षों के मध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। यहां परिवर्तन को समाज की एक स्वाभाविक प्रक्रिया माना गया है। कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज में सम्पन्न और विपन्न वर्गों के बीच उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार पर परस्पर विरोधी वर्ग सम्बन्धों के कारण सामाजिक परिवर्तन होते हैं और यह वर्ग संघर्ष पुरातन से सामन्तवादी और अन्तत: सामन्तवाद से समाज में पूंजीवाद की स्थिति तक पहुंचने के साथ एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के रूप में परिणत होता है। कोज़र के अनुसार संघर्ष समाजीकरण प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है और कोई भी समूह पूर्णत: शान्तिपूर्ण एवं सुसंगत नहीं हो सकता क्योंकि लोगों में प्रेम और घृणा की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से होती हैं। अत: संघर्ष एक सर्जनात्मक शक्ति के रूप में कार्य करता है जो समाज में रचनात्मक अथवा विध्वंसात्मक परिवर्तन को पुष्ट करता है।

जहां कार्ल मार्क्स ने असमान वितरण पर आधारित वर्ग और वर्ग संघर्ष को चिन्हित किया है वहीं डेहरन्डोर्फ (Daharendorf) ने इस संघर्ष की पहचान सत्ता के असमान वितरण के रूप में की है। डेहरन्डोर्फ के अनुसर समाज में सभी समूह दो वर्गों में बंटे हैं – एक, जिनके पास सत्ता है और दूसरे, जिनके पास सत्ता नहीं है। समाज में सत्ता के असमान वितरण से संघर्ष उत्पन्न होता है। यह सत्ता का असमान वितरण समाज में परिवर्तन पैदा करता है।

ग) **संरचनात्मक-कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य:** संरचनात्मक-कार्यात्मकवादी विचारकों के अनुसार समाज परस्पर सम्बद्ध अंगों से मिलकर बनता है और ये अंग आन्तरिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए मिल कर काम करते हैं। यह सामाजिक प्रतिष्ठा सम्पन्न लोगों को खोजने, उनके अधिकार एवं कर्तव्य स्पष्ट करते हुए उन्हें कुछ आशाएँ एवं अपेक्षाएँ प्रदान करता है। यह विचारधारा व्यवस्था, स्थायित्व और यथास्थिति बनाए रखने की पक्षधर है। आइये हम यह जानें कि किस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने इस परिप्रेक्ष्य में परिवर्तन की कल्पना की है।

MAADHYAM IAS

दुर्खेम (Durkheim) के लिए परिवर्तन का अभिप्राय समाज में श्रम के विभाजन की प्रकृति में परिवर्तन है। उसका विश्वास था कि पारम्परिक समाज से आधुनिक समाज तक श्रम परिवर्तन ही परिवर्तन का मूल कारण रहा है। टालकोट पारसंस (Talcott Parson) के अनुसार समाज की सारी व्यवस्था तीन व्यवस्थाओं से घिरी हुई है ये व्यवस्थाएं हैं – व्यक्तित्व, जीव और संस्कृति। जब तीनों व्यवस्थाएँ अपनी सीमा में रहती हैं तो समाज में संतुलन बना रहता है लेकिन जब ये सीमाएं टूटती हैं तो सामाजिक परिवर्तन होता है। आग्बर्न (Ogburns) का सिद्धान्त कहता है कि समाज की गतिविधियाँ सभी अंगों के बीच सामान्जस्य के आधार पर चलती हैं और ऐसे परिवर्तन जो किसी एक भाग में असंतुलन पैदा करते हैं वे सन्तुलन की पुनर्स्थापना के लिए अन्य परिवर्तनों के जन्म का कारण बनते हैं। उसके अनुसार संस्कृति के सभी पहलुओं में, चाहे वे भौतिक हों अथवा अन्य, परिवर्तन एक दर से नहीं होता। इससे सांस्कृतिक पिछड़ापन पैदा होता है जो अन्त में समाज में परिवर्तन लाता है।

घ) **सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य:** इन विचारकों का मानना है कि लोगों की गतिविधियाँ समाज में परिवर्तन का मुख्य कारण हैं और व्यवहार में सुधार परिवर्तन को सहज बनाने एवं सामाजिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

मैक्स वेबर के अनुसार आधुनिकता तार्किक सोच के बल पर परम्परागत विचारों का स्थान ग्रहण कर रही है। औद्योगिक समाजों से पूर्व परम्परागत विचार परिवर्तन के लिए बाधा थे। चीज़ें जस की तस थीं क्योंकि कोई उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रश्न नहीं उठाता था। आधुनिक समाज में प्रश्न उठाए जाते हैं और उत्तर खोजे जाते हैं।

एवरेट ई. हेगन (Everette E. Hagen) के अनुसार परम्परागत समाजों की विशेषता है

कि वे निश्चित वस्तुस्थिति से जुड़े रहते हैं और सदस्यों के व्यक्तित्व सत्तावादी होते हैं और उनमें रचनात्मकता तथा सृजनात्मकता नहीं होती। दूसरी ओर आधुनिक समाज में विशिष्ट व्यक्तित्व नयी सोच तथा रचनात्मकता एवं नए अनुभवों के लिए उत्साह एवं खुलेपन के गुणों से भरे होते हैं। वस्तुस्थिति से परे हटने पर परिवर्तन का अनुभव होता है। यह और कुछ नहीं अपितु समाज में किसी की भूमिका अथवा अपेक्षाओं एवं विशेषताओं की अवहेलना है।

डेविड मेकलैण्ड ने अपने अध्ययन को उपलब्धि की आवश्यकता पर केन्द्रित किया जो 'न' उपलब्धि के चिन्ह द्वारा उसके अनुसार 'न' तत्व (कारक) का जितना अधिक विकास होगा समाज में उतना ही अधिक आर्थिक विकास होगा। परिणामस्वरूप 'न' तत्व से सम्पन्न लोगों के व्यवहार में व्यक्तिवादिता, सक्रिय सृजनात्मक गतिविधियाँ, सफलता के लिए उत्साह इत्यादि जैसी विशेषताएँ देखने को मिलती है। सरल शब्दों में निजी आर्थिक उपलब्धियाँ, आर्थिक विकास को जन्म देती हैं।

सोचिये और कीजिये : 2.2

समाज शास्त्र के आधार पर परिवर्तन का क्या अर्थ है? विकासवादी और संरचनात्मक कार्यात्मक सिद्धान्तों के बीच समानताओं और विरोध का अध्ययन कीजिये।

2.4 आधुनिकीकरण : सिद्धान्त और विशेषताएँ (लक्षण)

आधुनिकीकरण ऐसा सैद्धान्तिक ढाँचा है जो विकसित समाजों के प्रति सामान्य मान्यताओं और भौतिक तथा सांस्कृतिक रूप से विपल विश्व को बदलने की उनकी योग्यता को व्यक्त करता है। आधुनिकीकरण से सम्बद्ध विचारक परम्परागत (गरीब) और आधुनिक (पश्चिमी) समाजों के बीच अन्तर (भेद) को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। उनकी यह मानना है कि परम्परागत समाज से आधुनिक समाज तक का आर्थिक विकास एक सीधी स्पष्ट दिशा में आगे बढ़ा है। आधुनिकीकरण इस बात की पैरवी करता है कि मुख्य आधुनिक समाजों के साथ सम्पर्क निष्क्रिय और मन्द समाजों में विकास की गति को तीव्र करता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आधुनिकीकरण का सिद्धान्त

विद्वानों के अनुसार आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ऐसे परिवर्तनों को संग्रहित करती है कि जो एक कमजोर राज्य के कृषि आधारित समाज अथवा अविकसित समाज को तुलनात्मक रूप से सक्षम और सक्रिय सरकार वाले औद्योगिक समाज में बदलने के लिए परस्पर संयुक्त होते हैं। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ऐसे परिवर्तनों को गले लगाती है जो औद्योगिकीकरण तथा शहरीकरण की ओर ले जाते हैं।

विलबर्ट मूर के अनुसार "आधुनिकीकरण, परम्परागत और आधुनिक समाजों से पूर्व के समाजों का ऐसी प्रौद्योगिकी और सम्बद्ध सामाजिक संगठनों में पूरी तरह बदल जाना है जिनमें उन्नत, आर्थिक रूप से खुशहाली और तुलनात्मक दृष्टि से पश्चिमी दुनिया के स्थिर देशों की विशेषताएँ हैं"। इसी प्रकार डेनियल लर्नर ने आधुनिकीकरण को सामाजिक परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया है जिसमें विकास एक आर्थिक घटक है।

अपनी मुख्य कृति 'द पासिंग आफ ट्रेडीशनल सोसायटी' (1958) में डेनियल लर्नर ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अनेक मध्य पूर्वी देशों में परीक्षण किया तथा अन्य कम विकसित (अल्प विकसित) समाजों में (प्रतिदर्श सर्वेक्षण) नमूने के तौर पर सर्वेक्षण किए और इन सबके साथ ग्रामीण समाज के अपने निरीक्षणों को जोड़ा।

लर्नर का मानना है कि आधुनिकीकरण एक भूमण्डलीय प्रक्रिया है जो पूरी दुनिया में एक

ही प्रकार से चल रही है और विकास के सूचकों की भूमिका जैसे जनसंचार, शहरीकरण, साक्षरता में वृद्धि इत्यादि नयी आर्थिक व्यवस्था के उदय के लिए उत्तरदायी हैं। लर्नर के अनुसार आधुनिकता केवल सांस्थानिक परिवर्तनों का ही परिणाम नहीं है अपितु यह लोगों के व्यक्तित्व में बदलाव के परिणामस्वरूप भी है। उसने टर्की के एक गांव **बालगत** (Balgat) के एक दुकानदार और खानसामा के वृतांत के माध्यम से इसे दर्शाया था।

लर्नर के लिए आधुनिकीकरण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू 'गतिशील व्यक्तित्व' का विकास है जिसमें तार्किकता और समानुभूति के गुण हों। समानुभूति का अर्थ है – अपने को दूसरे की स्थिति में रखकर देखने की क्षमता और यह क्षमता लोगों को बदलते हुए विश्व में प्रभावी ढंग से जीने योग्य बनाती है। यहां आधुनिकता के गुण हैं – ऊंचे स्तर की साक्षरता, शहरीकरण जन संचार में सहभागिता एवं समानुभूति उसके लिए परम्परागत व्यक्तियों की तुलना में आधुनिक व्यक्ति अधिक प्रसन्न, जागरुक और युवा हैं तथा जो लोग परिवर्तन (संक्रमण) की श्रेणी में आते हैं, उनका झुकाव असंतुष्ट और अतिवाद की ओर होता है तथा उनकी प्रगति और विकास में अनुकूल राजनीतिक संस्थाओं की कमी बाधक बनती है। लेकिन लर्नर इस तथ्य से परिचित था कि यद्यपि आधुनिक श्रेणी में रखे लोग प्रसन्न दिखते हैं तथापि विकास के पथ पर कठिनाईयाँ हैं जैसे सरकार पर दबाव डाला जा सकता है, सामाजिक नियंत्रण की कठिनाईयाँ हो सकती हैं – इत्यादि-इत्यादि। इसी प्रकार निजी स्तर पर भी व्यक्तिगत समस्याएँ होती हैं उदाहरण के लिए 'परिवर्तनीय' श्रेणी में रखे गए लोगों को आधुनिक व्यवस्था में पारम्परिक अरब और मुसलमानों के विश्वासों के साथ सामंजस्य बैठाना पड़ सकता है।

आधुनिकीकरण के लक्षण (विशेषताएँ)

इस विचारधारा के आधार पर आधुनिकीकरण के निम्नलिखित लक्षण होते हैं:

क) इसमें संरचनात्मक विभेदीकरण और विशेषता पर अधिक बल दिया जाता है।

ख) यह उत्पादन के एक प्रकार पर आधारित है जिसे पूँजीवादी प्रकार कहा जाने लगा है। इसका अभिप्राय है कि पूरी सामाजिक व्यवस्था दो महत्त्वपूर्ण वर्गों के इर्द-गिर्द रची जाती है। एक वर्ग पूँजीवादी वर्ग है जो उत्पादन के साधनों का स्वामी है तो दूसरा वर्ग श्रमिक वर्ग है जो इस प्रक्रिया में अपना श्रम बेचते हैं।

ग) निश्चय ही यह वेतन श्रमिक अर्थव्यवस्था है। यह एक ऐसी 'बाज़ार अर्थव्यवस्था' की वृद्धि को उजागर करता है जिसमें क्रेता और विक्रेता दोनों अपनी इच्छा और पसन्द के ताने बाने में विवेकपूर्ण चयन करने में सक्षम दिखाई देता है।

घ) यह नौकरशाही की संस्थाओं की वृद्धि पर प्रकाश डालता है जो स्वयं तार्किकता और भूमिका विभेदीकरण के सिद्धान्त पर बनी हैं। इन्हीं नौकरशाही संस्थाओं को ही इस विचारधारा की बुनियाद माना जाता है। वे सभी संस्थाएँ, जो सामाजिक व्यवस्था को चलाती और नियमित करती है, नौकरशाही संस्थाएँ कहलाती हैं। यह एक राजनीतिक व्यवस्था के विकास पर बल देता है जो राज्य और संवैधानिक सिद्धान्तों के मध्य सम्वाद से उभरे अधिकार के सिद्धान्त पर आधारित होती है।

ङ) राज्य की शक्तियाँ निरंकुश होती हैं तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व और व्यस्क मताधिकार के सिद्धान्त पर आधारित लोकतांत्रिक प्रक्रिया चलती है।

च) समाज को लोकतांत्रिक बनाने की प्रक्रिया ने राजनीतिक प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न हित समूहों को जन्म दिया है जो राज्य के कार्यों के प्रबन्धन के विभिन्न तरीकों पर बल देने वाली विभिन्न प्रतिद्वंद्वी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

छ) आधुनिकीकरण की प्रक्रिया व्यक्तिवाद के बढ़ावे पर बल देते हैं जिसके अन्तर्गत व्यक्ति और व्यक्ति के अधिकारों को सभी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास का केन्द्र माना जाता है।

MAADHYAM IAS

ज) अन्त में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सामाजिक प्रगति के विचार पर बल देती है तथा लोकतांत्रिक तरीकों से समाजों के लिए व्यैक्तिक और सामाजिक मुक्ति के बेहतर स्तर को प्राप्त करना सम्भव है।

2.5 आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य

समाज शास्त्र के दृष्टिकोण से आधुनिकीकरण ने खूब लेखन करवाया है। आधुनिकीकरण पर कोई एकीकृत परिप्रेक्ष्य नहीं है। हम निम्नलिखित परिप्रेक्ष्यों का परीक्षण करेंगे।

a) आदर्शवादी (The Ideal Typical)

b) प्रसारवादी (The Diffusionist)

c) मनोवैज्ञानिक (The Psychological)

d) मार्क्सवादी (The Marxist)

पहले तीन परिप्रेक्ष्यों का अमेरिकी चिन्तन में प्रभुत्व रहा है और इन्हें सभी जगह भरपूर समर्थन एवं संरक्षण मिला विशेषत: 1950 और 1960 के दशकों में। चौथे परिप्रेक्ष्य अर्थात मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य के तीनों परिप्रेक्ष्यों के लिए चुनौती के रूप में उभरा और उनके मुख्य विद्धान्तों का आलोचनात्मक परीक्षण किया।

आदर्शवादी परिप्रेक्ष्य

यह दृष्टिकोण दो मुख्य परिप्रेक्ष्यों में अभिव्यक्त हुआ है।

क) ढाँचागत परिवर्ती परिप्रेक्ष्य

ख) ऐतिहासिक अवस्था परिप्रेक्ष्य

ढाँचागत परिवर्ती परिप्रेक्ष्य

इस परिप्रेक्ष्य को मैक्स वेबर के 'आदर्श प्रकार' के सिद्धान्त से निरूपित किया गया है जिसे बाद में टालकर पारसन ने व्यवस्थित किया। इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार विकास और अल्प विकास के लक्षणों की पहचान की जाए और तब विकास के कार्यक्रम एवं योजनायें बनानी चाहिएं जहाँ अल्प विकसित देश अल्प विकास के ढाँचागत परिवर्तों को नकार कर विकास के परिवर्त को अपनाते हैं।

टालकर पारसनस के काम से प्रेरित होकर स्मेल्सर (Smelser) ने स्पष्ट किया कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया चार उप प्रक्रियाओं से बनती है – जो इस प्रकार हैं:

क) प्रौद्योगिकी की आधुनिकीकरण, जो साधारण परम्परागत तकनीक के स्थान पर वैज्ञानिक जानकारियों के प्रयोग की ओर ले जाती है।

ख) कृषि का व्यवसायीकरण, जिसमें जीविकोपार्जन के बजाय व्यवसायिक कृषि की विशेषताएँ होती हैं जो नकदी फसलों के उत्पादन की विशेषज्ञता तथा वैतनिक मज़दूरी के बढ़ावे की ओर ले जाता है।

औद्योगीकरण: जो मानवीय और पशु शक्ति के स्थान पर मशीनी शक्ति के प्रयोग को अपनाने को प्रदर्शित करता है।

शहरीकरण: जो लोगों का खेतों और गांवों से बड़े शहरों की ओर पलायन को इंगित करता है। यह प्रक्रियाएँ कभी-कभी एक साथ और कभी-कभी अलग-अलग समय पर चलती रहती हैं। उदाहरण के लिए कई औपनिवेशिक स्थितियों में औद्योगिकीकरण के बिना ही कृषि का व्यवसायीकरण हो जाता है। नि:सन्देह यह चारों प्रक्रियाएँ परम्परागत समाज की संरचना को समान ढंग से प्रभावित करती हैं।

इन प्रक्रियाओं के एक साथ अथवा अलग-अलग समय पर चलने के फलस्वरूप परम्परागत समाज संरचनात्मक रूप से अधिक विभिन्नता पूर्ण हो जाता है। स्मेलसर के अनुसार विकसित समाज और अर्थव्यवस्था विभिन्नता पूर्ण संरचना से सम्पन्न होता है जबकि एक अल्प विकसित समाज में यह कमी दिखाई देती है। स्मेलसर के लिए विभिन्नता अथवा विभेदीकरण का अभिप्राय ऐसी प्रक्रिया से है जिससे अधिक विशेषज्ञता सम्पन्न एवं स्वायत संस्थाओं की स्थापना हो। उसने इस प्रक्रिया को परम्परागत समाज के विभिन्न क्षेत्रों जैसे परिवार, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था और धार्मिक संस्थाओं में चलते हुए देखा है।

अर्थात संरचनात्मक विभेदीकरण प्रक्रिया ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक सामाजिक भूमिका अथवा संस्था दो अथवा अधिक भूमिकाओं और संस्थाओं में बँट जाती है जो नयी ऐतिहासिक परिस्थितियों में अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य करती हैं। नई सामाजिक इकाईयाँ संरचना के आधार पर एक दूसरे से अलग होती हैं परन्तु एक साथ लेने पर वे मूल इकाई के बराबर काम करती हैं।

दूसरे इन विभक्त इकाईयों का आधुनिक प्रकार की बड़ी इकाईयों में विलय हो जाता है तो नये सम्बन्धों का विकास होता है जो समगुणों पर आधारित नहीं होते स्मेलसर इस प्रकार की प्रक्रिया को एकीकरण की प्रक्रिया कहते हैं।

तीसरे – स्मेलसर यह दर्शाता है कि इस प्रकार के विभेद से सामाजिक अशान्ति जैसे जन आक्रोश, हिंसा का फूटना, धार्मिक और राजनीतिक आन्दोलन हो सकते हैं जो परिवर्तन की उथल-पुथल पूर्ण प्रक्रियाओं के कारण होते हैं। इससे समाज की नयी और पुरानी व्यवस्था के बीच संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। दूसरे शब्दों में समाज में अनियमितता और अव्यवस्था उत्पन्न होती है जिसे दुर्खाइम (Durkhelm) ने एनोमी (Anomie) कहा है अर्थात समाज में परस्पर विरोधी नियम और सिद्धान्त, असन्तोष का वातावरण जिसमें लोग अपनी इच्छाओं और अपेक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ होते हैं और इस कारण हिंसा, अपराध तथा अन्य आसामाजिक व्यवहार और आत्महत्या जैसे आत्मघाती कृत्यों की राह पकड़ लेते हैं। वेबर (Weber) ने भी दर्शाया है कि धार्मिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया से मोहभंग, परस्पर प्रतिद्वंद्वी अथवा पक्षपातपूर्ण वैश्विक विचारों का बिखराव और विभक्तीकरण, सामाजिक और निजी दुनिया के निरर्थक होने जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और निराशा की भावना व्याप्त जाती है। आधुनिकीकरण की प्रतिक्रिया के रूप में कट्टरवादी आन्दोलनों का प्रारम्भ एक ऐसी प्रतिक्रिया है जो आधुनिक मूल्यों को नहीं मानते और परम्परागत मूल्यों की ओर लौटने का प्रचार करते हैं।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

ऐतिहासिक अवस्था का परिप्रेक्ष्य

विकास और अल्पविकास के बीच अन्तर को पहचानने के अतिरिक्त यह परिप्रेक्ष्य बीच की अवस्थाओं और उनके लक्षणों को सुनिश्चित करता है। यह परिप्रेक्ष्य मुख्यत: रोस्टो (Rostow) और 1960 में उसके द्वारा विकसित आर्थिक प्रतिरूप से जुड़ा हुआ है।

वाल्ट रोस्टो (Walt Rostow) एक आर्थिक इतिहासकार था जिसने अमरीकी सरकार के सलाहकार के रूप में सेवा की। उसकी पुस्तक 'द स्टेजिस ऑफ इकनामिक ग्रोथ : ए नॉन कम्यूनिस्ट मैनिफेस्टो 1960' की प्रकृति पूर्व पूँजीवादी तथा नव विकासवादी थी जो पूर्ववर्ती विकासवादी सिद्धान्त के इस विचार से प्रेरित थी कि परिवर्तन और विकास क्रमिक घटनाओं के एक समुच्चय के अनुसार होते हैं।

रोस्टो के अनुसार परिवर्तन की प्रक्रियाएँ साधारण एवं स्वपोषित होती हैं। आर्थिक वृद्धि (विकास) को अधोलिखित विकास प्रतिरूप की पांच अवस्थाओं के अनुपालन से प्राप्त किया जा सकता

है। उसके अनुसार सभी समाजों को पांच श्रेणियों में से किसी एक अथवा आर्थिक विकास के अवस्थाओं में से किसी एक में रखा जा सकता है।

पहली अवस्था: परम्परागत समाज

इस समाज की अनिवार्य विशेषता है कि इसमें विज्ञान और तकनीक तक पहुँच न होने के कारण उत्पादन सीमित होता है। मूल्य प्रायः घातक होते हैं तथा राजनीतिक शक्ति केन्द्रित नहीं होती। अधिकांश लोग कृषि में लगे होते हैं और उपरोक्त कारणों से उत्पादन भी कम होता है। ऐसे समाज में सामाजिक संगठनों में परिवार और वंश समूहीकरण पर बल दिया जाता है।

द्वितीय अवस्था: प्रारम्भ की पूर्व शर्तें

विकास की दूसरी अवस्था संक्रमण की अवस्था है। एक पारम्परिक समाज सीधे ही औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया की ओर नहीं चला जाता, पहले कुछ निश्चित प्रारम्भिक क्रियाएँ पूरी होनी होती हैं। आर्थिक उन्नति के समर्थन में विचारों की भरमार होती है और इसलिए शिक्षा और उद्यम के नये स्तर तथा पूँजी लगाने वाली संस्थाएँ जैसे बैंक इत्यादि की आवश्यकता होती है। निवेश बढ़ता है और विशेष रूप से परिवहन, संचार तथा कच्चे माल में निवेश बढ़ जाता है जो वाणिज्यिक विस्तार की ओर ले जाता है। लेकिन रोस्टो (Rostow) के अनुसार परम्परागत सामाजिक ढाँचा और उत्पादन की तकनीक नहीं बदलती। इस अवस्था में दो प्रकार का समाज दिखाई देता है।

तीसरी अवस्था: प्रारम्भ

इस अवस्था में अन्ततः पुरानी और पारम्परिक व्यवस्था तथा प्रतिरोध पर काबू पा लिया जाता है। आर्थिक विकास को प्रारम्भ करने वाली ताकतें फैलती हैं और समाज में प्रमुखता प्राप्त कर लेती है। कृषि का व्यापारीकरण होता है, उत्पादन में वृद्धि होती है क्योंकि विस्तार पाते हुए शहरी केन्द्रों से पैदा होने वाली मांग की आपूर्ति के लिए यह आवश्यक है। नए आर्थिक समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाले नये राजनीतिक दल औद्योगिक अर्थव्यवस्था को नयी ऊंचाईयों पर ले जाते हैं। ब्रिटेन, कनाडा और संयुक्त राज्य अमरीका में प्रारम्भ के लिए आवश्यक प्रोत्साहन मुख्यतः प्रौद्योगिकी ही था। ब्रिटेन में प्रारम्भ का काल 1783 के बाद शुरू हुआ था तथा फ्रांस और अमरीका में 1840 के लगभग, रूस में लगभग 1890 में तथा भारत और चीन जैसे देशों में 1950 के इर्द-गिर्द यह काल प्रारम्भ हुआ है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

चौथी अवस्था: परिपक्वता की ओर

इस अवस्था में विकासशील अर्थव्यवस्था आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनी सभी आर्थिक गतिविधियों में फैलाने का प्रयास करती है। सकल घरेलू उत्पाद के 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत के बीच का निवेश किया जाता है और अर्थव्यवस्था विश्व की व्यवस्था में अपना स्थान बनाती है। प्रौद्योगिकी अधिक जटिल और परिष्कृत हो जाती है और भारी उद्योग से अलग दिशा पकड़ती है। इस स्थिति में उत्पादन सामाजिक आवश्यकता के परिणामस्वरूप नहीं होता अपितु प्रतिद्वन्द्वी पूँजीवादी बाजार में बने रहने के लिए लाभ बढ़ाने की आवश्यकता से होता है।

पांचवीं अवस्था: अधिक ख़पत

इस अन्तिम अवस्था में बड़े आर्थिक क्षेत्र टिकाऊ उपभोक्ता सामान और सेवाओं में विशेषज्ञता प्राप्त कर लेते हैं। इस अवस्था में आर्थिक विकास यह सुनिश्चित करता है कि मूल आवश्यकताएँ पूरी हो रही हैं और लोक कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा के लिए अधिक संसाधन आबंटित किए जाते हैं। कल्याणकारी राज्य का उदय इसी का एक उदाहरण है। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं का बड़ी संख्या में प्रसार किया जाता है। रोस्टो अपने सिद्धान्त और विचारधारा को बहुत गतिशील मानता था जो न केवल आर्थिक तत्वों से ही सम्बन्धित थी अपितु सामाजिक निर्णयों और सरकारी फैसलों से भी सम्बन्धित थी।

सोचिये और कीजिये 2.3

आधुनिकीकरण से आप क्या अर्थ लेते हैं? रोस्टो के अनुसार आधुनिकीकरण पर आदर्शवादी परिप्रेक्ष्य ऐतिहासिक अवस्था परिप्रेक्ष्य से किस प्रकार अलग है?

प्रसारवादी परिप्रेक्ष्य

यह दृष्टिकोण विकास को ऐसी प्रक्रिया को मानता है जिसमें विकसित देशों से अल्पविकसित देशों को सांस्कृतिक तत्त्वों विसरण होता है। इसमें यह भावना अन्तर्निहित है कि अल्प विकसित देश विकसित देशों की सहायता के बिना अपना पिछड़ापन दूर नहीं कर सकते। अतः पूंजी, प्रौद्योगिकी, ज्ञान, कौशल, संस्थाओं और मूल्यों तक का विसरण अर्थात प्रसार होता है। ये विद्वान इस सहायता को विकसित देशों द्वारा अल्प विकसित और पिछड़े देशों के लाभ के लिए किया गया त्याग मानते हैं। यदि इसके बाद भी कोई समाज विकास और आधुनिकता के स्तर तक नहीं पहुँचता तो वे इसका दोष अल्प विकसित और पिछड़े समाजों में स्थित कमजोरियों जैसे जनसांख्यिक कारण पारम्परिक संस्थाओं, विश्वासों और मूल्यों इत्यादि की उपस्थिति को देते हैं।

मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

यह दृष्टिकोण मुख्यतः मैकलैण्ड, कंकेल, हेगन एवं अन्यों के साथ जुड़ा हुआ है। मैकलैण्ड के अनुसार जैसा कि इस इकाई में पहले भी उल्लेख किया गया है, कि उपलब्धियों के उच्च स्तर को प्राप्त कर लेने वाला समाज उर्जावान उद्यमा उत्पन्न करता है जो बदले में अधिक तीव्र आर्थिक विकास उत्पन्न करते हैं। यह इस कारण है कि लोगों में उच्च स्तरीय उपलब्धि उनसे इस प्रकार का व्यवहार करवाती है जो उनकी उद्यमी भूमिका को सफलतापूर्वक निभाने में सहायता करता है। अतः इस दृष्टिकोण के अनुसार आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कारक है उनमें उपलब्धि की प्रेरणा का होना। इससे नियोजित और सघन वृद्धि एवं विकास होता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

यह दृष्टिकोण मार्क्सवादी दर्शन और सामाजिक सिद्धान्तों की आधारभूत बातों को स्वीकार करता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार कुछ देशों का अल्प विकास और अन्य का विकास भूमण्डलीय स्तर पर आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था के उदय के साथ जुड़ा हुआ है। अतः अल्प विकास और इससे जुड़ी समस्याओं का कारण एवं दोषी पूँजीवाद की वृद्धि को माना जाता है।

इस विचारधारा के अनुसार विकसित पूँजीवादी देशों और अल्प विकसित देशों के बीच सम्बन्ध मधुरता और सहयोग के नहीं होते अपितु सहायता के नाम पर उन्हें अधीन करने की अप्रत्यक्ष एवं सूक्ष्म चाल होती है।

ऐसा तर्क दिया जाता है कि विकसित देश अल्प विकसित समाजों को अपना नया औपनिवेशिक निर्भर समाज बना रहे हैं तथा सहायता, मदद, सहयोग, कौशल, तकनीक, पूँजी तथा आधुनिक संस्थाओं और मूल्यों की पूरी तस्वीर झूठी और भ्रामक है। सहायता को ही पिछड़ेपन पर काबू पाने में मुख्य बाधा के रूप में देखा जाता है।

इस विचारधारा के अनुगामी कहते हैं कि समृद्ध पूँजीपति देशों के सत्तासीन वर्ग द्वारा शुरू की गई नीतियां और विकास की योजनाएं विकास के उस सिद्धान्त पर आधारित हैं जो सम्पति सम्पन्न वर्ग तथा अमीरों के हितों को साधनों में विश्वास रखता है।

इस लिए यह सिद्धान्त है कि विकास की कोई नीति तभी सफल होगी जब यह कामगारों के विश्वास को प्राप्त करने पर आधारित होगी।

2.6 आधुनिकीकरण सिद्धान्त के आलोचक

आधुनिकीकरण सिद्धान्तों की उपलब्धियों का परीक्षण करते समय हमें यह समझ लेना चाहिए कि इस विचारधारा का उदय 1950 के पहले वर्षों में हुआ और 1970 के दशक में जब इन सिद्धान्तों में विश्वास घटने लगा तो यह अदृश्य होने लगी। इसके प्रकाश में यह पहले से ही माना जा सकता है कि इस सिद्धान्त की कमजोरियाँ गुणों (मजबूत पक्ष) से कम थी अन्यथा यह आज भी प्रासंगिक होता।

क) प्रबलताएँ (गुण)

इस विचारधारा और सिद्धान्त का मुख्य गुण इसकी सरलता है। इसका उद्देश्य पहले से ही पश्चिम की तस्वीर में स्पष्ट दिखाई देता है और इससे अनुपालन का रास्ता पश्चिमी विकास के इतिहास ने तय कर दिया है। परम्पारिक समाज के लिए केवल यही बाकी है कि वे दूसरों के आधुनिकीकरण में प्रवेश का परीक्षण का यह पहचाने कि उन्हें अपनी संस्कृति के विकास के लिए क्या चाहिए। पहले से ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर चुके आधुनिक समाज पारम्परिक समाजों के विकास में अपने इतिहास के सन्दर्भ से सहयोग कर सकते हैं (यद्यपि यह सच्चाई से कोसों दूर है) और इस प्रकार आधुनिकीकरण एक प्रकार की नकल हो जाता है जिसमें यह स्वीकार किया जाता है कि जो उनके लिए उपयोगी है वह हमारे लिए भी उपयोगी होना चाहिए। इसी सिद्धान्त की पश्चिमीकरण (पश्चात्यकरण) शीर्षक के अन्तर्गत पहले चर्चा की जा चुकी है (पश्चिम की प्रभावशाली नकल के रूप में) लेकिन आधुनिकीकरण शब्द में भौगोलिक सन्दर्भ बहुत कम है अत: विकासशील देशों में इसे अधिक स्वीकृति और प्यार मिलता है जो अपने इतिहास के कुछ अंश बचाए रखना चाहते हैं।

ख) दुर्बलताएँ (कमियाँ)

आधुनिकीकरण की प्रबलताएँ (गुण) ही इसे दुर्बलताओं की ओर ले जाती हैं। उनमें कुछ को नीचे प्रस्तुत किया गया है :

1) किसी समाज का प्रगति के लिए स्वयं को आन्तरिक रूप से विकसित करने का सीधा और स्पष्ट रवैया यद्यपि समझने में बहुत आसान है और इस कारण बाह्य रूप से आकर्षित भी करता है परन्तु आज की विश्व व्यवस्था में अपनाये जाने के लिए बहुत ही साधारण है। आज अनुकरण के लिए कई आधुनिक समाज हैं – इस तथ्य में ही यह निहित है कि उत्तर और दक्षिण के बीच संवाद और सम्भव सहयोग पहले से ही है अत: पहले से ही सम्बन्ध और जुड़ाव है – बेशक उस हद तक नहीं जहां 'अधीनता' की व्याख्या करने वाले विचारक इस तर्क के साथ जाना चाहेंगे कि दक्षिण, उत्तर के दबावों से मुक्त हुए बिना विकसित नहीं हो सकता। लेकिन समाज में महत्त्वपूर्ण सम्बन्धों का अपना स्थान है। इसका अर्थ यह है कि लक्ष्य के रूप में चुने गए समाज को एक अलग आन्तरिक नहीं माना जा सकता क्योंकि आज के वैश्विक गाँव में अन्तर्राष्ट्रीय तत्वों और कारकों की अवहेलना करने की सम्भावनाएँ बहुत कम हैं।

   इस समस्या के समाधान के लिए कुछ विचारकों ने प्रसारवादी सिद्धान्त (विचारधारा) का विकास किया (जिस पर पहले चर्चा की जा चुकी है) जिसमें आधुनिकीकरण की कई विशेषताएँ हैं परन्तु वे आधुनिक और पारम्परिक दोनों समाजों के बीच विचारों, उत्पादों और काम करने वालों के विसरण (आदान-प्रदान) को स्वीकार करते हैं।

   किसी संस्कृति को अर्द्धचेतन ढंग से ऐसे तरीकों से शीघ्र बदला जा सकता है जिनका लक्ष्य नियोजित विकास अथवा नियोजन के अनुरूप विकास न हो। आधुनिकीकरण इस भाव में क्रान्तिकारी हो सकती है कि यह परम्परा के स्थान पर आधुनिक को स्थापित करती है लेकिन इस पर विचार किया जाना चाहिए कि क्रान्तियाँ कुछ समय ले सकती हैं – वे कोई तुरन्त घटने वाली घटनाएँ नहीं होतीं।

2) इस सिद्धान्त अथवा विचारधारा की दूसरी आलोचना इस आधार पर की गई कि जब

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

विकासशील देश अपने सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ढाँचों को विकसित देशों के सम करने के लिए संघर्ष करते हैं तो इस बात की बहुत सम्भावना होती है कि आधुनिकीकृत देश उसी दर अथवा उससे भी तीव्र दर पर विकास करते रहें और विकासशील देशों के लिए उसे पकड़ पाना कठिन हो जाता है।

यद्यपि भमूण्डलीय विकासवादी समानता प्राप्त करना आधुनिकीकरण विचारधारा (सिद्धान्त) का विशिष्ट लक्ष्य नहीं है परन्तु निश्चित रूप से 'समग्र विकास' एक लक्ष्य है और इस लक्ष्य को प्राप्त करना प्रयास करने योग्य है। यदि एक स्थापित सिद्धान्त के क्रियान्वयन से इस दूरी को आसानी से नहीं भरा जा सकता (दूरी-अर्थात विकसित और विकासशील देशों के बीच का अन्तर) जैसा कि आधुनिकीकरण सिद्धान्त के मामले में दिखाई पड़ता है तो स्पष्ट रूप से यह विकास की समस्या का निदान नहीं है।

3) यह भी तर्क दिया जाता है कि आधुनिकीकरण का सिद्धान्त विशेष रूप से एक पश्चिमी सिद्धान्त है इसलिए इसकी जड़ें पूँजीवादी समाज के इर्द-गिर्द होनी चाहिए। विकासशील दुनिया को सभ्य विश्व का प्रतिरूप होना होता है इसलिए यह दुनिया प्राय: पूँजीवाद को गले लगाती है। उदाहरण के लिए रोस्टो जैसे विचारकों ने अपने आप यह स्वीकार कर लिया कि अल्पविकसित समाजों को विकसित होने के लिए इसके अन्य विकल्पों के परिणामों को विचारे बिना यह ठीक तरीका है।

4) सादेश्यवादी हेतु विद्या दृष्टिकोण के आधार पर रोस्टो की कई लोगों द्वारा आलोचना की गई है। हेतु विद्या ढंग एक ऐसा ढंग है जिसमें किसी के भी द्वारा निश्चित न किया गया उद्देश्य पूरा हो जाता है परन्तु उद्देश्य पूर्ति की प्रक्रिया को अपरिहार्य घटनाओं की श्रृंखला के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। रोस्टो के प्रतिरूप में नीतियाँ विकास का परिणाम हैं न कि विकास नीतियों का परिणाम है और यह बात कई लोगों को स्वीकार नहीं है क्योंकि उनके अनुसार राज्य की नीतियाँ चुनी जानी चाहिएं न कि उन्हें केवल अपना लिया जाए। कई विद्वानों की यह मान्यता है कि रोस्टो द्वारा पहचानी गई अवस्थाओं की विशेषताएँ दूसरी अवस्थाओं की विशेषताओं पर आच्छादित हो सकती हैं अथवा उनमें ताल-मेल कर सकती है। उदाहरण के लिए शर्तो से पूर्व (Pre condition) की अवस्था की चीज़ें (बातें) प्रारम्भ की अवस्था तक हो सकती हैं और इस अवस्था से आगे भी जा सकती हैं। आलोचक अनुभव करते हैं कि रोस्टो बाधाओं का जिक्र कम करता है और कभी उनकी चर्चा नहीं करता। अनेक विचारक इस ढंग को सैद्धान्तिक रूप से अस्पष्ट और तार्किक दृष्टि से बनावटी मानते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में केवल कृषि के स्थान पर अन्य क्षेत्रों में प्रवेश ही पर्याप्त नहीं है। उदाहरण के लिए यदि डेनमार्क, कनाडा और फ्रांस में यह बदलाव हुआ परन्तु रूस, स्वीडन, जर्मनी इत्यादि में यह बदलाव रोस्टो की अपेक्षा अनुसार नहीं हुआ। इसी प्रकार विशेषज्ञों ने इस ओर भी संकेत किया है कि रोस्टो ने प्रारम्भिक अवस्था (उड़ान भरने की अवस्था) में अन्य पक्षों जैसे उबड़-खाबड़ झटकों, धमाके से गिरना और अन्य दुर्घटनाओं के विषय में विचार नहीं किया।

MAADHYAM IAS

रोस्टो यह विचार नहीं कर पाया कि अर्थव्यवस्था बिना बीच की अवस्थाओं से गुजरे सीधे पांचवीं अवस्था में पहुँच सकती है। उदाहरण के लिए यह संकेत किया गया है कि कनाडा और आस्ट्रेलिया परिपक्वता की अवस्था तक पहुँचने से पहले भरपूर खपत की अवस्था में प्रवेश कर चुके थे। पिछले दिनों यह तेल से सम्पन्न देशों में भी होता रहा है। किसी देश विशेष के विकास की एक सीमा है। ऐसे कुछ उदाहरण हो सकते हैं जहाँ एक देश को पूर्णत: विकसित देश मान लिया जाए जबकि वह अमरीका जैसे पश्चिमी देशों के मापदंडों तक न पहुँच पाया हो क्योंकि विकास की सीमा निश्चित करने वाले प्राकृतिक संसाधनों, मानव शक्ति और पूँजी को वह खर्च कर समाप्त कर चुका हो। अल्प विकसित देशों के सन्दर्भ में ऐसा अनुभव किया गया कि रोस्टो ने बेरोजगारी, योग्यता से कम नौकरियाँ, गरीबी, संरचनात्मक अभाव और सरकारों की प्रकृति का विचार नहीं किया।

5) आधुनिकीकरण सिद्धान्त के प्रति सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिक्रिया इसके अपवाद की है जिसे 'आधीनता का सिद्धान्त' कहा जाता है। आधीनता का सिद्धान्त अधिक वैश्विक दृष्टिकोण अपनाता है और स्पष्ट करता है कि विकास में कठिनाईयों से सम्बन्धित क्षेत्र अथवा देश की आन्तरिक गतिविधियों के कारण मात्र से नहीं होती अपितु इनका अधिक सम्बन्ध उन भूमण्डलीय संरचनाओं से होता है जो विकसित देश विकासशील देशों पर थोप देते हैं। इसको आन्द्रे गुन्डर फ्रैंक (Andre Gunder Frank) ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को महानगर-उपनगर सम्बन्धों की शृंखला के रूप में दर्शा कर सुस्पष्ट किया है। फ्रैंक (समाजवादी परम्परा से) का मानना है कि विश्व सम्बन्धों में एक अदृश्य सोपान क्रम संरचना है। यह शृंखला पहले महानगर से (जिसे प्राय: अमरीका से कहा जाता) प्रारम्भ होती है जिसका कोई उपनगर नहीं हैं, अर्थात किसी अन्य क्षेत्र पर आश्रितता नहीं है और यह क्रम नीचे की ओर चलता है। अगली परत में इससे भी अधिक सशक्त महानगर हैं परन्तु इन्हें भी अमरीका अथवा अन्य विकसित पश्चिमी देशों की किसी न किसी रूप में आवश्यकता होती है, जब तक कि हम सबसे अन्तिम उपनगर तक नहीं पहुँचते जो अपने अस्तित्व के लिए हर चीज़ के लिए पराश्रित होते हैं। फ्रैंक का तर्क है कि विकास के लिए अयोग्य होने की स्थिति में पराश्रय के ये सम्बन्ध समस्या भी होते हैं और समस्या का समाधान भी। महानगरों द्वारा जानबूझकर आश्रित उपनगरों पर लगाई गई पाबन्दियां उपनगरीय समाज की विकास और वृद्धि की स्वतंत्रता को छीन लेती हैं क्योंकि उनके सारे उत्पादन को उच्च समाज प्रभावी ढंग से प्रयोग कर लेता है।

यह सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप में तीसरी दुनिया को दी जाने वाली सहायता की स्थिति के इर्द-गिर्द घूमता स्पष्ट दिखाई देता है जहां ब्याज की दर और शर्तें इतनी कड़ाई से लगाई जाती हैं कि सहायता प्राप्त करने वाला देश निरन्तर सहायता प्रदान करने वाले की दया पर निर्भर रहेगा। फ्रैंक का विचार है कि निर्भरता के इन सम्बन्धों को उखाड़ फैंकना ही विकास की समस्या का समाधान है। ध्यान देने योग्य बात है कि यह पूर्णत: समाजवादी परिप्रेक्ष्य है क्योंकि इस प्रकार की पाबन्दियों को हटाने से और अधिक स्वतंत्र तथा सशक्त एवं विभिन्नता पूर्ण भूमण्डलीय व्यवस्था के लिए स्थान बनता है, जो परम्परागत पूँजीवादी विशेषताओं के साथ मेल नहीं खाती।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आधुनिकीकरण सिद्धान्त के साथ इसका सम्बन्ध सरल है। दोनों में समान गुण हैं यद्यपि दोनों के गुण परस्पर विरोधी हैं। परन्तु कौन अधिक अनुकूल है – इस प्रश्न का उत्तर देखने वाले के विश्वास पर निर्भर करता है – ऐसे लोग जो पूँजीवादी समाज में पले और बड़े हुए हैं और पूँजीवाद के गुणों और लाभ में विश्वास रखते हैं, उन्हें आधुनिकीकरण का सिद्धान्त अधिक पसन्द आएगा। दूसरी ओर एक नव-मार्क्सवादी आधीनता (पराश्रिता) के सिद्धान्त के साथ रहेगा। स्पष्ट रूप से केवल पूर्णत: निष्पक्ष दर्शक ही दोनों सिद्धान्तों के गुण-अवगुणों का ठीक फैसला कर सकता है।

6) अन्त में यह कहा गया है कि आधुनिकीकरण के सिद्धान्त ने स्वयं अभी तक कुछ भी प्रत्यक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। यह गत 50 वर्षों में कोई विकास नहीं होने के कारण से नहीं है। दोनों विचारों के क्षेत्रों में विकास होता रहा है परन्तु ये सिद्धान्त अपने आप में बहुत अस्पष्ट एवं अस्थिर हैं। आधुनिकीकरण का सिद्धान्त 'क्या होना चाहिए' और 'किस प्रकार होना चाहिए' की कोई स्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत नहीं करता। प्रेरणात्मक साधन के रूप में यह सिद्धान्त विकासशील समाज के प्रयासों के लिए श्रेष्ठतम प्रोत्साहन है, परन्तु समाधान नहीं है। यह क्या है, देखना अभी बाकी है।

सोचिये और कीजिये 2.4

विकास के 'अधीनता सिद्धान्त' (पराश्रित सिद्धान्त) की अपनी समझ के आधार पर आधुनिकीकरण पर एक आलोचनात्मक लेख लिखें।

2.7 विकास : शर्तें एवं बाधाएँ

अब तक हम सामाजिक परिवर्तन, आधुनिकीकरण और आधुनिकीकरण के सिद्धान्तों को पढ़ चुके हैं आइये हम इस इकाई के अन्तिम विषय 'विकास' की ओर चलें।

विकास की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है। यह एक अस्पष्ट मानकीय शब्द है जिसका समय-समय पर अर्थ रहा है—आर्थिक विकास, संरचनात्मक आर्थिक परिवर्तन, स्वायत औद्योगिकीकरण, पूँजीवाद अथवा समाजवाद, आत्म साक्षात्कार और वैयक्तिक, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा सांस्कृतिक आत्म-निर्भरता। इस प्रकार के भेद और अन्तरों के बावजूद इस बात पर लगभग सहमति रही है कि मानव विकास का केन्द्र है और आर्थिक विकास 'मानव विकास' के लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है।

विकास, समाज द्वारा मानव ऊर्जा एवं उत्पादक संसाधनों को अवसर एवं चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने के लिए संगठित एवं व्यवस्थित करने की क्षमता है। प्राय: विद्वान सामाजिक संगठन के उच्चतर, अधिक जटिल, अधिक उत्पादक स्तरों के उदय को जंगली शिकार, ग्रामीण कृषि, शहरी, व्यापारिक, औद्योगिक और परा-औद्योगिक समाजों के माध्यम से खोजते हैं। और इस प्रक्रिया में उन तरीकों का परीक्षण करने का प्रयास करें जिनके द्वारा मूल अन्वेषकों ने नई गतिविधियों को शुरू किया, नकल की, प्रतिरोध किया, स्वीकार किया, संगठित किया तथा संस्थाबद्ध कर संस्कृति में मिश्रित किया। संगठनात्मक विकास संरचना के चार स्तरों—भौतिक, सामाजिक, मस्तिष्कीय और मनोवैज्ञानिक के आधार पर होता है। संसाधनों के यह कुल चार प्रकार विकास में योगदान देते हैं जिनमें से कच्चे संसाधन सीमित मात्रा में प्रकृति में निहित हैं। संसाधनों की उत्पादकता, संगठनात्मक स्तर और ज्ञान का निवेश बढ़ने के साथ खूब बढ़ती है। मानव संसाधन को विकास के प्राथमिक मानक तथा प्रेरक बल के रूप में माना गया है।

सामाजिक संस्थाओं का विकास, सामाजिक व्यवहार और पारस्परिक संवाद की आवृति, सघनता और निपुणता में वृद्धि करके विकास को प्रोत्साहित करता है। यह विकास क्रम तीन निरन्तर आने वाली अवस्थाओं, जो एक दूसरे पर छाई हुई हैं, से होकर गुजरा है। विकास की यह तीन अवस्थाएं हैं—भौतिक, अत्यावश्यक और मानसिक, जिनका वर्णन उस समय के विशिष्ट प्रकार के संगठनों के माध्यम से किया जा सकता है।

शहरीकरण की भूमिका, विकास में वित्त और इन्टरनेट

आज तक शहर भौतिक संगठन है जहां लोग, गतिविधियाँ जीवन के क्षेत्र, संसाधन और व्यवस्था का ढाँचा—सभी सघन रूप से एकत्रित होते हैं और जटिल ढंग से व्यवहार करते हैं। जनसंख्या और शहरी जनसंख्या घनत्व में वृद्धि से पारस्परिक क्रियाओं और व्यवहार की प्रगाढ़ता बढ़ती है जिससे नए बाज़ारों का मार्ग प्रशस्त होता है तथा इस प्रक्रिया में उत्पादन के मशीनीकरण की मांग को पर्याप्त तीव्रता प्रदान होती है।

सामाजिक स्तर पर धन शहरीकरण के माध्यम के रूप में समानान्तर भूमिका निभाता है तथा आर्थिक गतिविधियों को कई गुणा बढ़ा देता है। धन पर आधारित अर्थव्यवस्था की स्थापना से लोगों की, उत्पादन के एक आवश्यक साधन के रूप में, भूमि पर निर्भरता कम करती है और व्यापार को भी वस्तु विनिमय के दोहरे संयोग से मुक्त करती है। धन, गतिविधियों के प्रत्येक क्षेत्र में विनिमय की आवृत्ति और गति दोनों को बढ़ाता है और लोगों के लिए यह सम्भव बनाता है कि वे अपने श्रम को किसी सामान्य मुद्रा में बदल सकें, जिसे किसी भी वस्तु अथवा सेवा से बदला जा सके। धन, लोगों को अपनी खपत से अधिक उत्पादन के लिए उत्साहित करता है जिससे उर्जा और रचनात्मकता पैदा होती है। यह प्रत्येक व्यक्ति के उत्पादन के संरक्षण और संग्रहण का काम करता है और किसी भी दूरी तक सामान लाने,

ले जाने को आसान बनाता है जिससे समय और स्थान की सीमाओं पर जीत पायी जा सकती है और यह नाटकीय ढंग से विनिमय की क्षमता को बढ़ाता है।

इन्टरनेट, सूचना और ज्ञान (जानकारी) के मानसिक स्तर पर इसी प्रकार की भूमिका निभाता है और भूमण्डलीकरण के लिए एक माध्यम के रूप में काम करता है। आज के युग में इन्टरनेट प्रत्येक क्षेत्र—व्यापारिक, औद्योगिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक, धार्मिक, मनोरंजन इत्यादि में आवृति, गति और निपुणता तथा कुशलता को बढ़ाकर सूचना के आदान-प्रदान को तीव्र कर रहा है। इन्टरनेट, विश्व में कहीं भी उपलब्ध जानकारी तक तुरन्त पहुँच बनाने में सक्षम बनाकर समय और स्थान की सीमाओं पर काबू पा रहा है। यह लोगों, संगठनों तथा ज्ञान के क्षेत्रों के बीच व्यावहारिक आदान-प्रदान की संख्या, अन्तरंगता और व्यवहारों की जटिलता को सरल एवं सम्भव बनाता है। वर्तमान में उपस्थित सभी सामाजिक संगठनों को अधिकाधिक सम्पर्क में लाने और समाज की अधिकतम ऊर्जा के उत्सर्जन के लिए इन्टरनेट एक सुसंगठित माध्यम के रूप में कार्य कर रहा है और इस प्रकार सामाजिक उत्पादन और विकास के आशातीत स्तरों को प्राप्त कर रहा है।

i) विकास के लिए कुछ शर्ते

अतिरिक्त उर्जा, अवसरों के प्रति सजगता और आगे बढ़ने की इच्छा, वे पूर्व शर्ते हैं जो समाज को नये विकासात्मक प्रयासों के लिए तैयार करती हैं। यह एक रेखीय प्रक्रिया नहीं है। ये तीनों तत्व परस्पर एक दूसरे के साथ जटिल क्रियाओं से गतिविधियों की वृद्धि के लिए दबाव बढ़ाते हैं और जमीन तैयार करते हैं। पिछले स्तर पर लक्ष्य पूरा होने से ऊर्जा उत्सर्जन तथा आगे उपलब्धियाँ प्राप्त करने की इच्छा पैदा करने में सहायता मिलती है। ऊर्जा से अधिक सतर्कता और जागरूकता पैदा होती है। 'दूसरे क्या कर रहे हैं' के प्रति जागरूकता अधिक इच्छाएँ जगाती हैं और उर्जा से भरपूर प्रत्युत्तर के लिए प्रेरित करती है। यह प्रक्रिया स्वयं पर शिकंजा कसती है और आगे बढ़ने के लिए निरन्तर प्रोत्साहित करती है, जबकि ठीक उसी समय उपलब्धि का प्रत्येक नया स्तर कुछ हद तक सन्तोष और सुरक्षा प्रदान करता है तथा आगे नये प्रयास करने के दबाव से छुटकारा दिलाता है। बढ़ती इच्छा और बढ़ते सन्तोष के बीच अदला-बदली प्रायः प्रगति और अवरुद्ध स्थिति के बीच दिखने वाली बदलती हुई लय है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जब यह तीनों तत्व आवश्यक मात्रा में उपस्थित होते हैं तब समाज अर्द्धचेतन ढंग से परिवर्तन के लिए तैयार होता है। आइये हम प्रत्येक तत्व को समझने का प्रयास करें।

क) ऊर्जा

अतिरिक्त उर्जा विकास के लिए एक आवश्यक शर्त है। जिस प्रकार भौतिक एवं जैविक क्रियाओं का प्रारम्भ एवं गति, बीज, उत्प्रेरकों, आवश्यक पोषकों, तत्वों के बीच प्रतिक्रिया की आवृति और गहनता तथा पर्यावरणीय स्थितियों पर निर्भर करता है। ठीक इसी प्रकार सामाजिक विकास का प्रारम्भ एवं गति नए विचारों के बीज डालने, नए अवसरों के प्रति जागरूकता, परिवर्तन के लिए सामाजिक इच्छा और व्यवहार, व्यक्तियों की उत्प्रेरक भूमिका, आवश्यक संसाधनों और यन्त्रें की उपस्थिति, नई गतिविधियों के लिए सामाजिक तैयारी और सहयोग पर निर्भर करता है।

विकास, सामाजिक रचनात्मकता की अभिव्यक्ति है। इसके लिए समान की नई प्रकार की गतिविधियों के संग प्रयोग करने के लिए रचनात्मक उर्जा के अपार निवेश, परिवर्तन के साथ जुड़े खतरों को उठाना, सक्रिय प्रतिरोध तथा निश्चित आदतों की गतिहीनता, कार्यात्मक स्तर को ऊँचा उठाने, नए कौशल को प्राप्त करने तथा उच्च श्रेणी के संगठन निर्माण की आवश्यकता होती है। सामाजिक संगठन के एक स्तर से दूसरे स्तर तक जाने के लिए अतिरिक्त उर्जा

का संचय आवश्यक होता है जैसे एक पदार्थ के द्रव से गैस में परिवर्तित होने के लिए आवश्यक होता है। विकास अतिरिक्त उर्जा के लम्बवत चलने और उच्च स्तर पर संगठित एवं व्यवस्थित होने का परिणाम है न कि केवल चहुं और एक ही तल पर फैलने मात्र का। उच्च स्तरीय संगठन उर्जा को अधिक उत्पादनशीलता के साथ उपयोग करने में सक्षम होता है। अदम्य उर्जा, महान राजनीतिक नेताओं नेपोलियन चर्चिल, और गांधी तथा व्यापार के क्षेत्र में नेताओं जैसे एन्ड्रयू कारनेज (Andrew Carneige) हेनरी फोर्ड और आई.बी.एम. के टाम वाटसन का एक विशिष्ट गुण रहा है। अविष्कारक थॉमस अल्वा एडिसन को 1100 पेटेन्ट योग्य अविष्कार करने तथा जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी की स्थापना के दौर में दिन रात बिना नींद किए निरन्तर काम करते रहने के जाना जाता है। तीव्रता से प्रगति कर रहे संगठनों में भी यही गुण दिखाई देते हैं। नो सिलिकन वैली में एक दिहाड़ी मजदूर से लेकर हाई-टेक कम्पनियों में स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। विश्व के प्रगतिशील शहरी केन्द्रों न्यूयार्क, लन्दन से लेकर हांग-कांग और टोक्यो तक में उर्जा का बोलबाला है। अत: यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उच्च स्तरीय विकास को प्राप्त कर चुके समाजों में यह गुण प्रर्याप्त मात्रा में विद्यमान है और समाजों के विकास के प्रारम्भिक दौर (Take off stage) में यह गुण अधिक प्रसार पाता है।

अतिरिक्त उर्जा का महत्व युद्ध और तानाशाही की दो स्थितियों में बहुत ही नाटकीय ढंग से दिखाई देता है जिनके अन्तर्गत यह स्वयं को अभिव्यक्त (प्रगट) करने अथवा एकत्र और संगठित करने में असमर्थ होती है। युद्ध पूरे रचना तंत्र को नष्ट कर देता है और उत्पादन तथा व्यापर में भी हस्तक्षेप करता है। भौतिक दृष्टि से यह देश के संसाधनों एवं उर्जा का शोषण करता है। युद्ध का खतरा इन उर्जाओं के आत्म विकास के बजाय आत्म रक्षा की दिशा में मोड़ देता है। दूसरी ओर तानाशाही, विकास के प्रयासों को धमकी, दबाव और प्रताड़ना का प्रयोग कर मनचाही दिशा में दे सकती है। तानाशाही समाजिक नवीनीकरण के बीच नए विचारों और नए प्रयासों के मुक्त रूप से उभरने पर भी रोक लगाती है। यह सत्ता की अज्ञा को पालन तो सुनिश्चित कर सकती है परन्तु उद्यम और नवीनता को प्रोत्साहित नहीं करती। पश्चिमी यूरोप में सामन्तवाद के अन्त का व्यापारिक युग और विशाल व्यापारिक साम्राज्यों के उदय में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

राजतन्त्र से लोकतन्त्र के बदलाव ने आन्तरिक व्यवस्था को स्थामित्व प्रदान किया और औद्योगिक क्रान्ति के लिए सामाजिक आधार बनाया। इस बदलाव से विचारों के स्वतंत्र आदान-प्रदान को प्रोत्साहन मिला तथा व्यक्तिगत प्रयासों और उद्यम को मनमाने ढंग से बचाने के लिए कानूनी सुरक्षा प्रदान कर नवीनीकरण के लिए प्रेरित किया।

ख) जागरुकता

अतिरिक्त सामाजिक उर्जा नीचे-नीचे तब तक संग्रहित होती रहती है जब तक कि यह नई गतिविधियों के रूप में फूटने के लिए पर्याप्त शक्ति नहीं बन जाती। परन्तु इस उर्जा को कार्यरूप में प्रयोग इस दूसरी शर्त अर्थात विकास के नये अवसरों और चुनौतियों के प्रति जागरुक रहने पर निर्भर करता है। ऐसे समाज जो अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष में पूरी तरह खप गए हैं, उनके पास बाहर ध्यान देने के लिए न तो समय और न ही इच्छा बचती है कि वे देख सकें कि दूसरे समाज क्या कर रहे हैं। या कौन सी नई सम्भावनाएँ तलाश रहे हैं। जब जिन्दगी एक निश्चित और स्थिर सुख को प्राप्त कर लेती है, तब समाज इर्द-गिर्द (चहुं ओर) की दुनिया के घटनाक्रम के प्रति अधिक सजग हो जाता है एवं उसमें रुचि लेने लगता है। यह जागरुकता, समाज पर बाहरी प्रभाव के अनचाहे हस्तक्षेप का दबाव भी हो सकती है। 19वीं सदी में यूरोप की पूर्व औद्योगिक अर्थव्यवस्था में अंग्रेजों द्वारा निर्मित सामान की भरमार से तथा टोक्यो हारबर पर आधुनिक सैनिक समुद्री बेड़ा पहुंचने का प्रभाव समाज को विकास के अवसरों और चुनौतियों के प्रति सजग करने तथा उनके प्रत्युत्तर के लिए तैयार करने के रूप में पड़ा।

विकास की बढ़ती दर और गति का संचार और परिवहन के साधनों में सुधार और बदलाव के कारण किसी क्षेत्र, देश अथवा दुनिया के घटनाक्रम की सूचनाओं की गति और विश्वसनीयता के साथ सीधा सम्बन्ध है। प्रिंटिंग प्रेस के अविष्कार और प्रसार के साथ पुस्तकों एवं अखबारों की वद्धि, 15वीं सदी के प्रारम्भ में समुद्री यात्रा के अविष्कार से अन्तर्राष्ट्रीय जहाजरानी में हुई वृद्धि, 19वीं सदी में रेलवे, टेलिग्राफ और टेलिफोन की प्रसार से तथा 20वीं शताब्दी में रेडियो, फिल्म, टेलिविज़न, कम्प्यूटर और उपग्रह प्रौद्योगिकी के प्रभाव ने सूचना के प्रसार एवं सामाजिक चेतना के सामान्य स्तर को कई गुणा बढ़ा दिया है। आज दुनिया में 60,000 से अधिक अखबार जिनमें 8000 दैनिक सम्मिलित हैं, प्रकाशित होते हैं जिनकी कुल प्रसार संख्या 5 अरब है, पाठकों की संख्या लगभग 15 अरब है।

ग) आकाँक्षाएँ (इच्छाएँ)

समाज को उच्च स्तर पर उपलब्धि की जोरदार अपेक्षा/इच्छा अथवा जरूरत भी महसूस होनी चाहिए जो सम्भावना को वास्तविकता में बदलने के प्रयासों के लिए प्रोत्साहन होगी। समाज विकास, सामूहिक प्रयासों और कार्यों को बढ़ाने की सामाजिक इच्छा की अभिव्यक्ति होता है। जब समाज बाह्य वातावरण एवं अपनी आन्तरिक शक्ति के प्रति अधिक सजग हो जाता है तो इसकी अपेक्षाएँ तथा प्रगति की इच्छा भी बढ़ जाती है।

सामाजिक श्रेष्ठता अथवा निम्नता के भाव से उत्पन्न हुए अवसरों को चूक जाना एक सामान्य सिद्धान्त है। लोग सामाजिक रूप से जिन्हें अपना समझते हैं, उनके उदाहरणों के अनुरूप प्रतिक्रियाएँ देते हैं समान सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश से किसी एक की विकासात्मक उपलब्धि की जानकारी पूरे उस समाज में उपलब्धि प्राप्त करने की जोरदार इच्छा उत्पन्न कर देती है, लेकिन यदि यह उपलब्धि किसी बाहर के व्यक्ति की हो तो प्रायः इसकी अवहेलना कर दी जाती है। अतः एक अमीर जमीदार द्वारा खेती के नए साधन और नई फसलें अपनाने से उसी जाति की छोटे किसान भी उन्हीं साधनों को अपनाएँगे—ऐसा जरूरी नहीं है। सामाजिक पहचान के लिए आयु, सामाजिक स्तर, जाति, धन-सम्पदा, व्यवसाय आदि की भूमिका होती है। परन्तु वर्तमान में इस रवैये में आमूल-चूल परिवर्तन होने की सम्भावना है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

एक समय था जब एक ही समाज के भीतर विभिन्न स्तरों, वर्गों और लोगों के बीच विकास की इच्छा व्यक्त करने में काफी भिन्नता एवं अन्तर था, परन्तु अब यह सत्य नहीं है। पिछले पांच दशकों में सम्भावनाओं के प्रति जागरुकता एवं विकास की आकांक्षा व्यक्त करने को एक देश और समाज के एक स्तर से अन्य देशों और स्तरों में तेज़ी से प्रसार मिल रहा है। 1950 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में पूर्वी एशिया में उत्पन्न इस प्रकार की स्थिति का वर्णन करने के लिए हर्टन क्लीवलैण्ड (Hartan Clevelend) ने एक मुहावरा गढ़ा "बढ़ती आशाओं की क्रान्ति"। उपनिवेशवाद के अन्त के बाद और लोकतंत्र के प्रसार के साथ इस क्रान्ति ने पूरी दुनिया को शिक्षा, बढ़ती खपत और उन्नति के अवसरों के प्रति कोलाहल से भर दिया है। उन्नति की इस इच्छा के प्रति सार्वभौमिक जागरुकता, विकास की दर में हुई इस तेज़ बढ़ोतरी का एक अन्य आवश्यक कारण है। नियोजित विकास प्रयासों के लिए इस सिद्धान्त के कई महत्त्वपूर्ण अर्थ हैं। इसका अभिप्राय है कि विकास को प्रारम्भ करने के सरकार के प्रयास केवल उन्हीं क्षेत्रों में सफल होंगे जहाँ पहले से आवश्यक सामाजिक इच्छा और तैयारी विद्यमान होगी। कई सोची-समझी विकास की पहल और प्रयास इस लिए असफल हो जाते हैं कि नेता वह करना चाहते हैं जिसके लिए जनता में अभी इच्छा ही नहीं होती। इन स्थितियों में योजनाबद्ध पहल और प्रयास समाज को किसी भावी अवसर के लिए तो योगदान दे सकते हैं, परन्तु तुरन्त परिणाम प्राप्त नहीं कर सकते।

ii) विकास की बाधाएँ और अवरोध

परिणामस्वरूप विकास के पथ पर कुछ बाधाएँ एवं अवरोध हैं। सामाजिक प्रगति पर दृष्टिपात

करने से विकास के मार्ग में बार-बार आने वाली तीन बाधाएँ दिखाई देती हैं—सीमित ज्ञान, पुराना दृष्टिकोण और समय के प्रतिकूल व्यवहार। आइये हम संक्षेप में प्रत्येक का अध्ययन करें।

क) प्रत्यक्षपरक अवरोध और स्पष्ट रूप से अंतिम सिरा

सभी युगों, देशों और कार्यक्षेत्रें में अलग से दिखने वाले विकास की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है कि समाज में अपने ही भविष्य का पूर्वानुमान लगाने की अयोग्यता एवं अक्षमता रही है। प्रायः यह विशेषता अथवा गुण विपरीत प्रवृति के साथ जुड़ा होता है जिसमें अवसरों को अगम्य बाधाएँ माना जाता है। इतिहास में अनेक बार मानवता को ऐसी स्थितियाँ देखने को मिली हैं कि जिन्हें वह प्रगति का अन्तिम सिरा मानते थे वही देर सवेर एक मोड़ अथवा उस अन्तिम छोर के बीच से अपार अवसरों का क्षेत्र निकला।

आज रोज़गार, प्रौद्योगिकी, व्यापार, पर्यावरण, भ्रष्टाचार, मँहगाई और जनसंख्या के क्षेत्र में वैचारिक अवरोध दिखाई देते हैं। जो पूरी दुनिया में विकास के मार्ग की वास्तविक बाधाओं को दर्शाते हैं। अवश्यम्भावी विनाश का अनुमान करने वाला अकेला महान मालथ्यूस ही नहीं था जबकि वास्तव में उस समय अपार अवसर और सम्भावनाएँ थीं। 1950 में हालैण्ड की जनसंख्या 50 लाख से अधिक हो गई थी जिसे अनेक लोग इस भू-भाग द्वारा सम्भाल पाने की अन्तिम सीमा मानते थे। आज नीदरलैण्ड (हालैण्ड) आबादी डेढ़ करोड़ है जो उस समय की आबादी का तीन गुना है और फिर भी यह देश खाद्यान्नों का निर्यात करने वाले देशों में से एक खुशहाल देश है। 1960 के दशक के बीच में भारत में निरन्तर 2 वर्ष तक सूखा पड़ा और यह अकाल के कगार पर पहुँच गया। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा भेजे गए विशेषज्ञों का अनुमान था कि 1970 से पहले यहाँ खाद्यान्नों के उत्पादन में केवल 10 प्रतिशत की वृद्धि ही सम्भव होगी। हमारे कई भारतीय वैज्ञानिक भी इस निराशावादी विचार से सहमत थे, जबकि वास्तव में इस दौरान 50 प्रतिशत उत्पादन बढ़ा और एक दशक में ही दोगुना हो गया यदि हमारे नेताओं ने भी विशेषज्ञों की राय को माना होता तो हरित क्रान्ति कभी नहीं होती।

MAADHYAM IAS

भावी सम्भावनाओं का आकलन करने में गलतियाँ होती हैं जब हम भावी कार्यों का अनुमान पुराने ऐतिहासिक रवैये के आधार पर करते हैं, यद्यपि बदली हुई परिस्थितियों ने पूरे वातावरण को पूरी तरह से बदल दिया है। आगे देखने पर हमें भावी प्रगति के पथ पर अगम्य बाधाएँ दिखती हैं तो पीछे देखने पर हमें प्रगति में निरन्तरता दिखाई देती है। इतिहास ने बार-बार दर्शाया है कि कोई अन्तिम छोर पर बन्द गली नहीं होती अपितु लोग ही अवसरों और उनके पीछे छिपे समाधानों को देख पाने में असमर्थ होते हैं।

ख) (पुराना) अप्रचलित दृष्टिकोण

मानव विकास के मार्ग की मुख्य बाधाओं में भौतिक बाधाएँ नहीं अपितु अप्रचलित और पुराना दृष्टिकोण रहा है। 15वीं शताब्दी में चीन के पास आकार, कौशल और तकनालोजी की दृष्टि से दुनिया की बेहतरीन नौसेना थी लेकिन उनकी सभी यात्राएँ निरर्थक रहीं। इन सभी यात्राओं का उद्देश्य चीनी सम्राटों (शासकों) की प्रहारक शक्ति का प्रदर्शन करना था। उन्होंने जीवन में विदेशी ढंग और शैली का तीव्र विरोध किया और व्यापार को हतोत्साहित किया। चीन के लोग वैश्विक अनुभव से परम्परागत अप्रभावित रहे। मस्तिष्क में उभरी इस दीवार ने उन्हें शेष विश्व से सदियों तक जुदा रखा। प्रौद्योगिकी, बुद्धिमता और राष्ट्रीय संसाधनों से पूर्णतया सम्पन्न चीन को उनके दृष्टिकोण ने महान खोजी होने के स्थान पर 'खोजा गया' बना दिया। परन्तु पिछले दो दशकों में शीत युद्ध के अन्त, अर्थ-व्यवस्थाओं के खुलने और तेजी से हो रहे भूमण्डलीकरण ने चीन को विश्व समुदाय से अधिक संवाद और सम्पर्क रखने तथा बाहर वालों के लिए चीनी समाज तक आसानी से पहुँच पाने को सरल बनाने के लिए विवश कर दिया।

यह तथ्य भी एक उदाहरण है कि यूरोप में औषध विज्ञान का धीमा विकास हुआ क्योंकि वहाँ के चिकित्सक अपने सफल उपचारों को दूसरों के साथ बाँटने के इच्छुक नहीं थे। 18वीं सदी में रायल सोसायटी आफ फिजिशियन की स्थापना के बाद ही सूचना, शोध के क्षेत्र में सहयोग और चिकित्सकीय शिक्षा में खुले आदान-प्रदान को बढ़ावा मिला।

मानव के गहरे और विस्तृत पूर्वाग्रहों में से एक, मनुष्य की स्वतंत्र और किसी भी सहारे से मुक्त ज्ञान इन्द्रियों पर विश्वास रहा है। दूर तक देखने के लिए जब टेलिस्कोप का अविष्कार हुआ तो अनेक पूर्वाग्रह से ग्रस्त लोगों ने अपनी आंखों से देखे गए अनुभवों पर इस नए संदिग्ध यन्त्र की महत्ता को स्वीकार करने में अनिच्छा जताई। प्रख्यात भूगोलवेता सरेमोनिनी (Cremonini) ने गैलिलियों के इस नए यन्त्र के माध्यम से, गैलिलियों के अतिरिक्त किसी अन्य द्वारा न देखे गए को देखने में समय बरबाद करने से इन्कार कर दिया और कहा कि इसमें से देखने पर उन्हें सिरदर्द होता है।

नये पर अविश्वास, एक लम्बे समय तक विज्ञान के विकास में बाधक रहा। पुराने दृष्टिकोण आज प्रत्येक क्षेत्र में सामाजिक प्रगति में बाधक है। 1950 के बाद विश्व व्यापार का विस्तार पूरी दुनिया में रोजगार पैदा करने तथा लोगों का जीवन स्तर उठाने में एक बड़ी शक्ति रहा है। लेकिन फिर भी व्यापार विस्तार के प्रति अमरीकी और कनाडा के लोगों से लेकर उत्तरी अमरीकी मुक्त व्यापार संघ तक; यूरोप के लोगों से लेकर आर्थिक और वित्तीय संघ तक, तथा प्रत्येक देश के लोगों से लेकर विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत स्वतंत्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार तक भय और प्रतिरोध बना हुआ है।

ग) काल-दोष (कालातीत व्यवहार)

अनेक काल भ्रमों के कारण समय के साथ न चल पाने से भी विकास अवरुद्ध होता है क्योंकि पुरानी आदतें मुश्किल से ही पीछा छोड़ती हैं। बच्चों की ऊँची मृत्यु दर की भरपाई के लिए पूरे विश्व में पारम्परिक ढंग से बच्चों की जन्म दर बढ़ाने को अपनाया जाता है। 1950 के दशक में विकसित देशों में आधुनिक चिकित्सा तकनीक अपनाने से बाल मृत्यु दर में आई कमी के बाद भी बच्चों की जन्म दर ऊँची बनी रही और इसे बच्चों के जीवित रहने की दर के अनुरूप होने में कई दशक लग गए। पारम्परिक व्यवहार में परिवर्तन धीमा रहता है जब तक कि लोग शिक्षित नहीं हो जाते।

MAADHYAM IAS

विश्वसनीय बैंकिंग प्रणाली से पूर्व अनेक देशों में मुद्रा स्फीति की रोक एवं निजी दौलत को बचाने के लिए 'सोना' मूलतः एक लोकप्रिय साधन था। बैंकों की सुरक्षा एवं अन्य प्रकार के निवेशों में अधिक लाभ ने धीरे-धीरे बचत करने के रूप में सोने के महत्त्व को कम कर दिया है। अधिक सुरक्षित और बचत के विस्तृत आकर्षक तरीकों के बावजूद भी आज तक कई एशियाई देशों में, जिनमें भारत अग्रणी है, बचत के रूप में सोना रखने तथा दहेज के रूप में सोने के गहने देने की पारम्परिक आदत में कोई कमी नहीं आई है। अपने देश में हमारे पास लगभग 30 हजार मीट्रिक टन सोना है जिसका मूल्य लगभग 300 अरब डालर है जो कि कुल भारतीय बैंकों में लोगों की जमा राशि का लगभग दोगुणा है। सोने का आयात करने के कारण इस प्रकार की बचत राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से तरलता को कम करती है तथा निजी बचत को देश के भीतर उत्पादक गतिविधियों में पुनः निवेश करने में बाधक होती है। ऐसे समय में जब सैकड़ों करोड़ रुपये की सड़कों, बिजली संयंत्रों, संचार की संरचना इत्यादि में निवेश की आवश्यकता है तब अपनी (पुरानी) कालातीत आदतों के कारण देश को विदेशी निवेश पर निर्भर होना पड़ रहा है जबकि हम अनदेखी पूँजी के ढेर पर कुण्डली मारे बैठे हैं।

हम एक अन्य उदाहरण के साथ इस चर्चा को सम्पन्न करते हैं। यू.एन.डी.पी. ने गणना की है कि प्रतिवर्ष 40 बिलियन डालर पूरे भूमण्डल से दस वर्षों में गरीबी हटाने के लिए पर्याप्त

रहेंगे। लेकिन शीत युद्ध के समाप्त होने के इतने वर्षों बाद भी और तब जब कोई मजबूत शत्रु भी दिखाई नहीं देता—विश्व का सैनिक खर्च 850 बिलियन डालर प्रति वर्ष बना हुआ है। युद्ध समाप्त हो चुका है परन्तु एक मँहगी, व्यर्थ और अनुत्पादक पुरानी आदत बनी हुई है।

सोचिये और कीजिये 2.5

अपने पड़ोस में रह रहे किसी विशेष समुदाय (जाति, धार्मिक, कबीले इत्यादि) की कुल आर्थिक स्थिति का निरीक्षण कीजिये। अब अपने निरीक्षण के आधार पर उनकी सामाजिक-आर्थिक सुधार अथवा समान में दुर्दशा के कारणों पर एक नोट लिखें।

2.8 नये विकास अनुभवों के सम्बन्ध में

10 हजार वर्षों के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में पिछले 200 वर्षों में मानव ने असामान्य प्रगति की है और पिछले 50 वर्षों की उपलब्धियाँ किसी चमत्कार से कम नहीं हैं। दो वर्षों में उत्पादन इतना बढ़ गया है कि अब विश्व समुदाय 1800 की आबादी की 12 गुणा आबादी का पोषण कर सकता है। ग्रामीण आधार वाला कृषि समाज, जिसमें तीन प्रतिशत से भी कम लोग कस्बों और शहरों में रहते थे—अब शहर और उद्योग केन्द्रित मानव समाज में विकसित हो रहा है जिसमें कुल संख्या का 40 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या शहरी है। इस परिवर्तन के साथ कई समस्याएँ भी आईं जैसे बढ़ती भीड़, प्रदूषण और अपराध इत्यादि लेकिन इसके साथ-साथ राजनीतिक स्वतंत्रता, आर्थिक सुरक्षा, शिक्षा और करोड़ों लोगों के लिए आधुनिक सुविधाएँ भी आईं।

MAADHYAM IAS

यह उल्लेखनीय है कि यह सामाजिक आन्दोलन निरन्तर विस्तार और त्वरित गति से चल रहा है। यू.एन.डी.पी. की मानव विकास रिपोर्ट में यह टिप्पणी है कि पिछले 50 वर्षों में गरीबी दूर करने में की गई प्रगति पिछले 500 वर्षों से कहीं अधिक है। पूरे विश्व में जीवन सम्भाविता बढ़ रही है, शिशु मृत्यु दर घट रही है, संक्रामक रोग घट रहे हैं, अकाल तो समाप्त हो चुके तथा शिक्षा का खूब विस्तार हो रहा है। 1950 के बाद प्रति व्यक्ति आय तीन गुणा हो चुकी है और अप्रत्याशित जनसंख्या वृद्धि के बावजूद विकसित देशों में प्रति व्यक्ति औसत खपत दोगुनी हो चुकी है। इन उपलब्धियों से यह सम्भावना और आशा बनती है कि खुशहाली का यह अद्‌भुत स्तर शीघ्र ही पूरे मानव समाज तक पहुँचेगा।

इन उपलब्धियों के बावजूद एक अरब से अधिक लोग अभी भी गरीब हैं। लेकिन इस बात के साक्ष्य हैं कि अब अल्प विकसित देश पहले विकसित देशों की तुलना में काफी कम समय में अति विकसित देशों के मुकाबले में आ सकते हैं या उससे भी आगे बढ़ सकते हैं। 1780 से प्रारम्भ करें तो इंग्लैंड को प्रति व्यक्ति आय दोगुना करने में 58 वर्ष लगे। 1839 से प्रारम्भ करके अमरीका को 47 वर्ष लगे। जापान ने 1880 से शुरू होकर यही कार्य 24 वर्ष में पूरा कर लिया। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इन्डोनेशिया ने यह 17 वर्ष में प्राप्त किया, दक्षिण कोरिया ने 11 वर्षों में और चीन ने मात्र दस वर्षों में यह उपलब्धि प्राप्त की। 1960 से 1990 के बीच क्रय शक्ति के आधार पर प्रति व्यक्ति जीवन स्तर दक्षिण कोरिया में 12 गुणा, जापान में 7 गुणा, मिस्र और पुर्तगाल में 6 गुणा और इन्डोनेशिया और थाईलैंड में 5 गुणा से अधिक के बराबर बढ़ गया।

जबकि विकास की गति बढ़ाने और इसके क्षेत्र को विस्तृत करने की सम्भावनाएँ उत्साहवर्धक हैं परन्तु यह किसी भी प्रकार से स्पष्ट नहीं है कि कितनी शीघ्र और किस सीमा तक इन्हें वास्तविकता में उतारा जा सकेगा। इनको वास्तविक रूप में प्राप्त करने के लिए नीति, रणनीति अथवा कार्यवाही पर कोई सर्व सहमति नहीं है। देशों और क्षेत्रों के बीच भेद उनके कार्यों

में अत्याधिक अन्तर के आधार पर किया जाता है, जिनका न तो आसानी से वर्णन किया जा सकता है और न ही इस अन्तर को मिटाया जा सकता है।

1965 से 1990 के बीच विकासशील देशों में अत्याधिक कार्यशील पूर्वी एशियाई देशों में प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. (GDP) 5.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ गई जब कि इसकी तुलना में दक्षिण एशिया में 2 प्रतिशत से कम और अफ्रीका के सहारा क्षेत्र में लगभग .25 प्रतिशत ही बढ़ी। इसी प्रकार यदि 1990 से पूर्वी यूरोप की प्रगति को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि 25 पूर्वी यूरोपीय देशों द्वारा प्रयोग की संक्रमणीय रणनीतियाँ आर्थिक और सामाजिक कष्टों को रोक पाने में असमर्थ रहीं। सभी 25 देशों में उत्पादन बुरी तरह गिर गया जो पोलैण्ड में कम से कम 18 प्रतिशत से रूस में 45 प्रतिशत तक, यूक्रेन में 60 प्रतिशत तथा आर्मीनिया में 75 प्रतिशत तक गिरा। पूर्वी जर्मनी में भी, जहां सरकार और उद्योगों ने जर्मनी के पुन: एकीकरण के बाद 1.1 ट्रिलियन डालर लगाए—आशातीत परिणाम प्राप्त नहीं हुए हैं। पूर्वी जर्मनी में बेरोज़गारी अति न्यून स्तर से बढ़कर 25 प्रतिशत तक पहुंच गई है जबकि उत्पादकता देश के पश्चिमी भाग के स्तर का 1/5 ही बनी हुई है।

इस प्रकार पूरे विश्व में रणनीतियों और कार्य करने में विशाल अन्तर के सम्बन्ध में कई प्रश्न हैं। विगत दो शताब्दियों के अनुभव ने विकास सिद्धान्त की कम से कम पाँच श्रेणियों को जन्म दिया है। 1850 से 1914 के समय में 23 देशों के विकास का वर्णन करने के लिए इन सिद्धान्तों को लागू करने पर मोरिस और एडलमैन ने पाया कि प्रत्येक मुख्य सिद्धान्त देशों के एक पूरे वर्ग और युग का पूरी तरह से स्पष्ट वर्णन करता है परन्तु इनमें से कोई भी सिद्धान्त 19वीं सदी के सभी देशों के अनुभवों पर एक साथ लागू नहीं होता। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि एक अधिक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। इस आवश्यकता को पूरा करने की दृष्टि ने संयुक्त राष्ट्र के तत्कालीन महासचिव बुटरस-बुटरस घाली को ''आगामी वर्षों की अत्याधिक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक चुनौती'' के रूप में विकास के विषय पर गहन चिन्तन करने का आवाह्न करने को प्रेरित किया।

MAADHYAM IAS

सोचिये और कीजिये 2.6

संयुक्त राष्ट्र की मानव विकास रिपोर्ट अथवा भारत के किसी राज्य की मानव विकास रिपोर्ट का अध्ययन करें। अपने अध्ययन के आधार पर गत वर्षों में अपने देश अथवा किसी राज्य में मानव विकास के विभिन्न संकेतकों में हुए परिवर्तनों को दर्शाता हुआ एक चार्ट तैयार कीजिये।

2.9 सारांश

वर्तमान में विकास केवल आर्थिक विचार ही नहीं है। इस में लोगों के जीवन के आर्थिक पक्ष के अतिरिक्त और बहुत कुछ सम्मिलित होता है। विकास को एक बहुपक्षीय प्रक्रिया के रूप में समझना चाहिए जिसमें पूरी अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था का पुनर्गठन और नवीनीकरण सम्मिलित होता है। संस्थाओं, सामाजिक और प्रशासनिक ढाँचों में सुधार के साथ-साथ जनता के दृष्टिकोण और कई मामलों में तो उनके विश्वास और रीति रिवाजों में सुधार भी इसका अंग होते हैं। अन्तत: विकास को एक बहुआयामी प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए जिसमें सामाजिक ढाँचे, लोगों के दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण बड़े परिवर्तन तथा तीव्र आर्थिक विकास, असमानता को कम करना तथा गरीबी का उन्मूलन सम्मिलित हों।

विकास एक प्रक्रिया है। समाज में यह प्रक्रिया प्रारम्भ से ही चलती रही है परन्तु पिछले 500 वर्षों में यह प्रक्रिया गहन और तीव्र हुई है और विगत 50 वर्षों में तो इसकी गति बहुत ही

तेज़ हो गई है। सभी समाजों और ऐतिहासिक काल खण्डों (युगों) के लिए सत्य विकास का विस्तृत अर्थ है—समाज का उर्जा, कार्य कौशल, गुणवत्ता, उत्पादकता, जटिलता, समझदारी, रचनात्मकता, परिपक्वता और श्रेष्ठता, मनोरंजन और उपलब्धियों के निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ना अर्थात निरन्तर ऊपर की ओर बढ़ना। इन मुद्दों पर प्रकाश डालने के लिए हमने इस इकाई में परिवर्तन और आधुनिकीकरण के सिद्धान्तों और परिप्रेक्ष्यों, आधुनिकीकरण परिप्रेक्ष्यों की आलोचना, विकास का क्षेत्र, आवश्यक शर्तें और बाधाओं तथा अवरोधों की चर्चा की है। इस इकाई में कुछ विकासात्मक अनुभवों को भी प्रस्तुत किया गया है।

2.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Desai, A.R. (1971), Easay on Modernisation of Under Developed societies Vol I. Thaker and Co. Ltd., Mumbai.

Duse, S.C. (1988), Modernisation and Development, Sage Publication, New Delhi.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 3

सामाजिक, मानवीय एवं लैंगिक विकास

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 विकास: मानव क्षमता की उपलब्धि के रूप में

3.3 महिलाओं पर विकास का प्रभाव

3.4 विकास की नीतियों में महिलाएँ एक संघटक के रूप में

3.5 लिंग आधारित आवश्यकता, भूमिका तथा रणनीति की पहचान

3.6 महिलाएँ एवं विकास के परिप्रेक्ष्य

3.7 सारांश

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित को समझना है:

- विकास मानव क्षमता की उपलब्धि में सहायक के रूप में;
- विकास का महिलाओं पर प्रभाव;
- विकास की रणनीति में लिंग की आवश्यकता एवं भूमिका; और
- महिलाओं के विकास के उभरते परिप्रेक्ष्य।

MAADHYAM IAS

3.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम की पूर्व इकाइयों में आप परिवर्तन, स्थायित्व, प्रगति, वृद्धि एवं विकास जैसी अन्य कई अवधारणाओं से अवगत हो चुके हैं। इस इकाई में हम विकास की सामाजिक, मानवीय तथा लिंग अवधारण पर केन्द्रित रहेंगे। इस पाठ्यक्रम की पहली ईकाई के उत्तरार्द्ध में हमने विकास के मानवीय पहलू पर विस्तार से चर्चा की है। आपको याद होगा, दूसरी इकाई में हमने परिवर्तन, आधुनिकीकरण तथा विकास के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की भी चर्चा की है। अब पूर्व चर्चा से आगे बढ़ते हुए यह इकाई विकास के उद्देश्यों की चर्चा से प्रारंभ होती है।

यहां पर विवेचना करेंगे कि किस प्रकार न्याय, स्थायित्व तथा समावेशता मानव की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति विकास प्रक्रिया में आम जनता की सहभागिता जैसे मुद्दे समकालीन विकास के अध्ययन के अभिन्न अंग बन चुके हैं। महिलाएं सदैव से विकास का महत्वूपर्ण घटक रही हैं। हालांकि विकास का प्रभाव महिलाओं पर सदैव सकारात्मक हो, ऐसा नहीं है। इतना ही नहीं विकस की बहुत सी पद्धतियों ने महिलाओं को कई प्रकार से अलाभकारी स्थिति की ओर धकेला है। इस इकाई में वर्तमान विकास प्रक्रियाओं का महिलाओं पर प्रभाव, विशेषत: लिंग असमानता में गहनता, महिलाओं पर दोहरा बढ़ता बोझ, लिंग पर आधारित रुढ़िगत भूमिका का लादा जाना, श्रम का महिलाकरण, महिलाओं की कठिनाईयों तथा जोखिमों में लगातार वृद्धि जैसी अन्य प्रक्रियाओं को प्रभाव का अध्ययन किया जाएगा। हाल ही के कुछ दशकों में महिलाओं के विकास संबंधी विभिन्न परिप्रेक्ष्यों पर विचार किया गया है, जिनमें से कुछ पर इस इकाई के अन्तिम भाग में प्रकाश डाला गया है।

3.2 विकासः मानव क्षमता की उपलब्धि के रूप में

कुछ लोगों द्वारा विकास को अस्तित्व की वंछनीय स्थिति के रूप में माना गया है और इस अर्थ में एक विकसित समाज से अभिप्राय एक आधुनिक औद्योगिक समाज से है, जो आर्थिक सम्पन्नता का लाभ उठाता है, चूंकि यह धन तथा वस्तुओं के एक निश्चित उपभोक्ता स्तर को प्राप्त हो चुका है। अन्य लोग विकास को इस नज़रिये से देखते हैं जहाँ महत्त्व इस बात का है कि मानव की आवश्यकताएँ और उसकी क्षमता कहाँ तक पूर्णता को प्राप्त हो सकती है न कि उत्पादन और उपभोक्ता के स्तर पर। आइए, इनमें से विकास के कुछ दृष्टिकोणें की जाँच करें।

अ) **विकास**

मानव व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में डुडले सीर्ज़ (फ्टॉमस 2000 : 33) का विकास के अर्थ के बारे में वर्णन करते हुए मानना है कि इस बारे में मूल्यात्मक निर्णय हो सकते हैं कि विकास क्या है और क्या नहीं है, पर यह सार्वभौतिक रूप से मान्य होना चाहिए कि विकास कुछ ऐसी परिस्थितियों का होना है जो मानव व्यक्तित्व की क्षमता को पूर्णता तक ले जा सके। विकास के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सीर्ज ने उन परिस्थितियों का इस प्रकार वर्णन किया है:

- विशेषतः भोजन के रूप में शारीरिक आवश्यकता को पूर्ण करने की क्षमता।
- एक व्यवसाय (यह बेशक वैतनिक नौकरी न भी हो) जिसमें अध्ययन किसी पारिवारिक फॉर्म पर काम करना अथवा घर की सार-संभाल जैसे कार्य शामिल हों।
- समानता जिसे अधिकारपूर्ण ढंग से एक मुख्य उद्देश्य के रूप में माना गया हो।
- शासन में भागीदारी।
- एक ऐसे राष्ट्र की राष्ट्रीयता जो सही मायने में स्वतंत्र हो, आर्थिक रूप से तथा राजनैतिक रूप से भी, एवं
- समुचित शिक्षा स्तर (विशेषतः साक्षरता) डैविड कॉर्टेन 'वैकल्पिक विकास सिद्धांत' के अग्रणी समर्थक के अनुसार प्रामाणिक विकास तीन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है, उदाहरणतः न्याय, स्थायित्व तथा समावेशता। उनका कहना है कि विकास निम्नलिखित बातों के प्रति आश्वस्त करे:

  न्याय: सभी लोगों को एक सुखद मानव अस्तित्व की प्राथमिकता दी जाए।

  स्थायित्व: भूमि के संसाधनों की इस प्रकार उपयोग किया जाए कि भावी पीढ़ियों तक भी यह संसाधन चलते रहें।

  समावेशता: हर व्यक्ति को इस बात का अवसर दिया जाए कि परिवार, समुदाय तथा समाज के प्रति उसके योगदान की सम्मानपूर्ण पहचान हो। (Korten Thomas 2000 : 33).

मैनफ्रैड ए. मैक्सनीफ (1991) Mantfred A. Max-Neet (1991) चिली मूल के एक अर्थशास्त्री तथा मानक अधिकार और वैकल्पिक विकास के एक जाने-माने समर्थक है, जिनका लैटिन अमेरिकी देशों के आर्थिक प्रगति पर आधारित विकास के अनुभवों से भ्रम भंग हो गया है, वे 'मौलिक मानव आवश्यकताओं की पूर्ति' पर केन्द्रित विकास का एक नया मॉडल प्रस्तुत करते हैं। इसे वे 'मानव मान (स्केल) विकास' का नाम देते हैं, जिसकी अन्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- स्वायत्तता के साथ नियोजन
- आत्म निर्भरता के बढ़ते स्तर
- व्यक्ति, प्रकृति तथा प्रौद्योगिकी में तारतम्य एवं संतुलित परस्पर निर्भरता

MAADHYAM IAS

- वैयक्तिक तथा सामाजिक स्तर पर संतुलन
- नागरिक, समाज तथा राज्य में सकारात्मक अन्तर्सम्बन्ध
- वैश्विक प्रक्रियाओं के साथ-साथ स्थानीय क्रिया-कलापों का भी उभरना।

ब) जनता का विकास

मानव स्केल विकास में जनता की ही भूमिका मुख्य मानी जाती है। लोगों में विविधता तथा उनके क्रिया क्षेत्र में प्रदान की गई स्वायत्तता को सम्मान देने से वर्तमान समय का वस्तुनिष्ठ व्यक्ति, आत्मनिष्ठ व्यक्ति के रूप में परिणित हो जाता है। अब तक के विकास संबंधी अनुभव बतलाते हैं कि उनमें ऊपर से नीचे की ओर विकास की दिशा है, जिसमें आम जनता की भागीदारी और निर्णय प्रक्रिया में उसकी भूमिका की कोई सम्भावना नहीं। मानव मान (स्केल) विकास की मांग है कि एक सीधी-सीधी (प्रत्यक्ष) एवं भागीदारीपूर्ण लोकतंत्र हो जहाँ राज्य अपनी पितृ-प्रधान तथा कल्याणकारी भूमिका को त्यागकर एक ऐसी व्यवस्था दे जो जनता के बीच के अन्तिम आदमी से शुरुआत करे और उसकी स्थित को सुदृढ़ करे। जनता के 'सशक्तिकरण' के माध्यम से विकास की गति निर्धनता से संघर्ष अथवा उसके सुधार की अपेक्षा कहीं आगे बढ़ जाती है। इस दृष्टि से विकास का मकसद है मानक क्षमताओं और मानव मुक्ति को पुन: प्राप्त करना तथा उसे और आगे ले जाना ताकि वह अपने विकास में खुद की भूमिका वहन करने योग्य बन सके।

स) जनसाधारण की सहभागिता

विकास की पूँजीवादी प्रक्रिया में तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को विदेशी बाजार अभिमुखी बनाने में ऐसे राज्य भी जो राजनैतिक दृष्टि से लोकतांत्रिक हैं, राजनैतिक तथा आर्थिक निर्णय लेते समय आम जनता के एक बड़े भाग को इस प्रक्रिया से अलग रखते हैं। राज्य ऐसे में एक सत्तावादी नौकरशाही संरचना से प्रेरित अल्पतंत्र का रूप ले लेता है। ऐसी स्थिति में समाज की सहभागीता तथा तंत्र की लोकप्रियता को बाधा पहुंचती है। सरकार की असफल तथा कमजोर पुनर्वितरण नीतियों से आम जनता की सहभागीता सीमित सी रह जाती है तथा सामाजिक लाभ से अधिकांश जनता वंचित रह जाती है। ऐसे प्रभावशाली शक्तिशाली शक्ति संपन्न आर्थिक हित समूह राष्ट्रीय मुद्दे तय करते हैं जिनका समाज की विविधताओं तथा विषमताओं से कोई सरोकार नहीं होता। इस प्रकार सत्ता तथा संसाधन मुट्ठीभर हाथों में सिमट कर रह जाते है। जबकि आम जनता को केन्द्र बिंदु मानने का तात्पर्य है कि विकास तथा आत्म-निर्भरता के अन्य रास्ते भी हो सकते हैं। 'मानव केन्द्रित विकास', 'जनसाधारण का विकास', 'समेकित विकास' जैसे नारों की माँग है कि मूलभूत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तनों में ज़्यादा समावेशवतापूर्ण तथा गंभीरतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाये। आम जनता के सभी पहलू, उनकी सामूहिकता, उनकी ऐतिहासिक तथा जागरूकता एवं उनके औरों से संबंध ध्यान में रखे जाएँ तो ये परिवर्तन एक संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। मूलभूत आवश्यकताओं पर केन्द्रित पद्धति जब देशीय विकास अवधारणा से संपुटित होगी तो इस प्रकार के राष्ट्रीय मुद्दे उभर कर आएंगे जो सार्वभौमिक रूप से भी लागू हो सकेंगे तथा देश विशेष से संबंधित भी होंगे।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

घ) विविधता का पोषण

मानव मानक (स्केल) विकास के समक्ष एक चुनौती है कि किस प्रकार विविधता से घबराने की बजाये इसे पुष्ट किया जाए। ताकि राजनीतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया विकसित हो। किस प्रकार जनता की स्वतंत्रता को प्रदर्शित करने वाले उभरते सामाजिक आंदोलन प्रोत्साहित किए जाएँ न कि दबाए जाएँ। किस प्रकार लोकतांत्रिक देसी परम्परा तथा संस्थाएँ बलवान हों। आर्थिक विकास का लाभ अधिक समानता से वितरित हो सकता है यदि स्थानीयता को संरक्षण दिया जाए। छोटे-छोटे (व्यष्टि) संगठनों को सुविधाएँ प्रदान की जाएँ तथा समाज निर्माण करने वाले विविध सामूहिक लक्षणों को पहचाना जाये तथा प्रतिनिधित्व दिया जाए।

परिवेश पर आम लोकप्रिय जनता का नियंत्रण अवश्यम्भावी है। वास्तव में विकास की ऐसी अवधारणा का उद्देश्य है नागरिक समाज को विविधता के पोषण में राज्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाए, ताकि समाज की भूमिका में वृद्धि हो।

ङ) विकास– एक खुली प्रक्रिया के रूप में

मानव स्केल (मानक) विकास की दृष्टि में वास्तविक विकास एक अवस्था न होकर एक प्रक्रिया है और एक ऐसी प्रक्रिया जो अपने में आर्थिक, सामाजिक तथा औद्योगिक परिवर्तनों के साथ राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक आयामों को भी समाहित करती है, जिनसे मानव कल्याण में सुधार भी हो और वह शोभायमान भी हो।

इन सबसे ऊपर ऐसी अवधारणा, विकास को किन्ही सीमित विशिष्ट मन्यताओं से मुक्ति दिलाती है। इस प्रकार विकास एक खुले विकल्प के रूप में नज़र आता है, जो इस वजह से न्याय संगत है कि यह लोगों की जरूरत है, लोगों की इसकी समझ है तथा लोग इसे आत्मसात भी करते हैं। विकास को अवश्यमेव एक निरंतर गतिशील प्रक्रिया होना चाहिए जो मात्र मनुष्यों के अपने लिए हो और उनके निरंतर गतिशील परिवेश के लिए हो, जिसकी गति पर सीमाओं तथा दिशाओं का बंधन न हो।

अत: सामाजिक एवं मानवीय विकास के लिए आवश्यकता है एक एकीकृत पद्धति की जिसमें मानव की बेहतरी के लिए आर्थिक तथा सामाजिक घटक युक्त योजनाए नीतियाँ तथा कार्यक्रम हों। यह एक चुनौती है कि किस प्रकार क्षेत्रीय तथा क्षेत्र-सी[illegible] विकास संबंधी आवश्यकताओं में सामंजस्य स्थापित किया जाये तथा इसे भागीदारीपूर्ण भी बनाया जाये। पर्यावरण, प्रदूषण, महिला आवास, भूख तथा बेरोजगारी जैसे मुद्दे एक-एक करके सामने आ रहे हैं और संसाधन-वितरण के साथ-साथ जनता तथा संस्थाओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये जा रहे हैं। किसी भी विकास-संबंधी प्रयास में, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दो मुख्य मुद्दे जिनकी ओर ध्यान केन्द्रित करना है, वे हैं–मानव सुरक्षा तथा मानव स्थायित्व। हमें इस बात के प्रति आश्वस्त होना है कि विकास का अर्थ सामाजिक विस्थापन, हिंसा तथा युद्ध नहीं हैं। विकास का अर्थ 'वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं पर भावी पीढ़ी की ज़रूरतों की बलि चढ़ना भी नहीं है'। इनमें से प्रत्येक समस्या परस्पर जटिल रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इसके लिए एक एकीकृत पद्धति की आवश्यकता है। विकास का मकसद मात्र वस्तुओं का विकास न होकर मानव का विकास होना चाहिए। मानव जाति की मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति ही विकास का वास्तविक उद्देश्य होना चाहिए। ऐसी उपलब्धियाँ जो इस उद्देश्य में सहायक नहीं हैं और उलटे इस आधारभुत ज़रूरत में बाधक हैं–को विकास संबंधी लक्ष्य प्राप्ति हेतु जारी न रखा जाये तो श्रेयस्कर होगा।

MAADHYAM IAS

सोचिये और कीजिये 3.1

विकास से आपका क्या अभिप्राय है? आपकी दृष्टि में विकास का वास्तविक उद्देश्य क्या होना चाहिए और क्यों?

3.3 महिलाओं पर विकास का प्रभाव

विकास लिंग-निरपेक्ष नहीं है। जब विकास की प्रक्रिया में समानता तथा सभी मानवों की, स्त्री और पुरुष की सहभागिता के बारे में बहस की जाती है, तो यह और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि हम जीव विज्ञान के सामाजिक आश्यों के प्रति उदासीन न हो जाएँ और न ही इसके द्वारा महिलाओं पर पड़ने वाले शारीरिक दबावों के प्रति। महिलाएँ और विकास–एक ऐसा चर्चा का विषय है जिसमें महिलाओं के जीव विज्ञान तथा सामाजिक संरचना के माध्यम से प्राप्त हुए विकास संबंधी अनुभवों के मुद्दे उभर कर आते हैं। ये मुद्दे महिलाओं के प्रति समानता और न्याय से भी संबद्ध हैं।

अ) लिंग असमानता की गहनता

लिंग असमानता के कारण अर्थ-व्यवस्था के हर स्तर पर न केवल घरेलू स्तर पर उत्पादकता तथा श्रम की कार्य क्षमता में गिरावट देखी जाती है, इसके कारण संसाधनों के असमानता वितरण में भी गहनता पाई जाती है। सुरक्षा, अवसर तथा सशक्तिकरण की कमी का तात्पर्य है पुरुष तथा स्त्री दोनों का ही जीवन स्तर गिर जाना। नि:संदेह लिंग असमानता का प्रत्यक्ष असर तो महिलाएं और कन्याओं को ही सहना पड़ता है परन्तु यह समझने की नितांत आवश्यकता है कि इसकी अन्तिम कीमत समाज के हर स्तर पर विकास की कमी तथा निर्धनता के रूप में चुकानी पड़ती है। अत: महिलाओं का विकास एक लिंग मुद्दे के साथ विकास-संबंधी मुद्दा भी है। विकास योजनाकारों को महिलाओं की सदियों से पराधीनता तथा इसके द्वारा उनकी गतिशीलता, श्रम, लैंगिकता तथा जनन-क्षमता को नियंत्रित करके रखें जाने का भी ज्ञान होना चाहिए।

ब) महिलाओं के लिए मिला-जुला लाभ

जहां तक महिलाओं का संबंध है, विकास से उन्हें मिला-जुला लाभ मिला है। एक ओर तो उनके लिए जो अभी तक परम्परागत तरीके से और अन्धविश्वास के प्रभाव से घर की चारदीवारी तक ही सीमित थीं, उनके अवसरों में वृद्धि हुई है और जन-संपर्क बढ़ा है। जबकि विश्व के अधिकांश हिस्सों से मिलें प्रमाण यह भी दर्शाते हैं अवसरों के मामले में वे भेद-भाव की शिकार हैं। प्राय: महिलाओं के लिए विकास के मायने हैं पुरुष और महिलाओं की आमदनी में बढ़ता निरंतर अंतर और समय और ऊर्जा की दृष्टि से उन पर बढ़ता तनाव। आज भी असंगठित क्षेत्र में महिलाओं को प्रतिकूल ढंग से प्रतिनिधित्व मिलता है, जहाँ वे बड़ी दमनकारी तथा शोषणकारी परिस्थितियों में कार्यरत हैं। उनकी जैविक तथा सामाजिक ज़िम्मेदारियों की वजह से तथा समाज में उनके निम्न स्तर के कारण वे सीमित सी होकर रह जाती हैं।

स) दोहरे बोझ की गहनता

वास्तविकता तो यह है कि महिलाएँ दुगनी हानि झेल रही हैं क्योंकि एक ओर तो विकास योजनाकार उनकी दोहरी भूमिका को पहचानने में असमर्थ रहे हैं। उनकी एक भूमिका बालकों को पालने में है तथा दूसरी भूमिका आर्थिक क्रिया-कलापों में है। योजनाकरों की अदूरदर्शिता की वजह से वे एक उपेक्षित मां हैं और उन्होंने महिलाओं को आर्थिक रूप से निर्भर श्रेणी में रखकर उनकी आर्थिक भूमिका का अवमूल्यांकन किया है। एक ओर शिशु की सार-संभाल का बोझ मात्र माँ पर होने से उनकी बाजार की ओर पहुंच सीमित हो जाती है, दूसरी ओर बाजार स्वयं उन्हें प्रतिष्ठित तथा बढ़िया वैतनिक नौकरियों से यह सोचकर दूर रखता है कि ऐसे पदों के लिए महिलाएँ, पुरुषों के बराबर क्षमता नहीं रखतीं। साथ-साथ काम के बारे में प्रचलित परिभाषाएँ, धन के लिए कार्य को, मात्र कार्य के लिए कार्य से अलग समझती हैं। ऐसी परिभाषा के कारण भी महिलाओं का आर्थिक योगदान नगण्य हो जाता है। उदाहरणार्थ, महिलाओं द्वारा कृषि क्षेत्र में किया गया कार्य, घर-गृहस्थी हेतु किया गया कार्य, बालक की देखरेख जैसे बिना पैसे के कार्यों की अनदेखी की जाती रही है।

घ) लिंग-आधारित रूढ़िगत भूमिका

कृषि-कार्य प्रणाली के आधुनिकीकरण संबंधी उद्देश्य को लेकर, विकास प्रक्रियाओं में महिलाओं की लिंग आधारित रूढ़िगत भूमिका के कारण समस्या और भी बिगड़ी है, चूंकि ऐसी बदलती परिस्थिति में प्रशिक्षण, ऋण, आधुनिक बीज, भूमि तथा अन्य संसाधन मात्र पुरुषों के लिए ही निश्चित किये गए हैं। हरित क्रान्ति के संदर्भ में जहाँ अधिक पूँजी, बढ़िया उत्पादक यंत्र, उन्नत किस्म के बीज, रसायनिक खाद, कृषि का मशीनीकरण जैसी पद्धति से श्रम की और भी कम आवश्यकता होती है, जिसका दुष्परिणाम है बेरोजगारी। ऐसे में महिलाएँ ही अपने पारम्परिक कृषि-कार्यों से वंचित हो जाती हैं, चूंकि वैकल्पिक रोजगार की जो भी योजना बनती है, वह मात्र पुरुषों के लिए होती है।

MAADHYAM IAS

ङ) पारम्परिक अर्थव्यवस्था में महिलाओं की कम होती भूमिका

ऐसी अवस्था में महिला का स्तर और भी गिरा दिया गया है, जिससे पुरुष और महिला में अंतर ज़्यादा बढ़ गया है। इस प्रकार महिलाएँ जिन्हें कोई कार्य-विशेषता हासिल नहीं है। वे मात्र निर्वाह योग्य अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन कर रह गई हैं, जिससे प्रतिस्पर्धापरक समतावादी अर्थव्यवस्था में उनके लिए कोई स्थान नहीं रह गया है। सभ्यताओं के विकस के साथ-साथ पुरुष की विशेषज्ञतापूर्ण कार्य में भूमिका अधिक प्रखर रही है, जिससे वही अधिक लाभान्वित हुआ है। ऐसे में महिलाएँ अपने भोजन उत्पादन संबंधी पारस्परिक कार्य से भी अलग हो गई हैं और परिणामस्वरूप पुरुष पर उनकी निर्भरता और भी बढ़ गई है। ज्यों-ज्यों समाज सभ्यता की ओर अग्रसर होता गया, महिलाओं से उनके कार्य भी छूटते गए और धीरे-धीरे वे एक आर्थिक बोझ के रूप में समझी जाने लगीं तथा पितृसत्तात्मक नियंत्रण का शिकार होने लगीं। मानव उत्पत्ति विज्ञान संबंधी प्रमाण दर्शाते हैं कि मात्र निर्वाह प्रधान अर्थव्यवस्था में सभ्यता का प्रभाव, मनुष्य की शिशु पोषण तथा अन्य घरेलू कार्यों में घटती भूमिका के रूप में परिणत हुआ है। विकास को मात्र आर्थिक क्रियाकलापों के रूप में परिभाषित करते समय मात्र पुरुष को ही ध्यान के केन्द्र में रखा गया है और इस प्रकार महिलाओं की पारम्परिक भूमिका को नकारा गया है।

च) घर-गृहस्थी के कार्यों का महिलाकरण

भूमि की प्रथागत सामुदायिक पट्टा प्रणाली का निजी सम्पत्ति स्वामित्व में परिवर्तन और नकदी फसल का चलन, दो ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं जिन्होंने महिलाओं की पारस्परिक अर्थव्यवस्था प्रणाली में भूमिका को कम किया है और परिणामस्वरूप पुरुष का भूमि और फसलों पर अधिकार में पक्ष लिया है। साथ ही आधुनिक पैसा-प्रधान अर्थव्यस्था के प्रति आकर्षण ने बड़े पैमाने पर पुरुषों के द्वारा पारम्परिक घरेलू कार्य छोड़कर स्थानान्तरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया है। फलत: पहले पुरुषों द्वारा किये जा रहे कार्य भी महिलाओं के जिम्मे आ पड़े हैं, जिससे उनके अवकाश के क्षणों तथा उत्पादकता में भारी कमी आई है। इसके अतिरिक्त यातायात तथा बाजार में सुधार का पुरुषों तथा महिलाओं को मिला-जुला सा लाभ हुआ है। इससे जहाँ एक ओर तो बाजार एक सुगम पहुंच का ग्रामीण कमाई पर सकारात्मक असर देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर बहुत से पारम्परिक व्यवसाय लोगों के लिए फालतू से हो गए हैं। चूँकि स्थानीय हस्तशिल्प निर्मित वस्तुएँ, मशीन निर्मित सस्ते उत्पाद के सामने प्रतिस्पर्धा में ही टिक सकती हैं?

MAADHYAM IAS

छ) शिक्षा तक भेदभावपूर्ण पहुंच

1980 में 'श्रम का महिलाकरण' नामक घटना वैश्विक स्तर पर देखने को मिलती है। इस घटनाक्रम का संदर्भ उत्पादन की मजूरी और गैरमजूरी कीमत में कमी करने के उद्देश्य से श्रम की विकेन्द्रीयकरण प्रक्रिया के रूप में लिया जा रहा है। ऐसे में महिलाओं को नौकरी में प्राथमिकता दी जा रही है, चूँकि वे सस्ती, लचीली, अस्थायी शर्तों पर उपलब्ध हो जाती हैं और उनका निपटारा आवश्यकतानुसार चाहे जबकर दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसे में अधिक महिलाओं को काम करने के अवसर मिलते हैं। यद्यपि यह अपने आप में उम्मीद की वजह नहीं हो सकती, चूँकि वे काम को कम सुविधाजनक शर्तों पर भी स्वीकार कर लेती हैं। इसी प्रकार संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (Structural Adjustment Programmes) तथा नई आर्थिक नीति को अधिकांश महिला संबंधी क्षेत्रों में अच्छे रूप में नहीं लिया जा रहा है चूँकि महिलाओं पर ही स्फीति का तथा न्यूनतम उपलब्ध कल्याण उपायों के समेटे जाने का कुठाराघात होता है। अपेक्षाकृत महिलाओं में अधिक दरिद्रता, बच्चों तथा महिलाओं के प्रति उपेक्षा-भाव, विशेषत: तब जब वे पहले ही अस्तित्व, वैश्वाकृत्ति तथा हिंसा के प्रति जूझ रहे हों। उपरोक्त चौंकाने वाले कुछ सामाजिक परिणाम हैं, जो उस आर्थिक विकास रूपी सिक्के के दूसरे पहलू हैं, जिसका नियोजन निजीकरण, उदारीकरण तथा वैश्वीकरण प्रक्रिया के कोख में हुआ है।

लिंग-आधारित भेद-भाव कम करने की दिशा में शिक्षा को एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में दूर-दूर तक माना जा रहा है। इससे संबंधित बहुत से शोध कार्य हुए हैं जो दर्शाते हैं कि कन्याओं की शिक्षा का आर्थिक उत्पादकता, माँ तथा शिशु के मृत्युदर, जनन-क्षमता दर तथा भावी पीढ़ी की स्वास्थ्य संभावनाओं के साथ गहरा सकारात्मक सम्बन्ध है। यदि हम शिक्षा तथा आधुनिकीकरण और इसका महिलाओं पर प्रभाव की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो हम पाते हैं कि अधिकांश निवर्तमान औपनिवेशिक राष्ट्रों में शिक्षा का संभ्रान्त विशिष्ट वर्ग की ओर झुकाव है, जिसका सीधा-सीधा परिणाम है कि यह ग्रामीण जनसंख्या तक और उसमें भी विशेष रूप से महिलाओं तक नहीं पहुंच पाई है। अभी भी अफ्रीका, एशिया तथा लैटिन अमेरिका के देशों में पुरुष तथा महिला-साक्षरता के आंकड़ों में बड़ा अन्तर देखने को मिलता है। जब महिलाएँ पारम्परिक क्रिया-कलापों में रत थीं, तब शिक्षा की कमी उनके लिए अपने आप में इतनी बड़ी समस्या नहीं थी। परन्तु अब, जब महिलाओं के पारम्परिक कार्यों पर विकास तथा इससे जुड़े परिवर्तन हावी हो रहें, तो अल्पशिक्षित महिलाओं के लिए नए व्यवसाय क्षेत्रों में प्रवेश पाना और भी दु:साध्य होता जा रहा है। ज्ञान तथा प्रशिक्षण की कमी की वजह से महिलाएं, बाजार में एक अलाभकारी स्थिति में रह जाती हैं। ऐसी स्थिति में वे अपने से अधिक प्रशिक्षित पुरुष से स्पर्धा नहीं कर पातीं तथा व्यवसाय की शोषक शर्तें स्वीकार करने को बाध्य हो जाती हैं। आर्थिक उद्यमों से वे स्वतंत्र रूप से धन अर्जित करने में ऋण लेने में, वे अपनी शिक्षा की कमी से असमर्थ महसूस करती हैं। ग्रामीण महिलाअें को जब शहरों की ओर प्रवास करना पड़ता है, तो उन्हें प्राय: घरेलू नौकर, दूकान सहायिका और यहां तक कि वेश्याओं के धंधे में भी कम पारिश्रमिक दिया जाता है।

मध्यम तथा उच्चवर्गीय महिलाओं के लिए तो शिक्षा के माध्यम से अन्य कई व्यवसायों के अवसर बढ़े हैं, उदाहरणत: अध्यापिका, नर्स तथा चिकित्सकों के रूप में। सूचना प्रौद्योगिकी तथा कम्प्यूटर क्षेत्र में भी मध्यम वर्गीय महिलाओ के लिए अपेक्षाकृत अधिक कमाई के अवसर बढ़े हैं। यद्यपि यह स्मरण रहे कि अधिकांशत: महिलाओं को आर्थिक क्रिया-कलाप की अनुमति तब ही मिल पाती है जबकि पारिवारिक संकट की परिस्थिति हो। ऐसी परिस्थिति में महिला पर घर के कार्य की जिम्मेदारी के साथ अतिरिक्त कमाई का बोझ भी पड़ जाता है। भारत जैसे देशों में शिक्षित महिलाओं के लिए प्रतिष्ठित नौकरी मिलने के कई कारण हैं। जिनमें से ये कारक भी महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्हें परिवार से भी प्रोत्साहन और समर्थन मिलता हो तथा उनकी जगह घरेलू काम-काज के लिए सस्ते पैसों पर विकल्प प्राप्त हो जाए। इसके साथ ही, महिला के लिए घर की चारदीवारी के बाहर कार्य करना अन्य जोखिमों से खाली नहीं है। तलाक, न्यायिक पृथकर्ता, स्त्री-प्रधान घरेलू काम-धंधों में होती जा रही वृद्धि का महिला तथा पुरुष के बीच वैमनस्थता के साथ संबंध हो सकता है, चूँकि महिलाओं को जहाँ दो-दो पारियों में काम में लगे रहना होता है, पुरुषों को गृह-कार्यों से छूटकर लाभ मिलता रहता है। वर्तमान समय में महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध तथा हिंसा भी एक चिन्ता का विषय है, जिसकी वजह से महिलाएँ विकास के प्रयासों से पूर्ण तथा निर्बाध प्रतिभागिता नहीं कर पातीं और पराधीनता का शिकार होती रहती हैं।

ज) **पर्यावरण-अवनति तथा महिलाओं की बढ़ती कठिनाइयां**

इसी प्रकार यहि हम विकस तथा पर्यावरण पर इसके प्रभाव को देखते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि पुरुषों के पूँजीवादी हितों के अनियंत्रित ढंग से साधे जाने के कारण पूर्व स्थापित प्रकृति संतुलन को घोर नुकसान पहुंचा है। इसका दुष्प्रभाव पुरुषों के मुकाबले महिलाओं पर अधिक पड़ा है, चूँकि इसके परिणामस्वरूप उन्हें ईंधन ढूँढ़ने के लिए जूझना पड़ता है, दूर तक पानी ढोकर ले जाना पड़ता है और भोजन तैयार करने में अनावश्यक रूप से काफी समय बर्बाद करना पड़ता है। महिलाओं का निर्वाह सम्बन्धी क्रिया-कलापों में अत्याधिक व्यस्तता से जुटे रहने का अर्थ हक कि पर्यावरण अवन्नति के फलस्वरूप उनकी कठिनाइयां विशेष रूप से बढ़ी हैं। इसका कारण है कि प्राकृतिक संसाधन जो पहले उनकी सुगम पहुंच में थे,

अब उसका स्थान दुर्गमता, कठिनता ने ले लिया है, चूँकि जो पहले सहज रूप से समुदाय के स्वामित्व में था, उसके लिए उन्हें अक्सर कुछ चुकाना पड़ता है।

विकास की अंधाधुंध दौड़ का शिकार मुख्यवत: महिलाएँ ही हैं, क्योंकि उन्हें घरेलू उबाऊ काम-धन्धों में जुटे रहना पड़ता है। बेशक आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की देन-घरेलू उपकरणों को महिलाओं की इस प्रकार की सारी कठिनाइयों का रामबाण इलाज माना जा रहा हो। पर वास्तव में यह प्रौद्योगिकी देन उतनी मुक्तिदाता नहीं है, चूँकि अधिकांश पर्यावरण प्रदूषण और अवन्नति इस प्रौद्योगिकी से ही सम्बन्धी रखती है। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि महिलाएँ एक संतुलित तथा अवनतिहीन प्राकृतिक संतुलन और मानव अस्तित्व के बीच गहन संबंध के प्रति भलीभांति जागरूक हैं। ये महिलाएँ ही हैं जो प्रकृति तथा पर्यावरण के पूँजीवादी दोहन के खिलाफ विश्व स्तर पर एकजुट हुई हैं और नेतृत्व संभाला है, चाहे वह विशाल बांध निर्माण के खिलाफ मुद्दा हो, मैनग्रोव वनो को बचाना हो, आणविक ऊर्जा संयंत्र का निर्माण हो अथवा चाक एवं अन्य संसाधनों संबंधी मुद्दे हों।

इस सबका तात्पर्य यह नहीं कि विकास महिलाओं के लिए नहीं हैं, बल्कि महिलाओं का जहाँ विकास संबंधी हस्तक्षेप हो सकता था, वहाँ भी कुछ विशेष रुढ़िगत धारणाओं के कारण, उन्हें अछूता छोड़ दिया गया है। इस सबका उनकी उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है और जो गतिविधियाँ उन्हें सुविधा से प्रदान कर सकती थीं, वे ही उनके लिए बाधक बन गई हैं। विकास संबंधी हस्तेक्षेपों ने या तो महिलाओं की मातृत्व भूमिका को या उनकी आर्थिक अभिकर्त्ता के रूप में भूमिका को ही प्राथमिकता दी है, और उनकी दूसरी अत्यंत महत्त्वपूर्णक भूमिका की अपेक्षा की है। इस प्रकार एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि महिलाएँ उनके विकास संबंधी उद्देश्यों के प्रयास में पुरुषों के मुकाबले कहीं नहीं ठहरतीं। जहां वे एक पृथक लिंग आधारित समाज को प्राप्त सुरक्षा तथा लाभों से वंचित हो गई हैं, वहीं विकास प्रक्रिया ने महिलाओं के नए आर्थिक जीवन संबंधी जो वायदे किए थे, उन पर आधारित स्वतंत्रता तथा सम्मानपूर्ण दर्जा भी उन्हें प्राप्त नहीं हो सका है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सोचिय और कीजिए 3.2

अपने आस-पास खेती-बाड़ी या भवन-निर्माण कार्य में लगी महिला मज़दूरों की आर्थिक तथा सामाजिक दशा का अवलोकन करें। तत्पश्चात् उनके सामाजिक और आर्थिक स्तर संबंधी परिवर्तन पर एक लेख लिखें जो आपके अवलोकन पर आधारित हो।

3.4 विकास की नीतियों में महिलाएँ एक संघटक के रूप में

यह 1970 के दशक में ही हो पाया है कि विकास नीति का ध्यान, महिलाओं की ओर एक विशिष्ट श्रेणी के रूप में आकर्षित हुआ है न कि एक अवशिष्ट श्रेणी के रूप में विकास योजनाकार, 1970 के दशक के उत्तरार्ध में तत्काली आर्थिक विकास से उपजी, बिगड़ती हुई प्रतीत हो रही दरिद्रता और बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहे थे। उस समय उनका ध्यान मूलभूत आवश्यकताओं तथा दरिद्रता निवारण की ओर आकर्षित हुआ, चूकिं अधोमुखी स्त्रवण सिद्धांत (Trickle Down Theory) असफल हो रहा था।

लगभग उसी समय महिला आंदोलनों से यह ध्वनि भी पुरजोर ढंग से मुखरित हुई कि महिला संबंधी मुद्दों का विकास नीतियों से गहन संबंध है। महिलाओं की उत्पादक गतिविधियों, विशेषत: उनकी खाद्य-उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका, विश्व के दरिद्रतमक वर्ग में उनकी चिन्तनीय स्थिति, सम्बन्धी कई अध्ययन तथा महिलाओं का समाज में स्थान और उनकी जनन-क्षमता से जुड़े कई शोधकार्य प्रकाश में आए, जिन्होंने उन्हें विकास उद्देश्यों से जोड़े जाने पर बल दिया। फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिला दशक की घोषणा की। इस प्रकार विकास,

महिला-अभिमुखी होने की दिशा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अन्यथा 1990 से पहले तो योजना निर्माताओं का ध्यान महिलाओं की ओर बड़े लिंग-विशिष्ट तरीके से पक्षपातपूर्ण था। पुरुषों को तो विकास के मामले में परिवार के मुखिया तथा रोजी-रोटी के अर्जक के रूप में लक्षित किया जाता था, जबकि महिलाओं को प्राथमिक रूप से एक माता तथा एक आश्रित के रूप में देखा जाता था। इस प्रकार महिलाएँ कल्याण प्रयासों के मात्र लाभ-ग्राहक के रूप में रह गई थीं, न कि विकास में भागीदार। कल्याण ग्राहक वर्ग के बड़े स्पष्ट नकारात्मक अर्थ हैं चूंकि अधिकांशत: उन्हें उन आश्रित लोगों से निर्मित अवशिष्ट वर्ग माना जाता है जो आत्मनिर्भर होने में असफल रहे हैं और फलत: मात्र सहायता के पात्र हैं। चूँकि विकसित तथा अल्पविकसित देशों की सच्चाई को जाने बिना उन पर लिंग आधारित भूमिका का ठप्पा लगा दिया था, अत: उनके लिए किए गए प्रयासों में ऐसे ही कार्यक्रम थे— जैसे पोषण संबंधी प्रशिक्षण गृह अर्थशास्त्र, मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य की देखरेख तथा परिवार नियोजन। महिलाओं की मात्र गृहस्थी संबंधी मान्यता को उन पर किए गए शोधकार्यों ने चुनौती दी और उनकी उत्पादक भूमिका तथा परिवार की मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका की ओर संकेत किया। इसके पश्चात् किए गए विकास प्रयासों में महिलाओं को आय वर्धक कार्यक्रमों में भूमिका दी गई, चूँकि अब उनके बारे में निम्न आय गृहस्थी के प्रबंधक के रूप में अवधारणा बनती जा रही थी। इस अन्तरिम चरण के दौरान भी अधिकांश उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए विकास प्रत्यनों में उनकी भूमिका 'कल्याणवादी' ही प्रदर्शित की जाती रही और उन्हें पुनर्वितरण प्रतिफल से दूर रखा गया। फिर काफी बाद में 1980 के दशक में जब विश्व अर्थव्यवस्था पतन की ओर अग्रसर हो रही थी, महिलाओं को बड़े अधिकारपूर्ण ढंग से आर्थिक अभिकर्ता के रूप में उनके महत्त्व की पहचान हुई। यह महसूस किया जाने लगा कि महिलाओं की उत्पादक-क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं किया गया है। उदारीकरण तथा निजीकरण प्रक्रियाओं के माध्यम से जब आर्थिक संरचनाओं का पुनर्गठन होने लगा, तो उम्मीद बंधी की मुक्त बाजार उद्यम के कारण पुरुष तथा महिला दोनों का मानव संसाधान के रूप में दक्षतापूर्ण उपभोग किया जाएगा। इस दौरान महिलाएँ पहली बार विकास प्रक्रिया के मुख्य अभिकर्त्ता के रूप में आकर्षण का केन्द्र बनीं। उन्हें व्यष्टि उद्यम, लघु स्तर व्यापार प्रयास तथा समान्तर बाजार व्यवस्था की ओर प्रोत्साहित किया जाने लगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

यद्यपि महिलाओं को आर्थिक अभिकर्त्ता के रूप में महत्त्व दिये जाने में गंभीर त्रुटियाँ भी थी। महिलाओं का मूलभूत पराधीनीकरण तथा घर एवं बालकों के प्रति मात्र उनकी ही जिम्मेदारी की प्रवृत्तियां जारी रही। संरचनात्मक सामंजस्य कार्यक्रमों तथा राज्य कल्याण प्रयासों के समापन से ये जिम्मेदारियाँ बढ़ी ही हैं, तथा महिलाओं के समय तथा ऊर्जा पर अनौचित्यपूर्ण बोझ पड़ा है। इन अलाभकारी परिस्थितियों के चलते मुक्त बाजार में प्रवेश पाना महिलाओं के लिए उतना सुगम नहीं है, और उनके लगातार शोषण के कारण वे एक अंत की ओर ही पहुंच जाती हैं। महिलाओं के विकास सम्बन्धी दक्षता पद्धति भी उनके लिए बेहतर जीवन की परिस्थितियाँ अथवा उन्हें पुरुषों के बराबर नहीं कर पातीं। लोमड़ी और शतुरमुर्ग की पुरानी कथा जिसमें दोनों के लिए खाने सम्बन्धी ज़रूरतें अलग-अलग ढंग से पूरा किया जाने की जरूरत थी, एक उपयुक्त उदाहरण है जो पुरुष और महिलाओं की विभिन्न आवश्यकताओं में समझा सकता है।

महिलावादियों ने विकास योजनकारों को इस विचार से प्रभावित करना चाहा है कि महिलाओं को पराधीनता से मुक्ति दिलाने संबंधी विकास का उद्देश्य तथा लिंग समानता के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए श्रम के लिंग आधारित उत्पादन तथा पुर्नउत्पादन की ओर ध्यान दिया जाना जरूरी है। इससे पुरुष और महिलाओं की विभिन्नतापूरक आवश्यकताओं को समझने में मदद मिलेगी। उन नीतिगत पद्धतियों से समता तथा सशक्तिकरण प्राप्त नहीं किया जा सकता जो महिलाओं को पहले से चली आ रही योजनाओं में मात्र जोड़ने तक सीमित हैं। विकास नीतियाँ एक ऐसे सामाजिक सम्बन्ध ढाँचे पर आधारित होनी चाहिए जो लिंग आधारित भूमिका तथा आवश्यकताओं के प्रतिक जवाबदेही हो। इसके अतिरिक्ति विकास नीति न्यायसंगत रूप से

एक सार्वभौतिक वर्ग 'महिला' के द्वारा व्याख्यायित नहीं की जा सकती, वो भी तब जब कि ऐसा वर्ग अस्तित्व में ही नहीं है। विश्व भर में पाई जाने वाली महिलाओं में शक्ति, संसाधन तथा हितों की दृष्टि से वस्तुगत विभिन्नता है, और ये विभिनिताएँ प्रभावपूर्ण ढंग से महिला की विकास संबंधी अवधारणा की ओर में लुप्त हो जाती है और नकार दी जाती है। इस सच्चाई का खुलकर विरोध एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के महिला समूहों ने किया। सभी पुरुषों के लिए एक से लाभ तथा सभी महिलाओं के लिए एक से नुकसान के रूप में स्वयं में भी विकास क्रियाशील नहीं हो सकता। महिलाएँ, पुरुषों की अपेक्षा संरचनात्मक रूप से अलाभकारी स्थिति में हैं। जबकि तृतीय विश्व के पुरुष और महिलाएँ दोनों, प्रथम विश्व पुरुषों और महिलाओं की तुलना में संरचनात्मक अलाभकारी स्थिति में हैं। अत: डॉन (DAWN) (नए युग की महिलाओं को प्राप्त विकास विकल्प) (Development Alternation with Women for a New Era), एक तृतीय विश्व कार्यकत्ताओं के समूह ने सुझाव दिया कि एक अधिक समतापूरक विकास की रणनीति उन अधिकांश पीड़ित महिलाओं की बेहतरी के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बनाई जानी चाहिए, जिन्हें अब तक वर्ग, नस्ल तथा राष्ट्रीयता के रूप में प्रतिनिधित्व से वंचित रखा गया है। विकास मुद्दों में केवल तभी पराधीनता की जटिलताओं का ध्यान रखा जाना संभव होगा। बरसों से इन्हीं विचारों ने विकास नीतियों को प्रभावित किया है तथा विश्वभर की महिलाओं को समता, समानता तथा सशक्तिकरण की प्राप्ति एक औचित्यपूर्ण विकास लक्ष्य बन चुका है।

3.5 लिंग आधारित आवश्यकता, भूमिका तथा रणनीति की पहचान

विकास नीतियों में नियोजन तथा उनके कार्यान्वयन के आवश्यक ढाँचे के रूप में दो महत्वपूर्ण अवधारणात्मक तर्क प्रस्तुत किये गए हैं। जिनका महिलाओं को विकास की दृष्टि से विशिष्ट घटक के रूप में देखे जाने के बारे में तथा लिंग आधारित संबंधों की दृष्टि से विस्तार से वर्णन किया जाना आवश्यक है। वे निम्नलिखित हैं:

- लिंग आधारित भूमिका की आवश्यकताएँ
- घर गृहस्थी के अंदर संसाधन तथा निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में नियंत्रण।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

पुरुष, महिलाएं और घर

विकास का लक्ष्य परिवार और घर होने के कारण यह मान लिया गया कि परिवार और घर का अंग होने के कारण महिलाओं को विकास से लाभ पहुंचता है। महिलावादी शोधकर्ताओं का कहना था कि घर और समाज में महिलाओं और पुरुषों की अलग-अलग भूमिकाएं है और इस कारण घर के भीतर ही संसाधनों और शक्ति के लिए दोनों की पहुंच में अन्तर होता है। इस कारण विकास के लिए महिलाओं की आवश्यकताओं को घर के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं के साथ मिलाया नहीं जा सकता। इसलिए विकास के लिए नियोजन हेतु घर का लिंग के आधार पर विभाजन करना पहले नियम के रूप में प्रस्ताविक किया गया था जो महिलाओं और पुरुषों की विशिष्ट आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी होगा।

कैरोलिन मोज़र के अनुसार विकास लोगों, विशेषत: महिलओं की आवश्यकताओं से काफी कम रह जाता है और इसका कारण कम आय वर्ग के घरों, उनके भीतर श्रम के विभाजन तथा घर के भीतर शक्ति और संसाधनों के नियंत्रण के प्रति विकास योजनाकारों की रूढ़िवादिता है। उसने विशेष रूप से पश्चिमी परिप्रेक्ष्य से निकली तीन मान्यताओं को दोषपूर्ण पाया जिसने विकास के प्रयासों को विकसित किया, क्योंकि इन मान्यताओं का तीसरी दुनिया के संदर्भ में कोई वजूद नहीं था। ये हैं:

1) घर में एकल परिवार होता है जिसमें, पति, पत्नी और दो या तीन बच्चे होते हैं।

2) घर एक सामाजिक-आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करता है जिसके भीतर घर की आजीविका

को प्रभावित करने वाले मामलों में सभी व्यस्क सदस्यों का निर्णय लेने की शक्ति और संसाधनों पर समान नियंत्रण होता है।

3) घर के भीतर लिंग के आधार पर श्रम का स्पष्ट विभाजन होता है। रोटी कमाने वाला घर का आदमी प्राथमिक रूप से घर के बाहर, उत्पादक कार्यों में जुटा रहता है जबकि महिला घर निर्माता एवं घरेलू महिला के रूप में प्रजनन तथा घर के सभी घरेलू कार्यों को पूरा करने की ज़िममेदारी लेती है। (मोज़र 1993 : 15-16)।

पहले तो एकल परिवार और इसमें श्रम विभाजन का सिद्धांत आदर्शात्मक है जो वास्तविकता को विरूपित कर देता है। यह भी इंगित किया गया है कि घर एक आवासीय इकाई के रूप में परिवारों से भिन्न होता है। परिवार एक सामाजिक इकाई है जो विवाह के बंधन और संतान से बना होता है। यद्यपि परिवार और घर एक से लगते हैं परन्तु दोनों को एक मान लेना लक्षित इकाई के लिए विकास की आवश्यकताओं की प्रकृति के प्रति गलतफहमियों की ओर ले जाएगा। इससे अधिक न केवल घर ही संरचना और संगठन के आधार पर विषयमांगी ही नहीं होती अपितु यह भी तथ्य है कि इन ढांचों में महिलाएँ भिन्न पदों पर आसीन हैं। इसलिए परिवार को सामाजिक और आर्थिक सन्दर्भ के बिना तथा ऐसी इकाईयों की निरंतर पुनर्रचना के लिए समकालीन दबावों के बिना, एक निष्क्रिय इकाई के रूप में मानना समस्याएँ ही पैदा करेगा।

उदाहरण के लिए प्रायः यह साधारणयता माना जाता है कि घर का मुखिया पुरुष होता है, परन्तु स्थिति वहां बिल्कुल भिन्न होती है जहाँ घर की मुखिया महिलाएँ होती हैं, जहाँ परित्याग, मृत्यु, पुरुष पलायन, युद्ध की स्थिति असुरक्षा और विनाश देखने को मिलता है। महिला आधीनता इस झूठी मान्यता पर आधारित है कि रोटी कमाने वाले और आश्रित महिलाओं को आर्थिक सहारा देने वाले पुरुष होते हैं। जबकि यह कुछ मामलों में औद्योगिक समाजों की एक विशेषता हो सकती है परन्तु यह एक सीमित अवधारणा है और कम आय वर्ग के घरों और उनकी सच्चाई का प्रतिनिधित्व नहीं करती जहाँ महिलाएँ ही वास्तव में प्राथमिक और केवल मात्र वही कमाने वाली हैं। कैरीबियन, लेटिन अमेरिका का बड़ा भाग, केन्द्रीय अमरीका और अफ्रीका के कुछ भाग, महिला प्रधान घरों से आर्थिक रूप से संदिग्ध लोगों का एक बड़ा हिस्सा बनता है जो प्रायः गरीबी रेखा से नीचे रहते हैं। जहाँ मां अकेली ही आय कमाने वाली व्यस्क है और उस पर निर्भर कई बच्चे हैं तो वहां गरीब बच्चों के स्कूल छोड़ने, काम करने तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी गरीबी के स्थानान्तरण के रूप में प्रकट होती है। महिलाएँ अपनी बहुपक्षीय भूमिकाओं को संतुलित करती हैं तथा यह मान्यता कि वे आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर करती है, उनके हितों के विरुद्ध विकास नीति को प्रभावित कर सकती है। ऐसे कई उदाहरण रहे हैं जब परिवार में महिलाओं की झूठी मान्यताओं का परिणाम यह है कि उनकी मज़दूरी और कृषि में सहभागिता में कटौती हो रही है तथा उन्हें विकासात्मक गतिविधियों, जिनमें भू-स्वामित्व, ऋण विस्तार तथा अन्य सेवाएँ सम्मिलित हैं—से बाहर किया जा रहा है।

इसी प्रकार घर को एक प्राकृतिक सामाजिक, आर्थिक इकाई मानने की झूठी मान्यता पहले ही यह मान लेती है कि एक परिवार के पारिवारिक संसाधनों पर परिवार के सभी सदस्यों का समान नियन्त्रण होता है तथा परिवार के व्यस्क सदस्य घरेलू निर्णय करने की शक्ति में संयुक्त रूप से भागीदार होते हैं। घरों के बीच की सक्रियता का महत्व है कि संसाधनों के असमान वितरण, श्रम के असमान आदान-प्रदान तथा इसके लाभों की अवहेलना और शक्ति तथा नियंत्रण के प्रश्नों का हल ढूंढना छोड़ दिया जाता है। घरेलू व्यवहार की आर्थिक तर्क संगतता घर के बीच सम्बन्धों की जटिल पंक्तियों और परस्पर क्रियाओं के विरुद्ध होती है तथा घर को एक अलग निर्णय लेने वाली इकाई के रूप में मानती है। घर को उपयोगिता बढ़ाने वाली अत्यंत प्रासंगिक इकाई मानना असमान आदान-प्रदान की स्थितियों तथा परिवार

के सदस्यों के बीच शोषण को खोजना और उसका उपचार करने की सम्भावनाओं को समाप्त कर देता है। अनुभाविक साक्ष्य हैं कि महिलाओं और पुरुषों के हितों में विरोध और परस्पर अन्तर्निभरता है तथा लैंगिक असमानताओं को प्राय व्यक्तिगत योगदानों तथा पुरुषों और महिलाओं के हितों की अवधारणा में कोई एक पक्ष ले कर तर्क संगत बनाया जाता है। अन्तर-घरेलू संसाधनों के वितरण में असमानताओं के पीछे आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सैद्धांतिक कारण होते हैं।

सामान्यत: यह माना जाता है कि परोपकार की भावना पारिवारिक सम्बन्धों को सम्भालती है और परिवार के कल्याण के संयुक्त लक्ष्य के लिए परिवार के अलग-अलग सदस्य अपनी वैयक्तिक्ता को दबा देते हैं। विशेष रूप से विवाहों को दूसरी सामाजिक संस्थाओं को खराब करने वाले संघर्षों के स्थान पर प्रेम और त्याग से सजा हुआ माना जाता है। यह विश्वास की विवाह तथा परिवार का अर्थ पुरुष और महिला के बीच साझेदारी है जो संयुक्त उद्देश्यों के आधार पर साझा की जाती है और जहां अधिकारों तथा दायित्वों का आदान-प्रदान होता है और जिसके आधार पर संसाधनों का संयुक्त नियन्त्रण और प्रबंधन इस प्रकार होता है कि साझा संसाधनों पर प्रत्येक की अपनी आवश्यकता अनुसार अधिकार और पहुंच होती है, दरअसल वास्तविकता को झुठलाता है। पहले तो यह आवश्यक नहीं है कि घर विरोधी हितों का संग्रह हो। यद्यपि साझेदारी घरेलू वितरण का मुख्य सिद्धांत हो सकता है पर इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक की संसाधनों तक समान पहुंच होती है। संसाधनों, विशेषकर दुर्लभ संसाधनों तक लोगों की पहुंच लिंग को परिभाषित करने का एक महत्वपूर्ण तत्व है। उदाहरण के लिए आमतौर पर गरीब घरों में महिलाओं को खाने के लिए कम मिलता है और उन्हें कठिनाइयाँ सहने के लिए सामाजिक स्तर पर तैयार किया जाता है ताकि उनके पुरुषों को बेहतर सेवा और संसाधन मिल सके। माँ का परोपकार महिलाओं का गुण समझा जाता है और अधिकांश घरों में महिलाओं का यह दायित्व है कि वे नियमित रूप से भोजन, आराम, स्वास्थ्य एवं मनोरंजन का त्याग करें ताकि पुरुषों को इनका बड़ा भाग सुलभ हो सके। इसी प्रकार महिलाओं की घरेलू वस्तुओं और सम्पत्ति तक सीधी पहुँच नहीं होती और उनका जो भी नियंत्रण होता है वह किसी पुरुष की पत्नी अथवा माँ होने के कारण होता है। इसके विपरीत पुरुषों की सम्पत्ति तक सीधी पहुंच होती है और स्वतंत्र निर्णय लेने में संस्कृति की स्वीकृति होती है।

MAADHYAM IAS

श्रम और ज़िम्मेदारियों का घरेलू वितरण भी बाजार में पुरुषों और महिलाओं को समान अवसर प्रदान करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और महिलाओं की आय अर्जित करने गतिविधियों को विस्तार देने की क्षमता पर रोक उन्हें पीछे धकेल कर आधीनता की अवस्था में ले जाती है जो हिंसा और अन्त घरेलू असमानता के खतरे से घिरी रहती है।

यह भी बताया गया है कि घर के अंदर संसाधनों का वितरण और प्रबंधन पुरुष और महिला के मुखिया होने पर अलग-अलग ढंग से होता है और यह दोनों लिंगों की लिंग आधारित उत्तरदायित्वों से जुड़ा होता है। पूरी दुनिया में किए गए अध्ययन यह दर्शाते हैं कि महिलाओं की आय का अधिकांश दिन-प्रतिदिन के भोजन, कपड़ों और घरेलू सामान पर खर्च होता है और इस प्रकार यह घरेलू सामान पर खर्च का अर्थ है कि पुरुषों की आय की तुलना में महिलाओं की आय का एक बड़ा अंश अस्तित्व और पोषण संबंधी आवश्यकताओं पर खर्च होता है। इस बात को रेखांकित करना अनिवार्य है कि 'पुरुष मुखिया' को घर की देखभाल करने वाला मानने की मान्यता को बहुत व्यापक स्तर पर स्वीकार नहीं किया जा सकता और केवल मुखिया अपने स्तर पर घर की आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता इसलिए उसका कल्याण घर के सभी सदस्यों का कल्याण नहीं माना जा सकता। जबकि यह सत्य है कि बहुत से मामलों में सांस्कृतिक, सैद्धान्तिक और रीति-रिवाजों से बहुत से यह प्रतीत होता है कि घर के भीतर एक बंटवारा स्वाभाविक और उचित होता परन्तु असमानता बनी रहती है क्योंकि स्त्री और पुरुष घर में अपने योगदान के मामले में निष्पक्ष न रहकर अपने

पक्ष को महत्त्व देते हैं। पुरुषों द्वारा प्रत्यक्ष पैसा कमाये जाने के कारण घर में उनके योगदान को अधिक महत्व मिलता है जिसके फलस्वरूप उन्हें घर के संसाधनों में अधिक हिस्सेदारी का हक मिल जाता है, जबकि महिलाओं द्वारा पूरे परिवार के कल्याण तथा बाजार से बाहर की गतिविधियों में लगाई गई ऊर्जा और समय को कम करके आँका जाता है, यद्यपि इसी कारण पुरुषों को अप्रत्यक्ष रूप से बाजार उद्यम में सहयोग एवं बल मिलता है। विकास गतिविधियों के नियोजन के लिए व्यक्ति के हितों तथा कल्याण का सही आंकलन आवश्यक है जो घर में असमानताओं की क्रियाशीलता की समझ पर आधारित होना चाहिए।

लैंगिक भूमिकाएँ तथा महिलाओं के विकास पर उनका प्रभाव

महिलाओं को प्रायः पराश्रित अथवा गृहनिर्माता के रूप में माना जाता है—वे तीन मूल दायित्वों को निभाती हैं जिन्हें विकासात्मक साहित्य में उनकी तिहरी भूमिका के रूप में वर्णित किया गया है। पहले तो महिलाएँ प्रजनन का कार्य करती हैं जिसमें गर्भ धारण करने से लेकर बच्चा पालने तक का कार्य सम्मिलित है। दूसरे तीसरी दुनियां में कम आय वाले घरों की महिलाएं उत्पादक कार्य करती हैं अर्थात् ऐसे कार्य जिनके बदले वेतन मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह कार्य कृषि कार्य हो सकता है और शहरी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में महिलाएं अपने घर के निकट अनियमित क्षेत्रों में कार्य करती हैं। तीसरे अपने प्रजनन सम्बन्धी दायित्व के एक अंग के रूप में महिलाएँ समाज प्रबन्धन कार्यों को करती हैं, जो समुदाय अथवा पड़ोस के (निकट के) लोगों की सामूहिक खपत की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सहायक होती हैं। महिलाओं के इन तिहरे कार्यों के बावजूद उनके कार्य को दिखाया नहीं जाता क्योंकि या तो उनके कार्य को उनके प्रजनन की शारीरिक भूमिका का प्राकृतिक विस्तार माना जाता है अथवा उनके कार्य को दूसरी श्रेणी (महत्त्वहीन) का माना जाता है। इसके उल्ट अधिकांश समाजों में पुरुषों को उत्पादन कार्यों में जुटा हुआ माना जाता है जबकि वे बेरोजगार अथवा कभी-कभार कमाने वाले हो सकते हैं। जहां तक प्रजनन भूमिका का सम्बन्ध है अधिकांश समाजों में पुरुषों की प्रजनन में कोई स्पष्ट भूमिका निश्चित नहीं की गई है तथा जब सामाजिक जुड़ाव की बात होती है तो वे खपत सम्बन्धी स्वैच्छित सेवा कार्य नहीं करते अपितु समुदाय नेतृत्व का कार्य करते हैं जिसके लिए या तो उन्हें पैसा मिलता है अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। महिलावादियों ने लिंग आधारित श्रम विभाजन को महिलाओं की आधीनता का कारण और प्रभाव माना है। उन्होंने कार्य को उत्पादक और प्रजनन के दोहरे विभाजन का विरोध किया क्योंकि इस विभाजन का अभिप्राय प्रजनन कार्य के उत्पादक तत्वों को नकारना था। ऐसा संकेत दिया गया है कि महिलाओं का प्रजनन कार्य श्रम शक्ति का उत्पादन भी करता है और उसे बनाए भी रखता है जो मूल उत्पादक गतिविधियों तथा उसके बाद के उत्पादक उद्यमों के लिए आवश्यक है, की पूर्ति करता है। पूंजीवादी विकास महिलाओं और पुरुषों की भूमिकाओं के बीच इस ऐतिहासिक और कृत्रिम श्रम विभाजन के लए स्वयं उत्तरदायी माना जाता है, जिसे बाद में सैद्धांतिक रूप से लागू किया गया। कई महिलावादियों ने महिलाओं के इस घरेलूकरण को औद्योगिक क्रान्ति के साथ जोड़ा जिससे आधुनिक नकदी की अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ जिसने महिलाओं को उनकी परम्परागत अपने गुजारे योग्य गतिविधियों से अलग कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप महिलाओं की कृषक, दस्तकार और व्यापारी के रूप में स्वायतत्ता समाप्त हो गई। मूल दायित्व के रूप में आई घरेलू महिला की भूमिका का न तो महत्व दिया जाता है और न ही इसके बदले में कुछ दिया जाता है और इस प्रजनन कार्य को वह मान्यता और सम्मान नहीं मिलता जिसका यह हकदार है। जहाँ तक उत्पादन कार्य के क्षेत्र है—महिलाओं के घरेलूकरण का सिद्धांत पुरुषों और महिलाओं के कार्यों के बीच असमानता तथा उनकी परिवर्तनीय शक्ति पर पर्दा डालता है। महिलाओं को न केवल अर्थव्यवस्था के निचले सिरे के काम मिलते हैं, जो कम कौशल एवं पुरुषों की इच्छा के नहीं होते तथा जिनके लिए वेतन भी कम मिलता है। इसके साथ ही अपनी बहुमुखी भूमिकाओं के कारण उनके शोषण, काम के अतिरिक्त बोझ एवं नाजायज परेशान किए जाने की शंका बनी रहती है। इसके बावजूद भी घरों और समुदाय में महिलाओं द्वारा किया गया अवैतनिक कार्य तथा

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

उत्पादक क्षेत्र में किए अल्पवैतनिक कार्यों ने महिलाओं में कोई बड़ा विवाद उत्पन्न नहीं किया क्योंकि वे स्वयं लिंग आधारित भूमिका को स्वीकार करती हैं तथा इसके अतिरिक्त उनके पास कोई चारा नहीं है।

व्यावहारिक और नीतिगत लैंगिक आवश्यकताएं

विकास की चर्चा मानवीय आवश्यकताओं और उनकी पूर्ति का सिद्धांत यह अनुमान लगाने के लिए एक कसौटी के रूप में उभर कर आया है कि क्या इनके साथ दखलंदाजी विकास की ओर ले जाती है अथवा नहीं। लैंगिक विकास का अध्ययन करते समय व्यवहारिक और महत्वपूर्ण लैंगिक आवश्यकताओं के जुड़वा सिद्धांतों पर ध्यान देना अनिवार्य है। महिलाओं और पुरुषों की समाज में भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ हैं, इसलिए उनकी सम्बन्धित प्राथमिकताएँ भी भिन्न-भिन्न है। मैक्सिन मोल्नेक्स (Maxine-Moleneux) ने इस भेद को समझा था जिसका बाद में केरोलिन मोजर ने विकास योजनाकारों से लैंगिकता के प्रति संवदेनशील होने की पैरवी करते हुये विस्तृत वर्णन किया था। मोल्नेक्स और मोजर के अनुसार **महिलाओं के** हित तथा **लैंगिक हित** अलग-अलग होते हैं। दोनों में समानता नहीं है। महिलाओं के हित वे हित हैं जो शारीरिक रूप से स्त्री होने के कारण से पूरी दुनिया में एक से हैं। वास्तविक जीवन में महिलाएँ ऐसे समाज में रहती हैं जहां उनकी स्थिति मात्र उनके लिंग से नहीं अपितु उनके वर्ग, संजातीयता और लिंग जैसे महत्त्वपूर्ण घटकों के आधार पर निश्चित की जाती है, अतः महिलाओं के हितों और आवश्यकताओं को एक समान प्रस्तुत करना गलत होगा। अपितु योजनाकारों को योजना बनाते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि महिलाओं की आवश्यकताएँ और हित समाज में उनकी सामाजिक स्थिति के अनुसार बदलती रहती है— और यह स्थिति उनके विशिष्ट तथा सामाजिक, आर्थिक संदर्भ विशिष्ट वर्ग, संजातीयता और धर्म जैसे घटकों के आधार पर परिभाषित की जाती है। इस कारण महिलाओं के सामान्य हितों को, जो वे परस्पर संयुक्त रूप से बांटती हैं, लैंगिक हित कहना महत्वपूर्ण है, परन्तु महिलाओं के लिए योजनाएँ बनाते समय यही शब्द बदल कर 'लैंगिक आवश्यकताएँ' हो जाते हैं।

MAADHYAM IAS

विकास और परिवर्तन के लिए योजनाएँ लक्ष्य के विभिन्न स्तरों पर ध्यान केन्द्रित रखती हैं क्योंकि नीतिगत दखलंदाजी से सीमित परिणाम ही प्राप्त किए जा सकते हैं। अतः लक्ष्य और परिणाम के बीच अस्पष्टता कम करने के लिए नीतिगत और व्यावहारिक आवश्यकताओं में भेद करना बहुत लाभदायक है।

मोज़र की परिभाषा

नीतिगत लैंगिक आवश्यकताएँ, वे आवश्यकताएँ होती हैं जो महिलाएँ समाज में अपनी अधीन स्थिति के कारण से आवश्यक मानती हैं। नीतिगत लैंगिक आवश्यकताएँ विशेष संदर्भों के कारण बदलती रहती हैं। उनका सम्बन्ध लिंग के आधार पर श्रम के विभाजन, शक्ति और नियंत्रण तथा इनमें कानूनी अधिकार, घरेलू हिंसा, समान वेतन और महिलाओं का अपनी संस्थाओं पर नियन्त्रण जैसे मुद्दे सम्मिलित हो सकते हैं। नीतिगत लैंगिक आवश्यकताओं की पूर्ति महिलाओं को समानता प्रदान करने में सहायक होती है। यह वर्तमान भूमिकाओं को परिवर्तित करती है और इस कारण महिलाओं की अधीनस्थ वाली परिस्थिति को चुनौती देती है। व्यावहारिक आवश्यकताएँ, वे आवश्यकताएँ हैं जो महिलाओं को समाज में उनकी स्वीकृति भूमिका के लिए आवश्यक हैं। व्यावहारिक लैंगिक आवश्यकताएँ लिंग आधारित श्रम-विभाजन अथवा समाज में महिलाओं की आधीन स्थिति को चुनौती नहीं देती, यद्यपि यह स्थिति समाज से ही उत्पन्न होती है। व्यावहारिक आवश्यकताएँ एक विशेष सन्दर्भ में पहचानी गई तत्कालिक आवश्यकताओं का प्रत्युत्तर होती है। यह आवश्यकताएँ प्रकृति (स्वभाव) से व्यावहारिक होती हैं और इनका सम्बन्ध जीवन की आवश्यकताओं जैसे पानी क प्रावधान, स्वास्थ्य सेवाओं तथा रोजगार जैसी कमियाँ से सम्बन्धित होती हैं। (मोजर 113:40)।

यह स्पष्ट है कि नीतिगत लैंगिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कार्य करने से सामाजिक सम्बन्धों में ऐसा बदलाव आता है जिससे महिलाओं को अधिक समानता और शक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार का परिवर्तन तत्कालीन व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करने की एक अलग प्रकार की चेतना और प्रतिबद्धता पर निर्भर करता है। व्यावहारिक लैंगिक आवश्यकताएँ जिन्हें घरेलू क्षेत्र में महिलाओं की वस्तु स्थिति आय-अर्जन की गतिविधियों अथवा समुदाय आधारित संसाधनों से बेहतर तारतम्य बैठाने की दृष्टि से पूरा करने के प्रयास से इस प्रकार का कोई बदलाव नहीं होता यद्यपि ये प्रयास महिलाओं को उनकी लैंगिक भूमिकाओं और दायित्व निभाने में राहत प्रदान करते हैं। अधिकांश विकासात्मक गतिविधियों का उद्देश्य महिलाओं की व्यावहारिक लैंगिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना होता है और ये गतिविधियाँ लिंग आधारित श्रम विभाजन अथवा महिलाओं को आधीन बनाने वाले समाज के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संगठन को सीधी चुनौती नहीं देतीं। यद्यपि नीतिगत आवश्यकताओं पर आधारित विकासात्मक गतिविधियों को महिलावादी तथा महिलाओं की व्यावहारिक आवश्यकताओं तक पहुँच को सरल बनाने वाली गतिविधियों को कम महिलावादी कहना ठीक नहीं होगा क्योंकि दोनों का परस्पर सम्बन्ध है और वास्तव में उन्हें प्राय: एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

> **सोचिये और कीजिए 3.3**
>
> किस प्रकार लैंगिक भूमिकाएँ विकास प्रक्रिया में महिलाओं की प्रतिभागिता को प्रभावित करती हैं? इस प्रश्न का उत्तर समुचित उदाहरणों सहित दीजिए।

3.6 महिलाएँ एवं विकास के परिप्रेक्ष्य

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

महिला विकास के कई महत्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य हैं। आईये हम उनमें से कुछ का परीक्षण करें।

क) संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य

विकास का संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य विकास नीतियों में 'विकास में महिला' दृष्टिकोण का विरोधी है क्योंकि यह दृष्टिकोण समाज में संघर्ष की मूल भावना पर आधारित है जिससे संसाधनों और सत्ता के लिए प्रतिद्वंद्विता पैदा होती है जो वर्ग संघर्ष के रूप में इस प्रकार प्रकट होती है कि प्रभुत्व और अत्याचार का संरचनात्मक आधार होता है। वर्तमान व्यवस्थाओं में परिवर्तन को समायोजन और सुधारों के रूप में नहीं अपितु तीव्र और क्रांतिकारी बदलाव के रूप में देखा जाता है जिसका परिणाम सत्ता और संसाधनों का अधिक न्यायोचित वितरण होता है।

मार्क्सवाद, संघर्ष के सिद्धांत एवं विचारधारा का महत्वपूर्ण स्रोत है। मार्क्सवाद की मान्यता है कि 'विकास में महिला' दृष्टिकोण के अनुरूप आर्थिक आधुनिकीकरण के रूप में विकास अथवा पूँजीवादी विकास ने तीसरी दुनिया की महिलाओं को हाशिये पर ला खड़ा किया है। यह 'विकास में महिला' दृष्टिकोण से आगे जाकर लिंगभेद को गहरे संरचनात्मक और द्वंद्वात्मक स्तर पर देखता है और विश्वभर में असमान, विषय और असंतुलित रूप से हुए पूँजीवाद के विकास तथा सामाजिक वर्गों में व्याप्त असमानता से जोड़ता है। यद्यपि मार्क्सवाद की इस आधार पर आलोचना की जाती है कि यह अपने वायदों को पूरा करने में असफल रहा है। जबकि मार्क्सवाद पूँजीवाद विकास को उत्पादन की अधिश्रेणिक संरचना के रूप में वर्णित करता है जिससे छोटे परन्तु शक्तिशाली संसाधन सम्पन्न अल्पसंख्यक वर्ग का उदय होता है और बहुत बड़ा बहुसंख्यक तिरस्कृत वर्ग उत्पादन के साधनों से बेगाना हो जाता है। मार्क्सवाद स्वयं में महिलाओं की अधीनता और फिर पुरुषों की आधीनता को स्पष्ट नहीं कर पाया जबकि यह पूंजीवाद के अत्याधिक उत्पादन का परिणाम है। महिलावादियों ने इस बात की आलोचना की कि महिलाओं पर अत्याचार को एक विशिष्ट प्रकार के उत्पादन के सिद्धांत में बदलकर मार्क्सवादियों ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया कि महिलाओं पर अत्याचार से पुरुष, न कि केवल पूँजी का सिद्धांत लाभान्वित होता है। इस अवधारणा में मानव की चेतना को

सामाजिकता के रूप में पूरी तरह नकारा जाता है और व्यक्ति को वर्ग हितों के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है। महिलाओं द्वारा पुरुषों की प्रधानता और नियंत्रण के विरोध झूठी चेतना और अल्प संख्यकों पर शासन करने की रणनीतियों के परिणाम के रूप में स्वत: खारिज हो जाता है।

इन स्पष्टीकरणों से असंतुष्ट कुछ महिलावादियों ने महिला आधीनता को नए दबावों के एक प्रभाव के रूप में वर्णित करने के मार्क्स के मूल तर्क पर कि यह आधीनता विश्व स्तर पर पूंजी आधारित विकास से उत्पन्न हुई असमानताओं का परिणाम है, पुन: कार्य किया। महिलावादियों के एक वर्ग ने आधीनता के सिद्धांत के साथ अपना तर्क जोड़ा कि उत्पादन का पूँजीवाद ढंग केन्द्रीकरण की प्रकृति को बढ़ावा देता है और तीसरी दुनिया के परिधीय देशों तथा पहली दुनिया के महानगरों के बीच (आधीनता) निर्भरता का सम्बन्ध इस प्रकार से पैदा करता है कि तीसरी दुनियां की महिलाओं का विकास बुरी तरह प्रभावित होता है जबकि पहली दुनिया की महिलाओं को ऐसे अवसर उपलब्ध होते हैं जो अब तक उनकी पहुँच से बाहर थे। ये विचार रोजा लाक्सम्बर्ग के विचार से प्रेरित थे कि पूँजीवाद से पूर्व की उत्पादन विधियाँ पूँजीवाद के संवर्द्धन के लिए आवश्यक सुविधा प्रदान करती हैं। सैफियोटी का मत था कि पूँजीवाद पूर्व के उत्पादन ढंग का एक उदाहरण परिवार है जिसने महिलाओं के श्रम, उनके समय और ऊर्जा का वाजिब भुगतान किए बिना उनके दम पर पूँजी संचय को सहयोग दिया क्योंकि परिवार इस प्रकार से संगठित होता है कि वहां ठेके पर अनुबंधित श्रम से अधिक स्वैच्छिक सेवा भावना से उत्पादन सम्बन्ध परिभाषित होते हैं। महानगरीय केन्द्रों में पूँजी संचय तीसरी दुनिया की महिलाओं की कीमत पर सम्भव हो सका, जिन्हें हाशिये पर होने तथा बढ़ती गरीबी से दो-दो हाथ करने पड़ते हैं; जबकि उनका अवैतनिक का श्रम अथवा उनका आरक्षित श्रम पूँजीवाद व्यवस्था को लाभ पहुँचाने के लिए प्रयुक्त किया गया। प्रचलित पैतृक गृह स्वामी की भूमिका के सिद्धांत को महिलाओं की आधीनता का सीधा कारण माना गया क्योंकि महिलाओं को उनकी शारीरिक रचना और सामाजिक भूमिका के कारण घर की चारदीवारी में बंद रखने का तर्क इसकी ही देन था। निर्भर महिलावादियों ने इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और घरेलू स्तर पर विभिन्न प्रकार की असमानताओं के बीच सम्बन्धों की गणना की। उन्होंने भी मार्क्स की अवधारणा के अनुरूप इस विचार को स्वीकार किया कि पुरुष और महिलाओं के संयुक्त वर्ग हित हैं और उन्हें पुरुषों द्वारा अपने घरों में महिलाओं के भौतिक शोषण के पीछे कोई तर्क समझ नहीं आया। लैंगिक आक्रमकता और पुरुषों द्वारा आधीनता को शोषणकारी पूँजीवाद उत्पादन में सम्मिलित पुरुषों की खीझ और असहास स्थिति का परिणाम बताया और इस प्रकार उत्पादन सम्बन्धों के आधार पर महिलाओं और पुरुषों के सम्बन्धों की अवहेलना हुई जहाँ लोगों के उत्पादन की तुलना में विनिमय मूल्य वाली वस्तुओं के उत्पादन को अधिक महत्त्व दिया गया।

MAADHYAM IAS

जर्मन महिलावादी विचारक मारिया माईस (Maria Mies) ने लक्सम्बर्ग के सिद्धांत का सहारा लेते हुए वर्ग को मूल विरोध मानने से असहमति जताते हुये लिंग को प्राथमिक विरोध का आधार माना। पुरुष और महिलाओं के बीच आधारभूत जैविक अंतर यह था कि महिलाएँ प्रकृति और वातावरण के साथ अपने सम्बन्धों को अलग तरह से अनुभव करती थीं। वे अपने पूरे शरीर को प्रकृति की तरह उत्पादक समझती थीं जबकि इसके विपरीत पुरुष अपने हाथों और औजारों से, जो हाथों का ही विस्तार थे, उत्पादन कर सकते थे। माइस के अनुसार पुरुषों का प्रकृति के साथ लुटेरो जैसा सम्बन्ध था और सत्ता की लालसा में उसने प्रकृति की भांति दिखने वाली महिलाओं के साथ भी वैसे ही सम्बन्ध स्थापित किये।

वह पूँजीवाद को पुरुष प्रधान व्यवस्था की ताजा अभिव्यक्ति मानती है जो मानव इतिहास में बहुत पहले से प्रचलित थी, जब से उसने यह अनुभव किया था कि वे अपने द्वारा बनाए गए विनाशकारी हथियारो से महिलाओं तथा पशुओं को पालतू बनाने के लिए प्रयोग कर सकते हैं और इस प्रकार अधिक आर्थिक लाभ कमा सकते हैं। जब से पुरुष उत्पादन के लिए

महिलाओं को आवश्यक शारीरिक पूर्व शर्त की पूर्ति के रूप में देखा जाने लगा तब से पुरुषों ने महिलाओं का अपना पहला शिकार (गुलाम) बनाया। इसके पश्चात् की सभी क्रियाएं लुटेरा प्रवृत्ति का उत्पादक ढंग थीं। 'औपनिवेशीकरण' तथा 'घरेलू महिला बनाना' ऐसे दो तरीके हैं जो महिलाओं और कमज़ोरों पर अपनाये जाते हैं और फिर उनका शोषण और नियंत्रण न्यायोचित हो जाता है। माईस का हिसाब-किताब मार्क्स से इस आधार पर भिन्न है कि वह पुरुष और स्त्री के बीच सम्बन्धों को सत्ता का सम्बन्ध मानती है तथा महिलाओं पर अत्याचार के लिए पूँजीवाद को दोष देने के बजाये पितृसतात्मक व्यवस्था को दोषी मानती हैं। वह महिलाओं पर होने वाली विभिन्न प्रकार की हिंसा को विभिन्न प्रकार की उत्पादन व्यवस्थाओं में किसी भी रूप में उपस्थित पितृतंत्रवाद की अभिव्यक्ति मानती है तथा पहली दुनिया और तीसरी दुनिया दोनों में महिलाओं के शोषण और अत्याचार को समान मानती हैं। पुरुष प्रत्येक स्थान पर हिंसक होते हैं क्योंकि वे पूरे विश्व में पितृतंत्र को श्रेष्ठ मानते हैं, परन्तु वर्तमान में गोरे लोग विनाश की प्रौद्योगिकी पर नियंत्रण रखते हैं, इसलिए माईस उन्हें अन्य लोगों से अधिक दोषी मानती है।

सोचिये और कीजिए 3.4

आप घरेलू महिलाकरण से क्या समझते हैं? आपकी राय में इस प्रक्रिया को किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है?

ख) लैंगिक सम्बन्धों का ढांचा

ऊपर दिए गए दोनों संरचनात्म वर्णन महिलाओं पर पूँजीवाद के प्रभाव को तथा इसकी पितृतंत्र से अन्तर्क्रिया का वैश्विक सरलीकरण करते हैं। इन वर्णनों और विचारों की महिलाओं के एक समूह द्वारा मीमांसा (समालोचना) की गई है जिन्होंने विकास के प्रति लैंगिक विश्लेषणात्मक उपागम को बढ़ावा दिया। उसी के साथ 'विकास में महिला' की महिला की प्रगति को भी कम पाया गया क्योंकि केवल महिला पर ध्यान केन्द्रित करने से महिला और पुरुष दो अलग श्रेणियों का निर्माण होता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

लैंगिक विश्लेषण उपागम को बढ़ावा देने वाले लैंगिक सामाजिक सम्बन्धों को अपने विश्लेषण की मुख्य श्रेणी के रूप में अपनाते हैं और सामाजिक सम्बन्धों के मार्क्सवादी सिद्धांत को वस्तुओं के उत्पादन से आगे लैंगिक सम्बन्धों के क्षेत्र तक जैसे प्रजनन, बच्चों, बूढ़ों, बीमारों की देखभाल और श्रम के दैनिक पुर्नत्पादन के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक विषय तक विस्तार देते हैं। शक्ति की जड़ों को सदैव पुरुषों में देखना तथा महिलाओं को सदा इससे वंचित देखने के बजाय यह उपागम सामान्य रूप से सत्ता को लैंगिक सम्बन्धों में अन्तर्निहित देखता है। जबकि यह उपागम महिलाओं की घर में आधीनता का वर्णन लैंगिक संदर्भ में करता है तो भी यह स्वयं को घर तक सीमित नहीं कर लेता और घर से उभरने वाले भिन्नतापूर्ण सम्बन्धों की परस्पर अन्तर्क्रियाओं का विश्लेषण करता है तथा सम्बन्धों को विस्तृत आर्थिक क्षेत्र के सम्बन्ध में परिभाषित करता है। अत: लैंगिक सम्बन्ध केवल स्त्री-पुरुष के बीच सम्बन्ध मात्र नहीं है अपितु ये पूरे सामाजिक सम्बन्धों से सम्बन्धित हैं जिनके माध्यम से पुरुष अधिक पुरुष और महिलाएँ अधिक महिला के रूप में प्रकट होती हैं। लिंग से अधिक ये सामाजिक विभेदीकृत प्रबन्ध तथा लैंगिक व्यवहार और सम्बन्धों के ढांचे हैं जो महिलाओं एवं पुरुषों द्वारा इस दुनिया के विभेदपूर्ण अनुभवों को परिभाषित करते हैं। लैंगिक सम्बन्धों का ढांचा इस प्रकार स्त्री और पुरुष को जैविक आधार पर परखने और बांटने से मुक्त करता है जबकि ठीक उसी समय यह उपागम दो भिन्न लिंगों के शरीरों के तथ्य को स्वीकार करता है, जिससे लैंगिक सम्बन्धों को परिभाषित करने तथा लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए भिन्न नियमों तथा पद्धतियों को सक्रिय होना पड़ता है।

यह ढांचा आगे जाकर इस बात पर बल देता है कि अन्य सामाजिक सम्बन्ध जैसे वर्ग, जाति, वैशावली इत्यादि लैंगिक असमानता को परिभाषित और अनुकूल बनाने में दखल देते (प्रभाव डालते) हैं। ताकि न तो वर्ग, न लिंग और न ही किसी अन्य गुण का व्यक्तिगत पहचान, सामाजिक स्तर अथवा सत्ता को पहचानने के सिद्धांत पर किसी दूसरे गुण से अधिक महत्व हो। सार्वभौमिक पितृतंत्र के बिना पुरुषों और महिलाओं के विषय में पुनर्विचार करने पर लैंगिक सम्बन्ध उपागम विभिन्न समाजों, समुदायों, संस्थानों और कार्य क्षेत्रें में विशिष्ट ऐतिहासिक ढंग से लैंगिक आधीनता को समझना संभव बनाता है और इस प्रकार पुरुष और महिलाओं की कार्य करने के ढंग, जीवनशैली तथा सम्बन्धों में बदलाव लाने हेतु अधिक वस्तुपरक और व्यावहारिक प्रयास करता है।

लैंगिक भूमिकाओं को सोच समझकर निर्धारित किया जाता है। एक लिंग को दूसरे से अधिक बढ़ावा देने के पीछे किसी अन्य कारण से अधिक स्पष्ट नियम और पद्धतियाँ हो सकती हैं जिनके पक्ष को जीव विज्ञान के सशक्त सिद्धांत मजबूत करते हैं। लैंगिक विभेद के अनेक व्यवहार जैसे लिंग आधारित, श्रम, विभाजन, श्रेष्ठ और न्यौछावर मातृत्व तैयार करना अथवा आक्रामक और हिंसक पौरुष पर अधिक तर्क संगत ढंग से प्रश्न उठ सकते हैं यदि एक बार यह मान लिया जाए कि इस प्रकार का व्यवहार न तो प्रवृति और प्रकृति जनित होता है और न ही जैविक कारणों से अपितु इस प्रकार का व्यवहार तो लैंगिक सम्बन्धों की एक व्यापक व्यवस्था के कारण होता है जिसमें एक लिंग को संसाधन और शक्ति एवं सत्ता के मामले में दूसरे से अधिक वरीयता एवं सुविधा प्राप्त होती है।

अन्त में योजनाकारों को यह समझ लेना चाहिए कि लिंग भेद कभी अनुपस्थित नहीं होता, यद्यपि परिवार लैंगिक गतिविधियों का ऐसा महत्वपूर्ण स्थल है जिसका विभिन्न सामाजिक संस्थाओं में पुरुषों और महिलाओं की प्रतियोगिता निश्चित करने के सिद्धांत में व्यापक प्रभाव होता है क्योंकि लैंगिक गतिविधियों का प्रारंभ घर से होकर अन्य क्षेत्रों में फैलता है। यह उत्पादन को प्रजनन एव पुनुत्पादन से घरेलू क्षेत्र को सार्वजनिक क्षेत्र से तथा लघु आर्थिक इकाइयों को व्यापक अर्थ व्यवस्था से जोड़ता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

लैंगिक सम्बन्ध उपागम की एक विशेषता है कि यह विश्लेषण का एक अनुमान आधारित तरीका है और इस प्रकार आधीनता और सत्ता में अनुभव किए अन्तर्विरोधी तथा विकासात्मक गतिविधियों के बहुपक्षीय परिणामों जो कभी मुक्ति और कभी पूरी दुनिया की महिलाओं की आधीनतापूर्ण स्थिति को अधिक दमनकारी बनाते हैं, वो अधिक अनुभव गम्य ढंग से स्पष्ट कर सकता है।

विकास हेतु महिलाओं का सशक्तिकरण

महिला विकास के मुद्दे से जुड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है महिला सशक्तिकरण का लेकिन सशक्तिकरण का क्या अर्थ है और किस प्रकार विकास के माध्यम से इसे प्राप्त किया जा सकता है? यह शब्दावली विवादित है फिर भी इसे (सशक्तिकरण) आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता के रूप में नहीं लेना चाहिए क्योंकि आर्थिक गतिविधियां हमेशा महिलाओं की स्थिती सुधारने वाली नहीं होती और प्रायः महिलाओं पर अधिक कार्य अथवा भार लाद देती हैं। सशक्तिकरण शब्द में ही अति विवादित शक्ति का सिद्धांत अन्तर्निहित है जिसका अलग-अलग होना अलग-अलग अर्थ लेते हैं। 'सशक्तिकरण क्या है' विषय पर जो रालैंड ने अपने एक लेख में 'के ऊपर शक्ति' तथा 'को शक्ति' के बीच अंतर स्पष्ट किया है जिसके अनुसार पहले (के ऊपर शक्ति) का अभिप्राय है कि कुछ लोगों के पास दूसरों को नियंत्रित करने की शक्ति का होना अर्थात् प्रभुत्व का एक साधन और दूसरे (को शक्ति) का अभिप्राय है शक्ति का उपार्जन, विचार करने की शक्ति, हितों में संघर्ष के बिना नेतृत्व करने की शक्ति, ऐसी शक्ति जो 'के ऊपर शक्ति' वालों की दमनकारी लक्ष्यों और इच्छाओं को चुनौती दे सके तथा विरोध भी कर सके।

सामान्यत: सशक्तिकरण को निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर महिलाओं को इस प्रक्रिया में शामिल करने के रूप में परिभाषित किया जाता है और महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में इस प्रकार शामिल करना कि उनकी राजनीतिक ढाँचों तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया, बाजार, आय और अधिक सामान्य ढंग से कहें तो राज्य तक पहुँच हो जहाँ वे परिवार, समुदाय अथवा राज्य के बन्धनों के बिना अपने लिए अवसरों को अधिकतम बढ़ा सकें। 'सशक्तिकरण' के सम्बन्ध में महिलावादियों की परिभाषा विस्तृत है क्योंकि ये सशक्तिकरण से अभिप्राय लेते हैं कि व्यक्ति अपने हितों के प्रति जागरूक हों तथा वे किस प्रकार अपने हितों को दूसरों के हितों के साथ जोड़ते हैं ताकि निर्णय लेने की प्रक्रिया अपने तथा दूसरों के ज्ञान पर आधारित हो तथा इसका अभिप्राय प्रभाव डालने की क्षमता का आकलन भी है। महिलावादी विचार के अनुसार सशक्तिकरण का अर्थ है 'के ऊपर शक्ति' तथा 'को शक्ति' जिसके आधार पर विरोध, वार्ता अथवा सौदेबाजी तथा परिवर्तन किये जा सकें। सक्रिय होने तथा प्रभाव डालने की योग्यता के लिए सशक्तिकरण आवश्यक है जिससे दमन और दमनकारी नीतियों के संचालन को इस ढंग से समझा जा सके कि शक्ति न तो दी और न ही ली जाती है अपितु यह तो भीतर से ही पैदा होती है। इस प्रकार सशक्तिकरण एक प्रक्रिया है और इसे विकास का पर्याय नहीं समझना चाहिए। जैसा कि संकेत किया गया है कि राज्य की कुछ नीतियों में विकास का उद्देश्य महिलाओं का सशक्तिकरण होना चाहिए। इसका अर्थ है कि महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाने का काम करती हैं जो मानवीय क्षमताओं और शक्ति को अधिकतम बढ़ाने में सहायक हों।

सोचिये और कीजिये 3.5

आप समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और मैग्जीनों में महिला सशक्तिकरण की कई कहानियां अवश्य पढ़ रहे होंगे। वहाँ से कोई दो कहानियाँ चुनिए और भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण कीजिए।

MAADHYAM IAS

3.7 सारांश

विकास नीतियों और योजनाओं में आजकल लैंगिक मुद्दे और लैंगिक विश्लेषण को विशेष महत्व एवं प्राथमिक वरीयता का माना जाता है। जहां तक विकास के क्षेत्र में लैंगिक एकीकरण का सम्बन्ध है – 1970 के प्रारंभ से अब तक कई कार्य सम्पन्न किए जा चुके हैं। सांस्कृतिक रूढ़िवादिता और उसमें परिवर्तन लाने पर काफी विचार-विमर्श हो चुका है, जीवन के हर पक्ष में भेद-भाव के विरुद्ध विधेयक पारित किए जा चुके हैं और महिलाओं के मामलों को देखने वाली राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय तंत्र सफलतापूर्वक स्थापित किए जा चुके हैं।

यद्यपि महिलावादियों द्वारा विकास प्रक्रियाओं के लक्ष्यों और रणनीतियों में लैंगिक समावेश को मुख्यता प्रदान करने पर पुनर्विचार चल रहा है। प्रथम तो जब से महिलावादी सिद्धांत ने उत्तर आधुनिक रूप लिया है तब से उसके लिए लिंग को विश्लेषण एवं कार्यवाही हेतु संदर्भ बिंदु के रूप में लेना अधिक कठिन हो गया है। एक ओर महिलाओं और लिंग का विसर्जन तो दूसरी ओर महिलाओं की बहुस्तरीय और विशिष्ट पहचान तथा उनके प्राय: विरोधी राजनीतिक हितों को स्वीकृति परेशानी और अस्पष्टता को बढ़ाती है। यदि विभिन्न देशों और दुनिया में महिलाओं के संयुक्त हित नहीं हैं तो फिर विकास योजनाओं और गतिविधियों में लिंग विशेषाधिकार का कोई अर्थ नहीं रह जाता। यद्यपि महिलाओं के प्रति झुकाव ने लैंगिक मुद्दों को विकासात्मक प्रक्रियाओं के केन्द्र में ला खड़ा किया है तो भी महिलावादियों की मान्यता है कि विभिन्न विकास अभिकरणों, देशों और उनकी मशीनरी (तंत्र) ने बिना अपनी विचारधारा में परिवर्तन किए अथवा महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त और आवश्यक कार्यवाही किए बिना महिलावादी शब्दों को समायोजित कर लिया है। महिलाओं के केवल प्रतीकात्मक और हाशिये वाली स्थितियां भेंटकर सत्ता और शक्ति तक पहुँच के

कम अवसर दिए गए हैं। राज्य, लोकतांत्रिक, प्रगतिशील और सक्रिय प्रतीत होते हुये भी तथा प्रत्यक्ष रूप से महिलाओं को अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों के लिए पुनः वार्ता करने हेतु पर्याप्त अवसर प्रदान करते दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव में ऐसी नीतियाँ और कार्यक्रम लागू करते हैं जिनमें पूँजीवाद और पितृ-प्रधान नियन्त्रण की छवि देखी जा सकती है तथा राज्य महिलाओं के हित सम्बन्धी नीतियों एवं कार्यक्रमों को कृत्रिम और खण्डित रूप से लागू करते हैं। महिलाओं के लिए समानता और न्याय दिलाने सम्बन्धी नीतियाँ जब-तब बनाई जाती रहती हैं। यह सब केवल कागज़ के टुकड़े ही रह जाते हैं और राज्य की महिलाओं सम्बन्धी रट का स्वर ही तेज करती है।

इस इकाई में हमने लैंगिक मुद्दों से सम्बन्धित विस्तृत अध्ययन किया है। मानव सभी विकास कार्यों का केन्द्र है और यदि विकास को स्थायी बनाना है तो लैंगिक मुद्दों को ओर अधिक समय तक नकारा नहीं जा सकता। यहां हमने महिलाओं पर विकास के प्रभाव, महिलाएँ, विकास के एक घटक के रूप में तथा महिला विकास के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की चर्चा की है।

3.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Kabeer Naila 1995, Reversed Realities: Geneder Hierarchies in Development Thought, Kali for Women, New Delhi.

Krishna Raj, Maithreyi 1993. 'New Economic Policy and Development of Women: Issues and Implications' in IAWS (eds.) The New Economic Policy and Women: A collection of background papers to Sixth National Conference, IAWS: Mumbai.

Schrijvers, Joke 1993. The violence of development: A choice for intellectuals. Kali for Women: New Delhi.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 4

स्थायी विकास

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 स्थायी विकास : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

4.3 स्थायी विकास : उत्पत्ति और क्रमविकास

4.4 स्थायी विकास की संकल्पना "अवर कॉमन फ्यूचर" (1987) रिपोर्ट में प्रदत्त परिभाषा के रूप में

4.5 स्थायी विकास की संकल्पना की आलोचना

4.6 वैश्वीकरण और स्थायी विकास का भविष्य

4.7 सारांश

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य:

- स्थायी विकास की संकल्पना के उद्भव के ऐतिहासिक संदर्भ की चर्चा करना है;
- इस संकल्पना की उत्पत्ति, क्रम विकास और विस्तार की चर्चा करना है;
- हमारा साझा भविष्य के रूप में स्थायी विकास की चर्चा करना है;
- स्थायी विकास की अस्पष्टता और राजनीतिक संकल्पना की चर्चा करना है; और
- वैश्वीकरण के संदर्भ में स्थायी विकास के भविष्य की चर्चा करना है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

4.1 प्रस्तावना

इस खंड में 1, 2 और 3 इकाई को पढ़ने के बाद हम विकास की प्रक्रिया से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण संकल्पनाओं का अध्ययन पहले ही कर चुके हैं। अब हम प्रगति, परिवर्तन, आधुनिकीकरण, विकास, सामाजिक विकास, मानव विकास और लैंगिक विकास जैसी संकल्पनाओं से भली-भाँति अवगत हैं। हमने देखा है कि विकास की संकल्पना की निरंतर आलोचनात्मक समीक्षा की जाती है और जिसके परिणामस्वरूप विकास की हमारी संकल्पना में परिवर्तन होते आ रहे हैं।

पिछले चार दशकों में स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तरों पर पर्यावरणी स्थिति को बदतर करने पर जागरूकता और सक्रियता बढ़ रही है। पर्यावरण पर उभरते चिंता के नये मुद्दों के कारण हम पुनः विकास की नीतियों, उद्देश्यों और अपनी संकल्पना पर विचार कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप विकास की हमारी संकल्पना ने रूपावली-परिवर्तनों का अनुभव किया है और 1980 में उदित स्थायी विकास की संकल्पना में हमें इसकी अभिव्यक्ति नज़र आती है और विविध स्तरों पर निरंतर विकास-विषय पर अपनी प्रबलता बनाए हुए हैं। यह इकाई इसी संकल्पना से संबंधित है। ऐतिहासिक संदर्भ में स्थायी विकास की संकल्पना की जड़ों का पता लगाने का प्रयास जिसने विकास-पर्यावरण वाद-विवाद को आगे बढ़ाया, इस इकाई के पहले अनुभाग में इसी पर चर्चा की गई है। दूसरा अनुभाग कुछ सुप्रसिद्ध अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं/दस्तावेजों के माध्यम से इस संकल्पना के क्रम विकास की उत्पत्ति का पता लगाने का प्रयास करती है। तीसरा अनुभाग, इसकी परिभाषा, अर्थ, अपेक्षाएँ, नीति उद्देश्य और जैसा

कि ब्रेडलैंड कमीशन की रिपोर्ट "अवर कॉमन फ्यूचर" (1987) में परिकल्पित सामरिक उपायों की दृष्टि से स्थायी विकास की संकल्पना को स्पष्ट करने पर समर्पित है। अंतिम अनुभाग में हम इस वैश्वीकरण युग में स्थायी विकास के भविष्य के साथ-साथ स्थायी विकास की संकल्पना की आलोचना को समझने का प्रयास करेंगे।

4.2 स्थायी विकास : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

स्थायी विकास की संकल्पना की प्रारंभिक जड़ों को विकास-पर्यावरण वाद-विवाद के रूप में देखा जा सकता है। विकास के आर्थिक वृद्धि मॉडल और अधिकांश देशों द्वारा इसे अपनाना और पर्यावरणीय निम्नीकरण के विविध रूपों में इसके द्वारा निर्मित परिणामों को महसूस करने ने, विकास-पर्यावरण वाद विवाद के उदय के लिए ऐतिहासिक संदर्भ प्रदान किया है।

विकास के आर्थिक वृद्धि मॉडल को आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग, फैक्टरी उत्पादन व्यवस्था और बढ़ते उद्योगवाद और शहरीकरण के रूप में देखा जा सकता है। पहले पश्चिमी देशों ने विकास के इस मॉडल का अनुसरण किया और फिर कम विकसित देशों के लिए इसका सुझाव दिया। इस बारे में पहले से ऐसी बात पर बल दिया गया था कि अल्पविकसित देश अंततः औद्योगिक देशों से अपना उद्देश्य पूरा कर लेंगे बशर्ते वे पश्चिम की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं से होड़ करें। कम विकसित देशों ने बजाय इसके विकास के पश्चिमी मॉडलों को बिना किसी आलोचना के अपनाया।

MAADHYAM IAS

कम विकसित देशों द्वारा विकास के पश्चिमी मॉडल को अपनाने के सारे परिणाम सकारात्मक नहीं थे। आर्थिक वृद्धि हुई लेकिन इसके साथ-साथ उत्तर और दक्षिण में देशों के बीच दूरी और बढ़ गई और विशिष्ट समाजों के भीतर धनी और निर्धन वर्गों के बीच की आर्थिक असमानताओं को विकसित करने में इसने सहायता की। यह महसूस हुआ कि 'विकास' का अर्थ 'आर्थिक वृद्धि' एक अपर्याप्त धारणा थी और जरूरी नहीं है कि आर्थिक वृद्धि से समाज के निम्न दर्जे का विकास हो। इस अनुभूति ने विकास सोच में बदलाव उत्पन्न किया और जिससे अंततः वितरणशील (distributive) न्याय या समता जैसे विकास के कुछ अतिरिक्त मानकों को शामिल करना पड़ा और जिससे आम लोगों के जीवन की समग्र कोटि में सुधार हुआ (धनागरे 1996 : 7-9)।

इसके अलावा यह देखना ज्यादा जरूरी है कि वैश्विक पर्यावरण की कोटि पर विकास के पश्चिमी मॉडल के प्रभाव ने विकास के इस मॉडल पर आलोचनात्मक दृष्टि से दुबारा ध्यान केंद्रित किया है। ऐसा अनुभव किया गया है कि उद्योगीकरण के प्रचंड अनुसरण विकास के लिए संसाधक शोषक आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से इस हद तक पर्यावरण खराब हो गया है कि सभी जीवंत प्रजातियों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। सभी का मानना है कि युद्धोत्तर काल के दौरान विशेष रूप से आर्थिक विस्तार से वैश्विक पर्यावरण के लिए चिंताजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं (मुंशी 2000; 253)। उद्योगीकरण के लिए प्रकृति से ऊर्जा और सामग्रियों की निरंतर आपूर्ति की जरूरत है। इससे ऐसे अपशिष्टों का निरंतर संग्रहण होने लगा जो कि त्वरित औद्योगिक उत्पादन और उपभोग के बढ़ते स्तर का परिणाम थी। प्रकृति का धीरे-धीरे विनाश हो रहा था। उत्पादन के आधुनिक, औद्योगिक स्वरूप ने निरंतर सामाजिक असमानता और बढ़ती पर्यावरणीय अस्थिरता और निम्नीकरण को और अधिक बढ़ाया जिन्हें सामूहिक रूप से हाल ही में 'आधुनिकता के संकट' के रूप में देखा गया है (एड्यूआर्डो और वुडगेट 1997 : 85)। पर्यावरणीय निम्नीकरण जिसका उदय हुआ है, वह सीमित प्राकृतिक-संसाधनों का बड़े पैमाने पर दोहन वनों का क्षय, पशु और वनस्पति प्रजातियों की विलुप्ति, ओजोन परत का कम होना, जल, वायु और मृदा प्रदूषण, समुद्री जीवन और

जैव-विविधता आदि का हनन जैसी बातों के रूप में चिह्नित है और ये सब खतरे की दर पर विकसित हो रहा है और इस ग्रह पर जीवन बनाए रखने की दिशा में गंभीर चुनौती नजर आ रहा है।

विकासशील राष्ट्रों की अर्थनीति और पारितंत्र के संदर्भ में विकास के पश्चिमी मॉडल के परिणामों की जांच करते समय, सुनीता नारायण (2002:13) ने टिप्पणी की कि "पश्चिमी आर्थिक और प्रौद्योगिकीय मॉडल भौतिक और ऊर्जा की दृष्टि से काफी सघन है। यह प्राकृतिक संसाधनों के भारी मात्रा में उपापचय से पीछे जहरीला बढ़ा मार्ग खोल देता है जिससे कि अत्यंत निम्नीकृत और परिवर्तित परितंत्र सामने नजर आता है। इस मॉडल का प्रयोग विकासशील राष्ट्र भी अपनी आर्थिक और सामाजिक वृद्धि के लिए कर रहे हैं जिससे घोर निर्धनता और इसके साथ-साथ असमानता, प्रदूषण और बड़े पैमाने पर पारिस्थितिकीय विनाश उत्पन्न होगा"। इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि ''पश्चिमी विकास का मॉडल अपने चरम विजयी क्षणों में भी न तो वांछनीय है और न ही सार्वभौमिक रूप से प्रयोज्य, क्योंकि मूल्यतः यह दीर्घकाल तक अपने को कायम नहीं रख सकता''। (बर्नहॉड 1997 : 113) यानि "विकास के पश्चिमी मॉडल की दो मूल अवधारणाऐं, पहला, स्थानिक रूप से विकास सार्वभौमिक हो सकता है और, दूसरा कि समय के अनुसार यह वांछनीय होगा" (सच्छ 1997 : 71), अपनी प्रमाणिकता खो चुके हैं।

पर्यावरणीय निम्नीकरण और प्राकृतिक संसाधनों का हनन आर्थिक वृद्धि के लिए अपनाई कार्यनीतियों के कारण वैश्विक परिघटना बन गए हैं। इसी वजह से पर्यावरणी समस्याओं के प्रति बढ़ती जागरूकता से पर्यावरणवाद का उदय हुआ। यह देखना जरूरी है कि पर्यावरणवाद ने मौजूदा विकास रूपी प्रवचनों के लिए महत्त्वपूर्ण आयाम जोड़ दिया है। दरअसल, इसने विकास पर हमारे दृष्टिकोण में रूपावली-परिवर्तन उत्पन्न किया है। इसने बुद्धिजीवियों को इस ओर सोचने के लिए बाधित किया है कि विकास के नाम पर इस ग्रह के पारितंत्र के लिए क्या किया जा रहा है। बदतर पर्यावरणीय स्थिति ने विकास के लिए कार्यनीतियों, कार्यक्रमों और नीतियों की पुनर्जांच और इस पर पुनर्विचार करने की ओर ध्यान केंद्रित किया है जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरण-विकास वादविवाद का उदय हुआ और जिसने निर्धारित समय में उग्र रूप धारण कर लिया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आरंभ में, विकास और पर्यावरण को दो विशिष्ट पहचानों के रूप में देखा गया। ऐसे लोगों के बीच भारी मतभेद था जो पर्यावरण की बजाय विकास के समर्थक थे और वे जो विकास की बजाय पर्यावरण के लिए बहस करते थे (बाविसकर 1997 : 196)। एक अन्य बुद्धिजीवी ने गौर किया कि समर्थकों के दो भिन्न शिविरों का उदय हुआ जो दो अलग मानसिकता को अपनाए थे और स्वयं को परस्पर विरोधी मानते थे (वही : 71-72)। इसने विकास बनाम पर्यावरण को दो भागों में बांट दिया। हालांकि अंततः, इस तथ्य के बारे में वर्धित जागरूकता का भी उदय हुआ कि मनुष्यों को 'विकास' और 'पर्यावरण' दोनों की जरूरत है। जैसा कि बैलेटमस ने अभिव्यक्त किया है कि इस बारे में मान्यता बढ़ रही है कि पर्यावरण और विकास के समग्र उद्देश्यों में कोई आपसी मतभेद नहीं है बल्कि वास्तव में ये दोनों एक ही हैं जैसे कहा जायें कि मनुष्य के जीवन स्तर को बेहतर बनाना या मौजूदा और भावी पीढ़ियों का कल्याण (मोहंती 1998 : 82) ऐसी सोच से यह दृष्टिकोण विकसित हुआ कि ''विकास'' बनाम पर्यावरण'' गलत विभाजन है। वर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट 1992—डेवलपमेंट एंड द पर्यावरण में यह दृष्टिकोण पूरी तरह स्पष्ट है। इस रिपोर्ट में तर्क दिया गया है कि आर्थिक विकास और ठोस पर्यावरणीय प्रबंधन एक ही विषय के पूरक पहलू हैं। पर्याप्त पर्यावरणीय सुरक्षा के बिना विकास का महत्त्व नहीं होगा, बिना विकास के पर्यावरणीय सुरक्षा निरर्थक होगी ...आय में बढोतरी, परिष्कृत पर्यावरणीय प्रबंधन के लिए संसाधन प्रदान करेगी (विश्व बैंक

1992 : 25)। असल में, ऐसे दृष्टिकोण ने 'विकास' और 'पर्यावरण' के बीच तालमेल की आवश्यकता को अधिक महत्व नहीं दिया। जैसा कि पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग (डब्ल्यू सी ई डी) की रिपोर्ट में 'स्थायी विकास' की परिभाषित संकल्पना : 'अवर कॉमन फ्यूचर' (1987) विकास के लक्ष्यों को पर्यावरणीय सुरक्षा से जोड़ने और उनमें तालमेल बिठाने का प्रयास करती है। इस संकल्पना की परिभाषा और अर्थ का अध्ययन करने से पहले आइए इसकी उत्पत्ति कथा और क्रमविकास पर नजर डालें।

चिंतन और कार्रवाई 4.1

स्थायी विकास से आप क्या समझते हैं? मौजूदा संदर्भ में यह किस प्रकार प्रासंगिक है?

4.3 स्थायी विकास : उत्पत्ति और क्रमविकास

एड्डर्डो संविला-गजमैन और ग्राहम वुडगेट (1997 : 86-87) के अनुसार 'स्थायी विकास' की संकल्पना सतत सगर्भता का परिणाम है। इसलिए इन्होंने इसके उद्भव को 'आफिशियल इंटरनेशनल डिसकोर्स' के जरिए पता लगाने का प्रयास किया है। उन्होंने बहुत सी अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं और प्रकाशनों की समीक्षा की है और योजनाबद्ध तरीके से अपनी खोज/उत्पाद और विशेषता (देखें बाक्स 4.1) को उजागर किया है। 'स्थायी विकास' की संकल्पना को विकसित करने में सहायक प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं/दस्तावेजों और उनके योगदान की संक्षिप्त समीक्षा को यहां रेखांकित किया गया है।

1972 में, 'मानव पर्यावरण' पर आयोजित संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, स्टॉकहोम, स्वीडन में हुआ। यह सम्मेलन इस नजरिए से ऐतिहासिक था कि वैश्विक स्तर पर पहली बार पर्यावरणीय समस्याओं ने औपचारिक मान्यता की प्राप्ति की थी। आधुनिक औद्योगिक समाज महसूस कर सके थे कि सिर्फ 'एक ही विश्व' है। इस बात को भी मान्यता मिली कि पर्यावरणीय समस्याएँ, अंतर्राष्ट्रीय समाधानों की अपेक्षा करने वाली वैश्विक समस्याएँ हैं और इस ओर ध्यान दिए बिना कि उत्तर के विकसित देशों और दक्षिण के विकासशील देशों के पर्यावरणीय दृष्टि से मुद्दों में चाहे एकरूपता नहीं है।

MAADHYAM IAS

'लिमिट्स टू ग्रोथ' रिपोर्ट जो कि क्लब ऑफ रोम (1972-74) की देन है, को वैश्विक पर्यावरणीय निम्नीकरण पर पहले सरकारी अध्ययन के रूप में मान्यता मिली। इस रिपोर्ट में उद्योगवाद का पारिस्थितिकीय विश्लेषण शामिल है। रिपोर्ट ने संसाधन हनन, प्रदूषण और जनसंख्या वृद्धि के सतत स्तरों के पूर्वानुमानित परिणामों पर भी ध्यान केंद्रित किया। इस रिपोर्ट से ऐसी अनुभूति विकसित हुई कि सीमित संसाधनों से असीमित वृद्धि की प्राप्ति असंभव है। अतः वैश्विक पर्यावरणीय निम्नीकरण के कारकों को ग्लोबल 2000, नामक रिपोर्ट में, अमेरिकी राष्ट्रपति जिम्मी कार्टर की अगुआई में उजागर किया गया और 1980 में इसका प्रकाशन किया गया। इस रिपोर्ट ने इस बात को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया कि उत्तरी जीवनशैलियों को वैश्विक स्तर पर दुबारा कायम नहीं किया जा सकता।

इसके बाद वर्ष 1981 में 'स्थायी विकास' की संकल्पना पहली बार नजर आई। यह एक प्रमुख दस्तावेज के शीर्षक में नजर आई जो था—वर्ल्ड कन्जरवेशन स्ट्रेटिजी : लीविंग रिसोर्स कन्ज़रवेशन फॉर सस्टेनेबल डेवलपमेंट। इसका प्रकाशन इंटरनेशनल यूनियन फॉर कन्ज़रवेशन ऑफ नेचर एंड नैचुरल रिसोर्सिस (आई यू सी एन), द वर्ल्ड वाइल्डलाइफ फंड (डब्ल्यू डब्ल्यू एफ) और यू एन एनवायरमेंट प्रोग्राम (यू एन ई पी), द्वारा किया गया था। कार्यनीति की परिभाषा के अनुसार "स्थायी विकास के लिए, इसे सामाजिक और परिस्थितिकीय कारकों और इनके साथ-साथ जीवंत और गैर-जीवंत संसाधन आधार के आर्थिक कारक और वैकल्पिक

कार्रवाइयों के दीर्घकालिक और साथ ही साथ अंशकालिक लाभ और दोषों को भी अवश्य ध्यान में रखना चाहिए'' (स्टार्क 1990 : 8-9)।

1983 में, संयुक्त राष्ट्र ने स्वतंत्र निकाय के रूप में नार्वे के प्रधान मंत्री ग्रो हैललेम ब्रंडलैंड की अगुआई में पर्यावरण और विकास दर विश्व आयोग की स्थापना की। इसका उद्देश्य इस ग्रह पर पर्यावरण और विकास के प्रमुख उद्देश्यों की पुन: जांच करना था और ऐसी समस्याओं को हल करने के यथार्थवादी प्रस्तावों को सूत्रबद्ध करना था और भावी पीढ़ियों के संसाधनों के बिना हनन के विकास के माध्यम से मानव प्रगति को कायम रखना, सुनिश्चित करना था। डब्ल्यू सी ई डी ने वर्ष 1987 में 'अवर कॉमन फ्यूचर' नामक अपनी रिपोर्ट का प्रकाशन किया। इस रिपोर्ट ने 'स्थायी विकास' की संकल्पना की पहली सरकारी परिभाषा प्रदान की। इस रिपोर्ट का योगदान त्रिरूपी है: (i) इससे स्थायी विकास की पहली सरकारी परिभाषा की प्राप्ति होती है, (ii) इस रिपोर्ट ने आधुनिकता के खतरों से जूझने के लिए पहली बार अंतर्राष्ट्रीय नीति बनाने का सुझाव दिया, और (iii) 'विकास' की धारणा के संदर्भ में पारंपरिक (रुढ़िवादी) सोच में इसने रूपावली परिवर्तन लाने की बात कही।

एक अन्य दस्तावेज, 'कटिंग फॉर द अर्थ : ए स्ट्रैटिजी फॉर सस्टेनेबल लीविंग' (आई यू सी एन, यू एन ई पी और डब्ल्यू डब्ल्यू एफ द्वारा 1991 में प्रकाशित) ने, प्रकृति संरक्षण के लिए संशोधित वैश्विक कार्यनीति का सुझाव दिया। इसके अलावा, इस कार्य से पहचाना गया कि वैश्विक प्रकृति संरक्षण के लिए स्थानीय जन सहभागिता की आवश्यकता है।

1992 में, पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के लिए 150 देशों से अधिक के प्रतिनिधियों ने रिओ दी, जेनेरो, ब्राजील में मुलाकात की, जिसे भू शिखर वार्ता के रूप में जाना जाता है। भू शिखर वार्ता ने पर्यावरण और विकास के बीच महत्त्वपूर्ण अनुबंधन स्थापित किए और 'स्थायी विकास' की संकल्पना को आगे विकसित करने में अपना योगदान दिया। इसने 21वीं शताब्दी के लिए 'अर्थ चार्टर'—आचार संहिता या कार्य योजना निर्मित की अर्थात स्थानीय मुद्दों के व्याख्या और जैव-विविधता के संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए सभा का आयोजन किया। रिओ घोषणा पत्र ने संरक्षण के सिद्धांतों के दायरे, वनों के प्रयोग और ऐसे महत्त्वपूर्ण चरणों को भी स्थापित किया जिनकी पर्यावरणीय स्थिरता और स्थायी ग्रह को सुनिश्चित करने के लिए, आवश्यकता थी (द हिंदू सर्वे ऑफ द एनवायरमेंट 2002 : 5-6)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

तदनुरूप, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत से राष्ट्र-राज्य, स्थायी विकास की धारणा के साथ आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। वे पर्यावरणीय समस्याओं के लिए आर्थिक और राजनीति समाधान ढूँढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। स्थायी विकास की दिशा में राष्ट्रों द्वारा की प्रगति का समय-समय पर जायजा लेने की बात भी इसमें नजर आती है। उदाहरणार्थ 1997 में, न्यूयार्क में 'रिओ-5' सभा का आयोजन 'स्थायी विकास' की प्रगति का पता लगाने के लिए, किया गया। आगे की कार्रवाई के लिए, स्थायी विकास पर विश्व शिखर (WSSD) का आयोजन जानेसबर्ग में 26 अगस्त से 4 सितम्बर 2002 तक किया गया। जानेसबर्ग शिखर वार्ता को 'रिओ-10' के रूप में पहचाना जाता है। इस अंतर्राष्ट्रीय सभा के लिए कार्यक्रम, रिओ की अध्यक्षता के 10 वर्षों में स्थायी विकास की दिशा में होने वाली प्रगति की समीक्षा से काफी परे तक केंद्रित था। कार्यसूची में पर्यावरण एवं विकास से संबद्ध हर संभावित मुद्दा जैसे कि ऊर्जा, पानी और स्वच्छता, स्वास्थ्य, वन, उपभोग प्रतिरूप, निर्धनता, व्यापार, वैश्वीकरण आदि सभी को शामिल किया गया। अत: 'स्थायी विकास' का कार्यक्षेत्र और अधिक विस्तृत हो गया।

स्थायी विकास को तीन घटकों से युक्त छवि के रूप में देखा गया है। ये है: आर्थिक विकास: सामाजिक विकास और पर्यावरणीय सुरक्षा (रेड्डी 2002 : 10)। शिखर वार्ता के दौरान अखबारों में प्रकाशित रिपोर्टो ने इन बातों को उजागर किया कि बहुत से मुद्दों पर चर्चा और वादविवाद किया गया जिनमें मुख्यतया गरीबी घटानें की मांग, ग्रह के तेजी से कम होते संसाधनों को भावी हनन से बचाना, कृषीय आर्थिक सहायता पर यूरोपीयाई और अमेरिकी प्रतिरूपों की आलोचना और आर्थिक सहायता को विकृत करने वाले व्यापार के निराकरण की आवश्यकताएं वैश्वीकरण की परिभाषा पर वादविवाद और तीसरी दुनिया के देशों की अधिक सहायता, वित्त और निष्पक्ष व्यापार के लिए मांगा जैसे मुद्दों का समावेश था। अत: ''स्थायी विकास'' की संकल्पना बनाने में बहुत सी अंतरराष्ट्रीय घटनाओं और प्रकाशनों ने योगदान दिया है। आइए ''अवर कॉमन फयूचर'' (1987) में सूत्रबद्ध और सुस्पष्ट रूप में ''स्थायी विकास'' की संकल्पना की परिभाषा और अर्थ को अब समझने का प्रयास करें।

चिंतन और कार्रवाई 4.2

क्या स्थायी विकास सामाजिक आंदोलन है?

इस आंदोलन की ऐतिहासिक उत्पत्ति का पथ क्या है?

4.4 स्थायी विकास की संकल्पना "अवर कॉमन फ्यूचर" (1987) रिपोर्ट में प्रदत्त परिभाषा के रूप में

''आवर कॉमन फ्यूचर'' रिपोर्ट में उल्लिखित नजरिए से स्थायी विकास शब्द की परिभाषा इसका अर्थ, अपेक्षाएं, नीति उद्देश्यों और उचित कार्यनीति पर संक्षेप में इस तरह ध्यान केंद्रित किया गया है। क्वोटों में शामिल पाठ्य सामग्री, आयोग की रिपोर्ट, अवर कॉमन फ्यूचर (1987) के अध्याय से रूपांतरित है और इसे साइंस ऐज, अगस्त 1987:30-38) में टूवर्ड्स सस्टेनेबल डेवलपमेंट, शीर्षक के अंतर्गत पुन: निर्मित किया गया है।

MAADHYAM IAS

क) स्थायी विकास: संकल्पना की परिभाषा एंव अर्थ

रिपोर्ट में अवर कार्मन फ्यूचर (1987) शीर्षक के अंतर्गत अग्रेंषित स्थायी विकास की संकल्पना की परिभाषा है:

स्थायी विकास ऐसा विकास है जो भावी पीढ़ियों की अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति की योग्यता से बिना किसी तरह का समझौता किए बिना अपनी मौजूदा आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

इस परिभाषा में ही दो मुख्य संकल्पनाओं का समावेश है:

- ''आवश्यकताओं'' विशेष रूप से विश्व के गरीबों की अनिवार्य आवश्यकनाएं जिन्हें अभिभावी प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- "वर्तमान और भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण की योग्यता पर राज्य-प्रौद्योगिकी और सामाजिक संगठन द्वारा सीमा तय करने का विचार"(साइंस एज 1987: 30)।

परिभाषा का अर्थ समझने के लिए आइए उपर्युक्त परिभाषा में केंद्रित मुख्य मुद्दों को समझें। पहला मुद्दा, आर्थिक वृद्धि पर आधारित है। आर्थिक वृद्धि को सिर्फ गरीबी धटाने के लिए ही नहीं अनिवार्य माना जाता बल्कि बेहतर जीवन के लिए मानव आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भी आर्थिक वृद्धि को अनिवार्य माना जाता है। दूसरा है: मौजूदा और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण की योग्यता की सीमा का मुद्दा।

बढ़ती समाजकीय आवश्यकताओं द्वारा जनित दबावों के कारण, समाज सीमित प्राकृतिक संसाधनों को उखाड़ने और इनके सदुपयोग के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकियों का प्रयोग कर रहे है। यदि हम ऐसे ही मौजूदा सीमित प्राकृतिक संसाधनों का शोषण करते रहें तो भावी पीढ़ियां अपनी खुद की आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य नहीं होगी। अत: मौजूदा और भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति में पर्यावरण की योग्यता की अपनी निर्धारित सीमा है। परिभाषा में इस अनुभूति का स्पष्ट रूप से पता चलता है। अत: ''स्थायी विकास'' की संकल्पना, विकास और पर्यावरण के समेकित दृष्टिकोण पर आधारित है; यह भावी पीढ़ियां की निजी आवश्यकताओं को पूरा करने की उनकी काबलियत से बिना किसी तरह का समझौता किए, मौजूदा पीढ़ी की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करने के योग्य बनने में एक तरफ अपने पारिस्थितिकीय वातावरण से आर्थिक वृद्धि को अधिकाधिक बनाने और दूसरी तरफ पर्यावरण के प्रति जोखिमों और संकटों को न्यूनतम बनाने में विकास कार्यनीतियों का अनुपालन करने का सुझाव देता है।

संक्षेप में "स्थायी विकास" की उपर्युक्त परिभाषा को निहितार्थ है: (1) हमें अपने प्रयासों को आर्थिक वृद्धि के पिछले अस्थायी प्रतिरूपों द्वारा पर्यावरण को पहले से हुई क्षति की प्रति निदेशित करना चाहिए और (2) हमें विकास के ऐसे प्रतिरूप का अनुसरण करना चाहिए जो पृथ्वी के पारितंत्र को आगे नुकसान से बचाएं और मौजूदा के साथ-साथ भावी मानव पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करना सुनिश्चित करें।

ख) ''स्थायी विकास'': अपेक्षाएं

संकल्पना को सुस्पष्ट करते समय, "अवर कॉमन फ्यूचर" (1987) रिपोर्ट, "स्थायी विकास" की अपेक्षाओं को भी उजागर करती है। संकल्पना को बेहतर ढंग से समझने के लिए,''स्थायी विकास'' की कुछ महत्वपूर्ण अपेक्षाओं को उजागर किया जा सकता है:

MAADHYAM IAS

स्थायी विकास के लिए सभी की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने की जरूरत है और सभी को बेहतर जीवन के लिए उनकी आकांक्षाओं की संतुष्टि के अवसर दिए जाने चाहिए... ऐसे मूल्यों का संवर्धन जो उपभोग मानकों को बढ़ावा देते हैं और जो कि संभावित पारिस्थितिकीय दायरे में हैं और जिनके लिए सभी यथोयित अभिलाषा कर सकते हैं..... जहां समाज मानव जरूरतों की पूर्ति उत्पादनकारी संभावनाओं को पूरा करके और सभी के लिए समान अवसरों को सुनिश्चित करके, कर सकते हैं...... जहां जनसांख्यिकीय विकास, पारितंत्र भी बदलती उत्पादनकारी संभावना के अनुरूप हो.... न्यूनतम रूप में ...... विकास को धरती पर जीवन में सहायक प्राकृतिक व्यवस्थाओं को खतरे में नहीं डालना चाहिए अर्थात वातावरण, जल और जीवंत जातियों को .... विश्व को सीमित संसाधनों तक समान पहुंच स्थापित करना सुनिश्चित करना चाहिए और दबाव को मुक्त करने के प्रति प्रौद्योगिकीय प्रयासों को दबाव करना चाहिए.... अर्थात गैर-संसाधनों की समाप्ति की दर को चुनिंदा भावी विकल्पों के रूप में यथासभव रोक देना चाहिए..... पादप और पशु जगत संरक्षण...... वायु, जल और अन्य प्राकृतिक मूलतत्वों की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाले कारकों को कम से कम करना ताकि पारितंत्र की समग्र अस्तित्व कायम रहें (साइंस ऐज 1987:30-31)। इसके अलावा सार के रूप में, स्थायी विकास बदलाव की ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संसाधनों का शोषण, निवेशों का निर्देशन, प्रौद्योगिकीय विकास का अभिविन्यास और संस्थागत परिवर्तन अर्थात सभी में आपसी तालमेल हो और जो मानव आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए "मौजूदा और भावी समर्थ्य अर्थात दोनों को विकास हो" (साइंस ऐज 1987:31)।

बॉक्स 4.1:
अधिकारिक इंटरनेशनल डिसकोर्स में स्थायी विकास की संकल्पना की उत्पत्ति

घटना	खोज/उत्पाद	विशेषता
स्टॉमहोम सम्मेलन (1972)	आधुनिक, औद्योगिक समाजों की समझ में आना कि सिर्फ एक विश्व है	पर्यावरणीय निम्नीकरण की पहली अधिकारिक पहचान
द वर्क ऑफ द क्लब ऑफ रोम (1972-74): लिमिट्स टू ग्रॉथ	सीमित संसाधनों से असीमित वृद्धि की असंभावना की बात को समझना	वैश्विक पर्यावरणीय निम्नीकरण का पहला अधिकारिक अध्ययन
राष्ट्रपति कार्टर ग्लोब 2000 की अगुवाई में, 1980 में प्रकाशित राष्ट्रपति रीगन द्वारा नामंजूर	इस बात को समझना कि उत्तरी जीवनशैलियों को वैश्विक रूप से पुनः निर्मित नहीं किया जा सकता	वैश्विक पर्यावरणीय निम्नीकरण के कारणों का प्रथम निरूपण
विश्व संरक्षण रणनीति (डब्ल्यू. सी. एस.) आई यू सी एन/यूएनईपी डब्ल्यू डब्ल्यू एफ (1981) द्वारा प्रकाशित पर्यावरण पर विश्व आयोग और विकास का अवर कॉमन फ्यूचर (1987) नामक प्रकाशन	आस-पास मानव कल्याण पर ध्यान दिए बिना प्राकृतिक संरक्षण की प्राप्ति की जा सकती है स्थायी विकास की पहली अधिकारिक परिभाषा	प्रकृति संरक्षण और स्थायी विकास की संकल्पना को पेश करने के लिए प्रथम वैश्विक कार्यनीति आधुनिकता के खतरों से जूझने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कार्यनीति का पहला सुझाव
दूसरा डब्ल्यू सी एच केरिंग फॉर द अर्थ : ए स्ट्रैटिजी फॉर सस्टेनेबल लिविंग आईयूसीए / यू एन ई पी / डब्ल्यू डब्ल्यू एफ (1991)	विश्व प्रकृति संरक्षण के लिए स्थानीय जन सहभगिता आवश्यकता	प्रकृति संरक्षण के लिए संशोधित वैश्विक कार्यनीति
पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनः भू शिखरवार्ता (1992)	द अर्थ चार्टर (एजेंडा) क्लाइमेट कंनेशन जैव विधिता कंवेंशन	21वीं शताब्दी के लिए मानव आचरण संहिता वातावरणीय प्रदूषण के कारण जलवायु नियंत्रण संबंधी कन्वेंशन जैव विविधता संरक्षण को बढ़ावा देने पर कन्वेंशन

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

ग) स्थायी विकासः नीति उद्देश्य

रिपोर्ट, अवर कामन फ्यूचर (1987) में इस बात की सिफारिश भी शामिल है कि स्थायी विकास के पथ पर बढ़ने के लिए, सभी राष्ट्रों को अपनी नीतियों में कुछ निश्चित परिवर्तन करने होंगे। देखा गया है कि स्थायी विकास की संकल्पना से उत्पन्न, पर्यावरण और विकास के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में शामिल हैं: (1) नवीन वृद्धि; (2) वृद्धि की गुणवत्ता (किस्म) को बदलना (3) रोजगार, भोजन, ऊर्जा, पानी और स्वच्छता के लिए अनिवार्य जरूरतों को पूरा करना, (4) समष्टि का स्थायी स्तर सुनिश्चित करना, (5) संसाधन आधार को ऊंचा उठाना और इसका संरक्षण; (6) प्रौद्योगिकी की दिशा बदलना और जोखिम उठाना, और (7) निर्णय लेने की प्रक्रिया में पर्यावरण और अर्थशास्त्र का विलय (वही 32)।

घ) **स्थायी विकास: उचित कार्यनीति**

उचित कार्यनीति के संदर्भ में रिपोर्ट, अवर कॉमन फ्यूचर (1987) अपने विस्तृत नजरिए से गौर करती है कि स्थायी विकास के लिए कार्यनीति, मनुष्यों में और मानवता और प्रकृति के बीच सामंजस्यता को बढ़ावा देने पर लक्षित है। विकास और पर्यावरण के विशिष्ट संदर्भ में स्थायी विकास के लिए जरूरत है (1) ऐसी राजनीति व्यवस्था जो निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रभावी नागरिक सहभागिता सुनिश्चित करे, (2) ऐसी आर्थिक व्यवस्था जो आत्म-निर्भरता और स्थायी आधार पर अधिशेषों और तकनीकी ज्ञान को उत्पन्न करने के योग्य हों, (3) ऐसी सामाजिक व्यवस्था जो असौहार्दपूर्ण विकास से उत्पन्न तनावों से बचने के समाधान प्रदान करें, (4) ऐसी उत्पादन व्यवस्था जो विकास के लिए पारिस्थितिक आधार के संरक्षण की जिम्मेदारी का सम्मान करे; (5) ऐसी प्रौद्योगिकीय व्यवस्था जो निरंतर नये समाधानों के लिए खोज कर सकती हों, (6) ऐसी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था जो व्यापार और वित्त के स्थायी प्रतिरूपों को विकसित करती हो और (7) ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था जो लचीली हो और जिसमें आत्म सुधार का सामर्थ्य हों। उद्देश्यों की प्रकृति में ऐसी अपेक्षाएँ निहित होती हैं और जिन्हें विकास पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्रवाई पर विशेष बल देना चाहिए (वही : 38) आइए अब स्थायी विकास की संकल्पना की समीक्षा के प्रति अपना ध्यान केंद्रित करें।

चिंतन और कार्रवाई 4.3

अपने द्वारा परिचित किसी विकास परियोजना का चयन करें। ऐसे कारण को स्पष्ट करें कि यह परियोजना स्थायी क्यों या क्यों नहीं है।

4.5 स्थायी विकास की संकल्पना की आलोचना

ब्रंडलैंड आयोग द्वारा परिभाषित स्थायी विकास की संकल्पना की बहुत से शिक्षाओं ने आलोचनात्मक समीक्षा की है। ऐसी आलोचना न केवल इस शब्द में तार्किक अंतर्विरोधों और अर्ध-दैधवृत्ति की ओर इशारा करती है बल्कि परिभाषा में शामिल शब्द। लोकोक्तियों की अस्पष्टता पर भी ध्यान केंद्रित करती है और प्रचालन स्तर पर उत्पन्न दिक्कतों की ओर इशारा करती है और अस्पष्ट अवधारणाओं और राजनीतिक मंशाओं को बैनकाब करने का प्रयास करती है।

MAADHYAM IAS

क) **स्थायी विकास: तार्किक अंतर्विरोध और अर्ध-दैधवृत्ति**

रमेश दीवान जैसे शिक्षाविद् महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हैं और दर्शाते हैं कि स्थायी विकास की संकल्पना शब्द के अंदर ही अंतर्विरोध निहित है। वे टिप्पणी करते हैं कि विकास और स्थयित्व न केवल एक दूसरे के परस्पर-विरोधी हैं बल्कि इसके साथ-साथ एक दूसरे का खंडन भी करते हैं। अन्य शब्दों में स्थायित्व और विकास एक दूसरे से भिन्न हैं। (धनगरे 1996:10)। ऐसे दृष्टिकोण से साफ तौर पर निहित है कि विकास शब्द का प्रयोग चाहे आर्थिक वृद्धि के लिए हो या समता आधारित वृद्धि या जीवन की गुणवत्ता या आधुनिकीकरण में सुधार, इससे उपभोग का स्तर बढ़ेगा और प्राकृतिक संसाधनों का शोषण भी।

वोल्फगैंग सैच के अनुसार विकास से स्थायित्व शब्द के जुड़ने से अर्ध-दैधवृत्ति का क्षेत्र बन गया है। उसके शब्दों में नयी संकल्पना के भीतर, स्थायित्व का बिंदुपथ, अति सूक्ष्म ढंग से प्रकृति से विकास की ओर बढ़ गया है जबकि पहले जहाँ स्थायित्व प्राकृतिक देनों की ओर संकेत था, अब इसका सन्दर्भ विकास से है। इसके साथ-साथ बोधात्मक दायरा भी बदल जाता है। प्रकृति की बजाय विकास, ध्यान का मुख्य मुद्दा बन जाता है और विकास की बजाय प्रकृति ध्यान केंद्रित करने योग्य महत्त्वपूर्ण कारक बन जाती है। संक्षेप में स्थायित्व का अर्थ प्रकृति के संरक्षण से फिसल कर विकास के संरक्षण पर आ टिकता है (सैश 1997 : 73)।

ख) स्थायी विकास की परिभाषा: अस्पष्ट और अनेकार्थक

सुखमय चक्रवर्ती की राय में स्थायी विकास कोई ठोस अर्थ नहीं देता और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसका अपना एक अलग अर्थ है (अग्रवाल 1992 : 51)। अनिल अग्रवाल आगे कहते हैं कि किसी लगिंग (Logging) कंपनी के लिए स्थायी परियोजनाओं की प्राप्ति : किसी पर्यावरणविद् अर्थशास्त्री के लिए इसका अर्थ प्राकृतिक वनों के स्थायी उत्पादों की प्राप्ति करना है, और किसी पर्यावरणविद् के लिए इसका अर्थ हमारे बच्चों के लिए साफ धरोहर कायम रखना है। लेकिन निश्चित रूप से उलझन, स्पष्टता की बजाय अधिक उत्पादक नहीं हो सकती।

विलियम एक फिशर का प्रेक्षण विविध दृष्टिकोण वाले लोगों को दर्शाता है जिनकी दर्शनशास्त्रीय स्थिति एक-दूसरे से अलग है और मस्तिष्क में लक्ष्य भी एक-दूसरे से अलग हैं और जो वंछित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, सामाजिक न्याय की समान नैतिक शब्दावली और स्थायी विकास के समान आर्थिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। उसके दृष्टिकोण में स्थायी विकास एक शब्द बन गया है जिसका प्रयोग, जो कोई कुछ करता है, उसकी पुष्टि के लिए करता है और निहितार्थ में भिन्न लक्ष्यों, कार्यनीतियों और मतों वालों की अलोचना करता है (1997 : 9)। भारत में सरदार सरोवर परियोजना जिस पर काफी वादविवाद हुआ है, हमारा केंद्रबिंदु है। फिशर लिखते हैं कि बांध प्रतिपादक और विरोधी स्थायी विकास और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों की प्राप्ति अपनी वचनबद्धता में काफी सत्यनिष्ठ प्रतीत होते हैं, लेकिन इन शब्दों का जो अर्थ वे लेते हैं, वे अर्थ एक-दूसरे से भिन्न हैं (वही : 8) (इस बेहतर ढंग से समझने के लिए बॉक्स 4.2 देखें)।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बॉक्स 4.2: क्या सरदार सरोवर परियोजना स्थायी विकास का उदाहरण है?

विलियम एफ. फिशर का प्रेक्षण इस संदर्भ में काफी साफ छवि प्रकट करता है। वे लिखते हैं कि सरदाार सरोवर बांध के प्रतिपादक इस बात पर जोर देते हैं कि स्थायी विकास, मुख्यता बड़े पैमाने पर महत्त्वाकांशी, नियंत्रित योजनाओं के अनुकूल हैं जो कि प्राकृतिक आपदाओं के प्रभावों को कम करने के योग्य है और भोजन, जल और ऊर्जा के लिए बढ़ती अर्थव्यवस्था की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य हैं। उनके परिप्रेक्ष्य से नर्मदा नदी चिरास्थायी रूप से नवीकृत संसाधन है जो कि फिलहाल बेकार में बहा जा रहा है। बांध समर्थकों का तर्क है कि इस निर्बाध संसाधन को अपने हिसाब से निर्मित करने से गुजरात अपनी आर्थिक वृद्धि और अपनी आबादी के जीवन स्तर को 'कायम' रखने के योग्य हो सकेगा। परियोजन योजनाकारों और समर्थकों का तर्क है कि कृषि वृद्धि और बढ़ती अर्थव्यवस्था अर्थात् दोनों के लिए सूख-संभावित क्षेत्रों में पानी की प्रत्यक्ष और बढ़ती जरूरतें प्रक्षेपित साधनों और नर्मदा पर बांध बनाने की लागत और इस क्षेत्र के मौजूदा लोगों के पुनर्वास की पुष्टि करती है।'

दूसरी तरफ सरदार सरोवर परियोजना के आलोचक...स्थायी विकास के उदाहरण के रूप में सरदार सरोवर की छवि पर सवालिया निशान लगाते हैं और इसे एक ऐसी अलग परियोजना के रूप में देखते हैं जो अमीरों के लिए फायदेमंद है और जो निर्धनों को फिलहाल मौजूद संसाधनों से उन्हें बेदखल कर देगी। उनका तर्क है कि किसी भी उपाय के रूप में परियोजना आस्थायी और अन्यायपूर्ण है... वे पाते हैं कि सरदार सरोवर जैसी योजनाओं के आकार और व्यापक्ता के लिए जरूरी है कि लोगों के हित के संरक्षकों के रूप में राज्य द्वारा इन योजनाओं को शुरू किया जाना चाहिए, इनमें पैसे लगाने चाहिए और इनकी देखरेख की जानी चाहिए। ऐसी आलोचना के लिए स्थायी विकास ऊपर से नीचे के क्रम में न हो कर नीचे से ऊपर के क्रम में है। इसके लिए विकास प्रयासों को विकेंद्रिकृत करना जरूरी है और परियोजना की रूपरेखा,

> मूल्यांकन और कार्यान्वयन के सभी स्तरों पर स्थानीय लोगों को शामिल करना जरूरी है... उनके लिए स्थायी विकास का संबंध जिस तरह संसाधनों के पारिस्थितिकीय रूप से स्थायी प्रयोग से है उसी तरह यह न्याय और समता के सिद्धांत से भी जुड़ा होना चाहिए।
>
> इन आलोचनाओं के समर्थन पर आधारित परिप्रेक्ष्य से बड़े पैमाने की केंद्र द्वारा नियंत्रित परियोजनाएं, स्थायी विकास के तालमेल में नहीं हैं...(स्रोत : फिशार 1997)

जिस तरह स्थायी विकास का शब्द विभिन्न लोगों या समूहों के लिए विभिन्न है, उसी तरह इसका अर्थ भी एक सोच वाले राष्ट्रों की तुलना में दूसरी सोच वाले राष्ट्रों से अलग है। जैसा कि सेविला-गज़्मैन एडुरैडी और ग्राह्म वुडगेट (1997-86) ने उजागर किया है, जैसा कि ब्रंडलैंड समिति रिपोर्ट 'अवर कॉमन फ्यूचर...' में वयक्त अधिकारियों डिस्कोर्स से, प्रतीत होता है कि औद्योगिक और कम औद्योगिक राष्ट्रों के बीच स्थायी विकास का अर्थ भिन्न है। कम औद्योगिक राष्ट्रों के लिए इसका अर्थ उपभोग के स्तरों में सामान्य बढ़ोतरी को विकसित करना है...उच्च औद्योगिकृत राष्ट्रों के लिए स्थायी विकास का दूसरों की मेहनत पर वृद्धि प्राप्त किए बिना, राष्ट्र की वृद्धि की संभावना की निरंतर प्राप्ति करना है। विश्व पर्यावरण विकास आयोग के अनुसार "ऐसी वृद्धि निरंतर औद्योगिक किस्म की होगी (1987), औद्योगिक उत्पादन का आधुनिक समाजों की अर्थनीतियों और वृद्धि की अपरिहार्य गति को कायम रखने में विशेष महत्त्व है"।

सी.आर. रेड्डी, आयोग की परिभाषा को सरल लेकिन अस्पष्ट रूप से देखता है (2002: 10)। वोल्फगैंग सैश के शब्दों में (1997 : 74-75)।

गौर से जाँच करने पर पता चलता है कि ब्रंडलैंड आयोग द्वारा प्रदत्त परिभाषा 'भारी संख्या' पर ध्यान नहीं देती, लेकिन बजाय इसके 'मौजूदा आवश्यकताओं' और 'भावी पीढ़ियों' की आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित करती है। जहाँ प्रकृति के खतरे, 'स्थायी विकास' की संकल्पना के संघटक हैं, वहीं प्रकृति के संकट, 'विकास' और 'आवश्यकताओं' में निर्बल आवाज़ ही पाती है। परिभाषा में समय के आयाम और स्थान के आयाम पर जो एक जैसा ध्यान दिया गया है वे दो अलग-अलग बातें हैं। इसलिए यह कहना कोई बढ़-चढ़ कर बात करना नहीं है कि प्रामाणिक परिभाषा ने प्रकृति बनाम न्याय की उलझन में प्रकृति का पक्ष लिया है। लेकिन दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्तररहित ही रह जाते हैं : 'क्या चाहिए?' और 'किसको चाहिए?' क्या स्थायी विकास से पानी, भू और आर्थिक सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं को या हवाई जहाज से यात्रा करना और बैंकों से पैसा जोड़ना की जरूरतों को पूरा किया जा सकता है? क्या इसका संबंध उत्तरजीविता संबंधी आवश्यकताओं से है या भोग-विलास संबंधी आवश्यकताओं से? क्या प्रश्न में व्यक्त आवश्यकताएँ वैश्विक उपभोक्ता वर्ग की हैं या ऐसे असंख्य गरीब परिवारों की? अर्थात ब्रंडलैंड रिपोर्ट पूरी तौर पर अनेकार्थक भाव देती है और इस दौरान न्याय खतरों को पूरी तरह अनदेखा करती है और वर्षों में उत्पन्न परिणामों से रहित नहीं है।

वी. रत्ना रेड्डी (1955 : ए-23), आयोग की परिभाषा में व्यक्त भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की चिंता का हवाला देते हुए कहते हैं कि संकल्पनात्मक स्तर पर मौजूदा और भावी पीढ़ियों के हितों के बीच पैदा होने वाले द्वंद्व को सीमित करना बेहद कठिन है। जहाँ एक ही पीढ़ी में पर्यावरण और संस्कृति की दृष्टि से आवश्यकताओं में भिन्नता होती है तो "भावी पीढ़ियाँ किस प्रकार अपनी आवश्यकताओं को देखेंगी, यह हमारी कल्पना से परे होगा..."

MAADHYAM IAS

ग) परिभाषा के प्रचालन तत्व से संबंद्ध समीक्षा

परिभाषां के प्रचालन तत्व के संदर्भ में शंकाओं को व्यक्त करते समय अनिल अग्रवाल (1992 : 50-51), पूछते हैं:

"जिस अत्यंत विभाजित विश्व में रहते हैं, जहाँ यहाँ तक कि मौजूदा पीढ़ियों की जरूरतों के भारी अनुपात को पूरा नहीं किया जा सकता, तब भावी पीढ़ी के अधिकारों को कौन सुनिश्चित करेगा? ऐसे सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ में परिभाषाएँ भी यह बताने में विफल हैं कि किन भावी पीढ़ियों की जरूरतों को सुरक्षित और संरक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। क्या हम सिर्फ धनी वर्ग की भावी पीढ़ियों की ही बात कर रहे हैं या फिर निर्धन वर्ग की भी?"

इसके आगे सी.आर. (2002 : 16) रेड्डी टिप्पणी करते हैं कि जहाँ 'स्थायी विकास' के चारों ओर समग्र यू.एन. मशीनरी को निर्मित किया गया है, वहीं विश्व अभी भी इस आकर्षक, लेकिन धुँधली संकल्पना के प्रचालन संबंधी अर्थ को जानने की प्रतीक्षा कर रहा है।

समान रूप से, विलियम एफ. फिशर (1997 : 8) गौर करते हैं कि जहाँ 'स्थायी विकास' शब्द की व्यापक वचनबद्धता, चिरस्थायी विकास की आवश्यकता पर बढ़ती विश्वव्यापी सर्वसम्मति का सुझाव देती है वहीं स्थायी विकास के विशिष्ट लक्ष्यों या इनकी प्राप्ति के उपयुक्त साधनों के बारे में कोई सहमति नहीं है, ब्रंडलैंड आयोग की इस शब्द की परिभाषा के बारे में, वे आगे गौर करते हैं कि, यह सर्वसम्मति क्षेत्र की बजाय अत्यंत वादविवाद के क्षेत्र को परिभाषित करती है...विविध तरीकों में प्रयुक्त, 'स्थायी विकास' का विस्तृत उद्देश्य है, लेकिन यह न तो विशिष्ट लक्ष्यों के प्रति निश्चित कार्यों को निदेशित कर सकता है न ही इन लक्ष्यों में व्यापार-संतुलन पर कोई दिशा-निर्देश दे सकता है। संसाधन सीमाओं और आबादी वृद्धि से आय पुनर्वितरण और आर्थिक वृद्धि की आवश्यकता को संतुलित करने के मुख्य मुद्दे को स्पष्ट करने की बजाय धुंधली छवि देता है (वही)।

MAADHYAM IAS

घ) 'स्थायी विकास की राजनीति' से संबंधित समीक्षा

के.आर. नायर (1994 : 1327), 'स्थायी विकास' की संकल्पना को राजनीतिक साधन के रूप में देखते हैं और आयोग की समीक्षा के बहुत से पहलुओं पर उनकी राय विशेष महत्त्व रखती है। उनका तर्क है कि स्थायी विकास की संकल्पना ऐसे देशों से उभरी है जो खुद अस्थायी संसाधन प्रयोग करने के आदी हैं।'' (वही : 1327), इसके आगे वे कहते हैं कि "स्थायी विकास की नीतियाँ, फिलहाल दक्षिण-प्रतिरोधी और निर्धन-प्रतिरोधी हैं और इसलिए पारिस्थितिकीय प्रतिरोधी हैं" (वही : 1328-29)।

नायर यह टिप्पणी भी करते हैं कि स्थायी विकास के मद्देनजर 'आवश्यकता', मूलभूत की बजाय अमीरी है या अस्वच्छता की बजाय धन-सम्पत्ति है क्योंकि बुनियादी जरूरतें जब विकासात्मक प्रतिमान का महत्त्वपूर्ण घटक बन जाती हैं तो अस्थायित्व का सवाल ही नहीं पैदा होता। इसके आगे वे कहते हैं "निर्धनता ओर पर्यावरणीय निम्नीकरण के बीच के चक्रीय संबंध को साधारण शब्दों में समझा जाता है''। अवधारणा है कि जैसे निर्धनता बढ़ती है, प्राकृतिक पर्यावरण का स्तर निम्न हो जाता है और ऐसे निम्नीकरण से आगे गुज़र बसर की संभावनाएँ कम हो जाती हैं। पर्यावरणीय निम्नीकरण से चक्र के तेजी से घूमने से और अधिक गरीबी उत्पन्न होती है। जहाँ गरीबी उत्पन्न करने वाले बुनियादी कारकों को इस ढाँचे (दायरे) से बाहर रखा जाता है वहीं 'प्राकृतिक' पूँजी को निम्न करने वाले एकतरफा विकास की भूमिका पर गरीबी के अलावा अन्य बहुत से निर्धारित कारकों द्वारा 'प्राकृतिक पूँजी' की पहले से निर्मित निम्न गुणवत्ता पर गरीबों के कृत्रिम रूप से निर्मित आडम्बरपूर्ण मुद्दे पर भी यह विचार नहीं करता। (वही : 1327-28)।

स्थायी विकास के लिए विकासशील देशों में आबादी वृद्धि को कम करने के पश्चिमी सोच के पीछे छिपी राजनीतिक मंशा की अस्पष्टता को बेनकाब करते समय, नायर का विचार है कि स्थायी विकास को सतत आधार पर कच्चे माल को उपलब्ध कराने के विकल्प के रूप में देखा जाता है ताकि उत्पादन व्यवस्था, फैलते बाज़ार और राजनीतिक व्यवस्था को कोई चुनौती न हो। विकासशील देशों में इसलिए कच्चे माल को सुरक्षित करने और इसकी आबादी वृद्धि को कम करने की जरूरत हो ताकि संसाधन आसानी से उपलब्ध होने के रूप में बने रहें।" जब उत्तर की अस्थायी उत्पादन पद्धति के लिए जोड़जाड़ विकल्प का सुझाव देना ही उद्देश्य हो तो दक्षिण में आबादी वृद्धि स्वत: स्थायी विकास पर वादविवाद का लक्ष्य बन जाती है'' (वही : 1328)।

> **चिंतन और कार्रवाई 4.3**
>
> स्थायी विकास की संकल्पना में निहित मुख्य अस्पष्टताएँ क्या हैं? आपकी राय में ऐसी अस्पष्टताओं को कैसे दूर किया जा सकता है?

4.6 वैश्वीकरण और स्थायी विकास का भविष्य

स्थायी विकास की धारणा के पथ पर वैश्वीकरण ने नई चुनौतियाँ पैदा की हैं। मार्टिन खोट का कहना है कि ''उदारवाद से संबद्ध वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने इतना बल इकट्ठा कर लिया है कि इसने स्थायी विकास की कार्यसूची (एजेंडे) के महत्त्व को कम कर दिया है और फिलहाल कम कर रहा है। वाणिज्य और वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धात्मक बनते रहने की सोची-समझी आवश्यकता और कंपनियों को अधिक तरजीह देने और इनकी मांगों की ओर ध्यान देना और अमीर वर्ग, उत्तर और दक्षिण में कुछ सरकारों की उच्च प्राथमिकता के कारक बन गए हैं। मुक्त बाजार पागलपन की इस लहर में पर्यावरण, निर्धन वर्ग का कल्याण और वैश्विक सहभागिता जैसी बातों का त्याग कर दिया गया है'' (खोट 2000 : 39)। वैश्वीकरण की प्रक्रिया, जॉनसबर्ग शिखर वार्ता के विफलता के मुख्य कारण के रूप में देखी जाती है। अपने संपादकीय भाग में 'हिंदू' का कहना है कि "जॉनसबर्ग घोर (विफलता) का मुख्य कारण है कि त्वरित वैश्वीकरण के पिछले दशक के दौरान पर्यावरण की समस्याओं से सामूहिक रूप से जूझने पर वैश्विक इच्छाशक्ति धीरे-धीरे उड़न छू हो गई'' (द हिंदू 2002 : 10)।

MAADHYAM IAS

उपर्युक्त टिप्पणी, स्थायी विकास की संकल्पना पर आलोचनात्मक निगाह डालने और प्रकृति के खतरों और न्याय के खतरों के भीतर तालमेल स्थापित करने में शामिल जटिलताओं को समझने में हमारी सहायता करता है। सामाजिक-आर्थिक विकास के असमान स्तर, सांस्कृतिक विशिष्टताओं और उत्तर और दक्षिण में विविध राष्ट्र राज्यों की राजनीतिक स्थितियाँ और वैश्वीकरण के बलों से उत्पन्न चुनौतियों से, उपर्युक्त आलोचना, स्थान और समय में संकल्पना के प्रचालन की व्यावहारिक दिक्कतों को भी रेखांकित करती है। इसके बावजूद स्थायी विकास की संकल्पना विकास कथन (डिसकोर्स) पर हावी है और राष्ट्रीय मोर्चों पर वादविवाद को निरंतर विस्तृत रूप दे रहा है।

4.7 सारांश

इस इकाई में हमने 'स्थायी विकास' की संकल्पना को आलोचनात्मक ढंग से समझने का प्रयास किया है। पहले अनुभाग में हमने गौर किया : आधुनिक प्रौद्योगिकी के प्रयोग, तीव्र उद्योगीकरण और शहरीकरण जैसी विशेषताओं वाले विकास के पश्चिमी आर्थिक वृद्धि के मॉडल से उत्पन्न पर्यावरण के चिंताजनक निम्नीकरण ने हमें ऐसा ऐतिहासिक संदर्भ दिया है जिसने 'विकास' बनाम 'पर्यावरण' के द्विभागीकरण को विकसित किया। अंत में इस बढ़ती अनुभूति कि मनुष्यों के लिए 'विकास' और 'पर्यावरण' दोनों जरूरी हैं, इससे 'विकास' और

'पर्यावरण' के बीच एक ऐसा तालमेल बैठा जिसे 'स्थायी विकास' की संकल्पना में हम पाते हैं। दूसरे अनुभाग में हम सकल्पना की उत्पत्ति और विकास का पता, स्टॉकहोम सम्मेलन (1972), लिमिट्स टू ग्रोथ-द वर्क ऑफ द क्लब ऑफ रोम (1972-74), ग्लोबल 2000 (1980) वर्ल्ड कन्सरवेशन स्ट्रैटिजी : लिविंग रिसोर्स कन्सरवेशन फॉर सस्टेनेबल डेबलपमेंट (1981), द रिपोर्ट ऑफ द डब्ल्यू सीईडी अवर कॉमन फ्यूचर (1987), और न्यूयार्क में आयोजित 'रिओ 5' और जानसबर्ग में आयोजित डब्ल्यू एसएसडी (2002) जैसी जानी-मानी कुछ अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं और दस्तवेजों की संक्षिप्त समीक्षा के माध्यम से लगाते हैं और जिन्होंने स्थायी विकास की संकल्पना को बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

तीसरा अनुभाग, स्थायी विकास की संकल्पना को इसकी परिभाषा, अर्थ, अपेक्षाओं नीति उद्देश्यों की दृष्टि से और अवर कॉमन फ्यूचर (1987), रिपोर्ट में सामरिक उपायों के रूप में परिकाल्पित, परिभाषित और व्यक्त करने की दृष्टि से स्पष्ट करने पर अर्पित है। चौथे अनुभाग में हमने नोट किया कि स्थायी विकास की संकल्पना की वाक्यांश और अर्ध-दैधवृत्ति में शामिल 'तार्किक अंतर्विरोध' जैसे विविध आधारों पर और इसके प्रचालन तत्व और 'राजनीतिक मशाओं के संदर्भ में व्यक्त शंकाओं के आधार पर, आलोचना की गई है। उदारवाद से संबद्ध वैश्वीकरण की प्रक्रिया को भविष्य में स्थायी विकास की कार्यसूची (एजेंडे) के महत्त्व के लिए अवरोध के रूप में देखा गया है।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Agarwal, Anil 1992. "What is Sustainable Development" Down to Earth June 15th 50-51.

Fisher W.F. 1997 Development and Resistance in the Narmada Valley, In Fisher W.F. (ed) Toward Sustainable Development Struggling over India's Narmada River] Rawat Publication, New Delhi.

Sabhkhe, S.A. 2003. The Concept of Sustainable Development : Rest Connotations and Critical Evaluation. Social Change, Vol. 33 No. 21 Page. 67-80

MAADHYAM IAS

खंड II

विकास का परिप्रेक्ष्य

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 5

आधुनिकीकरण

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 आधुनिकीकरण को समझना

5.3 गिड्डन का आधुनिकता का सिद्धांत

5.4 रूपावली का पतन

5.5 उत्तर-आधुनिकतावाद

5.6 वाद-विवाद

5.7 आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण

5.8 सारांश

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप:

- आधुनिकीकरण की संकल्पना को समझने के योग्य बन सकेंगे;
- आधुनिकता के समकालीन सिद्धांत की आलोचनात्मक चर्चा कर सकेंगे; और
- स्पष्ट कर सकेंगे कि आधुनिकता किस प्रकार विकास से संबद्ध है।

MAADHYAM IAS

5.1 प्रस्तावना

यद्यपि खंड 1 की चार इकाइयों के माध्यम से हम पहले ही विकास की संकल्पना और प्रक्रिया और अन्य संबद्ध संकल्पनाओं की बुनियादी समझ प्राप्त कर चुके हैं। इसके अलावा खंड I में हमने यह भी समझा कि विकास की प्रक्रिया और संकल्पनाओं के बारे में बहुत से विविध दृष्टिकोण पहले से ही कायम हैं और ये दृष्टिकोण स्थायी न होकर समय-समय पर बदलते रहते हैं। यद्यपि खंड 1 में हमने ऐसे कुछ दृष्टिकोणों का हवाला दिया था, लेकिन मौजूदा खंड (खंड II) में हम अब इन पर विस्तृत चर्चा करेंगे। आइए आधुनिकीकरण से शुरुआत करें।

आधुनिकीकरण की संकल्पना का उद्भव तृतीय विश्व द्वारा सामना की जाने वाली बहुत सी चुनौतियों के संदर्भ में पश्चिमी सामाजिक विज्ञान की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक उपनिवेशन की समाप्ति की प्रक्रिया के दौरान नये राष्ट्र आर्थिक विकास और तकनीकी बदलाव के विशाल कार्यक्रमों को शुरू करने की जल्दी में थे। उस समय ऐसे राष्ट्रों को अपने विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने और इन्हें क्रमबद्ध करने के लिए नयी रूपावली (Paradigm) विकसित करने की जबर्दस्त आवश्यकता महसूस हुई। उस समय आधुनिकीकरण ऐसा एक सूत्र नज़र आया जिससे तबदीली के अच्छे आसार नज़र आने का आश्वासन मिल रहा था।

इस इकाई में हम आधुनिकीकरण के संदर्भ में विकास की संकल्पना की छानबीन करेंगे। शुरुआत में हम सामाजशास्त्रीय साहित्य में रूपावली के रूप में विशेष रूप से गिड्डन की रचनाओं में आधुनिकीकरण की धारणा की चर्चा करेंगे। यहाँ हमारा उद्देश्य आधुनिकीकरण सिद्धांत की समझ विकसित करना है और इसके बाद रूपावली के रूप में उत्तर-आधुनिकतावाद

के उद्भव और आधुनिकीकरण सिद्धांत की आलोचना पर ध्यान केंद्रित करना है। इस प्रक्षेय-पथ का पता लगाते हुए हम विकास के बहुत से आयामों की छानबीन करेंगे जिनका विविध चरणों पर अपना एक विशेष महत्व है।

5.2 आधुनिकीकरण को समझना

आधुनिकीकरण को पश्चिमी यूरोप और उत्तर अमेरिका के शहरी, औद्योगिक, साक्षर और सहभागी समाजों से ऐतिहासिक रूप से संबंद्ध एक सामान्य व्यवहारगत पद्धति के रूप में समझा जा सकता है। इसे विवेकपूर्ण और वैज्ञानिक विश्व-दृष्टिकोण और विज्ञान और प्रौद्योगिकी के निरंतर बढ़ते अनुप्रयोग और बढ़ती वृद्धि के रूप में देखा जाता है जहाँ समाज की अधिकांश संस्थाएं विश्व-दृष्टिकोण और प्रौद्योगिकी की उभरती प्रकृति के अनुरूप स्वयं को ढालने की ओर प्रेरित हैं।

बॉक्स 5.1: आधुनिकता की संकल्पना

आधुनिकता में आधुनिक समाज का विकास शामिल है (जहाँ आधुनिकता का अर्थ लोकतांत्रिक समाजों से है जहाँ नागरिक समाज और राज्य एक-दूसरे से भिन्न हैं और जहाँ सामाजिक और तकनीकी आधार पर श्रम का विभाजन काफी अधिक हो और जहाँ सांस्कृतिक और राजनीतिक सीमाओं में एकजुटता वाले राष्ट्र, राज्यों का गठन हों) और जहाँ बुद्धिवादी ज्ञानमीमांसा और व्यष्टिवादी और वस्तुनिष्ठ सत्तामीमांसा हों (टोर्फिंग 1999 : 303)।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में समाजकीय परिवर्तनों का अनुक्रम नज़र आता है। कृषिक समाजों का अर्थ है: दोष मढ़ना, विशिष्टावादी और विकसित प्रतिरूपों का वर्चस्व और जहाँ स्थानीय समूह काफी सुदृढ़ हों और जहाँ स्थानिक गतिशीलता सीमित हों। व्यावसायिक असमानता अपेक्षाकृत साधारण और स्थिर हो; और स्तरीकृत व्यवस्था बहुमानिक है और इसका विसारित प्रभाव है। आधुनिक औद्योगिक समाज का अर्थ: सार्वभौमिक, विशिष्ट और उपलब्धि मानकों की मौजूदगी से है और जहाँ गतिशीलता काफी अधिक हो और जहाँ विकसित व्यावसायिक व्यवस्था, अन्य सामाजिक संरचनाओं से पृथक हो और जहाँ अक्सर वर्ग व्यवस्था उपलब्धि पर आधारित हो और जहाँ गैर-आरोपित करने वाली विशिष्ट संरचनाएँ और संघों से कामकाज चलता हो। ऐतिहासिक रूप से विकसित संस्थाएँ लगातार ऐसे परिवर्तनों के प्रति स्वयं को ढालती हैं जहाँ मानव सूझबूझ से घटनाओं में परिवर्तन होते हैं और जो मनुष्य द्वारा इसके परिवेश को अपने नियंत्रण में करने का परिणाम है। आधुनिकीकरण का सिद्धांत सही मायने में अपने वितरण उद्देश्यों को परिभाषित नहीं करता। अस्पष्ट समतावादी और सहभागितापरक लोकाचार का उद्भव हालांकि सामाजिक दूरियों को कम करने और वांछनीय परिणामों के रूप में अधिकाधिक समानता के विकास की तरफ इशारा तो करता है।

सांस्कृतिक प्रतिक्रिया के स्वरूप के रूप में आधुनिकीकरण में बुनियादी तौर पर सार्वभौमिक और विकासवादी किस्म की विशेषताओं का समावेश है और जो प्रकृति के आधार पर मानवतावादी, पार-नृजातीय और गैर-वैचारिक हैं (सिंह 1961)। आधुनिकीकरण का अनिवार्य गुण तर्क शक्ति है। जो व्यक्ति-विशेष के स्तर पर दृष्टिकोण प्रक्रियाओं को बदल देती है और इस दौरान समाज के समग्र संस्थागत ढांचे में जो व्याप्त हो जाती है। घटनाओं और स्थितियों को कारण और प्रभाव की दृष्टि से समझा जाता है। कार्य की रणनीतियों का निर्धारण सजग उपायों को ध्यान में रखकर किया जाता है। तर्क शक्ति मानव अंत:क्रिया के सभी रूपों को स्पष्ट करने का काम शुरू करती है और इसी तरह मनुष्य के भविष्य को लेकर उसकी सोच पर हावी हो जाती है और इसके साथ बुद्धिसंगतता मनुष्यों द्वारा स्वयं के लिए गठित लक्ष्यों की प्राप्ति में उनके प्रयासों में भी शामिल रहती है। सहवर्ती संरचनात्मक परिवर्तन और मूल्य परिवर्तन, समग्र सांस्कृतिक लोकाचार में मूलभूत परिवर्तन लाते हैं।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 5.2: तर्क शक्ति का अर्थ

तर्क शक्ति शब्द का अर्थ ऐसी सोच और कार्रवाई से है जो तार्किक और अनुभवजन्य ज्ञान के नियमों से तालमेल बिठाने के प्रति सजग हो और जहाँ उद्देश्य संसक्त और पारस्परिक रूप से सुसंगत हों और जिनकी प्राप्ति सर्वाधिक उपयुक्त साधनों से की जाती हों।

ऐसा मानना कि तर्क शक्ति या तर्क मनुष्यों की विशिष्ट विशेषता हैं और जिसने इसे पिछले दो हजार वर्षों से पश्चिमी दर्शन शास्त्र का केन्द्र बिंदु बनाया है। ऐसे विश्वास के कारण इससे मानव समाज में स्थान और तर्क करने की शक्ति पर जरूरत से अधिक सोच-विचार किया गया है, बुद्धिवाद के सिद्धांत के रूप में इसकी आलोचना की गई है।

मैक्स वेबर, विशेष रूप से विचक्राफ्ठ और गेसैलशाफ्ट 1921 में समाजशास्त्र में इस शब्द के सर्वाधिक विस्तृत प्रयोग के लिए जिम्मेवार ठहराया गया है। उसने कार्रवाई को चार प्रकारों में विभाजित किया है। ये हैं: इरादतन तार्किक कार्रवाई अर्थात् लक्ष्य की पूर्ति के लिए साधनों का चयन सही तरीके से किया जाता है; मूल्य तर्कयुक्त जहाँ कार्रवाई को सुविचारित मूल्य मानकों के अनुरूप पूरा किया जाता है और भावात्मक और पारंपरिक, अंतिम दोनों प्रकारों को तर्कयुक्त कार्रवाई से विचलित रूप में देखा गया है'' (एल्ब्रो 1968:154)।

अपने निबंध द चेंज टू चेंज: मार्डनाइजेशन, डेवलपमेंट एंड पॉलिटिक्स में हेंटिंगटन (1976:30-31) ने आधुनिकीकरण प्रक्रिया की निम्नलिखित विशेषताओं की पहचान की है।

i) आधुनिकीकरण, और निहितार्थ में विकास एक क्रांतिकारी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में ग्रामीण कृषीय संस्कृतियों को शहरी औद्योगिक संस्कृतियों में परिवर्तित करने के प्रयास किए जाते हैं। यह वही है जिसे अैल्विन टोफ्लर (1980) ने पहली लहर से दूसरी लहर के रूप में स्पष्ट किया है।

ii) आधुनिकीकरण और विकास अर्थात् दोनों की प्रक्रिया जटिल और संज्ञानात्मक व्यवहारगत और संस्थागत संशोधन और पुन: निर्मित करने के अनुक्रम की दृष्टि से बहुआयामी है।

iii) दोनों सुव्यवस्थित प्रक्रियाएँ हैं क्योंकि एक आयाम में भिन्नता से दूसरे आयामों में महत्वपूर्ण सह-बदलाव उत्पन्न होते हैं।

iv) ये वैश्विक प्रक्रियाएँ हैं।

v) ये दीर्घ प्रक्रियाएँ हैं।

vi) आधुनिकीकरण और विकास के लक्ष्यों के प्रति उठाए जाने वाले कदम ऐसे चरणों और उप-चरणों के माध्यम से आगे बढ़ते हैं जो पहचान किए जाने के योग्य हैं।

vii) ये समरूपी प्रक्रियाएँ हैं।

viii) अस्थायी अवरोध के सिवाय दोनों अनपलट प्रक्रियाएँ हैं।

ix) ये प्रगतिशील प्रक्रियाएँ हैं। लंबे समय में मनुष्यों की सांस्कृतिक और भौतिक अर्थात् दोनों किस्म की खुशहाली में ये अपना योगदान देती हैं।

चिंतन और कार्रवाई 5.1

आधुनिकीकरण से आप क्या समझते हैं?

MAADHYAM IAS

आधुनिकीकरण का सिद्धांत, सामाजिक बदलाव से संबंधित दो विचारों से विकसित हुआ है। ये हैं: पारंपरिक बनाम आधुनिक समाजों की संकल्पना और प्रत्यक्षवाद जो वृद्धि के प्रगतिशील चरणों में विकास को समाजकीय विकास के रूप में देखता है। (डयूश 1961, रोस्तो 1960)।

विकास के प्रति चिंता का मुद्दा, 1940 में शीत युद्ध के पृष्ठपट के मद्देनजर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशीकरण की समाप्ति और पुन:निर्माण की प्रक्रिया के निक्षेप के रूप में उभरा। विकासशील देश रैखिक प्रक्रिया के माध्यम से स्वयं को विशेष तर्क देते हुए अपने पारंपरिक समाज को आधुनिक और विकसित समाज के रूप में विकसित कर सकें। विकास के विकासवादी सिद्धांत ने ऐसे विविध चरणों, चरों और प्रक्रियाओं की पहचान की जिनके माध्यम से समाज विकसित होता है। प्रत्यक्षवादी विकास से पता चलता था कि सभी समाज पारंपरिक से आधुनिक में परिवर्तित होने के लिए ऐसे समान चरणों से गुजरेंगे जिनसे पश्चिमी समाज गुजरा था। ये चरण थे (1) पारंपरिक समाज; (2) परिवर्तन की रुख करने की पूर्वशर्तों का पालन करना, (3) परिवर्तन की ओर अग्रसर होना (4) परिपक्वता की प्राप्ति; और (5) बड़े पैमाने पर उपभोग की अवस्था। आधुनिकीकरण की इन अवस्थाओं के माध्यम से समाज में होने वाली प्रगति को बेहतर रूप में रोस्तो का अवस्था सिद्धांत कहते हैं (अधिक ब्यौरे के लिए इस पाठ्यक्रम की इकाई 2 देखें) आधुनिकीकरण सिद्धांत ने विकास को और अधिक अंतर-विषयक क्षेत्र में आगे बढ़ाया। इस सिद्धांत ने आर्थिक बदलाव को सुगम बनाने के लिए सामाजिक और संस्थागत परिवर्तन की हिमायत की। यह आधुनिकता पर सैद्धांतिक बातों को कायम करने की वजह से संभव हुआ कि समाजशास्त्री विकास अध्ययनों में अपना पहला धावा बोला।

मौजूदा समय में आधुनिकता पर चर्चा ''बहु आधुनिकताओं'' पर केन्द्रित है। इज़ेनस्ता (Eisenstadt) द्वारा प्रतिपादित बहु आधुनिक की धारणा स्पष्ट करती है कि पश्चिम में आधुनिकता से प्राप्त परिणामों का असर विश्व भर में देखने को मिला। हालांकि ऐसे परिणाम, आधुनिकता के पश्चिमी तरीके के वैश्विक प्रभाव की उपज न होकर बल्कि विविध किस्म की आधुनिक स्थितियाँ हैं और बहुत से गैर पश्चिमी देशों के व्याप्त विशेषताएँ हैं। इजेनस्ता (Eisenstadt), (1996 : 1-2), जिन्हें इस विचार का प्रमुख समर्थक माना जाता हैं, ने कहा कि, ''समाजों को आधुनिक बनाने में असल विकासात्मक कार्यों ने आधुनिकता के इस पश्चिमी कार्यक्रम की समरूपी और आधिपत्य संबंधी-अवधारणाओं को नकारा है। जब ऐसे संरचनात्मक असमानता के प्रति ऐसे अधिकांश समाजों में पारिवारिक जीवन, आर्थिक और राजनीतिक संरचनाओं, शहरीकरण, आधुनिक शिक्षा, जन संचार और वैयक्तिक अभिविन्यास के लिए विविध कोटि की प्रथाओं का सामान्य प्रवृत्ति विकसित हुई तो जिन तरीकों से इन क्षेत्रों को अपने विकास की विविध अवधियों में एक-दूसरे से भिन्न तरीके से परिभाषित एवं संगठित किया गया, उससे बहुविध संस्थागत एवं सैद्धांतिक प्रतिरूपों का उदय हुआ। उसका सोचना था कि आधुनिक समाज और आधुनिकता के इतिहास को स्पष्ट करने का श्रेष्ठ तरीका इसे ऐसी कथा का रूप देना है जहाँ सांस्कृतिक कार्यक्रमों की विविधता का गठन एवं पुनर्गठन निरंतर चलता रहता है।''

हालांकि बहु आधुनिकता की धारणा के माध्यम से इज़ेंस्ता (Eisenstadt) का अर्थ सिर्फ आधुनिकता के इतिहास के नये विवरण या व्याख्या को प्रस्तावित ही करना ही नहीं है। उसका तर्क है कि आधुनिकता और पश्चिमीकरण दोनों का अर्थ एक ही नहीं है। बहु आधुनिकता की उसकी धारणा न केवल व्याख्यात्मक है बल्कि मानकीय है। चाहे यह नकारात्मक तरीके में ही क्यों न हों। विसरित फायदें जो मनुष्यों के बड़े वर्ग को अछूता छोड़ देते हैं, वहाँ प्रक्रिया में परोक्ष रूप से व्याप्त सांस्कृतिक चेतना की बहुविधता और नृजातीयता के उदय के रूप में समरूपता, सामाजिक लागत और सांस्कृतिक अपरदन, चिंता के गंभीर मुद्दे नजर आते हैं।

पार्सनस के जाने-माने प्रतिरूप चरों (Pattern Variables) का अनुसरण करते हुए, आधुनिकीकरण यह मान लेता है कि आरोपित मानक की बजाय प्रस्थिति का निर्धारण उपलब्धि से होता है; अंत:क्रिया के प्रतिरूप विशिष्ठावादी मानकों की बजाय सार्वभौमिक मानकों से शासित होते हैं; भूमिका संबंध की व्यवस्था में अपेक्षाओं और देयताओं का विशेष महत्त्व हो और जो विकसित व्यवस्था को बदल देते हैं जिसने पारंपरिक व्यवस्था को विशिष्ट पहचान दी थी। समाज की इकाइयाँ और अधिक विशिष्ट और आत्मनिर्भर होने की ओर प्रवृत है। भूमिका असमानता, एकात्मकता और एकीकरण के साक्ष्यों की तादाद बढ़ रही है। इजेन्स्ता (Eisenstadt) (1996) का सुझाव था कि आधुनिक समाज, सहमतिजन्य जन समाज के रूप में उभरा हो और राष्ट्र-राज्य के रूप में इसे धारण किया गया है। आधुनिक बने समाज ऐसी संस्थागत संरचनाओं के माध्यम से काम करते हैं जो ऐसे परिवर्तनों को निरंतर सीखने के योग्य होते हों और जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में स्वाभाविक हों। ऐसे संगठनों का अनुक्रम जो जटिल और असमान और अपेक्षाकृत आत्मनिभर हैं और जिनका कार्य किसी विशिष्ट लक्ष्य का आधारित हैं, वे विविध और पृथक क्षेत्रों में उनके कार्य को अलग से ढूंढ़ते हैं। इसके साथ ही साथ परिवार और नातेदारी पर आधारित संगठनों की भूमिकाओं को और अधिक संकीर्णता से परिभाषित किया जाता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रिहायश, सार्वजनिक परिवहन और मनोरंजन जैसे कार्यात्मक दृष्टि से विशिष्ट क्षेत्रों से लेन/देन करने वाली सरकार और संबद्ध इकाइयाँ, नौकरशाही; आर्थिक और वित्तीय संस्थाओं का महत्त्व इससे निरंतर बढ़ता जाता है।

बॉक्स 5.3: आधुनिकीकरण में सरकार की भूमिका

कुल मिलाकर देश को आधुनिक बनाने में और अर्थव्यवस्था की योजना बनाने में सरकार की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। विलबर और जैमनन (1988 : 9) के शब्दों में 'सरकार को विकास के लिए दो किस्म के विकास-विरोधी प्रभाव को दूर करने के लिए अर्थव्यवस्था में अवश्य अपना दखल रखना चाहिए। गैर-तार्किक व्यवहार के संदर्भ में सरकार आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर अपने नागरिकों को मनवा सकती है और साथ ही साथ अपनी निजी उद्यमशीलता संबंधी योग्यता और ज्ञान को इस खाली जगह को भरने में प्रयुक्त कर सकती है। बाजार की ओर रुख करें तो यहाँ भी सरकार आर्थिक नियोजन के माध्यम से मौजूदा दिक्कतों को दूर कर सकती है। इसके अलावा अपने अधिकार क्षेत्र के विविध साधनों के माध्यम से अर्थव्यवस्था की संसक्त छवि विकसित करके आमदनी में वृद्धि के प्रामाणिक परिणामों की प्राप्ति की जा सकती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

5.3 गिड्डन का आधुनिकता का सिद्धांत

हाल ही के सामाजिक परिवर्तनों ने समकालीन सामाजिक विश्व की गूढ़ प्रकृति पर तर्क-वितर्कों की शुरुआत कर दी है। ऐसे लोगों के बीच बहस छिड़ गई है जो समकालीन लगातार समाज को आधुनिक समाज के रूप में देखते हैं और वे जिनका तर्क है कि हाल ही के वर्षों में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं और ये कि हम नव, उत्तर आधुनिक विश्व की ओर अग्रसर हो चुके हैं। अधिकांश क्लासिकी समाजशास्त्री आधुनिक समाज की समीक्षा और विश्लेषण में जुटे थे और जो मर्क्स, वेबर, दुर्खाइम और सिम्मल की रचनाओं में स्पष्ट नज़र आता है। जैसे ही हम 21वीं शताब्दी में प्रवेश करते हैं, तो यह निश्चित है कि आज का विश्व अत्यंत अलग किस्म की जगह है। मुद्दा कि क्या विश्व में होने वाले बदलाव संतुलित हैं और आधुनिकता से संबद्ध बदलाओं के साथ अपनी गति बनाए हुए हैं या क्या इतने नाटकीय और असतत हैं कि समकालीन विश्व को बेहतर तरीके से एक नये शब्द 'उत्तर आधुनिक' के रूप में व्यक्त किया जाता है। बहुत से सामाजिक परिवर्तन बुनियादी रूप से हमारे विश्व को बदल रहे हैं और प्रगति में व्याप्त पारंपरिक वर्ग राजनीति और आस्था की जगह नारी अधिकारवाद, प्रफुल्ल-उदारवाद, पारिस्थितिकवाद, सजातीय पुनर्जागरण, धार्मिक नवनिधि मानसिकतावाद जैसी 'नव' सामाजिक आंदोलनों और 'पहचान राजनीति' ले रही है (टक्कर 1998 : 126)। ऐसे

बदलाव अपने साथ आधुनिकता के दर्शनशास्त्रीय प्रवचनों के लिए चुनौती लाये हैं। सामाजिक विज्ञान के संकल्पनात्मक ढांचे और बोध ज्ञान की ऐतिहासिक गरिमा को नव उत्तर आधुनिक ज्ञान से चुनौती दी गई है जिनका दावा है कि तर्क अवैध शक्ति का स्वरूप है जो ऐसी सांस्कृतिक शब्दावली को नकारता है जो इसकी श्रेणियों से मेल नहीं खाती।

गिड्डन का मानना है कि समकालीन समाज को समझने और इसके उद्भव के लए हमें नये समाजशास्त्रीय सिद्धांत की आवश्यकता है जो इसकी जटिलता पर पकड़ स्थापित करने के योग्य हों। वह आधुनिक विश्व को विनाशकारी वस्तु के रूप में परिभाषित करता है। विनाशकारी वस्तु के रूप में आधुनिकता अत्यंत गतिशील है। यह तेजी से आगे बढ़ने वाला विश्व है जो पिछली पद्धतियों की तुलना में गति, विस्तार और बदलाव के संदर्भ तेजी से छलांगे लगाता आगे बढ़ रहा है (रिज़र 2000 : 424)। गिड्डन आधुनिकता को चार मूल संस्थाओं की दृष्टि से परिभाषित करता है। इनमें से पहली संस्था है : पूँजीवाद जिसे वस्तु निर्माण, पूँजी के निजी स्वामित्व, संपत्तिहीन वेतन श्रमिक जैसी विशेषताओं और इन विशेषताओं से उत्पन्न वर्ग पद्धति के रूप में देखा जाता है। दूसरी संस्था है : उद्योगवाद जिसमें वस्तुओं के उत्पादन के लिए निर्जीव शक्ति स्रोतो और मशीनरी का प्रयोग शामिल है। उद्योगवाद सिर्फ कार्यस्थल तक ही सीमित नहीं है और यह 'परिवहन' संचार और घरेलू जीवन जैसी अन्य व्यवस्थाओं की व्यूह-रचना को भी प्रभावित करता है (गिड्डन 1990 : 56)। तीसरा है: निगरानी रखने की क्षमता (जिन्हें मुख्यतया न कि पूर्णतया) राजनीतिक दायरे में अपेक्षित समष्टि की गतिविधियों के पर्यवेक्षण के रूप में परिभाषित किया जाता है (वही 1990 : 8)। चौथी संस्था है : सैन्य शक्ति या औद्योगिकरण के युद्ध समेत हिंसा के साधनों को नियंत्रित करना। ध्यान दीजिए कि समष्टि स्तर पर गिड्डन (समाज पर रुढ़िवादी समाजशास्त्रीय ध्यान केंद्रित करने की बजाय) राष्ट्र राज्य पर ध्यान केंद्रित करता है जिसे वह पूर्व आधुनिक समाज की सामुदायिक विशेषताओं की किस्म से अलग रूप में देखता है। गिड्डन के अनुसार, आधुनिकता को तीन अनिवार्य पहलूओं से आगे बढ़ाया जाता है:

क) **समय-जगह विभाजन:** आधुनिकीकरण के साथ समय को मानकीकृत किया गया। मुख्य रूप से सामाजिक अंत:क्रिया एक ही समय और एक ही जगह पर नहीं होती। ऐसे लोगों से संबंध-जो शारीरिक रूप से विराजमान नहीं है और निरंतर दूर होते जा रहे हैं की संभावना अधिक होती जा रही है। प्रौद्योगिकी से जुड़े नये उपाय हमारी जगह के विस्तार की मांग भी कर रहे हैं जिसका अर्थ है कि चाहे हमारी अवस्थिति एक जैसी नहीं है, फिर भी हम एक ही जगह पर हो सकते हैं। आधुनिक तर्क संगत संगठन, उदाहरण के तौर पर स्थानीय और वैश्विक क्षेत्रों को नये तरीकों से जोड़ने के योग्य है। आधुनिक कंपनी अपना कामकाज कर सकती है क्योंकि समय-स्थान संबंधों को तोड़ना अब संभव है।

ख) **सामाजिक व्यवस्थाओं को उखाड़ना:** पहले समाज की प्रथाएँ और कार्य स्थानीय समुदाय में निहित थे। अब हालात बदल गए हैं क्योंकि विस्थापन तंत्रों द्वारा स्थानीय अंत:क्रिया संदर्भ से सामाजिक संबंधों को बाहर निकाल दिया गया है। गिड्डन दो किस्मों के विस्थापन तंत्रों के बीच अंतर करता है जो आधुनिक संस्थाओं के विकास में सहायक हैं। ये हैं:

i) सांकेतिक चिन्ह ; और

ii) जानकार आधारित पद्धतियाँ।

इनके मिलेजुले रूप को निराकार पद्धतियाँ कहते हैं। धन, सांकेतिक चिन्ह का उदाहरण है। यह समय जो कोष्ठक में डाल देता है क्योंकि यह ऋण के साधन के रूप में काम करता है। यह ऐसा मूल्य दर्शाता है जिसका प्रयोग बाद में नयी वस्तुओं को खरीदने के लिए किया जा सकता है। मानकीकृत मूल्य, असल में बिना एक-दूसरे को मिले

MAADHYAM IAS

भी लेन/देन करने की अनुमति देता है, जिससे स्थान वाली धारणा टूट जाती है। अंत:क्रिया के नये प्रतिरूप समय और जगह की परवाह किए बिना निर्मित किए जाते हैं।

जानकार आधारित पद्धतियाँ को तकनीकी उपलब्धि की पद्धतियाँ या पेशेवर जानकारों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो सामग्री के विस्तृत क्षेत्रों और ऐसे सामाजिक परिवेश को व्यवस्थित करती हैं जिनमें आज हम रह रहे हैं। (वही : 27)। सर्वाधिक सुस्पष्ट जानकार पद्धतियाँ में वकील और चिकित्सकों जैसे पेशेवर शामिल हैं। निम्नलिखित उदाहरण पर नजर डालें। बस से सफर के दौरान व्यक्ति बस, सड़कों के निर्माण और यातायात नियंत्रण पद्धति समेत जानकारों पर आधारित पद्धतियों के विस्तृत नेटवर्क में प्रवेश करता है। ऐसी पद्धतियाँ कैसे निर्मित की जाती हैं, ऐसे ज्ञान के अभाव में भी बस में सफर किया जा सकता है। व्यक्ति को सिर्फ टिकट के लिए पैसे (अन्य जानकार पद्धति) की जरूरत है। जानकार पद्धति सामाजिक संबंधों को एक संदर्भ से दूसरे संदर्भ में ले जाने में भी सहायक होती है। ऐसे विस्थापन तंत्र के लिए समय-स्थान विभाजन की जरूरत पड़ती है।

ग) **आधुनिक समाज की परावर्तकता:** गिड्डन के अनुसार, परावर्तकता समाज के बदलाव की मुख्य प्रक्रिया में सहायक तीसरा कारक है और यह दो किस्म की है। पहली है: सभी मानवीय कार्यों का सामान्य विशेषता। दूसरे किस्म की परावर्तकता, आधुनिकता में अनूठी किस्म की है। आधुनिक समाज संस्थागत और निजी दोनों स्तरों पर परावर्तकता का अनुभव कर रहा है और उत्पादन और आधुनिक पद्धतियों को बदलने और सामाजिक संगठनों के आधुनिक स्वरूपों के लिए यह निर्णायक बिंदु है। गिड्डन परावर्तकता के समाज के संगठन और परिवर्तन की शर्तों के रूप में संस्थाओं और व्यक्ति-विशेषों के ज्ञान नियमित और निरंतर प्रयोग के रूप में परिभाषित करता है। फर्म बाजारी सर्वेक्षण करती है ताकि बिक्री कार्यनीतियों को स्थापित किया जा सके; राज्य, कर आधार कायम करने के लिए जनगणना करता है। जन संचार के नेटवर्क के विकास से इस वर्धित परावर्तकता को संभव बनाया जाता है। समय-स्थान आयाम के विस्तार के साथ सामाजिक व्यवहारों की निरंतर छानबीन की जाती है और नव अर्जित सूचना के आधार पर इनमें बदलाव किया जाता है। आज हम परंपरा पर विचार करते हैं और इसके तालमेल में तभी कार्य करते हैं यदि इसे परावर्तकता के माध्यम से वैध रूप दिया जा सकता हो।

अंत में गिड्डन का कहना है कि आधुनिकता की सतत परावर्तकता की संस्कृति, उत्तर-पारंपरिक सामाजिक जगत की सृजना करती है। जैसे-जैसे आधुनिकता का प्रभाव समूचे विश्व पर पड़ता है, यह सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा दर्शाए ज्ञान की अमूर्त पद्धतियों और जानकारों के उदय का बढ़ावा देती है। ऐसी जानकार पद्धतियाँ सतत बदलावा और परावर्तकता को बढ़ावा देती है जो समय और स्थान को उनके विशिष्ट संदर्भ से अलग कर एक नये सांचे में पुन: सुसज्जित कर देता है। गिड्डन आधुनिक जीवन की बनावट के अभिन्न भाग के रूप में नव जीवन राजनीति पर लक्षित नव सामाजिक आंदोलनों पर भी ध्यान केंद्रित करता है। वह अत्युत्तम आधुनिकता के दावों का खंडन करता है और यदि पूरे को नहीं तो उत्तर आधुनिकता से संबद्ध अधिकांश सिद्धांतों को नामंजूर करता है।

चितन और कार्रवाई 5.2

गिड्डन के आधुनिकता के सिद्धांत की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

5.4 रूपावली का पतन

आधुनिकीकरण उपागम, लगभग एक दशक के लिए तृतीय विश्व के बहुत से भागों में और पश्चिम में सामाजिक विज्ञान क्षेत्र पर हावी रही और 1950 के अंत में और 1960 के मध्य

के बीच के समय में यह विकसित हुई। 1960 के अंत तक हालांकि इसने अपना महत्त्व खोना शुरू कर दिया था। आधुनिकीकरण के प्रदर्शन और वायदे के बीच का अंतराल इतना चौड़ा था कि इसकी ओर ध्यान न देना संभव नहीं था। परिणामों के अभाव से जन में रोष और भावशून्यता उत्पन्न हो गई और जिससे आधुनिक बनाने वाले कुलीन सोच में पड़ गए। इस प्रक्रिया में आधुनिकीकरण का आकर्षण समाप्त हो गया।

गौर किया गया कि आधुनिकीकरण की रूपावली ने अनिवार्य संस्थागत बदलावों को प्रभावित किए बिना प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का प्रयास किया। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में अव्यक्त अत्यंत विशिष्ट और आसमान कार्यों को पूरा करने के लिए संस्था निर्माण की ओर काल्पनिक और सुव्यवस्थित प्रयासों को किया जाना था। तर्क शक्ति की धारणा जो कि आधुनिकीकरण रूपावाली का आधार था, उसका अपना वजूद अस्पष्ट किस्म का था। अब यह माना जाता है कि तक शक्ति भी विभिन्न संदर्भों में और विभिन्न स्तरों पर संचालन की दृष्टि से विविध किस्म की हो सकती है। रूपावली की व्याख्यात्मक शक्ति सीमित थी और इसमें कार्रवाई के लिए निहित दिशा-निर्देश धुंधले थे। जन में विशेष रूप से कम विकसित देशों में व्याप्त गरीबी के मुद्दे पर यहाँ कुटिल रूप धारण किए था। सूत्रीकरण ने मानवता के सम्मुख आने वाली समस्याओं में गुणात्मक परिवर्तनों की ओर ध्यान नहीं दिया। समकालीन विश्व व्यवस्था की सच्चाइयों के मद्देनजर आधुनिकीकरण का भविष्य और विकास अर्थात् दोनों अस्पष्ट थे। अतः आधुनिकता का वैश्विक संदर्भ जाँचरहित ही रहा। प्रचंड और असीमित आधुनिकीकरण की धारणा को एक अन्य भाग विशेष रूप से पर्यावरणविदों और रुढ़िवादियों द्वारा जबर्दस्त चुनौती का सामना करना पड़ा गैर-नवीकृत प्राकृतिक संसाधनों जिन पर आधुनिकीकरण की इमारत बनाई गई थी, तेजी से खत्म हो रहे हैं और इनके बदले पर्याप्त क्षमता और अधिक अनुकल्प अभी तक दिखाई नहीं दे रहें। पर्यावणीय प्रदूषण और पारिस्थितिकीय असंतुलन के परिणाम खतरनाम हैं। आधुनिकता की वंछनीयता और संभावना के संदर्भ में बहुत से महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। इससे सार्थक विकल्पों के लिए खोज और उपयुक्त समाधानों पर लक्षित चिंतन और कार्रवाई पर रोक लगती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

5.5 उत्तर-आधुनिकतावाद

आधुनिकता के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों को मुख्य चुनौती, उत्तर-आधुनिकतावाद की सैद्धांतिक स्थिति से मिली है। उत्तर-आधुनिकतावाद इतिहास में किसी भी सार्थक निरंतरता की मनादी करता है। यह एक नया ऐतिहासिक युग है जिसे माना जाता है कि इसने आधुनिक युग या आधुनिकता पर विजय हासिल कर ली है। जैसा कि हैबरमास का कहना है, उत्तर-आधुनिकतावाद उस अराजकतावादी के समान है जो इतिहास के सांतव्यक को नष्ट करने की मंशा रखता है और ऐसा करने में आधुनिकता के सिद्धांतों को नष्ट करता है (टक्कर, 1998:131)।

गिड्डन उत्तर आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकता के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है। उत्तर आधुनिकतावाद से आश्य है वास्तुकला, साहित्य कला, काव्य में हाल ही में होने वाले बदलाव जबकि उत्तर-आधुनिकता का अर्थ : सामाजिक जगत में हाल ही में होने वाले संस्थागत बदलावों से है। गिड्डन उत्तर-आधुनिकता को अधिक महत्त्व देता है, लेकिन वह यह नहीं मानता की उत्तर-आधुनिकता सैद्धांतिक रूप से इन सामाजिक बदलावों के अर्थ पर पकड़ बनाता है। उसकी नजर में परावर्तकता की समकालीन व्यापकता, आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता युगों के बीच के अंतर को निरर्थक बना देता है। कुछ सिद्धांतवादियों के लिए उत्तर आधुनिकतावाद का अर्थ नव और उत्तर औद्योगिक जगत में प्रवेश करना है जो सामाजिक प्रगति के आदर्शों और सामाजिक पहचान के स्रोत के रूप में वर्ग के महत्व और आपसी एकजुटता के गूढ़ विचार समेट पुरानी अवधारणाओं को कलिष्ट बनाता है। नये सामाजिक जगत को नये ज्ञान की जरूरत है। उत्तर आधुनिकतावाद, समकालीन सामाजिक

सिद्धांत को अस्थिरता देता है। यह असमानता को महत्व देता है, क्योंकि ऐसे कोई पूर्ण मूल्य नहीं हैं जो हमारी निष्ठा को नियंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकतावाद सामाजिक और राजनीतिक जीवन में विशेष रूप से तर्क शक्ति पर आधारित ऐसी अवधारणाएँ जो विश्व पर आधारित बहु परिप्रेक्ष्यों को नकारने का प्रयास करती है की आलोचना करता है। यह किसी भी विकासवादी सिद्धांत और सभी केंद्रित करने वाली प्रवृत्तियों पर शंका करता है और सामाजिक जीवन को लेकर बने विविध उपागमों और विकेंद्रित सामाजिक आंदोलनों पर हामी भरता है।

5.6 वाद-विवाद

गिड्डन ऐसी बहुत सी विषय वस्तुओं पर हैबरमैस, टोरेन और मेल्यूकी जैसे समकालीन समाजशास्त्रियों से विचारों का आदान/प्रदान करता है। इन रचनाकारों ने परवर्ती आधुनिकता को विशिष्ट संस्कृति पर अपनी पकड़ बनाने का प्रयास किया जो कि क्षण भंगुर है, निरंतर बदलती रहती है और जो अपने से पहली वाली संस्कृति से भिन्न है। पूँजीवाद, जन संचार माध्यमों और औद्योगिकता के विश्वव्यापी प्रसार के कारण समकालीन समाज, विश्व समाज है। अधिकाधिक लोग महसूस करते हैं कि उनकी पहचान और नैतिक व्यवस्थाएँ जो परंपराएँ हैं, वे स्वीकार्य हो जैसी धारणा पर अब कायम नहीं रहेगी। परंपरा में पतन का साथ परावर्तकता को उदय हो रहा है (गिड्डन 1990)।

ये सिद्धांतवादी आधुनिकता को अर्थनिर्मित परियोजना के रूप में देखते हैं और आधुनिकता के वृत्तांत का सृजन करते हैं जो तर्क संगतता, सार्वभौमिकता और विकासवादी विकास के परिष्कृत दृष्टिकोण की पराकाष्ठा में व्याप्त हो जाता है। गिड्डन के लिए परावर्ती आधुनिक युग के अत्यंत विशिष्ट पश्चिमी समाजों में इन सिद्धांतवादियों में सूचना और संचार के क्षेत्रों में वादविवाद उत्पन्न होता है। सार्वजनिक और निजी मुद्दों के बीच की रेखा दूषित हो जाती है। परावर्तकता स्वयं को निरंतर बदलते तरीकों में समाज से जोड़े रखती है। उत्तर आधुनिकतावाद की आलोचना करते हुए, गिड्डन और अन्य समकालीन समाजशास्त्री आधुनिकता को अंदरूनी रूप से जटिल मानते हुए पुनः इसकी रचना करते हैं। वेबर की भांति, वे तर्कशक्ति से उत्पन्न समस्याओं के प्रति विशेष रूप से जागरूक हैं जो इसके अर्थ को नष्ट करती हैं। उत्तर आधुनिकतावादियों की भांति, वे मानते हैं कि आधुनिक संस्कृति की मुख्य समस्या तर्कशक्ति की विनाशकारी क्षमता है जो सामाजिक और प्राकृतिक संदर्भों के प्रति संवेदनशील नहीं है। तर्कशक्ति की ऐसी संकल्पना सामाजिक प्रश्नों को तकनीकी, अलोकतांत्रिक नीति के मुद्दों में मुख्यतया अनूदित करते हुए स्व-शासन की स्थिति को भी निम्न बनाती है। हैबरमस आधुनिकता की आलोचना से आधुनिकता की विरासत को सुरिक्षत करने में सबसे मजबूत संरक्षक हैं। वह आधुनिकता में यंत्रीय तर्कशक्ति की प्रचंडता की ओर बढ़ने वाली प्रवृत्तियों को देखता है जो सामाजिक जीवन के अधिक लोकतांत्रिक दृष्टिकोणों और विकल्पों का नाश करती है। पार्सन की तरह, उसका मानना है कि सार्वभौमिक बुद्धिसंगतता, आधुनिकता की महत्वपूर्ण उपलब्धि है जिसे अवश्य ही निरंतर बढ़ते आसमान और जटिल आधुनिक समाज को समेकित करना चाहिए। बहुविध तर्कों का उदय, आधुनिक जगत की महत्वपूर्ण विशेषता है।

आधुनिकता, नियम और कार्रवाई के पारंपरिक स्पष्टीकरणों पर विश्वास नहीं कर सकती और इसे मूल्यांकन के लिए अपने मानकों को अपने खुद के इतिहास से ही बनाना चाहिए। परंपरा के अभाव में संचार/तर्कशक्ति विविध सामाजिक कार्यों में तालमेल बनाने वाली नैतिक भूमिका को पूरा करती है। जहां तक स्वायत्तता और न्याय का सवाल है वह आधुनिकता की संस्कृति को संचार तर्कशक्ति में निहित पाता है। हैबरमस के लिए संप्रेक्षण का यह संदर्भ, ज्ञान-अर्जन संस्कृति के प्रसारण, निजी पहचान के गठन और सामाजिक एकीकरण की अपेक्षाकृत अधिक सामान्य प्रकमणों के बारे में जानकारी देता है। वह आगे दावा करता है कि नये सामाजिक आंदोलन, नये मूल्यों और पहचानों के विकास के लिए नये रास्ते प्रदान करते हैं। उत्तर-पारंपरिक

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

और उत्तर-औद्योगिक समाज में उत्पन्न नये सामाजिक आंदोलन, ऐसे मुख्य वाहन को दर्शाते हैं जिसके माध्यम से गैर-यंत्रीय, संप्रेषणात्मक बुद्धिसंगतता को लोक जीवन में लाया जा सकता है। नारीवाद और पर्यावरणवाद जैसे उत्तर आधुनिकता से संबद्ध नये सामाजिक आंदोलनों ने मूलभूत रूप से राजनीति की प्रकृति को बदल दिया है। संक्षेप में हैबरमैस का दावा है कि आधुनिकता, तर्क संगतता और स्वतंत्रता के बीच अमिट संबंध बनाती है जैसा कि लोकतंत्र और मानव अधिकारों जैसी आधुनिकतावादियों की उपलब्धियों की प्राप्ति से पता चलता है। नये सामाजिक आंदोलन इन उपलब्धियों को नये तरीकों से व्यक्त करने और इन्हें लागू करने का प्रयास कर रहे हैं। आधुनिकता की विरासत को संजोने के कारण उत्तर आधुनिकतावादियों से यह अलग है। टोरेन और मेलयूसी की तरह गिड्डन आधुनिकता का परिष्कृत दृष्टिकोण कायम करता है जो कि हैबरमैस के दृष्टिकोण की तुलना में काफी अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका तर्क है कि नव सामाजिक आंदोलन, वैश्विक संदर्भ में सांस्कृतिक पहचान के नये मुद्दों को उठाते हैं जो कि संचार प्रौद्योगिकियों में तेजी से होने वाली बढ़ोतरी और सांस्कृतिक भिन्नता के महत्त्व से संबंधित हैं। मेल्यूसी और टोरेन इस पर पूरी तरह निश्चित हैं कि आधुनिक समाज उत्तर-औद्योगिक संदर्भ में अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं और विविध समूहों के बीच के सांस्कृतिक संघर्षों ने प्रमुख सामाजिक द्वंद्वों के रूप में संसाधनों के वितरण पर वर्ग संघर्षों को बदल दिया है। आधुनिकता समाज स्वामित्व, सांस्कृतिक संहिता और सूचना पर लंबे समय से संघर्ष करते आ रहे हैं। नये सामाजिक आंदोलन, नवीन प्रवचनों और उत्तर आधुनि युग के संघर्षों में शामिल व्यवहारों के प्राथमिक अभिकर्त्ता और वाहक हैं। ये सिद्धांतवादी इस तर्क पर उत्तर आधुनिकता को आलोचनात्मक ढंग से शामिल करते हैं कि आधुनिकता पर किसी ने अभी तक जीत हासिल नहीं की है लेकिन यह अभी भी अर्धनिर्मित परियोजना ही है क्योंकि आधुनिकतावादियों के विचार और व्यवहार अभी भी समकालीन समाज में प्रमुख हैं। उनका मानना है कि तार्किक परावर्तकता ने आधुनिकता जगत सामाजिक एकात्मता के मुख्य रूप में परंपरा का स्थान बदल दिया है।

गिड्डन इन सिद्धांतवादियों से अलग है क्योंकि यह परंपरा पर गंभीरता से विचार करता है। नये विशिष्ट आधुनिक-जोखिम समाज में लोग विषय विशेषज्ञता हासिल करने पर मेहनत करते हैं और फिर इसे अपने निजी विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भ की दृष्टि से दुबारा इसकी परख करते हैं और फिर इस ज्ञान का प्रयोग अपने दैनिक कार्यों का मूल्यांकन करने में करते हैं। उसका तर्क है कि आधुनिकता, ऐसे विशिष्ट जन समूह को बाहर कर देता है जो इन श्रेणियों में सही नहीं बैठते। वह उत्तर आधुनिक दावे से सहमत है कि ज्ञान का आधार बेहद कोमल हैं और इतिहास में कोई भी स्वाभाविक प्रगति नहीं है और नये सामाजिक आंदोलन, सामाजिक जीवन को ले कर गुणात्मक दृष्टि से नये मुद्दों को पेश कर रहे हैं। उसका मानना है कि निजी पहचान भी अब आधुनिक समाज में कम ठोस और अधिक विखंडित बन गई है। हालांकि बहुत से उत्तर आधुनिक सिद्धांतों से गिड्डन सहमत नहीं हैं। वह उत्तर आधुनिकता की तुलना में परवर्ती आधुनिकता के विचार को बेहतर मानता है। लोग विखंडित एकाकी जीवन नहीं जीते : वे अभी भी अपने बारे में कुछ निश्चित बातों को बनाए रखते हैं लेकिन ऐसा वे 'उत्तर-पारंपरिक' स्थितियों में करते हैं (टक्कर 1998 : 143)।

5.7 आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण

आधुनिकीकरण की बौद्धिक छवि राजनीतिक और आर्थिक तर्कों पर आधारित थी जो कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद नजर आई। इसने सफल राष्ट्रों की बौद्धिक, सांस्कृतिक और प्रौद्योगिकीय उन्नति को इस रूप में इकट्ठा किया जिसे विश्व के 'कम निर्धन सम्य' लोगों द्वारा बराबरी क लिए प्राप्त करने की जरूरत थी। इसका संबंध 'आधुनिकता' की प्रक्रिया से है जो कि यूरोप में आरंभ वैश्विक विजय का प्रक्षेपित भाग था। वैश्वकीकरण का अर्थ वैश्विक दायरे में विनिर्माण व्यापार और सेवाओं का गूठ पुनर्गठन है। यह ऐसी घटना की

ओर इशारा करता है जिसे हमेशा एक प्रक्रिया के रूप में पहचाना जाता है या जिसे एक ऐतिहासिक घटना या एक्नो-टेक्नो, मीडिया-फाइनेंस और आइडियो-स्केपस के बदलाव का परिणाम माना जाता है (अप्पादुरई 1996 : 32)। इसी आधार पर यह निरर्थक क्रिया आधुनिकीकरण को बदलता है क्योंकि आधुनिकतावादी और उनके प्रतिवादी 'सेंटर परिधि', 'उत्तर-दक्षिण', 'प्रथम विश्व—तृतीय विश्व', 'विकसित-विकासशील' आदि जैसे मॉडल द्वैतवादी विश्लेषण पर निर्भर थे।

आधुनिकीकरण की संकल्पना विश्व को अमेरिका और पश्चिमी यूरोपियाई सिद्धांतों और संस्कृति की छवि में पुनः निर्मित करने के विचार पर काफी संकीर्ण थी। असल में वैश्वीकरण पर चर्चाओं ने ऐसी प्रक्रिया को व्यक्त किया जिससे सांस्कृतिक एकता की सजातीय और एकरूपी प्रक्रियाओं को ध्यान में रख कर विश्व तेजी से एक-दूसरे के निकट और एकजुट हो रहा है। माइकल जैक्सन जैसी छवि या मैकडोनल्ड और नाइक के कार्पोरेट लोगों (स्वहव) वैश्विक जागरूकता के उदाहरण हैं।

5.8 सारांश

पारम्परिक (क्लासिकी) आधुनिकीकरण अध्ययनों और नव आधुनिकीकरण अध्ययनों के बीच की समानताओं को तीसरी दुनिया के विकास पर लक्षित स्थायी शोध में देखा जा सकता है।

पारम्परिक आधुनिकीरण नजरिए के अध्ययन और नव अध्ययनों के बीच महत्त्वपूर्ण अंतर हैं। जैसे पारम्परिक (क्लासिकी) उपागम में परंपरा को विकास की अड़चन माना जाता है जबकि परंपरा के नये उपागम में इसे विकास का योज्य कारक माना जाता है। पद्धति के हिसाब से क्लासिकी उपागाम, उच्च स्तर वाली अमूर्तता पर आधारित सैद्धांतिक रचना को लागू करती है, जबकि नया उपागम निश्चित ऐतिहासिक संदर्भ में ठोस केस अध्ययनों को लागू करती है। विकास की दिशा के संदर्भ में पारम्परिक (क्लासिकी) परिप्रेक्ष्य समरूपी पथ का प्रयोग करता है जो संयुक्त राज्यों और यूरोपियाई मॉडल के प्रति प्रवृत्त है। नया परिप्रेक्ष्य, विकास के बहुनिर्देशी पथ को तरजीह देता है। अंततः पारम्परिक (क्लासिकी) परिप्रेक्ष्य बाहरी कारकों और द्वंद्व की उपेक्षा करता है यह नये उपागम से प्राप्त द्वंद्वों और बाहरी कारकों की ओर सजगता बरतने में तालमेल की सही छवि में नजर आता है। परिवर्तित संदर्भ में विकास एक चुनौती है और साथ ही आवास भी देता है।

MAADHYAM IAS

इस इकाई की शुरुआत आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और आधुनिकीकरण सिद्धांत के विकास को समझने के प्रयास पर आधारित है। इकाई में चर्चा इस मुद्दे पर आगे चलती जाती है कि उत्तर-आधुनिकतावाद की सैद्धांतिक स्थिति किस प्रकार आधुनिकता के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के लिए चुनौती है। इकाई में इसके अलावा हमने देखा कि किस प्रकार गिड्डन और आधुनिकीकरण सिद्धांतों के अन्य समर्थकों ने अपने सिद्धांतों का बचाव किया और उत्तर-आधुनिकता की तुलना में उन्होंने सहवर्ती आधुनिकता के विचार को तरजीह क्यों दी। इकाई के अंत में आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के बीच के अंतः संबंधों की विश्लेशषण पर चर्चा की गई।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दुबे, एस.सी. (1988) आधुनिकीकरण और विकास। विस्तार पब्लिकेशन : नई दिल्ली।

रिज़र, जार्ज (2000), आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत। पांचवां संस्करण। मैकग्रा हिल हाईअर एडुकेशन।

सिंह, वाई. (1977) भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण। थॉमसन, फरीदाबाद।

इकाई 6

विकास का उदारवादी परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 विचारधारा के रूप में उदारवाद
6.3 उदारवादी विचारधारा की शाखाएँ
6.4 उदारवादी राज्य का क्रम-विकास
6.5 सामाजिक असमानता का समाधान
6.6 कल्याणकारी राज्य
6.7 नव-उदारवाद का उद्गम
6.8 उदारवादी संदर्भ की समालोचना
6.9 सारांश
6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

यूरोपीय ज्ञान से उत्पन्न उदारवाद का विकास 19वीं शताब्दी में पश्चिम में हुआ। वर्तमान समय में उदारवाद को आधुनिक राजनीति की सर्वाधिक प्रभावी विचारधाराओं में गिना जाता है। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले स्पेन, फ्रांस और अंग्रेजी लेखकों ने नकारात्मक अर्थ में किया था।

MAADHYAM IAS

सुधारवादी और प्रगतिवादी विचारधारा के रूप में इसका प्रयोग जनता के लिए किया गया। शीघ्र ही इसे अपने नकारात्मक अर्थ से मुक्ति मिल गई और यह एक आदर्शसूचक राजनीतिक शब्द बन गया। अब अधिकतर लोग स्वयं को ''उदार'' कहलाना पसंद करते हैं, जिसका अर्थ है– ''मुक्त/स्वच्छंद विचारों वाला व्यक्ति'', ''सहृदय या उदार और सहनशील व्यक्ति'', ''लोगों के कल्याण के लिए अपने हितों का त्याग करना'', ''निष्पक्ष एवं तार्किक दृष्टि से प्रत्येक मुद्दे का समाधान करना'' और ''पूर्वाग्रह तथा अंधविश्वास'' को न मानने वाला व्यक्ति। इस प्रकार के व्यक्ति ऐसे प्राधिकारी कानून और इस कानून को व्यवहार में अपनाने का विरोध करते हैं, जो किसी विशेष सामाजिक समूह को लाभों से वंचित रखता है। उदारवादी दृष्टिकोण के समर्थक वाक् स्वतंत्रता, विरोध और धरना देने के अधिकार और महिलाओं, समलैंगिकों, कैदियों, शरणार्थियों के अधिकारों का समर्थन करते हैं।

इस इकाई में हमने उदारवादी परिप्रेक्ष्य से विकास की संकल्पना को समझने का प्रयास किया है। हम उदारवाद की मूल विचारधारा, व्यापार के ऊपर आर्थिक एवं राजनीतिक नियंत्रण के रूप में राज्य द्वारा शक्ति के साथ हस्तक्षेप और उदारवादी अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका से शुरू करते हुए उदारवादी परिप्रेक्ष्य की समीक्षा और नव उदारवाद पर चर्चा करेंगे। इसके बाद हम उदारवादी परिप्रेक्ष्य से विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए भूमिका या संरचना का निर्माण करते हुए अपना अध्ययन समाप्त करेंगे।

6.2 विचारधारा के रूप में उदारवाद

उदारवाद ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए एक विशेष परिप्रेक्ष्य प्रदान

ओर इशारा करता है जिसे हमेशा एक प्रक्रिया के रूप में पहचाना जाता है या जिसे एक ऐतिहासिक घटना या एक्नो-टेक्नो, मीडिया-फाइनेंस और आइडियो-स्केपस के बदलाव का परिणाम माना जाता है (अप्पादुरई 1996 : 32)। इसी आधार पर यह निरर्थक क्रिया आधुनिकीकरण को बदलता है क्योंकि आधुनिकतावादी और उनके प्रतिवादी 'सेंटर परिधि', 'उत्तर-दक्षिण', 'प्रथम विश्व—तृतीय विश्व', 'विकसित-विकासशील' आदि जैसे मॉडल द्वैतवादी विश्लेषण पर निर्भर थे।

आधुनिकीकरण की संकल्पना विश्व को अमेरिका और पश्चिमी यूरोपियाई सिद्धांतों और संस्कृति की छवि में पुन: निर्मित करने के विचार पर काफी संकीर्ण थी। असल में वैश्वीकरण पर चर्चाओं ने ऐसी प्रक्रिया को व्यक्त किया जिससे सांस्कृतिक एकता की सजातीय और एकरूपी प्रक्रियाओं को ध्यान में रख कर विश्व तेजी से एक-दूसरे के निकट और एकजुट हो रहा है। माइकल जैक्सन जैसी छवि या मैकडोनल्ड और नाइक के कार्पोरेट लोगों (स्वहव) वैश्विक जागरूकता के उदाहरण हैं।

5.8 सारांश

पारम्परिक (क्लासिकी) आधुनिकीकरण अध्ययनों और नव आधुनिकीकरण अध्ययनों के बीच की समानताओं को तीसरी दुनिया के विकास पर लक्षित स्थायी शोध में देखा जा सकता है।

पारम्परिक आधुनिकीरण नजरिए के अध्ययन और नव अध्ययनों के बीच महत्त्वपूर्ण अंतर हैं। जैसे पारम्परिक (क्लासिकी) उपागम में परंपरा को विकास की अड़चन माना जाता है जबकि परंपरा के नये उपागम में इसे विकास का योज्य कारक माना जाता है। पद्धति के हिसाब से क्लासिकी उपागाम, उच्च स्तर वाली अमूर्तता पर आधारित सैद्धांतिक रचना को लागू करती है, जबकि नया उपागम निश्चित ऐतिहासिक संदर्भ में ठोस केस अध्ययनों को लागू करती है। विकास की दिशा के संदर्भ में पारम्परिक (क्लासिकी) परिप्रेक्ष्य समरूपी पथ का प्रयोग करता है जो संयुक्त राज्यों और यूरोपियाई मॉडल के प्रति प्रवृत्त है। नया परिप्रेक्ष्य, विकास के बहुनिर्देशी पथ को तरजीह देता है। अंतत: पारम्परिक (क्लासिकी) परिप्रेक्ष्य बाहरी कारकों और द्वंद्व की उपेक्षा करता है यह नये उपागम से प्राप्त द्वंद्वों और बाहरी कारकों की ओर सजगता बरतने में तालमेल की सही छवि में नजर आता है। परिवर्तित संदर्भ में विकास एक चुनौती है और साथ ही आवास भी देता है।

इस इकाई की शुरुआत आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और आधुनिकीकरण सिद्धांत के विकास को समझने के प्रयास पर आधारित है। इकाई में चर्चा इस मुद्दे पर आगे चलती जाती है कि उत्तर-आधुनिकतावाद की सैद्धांतिक स्थिति किस प्रकार आधुनिकता के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के लिए चुनौती है। इकाई में इसके अलावा हमने देखा कि किस प्रकार गिड्डन और आधुनिकीकरण सिद्धांतों के अन्य समर्थकों ने अपने सिद्धांतों का बचाव किया और उत्तर-आधुनिकता की तुलना में उन्होंने सहवर्ती आधुनिकता के विचार को तरजीह क्यों दी। इकाई के अंत में आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण के बीच के अंत: संबंधों की विश्लेशषण पर चर्चा की गई।

5.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

दुबे, एस.सी. (1988) आधुनिकीकरण और विकास। विस्तार पब्लिकेशन : नई दिल्ली।

रिज़र, जार्ज (2000), आधुनिक समाजशास्त्रीय सिद्धांत। पांचवां संस्करण। मैकग्रा हिल हाईअर एडुकेशन।

सिंह, वाई. (1977) भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण। थॉमसन, फरीदाबाद।

MAADHYAM IAS

इकाई 6

विकास का उदारवादी परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 विचारधारा के रूप में उदारवाद

6.3 उदारवादी विचारधारा की शाखाएँ

6.4 उदारवादी राज्य का क्रम-विकास

6.5 सामाजिक असमानता का समाधान

6.6 कल्याणकारी राज्य

6.7 नव-उदारवाद का उद्गम

6.8 उदारवादी संदर्भ की समालोचना

6.9 सारांश

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

यूरोपीय ज्ञान से उत्पन्न उदारवाद का विकास 19वीं शताब्दी में पश्चिम में हुआ। वर्तमान समय में उदारवाद को आधुनिक राजनीति की सर्वाधिक प्रभावी विचारधाराओं में गिना जाता है। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले स्पेन, फ्रांस और अंग्रेजी लेखकों ने नकारात्मक अर्थ में किया था।

MAADHYAM IAS

सुधारवादी और प्रगतिवादी विचारधारा के रूप में इसका प्रयोग जनता के लिए किया गया। शीघ्र ही इसे अपने नकारात्मक अर्थ से मुक्ति मिल गई और यह एक आदर्शसूचक राजनीतिक शब्द बन गया। अब अधिकतर लोग स्वयं को ''उदार'' कहलाना पसंद करते हैं, जिसका अर्थ है– ''मुक्त/स्वच्छंद विचारों वाला व्यक्ति'', ''सहृदय या उदार और सहनशील व्यक्ति'', ''लोगों के कल्याण के लिए अपने हितों का त्याग करना'', ''निष्पक्ष एवं तार्किक दृष्टि से प्रत्येक मुद्दे का समाधान करना'' और ''पूर्वाग्रह तथा अंधविश्वास'' को न मानने वाला व्यक्ति। इस प्रकार के व्यक्ति ऐसे प्राधिकारी कानून और इस कानून को व्यवहार में अपनाने का विरोध करते हैं, जो किसी विशेष सामाजिक समूह को लाभों से वंचित रखता है। उदारवादी दृष्टिकोण के समर्थक वाक् स्वतंत्रता, विरोध और धरना देने के अधिकार और महिलाओं, समलैंगिकों, कैदियों, शरणार्थियों के अधिकारों का समर्थन करते हैं।

इस इकाई में हमने उदारवादी परिप्रेक्ष्य से विकास की संकल्पना को समझने का प्रयास किया है। हम उदारवाद की मूल विचारधारा, व्यापार के ऊपर आर्थिक एवं राजनीतिक नियंत्रण के रूप में राज्य द्वारा शक्ति के साथ हस्तक्षेप और उदारवादी अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका से शुरू करते हुए उदारवादी परिप्रेक्ष्य की समीक्षा और नव उदारवाद पर चर्चा करेंगे। इसके बाद हम उदारवादी परिप्रेक्ष्य से विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए भूमिका या संरचना का निर्माण करते हुए अपना अध्ययन समाप्त करेंगे।

6.2 विचारधारा के रूप में उदारवाद

उदारवाद ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए एक विशेष परिप्रेक्ष्य प्रदान

किया है। इसने एक ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की है, जिसने इतिहास को स्वरूप प्रदान किया है और वर्तमान में मानव के भविष्य को प्रभावित करने के लिए नव-उदारवाद के रूप में फिर से जन्म लिया है। पिछले दो सौ वर्षों में मानव का इतिहास एक प्रकार से आर्थिक उदारवाद के समर्थकों 'स्व-नियामन बाजार' के सिद्धांत के प्रति समर्पित और ''समाज का बचाव करने वालों (जिन्होंने मुद्रा बाजार का नियमन करने की वकालत की) के बीच एक संघर्ष का इतिहास रहा है। इस संघर्ष का राजनीतिक और वैचारिक क्षेत्रों में विस्तार हुआ। दोनों परस्पर विरोधी परिप्रेक्ष्यों ने अपनी-अपनी ठोस संकल्पनाएँ, सिद्धांत और विचारधाराएँ और तकनीकें प्रस्तुत कीं और सामाजिक संबंध में अपने दृष्टिकोणों के सामने रखा। 'लचीले' श्रम बाजार की विशेषताओं पर उपजा संघर्ष और आजीविका के लिए इसकी चुनौती निरंतर जारी रही। विकास के संबंध में अग्रणी परिप्रेक्ष्यवाद अर्थात मार्क्सवाद और उदारवाद के बीच सामाजिक असमानता की व्याख्या और आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक असमानता से पीड़ित लोगों को न्याय दिलाने की विधि के बारे में उनमें मतभेद रहा है। बाजार कीमतों की संभावनाओं (scope) के मुद्दे पर तर्क-वितर्क किया गया। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जाए तो यहाँ पर प्रासंगिकता का प्रश्न यह है कि क्या बाजार की ताकतों को स्वतंत्र रूप से चलने के लिए छोड़ दिया जाए या उनके लिये भी कोई अधिनियम होना चाहिये। इसका अंतर यह है कि क्या विकास को उत्पादकता वृद्धि और प्रति व्यक्ति आय तक सीमित किया जाए अथवा इसे आम जनता को सशक्त करने और उनको न्याय दिलाने की व्यवस्था सुनिश्चित करने के रूप में व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए।

आदर्शत: उदारवाद दो शताब्दियों से समाजवादी आदर्श (ideals) का विरोध कर रहा है। यह हमें समाज, स्वतंत्रता और आर्थिक उद्यमिता के क्षेत्र में स्वतंत्र प्रतियोगिता, उत्पादन को नियंत्रित करने एवं स्वतंत्र नागरिकता को बढ़ावा देने में राज्य की भूमिका के बारे में विशेष दृष्टि प्रदान करता है।

एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में उदारवाद ने राजनीतिक निरंकुशता (absolutism) के किसी भी रूप का विरोध किया है, चाहे वह राजतंत्र हो, सामंतवाद हो, सैन्यवाद हो या साम्यवाद (communism) हो। यह एक ऐसे सामाजिक एवं राजनीतिक वातावरण का पक्षधर है, जिसमें प्राधिकरण या कुछ लोगों के हाथ में शासन की बागडोर पर प्रतिबंध लगाने और निजी संपत्ति का अधिकार, किसी भी धर्म में आस्था रखने, अभिव्यक्ति और संघ बनाने की स्वतंत्रता व्यक्तियों और समूहों के मौलिक अधिकारों को बढ़ावा दिया जाता है।

MAADHYAM IAS

पारम्परिक (क्लासिकी) उदारवाद की दार्शनिक आधारशिला को डेविड ह्यूम, जेरमी बेंथम और जॉन स्टुअर्ट मिल की कलम से संरचना प्रदान की गई। इन विचारकों ने इस आधार पर सामाजिक संपर्क सिद्धांत का निर्माण किया कि मानव का मार्गदर्शन बौद्धिक स्वअभिरुचि, तार्किकता और स्वतंत्र विकल्प से होता है और स्वतंत्र रूप से विकास की विचारधारा ऐसे स्वतंत्र वातावरण में उत्पन्न होती है, जिस पर राज्य का कम से कम नियंत्रण हो। उदारवाद, अस्तक्षेप की नीति (laissez-faire) के आर्थिक सिद्धांत में शामिल मार्गदर्शी सिद्धांत था, जिसका अर्थ है—उत्पादन और व्यापार में उद्यमिता का स्वतंत्र रूप से संवर्धन करना। यह स्वतंत्रता और लोकतंत्र के सामाजिक और राजनीतिक सिद्धांत का पथ-प्रदर्शक भी है।

6.3 उदारवादी विचारधारा की शाखाएँ

आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में विचारों की उदारवादी शाखा अखंडित (monolithic) नहीं है, बल्कि इसमें उदारवादी विचारों की भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं, जिनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता बनाम राज्य का प्रश्न विशेष महत्व रखता है।

बॉक्स 6.1: उदारवाद को प्रभावित करने वाले प्रमुख सिद्धांत

उदारवाद कभी भी एक एकीकृत (unified) और संगत (consistent) सिद्धांत नहीं रहा है बल्कि यह विभिन्न सिद्धांतों का संगम रहा है, जिसमें Recht Staat, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और बुनियादी अधिकारों की रक्षा, प्रतिनिधि-सरकार, शक्ति पृथक्करण, राज्य की सीमित भूमिका, तार्किक व्यक्तिवाद और पूँजीवादी बाजार अर्थव्यवस्था शामिल हैं (टॉरफिंग 1999 : 249)।

कुछ उदारवादी आर्थिक स्वतंत्रता पर अधिक जोर देते हैं और नैतिक जीवन में सरकार के अत्यधिक हस्तक्षेप को स्वीकार करते हैं। (थेचरवाद और रीगनवाद में सन्निहित राजनीतिक दार्शनिकता को इसके एक उदाहरण के रूप में लिया गया है) जबकि कुछ विद्वान जीवन के विभिन्न कार्यों के राज्य के न्यूनतम हस्तक्षेप की विचारधारा में विश्वास रखते हैं। इस बाद वाली सैद्धांतिक विचारधारा को प्रायः उदारवाद कहा जाता है।

उदारवाद का मूल सत्रहवीं शताब्दी के अंग्रेजी राजनीतिक दार्शनिक जॉन लॉक की रचनाओं में है, जिन्होंने व्यक्ति के जीवन (प्राण), स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार और राज्य के उस कठोर हस्तक्षेप को समाप्त करने पर जोर दिया, जो स्वतंत्रता का सबसे अधिक उल्लंघन करता है। इसके बावजूद व्यक्तिगत स्वतंत्रता संरक्षणवादी विचारों का एक सुगम चिन्हक (marker) है (ब्रिटिश संरक्षणवादियों और अमेरिकी उदारवादी दलों की मार्गदर्शी विचारधारा)। अमेरिका के दार्शनिक रॉबर्ट नौजिक (Robert Nozick) (1974) और अर्थशास्त्री फेडरिक हेक (Fedrich Hayek) अपने-अपने क्षेत्र के उदारवाद के आधुनिक समर्थकों में से हैं। नोजिक राज्य की भूमिका को केवल नागरिकों की 'संरक्षक एजेंसी' तक सीमित करने के पक्ष में थे। हेक (1944, 1982) का मानना था कि आदर्श आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था और परस्पर-वैयक्तिक संबंध बाजार-विनिमय के मॉडल हैं, सरकार की भूमिका व्यवस्था बनाए रखने और ऐसी जन-सुविधाएँ/सेवाएँ उपलब्ध कराना है, जिसमें शुरू में अधिक पूँजी-निवेश की जरूरत हो। उदारवादी आदर्श को संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यापक सहयोग मिला, उसमें संरक्षणवाद ओर नव-उदारवाद को आसानी से समाहित किया जा सकता है। इस प्रकार उदारवाद मनुष्य से ऐसी कार्रवाई की अपेक्षा करता है जिसका मार्गदर्शन किसी भी प्रकार की नियतिवाद (determinism) से न किया गया हो।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आमतौर पर उदारवादी मान्यताएँ समाजवाद और संरक्षणवाद की मान्यताओं से मेल नहीं खाती हैं। टॉम पेनी (Tom Paine) का चरम उदारवाद, अर्थव्यवस्था में सरकार के न्यूनतम हस्तक्षेप की विचारधारा पर आधारित था, जो समाजवाद के निकट था जबकि अन्य उदारवादियों की निजी संपत्ति के अधिकार की दृढ़ संकल्पना उन्हें संरक्षणवाद के निकट ले जाती है। पेनी और अन्य का प्रारंभिक उदारवाद, प्रगतिवादी था क्योंकि इसका उद्देश्य व्यक्ति को परम्परागत राजनीतिक बाधाओं से मुक्त कराना था। वे चाहते थे कि सरकार की भूमिका सीमित हो। जॉन लॉक के शब्दों में, सरकार का काम एक निर्णायक (अम्पायर) की भूमिका को निभाना है, जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा के लिए निष्पक्षता से काम करे। इस प्रकार यह विश्वास किया गया कि नागरिकों को अपने भविष्य को सँवारने के लिए अधिक-से-अधिक अवसर प्रदान किए जाएँगे।

अभिजात तंत्र की शक्ति के समाप्त होने के बावजूद भी उदारवाद प्रगतिवादी सामाजिक प्रवृत्तियों से जुड़ा रहा। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के बाद उदारवादियों ने सरकारी पहल की वृद्धि को प्रोत्साहित करना शुरू कर दिया। अब उदारवादियों का तर्क था कि गरीबी और बेरोजगारी से व्यक्तिगत स्वतंत्रता में कमी आई है और अनियंत्रित हस्तक्षेप, अहस्तक्षेप के कारण उत्पन्न पूँजीवाद इसका मूल कारण है। इसलिए सरकार को बड़े पैमाने पर सामाजिक हस्तक्षेप और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आर्थिक प्रतिबंधों का उन्मूलन करने के लिए व्यापक भूमिका निभानी होगी।

उदारवादियों का हमेशा यह विश्वास रहा है कि व्यक्तिगत व्यवहार पर राजनीतिक और आर्थिक बाधाओं को हटाने से समाज के आचरण में सुधार आएगा। इस दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्तिगत स्वतंत्रता सामाजिक प्रगति की कुंजी है। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता से रहने वाला व्यक्ति आत्मनिर्भरता, मितव्ययता, सहिष्णुता और दूसरों के अधिकारों के प्रति सम्मान जैसे गुणों को अर्जित करता है। इन गुणों को आमतौर पर बुर्जआ (मध्यम वर्ग) कहा जाता है, क्योंकि पूँजीवादी समाज में इन गुणों का प्रदर्शन/व्यवहार आर्थिक रूप से सफल समूहों द्वारा किया जाता है।

उदारवाद, पूँजीवादी विश्व की प्रगति से संबद्ध रहा है। इसके समर्थक आर्थिक प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए व्यक्ति की क्षमता को प्रतिबंधों से मुक्त रखने के पक्षधर हैं। उनका तर्क था कि पूँजीवादी व्यवस्था से जुड़ी आर्थिक स्वतंत्रता भी एक प्रकार से नैतिक स्वतंत्रता को जन्म देती है। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि उदारवादियों ने मध्यम वर्ग (embourgeoisment) की प्रक्रिया का पक्ष लिया है, जिसमें अंतत्वोगत्वा प्रत्येक व्यक्ति सहयोगी अर्थव्यवस्था के अनुकूल मनोवृत्ति स्वीकार करेगा।

उदारवाद का इतिहास अधिकारों का विस्तार करने के लिए कार्यनीतियों के अनुक्रम को व्यक्त करता है, जिसे व्यक्तियों की आर्थिक और नैतिक स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की कार्यनीति माना गया है। उदारवाद के विभिन्न रूप एक ऐसे एकवर्गीय समाज की कल्पना करते हैं, जिसमें स्वयं पर शासन करने वाले नागरिक शामिल हों। समुदाय का उदारवादी आदर्श वह है, जिसमें संपत्ति में असमानता के बावजूद स्व-अनुशासन और एक-दूसरे के लिए सम्मान की भावना को प्राथमिकता दी जाती है।

6.4 उदारवादी राज्य का क्रम-विकास

उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैंड में वाणिज्यिक हितों ने राज्य की शक्तियों को सीमित करने और ऐसे प्रतिमान स्थापित करने का प्रयास किया, जिसमें व्यावसायिक गतिविधियाँ अबाधित रहें। राज्य ने 'सहयोग' का प्रस्ताव किया और जनहित में पूँजीपतियों के आंदोलन को नियंत्रित करना शुरू कर दिया। उदारवादी राज्य इस अवस्था में अहस्तक्षेप राज्य नहीं था, बल्कि ऐसा राज्य था जिसमें व्यक्तिगत रूप से संपत्ति इकट्ठा करने के लिए परिस्थितियों का सृजन करने और उन्हें बनाए रखने के लिए हस्तक्षेपवाद की आवश्यकता थी। इसने सार्वजनिक जीवन में मध्यम वर्ग की सक्रियता की माँग भी की।

पूँजीवाद के विस्तार ने राज्य की आर्थिक गतिविधियों से संबंधित पहले से चली आ रही वाणिज्यवादी संकल्पना और व्यापार पर राजनीतिक नियंत्रण को कम करने का प्रयास किया। इसके स्थान पर आर्थिक मामलों पर जनता के कार्यों में मुख्यत: कानूनी, वित्तीय, मौद्रिक और कामों के साथ-साथ भूमि, पूँजी और श्रम बाजार द्वारा निर्मित आवंटन-कार्यनीति के स्वायत्त स्वनिगमित संचालन के लिए वित्तीय ढाँचागत कार्य शामिल थे (पॉगी 1978 : 115)। इस प्रकार उदारवादी राज्य ने अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन दोनों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। वोल्फ (1997) का सुझाव था कि ''विस्तार के इस काल में राज्य की संग्राहक की भूमिका थी—आर्थिक गतिविधियों के व्यापकतम प्रतिमानों को परिभाषित करना, उत्पादन को बढ़ाने के लिए अनुशासन कायम करना, सूक्ष्म-आर्थिक स्थितियों का समायोजन करना, निजी उद्योगों को प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता प्रदान करना और युद्ध का सामना करना। इसके साथ ही, ब्रिटेन में नया मध्यम वर्ग ऐसे सामाजिक नियंत्रण के विद्यमान स्वीकृत रूप में सुधार लाने और इसे एकीकृत करने के लिए संसद में पहुँच गया, जो विकासशील पूँजीवादी समाज की अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं थे।

समानता और नागरिक अधिकारों की अवधारणा ने उदारवाद में व्यक्तिवादी आस्था के बावजूद सुविधावंचितों और मताधिकार से वंचितों को अपनी माँगों और भागीदारी के लिए मार्ग प्रशस्त किया। आबादी के एक बड़े समूह द्वारा सामाजिक और राजनीतिक मांग से एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली में व्यवसाय के साथ संभावित संघर्ष का जन्म हुआ, जिसमें सरकार की शक्ति मताधिकार से प्राप्त की जा सकती है। लेकिन अंतिम विश्लेषण में, लोकतंत्रीकरण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक के रूप में नहीं आया। इसने ताकतों के एकीकरण में सहायता की (विशेष रूप से कामकाजी वर्ग), मार्क्स के अनुसार जिसने पूँजीवादी व्यवस्था के विघटन को बल दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, औपचारिक उदारवादी अधिकारों के विस्तार ने गहरी होती सामाजिक असमानताओं के सहयोजन के साथ समानता के प्रश्न पर चर्चा को अधिक बल दिया। यूरोप के अनेक देशों में अहस्तक्षेप की विचारधारा के समर्थकों के विरोध के बावजूद संघ और ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार का कामकाजी (श्रमिक) वर्ग तक विस्तार किया गया, जिससे सामाजिक न्याय को व्यापक बनाया जा सके। निम्न वर्गों तक नागरिकता का विस्तार करने को विशेष अर्थ दिया गया कि नागरिक के रूप में इन वर्गों के सदस्यों के कल्याण के लिए कुछ सहूलियतें दी गईं, जिससे वे नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें (बेनडिक्स 1964)। इस प्रकार के कार्यों से उदारवादी राज्य की उग्र व्यक्तिवाद की धारणा में बदलाव आया। लेकिन आधुनिक और निरंतर शक्तिशाली राज्य के उद्भव से उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में, राज्य द्वारा बाजार में हस्तक्षेप क... ...ापूर्वक पूँजी इकट्ठा करने के सक्रिय और सुनिश्चित कार्रवाई के प्रति व्यापारियों ने विरोध प्रकट किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, उदारवाद के प्रतिमान में संकल्पित मॉडल पर अर्थव्यवस्था पूरी तरह से आगे नहीं बढ़ पाई। फर्मों का आकार बड़ा था, उत्पादन केंद्रित था, देयता अधिक स्पष्ट थी और व्यापारिक स्वामित्व का संचालन एवं प्रबंधन और अधिक स्पष्ट हो गया था और विदेशों से प्रतियोगिता बढ़ने के कारण घरेलू-बाजार के संरक्षण की मांग की गई। प्रथम विश्व युद्ध ने पूँजीवाद की संरचना को इस प्रकार से बनाया जो उदारवादी संरचना से एकदम अलग थी। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड में युद्ध के अंत तक राज्य ने संयुक्त रूप से रेलवे पर नियंत्रण कर लिया, लाभ को सुनिश्चित किया और बीमा क्षेत्र में प्रमुख भूमिका निभाई। यह सबसे बड़ा नियुक्ता बन गया। राष्ट्रीय उत्पाद के अधिकांश हिस्से का उत्पादक और निर्माता बन गया। दोनों विश्व युद्धों के बीच के समय में राज्य और व्यापारिक हितों के बीच में सहयोग सामाजिक प्रबंध का महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शी सिद्धांत बन गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप और अमेरिका दोनों में कल्याणकारी राज्य की ओर स्पष्ट झुकाव नजर आने लगा।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

6.5 सामाजिक असमानता का समाधान

उदारवादी विचारक यह स्वीकार नहीं करते थे कि असमानता समाज में अंतर्निहित होती है बल्कि वे इसे समाज द्वारा निर्मित मानते थे। इस प्रकार, असमानता की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए और इसे दूर किया जाना चाहिए। चूँकि व्यक्ति स्वतंत्र और समान रूप से जन्म लेता है, इसलिए राज्य को उनकी सहमति से चलाया जाना चाहिए जिनके अधिकार से राज्य बनता है। संरक्षणवादियों के साथ उदारवादी समाजवादी समानतावाद (equalitarism) के प्रति अरुचि रखते हैं। ये दोनों ही एक ऐसी स्वतंत्र आर्थिक प्रतियोगिता का समर्थन करते हैं जिसमें व्यक्तिगत योग्यता और उद्यम को समुचित सम्मान मिले। उनके अनुसार पुरस्कार (सम्मान) एक-जैसा होना चाहिए क्योंकि व्यक्ति अपने भौतिक सुख के लिए समान दक्षता और प्रयास करता है। वे समाजवादियों की उस विचारधारा को खारिज करते हैं जिसमें वे व्यक्ति को उसकी योग्यता की अपेक्षा उसकी आवश्यकता के आधार पर पारितोषिक देना चाहते हैं। उदारवादी इसे अन्याय मानते हैं। सामाजिक समानता के लिए न तो संरक्षणवादी और न ही

उदारवादी स्वतंत्रता का बलिदान करना चाहते हैं। असमानता के प्रश्न पर उदारवादियों की स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है:

उदारवादी समाज कभी भी समतावादी समाज नहीं हो सकता, चूँकि स्वतंत्रता में आगे बढ़ने या पीछे लौटने की स्वतंत्रता शामिल है और उदारवादी विलासिता के हित में कभी भी विरोध करने को सहमत नहीं हो सकते। इसके विपरीत हमें अवसर की समानता को सुनिश्चित करने का प्रयास करना चाहिए और ऐसे निहितार्थों को स्वीकार करना चाहिए कि अवसर प्राप्त व्यक्ति धीरे-धीरे आगे बढ़ता जाता है जबकि इससे वंचित व्यक्ति आगे नहीं बढ़ पाता (वाटसन 1957 : 192)।

लेकिन आधुनिक उदारवादी, समाजवादियों के साथ थोड़ा-बहुत पुन:वितरणात्मक न्याय को बनाए रखने की आवश्यकता महसूस करते हैं। उनका मानना है कि असमानता से ऐसे व्यक्तियों की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाती है, जो जीवन की कठिनाइयों और गरीबी से जूझ रहे हों, इस कारण से, वे सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों का समर्थन करते हैं। वे इससे भी सहमत हैं कि लोगों का कल्याण करना एक प्रकार से स्वतंत्रता का ही एक रूप है, जहाँ तक यह मनुष्य को ऐसी सामाजिक परिस्थितियों से स्वतंत्रता प्रदान करता है, जो उनके विकल्पों को अवरुद्ध करती हैं और उनके स्व-विकास को रोकती हैं। इस प्रकार उनके अनुसार, राज्य सरकारों द्वारा अधिक से अधिक एक-जैसे समाज की रचना करना, व्यक्ति की स्वतंत्रता को कम करने की बजाय उनकी सुरक्षा करने का प्रयास करता है। असमानता के प्रश्न पर विचार करते समय ऐसा प्रतीत होता है कि उदारवादी दुविधा की स्थिति में होते हैं, क्योंकि वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और वितरणात्मक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए राज्य के नियंत्रण दोनों को ही चाहते हैं, जिसे स्वतंत्रता की एक पूर्व-शर्त माना जाता है।

6.6 कल्याणकारी राज्य

MAADHYAM IAS

उदारवादी अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका में अंग्रेजी अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड केन्स (1883-1946) की प्रभावी रचनाओं के बाद नया रूप ग्रहण किया। केन्स ने इस आधार पर उदारवादी विचारधारा का विरोध किया कि अनियंत्रित अर्थव्यवस्था से पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सकती है और इस प्रकार सामाजिक संतुलन और स्थायित्व को प्राप्त किया जा सकता है। "राज्य की नगण्य भूमिका" के हस्तक्षेप की नीति से हटकर केन्स (1936) ने तर्क दिया कि इस बिंदु पर पहुँचने से पहले संतुलन कायम किया जा सकता है अर्थात् समाज व्यापक माँग और राज्य के सक्रिय हस्तक्षेप से पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। यदि पूर्ण रोजगार से मुद्रास्फीति का जन्म होता है, तो राज्य को व्यापक मांग को कम करने के लिए कार्रवाई करनी चाहिए। दोनों ही स्थितियों में सरकार का हस्तक्षेप (राजकोषीय) नीति, सरकारी खर्च और मौद्रिक नीति (ब्याज दरों में परिवर्तन और क्रेडिट की आपूर्ति) पर नियंत्रण के रूप में होनी चाहिए। सन् 1930 के दशक की महा मंदी (depression) ने पूँजीवादी विश्व को तहस-नहस कर दिया और इस मंदी से बाहर निकलने के असफल प्रयास में इसने राज्य की शक्तियों का निर्माण करने और उन्हें लागू करने के लिए नये रास्तों की तलाश की (हार्वी 1989 : 128)। केनवादी अर्थव्यवस्था ने राज्य को मांग का प्रबंध करने और बड़े पैमाने पर उपयोग सुनिश्चित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा। इस 'नई संकल्पना' को नये कल्याणकारी राज्यों ने व्यवहार में अपनाया। इन कल्याणकारी राज्यों की स्थापना उन उपलब्धियों पर निर्भर थी, जो वर्षों के संघर्ष के बाद बड़े कार्पोरेट क्षेत्रों, संगठित श्रमिकों और राज्य के बीच शक्ति संतुलन के बाद प्राप्त की गई थी। केन्सवादियों ने द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् कम से कम तीन दशकों तक उदारवादी आर्थिक विचारों और आर्थिक नीतियों पर अपना वर्चस्व कायम किया। अधिकतर पश्चिमी देशों की आर्थिक नीतियाँ रोजगार के अवसर सृजित करने और शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, नागरिक सुविधाएँ और अन्य बुनियादी आवश्यकताओं को अनुशासित

कर प्रणाली द्वारा प्राप्त करने के पक्ष में थीं। केन्सवाद से उत्पन्न विकास नीतियों ने पश्चिमी पूँजीवाद को आंतरिक और बाहरी दोनों तरह से समेकित करने में सहायता की। आंतरिक रूप से, समाज के कमजोर वर्गों को उदारवादी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में एकीकृत किया गया जबकि बाह्य रूप से पश्चिमी पूँजीवादी विश्व ने समाजवादी ब्लॉक के समक्ष अपनी स्थिति को मजबूत किया। इस प्रकार, बीसवीं शताब्दी के दूसरे पक्ष में विकसित औद्योगिक समाजों में आम जनता के कल्याण की आवश्यकताओं को पूरा करने में राज्य की भूमिका में वृद्धि हुई और इसने सामाजिक स्थायित्व के लिए सुविचारित नीति बनाई।

अभ्यास 6.1

आपकी राय में राज्य को किस सीमा तक व्यक्ति के सामाजिक और आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिए?

6.7 नव-उदारवाद का उद्‌गम

युद्ध के बाद के समय में, यद्यपि पश्चिमी राज्य लोक नीति में कल्याण के महत्त्व को एक तत्त्व के रूप में महसूस कर रहे थे लेकिन साथ ही प्रौद्योगिक और पूँजी के मुक्त रूप से हस्तांतरण को सुगम बनाने में राज्य की भूमिका में शिथिलता की आवश्यकता भी महसूस की जा रही थी। प्रतिष्ठित नव-उदारवादी, उदारवादी थे और व्यक्ति के ऐसे अधिकारों के प्रबल समर्थक थे जो कभी-कभी कठोर राज्य का विरोध करते थे। इसके प्रमुख संरक्षकों में मिल्टन, फ्रायडमैन, फ्रैडरिक हायक और रॉबर्ट नोजिक शामिल हैं। उदाहरण के लिए, फ्रेडरिक ए. हायक को उनके केनियन विरोधी मोनेटेरिज्म (monetarism) के लिए जाना जाता है। अहस्तक्षेप अर्थव्यवस्था के प्रबल समर्थक हायक (1944) का तर्क था कि केंद्रीकृत आर्थिक नियोजन स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है और इस प्रकार कृषि दासता (serfdom) के लिए परिस्थितियाँ पैदा करती है। उन्होंने बाद में स्पष्ट किया कि सामूहिकवाद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए एक खतरा है (देखें हायक 1982)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अहस्तक्षेप की नीति पर आधारित पारम्परिक (क्लासिकीय) उदारवाद की विचारधारा 1980 के दशक में उत्पादन, वितरण और उपभोग की व्यवस्था के उदारीकरण और भूमंडलीकरण के रूप में फिर से प्रकट हुई। पिछले दो दशकों में कई पश्चिमी समाजों, विशेष रूप से 1980 के दशक में अमेरिका में रीगनवाद और इंग्लैण्ड में थैचरवाद में राज्य की कल्याण नीतियों में कमी आई है और इसमें कल्याणकारी योजनाओं का निजीकरण हुआ है तथा आवश्यकता की तुलना में भुगतान करने की क्षमता की विकास हुआ है।

बीसवीं शताब्दी के अंत में, उन्नीसवीं शताब्दी की तरह ही राजनीति की एक मुख्य लड़ाई आर्थिक उदारवाद के समर्थकों और 'समाज के संरक्षण' के लिए हस्तक्षेप के समर्थकों के बीच लड़ी गई। बाद में एक बार फिर से संरक्षणवाद के समर्थकों को अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। यह तथाकथित 'तीसरा विकल्प' (third way) का सार है, जिसके बारे में 1990 के दशक में व्यापक चर्चा की गई। इनकी स्थिति या मान्यता पूर्ववर्ती समाजवादियों के समान थी और इसने यूरोप में नए चुने गए वाम केंद्र नेताओं (left center leader) - इंग्लैण्ड में टोनी ब्लेयर, फ्रांस में लियोनेल जोसपिन, जर्मनी में गेरहर्ट शोर्डर और अमेरिका में क्लिंटन को एक साथ इकट्ठा किया। 'तृतीय विकल्प' को पूँजीवाद में व्यापक रूप से वृद्धि के प्रभाव को कम करने के संतुलित प्रयास के रूप में परिभाषित किया गया। औद्योगिकरण, विकास की पूर्व शर्त है, जिसे आर्थिक प्रगति, परंपरागत मूल्यों की समाप्ति, तार्किकता में वृद्धि बड़े पैमाने पर गरीबी उन्मूलन, स्वतंत्रता और नागरिकता के प्रचार-प्रसार के रूप में देखा जाता है।

समाजविज्ञानी विकास के नव-उदारवादी चरण के प्रतिकूल प्रभावों के प्रति चिंतित है। कैसेल (1996) का तर्क है कि पूँजीवादी वृद्धि के नये युग में ध्यान औद्योगिकरण से सूचना और ज्ञान के नेटवर्क की तरफ चला जाएगा। 1998-99 की विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया था कि "धनी और निर्धन देशों में ज्ञान सृजन के कुछ महत्त्वपूर्ण उपायों में अंतर आय की तुलना में बहुत अधिक है।" निश्चित रूप से औद्योगिक देशों में विनिर्माण क्षेत्र में कमी और सेवा तथा ज्ञान आधारित क्षेत्रों में विकास से भविष्य में विकासवादी विश्लेषकों और नीति-निर्माताओं के समक्ष नई समस्याएँ उत्पन्न होंगी।

नव-उदारवादी विकास की समालोचना को आगे बढ़ाते हुए, किचिंग (1989) ने कहा कि, "विकास एक डरावनी प्रक्रिया है, कोवेन और शेंटन (1996) के लिए विकास का अर्थ है–"प्रगति की अव्यवस्थित कमियों में सुधार करना।" विकास के अधिकतर प्रयास गरीबी, पर्यावरण निम्नीकरण और सामाजिक अव्यवस्था को दूर करने में लग जाते हैं। 'विकास' को प्राय: गरीब समुदायों अथवा विस्थापित आबादी की सहायता और कल्याण कार्यक्रमों का द्योतक माना जाता है।

भूमंडलीकरण की देखरेख करने वाली अंतरराष्ट्रीय एजेंसियां (विशेष रूप से विश्व बैंक) अब विश्व प्रणाली में गरीब समुदायों के एकीकरण की आवश्यकता पर बल दे रहे हैं। सामाजिक वैज्ञानिक वैश्विक एकीकरण को प्राप्त करने के लिए उपाय सुझाने में लगे हैं। उदाहरण के लिए, चैम्बर्स (1989) ने लोगों के लिए बनाई विकास योजनाओं में उनकी भागीदारी को सुगम बनाने और इस प्रक्रिया में उन्हें शक्तिशाली बनाने के लिए सहभागी उपागम का सुझाव दिया था। आज के वृहद वैश्विक नेटवर्क अथवा "सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन" (पी.आर.ए.) अथवा "सहभागी अधिगम (सीखना) और कार्रवाई" (पी.एल.ए.) के संवर्धन के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी रहे हैं। इसमें गरीब समुदायों को अपने विकास की परियोजनाओं को अभिकल्पित करने और चलाने के लिए "छड़ी को उन्हें सुपुर्द करने" जैसे आदर्श विचार भी शामिल हैं। भारतीय संदर्भ में हम देखते हैं कि आर्थिक उदारीकरण, लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और सहभागी विकास जैसी प्रक्रियाओं को साथ ही साथ प्रयोग के रूप में अपनाया जा रहा है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

6.8 उदारवादी संदर्भ की समालोचना

सी.बी.मैकफर्सन (1966) ने इस आधार की आलोचना की कि यह "स्वत्वात्मक व्यक्तिवाद" का संवर्धन करता है। इसका अर्थ है– न्यूनतम सामाजिक और सहयोग देने वाला व्यक्ति। उदारवादी परिप्रेक्ष्य की समाजवादी समालोचना, असमानता और सामाजिक न्याय की व्याख्या पर आधारित है। यह तर्क दिया गया है कि असमानता की पक्षधर आर्थिक व्यवस्थ मुक्त बाजार प्रतियोगिता के वातावरण में असमानता और सामाजिक अन्याय में और वृद्धि करेगा। पारम्परिक (क्लासिकी) उदारवाद की समालोचना उदारवादी विचारधारा के समर्थकों ने भी की है। उदाहरण के लिए, केन्स ने रिकॉर्डो, मिल और बेंथम जैसे क्लासिकी उदारवादियों की आलोचना की है और कामकाजी वर्गों के हितों की रक्षा के लिए राज्य-कल्याणवाद का सुझाव दिया है। समाजशास्त्रियों ने वैयक्तिक स्वायत्ता की विचारधारा की आलोचना की और इसे व्यर्थ बताया, उन्होंने तटस्थ शासन की संभावना को भी अस्वीकार किया जो सबको समान अवसरों की समानता की गारंटी का संवर्धन करेगा और यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पूर्व शर्त है ऐतिहासिक रूप से, कभी भी ऐसी मुक्त बाजार की अर्थव्यवस्था नहीं रही है जो राज्य के नियंत्रण से पूर्णत: मुक्त रही हो। यहाँ तक कि 1980 और 1990 के दशकों में नव-उदारवाद ने ठोस वापसी की, इसने राज्य-कल्याणवाद की विचारधारा को पीछे छोड़ दिया, ऐसे समय में नव-उदारवादी अर्थव्यवस्था से पीड़ित लोगों के अधिकारों के संरक्षण के लिए फिर से बातचीत शुरू की गई।

उदारवादी उपागम ने श्रम-नियंत्रण की व्यापक व्यवस्था की, जिसमें "थोड़ा बहुत दमनकारी, अभ्यास, सह-विकल्प और सहयोग शामिल है, जिन सबको न केवल कार्य-स्थल पर बल्कि पूरे समाज में भी संगाठित होना होगा" (हार्वी 1989 : 123) और प्रमुख विचारधारा का निर्माण कर इसका समर्थन किया जाना है। विश्व में पूंजीवाद को समेकित करने का उदारवादी उपागम बोयर के पदबंध (1990) "संग्रहण की प्रणाली" से गुजरा है। बोयर के अनुसार "संग्रहण प्रणाली" एक ऐसी नियामक व्यवस्था है जो सामान्य और पूजी संग्रहण की अपेक्षाकृत समवर्ती प्रगति को सुनिश्चित करती है अर्थात् ऐसी प्रणाली जो विरूपण और असमानता के स्थगन संबधी संकल्प को स्वीकार करती है और जिसके लिए प्रक्रिया सतत जारी रहती है (बोयर 1980 : 35) लिपेट्ज लिखते हैं कि "संग्रहण-प्रणाली" मजदूरी कमाने वालों के पुनर्निमाण की दोनों स्थितियों के रूपांतरण के मध्य उत्पाद के आवंटन को लम्बे समय तक स्थिर करती है। इस प्रकार संग्रहण-प्रणाली सभी सामाजिक अभिकर्मकों या एजेंटो के कार्यकलापों का संयोजन है दूसरे शब्दों में, मानकों, आदतों, कानूनों, नेटवर्कों के नियमन आदि का संस्थानीकरण है, जो प्रक्रिया की एकता को सुनिश्चित करता है। अंत:कृत नियमों और सामाजिक प्रक्रिया का यह स्वरूप विनियमन का माध्यम कहलाता है।" (लिपेट्ज सी.एफ. हार्वी 1989 : 122)। इस प्रकार उदारवादी उपागम ने अर्थव्यवस्था की न्यायसंगत और पुनरुत्थान की व्यापक व्यवस्था के साथ एक कानूनी और सामाजिक व्यवस्था कायम की जिसने स्व-नियमित अर्थव्यवस्था अथवा उदारवादी अर्थव्यवस्था के पुनर्निमाण को सुगम बनाने में मदद की।

मुक्त बाजार में अर्थव्यवस्था की सफलता राज्य की शक्ति को कम करके संभव नही थी बल्कि इसकी सफलता में राज्य के संरक्षण में व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्था और श्रम शक्ति के प्रबंधन की व्यापक व्यवस्था शामिल थी। होलिंग्सवर्थ और बोयर (1997 : 2) ने विधि को "उत्पादन की सामाजिक प्रणाली" कहा था।

एंटोमनियो ग्राम्स्की के आधिपत्य और फॉकल्ट के जीव-शक्ति की विचारधारा को उदारवाद की समालोचना के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बॉक्स 6.2: आधिपत्य

आधिपत्य का अर्थ है नेतृत्व, प्राधिकार या एक राज्य या सामाजिक समूह द्वारा दूसरों के ऊपर प्रभुत्व कायम करना। इसमें प्रभुत्वसंपन्न राज्य या सामाजिक समूह द्वारा स्वयं को या स्वयं की विचारधारा को दूसरों के ऊपर थोपने का प्रयास किया जाता है, जिसका उनके द्वारा विरोध किया जाता है, जिन पर इसे थोपा जाता है।

पिछली दो शताब्दियों में उदारवाद, पश्चिमी पूँजीवाद की आधिपत्ययुक्त विचारधारा के रूप में सामने आया है। व्यापारिक घरानों के हितों से किसी प्रकार का समझौता किए बिना, पश्चिमी देशों ने गरीब एवं सीमांत लोगों को पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था में शामिल करने के लिए अधिक से अधिक लोकतंत्रीकरण और उनकी सहभागिता पर जोर दिया। ग्राम्स्की और अल्थुजर का सुझाव था कि वर्ग-शक्ति के वैचारिक एकीकरण के लिए पश्चिमी राष्ट्रों ने सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में काम किया।

आधुनिक उदारवादी राज्य के कार्य की समालोचना में मिखाइल फॉकल्ट (देखें डीन 2001) ने तर्क दिया है कि शासन करने का अर्थ अब ऐसी विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से उत्पादन करना, सहायता देना और काम करना है जिसे इसे प्रभुत्वशाली व्यवस्था में सरकार की संस्थाओं के बाहर देखा जा सकता है। ये प्रक्रियाएँ जिन प्रभावशाली क्षेत्रों में निर्मित हुई हैं, उनमें से एक प्रभावशाली क्षेत्र "जैव-राजनीतिक" है। *जैव-राजनीतिक, विशेष रूप से जैसी यह आबादी के स्तर पर दिखाई देती है, जीवन के प्रशासन की राजनीति से संबंधित है।* इस प्रकार जैव-राजनीति

को सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए, जिसमें मनुष्य रहता है, संरक्षित होता है, अस्वस्थ होता है, स्वास्थ्य को बनाए रखता है, स्वस्थ बनता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।

फॉकल्ट ने लोगों को अधिक से अधिक स्वायत्तता देने और आर्थिक प्रबंध से शासन करने की निरपेक्ष शक्ति द्वारा शासन से शासन की क्रियाविधि के संक्रमण के इतिहास का वर्णन किया है। तब जैव-राजनीति, नागरिक समाज में व्यापार की भूमिका के साथ राजनीतिक तार्किकता और विशिष्ट ज्ञान के संपर्क में आती है। फॉकल्ट के अनुमान से 19वीं शताब्दी के प्रथम पच्चीस वर्षों में पारम्परिक (क्लासिकी) अंग्रेजी राजनीतिक अर्थव्यवस्था ने जनसंख्या के जीवन में आशा उत्पन्न करने पर ध्यान दिया। उदाहरण के लिए, थामस माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि को प्रेरित करने वाली प्रक्रिया और मानव जीवन की निरंतर बढ़ती गुणवत्ता के निर्वहन की प्राकृतिक प्रक्रिया के बीच के संबंध तथा अभाव और आवश्यकता के बीच के संपर्क की खोज की। अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक अंग्रेजी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों द्वारा खोजी गई जैव-आर्थिक वास्तविकताओं और उनके कार्यों ने जनसंख्या के जीवन की प्रत्याशा को अधिक से अधिक सार्थक करने के लिए शासन के नये मानकों को बनाने में सहायता प्रदान की। ये नये नियम सरकार को आर्थिक वास्तविकताओं, वाणिज्यिक समाज और बाजार के माध्यम से अधिकार प्रदान करते हैं। वे दक्षता से शासन करने, अपव्यय को रोकने और लागत को सीमित करने का भी निर्देश देते हैं। बेंजामिन फ्रैंकलिन ने इसे ''किफायती सरकार'' का नाम दिया था।

फॉकल्ट के अनुसार, उदारवाद को अतिवादी सरकार की समालोचना के रूप में समझा जा सकता है। लेकिन, इसे न केवल पूर्ववर्ती सरकार की समालोचना के रूप में अर्थात् पुलिस और राज्य के कार्यकरण के रूप में देखा जा सकता है, बल्कि बायो-राजनीतिक सरकार के विद्यमान और संभावित रूप में भी देखा जा सकता है। इस प्रकार उदारवाद सरकार के ऐसे अन्य संभावित रूपों की आलोचना करता है जिन्हें जीवन प्रक्रिया में अपनाया जा सकता है।

MAADHYAM IAS

फॉकल्ट के अनुसार उदारवाद सुरक्षा की आवश्यकता को महसूस करता था और ''सुरक्षा की व्यवस्था को उचित स्थान दिया, जिसका कार्य प्राकृतिक घटनाओं, आर्थिक प्रक्रियाओं, आबादी की अंतर्निहित समस्याओं से सुरक्षा प्रदान करना सरकार का आदर्श उद्देश्य है। फॉकल्ट का सुझाव था कि उदारवादी राज्यों द्वारा नागरिकों की आर्थिक और जैविक सुरक्षा की एक शर्त के रूप में स्वतंत्रता का प्रयोग किया गया था। उदारवाद में कानूनी और संसदीय संरचना को स्वीकार किया जाता है, इसका कारण न्यायिक विचारधारा से इसकी सन्निकटता है क्योंकि प्राय: कानून समान रूप से लागू होता है और इसमें विशेष और अपवाद शामिल नहीं होता। संसदीय प्रणाली द्वारा उदारवाद में शासित वर्ग को उदार सरकार में सहभागिता की स्वतंत्रता प्राप्त होती है। वास्तव में, फॉकल्ट यह सुझाव देना चाहते थे कि उदारवाद की मानकों से कानून की तुलना में अधिक सन्निकटता होती है। यही कारण है कि पहले इसने अत्यधिक शासन और न्यूनतम शासन के बीच में परिवर्तन-संतुलन में सुशासन के मानकों की सतत् माँग की और उसके बाद, इसने ऐसी प्रणाली लागू की जिसने विषयों को इस प्रकार से स्थिर और सामान्य बनाया जिससे वे स्वतंत्रता का प्रयोग उत्तरदायी ढंग से और अनुशासित होकर कर सकें।

इस प्रकार उदारवाद ने ''सामान्यीकरण के समाज'' की संकल्पना के रूप में अपनी विचारधारा को आगे बढ़ाया। इसने अर्थव्यवस्था, समाज और जनसंख्या की स्वायत्त प्रक्रिया के लिए आवश्यक उत्तरदायित्वपूर्ण स्वतंत्रता के निर्माण पर बल दिया। उदारवाद ने फॉकल्ट की ''विभाजक व्यवहार'' (dividing practices) विभिन्न संदर्भों और विभिन्न शाखाओं के रूप में प्रयोग किया। फॉकल्ट के विभाजक व्यवहार का अर्थ है, जिसमें ''कर्त्ता स्वयं के भीतर

या दूसरों से विभाजित रहता है"। इसके साथ ही, उदारवाद का इतिहास बताता है कि किस प्रकार उदारवादी तकनीकों की शृंखला को उन व्यष्टियों और समष्टियों पर लागू किया जा सकता है, जिन्हें सुधार और स्व-शासन प्राप्त करने के लिए सक्षम माना जाता है (महिला और बच्चों से अपराधियों और कंगालों के कुछ वर्ग)।

फॉकल्ट का उदारवादी सरकार के निर्माण संबंधी जैव-राजनीतिक और प्रभुसत्ता के मुद्दों की जटिल अभिव्यक्ति का सुझाव देता है। यह गड़ेरिया झुंड (shephered folk) खेल के तत्वों की अभिव्यक्ति है जो अपने आधुनिक स्वरूप में समष्टि के जीवन की पहचान को अधिकतम बनाए रखने और व्यष्टि की पहचान को सामान्य बनाता है। शहर-नागरिक खेल, जिसमें व्यक्ति एक स्वशासी राजनीतिक समाज और व्यापारिक समाज में सक्रिय और उत्तरदायी नागरिक के रूप में दिखाई देता है। नागरिकों को अनुशासित और अधीन करने की क्रियाविधि में निपुणता द्वारा सफलता प्राप्त करने की इस संतुलित कार्रवाई में इस विचारधारा का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता में वृद्धि करना था। जहाँ एक ओर उदारवादियों द्वारा अधिकारों और कानूनी संरचना की संकल्पना को लागू कर जीवन की प्रत्याशा को अधिकतम करने और जैव-राजनीतिक निहितार्थ को सुरक्षित करने का प्रयास किया और उसने इसे संप्रभुसत्ता के नियम से अपनाया, वहीं दूसरी ओर इसने ज्ञान के ऐसे स्वरूप के उद्भव को रोकने में स्थायी रूप से असमर्थ पाया जो दूसरों के जीवन की प्रत्याशा को अधिकतम बना सकता है।

अभ्यास 6.2

विकास के उदारवादी परिप्रेक्ष्य की प्रमुख सीमाएँ क्या हैं?

6.9 सारांश

विकास के परिप्रेक्ष्य के रूप में उदारवाद को इसके आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक अर्थों के रूप में व्यापक स्वरूप में समझना चाहिए। आधुनिक राजनीतिक विचारधाराएँ, आर्थिक और सामाजिक नीतियाँ मुख्यत: उदारवादी परिप्रेक्ष्य से प्रवाहित होती हैं। ऐतिहासिक रूप से उदारवाद का इस्तेमाल पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अबाधित वृद्धि और पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था के लिए किया जाता रहा है। विकास के उदारवादी परिप्रेक्ष्य की सामान्य विचारधारा इससे मुक्ति प्रदान करेगी कि शक्ति संबंध, कानूनी प्रक्रिया और सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रयोग ने किस प्रकार से विश्वभर में मुक्त व्यापार अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों के विस्तार को बढ़ावा दिया। यद्यपि समानता, मौलिक अधिकार और न्याय की मान्यता के साथ सभी देशों में आम आदमी का अधिकाधिक लोकतंत्रीकरण और सशक्तिकरण हुआ, उदारवादी राज्यों ने अंतिम विश्लेषण में आवधिक संकटों के समय पूँजीवाद को संकटों से मुक्त कराया है और इसे फिर से मजबूत आधार प्रदान किया है। इस प्रकार, आधारिक अधिसंरचना संबंध के मार्क्सवादी प्रतिमान को फिर से लागू किया गया। शुद्ध अहस्तक्षेप नीति कभी भी व्यवहार्य नहीं रही है क्योंकि पूँजी को हमेशा ही राज्य से किसी न किसी प्रकार की सहायता की जरूरत रही है। राज्य ने ऐतिहासिक रूप से पूँजी की अबाधित वृद्धि के लिए कार्यनीतियाँ बनाई हैं और आदर्शवादी, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में काम करने के लिए श्रमहारा वर्ग को पूँजीवादी समाज में सफलतापूर्वक उपयोग किया है। पिछले दो-तीन दशकों में उदारवाद ने नव-उदारवाद के रूप में पूरी मजबूती से अपनी फिर से मौजूदगी का अहसास कराया है और अब यह विश्व में व्यापक स्तर पर सक्रिय है। प्रमुख नव-उदारवाद एक उत्तेजक नई विचारधारा है और नया आंदोलन है जो कामकाजी वर्ग और पीड़ितों के संरक्षण का कार्य कर रहा है। इस प्रकर वैश्वीकरण की घटना और इसके सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक निहितार्थों को विश्व स्तर पर जाँचा-परखा जाना चाहिए।

MAADHYAMIAS
way to achieve your dream

यद्यपि पारम्परिक (क्लासिकी) उदारवाद की संरचना आर्थिक सिद्धांतवादियों द्वारा विकसित की गई लेकिन इसका विस्तार स्वत: ही सामाजिक, राजनीतिक आदि चिंतन की शाखाओं में धीरे-धीरे हो गया। यह इकाई उदारवाद का उस रूप में वर्णन भी करती है, जैसा कि यह विभिन्न विचारधाराओं में दिखाई देती है। यह उदारवादी राज्य के उद्भव के साथ-साथ असमानता, राज्य की भूमिका आदि विभिन्न मुद्दों का परीक्षण भी करता है जैसा कि इन मुद्दों पर उदारवादियों ने ध्यान आकर्षित किया है। इसके साथ ही हमने नव-उदारवाद की विचारधारा का आकलन करने का प्रयास भी किया और यह भी जाना की उदारवादी दृष्टिकोण से किस प्रकार भिन्न है। अंत में, उदारवादी सिद्धांतों की समालोचनात्मक-मूल्यांकन भी किया गया।

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Cowen, M.P. and R.W. Shenton. 1996. Doctrines of Development. Proutledge; London.

Dean, Mitchell 2001. "Michel Foucault : 'A Man in Danger', in George Ritzer and Barry Smart (eds.) Handbook of Social Theory. Sage Publication : London.

Torfing, J. 1999, New Theories of Discourse. Mass : Blackwell.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाइ 7

विकास पर मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 विकास पर मार्क्सवादी विचार

7.3 पूँजीवाद वर्ग संबंध और विकास

7.4 मार्क्स की कार्य योजना

7.5 मार्क्स और ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

7.6 नव-मार्क्सवादी उपागम : विश्व-व्यवस्था विश्लेषण

7.7 विश्व-व्यवस्था विश्लेषण के निहितार्थ

7.8 विवेचनात्मक सिद्धांत : फ्रैंकफर्ट विचारधारा

7.9 सारांश

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

यह इकाई, आपको:

- विकास के मार्क्सवादी विचार से अवगत कराने पर लक्षित है;
- पूँजीवाद के मार्क्सवादी विचार, वर्ग संबंधों और विकास और उसकी कार्य योजना से, आपको अवगत कराने पर लक्षित है;
- विकास के संदर्भ में नव मार्क्सवादी उपागम से आपको अवगत कराने पर लक्षित है; और
- विकास के संदर्भ में मार्क्सवादी उपागम की आलोचना (समीक्षा) से आपको अवगत कराने पर लक्षित है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

7.1 प्रस्तावना

यह इकाई विकास पर प्रमुख मार्क्सवादी विचार से संबंधित है। मार्क्स ने विकास को जनजातीय एशियाई, प्राचीन, सामंतवाद और पूँजीवाद जैसे विविध चरणों के माध्यम से समाज की तरक्की के रूप में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उसने विकास के मुख्य कारक के रूप में अस्तित्व की भौतिक स्थिति में निहित द्वंद पर ध्यान केंद्रित किया है। इस द्वंद को आगे ले जाने के लिए उसने वर्ग संघर्ष के मुख्य वाहन के रूप में सामाजिक वर्ग के अभिकरण की पहचान की है।

इस खंड की पिछली इकाइयों में हमने विकास के लिए आधुनिकीकरण और उदारवादी उपागमों की चर्चा की है। अब तक आप विकास में बाजार बलों के महत्त्व से अवश्य ही परिचित हो चुके होंगे।

इस इकाई में हम विकास पर मार्क्सवादी उपागम पर ध्यान केंद्रित करेंगे। एम.एस.ओ. - 001 - समाजशास्त्र संकल्पनाओं और सिद्धांतों में आपने वर्ग और वर्ग संघर्ष और उत्पादन के (पूँजीवादी) साधन और परिवर्तन पर मार्क्सवादी संकल्पनाओं का अध्ययन किया। इस इकाई

में हम पुन: विकास के परिप्रेक्ष्य से इन सभी मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। इस इकाई में हम विकास, पूँजीवाद पर मार्क्सवादी विचार, और मार्क्स की कार्य योजना की संक्षेप में चर्चा करेंगे। यहां हमने विशेष रूप से उत्पादन के पूँजीवादी माध्यम में श्रमिक वर्ग की सामाजिक दशाओं की जांच की है। इसके अलावा हमने विकास पर नव-मार्क्सवादी उपागम अर्थात् विश्व व्यवस्था विश्लेषण और समीक्षात्मक सिद्धांत की चर्चा भी की है। इकाई के अंत में समीक्षात्मक सिद्धांत पर प्रकाश डाला गया है।

7.2 विकास पर मार्क्सवादी विचार

काल मार्क्स (1818-1883), 19वीं और 20वीं शताब्दियों में विकास पर सबसे प्रभावशाली समाजवादी विचारक था। बाद में, समाजवादी अर्थव्यवस्था के पतन के पृष्ठपट के विरुद्ध, मार्क्सवादी विचार तार्किक समीक्षा का विषय रहा है। विश्व की लगभग आधी आबादी ने मार्क्स द्वारा सुझाए सामाजिक और राजनीतिक संगठनों के पुनर्गठन और आर्थिक विकास के पथ का अनुकरण किया। विकास के सिद्धांत पर मार्क्स का योगदान अतुलनीय और नवीन है। 14 मार्च 1883 को उसकी मृत्यु के बाद, मार्क्स के आजीवन सहयोगी और घनिष्ठ मित्र, फ्रैडरिय एंजल ने उसकी निधन-सूचना में लिखा जिस तरह डार्विन ने विकास या जैव प्रकृति के नियम की खोज की, उसी तरह मार्क्स ने मानव इतिहास के विकास के नियम की खोज की। एक सरल तथ्य, विचारधारा की अतिवृद्धि द्वारा अभी तक जो छुपा है वह है कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म आदि से पहले मनुष्य को खाने, पीने, रहने और तन ढकने की बुनियादी सुविधाएँ मिलनी चाहिए अर्थात् उत्पादन के नजरिए से तत्काल सामग्री का अर्थ और इसके परिणामस्वरूप ऐसे निर्धारित व्यक्तियों या ऐसे किसी युग के दौरान प्राप्त आर्थिक विकास का स्तर ऐसी आधारशिला बनाता है जिस पर राज्य संस्थाएँ (विचार), विधिक संकल्पनाएँ कला और यहाँ तक कि धर्म और संबद्ध लोगों के विचारों को विकसित किया गया है और जिसके मुद्देनजर बजाय की वे इन्हें स्पष्ट करें, इन्हें उन्हें स्पष्ट करना जरूरी है। विविध चरणों के माध्यम से मानव समाज का विकास, भौतिक देशों के अस्तित्व में परिवर्तन और विकास अस्तित्व, पूंजीवाद का विकास और इसी वजह से वर्ग संबंध में आने वाले बदलाव और उत्पादन के तरीके में परिवर्तन, कार्ल मार्क्स की सोच के प्रमुख मुददे थे। आइए ऐसे कुछ प्रमुख मुद्दों की जाँच करें-

MAADHYAM IAS

क) उत्पादन (निर्माण) संबंध और विकास

मानव समाज के विकास पर मार्क्स की दार्शनिक दृष्टि काफी गूढ़ थी और जिसे भौतिक दशा के अस्तित्व और द्वंदात्मक दृष्टि से समझा जा सकता है अर्थात् जिसे भौतिक स्थिति के अस्तित्व में निहित अन्तर्विरोध से समझा जा सकता है। यद्यपि मार्क्स ने विविध चरणों के माध्यम से मानव समाज के विकास की प्रक्रिया में गैर-भौतिक बलों के महत्त्व को नकारा नहीं है। उसने इस बात पर जोर दिया कि भौतिक बलों और उनके अंतर्विरोध ने विकास की ओर मानव समाज में परिवर्तन की अत्यंत बुनियादी और मूलभूत शर्त प्रदान की है। विकास पर मार्क्स के विचार को पूँजीवादी समाज पर उसके विश्लेषण और व्याख्या, इसके विकास, संरचना और कार्यप्रणाली की दृष्टि से उत्तम शब्दों में समझा जा सकता है। बहुसजक लेखक के रूप में कार्ल मार्क्स ने अपनी बहुत सी रचनाओं विशेष रूप से प्रीफेस टू ए कन्ट्रीब्यूशन टू द क्रिटिक आर्फ पालइटिकल इकानिमी (1859, 1976) एंड द कैपिटल (1887) की प्रस्तावना में विशेष रूप से कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो में इन सभी मुद्दों का हुआ है। कार्ल मार्क्स के अनुसार राज्यों आदि के सभी विधिक संबंध राजनीति और इनके स्वरूपों को मानव मस्तिष्क के विकास की दृष्टि से नहीं बल्कि जीवन की भौतिक स्थिति (दशा) की दृष्टि से समझना चाहिए। मार्क्स के लिए मानव समाज के विकास की प्रक्रिया में मनुष्य उत्पादनकारी पशु के रूप में उभरा है और इसी वजह से बहुत से उत्पादन संबंधों से बंधा हुआ है उसका भाव है: मनुष्य अपने जीवन के सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में ऐसे बहुत से निश्चित संबंधों को

कायम करता है जो अपरिहार्य है और जिन्हें कायम करना उसके लिए जरूरी है और उत्पादन के क्षेत्र में ऐसे संबंध कायम करना जो प्रभावशाली वस्तुओं की जरूरत के विकास में निश्चित चरण के अनुरूप है। उत्पादन की दृष्टि से ये संबंध कुल मिला कर समाज की आर्थिक संरचना और असल बुनियाद का गठन करते हैं जिस पर कानूनी और राजनीतिक अधिरचना का उदय होता है और जिससे सामाजिक चेतना के निर्धारित रूप मेल खाते हैं। भौतिक जीवन के निर्माण का तरीका सामान्य रूप से सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन प्रक्रिया को अनिवार्य बनाता है। (मार्क्स 1859)

मार्क्स इस बारे में काफी स्पष्ट थे कि आर्थिक ढाँचे में बदलाव से विधिक, राजनीतिक, धार्मिक, सौंदर्य मीमासा या दर्शनशास्त्रीय रूपी अंतर अधिरचना बदल जाती है। ऐसे बदलाव की प्रक्रिया में व्यक्तिविशेष चेतना का निर्धारण उसकी निजी सोच न होकर भौतिक जीवन के अंतर्विरोध से होता है जो कि सामाजिक उत्पादनकारी बलों और उत्पादन के संबंध का द्वंद है। चेतना मानव समाज में विकास का हिस्सा है। मार्क्स के लिए यह मनुष्य की चेतना नहीं है जो उसके वजूद का निर्धारण करती है बल्कि इसके उलट उनका भौतिक वजूद इस चेतना का निर्धारण करता है जैसा कि हमने पहले बताया था मार्क्स के लिए बदलाव और विकास में प्रतिरोधी उत्पादन संबंध की अहम भूमिका है। वे इस ओर इशारा करते हैं कि विकास के निश्चित चरण पर ''भौतिक उत्पादनकारी बल, और उत्पादन के मौजूदा संबंध अर्थात् संपत्ति संबंध जो अभी तक उनकी कार्यप्रणाली है, के बीच द्वंद उत्पन्न हो जाता है। उत्पादनकारी बलों के विकास के विविध स्वरूप से यह संबंध उनकी बेड़ियाँ बन जाता है। तब क्रांति के युग का आरंभ होता है'' (मार्क्स 1976 : 504) मार्क्स के लिए, समाज के आर्थिक गठन में एशियाई, सामंतवादी और पूँजीवादी, प्रगतिशील युग है। मार्क्स के लिए, उत्पादन के पूँजीवादी संबंध, उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया का अंतिम प्रतिरोधी स्वरूप है।

ख) वर्ग संबंध और बदलाव

समाज के आर्थिक बदलाव के सभी चरणों में वर्ग संघर्षों के कुछ विशिष्ट स्वरूप भी मौजूद रहे हैं, सामाजिक वर्ग, कार्ल मार्क्स के अनुसार, सामाजिक बदलाव के मुख्य अभिकर्ता है। हालांकि यह बदलाव वर्ग संघर्ष पर आधारित है। इसलिए मार्क्स के लिए अभी तक के मौजूद सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास है। स्वतंत्र और दासए कुलीन और अकुलीन स्वामी (लार्ड) और दास (सर्फ) शिल्प-निपुण और कारीगर अर्थात् तानाशाह और उत्पीड़ित दोनों वर्ग एक दूसरे के निरंतर विरोध में खड़े हो गए और दोनों में ऐसा निर्बाध, लेकिन अब प्रश्न और अब एक खुला संघर्ष छिड़ गया जो हर बार बड़े पैमाने पर समाज के क्रांतिकारी पुन: निर्माण या दोनों की भीषण बर्बादी से समाप्त हुआ (वही) मार्क्स के अनुसार वर्ग वस्तुनिष्ठ भौतिक दशाओं को ध्यान में रख कर गठित किए जाते हैं। ये अन्य वर्गों की तुलना में एक जैसी आर्थिक स्थिति वाले लोगों के समूह है। सार में यह आर्थिक हित दोनों की वर्ग स्थिति के लिए द्वंदकारी अंतर्विरोधात्मक है। वर्ग चेतना की मध्यस्थता से ऐसे वर्ग संबद्ध एक दूसरे के प्रति कड़ा रूख अपनाने की ओर बढ़ जाते हैं, वस्तुनिष्ठ भौतिक दशाएँ स्वत: वर्ग गठन के लिए आधार बनती हैं जो विषयनिष्ठ वर्ग चेतना के पारगमन की प्रक्रिया में स्वयं के लिए वर्ग का रूप ले लेती है।

कार्ल मार्क्स के लिए यद्यपि इतिहास के पूर्ववर्ती युगों में वर्ग संबंध अत्यंत जटिल किस्म के थे, लेकिन पूँजीवाद के आधुनिक चरण में इन्हें सरलीकृत कर लिया गया है। आधुनिक पूँजीवाद समाज में हालांकि नये वर्ग प्रचालन की नयी स्थिति और धनी और निर्धन के बीच के नये किस्म के संघर्ष के रूप में उभरे हैं।

मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद के अंतर्गत मजदूरों की दशा मुफलिस की भाँति है जिनकी तादाद समष्टि और संपत्ति की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ती है। धनी वर्ग की मौजूदगी और

MAADHYAM IAS

प्रभाव अर्थात् दोनों बातों के लिए अनिवार्य शर्तें पूँजी का गठन और इसका प्रसार बढ़ाना था औद्योगिक उन्नति जिसके अनजाने प्रवर्तक धनी वर्ग हैं, अपने क्रांतिकारी ताने बाने से होड़ के कारण श्रमिकों की अलग-थलग स्थिति को बदल देते हैं। आधुनिक उद्योग का विकास इसलिए अपने पैरों तले से उस बुनियाद को हटा देता है जिस पर धनी वर्ग उत्पादन करता है और उत्पादों को उपयुक्तता देता है। इसलिए सर्वोपरि, धनी वर्ग जो बनाता है वह है जिसका विनाश इसका पतन और निर्धन वर्ग की जीत इसके साथ-साथ जहाँ निश्चित है (वही : 119)।

7.3 पूँजीवाद वर्ग संबंध और विकास

आधुनिक उद्योग ने विश्व व्यापार स्थापित किया है जहाँ वाणिज्य नौसंचार और संचारण के व्यापक विस्तार की काफी गुंजाइश है। ऐसे विकास ने आगे उद्योग के विस्तार और मुक्त व्यापार के लिए मार्ग खोल दिया है

धनी वर्ग नव बाजारों के विस्तार, नयी प्रौद्योगिकी की पेशकश अधिशेष मूल्य की प्राप्ति और निर्धनों के शोषण के माध्यम से निरंतर अपने मुनाफे को बढ़ाता है हालाँकि इन विकास कार्यों के साथ-साथ पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर अंतर्विरोध के नये बल उभरते हैं। लेकिन ऐसे गहन अंतर्विरोध के बावजूद भी धनी वर्ग अपने दृष्टिकोण और कार्रवाई में काफी क्रांतिकारी था। मार्क्स के अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से धनी वर्ग ने सर्वाधिक क्रांतिकारी भूमिका निभाई है, धनी वर्ग का उत्पादन के साधनों को निरंतर चुनौतीपूर्ण रूप दिए बिना और इसके फलस्वरूप उत्पादन के संबंधों और समाज के उनके साथ समूचों संबंधों में निरंतर तब्दीली लाये बिना कायम रहना मुश्किल है। विश्व बाजार के शोषण के माध्यम से धनी वर्ग ने उत्पादन और उपभोग प्रक्रिया को विश्वव्यापी विशेषता दी है। पुराने उद्योगों को नष्ट करा दिया गया। राष्ट्रीय स्तर के पुराने उद्योग खाली करा दिए गए। पूँजीवादी व्यवस्था में उद्योग अब सिर्फ देसी किस्म के कच्चे माल पर ही अपना काम नहीं कर रहे थे बल्कि दूर दराज के क्षेत्रों से मँगाए कच्चे माल ये भी निर्माण का काम कर रहे थे जिससे बने उत्पादों की खपत विश्व के हर तिहाई भाग में होती है।

MAADHYAM IAS

देश के उत्पादनों से संतुष्ट पुरानी इच्छाओं की जगह हम नई इच्छाओं को पाते हैं जिनकी पूर्ति के लिए दूर दराज के क्षेत्रों के उत्पादों की जरूरत है। पुराने (स्थानीय) और राष्ट्रीय अज्ञातवास और आत्म-निर्भरता की जगह हमने हर दिशा में विश्वव्यापी स्तर राष्ट्र की अंतरनिर्भरता में अपनापन दिया है। और भौतिक की भाँति बौद्धिक निर्माण में भी व्यक्ति विशेष राष्ट्रों की बौद्धिक संपत्ति सभी की धरोहर है। राष्ट्रीय स्तर पर एकतरफा और संकीर्णतावादी रवैया अधिकाधिक असंभव हो गया है और असंख्य राष्ट्रीय और स्थानीय साहित्यों से विश्व साहित्य का उदय हुआ है (वही : 112)।

मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद भी उद्योग और कृषि और माप-संचालन, रेलवे, इलैक्ट्रिक टेलीग्राफ, नदियों से नहरे बनाना जैसी आधुनिक प्रौद्योगिकियों के लिए रसायन के अनुप्रयोग के माध्यम से मानव और मशीनरी के बल की प्रकृति पर निर्भर है। इन सभी ने वैश्विक पैमाने पर मुक्त वस्तु-विनिमय के क्षेत्र विस्तार को सुगम बनाया। इसके अनुरूप बनाने के लिए सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं द्वारा उत्पन्न मुक्त प्रतिस्पर्धा का उदय भी हुआ।

मार्क्स के अनुसार हालांकि आधुनिक पूँजीवाद ने अपनी खुद की कोख से ही अपनी बर्बादी के बीजों को प्राप्त किया और उन्हें विकसित किया है। धनी वर्ग की वृद्धि के समानुपात में आधुनिक श्रमिक वर्ग—निर्धन वर्ग का उदय हुआ है "ये श्रमिक जिन्हें उजरत दर पर अवश्य अपनी सेवाएँ देनी चाहिए, वाणिज्य की प्रत्येक अन्य वस्तु की तरह महज एक वस्तु हैं और इसी वजह से बाजार के हर तरह के उतार-चढ़ाव के लिए होड़ में हर तरह के सुख-दुख के प्रति संवेदनशील हैं" (वही : 114)।

मार्क्स के लिए, पूँजीवाद का सार उत्पादन प्रक्रिया में वस्तु के पव्यकरण commoditisation के माध्यम से मुनाफे को अधिकाधिक बढ़ाना है। जब तक पूँजीवाद उत्पादन के साधनों के संदर्भ में निजी स्वामित्व पर टिका है, यह निजी उत्पादकों के मुनाफों को अधिकाधिक बढ़ाता है। यह मुनाफा, दुबारा, वस्तु के रूप में धन अंतरण से आगे और अधिक बढ़ता जाता है। इसी तरह धीरे-धीरे वस्तु के रूप में धन से धन तक की प्रक्रिया अंत में अपने प्रारंभिक मूल्य से काफी अधिक बन जाती है (अरोन 1965 : 128)। मुनाफे के स्रोतों को स्पष्ट करने के लिए, मार्क्स ने मूल्य वेतन और अधिशेष मूल्य के सिद्धांत के बारे में बात करते हैं। उनके लिए किसी भी वस्तु का मूल्य मोटे तौर पर इस वस्तु में शामिल मानव श्रम की गुणवत्ता में समानुपातिक रूप से शामिल होता है। पूँजीवादी अपने श्रमिकों को उनसे काम कराने के बदले जो मजदूरी देते हैं वहाँ उस पूँजीवादी का सौदा बनाने के लिए ऐसे श्रमिकों और उनके परिवार के अस्तित्व के लिए अनिवार्य राशि के बराबर होती है। पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत कामगारों को मिलने वाला वेतन, उनकी असल कार्य अवधि से कम होता है और जो उस श्रमिक द्वारा निर्मित वस्तु के मूल्य से कम होता है। यहाँ अब ''अधिशेष मूल्य'' (surplus value) की धारणा की बात आती है जिससे आशय है ''श्रम के अनिवार्य समय से परे कामगारों द्वारा निर्मित मूल्य की गुणवत्ता''। पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत कामगारों को अनिवार्य श्रम समय के परे उनके द्वारा निर्मित मूल्य की गुणवत्ता के लिए मेहनताना नहीं मिलता।

जबकि कामगार द्वारा प्राप्त वेतन पूरी तरह से उसके जीवन निर्वाह और उत्तरजीविता के साधनों तक ही सीमित है। मार्क्स ने हिसाब लगाया कि वस्तु की कीमत और इसी वजह से श्रम की कीमत भी इसकी उत्पादन लागत के बराबर है इसी के अनुपात में इसलिए काम की जितनी अरुचि अढ़ती है। वेतन उतना ही कम हो जाता है। मशीनरी के प्रयोग और श्रम के विभाजन के बीच के अनुपात में बढ़ोतरी से मजदूर पर काम काम का बोझ अर्थात् काम के घंटों में बढ़ोतरी होती है और जिससे कार्य की प्रमात्रा (क्वानटम) में भी बढ़ोतरी होती है।

MAADHYAM IAS

मुफलिस संपत्तिहीन है। उसके और धनी परिवार के बीच पत्नी और बच्चों को लेकर कोई भी बात सामान्य नहीं है, आधुनिक औद्योगिक श्रम, पूँजी की आधुनिक गुलामी जैसे इंग्लैंड में वैसे ही फ्रांस और अमेरिका में, ने उसे हर तरह की राष्ट्रीय पहचान से अलग कर दिया है। उसके लिए कानून, नैतिकता, धर्म, वही है जो धनी वर्ग उनके लिए चाहता है और जिसके पीछे जो संघर्ष है वह धनी वर्ग के हित में निहित है ''(वही, 118) धीरे-धीरे ऐसे बहुत से निर्धनों की तादाद भी अधिक सामर्थ्य और जागरूकता की प्राप्ति के लिए बढ़ती है। धनियों के विरुद्ध संघर्ष करने में निम्न मध्यम वर्ग छोटे उत्पादक कृषक, शिल्पकार भी ऐसे निर्धन वर्ग की मुहिम में शामिल हो जाते है। मार्क्स के ''अनुसार, पहले के सभी ऐतिहासिक आंदोलन अल्पसंख्यकों के आंदोलन थे या अल्पसंख्यकों के हितों पर टिके हुए थे। निर्धन वर्ग आंदोलन का अर्थ है अत्यधिक लोगों के हितों में अत्यधिक लोगों का आत्मिक चेतना पर टिका हुआ स्वतंत्र आंदोलन' इसके बाद मार्क्स लिखते हैं कि निर्धन वर्ग के विकास के सर्वाधिक सामान्य चरणों को व्यक्त करने में हमने मौजूदा समाज के दायरे में कमोबेश एक प्रच्छन्न गृह युद्ध को देखा जहाँ ऐसे युद्ध ने खुली क्रांति का रूप ले लिया और जहाँ धनी वर्ग को उखाड़ फेंकने की प्रचंड पहल, निर्धन वर्ग की खुशहाली की बुनियादी नींव है।

7.4 मार्क्स की कार्य योजना

श्रमिक वर्ग द्वारा शुरू क्रांति के बाद निर्धन वर्ग को प्रजातंत्र की लड़ाई जीतने और राज्य के हाथ में उत्पादन के सभी साधनों को केंद्रीकृत करने और समग्र उत्पादनकारी बलों को यथासंभव तेजी से विकसित करने और उत्पादन के तरीके को पूरी तरह नवीन बनाने के लिए शासक वर्ग की स्थिति तक ऊँचा उठाने के लिए, मार्क्स द्वारा सुझाए गए उपाए हैं:

i) भूमि की दृष्टि से निजी संपत्ति का उन्मूलन और सार्वजनिक उद्देश्य लिए ही भूमि को किराए पर देना।

ii) आय कर को धीरे-धीरे बढ़ाना।

iii) सभी किस्म के पैतृकता अधिकारों का उन्मूलन।

iv) सभी प्रवासियों और विरोधियों की संपत्ति की जब्ती।

v) राज्य राजधानी में राष्ट्रीय बैंक और पूर्ण एकाधिकार के माध्यम से राज्य के हाथों में ऋण के केंद्रीकरण की जिम्मेदारी सौंपना।

vi) राज्य के हाथों में संचार और परिवहन के साधनों के केंद्रीकरण की जिम्मेदारी सौंपना।

vii) राज्य के स्वामित्व में उत्पादन के साधनों और फैक्टरियों का विस्तार व्यर्थ भूमि पर खेतीबाड़ी और मृदा के बेहतर योग को सामान्य योजना के अनुरूप बनाना।

viii) श्रमिकों के मामले सभी की एक जैसी जिम्मेदारी। विशेष रूप से कृषि के लिए औद्योगिक समूह का निर्माण।

ix) कृषि और विनिर्माण उद्योगों के बीच तालमेल बनाना, देश में आबादी के और अधिक स्थिर वितरण के लिए शहर और देश के बीच अंतर को धीरे-धीरे समाप्त करना।

x) सरकारी विद्यालयों में सभी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा। फैक्टरी में बाल श्रम के रूप में इसके मौजूदा स्वरूप का उन्मूलन शिक्षा को औद्योगिक उत्पादन से जोड़ना।

चिंतन और कार्रवाई 7.1
मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद की मुख्य विशेषताएँ कौन सी हैं?

7.5 मार्क्स और ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

MAADHYAM IAS

ऐतिहासिक विश्लेषन, भूतकाल, वर्तमान और भविष्य के अध्ययन पर आलोचनात्मक उपागम विकसित कर सकता है। यह अभी तक मौजूद सांस्कृतिक और सामाजिक विविधता की विविध किस्मों में रंग भर सकता है और दर्शा सकता है कि किस प्रकार इनमें बदलाव उत्पन्न हुए हैं समाजशास्त्र में बहुत से ऐतिहासिक उपागमों ने मान लिया है कि इतिहास, मानव प्रगति और समाज के उच्च स्तर के विकास के चरणों तक पहुँचने से संबद्ध है। आधुनिकीकरण के मार्क्सवादी सिद्धांत और उदारवादी सिद्धांत आमतौर पर इस उपागम को अपनाते हैं। लेकिन समाजशास्त्र के लिए ऐतिहासिक उपागमों को ऐसी पूर्वधारणा बनाने की जरूरत नहीं है और वे मानव अनुभव विविधता पर विचार कर सकते हैं और इस बात पर भी कि समाज को कुछ क्षेत्रों में ज्यादा और कुछ में कम तरक्की की है और आरोह की बजाय अवरोह की संभावना पर विचार करना चाहिए।

ऐसे ऐतिहासिक उपागम को अपनाना बेहतर होगा जो मानव इतिहास के लिए विशिष्ट दिशा पर विचार नहीं करता या जो सामाजिक संगठन के और अधिक आरोही रूपों को विकसित करना जरूरी नहीं समझता। इसके अलावा ऐतिहासिक बदलाव किसी उद्देश्य से नहीं होता या ऐसा नहीं है कि ऐसा होना नजर आए। बदलाव अचानक उत्पन्न होता है लेकिन यह असंख्य प्रभावों कुछ जाने और कुछ अनजाने और बहुत सी आकस्मिक सामाजिक परिस्थिति और बलों की अंतःक्रिया के साथ-साथ यकायक और संयोगवश मिलने वाले प्रभावों की देन है। कुछ ऐसे सामाजिक बल (बाजार विनिमय) सशक्त व्यक्ति और समूह है जो निश्चित रूप से विशिष्ट दिशाओं में काफी प्रमुख हैं और जो अपने असर और शक्ति को और अधिक विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन सामाजिक जगत के लोग भी ऐसे सामाजिक बलों को बदल सकते हैं। जैसे कुछ समकालीन विश्लेषणों का मानना है कि वैश्वीकरण, मानकीकरण और राष्ट्र राज्य का पतन जैसे बलों का काफी वर्चस्व है और जिनका कोई

निर्धारित परिणाम होता ही है। जब हम कहते हैं कि ये बल काफी सुदृढ़ हैं तो इनके साथ-साथ पारंपरिक सांस्कृतियों, बदलाव का प्रतिरोध, स्थानीय आधार और संप्रेषण और चर्चा (जैसा कि हैबरमैस और अन्यों द्वारा उजागर किया गया) जैसे कुछ अन्य पहलू भी हैं जिन पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए।

19वीं शताब्दी में रचनाकारों ने अक्सर दृष्टिकोण अपनाया कि मानव इतिहास, पहचान किए जाने योग्य बहुत से चरणों से गुजरा। समाज के सैद्धांतिक, अलौकिक, वैज्ञानिक चरण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, काम्ते (Comte) का समाजशास्त्र और प्रबोध (enlightenment) रचनाकारों का विश्लेषण यह मानने की ओर प्रवृत था कि मानव इतिहास, विकास के विविध चरणों से गुजरा हो और जहाँ पिछले चरणों की तुलना में प्रत्येक चरण का स्तर काफी उच्च था। ऐसे विचारकों ने मान लिया कि उनकी रचनाओं के दौरान आने वाला चरण पिछले चरणों की तुलना में अधिक उन्नत चरण था और इस दौरान मनुष्यों ने विश्व को पहले से बेहतर तरीके से समझा था और अब वे सामाजिक जगत को बेहतर बना सकते थे। यह सोच कि इतिहास के चरणों ने प्रगति को दर्शाया इसका पता पारंपरिक रूपों के संदर्भ में आदिम और परम्परागत जैसी संकल्पनाओं और सभ्यता और आधुनिक के संदर्भ में 19वीं शताब्दी के यूरोपियाई समाजों में नजर आता है।

मार्क्स और एंजेल्स और मार्क्सवादी धारा के बाद के रचनाकारों ने भी आमतौर पर ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाया और अपने विश्लेषण के मुख्य भाग के रूप में ऐतिहासिक विश्लेषण विकसित किया। मार्क्स के लिए, उत्पादन के तरीके प्रकृति में ऐतिहासिक थे और जहाँ प्रत्येक तरीके ने ऐतिहासिक विकास के विशिष्ट चरण को दर्शाया और जिनमें बदलाव लाने का बल था लेकिन स्वरूप में जो कि सीमित भी था। इसी वजह से बाजारों और शहरों का उदय सामंतवादी समाज में हुआ लेकिन ऐसे आकस्मिक सामाजिक बलों की ताकत को उत्पादन के तरीके में बदलाव लाने की जरूरत थी। जिसके परिणामस्वरूप धनी वर्गों और पूँजीवाद के बलों ने सामाजिक और आर्थिक संगठन के सामंतवादी स्वरूपों की सत्ता का विध्वंस, 19वीं शताब्दी में नये समाज के गठन से किया। मार्क्स के लिए उत्पादन के प्रत्येक तरीके की प्रकृति का अपना एक ऐतिहासिक महत्व था। इसी वजह से मार्क्सवादी विश्लेषण का विषयवस्तु और स्वरूप में अनिवार्य रूप से अपना एक ऐतिहासिक महत्व है। जहाँ यह सैद्धांतिक है वहीं मार्क्सवादी विश्लेषण की संकल्पनाएँ और प्रतिरूप एक साथ ऐतिहासिक और सैद्धांतिक हैं।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

विकास पर इस मार्क्सवादी नमूने की काफी आलोचना भी रही है। आइए इनमें से कुछ पर नजर डालें।

मार्क्स ने निर्धन वर्ग की तानाशाही पर आधारित कार्य योजना और इसके सफल कार्यान्वयन के बाद राज्य की विलुप्ति की भविष्यवाणी की है। हालांकि अनुभव दर्शाते हैं कि राज्य ने जब-जब दमनात्मक रुख अपनाया है तब इसे और अधिक ताकत मिली है।

इसके अलावा, यह सच है कि सुसंगठित राज्य तंत्र के बिना केंद्रीकृत नियोजन लागू नहीं किया जा सकता। इसलिए मार्क्स को राज्य आधारित विचार की उपेक्षा करते हुए यह ऐतिहासिक अनुभवों और केंद्रीकृत नियोजन को लागू करने अर्थात् दोनों दृष्टियों से कुल मिलाकर अंतविरोधात्मक है। मान लिया गया है कि निर्धन वर्ग की तानाशाही से वर्गरहित समाज का उदय होगा। हालांकि राज्य सत्ता की घेराबंदी के निर्धन वर्ग की बजाय राजनीतिक कुलीन सत्ता हासिल करेंगे। सत्ता का स्वामित्व सामाजिक वर्ग को परिभाषित करने का महत्त्वपूर्ण आयाम है। इसी वजह से यहाँ नये राजनीतिक वर्गों का उदय होगा जिनमें से कुछ गिने चुने सत्ताधारी होंगे जबकि बाकी के अधिकांश सत्तारहित ही होंगे।

मार्क्स ने इतिहास की दिशा-निर्धारण में वर्ग गठन वर्ग परिवर्तन और आर्थिक संरचना की भूमिका से संबद्ध विचार को सामान्य बना दिया है। मार्क्स ने सामाजिक सामूहिकता या समूह को अर्थव्यवस्था की दृष्टि से परिभाषित किया है, इस संदर्भ में वर्ग को क्रांति के माध्यम से बदलाव लाने के एकमात्र कारक के रूप में देखा गया है। हालांकि ऐसे सामूहिकता के दायरे में राष्ट्रीयता नृजातीयता (ethnicity) प्रजाति जेंडर, जाति, संपदा के महत्व का पूरी तरह अनदेखा कर दिया जाता है। सही मायने में मार्क्स ने विविध समाजों में ऐसी सामूहिकता की और ऐतिहासिक भूमिकाओं को नकारते हुए सभी सामाजिक संबंधों और द्वंद्वों को वर्ग संबंधों और द्वंद्वों की दृष्टि से परिभाषित किया है।

पूँजीवाद पर मार्क्सवादी विचार ने बदलते विश्व में नयी प्रौद्योगिकी के विकास और नियोक्त-कर्मचारी के नये संबंध को ध्यान में नहीं रखा। आधुनिकीकरण के सिद्धांत और समीक्षात्मक सिद्धांत में बहुत से पहलुओं पर ध्यान केंद्रित कर लिया है। जैसे कि प्रोटैस्टर नीतिशास्त्र में दर्शाया गया है मैक्सवेबर ने इसे उजागर किया कि पूँजीवाद के विकास की प्रक्रिया धार्मिक सोच के युक्तीकरण के पथ का अनुसरण भी कर सकती है।

चिंतन और कारवाई 7.2

मार्क्स के विकास के परिप्रेक्ष्य पर आलोचनात्मक लेख लिखिए।

विकास पर कार्ल मार्क्स के मूल विचार को मार्क्सवादी उपागम के बहुत से विचारकों से आगे बढ़ाया गया। निम्नलिखित अनुमान में हम नव मार्क्सवादी उपागम की झलक प्रस्तुत करेंगे।

7.6 नव-मार्क्सवादी उपागम : विश्व-व्यवस्था विश्लेषण

MAADHYAM IAS

ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय दृष्टि से मूल परिप्रेक्ष्यों में एक विश्व-व्यवस्था विश्लेषण आधारित परिप्रेक्ष्य है। जो उत्पादन के तरीकों के इर्द-गिर्द बना नव-मार्क्सवादी उपागम है। यह उपागम आर्थिक और भौतिक जगत के विश्लेषण विशेष रूप से पूँजीवाद से विकसित हुआ क्योंकि इसका उद्‌भव और विकास 1500 ई. यूरोप में हुआ था। इस विश्लेषण का सामान्य तौर पर तर्क है कि इस नयी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था ने पहले के राजनीतिक और आर्थिक साम्राज्यों और व्यवस्थाओं की शक्ति को तोड़ दिया और प्रभुत्वशाली विश्व व्यवस्था के प्रति अपने को विकसित किया। यूरोप में अपने उद्‌भव के कारण पिछले पाँच सौ वर्षों से नजर आने वाली विश्व व्यवस्था सीमा रहित है और विश्व भर में अपने व्यापक प्रसार के लिए आगे बढ़ी है। कुछ मार्क्सवादी उपागमों की तुलना में यहाँ विश्व व्यवस्था अपने प्रभावों में हमेशा आगे नहीं बढ़ती रही है यहाँ उत्पादन के बहुत से तरीकों के ईद-गिर्द घूमती है और अंतत: समाजवादी विश्व व्यवस्था से इसे बदला जा सकता है। विश्व व्यवस्था विश्लेषण को इमैन्युअल वालरस्टेन (1930) ने विकसित किया जो कोलम्बिया विश्वविद्यालय और मैकग्रिल विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रह चुके हैं और फिलहाल बिंगामटन में न्यूयार्क के राज्य विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। वालरस्टेन, 1974 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'द माड्रन वर्ल्ड-सिस्टम' के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। इस रचना में वह 1500 के आसपास शुरू आधुनिक व्यवस्था के मूलबिंदू का विश्लेषण करता है जहाँ से राजनीतिक और सैन्य स्वरूपों से आर्थिक प्रभावों और सत्ता के वर्चस्व की शुरूआत हुई। अंतिम खंडों में वालरस्टेन इस नयी व्यवस्था के विकास का पता यह दर्शाते हुए लगाते हैं कि किस प्रकार यह विश्व के ठोस परिधीय और अर्थ-परिधीय क्षेत्रों को सृजित कर रही है, जहाँ राजनीतिक संरचनाओं का संबंध आर्थिक बातों से है, वहाँ वालरस्टेन का तर्क है कि बहुत किस्म की राजनीतिक संरचनाएँ, पूँजीवादी विश्व पद्धति के अनुरूप है।

विश्व-व्यवस्था सिद्धांत विश्लेषण की इकाई के रूप में राष्ट्रीय अर्थनीति और राष्ट्र राज्य को अलग थलग करता है। मार्क्सवादी विचार आमतौर पर राष्ट्रीय सामाजिक संरचनाओं के दायरे में कार्य करता है और जहाँ पूँजीवादी और श्रमिक वर्ग राष्ट्रीय पैमाने पर उत्पादन और वितरण के संगठन में निहित हैं। विश्व-व्यवस्था सिद्धांत राष्ट्रीय स्तर की बजाय विश्व स्तर पर श्रम विभाजन, शोषण और असमानता पर विचार करता है। इसका अर्थ है कि पूँजीवाद न सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर संगठित है बल्कि यह संसाधनों, श्रम, उत्पादन और बाजार को विश्व पैमाने पर विकसित और उनका प्रयोग करता है। कनाडा के विकास को विश्व-व्यवस्था उपागम के दायरे में आसानी से व्यक्त किया जा सकता है। यूरोप की खाद्य आपूर्ति के लिए यूरोपीयाई विस्तार से अटलांटिक मत्स्य उद्योग का विस्तार हुआ। इसके बाद फर व्यापार के विकास से कनाडा, यूरोपीयाई उपभोग के लिए फरों की आपूर्ति कर सकता है। धनी वर्ग और श्रमिक वर्ग के उदय के साथ यूरोप में उद्योग के विकास और उपभोक्ता बाजारों से इनका संबंध जोड़ दिया गया। उत्तर अमेरिका के आरपार व्यापार का विकास और यूरोपीयाई विस्तार में ऐसी बहुत सी मूल अर्थनीतियों को नष्ट कर दिया जो पहले अस्तित्व में थी। यूरोप में कृषि और औद्योगिक बदलावों से संपत्तिहीन और निर्धन यूरोपीयाई लोगों को उत्तर अमेरिका में बसने के लिए बाहर कर दिया। यूरोपीयाई और उत्तर अमेरिकी पूँजीवाद की वृद्धि में सहायता के लिए वनोत्पाद, खदान और कृषि संबंधी उत्पादों को यूरोप भेजा जाने लगा। इन विकास कार्यों के फलस्वरूप जहाँ कुछ क्षेत्रों को फायदा पहुँचा वहीं अन्य क्षेत्र सुविधा वंचित हो गए। सामाजिक और वर्ग संरचनाओं का अंतर्राष्ट्रीय स्तर के इस श्रम विभाजन से और विश्व पैमाने पर उत्पादन और बाजारों के स्वरूपों से संबंध है।

विश्व-व्यवस्था विश्लेषण में तीन किस्म के क्षेत्रों का समावेश है। विश्व व्यवस्था के **ठोस क्षेत्रों** में यूरोप और उत्तर अमेरिका के धनी देशों का समावेश है जो बाकी के ज्यादातर विश्व पर अपना वर्चस्व कायम किए हुए हैं और उनका शोषण करते हैं। देश अपेक्षाकृत अधिक मुक्त श्रम बाजारों और अच्छा वेतन प्राप्त करने वाले कुशल श्रमिकों की ओर प्रवृत्त है। इसकी तुलना में परिधीय क्षेत्र निर्धन और शोषित है और सुदृढ़ (ठोस) देशों को अपना कच्चा माल भेजते हैं। परिधीय देशों में कामगारों के लिए दशाएँ काफी निम्नता की ओर प्रवृत्त हैं और इन देशों के कामगारों को जोर जबर्दस्ती से गुलामी में जकड़ दिया जाता है या भुखमरी की चुनौती उन पर हमेशा हावी रहती है। परिधीय देशों को पिछड़ी दशा में रखकर, सुदृढ़ देश इसका फायदा उठाते हैं।

अर्ध-परिधीय देश : सुदृढ़ और परिधीय देशों अर्थात् शोषित और समुपयोजन (exploity) दोनों के पहलुओं को जोड़ते हैं। इसके उदाहरणों में यूरोप के निर्धनतम भागों में से कुछ (पुर्तगाल या ग्रीक) या अर्जेंटाइना जैसे दक्षिण अमेरिकी देशों में से कुछ को शामिल किया जा सकता है। विभाजन का मूलमंत्र हालांकि देशों की संख्या से नहीं है बल्कि ऐसी स्थिति से है जिससे कोई क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय श्रम-विभाजन की सीमा में आता है। जैसे, सुदृढ़ देशों के परिधीय क्षेत्र (माटीटाइम या उत्तरी जबीमूंद के कुछ भाग) और मूल परिधीय देशों में सुदृढ़ क्षेत्रों का समावेश हो सकता है।

7.7 विश्व-व्यवस्था विश्लेषण के निहितार्थ

सामाजिक विश्लेषण के अनुसार विश्व-व्यवस्था विश्लेषण में कम से कम तीन उलझाव नजर आते हैं।

क) **विस्तार:** पूर्ववर्ती शासकों के पास विस्तार की सीमा सीमित थी और वे एक व्यापक क्षेत्र पर योग्यता से ही राजनीतिक शासन कर सकते थे। इसके विपरीत आज के समय में पूँजीवादी विश्व-प्रणाली के लिए कम सीमा दिखाई देती है। इसने पिछले पांच सौ सालों में विस्तार किया है और विश्व अर्थव्यवस्था के प्रभुत्व की समाप्ति का कोई लक्षण

नहीं दिखाई देता है। वालर्सटीन (Wallerstein) का तर्क था कि यह वर्तमान विश्व-प्रणाली का इसकी पूर्ववर्ती प्रणालियों के बीच का एक अंतर है- 1500 की अवधि के आसपास एक निर्णायक अंतराल था, जिसमें पूंजीवाद, प्रौद्योगिकी और विज्ञान ने मिलकर एक विस्तृत और वैश्विक प्रणाली का निर्माण किया है।

ख) **अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र (Scope):** सामाजिक संरचना का अंतर्राष्ट्रीय आधार होता है। सामाजिक संरचना के किसी भी विश्लेषण को इसके अंतर्राष्ट्रीय पहलुओं पर विचार करना चाहिए। अर्थात् श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन में समूह की विशेष स्थिति, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और समाज की स्थिति की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

ग) **विभेद और असमानता:** भविष्य में एकल और एकरूप (uniform) विश्व का तर्क देने वाले आधुनिकीकरण अथवा वैश्वीकरण के सिद्धांतों के विपरीत विश्व-प्रणाली विश्लेषण का उद्देश्य यह है कि संपत्ति और प्रगति की संकल्पना के विकास के साथ-साथ असमानता और पिछड़ेपन में निरंतर वृद्धि हुई है। यह विश्व-प्रणाली एक प्रकार की संस्कृति, राजनीति और यहां तक कि विभिन्न क्षेत्रों में समान उत्पादन के साधनों की अपेक्षा नहीं करती है। बल्कि, पूँजीवादी विश्व-प्रणाली विभिन्न प्रकार के राजनीतिक स्वरूपों (प्रजातंत्र, सर्वाधिकारवाद, राजतंत्र, सैनिक शासन) और उत्पादन के विभिन्न प्रकारों (दासता, बड़े राज्यों के अर्द्ध-सामंतशाही स्वरूपों और निर्बल किसान, बाजारोन्मुख कृषि) को समायोजित कर सकती है। पूँजीवाद की आर्थिक शक्ति, इसके प्रभाव को संपूर्ण विश्व में महसूस करा सकती है, इस प्रणाली से कुछ स्थानों में संपत्ति इकट्ठी की जा सकती है और दूसरों को संपत्ति से वंचित कर सकती है। इसके परिणामस्वरूप, इस प्रकार गरीबी और असमानता इस प्रणाली के अनिवार्य पहलू हैं। इससे तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है और संपूर्ण विश्व में शक्ति और संपत्ति के पुनर्वितरण का मार्ग प्रशस्त होता है।

घ) **परिवर्तन का अध्ययन:** विश्व-प्रणाली विश्लेषण उन परिवर्तनों के परीक्षण के लिए उपयोगी विधियाँ प्रदान करता है, जो परिवर्तन विश्वभर में हो चुके हैं और निरंतर हो रहे हैं। उदाहरण के लिए, गरीब देशों से धनी देशों की ओर बड़ी संख्या में लोगों का प्रवसन विश्व-प्रणाली में विकास के परिणामस्वरूप हो रहा है जिससे भेजने वाले देश के जीवन और आजीविका की पारंपरिक रीति-रिवाजों को नुकसान पहुँच रहा है और आगन्तुक देशों में श्रम की आपूर्ति की जा रही है। इसके साथ ही, यह उपागम उन अर्थों में अति-आर्थिकवादी हो सकती है जैसा कि मार्क्सवाद के विश्लेषण में थी। अर्थात् विश्व प्रणाली विश्लेषण संस्कृति पर अधिक ध्यान नहीं देती है और इसे एक स्वतंत्र पहलू नहीं मानती है। आगे, यूरोपीय और उत्तरी अमेरिका की पूंजीवादी ताकतों के प्रभुत्व की मान्यता एक प्रकार से जाति केंद्रित हो सकती हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अभ्यास 7.3

विश्व-प्रणाली सिद्धांत का सार क्या है? यह समकालिक समाजों में विकास की खोज करने में किस प्रकार महत्त्वपूर्ण है?

7.8 विवेचनात्मक सिद्धांत : फ्रैंकफर्ट विचारधारा

विवेचनात्मक सिद्धांत का अलग-अलग लेखकों के लिए अलग-अलग अर्थ है। समालोचना के रूप में समान्यत: इसे आधुनिकता और आधुनिक समाज के विकास और इसके साथ सहयोगी संस्थाओं की समीक्षा के रूप में माना जाता है। यह समाज शास्त्र के भीतर में किसी एक विचारधारा की समीक्षा भी हो सकती है अथवा समाजशास्त्र और समग्र रूप से समाज विज्ञान की समीक्षा भी हो सकती है। विवेचनात्मक सिद्धांत का बहुत बड़ा मार्ग कला और संस्कृति की विवेचना से जुड़ा रहा है, विशेष रूप से यह उपभोक्ता संस्कृति, विज्ञापन, जनसंचार और लोकप्रिय संस्कृति के अन्य रूपों की विवेचना से संबंधित रहा है। गिडन के स्वयं की

द्विविधा (Dilemanas of self) में दिए गए कुछ तर्क, जैसे-स्व-वाष्पन (evaporated-self) और वस्तुकृत (commodified) अनुभव विवेचनात्मक सिद्धांत के एकदम समान हैं। वास्तव में, यह संस्कृति-क्षेत्र ही है कि विवेचनात्मक सिद्धांत निरंतर प्रासंगिक और नया बना रहा है।

मार्क्सवाद विवेचनात्मक सिद्धांत का एक रूप है क्योंकि मार्क्सवाद पूंजीवाद और आधुनिकतावाद की विवेचना प्रदान करता है। अनेक कम्युनिस्ट दलों और स्थापित समाजवादी समाजों का मार्क्सवाद को सामान्यत: विवेचनात्मक सिद्धांत नहीं माना जाता है, बल्कि मार्क्सवाद सिद्धांत ही वह सिद्धांत है जो विद्यमान समाजों और संस्थाओं की कमियों को प्रकट करने का प्रयास करता है केलनर (1989: 3) के अनुसार :

विवेचनात्मक सिद्धांत आधुनिकता के भविष्य से गहराई से संबंधित है और इसने आधुनिकता के पथ (trajectory) का क्रमबद्ध और व्यापक सिद्धांत प्रस्तुत किया है और साथ ही यह आधुनिकता की विवेचनात्मक जांच-पड़ताल के साथ-साथ उसकी कुछ सीमाओं, समस्याओं और विध्वंसात्मक प्रभावों के प्रति भी चिंतित है और इसने इसके कुछ प्रगतिवादी तत्वों की रक्षा करने के लिए कुछ उपाय भी सुझाए हैं।

कलेनर की दृष्टि में, विवेचनात्मक सिद्धांत आमतौर पर आधुनिकता और प्रगति की विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध है और साथ ही साथ उन माध्यमों का उल्लेख करता है कि आधुनिकता की प्रधानता व्यक्तियों और समाज के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर सकती है।

विवेचनात्मक सिद्धांत आमतौर पर फ्रैंकफर्ट विचारधारा के नाम से परिचित सिद्धांत वादियों के समूह से निकटता से जुड़ा हुआ है। बेंजामिन, हौखेमर, अडोर्नो, फ्रौम, मारकस जैसे जर्मन मार्क्सवादी सिद्धांतवादियों और हाल ही में हैबरमस और औफ ने आधुनिक समाज के विवेचनात्मक सिद्धांत की स्थापना और विकास की पहचान की।

MAADHYAM IAS

अन्य में, हंगरी के मार्क्सवादी लुकास और समकालीन कुछ उत्तरी अमेरिका, जिनमें कलधंन और केल्लनर प्रमुख हैं, को विवेचनात्मक सिद्धांतवादी माना जाता है। इस भाग में मुख्य रूप से इस परम्परा का अध्ययन किया जाएगा।

बॉक्स 7.1: आधुनिकोत्तर बनाम विवेचनात्मक सिद्धांत

ध्यान दें कि विवेचनात्मक सिद्धांत आधुनिकोत्तर उपागमों से सामाजिक सिद्धांत तक भिन्न-भिन्न रहा है। बाद के परिप्रेक्ष्य के सिद्धांतवादियों का तर्क था कि आधुनिकता समाप्त हो चुकी है अथवा आधुनिकता को इसकी समग्रता में अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए। आधुनिकोत्तरवादी सामाजिक सिद्धांत और राजनीतिक व्यवहार को भी अस्वीकार कर सकते हैं, जबकि विवेचनात्मक सिद्धांत व्यापक रूप से सिद्धांत पर जोर देते हैं और कुछ का तर्क है कि प्रगति के लिए राजनीति का उपयोग किया जा सकता है। विवेचनात्मक सिद्धांतवादी आमतौर पर व्यापक और समग्र सामाजिक सिद्धांत और प्रगति की विचारधारा और खुशहाल विश्व की ओर प्रवृत्त थे चाहे वे इसे प्राप्त करने में उपाय सोचने में असमर्थ ही क्यों न थे। आधुनिकोत्तर उपागम व्यापक, वैश्विक सिद्धांत की अस्वीकृति से संभवतया अधिक संबद्ध थे।

क) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जब विवेचनात्मक सिद्धांत का उल्लेख सामाजिक सिद्धांत के संदर्भ में किया जाता है, तो इसे आमतौर पर "फ्रैंकफर्ट स्कूल से जोड़ा जाता है। इस स्कूल की स्थापना 1923 में जर्मनी के एक धनी खाद्यान्न व्यापारी द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से की गई थी और इसे जर्मनी

की फ्रैंकफर्ट विश्वविद्यालय से संबद्ध किया गया था। जर्मनी के विश्वविद्यालय एकदम संरक्षणवादी होते हैं लेकिन प्रथम विश्व युद्ध के बाद राजनीतिक विध्वंस से नई विचारधारा का विकास हुआ और यह विचारधारा विश्वविद्यालयों में बहुत प्रभावी रही। एक समय के लिए, अनेक मार्क्सवादी विचारधाराओं की सोच थी कि रूस की क्रांति के बाद जर्मनी समाजवादी देश बन जाएगा। जब यह नहीं हुआ, तो मार्क्सवादी के प्रति आकर्षित कुछ बुद्धिजीवियों ने तर्क दिया कि यूरोप में हुए बदलाव को ध्यान में रखते हुए मार्क्सवादी सिद्धांत के पुनः समीक्षा के लिए मार्क्स-उन्मुख शोध अनिवार्य है। विशेष रूप से, कुछ मार्क्सवादियों का मत था कि समाजवाद के लिए वस्तुपरक परिस्थितियाँ होने के बावजूद पूँजीवाद को दूर करने और समाजवाद का निर्माण करने के लिए कामगारों की विषयपरक चेतना उपयुक्त नहीं थी। विशेष रूप से, "क्रांतिकारी चेतना, संस्कृति और संगठन और समाजवाद की स्पष्ट विचारधारा का अभाव प्रदर्शित हो रहा था।" इसके परिणामस्वरूप मार्क्सवाद के विभिन्न पहलुओं पर फिर से विचार करना और "चेतना, विषय पर कर्ता, संस्कृति, विचारधारा और समाजवाद की संकल्पना पर ध्यान केंद्रित करना तीव्र राजीतिक बदलाव से संभव बनाने के लिए अनिवार्य हो गया था (केल्लनर 1989:12)।

इस संस्थान ने जर्मनी में अपना काम करना शुरू किया और 1933 तक नाजी के सत्ता में आने तक लगातार काम करता है।

इस संस्थान के अधिकतर सदस्य उस समय अमेरिका चले गए। मारकस जैसे विद्वान वहीं रुक गए जबकि अन्य लोग द्वितीय युद्ध के बाद वापस लौट आए। न्यूयार्क शहर में संस्थान की स्थापना की गई और इसे कोलंबिया यूनिवर्सिटी से संबद्ध कर दिया गया और यह "विवेचनात्मक सिद्धांत" संस्थान से जुड़ने तक वहीं रहा। द्वितीय विश्व के बाद, इस संस्थान की जर्मनी में फिर से स्थापना की गई और इसने जर्मनी में निरंतर अपना काम जारी रखा। हौरखेमर और अर्डोनो की मृत्यु के बाद, जरगन हैबरमस प्रमुख विवेचनात्मक सिद्धांतवादी के रूप में सामने आए और वे लम्बे समय तक इस पद पर आसीन रहे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

कुछ प्रमुख विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों को कार्यकाल इस प्रकार है :

- वाल्टर बेंजामिन (1892-1940)
- मैक्स हौरखेमर (1895-1973)
- थ्योडर अडोर्नो (1903-1969)
- इर्क फ्राम (1900-1980)
- हरबर्ट मरकस (1898-1979)
- जरगन हैबरमस (1929-)

आइए, अब हम फ्रैंकफर्ट स्कूल की विशेषताओं और इसके द्वारा मार्क्सवादी विचारधारा को विस्तार करने के बारे में पढ़ेंगे।

ख) भौतिकवाद और आदर्शवाद

इस प्रकार विवेचनात्मक सिद्धांत मुख्यतः यूरोपीय सामाजिक सिद्धांत है, जो मार्क्स और वेबर की जर्मन परंपरा और तानाशाही (फासीवाद) के अनुभवों के साथ-साथ आधुनिक पूंजीवाद के बदलते पहलुओं से भी प्रभावित थी। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थव्यवस्था को विश्लेषण के केंद्र में रखकर विवेचनात्मक सिद्धांत की शुरूआत हुई और इस प्रकार प्रारंभिक विवेचनात्मक सिद्धांत-भौतिकवादी थी और समाजवाद के प्रति प्रतिबद्ध थी। इस परिप्रेक्ष्य की एक महत्त्वपूर्ण-विशेषता यह थी कि इसने सभी प्रकार के सामाजिक जीवन को आर्थिक-प्रणाली

का एक प्रतिबिम्ब माना और सामाजिक सिद्धांत की भूमिका में उन तरीकों का पता लगाना था जिससे लोगों में बदलाव आया है और वे प्रभावित हुए हैं। इसके साथ ही, विवेचनात्मक सिद्धांत ने ''मध्यस्थता'' (mediation) की जटिल प्रक्रिया का वर्णन किया है जो चेतना और समाज, संस्कृति और अर्थव्यवस्था, राज्य एवं नागरिक को आपस में एक-दूसरे से जोड़ती है। (केलनर 199: 3, 4)।

इस प्रकार विवेचनात्मक सिद्धांत ने एक ऐसी उपागम विकसित किया जिसमें आर्थिक और भौतिक दोनों शामिल थे और जिसमें व्यक्ति और उनके सामाजिक मनोविज्ञान का विश्लेषण शामिल था। इसमें उन पहलुओं पर काम करने का प्रयास भी शामिल था, जिसे आज हम एजेंसी-संरचना मुद्दे कहते हैं। लेकिन न तो भौतिकता और न ही चेतनापरकता दूसरों को निर्धारण करने में प्रमुख थे। बल्कि, इन सिद्धांतवादियों ने संस्कृति, विधि, नैतिकता, फैशन, लोकमत, खेलकूद, जीवन-शैली और विलासिता पर अधिक ध्यान दिया (केल्लनर 1989 : 18), जिन्हें इससे पहले मार्क्सवादी विश्लेषण में शामिल नहीं किया गया था। कल्हौन का कहना था कि ''मार्क्स ने युवा हीगल के मानव की निरपेक्ष सृजनात्मकता को कल के उदाहरण के माध्यम से संकल्पनात्मक रूप देने के प्रयास का किस प्रकार समर्थन किया, लेकिन हेगल के विपरीत, उसने इसे श्रम के सामान्य विश्लेषण के रूप में अधिक विस्तारित किया'' (उपर्युक्त 441)। फ्रैंकफर्ट स्कूल के सिद्धांतवादियों ने एक बार फिर से इस चुनौती को स्वीकार किया और कला एवं कलात्मकता (aesthetics) सौंदर्यशास्त्र को अपने विश्लेषण को केन्द्र बिंदु बनाया।

ग) अति अनुशासनिक (Supradisciplinary)

विवेचनात्मक सिद्धांतवादी मार्क्सवाद के यंत्रवत भौतिकवाद या अत्याधिक निश्चयवादी होने पर इसके प्रति अधिक विवेचनात्मक हो जाते हैं। वे विशेष रूप से दार्शनिकता की विभिन्न धाराओं, विशेष रूप से प्रत्यक्षवाद और इससे संबद्ध वैज्ञानिक विधियों के प्रति विवेचनशील थे। वे समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों के बारे में भी विवेचनशील थे क्योंकि ये विषय अपर्याप्त रूप से विवेचनात्मक और अंशतः विश्लेषित थे। इस प्रकार उन्होंने उन सामाजिक विज्ञानों के लिए उच्च मानक स्थापित किए जिन्हें वे एक समय में अंतिम रूप देने में समर्थ नहीं थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इन सिद्धांतवादियों का प्रारंभिक सरोकार इस कारण को समझना था कि श्रमधारा वर्ग में वर्ग चेतना का विकास क्यों नहीं हो पाया, उनकी पहली परियोजना जर्मनी के सफेदपोश कामकाजी वर्ग का अनुभवजन्य अध्ययन, उनके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और राजनीतिक अभिवृत्ति के बारे में सूचना प्राप्त करना और इसे विभिन्न समाजविज्ञानों की सैद्धांतिक विचारधारा के साथ मिलाना था। (केलनर- 1989 : 19)।

इस अध्ययन का निष्कर्ष यह था कि ''जर्मनी के श्रमधारा वर्ग की वास्ताविक क्रांतिकारी संभाव्यता आमतौर पर आंकी गई क्षमता से कम थी। और यह कि जब कामगार सरकार पर नियंत्रण करने के फासीवादी प्रयास का विरोध करेंगे तो इसकी संभावना बहुत कम थी कि वे समाजवादी क्रांति के लिए आवश्यक बलिदान करेंगे। (उपर्युक्त : 20)। यद्यपि इस उपागम ने सुरुचिकर परिणाम दिए लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि इस प्रकार के अध्ययनों में इन विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों का उपागम कुछ परम्परागत समाज-विज्ञान के उपागमों से कितना अधिक भिन्न था।

घ) वस्तु-विनिमय

पूँजीवादी समाज की प्रमुख विशेषता के रूप में वस्तु और वस्तु उत्पादन से शुरू करते हुए उन्होंने तर्क दिया कि पूँजीवाद बाजार संबंध और मूल्य जीवन के अधिक से अधिक क्षेत्र में प्रवेश कर रहा था। और उन्हें प्रभावित कर रहा था। विनिमय एक ऐसा प्राथमिक साधन

बनता जा रहा था, जिसमें लोग पूँजीवाद बाजार समाज की भांति एक-दूसरे से संबंधित थे और लेनदेन की बातचीत करते थे। इसके परिणामस्वरूप, इसका कार्यान्वियन हुआ और मानव, संस्कृति, प्रकृति, आदि या वस्तु के रूप में परिवर्तन हुआ, जिसका मूल सार था- विनिमय मूल्य, और इसने पूंजीवादी समाज के भीतर संबंधों और कार्यकलापों पर आधिपत्य स्थापित कर दिया (उपर्युक्त : 53)।

अर्थात् व्यक्तियों में मानव-संबंधों की तुलना में विनिमय-संबंध ने अंतवैयक्तिक संबंधों को प्रभावित करना शुरू कर दिया। मार्क्स ने इस पर विचार, किया था, लेकिन इस विचारधारा को विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने और आगे बढ़ाया। उन्होंने बीसवीं शताब्दी में पूंजीवाद पर गौर किया और इसे अब तक विनिमय संबंधों से अछूते या अपेक्षाकृत अप्रभावित विभिन्न सामाजिक पहलुओं/क्षेत्रों तक फैलाया। उन्होंने प्रेम, मित्रता, और विनिमय के इस रूप में परिवार के सिकुड़ते रूप जैसे व्यक्तिगत जीवन के पहलुओं पर विचार किया। इस प्रकार की शक्तियों ने उपभोग को संगठित स्वरूप प्रदान किया, जिससे वृद्धिमान "दमनकारी, एकरूपता और पहचान" कायम की जा सके।

समाज में बढ़ती समानता और एकरूपता सरोकार का विषय बन गया जिसने तनाव और विरोधाभास को उभरने नहीं दिया और जनता के ध्यान और कार्रवाई को शांत कर दिया (कल्हन 2002), उन्होंने इस प्रकार की शक्तियों को संघर्षरत व्यक्तित्व और विशिष्टता के रूप में देखा जो समाज के सदस्यों के बीच समानता (sameness) का निर्माण कर रही थीं। पूंजीवाद के इस पहलू ने 1920 और 1930 के दशकों की तुलना में बहुत अधिक विकास किया जिससे उनकी विवेचना का यह भाग आज की अर्थव्यवस्था, जनसंचार और समाज के साथ महत्त्वपूर्ण ढंग से सामंजस्य स्थापित कर सके। उपभोग और जनसंचार-पूंजीवाद ने व्यापक रूप से अपनी पहुँच को उपभोक्ता समाज और जीवन के सभी पहलुओं तक स्थापित किया और समकालीन समाज की विवेचनात्मक उपागम इन विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों द्वारा विकसित विचारधारा के प्रयोग से लाभान्वित हो सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

स) प्रशासित समाज (Administered Society)

विवेचनात्मक सिद्धांत के राजनीतिक समाजशास्त्र की एक प्रमुख विशेषता उसकी प्रशासित समाज की संकल्पना है। वेबर का तर्क था कि तार्किकता की शक्तियाँ और तार्किकता पश्चिमी समाज में उत्तरोत्तर आधिपत्य स्थापित कर रही थीं। परंपरागत अथवा चमत्कारिक शक्तियों द्वारा सामाजिक संगठन पर आधिपत्य की तुलना में, वेबर विशेष कार्यों को करने के लिए उपायों का इस्तेमाल किस प्रकार किया जाए इसकी सावधानी से जांच-पड़ताल द्वारा गठन, लेखाकरण, सुविचारित निर्णय निर्माण, और मार्गदर्शित सामाजिक कार्रवाई ऐसे रूप थे, जो पश्चिमी समाज में अत्याधिक शक्तिशाली बन गए थे। ये शक्तियाँ अर्थशास्त्री, व्यवसाय और औपचारिक संगठनों में स्पष्ट थी लेकिन वेबर का तर्क था कि इन शक्तियों ने अपने प्रभाव का एहसास राजनीति, शिक्षा और यहाँ तक कि कला में भी महसूस कराया।

विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने वेबर के इन विचारों को नौकरशाही, औचित्य की स्थापना और प्रशासन से लेकर विनिमय और वस्तुकरण के मार्क्सवाद की विचारधारा में शामिल किया। जहाँ मार्क्स मुख्यत: आर्थिक क्षेत्र से सरोकार रखते थे, विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने अपने विश्लेषण का राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों तक विस्तार किया और विनिमय एवं प्रशासित समाज विचारधारा के साथ मिलाया। इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा दृष्टिकोण सामने आया जिसमें पूँजीवाद और इससे जुड़ा समाज एक "सर्वाधकारी-प्रणाली थी, जिसने स्व-संघटन से लेकर अंतर्वैयक्तिक संबंध और शिक्षा तक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया" ये सर्वाधिकारी प्रक्रियाएँ "व्यक्तित्व और विशेषता" के विनाश का कारण बनीं।" (केलनर 1989 : 54)।

आर्थिक विश्लेषण इसके रूपों में से एक था, जिसका तर्क था कि पूँजीवाद का रूपांतरण अनियंत्रित और अपेक्षाकृत मुक्त बाजार से राज्य पूँजीवाद के रूप में हुआ। जहाँ मार्क्स और कुछ पूर्ववर्ती अर्थशास्त्रियों ने इसके कुछ पहलुओं को पहले ही महसूस कर लिया था, लेकिन उन्होंने उस विधि को महसूस नहीं किया था, जिसका प्रयोग करते हुए राज्य आर्थिक क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकता था। फ्रैंकफर्ट स्कूल से जुड़े अर्थशास्त्रियों में से एक फ्रेडरिक पोलॉक ने राज्य पूँजीवाद का एक मॉडल विकसित किया जिसमें, ''राज्य मुद्रा और क्रेडिट के ऊपर अपना वर्चस्व कायम करता है और उत्पादन तथा कीमतों का नियमन करता है। इसके साथ ही, प्रबंध और स्वामित्व पृथक हो जाते हैं'' (उपर्युक्त 60 : 61)। इन विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका का अधिक आकलन किया, और आर्थिक प्रणाली के रूप में पूंजीवाद की शक्ति का कम मूल्यांकन किया। इस प्रकार के सिद्धांतों ने पूँजीवाद और इसी उत्पत्ति को समझने में हमारी सहायता की। इस आर्थिक क्षेत्र का एक सुदृढ़ राजनीतिक पहलू है और अर्थव्यवस्था के अनेक पहलुओं को प्रशासित किया गया।

छ) सर्वाधिकारी-समाज

विवेचनात्मक सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण भाग उनकी समग्रता और सर्वाधिकारी शक्ति की विवेचना से संबंधित है। वे हमेशा ही सर्वाधिकारवाद के किसी भी रूप के विरोधी थे, चाहे वह जर्मनी में तानाशाही (फासीवाद) का सर्वाधिकारी-समाज था अथवा सोवियत संघ में प्रशासित समाजवाद का सर्वाधिकारी रूप। जर्मनी में और सोवियत संघ में नाजी में पनपी प्रणाली के संदर्भ में उनके तर्क महत्त्वपूर्ण हैं, जिसमें ''जीवन के अधिक से अधिक पहलुओं को नियंत्रित'' करने की संरचना कायम की गई (केलनर 1989: 54) और इसमे अत्यधिक शक्ति प्राप्त की। यहाँ पर सर्वाधिकारी का अर्थ ऐसी प्रणाली से है, जो सामाजिक जीवन के अनेक अथवा सभी पहलुओं को शासित करने का प्रयास करता है।

विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों का उद्भव, उनकी विद्यमानता, और राजनीतिक तथा सामाजिक संगठनों के तानाशाही (फासीवाद) स्वरूप का उन पर प्रभाव पड़ा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि उन्होंने इस सर्वाधिकारी प्रणाली को विकसित किया। इस प्रणाली से उनका परिचित (intimate) ज्ञान और अमेरिका से निर्वासन (exile) के परिणामस्वरूप इसका बाद में प्रेक्षण, प्रत्येक ने सर्वाधिकार की प्रकृति से संबंधित उपयोगी अंतर्दृष्टि प्रदान की। विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने एकाधिकार अथवा राज्य पूँजीवाद के नये रूप में तानाशाही (फासीवाद) को देखा जिससे ''राज्य ने ऐसी गतिविधियों को अपने हाथ में ले लिया, इससे पहले जिनका संचालन बाजार अर्थव्यवस्था द्वारा किया जा रहा था और इस प्रकार यह सामाजिक-आर्थिक विकास का प्रारंभिक मध्यस्थ बन गया (उपर्युक्त : 1989 : 67)। उन्होंने राजनीतिक और आर्थिक अव्यवस्था के परिणामस्वरूप उत्पन्न प्रणाली, के रूप में देखा। यह एक ऐसी प्रणाली थी जिसमें पूंजीवाद का विकास कामकाजी वर्गों से उत्पन्न चुनौती का सामना करने और इसकी शासन करने की स्वयं की कमियों या असमर्थता से निपटने के लिए की गई थी। तब यह पूँजीवाद का एक नया रूप बना,'' एकाधिकारी पूँजीवाद और सर्वाधिकारी राज्य का एक नया संश्लेषण, जिसने विश्व पर आधिपत्य कायम करने और अपने विरोधियों तथा पूर्ववर्ती उदारवादी अर्थव्यवस्था और राजनीति की सभी निशानियों को समाप्त करने की चुनौती दी'' (उपर्युक्त 1989: 67)।

यद्यपि यह विश्लेषण आकर्षक था, लेकिन यह पूर्वानुमान असत्य सिद्ध हुआ और पूँजीवाद ने एक अलग स्वरूप धारण किया, जो शायद सर्वाधिकारी था, लेकिन इसका रूप भिन्न था। फिर भी, विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों का तानाशाही (फासीवाद) और सर्वाधिकारी के साथ अनुभव ने उनके बाद वाले विश्लेषण को आकार देने में उनकी सहायता की। विशेष रूप से उन्होंने राजनीतिक-आर्थिक प्रणाली द्वारा तार्किकता प्राप्त करने, उत्पादन के कुशल तरीकों को प्राप्त करने, का प्रयास किया लेकिन साथ ही इन विकल्पों और इन पर परिचर्चा को

कोई स्थान नहीं दिया। मारकस का अध्ययन बताता है कि उसने किस प्रकार सर्वाधिकार और प्रशासित समाज के इन विचारों की व्याख्या की तथा इन्हें विकसित किया और इन्हें उन समाजों पर लागू किया जिन्हें आमतौर पर अधिक प्रजातांत्रिक और उदारवादी माना जाता था।

इस चर्चा का एक अलग या अतिरिक्त पहलू भी है। वह पहलू है राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों की सापेक्षिक स्वायत्तता। मार्क्सवादी इस तर्क के समर्थक थे कि राज्य और राजनीतिक शक्तियाँ पूँजी के स्वामियों के हित में काम करती हैं। विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों के कुछ तर्कों ने इस बात की ओर इशारा करते हुए सवाल किया कि राजनीतिक क्षेत्र पर कभी-कभी आधिपत्य था और प्रशासितों, सर्वाधिकारी समाज के हितों ने अर्थव्यवस्था के कुछ पहलुओं पर आधिपत्य कायम किया था।

इस प्रकार की प्रणाली के विश्लेषण का दूसरा पहलू था-"परिवार और प्राधिकार के प्रति तानाशाही (फासीवाद) का सांस्कृतिक-बुनियाद का सामाजिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण" (उपर्युक्त : 66)। मार्क्सवादियों के लिए यह सामाजिक विश्लेषण की एक नई दिशा थी और रिच फ्रौम जैसे प्रमुख विवेचनात्मक सिद्धांतवादी ने फ्रूड्न और अन्य मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांतों को फ्रैंकफर्ट स्कूल के सामाजिक सिद्धांत में शामिल किया।

ज) व्यक्ति और मानव का स्वभाव

फ्रैंकफर्ट सिद्धांतवादियों के लिए मानव का स्वभाव उस ऐतिहासिक परिस्थिति से संबंधित था जिसमें उसका विकास होता है। मनुष्य सृजननशील होता है, लेकिन पूंजीवाद के भीतर उनकी सृजनात्मकता कुछेक परिस्थितियों से शासित (प्रभावित) होती है जो स्वाभाविक और अपरिवर्तनीय हाती है। विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने उस निरपेक्ष व्यक्ति सचेतना और पहचान मॉडल के साथ तर्क दिया जिसने बौद्धिकता के समय की विशेषताओं और उदारवादी विचारों ने व्यक्तियों की शक्ति निष्ठता और दूसरे व्यक्तियों के साथ उनके संबंधों को उचित स्थान दिया था। पहचान के अतिरिक्त, अपहचान (non-identity) व्यक्ति की अनेक प्रकार की सक्रियता का अर्थ था कि स्व-पहचान के विभिन्न रूप होते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति सृजनात्मकता का विकास कर सकता है और अपरिवर्तनशील वैयक्तिक पहचान से बहुत आगे बढ़ सकता है। यदि समाज व्यक्ति को विभिन्न प्रकार के विचारों और परिस्थितियों की खोज करने और उनकी विवेचना करने की अनुमति प्रदान करता है, तो ऐसा करने से वह व्यक्ति को स्वतंत्रता प्रदान करता है, लेकिन समाज की अधिक से अधिक समानता (sameness) और एक रूपता सभी व्यक्तियों पर लागू होती है और इस स्वतंत्रता को मूर्त रूप धारण करने से रोकती है।

कल्हन ने पाया कि विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने मानव की अनिवार्य विशेषताओं को सुख-शांति की प्राप्ति, दूसरों के प्रति सहानुभूति की जरूरत, और स्वाभाविक हमदर्दी के रूप में देखा है। निस्संदेह इनका विकास सामाजिक संगठन के अनेक विशिष्ट रूपों में हुआ था क्योंकि व्यक्ति उन ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुसार विशेषता ग्रहण करता है जिनसे वे अपने जीवन का विकास करते हैं। लेकिन वे इसे कार्यकरण के महत्त्वपूर्ण रूप से जोड़ते हैं। हौरखेमर (Horkheimer) का तर्क था कि "कार्यकरण का स्वरूप सभ्यता के लिए अंतर्निहित होता है", मानव प्रकृति का एक अंग है। समस्या यह है कि प्रशासित और सर्वाधिकारी समाज इससे संघर्ष करते हैं और इससे दूर रहना चाहते हैं तथा इसे एक विशेष दिशा में ले जाना चाहते हैं ऐरिक फ्रौम (Erich Fromm) का तर्क था कि अनिवार्यत: मनुष्य का स्वभाव ऐसा होता है जो "आधिपत्य के पूंजीवादी स्वरूप से दबा हुआ और विकृत रहता है"।

विवेचनात्मक सिद्धांत को दिए गए ऐरिक फ्रौम के योगदानों में व्यक्ति, परिवार, लैंगिक-दमन अर्थव्यवस्था, और व्यक्ति के सामाजिक संदर्भ का विश्लेषण शामिल हैं। उनके लेखन ने एक

MAADHYAM IAS

ऐसा मार्ग सुझाया जिसमें फ्रेयड और मार्क्स के कार्यों को एकीकृत किया जा सकता है। फ्रॉम का तर्क था कि मानव व्यवहार के लिए प्रेरक शक्तियों की कुछ बुनियादी सहज प्रवृत्ति होती है लेकिन ये प्रवृत्तियाँ सामाजिक वास्तविकता के लिए सक्रिय और निश्क्रिय दोनों रूपों से अनुकूलित: होती हैं। फ्रौम के लिए,''मनोविश्लेषण सामाजिक जीवन अर्थात् धर्म, रीति-रिवाज, राजनीति और शिक्षा के वस्तुत: अतार्किक व्यवहार प्रतिमान की छुपी हुई शक्तियों को खोजने का प्रयास हैं (केलनर 1989 : 37)। इस प्रकार से, उन्होंने सामाजिक मनोवैज्ञानिक उपागमों को मार्क्स के भौतिकवाद के साथ मिलाया अर्थात् मनुष्य की नैसर्गिक, मनोवैज्ञानिक शक्तियों का जीवन की आर्थिक और भौतिक शक्तियों के साथ संश्लेषण किया।

फ्रौम के लिए पूँजीवाद समाज में विद्यमान एकल परिवार (nuclear family) इनके बीच के संबंधों को जानने की एक कुंजी है। अर्थात् व्यक्ति का विकास परिवार के भीतर होता है और परिवार बच्चे के ऊपर सामाजिक संरचना की छाप बनाता है। इस तरह से ''समाज अपनी वर्ग संरचना को बार-बार बनाए रखता है और व्यक्तियों पर अपनी विचारधाराओं और रीति-रिवाजों को लागू करता है (उपर्युक्त)। व्यक्ति विभिन्न समाजों में पलते-बढ़ते हुए अलग-अलग ढंग से विकास करते हैं या बड़े होते हैं। आधुनिकता का विशेष प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति में प्रधानता और आतंरिक संघर्ष के विभिन्न रूपों का निर्माण करता है, इन परिस्थितियों में आत्मसमर्पण और शक्तिहीनता जैसे सामाजिक व्यवहार के रूप व्यक्ति के अभिन्न अंग बन जाते हैं।

मार्क्सवादी सिद्धांत के विपरीत विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने कला और संस्कृति के विशेलषण को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया और सांस्कृतिक विकास के उन पक्षों पर ध्यान दिया जो उत्पत्ति से शुद्ध आर्थिक थे। इसकी अपेक्षा, बौद्धिक द्वंदात्मकता का संस्कृति की विवेचना के रूप में प्रयोग किया गया। केलनर (1989 : 121) ने यह तर्क दिया कि : संस्कृति जो कभी सौंदर्य और सच्चाई का आश्रय होती थी, तार्किकता, मानकीकरण, और एकरूपता की प्रवृत्ति की शिकार होती जा रही थी, जिसे उन्होंने दस्तावेजी तार्किकता के विजय के रूप में देखा और जो जीवन के अविकसित पहलुओं में फैल रही थी और संरचित हो रही थी। इस प्रकार जहां संस्कृति ने एक समय में व्यैक्तिकता का निर्माण किया था, अब यह समरूपता को बढ़ावा दे रही थी और ''पूर्णत: प्रशासित समान का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गई थी अर्थात् यह ''व्यक्ति की समाप्ति'' के लिए काम कर रही थी।

अधिकांश समय तक विवेचनात्मक सिद्धांतवादियों ने व्यापक और लोकप्रिय संस्कृति की विवेचना का विकास किया। उदाहरण के लिए, एडार्नो (Adorno) ने वस्तुकरण, तार्किकता, वस्तुपूजा, और संगीत सामग्री (musical materials) को मूर्त रूप देने के लिए लोकप्रिय संगीत उत्पादों की आलोचना की (उपर्युक्त 124)। विशेष रूप से, एडार्नो (Adorno) ने जैज़ (Jazz) उसके मानकीकृत और वाणिज्यीकृत रूप के लिए यह तर्क देते हुए आक्रमण किया कि ''ऐसा प्रतीत होता है कि उसने स्वत: प्रवृत्ति और तात्कालिक भाषण की गणना पहले ही कर दी थी और अनुमति की शृंखला उसी प्रकार सीमित कर ली गई थी जिस प्रकार यह कपड़ों और फैशन में सीमित होती है'' (उपर्युक्त 1989 : 126)। जहाँ एक ओर एडोर्नो की विवेचना में कुछ सच्चाई थी, लेकिन वह इस एक-पक्षीय उपागम का प्रयोग करते हुए नई खोजों और नये किस्म की व्याख्या करने में समर्थ नहीं थे। एडोर्नो ने ''उच्च संस्कृति'' के परंपरागत रूपों जैसे—गैलरी-कला, अथवा लोकप्रिय संस्कृति के रूपों की तुलना में अधिक प्रामाणिक और सृजनात्मकता के रूप में जर्मनी के संगीतकारों के संगीत पर ध्यान देने का प्रयास किया। मेरे विचार में एडोर्नो ने संस्कृति के संबंध में एक ऐसे बहुत ही विशिष्ट उपागम को अपनाया जिसने आबादी के बड़े भाग को संस्कृति तक पहुँचने और उसे समझने से वंचित किया।

इस संस्थान से जुड़े व्यक्तियों में एक व्यक्ति वाल्टर बेंजामिन एडीर्नो से सहमत नहीं थे। उनका तर्क था कि उच्च संस्कृति और लोकप्रिय संस्कृति के बीच ऐसा कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं था। बेंजामिन नकल (copy) में अभिरुचि रखते थे जो कलात्मक कल्पना (image) का यांत्रिक पुनरुत्पादन था और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक-काल में अपेक्षाकृत नया विकास कार्य था, जहाँ एक ओर बेंजामिन ने कला और परिवेश (aura) के मूल कार्य की प्रामाणिकता के बारे में प्रश्न पूछने के रूप में नकल की एक माध्यम बनाया, वहीं पर उन्होंने यह तर्क भी दिया कि "विश्व इतिहास में पहली बार यांत्रिक पुनरुत्पादन, कला कार्य को कर्मकांड पर आश्रित-निर्भरता के रूप में नहीं मानता है। इससे भी वृहत सार पर पुनरुत्पादन या प्रतिकृति कला कार्य प्रतिकृतिकरण के लिए अभिकल्पित कला कार्य बन जाता है (उपर्युक्त : 124)।

बेंजामिन ने इन्हें इस नए विकास की प्रगतिवादी विशेषता के रूप में माना जिसमें इसका नया स्वरूप अधिक से अधिक लोगों के लिए अधिक से अधिक सुगम बनता जा रहा था, इसे अधिकाधिक राजनीतिक रूप दिया जा रहा था और संभवतया ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहा था जिसके द्वारा जनता के सामने अनेक संकल्पनाएँ (images) प्रस्तुत कर राजनीतिक चेतना को फैलाया जा रहा था। यह उस फिल्म का एक विशेष केस था जिसमें बेंजामिन, सिमेल (Simmel) की याद दिलाते प्रतीत होते हैं।

> **अभ्यास 7.3**
>
> विकास के संबंध में मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य का मूल्यांकन करने में विवेचनात्मक सिद्धांत के महत्त्वपूर्ण योगदान की व्याख्या कीजिए।

7.9 सारांश

इस इकाई में विकास के संबंध में मार्क्स की मूल विचारधारा का अध्ययन किया गया है। मार्क्स ने सामाजिक प्रगति की विभिन्न अवस्थाओं अर्थात् जनजातीय, एशियाई, प्राचीन, सामंती और पूँजीवादी रूपों में विकास की व्याख्या करने का प्रयास किया है। उन्होंने अस्तित्व की भौतिक अवस्थाओं में संघर्ष (द्वंद) की मौजुदगी को निहित माना है और इसे विकास के प्रमुख कारक के रूप में देखा है। इस संघर्ष को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने वर्ग संघर्ष के प्रमुख साधन के रूप में सामाजिक वर्ग की एजेंसी की पहचानने की। इस इकाई में हमने कार्ल मार्क्स द्वारा निर्धारित विकास के इन सभी पहलुओं की व्याख्या की है। मार्क्सवादियों की कार्रवाई और विचार-योजना और उनके विचारों की योजना की सीमा का वर्णन इस इकाई में किया गया है। हमने निर्भरता सिद्धांत और मार्क्स के बाद मार्क्सवाद पर विवेचनात्मक सिद्धांत के विशेष संदर्भ में नव-मार्क्सवादी उपागमों की भी चर्चा की है।

MAADHYAM IAS

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bracten, Jane 1991, Habermen's Critical Theory of Society. State University of New York Press : Albany.

Farganis, James 1996, Reading is Social Theory : The Classic Tradition to Post Modernism. McGraw-Hill : New York.

Kellner Douglas 1989, Critical Theory, Marxism and Modernity. Polity Press : Oxford.

Kellner Douglas 1995, Media Culture : Cultural Studies, Indentity and Politics between the Modern and the Postmodern. Rou hedge : London and New York.

इकाई 8

विकास पर गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 खादी और ग्रामोद्योग

8.3 शिक्षा

8.4 आर्थिक प्रगति और वास्तविक प्रगति

8.5 स्वदेशी

8.6 वैकल्पिक नज़रिया

8.7 सारांश

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विकास की गाँधीवादी संकल्पना को स्पष्ट करने के योग्य होंगे;
- विकास की प्रक्रिया में देसी/घरेलू प्रौद्योगिकी के महत्व को व्यक्त करने के योग्य होंगे; और
- गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य से भौतिक प्रगति और सार्थक (अर्थपूर्ण) विकास के बीच के अंतर को स्पष्ट करने के योग्य बन सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

8.1 प्रस्तावना

विकास पर गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य दो पहलुओं से विशिष्ट है। यह (i) भौतिक खुशहाली की तुलना में आत्म-विकास को प्राथमिकता देता है; और (ii) आधुनिक मशीनरी, प्रौद्योगिकी, मिलों की तुलना में बुनियादी स्तर पर काम करने वालों और ग्रामीण और ग्रामोद्योगों के विकास को प्राथमिकता देता है। गाँधी जी ने समूचे देश की विस्तृत यात्रा की और इस दौरान उन्होंने बैल गाड़ियों से ले कर ट्रक जैसे परिवहन के विविध साधनों का भरसक प्रयोग किया। वह पद यात्रा के लिए भी काफी प्रसिद्ध हैं।

ऐसी यात्राओं के दौरान हजारों लोग उन्हें सुनने या सिर्फ उनकी एक झलक पाने के लिए इकट्ठे होते थे। उनके अधिकांश प्रयास दलितों, गरीबों और असहायों को सामाजिक और आर्थिक रूप से उन्नत बनाने पर लक्षित थे।

इस इकाई में हम आरंभ में सामान्य नजरिए से मशीनरी पर और विशिष्ट नज़रिए से खादी और ग्रामोद्योग पर गाँधी के विचारों को चर्चा की शुरूआत करेंगे। इसके बाद हम शिक्षा की संकल्पना की ओर अग्रसर होंगे और समझेंगे कि सार्थक शिक्षा में क्या होना चाहिए। इससे भौतिक तरक्की और विकास का पथ हमें नज़र आएगा। गाँधी जी ने भौतिक तरक्की और वास्तविक तरक्की के बीच अंतर स्पष्ट किया। उनके अनुसार 'वास्तविक तरक्की' स्वदेशी शब्द में निहित है। यूं भी कह सकते हैं कि शिक्षा और आर्थिक उन्नति, विकास के मुख्य मुद्दे हैं। अंत में हम वैकल्पिक नज़रिए पर ध्यान देंगे जो विकास के गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य पर सवालिया निशान लगाता है।

8.2 खादी और ग्रामोद्योग

गाँधी जी का सुदृढ़ विश्वास था कि **स्वदेशी** के सार में प्रत्येक भारतीय के तन को ढकने के पर्याप्त कपड़े को बनाना शामिल है। लोगों को सिर्फ स्वदेशी वस्त्र के प्रयोग के लिए स्वयं को इस दिशा में वचनबद्ध करने की जरूरत थी। उन्होंने आगे कहा कि तन ढकने के लिए खादी कपड़े के प्रयोग के अधिक प्रभाव हैं। उनके अपने शब्दों में खादी को अपने सभी निहितार्थों के साथ अपनाया जाना चाहिए। इसका अर्थ है, समग्र स्वदेशी मानसिकता अर्थात् एक भारत में जीवन की सभी आवश्यकताओं का पता लगाने का पक्का इरादा और वह भी ग्रामीणों की मेहनत और उनकी बुद्धिमता के माध्यम से। इसका अर्थ मौजूदा प्रक्रिया का उलट है। अर्थात् भारत के आधा दर्जन शहरों और ग्रेट ब्रिटेन के शोषण और भारत के 7,00,000 ग्रामों का शोषण और इनकी तबाही की बजाय, भारत के ग्राम मुख्यतया आत्म-संतुष्ट होंगे और न केवल भारत के शहरों और यहां तक कि बाहरी जगह की स्वैच्छिकता से सेवा करेंगे क्योंकि यह दोनों पक्षों के लिए फायदेमंद है। (गाँधी 1968 : 289)

खादी बनाने का कौशल किसी भी व्यक्ति-विशेष की अंगुलियों में छिपा है और जो उसे सशक्त बनाता है और जिससे उसे अपनी पहचान पर गर्व होता है। गाँधी जी के लिए खादी का अर्थ भारतीयों को एक सूत्र में पिरौना था और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता और समानता की प्राप्ति कराने का एक साधन था। इसके अलावा खादी ने उत्पादन के विकेंद्रीकरण और 'जीवन की अनिवार्यताओं' के वितरण को चिहिनत किया।

बॉक्स 8.1: चरखा

''यदि हम भारत के भूख से बिलखते लोगों के लिए दुख महसूस करते हैं तो हमें अपने घरों में चरखा अवश्य लाना चाहिए। हमें इससे इस कार्य में अवश्य ही निपुण होना है और चरखे की अनिवार्यता को महसूस कराने के लिए हमें पवित्र रिवाज के रूप में रोज़ाना चरखा कातना चाहिए। यदि आपने चरखे के रहस्य को समझ लिया है तो फिर आप बाहर कोई और काम नहीं ढूँढेंगे। यदि बहुत से लोग आपकी बात नहीं मानते तो चरखा कातने, धुनाई या बुनाई के लिए आपके पास और अधिक खाली समय होगा।'' (गाँधी 1968 : 336)

MAADHYAM IAS
'wake to achieve your dream'

चरखा, एक तरह निर्धन और उत्पीड़ितों को आर्थिक रूप से ऊँचा उठाने का एक साधन था तो दूसरी तरफ इसके प्रयोग के कुछ नैतिक और आध्यात्मिक आधार भी थे। देश के शहर जो ग्रामों के बलबूते पर तरक्की पर थे अब उन्हें ग्रामों को काता हुआ कपड़ा खरीद कर ग्रामीणों की क्षतिपूर्ति करने का अवसर मिला था। ग्रामों और शहरों में लोगों के बीच आर्थिक और भावात्मक बंधन बाँधने में ऐसी पहल लंबे समय तक कारगर रही। चरखा ग्राम विकास का केंद्र बिंदु बन गया था। ग्रामों में जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में मलेरिया-रोधी अभियान, साफ-सफाई में सुधार और ग्रामों में वाद-विवादों का निपटारा और ऐसे बहुत से अन्य प्रयास किसी न किसी तरीके से चरखे के इर्द-गिर्द घूमते थे। इससे अल्प रोजगारशुदा और बेरोजगार लोगों को जीवन-निर्वाह का वैकल्पिक साधन भी प्राप्त हुआ। गाँधी के लिए आम लोगों द्वारा चरखे को अपनाना, उद्योगवाद और भौतिकवाद के विरुद्ध एक अभियान का सूचक था। (नंदा 1958)

इससे भी अधिक, खादी के प्रयोग ने ग्रामीणों की मेहनत और बुद्धिमता के माध्यम से जीवन की अनिवार्यताओं की प्राप्ति के व्यवहार के लिए जन की आस्था और वचनबद्धता को प्रतिबिंबित किया। इससे लोगों को आत्म-संतुष्ट बनाने और उनमें आत्मविश्वास जागृत करके और उन्हें शहरियों के शोषण को नकारने में उन्हें सक्षम बनाकर इससे ग्रामों में लोगों को सशक्त किया

गया। खादी के प्रयोग ने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं के निर्माण और वितरण की प्रक्रिया में अपना प्रभाव दिखाया। गाँधी जी ने कांग्रेसियों को सख्ती से खादी को उन्नत करने के प्रति प्रेरित किया।

गाँधी जी के अनुसार अन्य ग्रामोद्योग, खादी से अलग हैं क्योंकि इन उद्योगों में बड़ी संख्या में स्वैच्छिक श्रम शामिल नहीं है। ये उद्योग ''खादी के उपज'' के रूप में कायम रह सकते हैं लेकिन खादी के बिना इनका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। हालांकि, यहाँ हम कह सकते हैं कि गाँधी जी इस बात से सहमत नहीं थे कि ग्रामोद्योग के परिचालन अर्थात् हाथ की पिसाई, हाथ से कुटाई, साबुन निर्माण, कागज़ निर्माण, चर्मशोधन, तेल-निकालना और इस किस्म के अन्य उद्योगों के बिना ग्राम अर्थव्यवस्था पूर्ण नहीं होगी।

इस विचार का मूल ग्रामों को आत्म-संतुष्ट बनाने में निहित है। उन्होंने इस बात को हमेशा माना कि भारत को बेहतर बनाने में मशीनरी का निरंतर प्रयोग हमेशा बना रहेगा। उन्होंने गौर किया कि व्यवसाय के रूप में हाथ से बुनाई बंगाल और जिन जगहों पर कपड़े की मिल नहीं थी, वहां काफी तेजी से विकसित हुआ। इसके विपरित कामगारों विशेष रूप से महिला कामगारों की दशा मुंबई और जिन शहरों में मिलों की स्थापना थी, काफी शोचनीय थी। निष्कर्ष के रूप में हाथ से बनी वस्तुओं को बढ़ावा देने के लिए मशीन-निर्मित वस्तुओं के बहिष्कार से देश की सामाजिक और आर्थिक दशा में नयीं जान फूंक देगी। इसके आगे उन्होंने कहा कि चूंकि निर्मित और चल रही मिलों को बंद करना आसान नहीं था इसलिए इनकी स्थापना के समय इस पर रोक लगाना या इसका विरोध करना उपयुक्त होगा। ग्रामीणों की योग्यता पर वे पूरी तरह निश्चित थे जब उन्होंने तर्क दिया कि विश्व की कोई भी मशीनरी का ग्रामीण लोगों के काम करने वाले हाथ/पैरों से कोई मेल नहीं है और उन्होंने कहा कि निस्संदेह लकड़ी में बने साधारण यंत्र जो उन्होंने अपने निजी इस्तेमाल के लिए बनाए हैं, दुनिया में इनका कहीं भी कोई मुकाबला नहीं है। गाँधी जी को पूरी तरह पता था कि कृषि को क्रांतिकारी बदलावों की कोई जरूरत नहीं है। भारतीय खेतिहर को हथकरघे की बजाय चरखे की पेशकश की जरूरत थी क्योंकि हर घर में चरखे को पहुँचाया जा सकता था न कि हथकरघे को। चरखा कातने की बहाली से भारत की आर्थिक समस्याएं हल हो सकेगी।

MAADHYAM IAS

अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ जिसका मुख्यालय माँगनवाड़ी में है, वे ग्राम जिन्होंने ऐसे उद्योगों को बढ़ावा दिया जिन्हें गाँव से बाहर की किसी भी किस्म की मदद की आवश्यकता नहीं थी और जिन्हें थोड़ी सी पूँजी से ही चलाया जा सकता था। आशा थी कि ग्रामों में ऐसे उद्योगों से रोज़गार उत्पन्न होगा और ग्रामों में क्रय शक्ति विकसित होगी। सौभाग्यवश, संघ ने ग्रामीण कामगारों के प्रशिक्षण की जिम्मेवारी अपने ऊपर ली। संघ ने अपनी निजी, **ग्रामोद्योग पत्रिका** का प्रकाशन किया। (नंदा 1958)

चिंतन और कार्रवाई 8.1

गाँधी की विकास योजना में चरखे का क्या महत्व है?

8.3 शिक्षा

गाँधी जी का ठोस विश्वास था कि शरीर और मस्तिष्क के विकास में बुनियादी शिक्षा महत्वपूर्ण साधन है। इससे अक्षरों का ज्ञान और प्राथमिक शिक्षा के बुनियादी कारक जैसे पढ़ना, लिखना और गणित के ज्ञान के रूप में शिक्षा की संकल्पना और इसके कार्य की सामान्य समझ पर तीक्ष्ण वैषम्य उभर आया। गाँधी जी ने कहा कि हमें अपनी सभी भाषाओं में सुधार लाने की जरूरत है। भारत को देश के लिए सार्वभौमिक भाषा के रूप में हिंदी को अपनाना चाहिए जहाँ फारसी या नागरी में इसे लिखने का विकल्प भी हो। इसके अलावा, महत्वपूर्ण मानी जाने वाली अंग्रेजी पुस्तकों का भारत की विविध भाषाओं में अनुवाद करने की जरूरत है।

बॉक्स 8.2: धार्मिक शिक्षा पर गाँधी

मैं जब धार्मिक शिक्षा की बात सोचता हूँ तो मेरा सिर घूम जाता है। हमारे धार्मिक अध्यापक आडंबरी और स्वार्थी हैं। उनसे अंत: क्रिया करने की जरूरत है। मुल्ला दस्तूर (Dastur) और बाह्मण के हाथों में कुंजी है लेकिन यदि उनकी सोच समृद्ध नहीं है तो अंग्रेजी शिक्षा से हमने जो ऊर्जा प्राप्त की है उसे धार्मिक शिक्षा को अर्पित करना पड़ेगा। यह काम ज्यादा मुश्किल नहीं है। (गाँधी 1968 : 155)

गाँधी जी को पक्का पता था कि अंग्रेजी शिक्षा पर अत्यधिक जोर, राष्ट्र को गुलाम बना देगा। वे इस बारे में निश्चित थे कि जिन्होंने भी किसी विदेशी भाषा से शिक्षा की प्राप्ति की है, वे आम लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते क्योंकि लोग, ऐसे व्यक्तियों में अपनापन नहीं देख पाते। दरअसल, आम लोगों की बजाय अंग्रेजी छाप उन पर अधिक असर छोड़ती है। आम राय में विदेशी बोली में शिक्षित व्यक्ति, आम लोगों की आकांक्षाओं को समझने के योग्य नहीं है और इसी वजह से उनकी तरफ से बोल नहीं सकते। दूसरे तरफ मूल भाषा में शिक्षा से समृद्धि की प्राप्ति होती है। गाँधी जी ने इस हद तक भी कहा कि ग्रामीण स्वच्छता और ऐसी अन्य बहुत सी समस्याएं बहुत पहले ही सुलझ जाती और ग्राम पंचायत, स्व-शासन की अपेक्षाओं के अनुकूल ही होती, हालांकि उन्होंने इस बात को तो स्वीकारा कि अंग्रेजी भाषा के बिना काम चलाना वास्तव में संभव नहीं था लेकिन इसके साथ उन्होंने यह भी कहा कि अंग्रेजी पढ़े लोगों को मातृ भाषा के माध्यम से अपने बच्चों को नैतिकता का पाठ पढ़ाने की जरूरत है। जो स्वयं को सिर्फ विदेशी भाषाओं में ही शिक्षा तक सीमित रखते हैं, उन्हें तनाव हो जाता है और अक्सर वे पश्चिम की नकल मारने के प्रति वचनबद्ध हो जाते हैं। इसका शरीर और मस्तिष्क दोनों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। आदर्शतया, स्कूल घर का विस्तार बिंदु होना चाहिए जिसका अर्थ है कि बच्चों को ये फर्क महसूस न हो कि वे घर में हैं या स्कूल में। वे वास्तव में घर और स्कूल में सामाजिक परिवेश और मूल्य पद्धति की दृष्टि में निरंतरता की बात कर रहे थे। गाँधी जी के लिए, शिक्षा का अर्थ मरणोत्तर आध्यात्मिक ज्ञान या आध्यात्मिक मुक्ति से नहीं था। सार में, ज्ञान में उन सभी बातों का समावेश है जो मानवता की सेवा और उदारता के लिए अत्यावश्यक हैं और जिसका अर्थ दासता से मुक्ति के बाद आधिपत्य की ओर अग्रसर होना और ऐसे ज्ञान जो मनुष्य स्व-निर्मित जरूरतों की उपज है। शिक्षा को, इसलिए इस दिशा की ओर मोड़ना जरूरी है। गाँधी के अनुसार, स्कूल जाने और ऐसे स्कूलों में प्रदत्त शिक्षा की प्राप्ति पर आधारित हमारी प्राचीन व्यवस्था पर्याप्त थी, क्योंकि चरित्र निर्माण के लिए जितना महत्व होना चाहिए, उतना उसे दिया गया था। गाँधी जी के लिए, चरित्र निर्माण किसी शैक्षिक पद्धति की बुनियाद थी।

सार्थक शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य, नव जगत व्यवस्था की रचना के लिए बच्चों में सामर्थ्य जनित करना था। गाँधी जी ने महसूस किया कि सामाजिक दृष्टि से उपयोगी श्रम में शामिल होकर इसकी प्राप्ति की जा सकती थी अर्थात् मानवता के कल्याण के लिए मेहनत करना। यह विचार, उनकी नयी-तालीम का आधार बना जिससे इस तरह सोच समझ कर बनाया गया था कि जो शरीर, मस्तिष्क और आत्मा के सौहार्दपूर्ण विकास को अपनाएं। इस प्रक्रिया ने शिक्षा के माध्यम के रूप में शिल्प और उद्योग को भी अपने आंचल में समेट लिया। शिक्षा पर उनके विचार का मूलबिंदु शिक्षण कार्यक्रम के केंद्रबिंदु में शिल्पकला सीखने के मिशन पर टिका हुआ था, जिससे कताई, बुनाई, चमड़े का काम, मिट्टी के बर्तन बनाना, धातु का काम, टोकरी बनाना, पुस्तकों पर जिल्द चढ़ाना और ऐसी अन्य गतिविधियाँ जिनमें अक्सर निम्न जाति के लोग या अछूत संबंद्ध थे, अब उच्च जाति वाले विद्यार्थियों द्वारा भी ऐसे काम को सीखा जा रहा था और साक्षरता और ज्ञान अर्जन जो कि उच्च जाति के लोगों के विशेषाधिकार थे, अब अछूतों को भी इन्हें हासिल करने का अवसर प्राप्त था। वे चाहते थे कि स्कूलों को ऐसी भावना उनके अंदर से उत्पन्न हो तथा वे सभी बच्चों को शिक्षा दें

MAADHYAM IAS

इसके अलावा वित्तीय स्वतंत्रता अपने साथ राजनीतिकों और राजनीतिक दलों के दखल से भी उन्हें मुक्त कर देगी।

गाँधी जी के लिए प्रौढ़ शिक्षा का मुद्दा बेहद महत्व रखता था। प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से उन्होंने प्रौढ़ शिक्षार्थियों के दिमाग के कपाट खोलने और मौखिक भाषा से विदेशी शासन की बुराइयों के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने के लिए देश भर में ऐसे विचार कायम करने की बात सोची। इस बात को मुख्यतया महसूस किया गया कि बहुत से ग्रामीण विदेशी शासन की बुराइयों के प्रति और इसे उखाड़ फेंकने के साधनों के प्रति अनभिज्ञ थे। गाँधी जी ने मौखिक भाषा और साहित्यिक शिक्षा से तालमेल को जोड़ने का प्रयास किया।

8.4 आर्थिक प्रगति और वास्तविक प्रगति

म्यूइर (Muir) कालेज इक्नामिक्स सोसाइटी, इलाहाबाद में 22 दिसंबर 1918 को अपने एक भाषण में गाँधी जी ने सच्चे मन से इस प्रश्न को संबोधित किया कि "क्या आर्थिक प्रगति, वास्तविक प्रगति से टकराती है?" आर्थिक प्रगति का मुख्यतया अर्थ भौतिक वृद्धि और उन्नति से है और अक्सर बिना किसी उच्चतम सीमा के।

भौतिक वृद्धि के पक्ष में आमतौर पर इस बात पर तर्क दिया जाता है कि लोगों के नैतिक कल्याण पर सोचने या बात करने से पहले लोगों की दैनिक जरूरतों पर ध्यान देना जरूरी है। यह गलत है कि नैतिक प्रगति भौतिक प्रगति के संग चलती है, इस बात पर कोई शंका नहीं है कि जीने के लिए रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतों की आवश्यकता है लेकिन इसके लिए अर्थव्यवस्था या इसके नियमों की तरफ देखने की जरूरत नहीं है।

बॉक्स 8.3: भौतिक प्रगति पर गाँधी

मैंने यदि इस बात पर विश्वास नहीं किया होता कि हमने आधुनिक भौतिकवाद पागलपन को अपना लक्ष्य बना लिया है तो मैंने इस बात पर इतना जोर नहीं दिया होता जितना अब मैंने दिया है और क्या ऐसा लक्ष्य हमें विकास के पथ पर नीचे की ओर धकेल रहा है। इसी वजह से प्राचीन विचार धन संपत्ति को विकसित करने वाली गतिविधियों को सीमित करना था। इससे सभी भौतिक लक्ष्यों का अंत नहीं होता। हमारे बीच ऐसे पहले की भाँति बहुत से लोग हैं जो धन कमाने को अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। लेकिन हमने सदैव इस बात को पहचाना कि यह अपने आदर्श से गिरने जैसा है। यह जानना एक सुखद अहसास है कि हमारे बीच सबसे धनी लोग इस बात को मानते हैं कि यदि वे निर्धन होते तो उनके लिए यह बेहतर होता। आप ईश्वर और कुबेर को सबसे ऊँचे आर्थिक सत्य के रूप में नहीं देख सकते। हमें किसी एक को चुनना होगा। पश्चिमी राष्ट्र भौतिकवाद जैसे दानवों के पैरों तले कराह रहे हैं। आज वे अपनी तरक्की को पाऊंड, शिलिंग और पैन्स में मापते हैं। अमेरिकी दौलत आज एक मानक है। दूसरे राष्ट्र उससे जलन करते हैं। मैंने अपने बहुत से देशवासियों को कहते सुना है कि हम अमेरिकी संपत्ति की प्राप्ति चाहते हैं लेकिन इसकी विधियों को अनदेखा करते हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि ऐसी कोई कोशिश की गई होती तो इससे अवश्य ही निराशा ही मिलेगी। हम एक ही समय में समझदार, लचीले और गुस्सैल नहीं हो सकते। मैं चाहूंगा कि हमारे नेतागण विश्व में हमें नैतिक रूप से सर्वोपरि बनना सिखाएं"। (तेंदुलकर 1982 : 196)

उनका दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक समानता के लिए काम करने का अर्थ पूँजी और श्रम के बीच के द्वंद को मिटाना है। प्रचालन की दृष्टि से इसका अर्थ धनी और निर्धन के बीच के अंतराल को भरना है। गांधी जी न्यासी प्रथा के सिद्धांत के हिमायती थे।

MAADHYAM IAS

ग्रामों में व्याप्त बेरोज़गारी और अल्परोजगारी, भू पर अत्यधिक दबाव और अनुपूरक उद्योगों के अभाव के कारण थी। उन्होंने महसूस किया कि ग्रामोद्योगों के पतन से हरिजनों के गले में पड़ा दरिद्रता रूपी रस्सी का फंदा और अधिक कस गया। छूआछूत की समाप्ति और आर्थिक सुधार इसलिए एक दूसरे से कस कर बंधे हुए थे। इससे बचाव के लिए स्वदेशी की सख्त जरूरत थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि किसी उपयोगी वस्तु को देश में बनाना पर्याप्त नहीं हैं बल्कि महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसी वस्तु गाँव में बनाई गई है। उन्होंने स्पष्ट किया कि ग्रामों में निर्मित कुछ वस्तुओं की कीमत शहरों या नगरों में निर्मित उस वस्तु की तुलना में शायद अधिक हो लेकिन फिर भी इनकी खरीदारी होनी चाहिए क्योंकि इन वस्तुओं की खरीद पर अदा धन ऐसे निर्धनों या घोर जरूरतमंदों में मेहनताना या मुनाफे के रूप में बाँट दिया जाता है। (नंदा 1958)

चिंतन और अभ्यास 8.2

गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य से, भौतिक प्रगति और वास्तविक प्रगति में क्या अंतर है? विकास पर लक्षित गाँधीवादी दृष्टिकोण सही मायने में ऐसे निर्धनों में से भी निर्धनतम लोगों पर निदेशित थी जिनके लिए दिन में दो वक्त की रोटी जुटाना अनिश्चित था। गाँधी जी ने अपने दौरे के दौरान एक गाँव में कहा कि "गरीबों के लिए अपनी जेबों को खाली कीजिए।" यह उनका एक पंक्ति का व्याख्यान था। उत्तरजीविका के लिए मूल आवश्यकताओं से ऊपर की वस्तुओं पर खर्च धन को बर्बादी कहा जायेगा। वैकल्पिक रूप से इसका प्रयोग गरीबों को भोजन देने के लिए किया जा सकता था।

बॉक्स 8.4: संपत्ति-त्याग पर गाँधी

धनियों के पास ऐसी बेकार की वस्तुओं का भंडार है जिनकी उन्हें जरूरत नहीं हैं और इसी वजह से जिनकी ओर वे ध्यान नहीं देते और इनकी बर्बादी हो जाती है जबकि करोड़ों लोग ऐसे हैं जो जीवन-निर्वाह की जरूरतों के अभाव में भूखे मर रहे हैं। यदि धनी अपने धन का केवल एक ही भाग ऐसे जरूरतमंद को दे दें तो किसी को भी किसी किस्म की चाह नहीं होगी और सभी संतोषपूर्ण जीवन जी सकेंगे। लेकिन यथार्थ में जहाँ निर्धन गरीबी से रो रहे हैं, वहीं अमीर अपनी संपत्ति से संतुष्ट नहीं हैं। गरीब आदमी, करोड़पत्ति बनने के लिए और करोड़पति, अरबपति बनने के लिए उत्सुक है, अमीर को सभी जगह संतुष्टि की भावना कायम करने के लिए अपनी संपत्ति को अधिकाधिक बढ़ाना नहीं चाहिए बल्कि इसमें से कुछ का त्याग करना चाहिए। यदि वे अपनी संपत्ति को निर्धारित सीमा तक ही बढ़ाते हैं तो भूख से पीड़ित को आसानी से भोजन दिया जा सकेगा और वह भी अमीर के साथ संतुष्टि का पाठ सीख जायेगा।" (गाँधी 1968 : 191)

8.5 स्वदेशी

विकास पर गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य, स्वदेशी की संकल्पना या घरेलू अर्थव्यवस्था पर टिका हुआ है। प्रचालन की दृष्टि से स्वदेश का अर्थ लोगों के लिए विशेष रूप से ग्रामीणों के लिए स्व-रोज़गार, आत्म-निर्भरता और स्व-शासन कायम करनी है। ग्रामीण परिषदों के हाथों में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता से गांव से बाहर के बाजारों के प्रति ग्रामीणों की संवेदनशीलता तेजी से कम होगी और इससे ग्रामीण ठोस आर्थिक आधार विकसित करने के योग्य होंगे और स्थानीय वस्तुओं और सेवाओं को प्राथमिकता देंगे। तब, ग्रामीण समुदाय, सहयोगशील व्यक्ति-विशेषों के साथ, परिवार के विस्तार बिंदु के रूप में नज़र आयेगा जो एक-दूसरे पर अपनी पकड़ कायम करने की बजाय या एक-दूसरे से होड़ करने की बजाय, आपसी भाईचारे के सूत्र में बंध जायेंगे।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 8.5: गाँधी जी के सपनों का गाँव

जवाहरलाल नेहरू को लिखे अपने एक पत्र में गाँधी जी ने कहा कि, ''मेरे सपनों का गाँव अभी भी मेरे मस्तिष्क में है– मेरे आदर्श गाँव में सभी बुद्धिजीवी होंगे, वे पशुओं की तरह धूल-मिट्टी या निरर्थक जीवन नहीं जीयेंगे। स्त्री और पुरूष आजाद होंगे और विश्व में किसी से भी बचने के लिए अपनों का हाथ पकड़ने के योग्य होंगे। गाँव में प्लेग, हैजा या चेचक जैसी कोई महामारी नहीं होगी, कोई भी निरर्थक नहीं होगा और कोई भी भोग-विलास तक सीमित नहीं होगा। प्रत्येक को अपने हिस्से के शारीरिक श्रम से अपना योगदान देना ही होगा।'' (नेहरू-गाँधी 1968 : 99)

स्वदेशी का सिद्धांत देसी वस्तुओं और उत्पादों के प्रयोग में निहित है। गाँधी जीवन के विविध क्षेत्रों में स्वदेशी की स्पष्ट छवि को व्यक्त करते हैं। जो कोई भी स्वदेशी का अनुसरण करता है, स्वयं को पैतृक धर्म तक सीमित रखता/ती है अर्थात् तत्काल धार्मिक परिवेश का प्रयोग। इसी तरह, राजनीति के क्षेत्र में स्वदेशी का अर्थ देसी/घरेलू संस्थाओं का फायदा उठाना है; अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में स्वदेशी का अर्थ केवल घरेलू तकनीक से बनी वस्तुओं के प्रयोग से है। अब जब गाँधी जी घरेलू तरीके से उगाई और घरेलू शिल्प से बनी वस्तुओं के प्रयोग पर जोर देते हैं तो उनके कहने का अर्थ यह बिल्कुल नहीं है कि इन वस्तुओं में दोष और कमियों पर ध्यान न दिया जायें या इन्हें आगे ऐसे ही विकसित होने दें, बजाय उन्होंने दोष और कमियों की जड़ का पता लगाने पर जोर दिया।

उन्होंने महसूस किया कि लोगों की ज्यादातर गरीबी को दूर किया जा सकता है, यदि स्वदेशी की भावना को ''आर्थिक और औद्योगिक जीवन'' में कढ़ाई से अपनाया जायें। उन्होंने इस भूल को स्वीकारा कि यदि वाणिज्य की एक भी वस्तु विदेश से न मंगाई जाती तो आज भारत में दूध और घी की नदियाँ बह रही होती। उन्होंने स्पष्ट किया कि यह मानना भ्रम होगा कि स्वदेशी का कर्त्तव्य चरखे से शुरू और चरखे से ही खत्म हो जाता है। दरअसल, स्वदेशी जीवन का दर्शन शास्त्र है जिसमें दूसरों की सेवा की भावना के प्रति समपर्ण का भाव शामिल हैं। स्वदेशी आधारित समुदाय, असीमित आर्थिक वृद्धि के लिए लालायित नहीं होगा जो आत्म-विकास को सीमित करने वाला कारक बन जाता है। गाँधी जी ने कहा कि अनावश्यक चाहतों की सृजना आत्म-वृद्धि में बाधा डालती है। इसके अलावा, अभूतपूर्व आर्थिक वृद्धि की होड़, प्रतिस्पर्धा और संघर्ष को जन्म देती है जो कि विनाशकारी हैं। दूसरी तरफ, स्वदेशी, स्वयं, अपने आसपास के लोगों और प्रकृति से शांति कायम करने का पथ है। तब यह एक ऐसा धार्मिक विषय है जिसे लोगों को शारीरिक बेचैनी/बेआरामी से छुटकारा मिलेगा। स्वदेशी के प्रति वचनबद्ध व्यक्ति ऐसी वस्तु की ज्यादा चिंता नहीं करता जो उसे उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि इसका निर्माण देश में नहीं होता। व्यक्ति ऐसी बात या ऐसी बहुत सी बातों के बिना भी काम करना सीखता है जिन्हें वह अनावश्यक समझता है।

बॉक्स 8.6: स्वदेशी कौन है?

''स्वदेशी का समर्थक, अपने परिवेश का सजगता से अध्ययन करेगा और स्थानीय विनिर्माताओं को तरजीह दे कर, चाहे अन्य स्थानों पर ऐसी निर्मित वस्तुओं की तुलना में उनका माल घटिया ही हों या मँहगा, तब भी यथासंभव उन्हें महत्व देगा। वह उनके दोषों का निवारण करने का प्रयास करेगा लेकिन इनके दोषों के कारण, वह विदेशी वस्तुओं के पक्ष का समर्थन करने के लिए इनका त्याग नहीं करेगा।'' (गाँधी 1968 : 215)

8.6 वैकल्पिक नज़रिया

लक्ष्यों के रूप में विकास और प्रगति, समाधान के रूप में ऐसे बटन वाले आदर्श जगत पर

निर्भर हैं जहाँ धीरे-धीरे प्रभावी और जटिल कार्यों को लीवर को दबा कर या बटन को दबा कर पूरा किया जाता है। गाँधी जी का तर्क है कि हालाँकि, सुकून देने वाली प्रौद्योगिकियाँ, बेआरामी और तबाही पैदा करने में भी सक्षम हैं। उन्होंने इस ओर इशारा किया कि जिंदगीयों को बचाने के लिए क्या अच्छा है, इससे तुरंत ऐसे निर्माण/उत्पादन को बंद करना होगा जिससे जीवन का अंत हो जाता है। एम्बुलैंस और रेलगाड़ियों के निर्माण की अनुमति देने वाले यांत्रिक सिंद्धात, सीमा पर होने वाली मुठभेड़ों में हजारों जानों को मारने वाली बंदूकों को बनाने का आधार भी हैं। वकीलों के मामले में, उदाहरणार्थ, द्वंद निपटान इतना दर्दरहित और विवेकपूर्ण है जिसने वकीलों को झगड़ों को कम करने की बजाय और अधिक बढ़ाने के प्रति प्रेरित किया (गाँधी 1938 : 59)। इसी तरह, क्षतिपूर्ति करने में चिकित्सक काफी अच्छे बन गए कि लोग अपने दर्द से जूझने के प्रति लापरवाह हो गए। जैसा कि गाँधी जी कहते हैं "अब मैं भला-चंगा हो गया हूँ, अब मैं दुबारा ज्यादा खाना खाऊँगा और फिर से डाक्टर की दवा लूँगा" (गाँधी 1938 : 63)। दोनों उदाहरणों में आधुनिक सभ्यता पहले प्रतिस्पर्धात्मक, निष्ठुर और पृथक विषय पर ध्यान केंद्रित कर लेती है और इसके बाद ऐसी विषयवस्तु के उपचार की पद्धति की रूपरेखा तैयार करती है। यहाँ, आधुनिक सभ्यता की निकटदृष्टिता स्पष्ट नज़र आती है। तब कोई विशिष्ट कार्य, न्यायसंगत नज़र आता है, जैसे कोई भाप के इंजनों से काफी विशाल जगह पर हल चलाता है और ढेर दौलत इकट्ठी कर सकता है" (वही 35), विस्तृत संदर्भ में शायद ऐसा न हो। बड़े पैमाने पर मशीनों द्वारा खेतीबाड़ी से "अधिक" उत्पादन हो सकता है लेकिन शायद इससे फसल विविधता की क्षति भी हो सकती है, स्थानीय बाज़ारों में माल का ढेर लग सकता है, कामगारों को हटाया जा सकता है, प्रदूषण उत्पन्न हो सकता है और शायद यह बदलाव चिरस्थायी न हो, सिर्फ अत्यंत सीमित अंशकालिक संदर्भ में यह वैज्ञानिक और यहाँ तक कि इष्टतम नजर आयेगा।

गाँधी जी ने विश्व को अपने घटक-भागों तक सीमित करने में जिसे वे औपनिवेशिक प्रयास मानते थे, का खंडन किया, जब वे शिकायत करते हैं कि "वे समग्र विश्व को अपनी वस्तुओं की बिक्री के लिए बड़े बाजार के रूप में तबदील करना चाहते हैं (वही 41) उनके लिए इसका अर्थ विश्व की सबसे महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और वैयक्तिक तुष्टि को लूट लेना है और विश्व को वस्तु के रूप में जकड़ लेना है। इस नजरिए के विरुद्ध, गाँधी जी, आध्यात्मिक और बौद्धिक परंपरा में निहित 'वास्तविक' सभ्यता के प्रतिरूप की पेशकश करते हैं (वही : 69-71)। गाँधी जी आधुनिक सभ्यता की इमारत को मात्र नष्ट करने की हिमायत नहीं करते बल्कि जिस तरह हम सोचते हैं, हमारी उस मानसिकता में बदलाव लाने के लिए इसके वैचारिक मत का विरोध करते हैं।

निसंस्देह, गाँधी जी की समीक्षा, विकास के प्रहरियों की पर्याप्त अक्सर निरर्थक प्रतिक्रियाओं से अछूती नहीं थी। जवाबी कार्रवाई आमतौर पर और 'अधिक' उत्पादन और पारंपरिक से संबद्ध अज्ञानता और अराजकता पर गाँधी जी की रूपावली की तुलनात्मक विफलताओं पर लक्षित थी। ये तर्क-वितर्क, दूसरों के मूल्यांकन पर आधुनिक सभ्यता की निकटदृष्टिता और संभ्रांति है। गाँधी जी के लिए, ऐसे प्रवचनों की एक चुनौती, लोगों को विकास, प्रगति और सभ्यता के दायरे में रह कर विचार करने को, लोगों को समझाने की इसकी योग्यता थी (गाँधी 1938 : 35)। इसने उन लोगों में ऐसे किस्म के अभिविन्यास को प्रेरित किया जहाँ कोई भी विकास के प्रहरियों से उच्च नहीं है और बाकी सभी को प्रौद्योगिकी के अंदरूनी मानकों द्वारा जाँचा जाता है। बहुतों का मानना है कि गाँव अज्ञानता और हिंसा का गढ़ है। इस पर गाँधी का जवाब बड़ा ही सरल है: आधुनिक सभ्यता की भर्त्सना का अर्थ ऐसी सभी वस्तुओं का समर्थन करना नहीं है जो आधुनिक सभ्यता नहीं हैं — जरूरी नहीं है कि दुश्मन के दुश्मन वे हमारे मित्र हों। बजाय इसके गाँधी जी ने, गाँव में अज्ञानता, निर्धनता, कटुता से बचाव के विचार का समर्थन किया लेकिन उन्होंने ऐसा आधुनिक सभ्यता के साधनों से ऐसा करने की बात नहीं कहीं (वहीं 71) जब समीक्षक इस बात को समझ सकते कि

गाँधी जी का हिंद स्वराज दृष्टिकोण, बर्बरता का स्थान पर आधारित नहीं था और उन्होंने यह भी सोचा कि इनसे आदिमवाद को बढ़ावा मिला और जिन्हें वे 'यथार्थवादी' विकल्प मानते थे, उसकी बजाय आधुनिक सभ्यता इन समस्याओं का बेहतर समाधान था। एक सीमा तक, दूसरे विचारक गाँधी जी के साथ सहमत तो हुए क्योंकि उनका विचार था कि उन्होंने एक उपयोगी सामरिक साधन को पा लिया था जो उन्हें गाँधी जी के विचारों से उबार सकता था। यहाँ आलोचना का वह बिंदु मूलभूत रूप से नजर नहीं आता क्योंकि जिस व्यवस्था की यह आलोचना करता है, यह उसी में इसके निष्कर्षों को शामिल करने का प्रयास करता है। बजाय, गाँधी जी की समीक्षा और आधुनिक सभ्यता के प्रहरियों के बीच गतिरोध का असल स्रोत उनके प्रवचनों की असमानुपातता थी। गाँधी जी की नजर में नेहरू राजनीतिक मित्र, एक करीबी दोस्त और सबसे श्रेष्ठ मित्र है (चंद्रा 1975)।

हालाँकि विकास और प्रौद्योगिकी के मुद्दों पर उनमें कभी कोई आपसी सामंजस्य नहीं हो पाया। गाँधी जी इसे, आपस में विचारों की बड़ी असमानता के रूप में व्यक्त करते हैं (वही)। इसके बदले, नेहरू ने गाँधी जी की समीक्षा को ''अस्पष्ट सामग्री'' के रूप में लिया और आधुनिक सभ्यता के सिद्धांतों को दोहराया। उनको लगा कि यह शायद सही न हो लेकिन यदि हम अधिक लोगों के लिए अच्छे घरों की व्यवस्था कर सकते हैं तो हम ऐसा 'अवश्य' करना चाहिए। नेहरू ने सिद्धांत के अभ्यास के लिए जरूरत के रूप में तकरीबन व्यभिचारपूर्ण (orgiastic) तात्कालिकता की विशिष्टि माँग का प्रसार किया ''कांग्रेस को ऐसे मुद्दों के तर्कवितर्कों में स्वयं को गुम नहीं कर देना चाहिए। जिससे लोगों के मन में उलझन पैदा होती हैं। जिससे वे वर्तमान समय में काम करने के योग्य नहीं रहते (वही)।

8.7 सारांश

हम समझ सकते हैं कि विकास पर गाँधीवादी परिप्रेक्ष्य इस नजरिए से साकल्यवादी है, क्योंकि यहाँ एक ही समय में सामाजिक आर्थिक और आध्यात्मिक वृद्धि के इर्दगिर्द घूमता है। विकास के संदर्भ में उनकी सर्वाधिक प्रभावशाली रचनाओं और व्याख्यानों में से कुछ में जो मुख्य विषयवस्तुओं का पता चलता है, वे हैं: (i) चरखे का प्रयोग और खादी का महत्व, और (ii) सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए स्थानीय स्वशासन और आत्म-निर्भरता।

यहाँ जिस तथ्य पर ध्यान देना अधिक जरूरी है वह है कि यह भौतिक प्रगति और वृद्धि पर जोर नहीं देता। यह नियंत्रण के संदर्भ में विकेंद्रीकरण के माध्यम से 'आत्म विकास' और आत्म-निर्भरता के पक्ष में तर्क देता है। वह निश्चित थे कि विकास की प्रक्रिया में ग्रामीणों को सशक्त करने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना, अत्यंत आलोचनात्मक कारक हैं। दरअसल, अर्थपूर्ण (सार्थक) विकास वह है जहाँ अन्य बातों के साथ स्वदेशी के सिद्धांतों का सही ढंग से पालन किया जाये।

8.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गाँधी, एम.के. 1938, *हिंद स्वराज ऑर इंडियन होम रूल*। नवजीवन ट्रस्ट: अहमदाबाद।

गाँधी, एम.के. 1968; द *स्लैक्टिड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी खंड III*, नवजीवन ट्रस्ट: अहमदाबाद

नंदा, बी.आर. 1958, *महात्मा गाँधी: जीवनी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस: दिल्ली।

MAADHYAM IAS

खंड III

विकास की समालोचना

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 9

अल्पविकास का आश्रयता सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 आश्रयता सिद्धांत की शुरूआत
9.3 आश्रयता सिद्धांत का विस्तार: गंडर फ्रैंक और वालरस्टेन
9.4 आश्रयता सिद्धांत की अनिवार्य प्रतिज्ञप्तियाँ
9.5 आश्रयता सिद्धांत की समीक्षा
9.6 आश्रयता सिद्धांत की प्रासंगिकता
9.7 सारांश
9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई में आप निम्नलिखित का आलोचानत्मक विश्लेषण और मूल्यांकन करेंगे:

- आश्रयता सिद्धांतों का योगदान;
- अधिक निर्धन राष्ट्रों के स्पष्टोच्चारण के रूप में आश्रयता सिद्धांत; और
- आश्रयता सिद्धांत की प्रासंगिकता और समीक्षा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

9.1 प्रस्तावना

खंड II की इकाईयों ने हमें विकास पर आधारित विविध परिप्रेक्ष्यों से अवगत कराया जैसे कि आधुनिकीकरण सिद्धांत, उदारवादी सिद्धांत और विकास पर मार्क्सवादी एवं गांधीवादी परिप्रेक्ष्य । आइए अब ऐसे सिद्धांत की ओर रुख करें जिनकी उत्पत्ति विकास के वृद्धि माडलों पर एक प्रतिक्रिया के रूप में की गई। मौजूदा इकाई आश्रयता सिद्धांत से संबंधित है जिसे पश्चिमी उन्मुख विकास मंडलों की समीक्षा के रूप में विकसित किया गया। आश्रयता सिद्धांत जो कि तृतीय विश्व और इसके साथ-साथ प्रथम विश्व के बहुत से बुद्धिजीवियों द्वारा विकसित विचारें का पुंज है, इनके अनुसार धनी राष्ट्रों ने अपनी हैसियत को कायम रखने के लिए अधिक निर्धन राष्ट्रों का सहारा लिया। आश्रयता सिद्धांत तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य से समृद्ध राष्ट्रों की समीक्षा है। सिद्धांत के बीच में एक बहुत ही सूक्ष्म अंतर हैं जो इसे समीक्षा का रूप देते हैं। आश्रयता सिद्धांत की हम तीन लड़ियों की प्रस्तुति करेंगे, केंद्र एवं परिधिय प्रतिज्ञप्ति, रॉल प्रेबिश द्वारा और आन्द्रे गंडर फ्रैंक के विचार और इमैन्युअल वालरस्टेन का विश्व व्यवस्था का सिद्धांत हम ऐसे निहितार्थों के लिए भी आश्रयता सिद्धांतों की जांच करेंगे जो कि तीसरी दुनिया के देशों की अर्थव्यवस्था से जुड़े हुए हैं। इसके अलावा हम यह भी देखेंगे कि क्या उत्तर के समृद्ध राष्ट्रों और दक्षिण के निर्धन राष्ट्रों के बीच की आर्थिक असमानता को प्रस्तुत करने में ऐसे सिद्धांतों की कोई प्रासंगिकता है भी या नहीं।

9.2 आश्रयता सिद्धांत की शुरूआत

आश्रयता सिद्धांत अनिवार्यता विकास के नव-उदारवादी परिप्रेक्ष्य की प्रतिक्रिया के रूप में विकसित होता है जिसने विकास और वृद्धि को बराबर का महत्त्व दिया। (उदारवादी परिप्रेक्ष्य और वृद्धि एवं प्रगति के विचार पर अधिक विस्तृत चर्चा के लिए इकाई 1 और इकाई 6 देखें)

विकास के वृद्धि मॉडल का अनुसरण करने वाले राष्ट्र अमीर राष्ट्र थे और सभी निर्धन राष्ट्र जो पकड़ बनाना चाहते थे, उन्होंने इन राष्ट्रों की बराबरी करने की चेष्टा की। वृद्धि मॉडल से निर्धन देशों को वांछित परिणाम नहीं दिया, लेकिन इससे जो हुआ वह था कि इसमें निर्धन और धनी राष्ट्रों के बीच की असमानताएं अधिक विस्तृत होती गई। रॉल प्रेबिश द्वारा किए गए शोध के अनुसार समृद्ध राष्ट्रों की संपदा में जब बढ़ोत्तरी हुई तब निर्धन राष्ट्रों की संपदा में घटोतरी हो गई।

1960 और 1970 के बीच के समय में आश्रयता सिद्धांत काफी लोकप्रिय था इसे रॉल प्रेबिश द्वारा विकसित किया गया जो कि 1950 में लेटिन अमेरिका के लिए गठित संयुक्त राष्ट्र आर्थिक आयोग के निदेशक थे। इस सिद्धांत को विविध लड़ियों में विकसित किया गया जिसे रॉल के बाद आन्द्रे गंडर फ्रैंक ने अपने ढंग से मार्क्सवाद के रूप में इसे विकसित किया और इमैन्युअल वालरस्टेन ने इसे पुनः परिभाषित किया और इसे ''विश्व व्यवस्था' कह कर पुकारा। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था आश्रयता सिद्धांतवादी दावा करते हैं कि उच्च औद्योगिकृत देशों में होने वाली आर्थिक वृद्धि से अनिवार्य रूप से निर्धन देशों में वृद्धि नहीं हुई।

बॉक्स 9.1: रॉल प्रेबिश

रॉल प्रेबिश का जन्म अर्जेन्टाइना में हुआ था। उन्होंने ब्यूनस आयरस विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र का अध्ययन किया और बाद में इसी विश्वविद्यालय में अध्ययन का कार्य भी किया। प्रेबिश ने किनूस के नवक्लासिकी अर्थिक सिद्धांतों का अनुसरण किया जिसके अनुसार अधिक निवेश और उपभोग से आर्थिक गतिविधि की रफ्तार बढ़ती है। 1900 के आरंभ के वर्षों में गोमांस और गेहूँ के निर्यात के साथ अर्जेन्टाइना की आर्थिक वृद्धि द्वारा प्रेबिश के विचारों को बढ़ावा मिला। हालांकि 1930 की मंदी के बाद अर्थव्यवस्था चरम मंदी पर पहुंच गई जिसने अमेरिकी अर्थव्यवस्था को जकड़ लिया और इसी वजह से अर्जेन्टाइना की अर्थव्यवस्था पर भी इसका असर पड़ा। इस बदलाव ने प्रेबिश को नव क्लासिकी सिद्धांतों की पुनः जांच की ओर अग्रसर किया। तत्पश्चात् उसने व्यापार और सत्ता के ढांचों के व्यावहारिक पहलुओं से अर्थव्यवस्था के सैद्धांतिक पहलुओं को अलग करके देखना शुरू किया। अर्जेन्टाइना सेंटर बैंक के अध्यक्ष होने के नाते उसने गौर किया कि चरम मंदी के दौरान प्राथमिक उत्पादों जैसे कि कृषि वस्तुओं के मूल्य विनिर्मित गौण उत्पादों के मूल्यों की तुलना में काफी घट गए। हालांकि वह और उसके साथीगण इस असमानता के लिए जिम्मेवार सही तंत्र को स्पष्ट करने के योग्य नहीं थे, बावजूद यह गौर करने के कि प्राथमिक और गौण वस्तुओं की आपूर्ति संबंधी दशाओं में काफी फर्क था। जहां कृषक वसूली जाने वाली कीमत पर ध्यान दिए बिना प्रत्येक वर्ष समान मात्रा में फसल बोते थे वहीं विनिर्माता मांग के प्रत्याशित परिवर्तनों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए अपनी क्षमता को कम करने या बढ़ाने के योग्य थे। उन्होंने इस विचार को आगे और अधिक विकसित किया जब वे लेटिन अमेरिका आर्थिक आयोग (ई सी एल ए) के अध्यक्ष बने। स्वतंत्र रूप अमेरिका जैसे केंद्रों को लेटिन अमेरिकी जैसी इर्द-गिर्द के देशों ने किस प्रकार प्राथमिक वस्तओं की आपूर्ति की, इस पर जर्मन अर्थशास्त्री हंस सिंगर का भी समान निष्कर्ष था। उनकी प्रतिज्ञप्ति को सिंगर-प्रेबिश शोध कहते हैं (स्रोतः http : 11 en. wikipedia. org/wiki/Raul Prebisch)।

प्रेबिश के अर्जेन्टाइना की अर्थव्यवस्था पर आधारित प्रेक्षण ने एक ऐसी अभिधारणा को दर्शाया जिसने अनिवार्यतया विश्व को केंद्र और परिधि जैसी संकल्पना में विभाजित कर दिया। यद्यपि उसके प्रेक्षण, लेटिन अमेरिका में उसके अनुभवों पर आधारित थे फिर भी उन्हें ऐसे सभी देशों तक विस्तरित किया गया जिन्हें केंद्र और परिधि के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता

था। केंद्र में ऐसे देशों का समावेश है जहाँ विनिर्माण का कार्य मुख्य रूप से किया जाता है जबकि परिधिय देश ऐसे हैं जो मुख्यता कृषि वस्तुओं और कच्चे माल को अपने देश से बाहर भेजते हैं अर्थात् उनका निर्यात करते हैं और इनके द्वारा निर्यात की गई वस्तुओं को प्राथमिक वस्तुएं कहते हैं। केंद्र अर्थात् प्रमुख देश प्राथमिक माल को मांगने पर लगने वाली लागत की तुलना में जिन वस्तुओं का निर्यात करते हैं, ऐसी वस्तुओं से अधिक मुनाफा कमाते हैं। केंद्र को जाने वाली बचत को अपने पास बनाए रखने के योग्य होता है क्योंकि विकसित संघों और वाणिज्यिक संस्थाओं के माध्यम से यह अधिक मुनाफा और उच्च वेतन को बनाए रख सकता है। परिधि देशों में अर्थात् केंद्र देश के इर्द-गिर्द के देशों की कंपनियां और कामगार दुर्बल होते हैं और निम्न कीमतों के रूप में इन्हें अपनी तकनीकी बचत को अपने ग्राहकों तक पहुंचाना पड़ता है। प्रेबिश ने औद्योगिक और गैर-औद्योगिक देशों के बीच होने वाले व्यापार को ध्यान में रखकर पतन की ओर इशारा किया जिसका अर्थ था कि परिधि राष्ट्रों को औद्योगिक निर्यात की समान कीमत वसूलने के लिए और अधिक निर्यात करना पड़ता था। इस व्यवस्था के माध्यम से प्रौद्योगिकी और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सारे फायदे केंद्र देशों को मिलेंगे (वही)।

इस स्थिति पर प्रेबिश का समाधान था कि निर्धन परिधिय देशों को समृद्ध राष्ट्रों की विनिर्मित वस्तुओं को अपने देश में मांगने पर रोक लगानी होगी और आयात स्थानापन्न की खोज करनी होगी और इस तरह अपनी उपयोगी विदेशी मुद्रा की बचत करनी होगी। प्रेबिश द्वारा निकाला गया हल एकदम स्पष्ट था : निर्धन राष्ट्रों को आयात प्रतिस्थापन्न कार्यक्रमों को शुरू करना होगा। ताकि उन्हें समृद्ध देशों के विनिर्मित उत्पादों की खरीद करने की जरूरत न पड़े। निर्धन देश अभी भी विश्व बाजार में अपने प्राथमिक उत्पादों की बिक्री करते रहेंगे, लेकिन उनकी विदेशी मुद्रा आरक्षित निधि का प्रयोग मुख्य देश की निर्मित सामग्री को खरीदने के लिए नहीं किया जायेगा। इसका अर्थ था कि घरेलू बाजार को विनिर्मित वस्तुओं की मांग की पूरा करने के लिए विकसित करना ही होग। इसका यह भी अर्थ था कि सरकारों को आयात को घटाना होगा। इस दावे ने बहुत सी शंकाओं को भी उभारा कि क्या व्यवहारिकता में ऐसा कर पाना संभव है क्योंकि इसके लिए विनिर्माण की दृष्टि से भी देश को मजबूत होने की जरूरत है जिससे कि कीमते निम्न रहें लेकिन जो कि निर्धन राष्ट्रों में नज़र नहीं आ रहा था। प्रेबिश का शोध कार्य और निष्पत्ति काफी लोकप्रिय हो गई और केंद्र और परिधि और आयात स्थानापन्न के मूल शोध में बहुत से अन्य विचारकों के सुझाव भी जुड़ने लगे। 1960 में 1970 के समय में गंडर फ्रैंक और इमैन्युअल वालरस्टेन ने व्यापार की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के लिए आगे इस शोध कार्य का विस्तार किया। आगामी अनुभाग में हमें गंडर फ्रैंक और वालरस्टेन के प्रमुख विचारों पर ध्यान केंद्रित करेंगे और इन्हें समझने का प्रयास करेंगे।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

चिंतन एवं कार्रवाई 9.1

आयात स्थानापन्न से आप क्या समझते हैं? रॉल प्रेबिश द्वारा प्रचारित आश्रयता सिद्धांत के मूल सार की संक्षेप में चर्चा करें।

9.3 आश्रयता सिद्धांत का विस्तार: गंडर फ्रैंक एवं वालरस्टेन

गंडर फ्रैंक ने प्रेबिश की मूल अभिधारणा का व्यापार की विस्तृत राजनीतिक अर्थव्यवस्था तक बढ़ाया। वह अनिवार्यतया माार्क्सवादी था जिसने पूँजीवादी ढाँचे में निहित राजनीतिक एवं आर्थिक सत्ता संबंधों के मूल बिंदु से समृद्ध और निर्धन राष्ट्रों के बीच की दूरी को देखा। प्रेबिश द्वारा प्रतिपादित आश्रय की कुछ आरंभिक संकल्पनाओं को गंडर फ्रैंक ने आगे बढ़ाया जैसे कि केंद्र-परिधि संकल्पना का गंडर फ्रैंक ने आगे विस्तार किया और इन्हें उपाश्रित और साम्राज्यिक राष्ट्रों के नाम दिए। जहाँ आश्रयता की प्रारंभिक संकल्पना राजनीतिक आर्थिक

विश्लेषण की ओर उन्मुख था, वह मुख्यतया आर्थिक संबंधों पर केंद्रित थी। गंडर फ्रैंक ने हेनरिक कारडोसो और थियोटोनियों डोस सैन्टोस जैसे बहुत से अन्य विचारकों ने अपने विश्लेषण को सामाजिक दशाओं विशेष रूप से वर्ग संरचना और प्रादेशिक असमानता और आंतरिक उपनिवेशवाद तक विस्तारित किया। इस अनुभाग में हम गंडर फ्रैंक और वालरस्टेन की रचनाओं पर ध्यान केंद्रित करेंगे और इन्हें समझने का प्रयास करेंगे यद्यपि इनके अलावा और भी बहुत से सिद्धांतवादियों ने तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्य से सामान्य आश्रयता और अल्पविकास आधारित वादविवाद को समझने में अपना योगदान दिया है।

आन्द्रे गंडर फ्रैंक

गंडर फ्रैंक के मूल विचारों को समझने से पहले आइए उनके जीवन से जुड़ी कुछ बातों पर प्रकाश डालें।

बॉक्स 9.2 आन्द्रे गंडर फ्रैंक

जर्मनी में जन्में फ्रैंक की शिक्षा-दीक्षा स्विटजरलैंड में पूरी हुई थी। जब अडोल्फ हिटलर जर्मनी के चांसलर बने तो फ्रैंक परिवार 1941 में संयुक्त राज्य अमेरिका में आ बसा। फ्रैंक ने शिकागो विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में अपनी पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। उनके शोध का विषय था 1928-1955 के समय में यूकरेनियन कृषि में वृद्धि एवं उत्पादकता। उन्होंने 1950 से 60 तक के दशक में अमेरिकी विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य किया। 1962 में उन्होंने लेटिन अमेरिका की ओर रुख कर लिया जहाँ उन्होंने चिली विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में शिक्षा प्रदान की। यहाँ वे सलवोदोर अलेंदे की अगुआई में सरकारी सुधारों के क्षेत्र में जुट गए। जब अलेंदे सरकार का तख्ता पलटा तो फ्रैंक चिली छोड़ यूरोप जा बसे। फ्रैंक ने बहुत से विषयों जैसे मानव शास्त्र, भूगोल, समाजशास्त्र, इतिहासिक अंतर्राष्ट्रीय संबंध, इतिहास की शिक्षा दी और ऐसे ही बहुत से विभागों में काम किया। उन्होंने बहुत से विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जिनमें से नौ विश्वविद्यालय उत्तर अमेरिका में, तीन लेटिन अमेरिका में और पांच यूरोप में हैं। उन्होंने विश्व भर के दर्जनों विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनी, पुर्तगाली, इतालवी, जर्मनी और डच भाषाओं में अनगिनत व्याख्यान दिए और अन्य संस्थानों में आयोजित सेमीनारों में भाग लिया। फ्रैंच में मुख्य रूप से अर्थशास्त्र, सामाजिक और राजनीतिक इतिहास, विश्व व्यवस्था के समकालीन विकास, औद्योगिक रूप से विकसित देश और विशेष रूप से तीसरी दुनिया और लेटिन अमेरिका पर लिखा, 30 से अधिक भाषाओं में उनकी 1000 से अधिक रचनाएं हैं। अपने नवीन कार्यों में उन्होंने विश्व अर्थव्यवस्था में उत्पन्न संकट और वैश्विक विश्व इतिहास के विश्लेषण पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

(**स्रोत:** http://en.wikipedia.org.8/wiki/Gunder-Frank)

फ्रैंक, आरंभ में विकास के प्रति नव-उदारवादी उपागमों के आलोचक थे। इस उपागम के अनुसार अविकसित देश काफी पीछे हो गए थे और सामन्तवाद के चुंगल मं फंसे हुए थे और जिससे उन्हें बाहर निकलने की जरूरत थी। फ्रैंक इस विचार के विरुद्ध थे और आधुनिकीकरण और प्रगति के विचार के भी विरुद्ध थे जो कि विकास के वृद्धि मॉडलों का अभिन्न भाग था। उन्होंने दोहरे समाज शोध पर कड़ा एतराज जताया जिसका दावा है कि अल्पविकास से सामन्तवाद प्रथा का दर्शाना है और इसमें आधुनिकीकरण पर ध्यान नहीं दिया गया। उन्होंने कहा कि अल्पविकास को विश्व पूंजीवाद के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जो कि पूर्व व्याप्त सामंती व्यवस्था का रूपांतर करता है और इनके अधिशेष का प्रयोग जिसने विकसित राष्ट्रों के फायदे के लिए किया। फ्रैंक के सिद्धांत में अल्पविकास कोई असली दशा नहीं है और न ही यह एकाकी क्षेत्रों में चल रही पुरातन संस्थाओं की उपज है बल्कि

यह तो उसी समान प्रक्रिया से उत्पन्न होती है जो केंद्र को विकसित करती हैं (विशेष रूप से परिधिय देशों में, अल्पविकास वहाँ अधिशेष के खत्म हो जाने से उत्पन्न होता है जिसे कि केंद्र देशों में निवेश के लिए हरण कर लिया जाता है।

आन्द्रे गंडर फ्रैंक, इस बिंदु पर पूरी तरह स्पष्ट है "ऐतिहासिक शोध दर्शाते हैं कि समकालीन अल्पविकास मुख्य रूप से उपाश्रित अल्पविकसित और अब विकसित सामाज्यिक देशों के बीच पिछले ऐतिहासिक संबंधों और साथ ही साथ बनने वाले नये आर्थिक एवं अन्य किस्म के संबंधों का नतीजा है। इसके अलावा ये संबंध समग्र रूप से वैश्विक पैमाने पर पूँजीवाद व्यवस्था का अनिवार्य भाग है" (फ्रैंक 1972 : 3)।

मार्क्सवादी नजरिए से जैसे कि फ्रैंक के नजरिए से पूँजीवाद व्यवस्था ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम विभाजन को उत्पन्न किया है जो कि विश्व के बहुत से क्षेत्रों में अल्पविकास के लिए उत्तरदायी है। पर निर्भर राज्य या परिधिय राज्य सस्ते खनिज, कृषि वस्तुएं और सस्ते श्रम जैसी सस्ती प्राथमिक वस्तुओं को प्रदान करते हैं और अधिशेष पूँजी, पुरानी प्रौद्योगिकी और विनिर्मित वस्तुओं की खान या भंडार के रूप में भी समृद्ध देशों की सेवा करते हैं। ऐसे कार्यों से निर्भर राज्यों की आर्थिक व्यवस्था बाहर की ओर रुख कर लेती है: धन, वस्तुएं और सेवाएं पर निर्भर राज्यों में अपना प्रवाह कायम तो करती हैं, लेकिन इन संसाधनों के आबंटन का निर्धारण पर निर्भर राज्यों के आर्थिक हितों की तुलना में प्रबल राज्यों के आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। श्रम का यह विभाजन अंततः निर्धनता को स्पष्ट करता है और सवालिया निशान लगाता है लेकिन पूँजीवाद इस श्रम विभाजन के संसाधनों के सक्षम आबंटन की अनिवार्य शर्त के रूप में देखता है। इस विशेषता से जो बात बिल्कुल साफ नजर आती है वह तुलनात्मक फायदे के सिद्धांत में निहित है"। (फेरारो 96: 4, www.mtholyope.edu/acd/intere/depend.htm)।

गंडर फ्रैंक द्वारा प्रतिपादित आश्रयता सिद्धांत का सार पूँजीवादी विश्व व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है और जिसे वह असमान विकास के लिए उत्तरदायी मुख्य बल के रूप में देखता है और यह बात इस अवधारणा पर टिकी हुई है कि राजनीतिक और आर्थिक ताकतें मोटे तौर पर उद्योगीकृत देशों में जमी हुई हैं और वहाँ अपना ध्यान केंद्रित किए हुए हैं। आइए अब इमैन्युअल वालरस्टेन की ओर रुख करें।

MAADHYAM IAS

इमैन्युअल वालरस्टेन

1960 से अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय एवं व्यापार व्यवस्थाएं अधिक लचीली होनी शुरू हो गई थी और जिसमें राष्ट्रीय सरकारों का प्रभाव कम से कम नजर आने लगा था। ये ऐसी नयी दशाएं थी जिनके अंतर्गत तीसरी दुनिया के देश अपने जीवन स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास कर रहे थे। यही वह बात थी जिसने इमैन्युअल वालरस्टेन जैसे विचारकों को यह निष्कर्ष देने को कहा कि पूँजीवादी विश्व-व्यवस्था में नयी गतिविधियों की शुरूआत है और जिन्हें पुराने सिद्धांतों से स्पष्ट नहीं किया जा सका।

इस मत की स्थापना मूल रूप से न्यूयार्क राज्य विश्वविद्यालय, बिंघमटन में फरनद ब्राऊडल सेंटर फॉर द स्टडि ऑफ इक्नोमिक्स में हुई। मूल रूप से इसका संबंध समाजशास्त्र से था लेकिन इसने अपने प्रभाव का विस्तार मानवशास्त्र, इतिहास, राजनीतिक विज्ञान तक किया। वलेरस्टेन और इसके मानने वालों ने महसूस किया कि विश्व में विस्तृत बल थे जिनका छोटे और अल्पविकसित देशों पर प्रभाव पड़ा और अल्पविकसित देशों की दशाओं को स्पष्ट करने में राष्ट्र-राज्य स्तर का विश्लेषण और अधिक उपयोगी नहीं है। छोटे देशों पर जिन कारकों का सर्वाधिक प्रभाव था, वे थीं संचार की नयी वैश्विक व्यवस्थाएं, नव विश्व व्यापार तंत्र, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था और सैन्य संबंधों का अंतरण। इन कारकों ने अंतर्राष्ट्रीय

स्तर पर स्वयं अपनी गतिशीलता को सृजित किया है और साथ ही साथ ये मूल तत्व प्रत्येक देश के अंदरूनी पहलुओं से भी अंत:क्रिया कर रहे हैं। यद्यपि इमैन्युअल वालरस्टेन आश्रयता सिद्धांत के आलोचक हैं और इससे पूरी तरह सहमत नहीं हैं। दूसरों की भांति वे भी ऐसी आर्थिक हानियों की ओर ध्यान केंद्रित कर रहे थे जिनका सामना देश या क्षेत्र को विस्तृत वैश्विक व्यवस्था के भाग के रूप में करना पड़ता है। वालरस्टेन के 1987 के विश्व व्यवस्था विश्लेषण पर प्रकाशित अभिलेख में वे प्रमाणित करते हैं कि विश्व-व्यवस्था सिद्धांत ऐसे तरीके का विरोध करता हैं जिसमें 19वीं शताब्दी के मध्य में इसकी शुरूआत पर हम सभी के लिए सामाजिक वैज्ञानिक जाँच संरचित हैं। वे आश्रयता सिद्धांत की मौजूदा संकल्पना की आलोचना करते हुए आगे बढ़ते हैं और उनका तर्क है कि विश्व इतना जटिल है कि इसे केंद्र, देश और परिधिय देश जैसी व्यवस्थाओं में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। इस बात के मद्देनजर विश्व-व्यवस्था सिद्धांत के एक मुख्य सिद्धांत पर नजर पड़ती है अर्थात् अर्थ-परिधिय संकल्पना पर विश्वास करना जिसने त्रिकोणीय व्यवस्था को उत्पन्न किया जिसमें केंद्र, अर्थ-परिधिय और परिधिय राष्ट्रों का पता चलता है (स्रोत : http: 11 en. wikipedia org. 80/wiki/World System Theory)

बॉक्स 9.3: इमैन्युअल वालरस्टेन

न्यूयार्क में जन्में, वालरस्टेन ने कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया जहाँ से उन्होंने 1951 में बी.ए. की उपाधि और 1954 में एम.ए. की और 1959 में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और तत्पश्चात् 1971 तक वहाँ उन्होंने लेक्चरर का कार्य मैकमिल विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र का प्रोफेसर बनने तक किया। 1999 में सेवानिवृत्त होने तक उन्होंने बिंघमरन विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में काम किया। सेवानिवृत्ति के समय वालरस्टेन फरनंद बरूडल सेंटर फार द स्टडि ऑफ इक्नोमिक्स के विभागाध्यक्ष भी थे। उन्होंने बहुत से पदों पर काम किय जैसे यूनिवर्सिटिज वर्ल्डवाइड में विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में उन्हें मल्टीपल हौनेरेटी टाइटलों से नवाजा गया। 1994 से 1998 तक आप अंतर्राष्ट्रीय समाजशास्त्रीय संघ के अध्यक्ष थे। उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम 1974, 1980 और 1989 में तीन खंडों में नजर आया। इन खंडों में वालरस्टेन मुख्य रूप से तीन बुद्धिजीवियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं।

1) कार्ल मार्क्स जिनका अनुसरण, वे निहित आर्थिक कारकों पर जोर देते समय और वैश्विक राजनीति में सैद्धांतिक कारकों पर इनका वर्चस्व कायम होता देख कर करते हैं।
2) फ्रांसीसी इतिहासकार फरनंद ब्राउडल जिसने पुरकाल के विस्तृत साम्राज्य के संदर्भ में विकास और आर्थिक विनिमय के विस्तृत नेटवर्कों के राजनीतिक निहितार्थों को स्पष्ट किया था; और
3) अफ्रीका में उपनिवेशवाद के बाद के समय में अपने खुद के कार्य से प्राप्त व्यावहारिक अनुभव और प्रभाव और 'विकासशील राष्ट्रों' पर ध्यान केंद्रित करने वाले बहुत से सिद्धांतों से अर्जित ज्ञान।

(स्रोत : http: 11 en.wiki pedia. org. 80/wiki/Immanuel Wallerstein)

MAADHYAM IAS

आधुनिकीकरण और पूँजीवाद के अन्य सिद्धांतवादियों की तुलना में वह केंद्र, अर्थ-परिधिय और परिधिय विभाजनों को विश्वव्यवस्था के चिरस्थायी विभाजन, मानते हुए कहता है कि ये विभाजन कोई अवशिष्ट या ऐसी अनियमितता नहीं हैं जो दूर हो जायेगी। वह इसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखता है और 16वीं शताब्दी, आरंभिक पूँजीवदी संचयन और धीरे-धीरे आगे उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के दौरान इसका विस्तार देखता है। उसके अनुसार पूँजीवादी विश्वव्यवस्था सजातीयता से काफी अलग है और देश या क्षेत्र के नागरिक संबंधी विकास

को ध्यान में रखकर पूँजीवादी संचयन और राजनीतिक सत्ता में असमानाएँ पाई जाती हैं। वालरस्टेन की नज़र में पूँजीवाद विश्वव्यवस्था गतिशील व्यवस्था है जो निश्चित समयावधि के बाद बदल जाती है। हालांकि इसकी कुछ बुनियादी विशेषताएं एक सी ही रहती हैं। केंद्र या पश्चिमी यूरोपियाई देश और अन्य विकसित राष्ट्र मुख्यता परिधिय देशों से कच्चे माल के लिए विनिर्मित वस्तुओं के विनिमय से अर्जित उच्च मुनाफे के माध्र्यम से विश्व पूँजीवादी व्यवस्था से फायद उठाते रहे। वालरस्टेन का विश्लेषण सत्ता की राजनीति और अंदरूनी गतिशीलता को भी इस संदर्भ में ध्यान में रखते हैं। परिधिय देशें में उदाहरणार्थ भूपत्ति अक्सर दुर्बल या लाचार श्रमिकों से कम पैसे में काम करवा कर उनकी मेहनत हड़प कर अधिक संपत्ति कमाते थे क्योंकि भूपत्ति अपने श्रमिकों की अतिरिक्त मेहनत को अपने लाभ के लिए छीनने के योग्य थे जिसके परिणामस्वरूप मुख्य क्षेत्रों में बहुत से मूल ग्रामीण जो धीरे-धीरे भूमिहीन बनने लगे थे उन्हें मजदूरी करने के लिए मजबूर किया गया जिससे उनका जीवन स्तर घटने लगा और उनकी आमदनी की निश्चितता लुप्त होने लगी। समग्र रूप से वालरस्टेन पूँजीवादी विश्व अर्थव्यवस्था के विकास को विश्व की आबादी के बड़े भाग के लिए हानिकार मानते हैं।

विश्वव्यवस्था सिद्धांत को मानने वालों द्वारा मुख्य और परिधिय और अर्ध-परिधिय देशों के बीच के सत्ता संबंधों के मद्देनजर चीन और ब्राजील जैसे अर्ध-परिधिय देशों के उदय को स्पष्ट करने के लिए उजागर किया गया है। वालरस्टेन की पूंजीवादी विश्वव्यवस्था की आलोचना करने के लिए उन्हें बहुत से वैश्वीकरण विरोधी आंदोलनों में लोकप्रियता हासिल हुई। अन्य बातों के अलावा उसकी आलोचना ने इतिहास के निर्मूल विश्लेषण के लिए उसे गलत ठहराया है और आमतौर पर जिस अंदाज में वे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर बात करता है।

अभी तक हमने आश्रयता सिद्धांत की तीन लड़ियों को समझने का प्रयास किया है जिन्हें जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था कि यह न केवल विकास के नव उदारवादी सिद्धांतों की आलोचना है बल्कि व्यापार को अलग-थलग होकर न कर पाने के रूप में भी देखती हैं लेकिन इस संदर्भ में यह राजनीतिक आर्थिक दृष्टि से विश्वव्यवस्था पर गौर करती है। आगामी अनुभाग में हम आश्रयता सिद्धांत की मुख्य प्रतिज्ञप्तियों पर पकड़ कायम करने का प्रयास करेंगे। लेकिन इससे पहले आइए बॉक्स में दिए गए प्रश्नों के उत्तर दें।

MAADHYAM IAS

चिंतन एवं कार्रवाई 9.2

हमने तर्क-वितर्कों की जिन उपर्युक्त उल्लिखित लड़ियों का अध्ययन किया उसके बाद आप अवश्य महसूस कर रहे होंगे कि आश्रयता के विचारक अनिवार्यतया इस बात पर ध्यान केंद्रित कर रहे हैं कि विश्व इस तरह से अंत:संबद्ध है कि विकास या अल्पविकास को एकाकी रूप से नहीं देखा जा सकता है। इस बात के मद्देनजर:

1) क्या आप कहेंगे कि बहुराष्ट्रीय निगमों और वैश्वीकरण की दृष्टि से विश्व के वैश्विक ग्राम बनने से विश्व केंद्र और परिधिय देशों जैसी संकल्पना में बंट गया है?

2) यदि आपको विश्वव्यवस्था सिद्धांत के नजरिए से तर्क-वितर्क करना है जो आप भारत को परिधिय राष्ट्र मानते हैं या अर्थ-परिधिय राष्ट्र?

9.4 आश्रयता सिद्धांत की अनिवार्य प्रतिज्ञप्तियाँ

आश्रयता के विचारकों का कुछ बातों पर आपसी तालमेल है लेकिन कुछ बातों पर वे एक-दूसरे से सहमत नहीं भी होते। संकल की परिभाषा कुछ हद तक आश्रयता सिद्धांत का सार है।

उसका कहना है कि राष्ट्रीय विकास नीतियों पर देश के बाहरी प्रभावों-राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रभावों का जो प्रभाव पड़ता है उस दृष्टि से देश के आर्थिक विकास का स्पष्टीकरण आश्रयता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है'' (संकल 1969 : 23)। आन्द्रे गंडर फ्रैंक, पॉल बरन और हेनरिक कारडोसो जैसे सिद्धातवादियों की इस बात पर सहमति है कि विकसित विश्व के देश तेजी से एक दूसरे पर निर्भर होते जा रहे हैं और उनके विचार में यह संबंध उस संबंध से अलग है जो विकासशील और विकसित राष्ट्रों के बीच होता है। बैंकर और ग्राहक भी एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं क्योंकि बैंकर को अपनी उत्तरजीविता कायम रखने के लिए ऋण देकर आमदनी बनाने की जरूरत है और दूसरी तरफ ग्राहक को अपना घर बनाने के लिए ऋण की जरूरत पड़ती है। लेकिन इस संबंध की संरचना एकदम असमान है और यह असमानता उनके बीच की सभी अंत: क्रियाओं को ढक देती है। थियोटोनियों डोस सैनटोस अपनी परिभाषा में आश्रयता सिद्धांतों के ऐतिहासिक आयाम पर जोर देते हैं। (आश्रयता है)...ऐसी ऐतिहासिक दशा जो विश्व अर्थव्यवस्था की निश्चित संरचना की रूपरेखा को विकसित करती है जैसे कि इससे कुछ देशों को जहां नुकसान होता है उनके लाभ को हड़प कर यह कुछ देशों को फायदा देती है और अधीनस्थ देशों की विकास संभावनाओं को सीमित करती है...ऐसी स्थिति जिसमें कुछ निश्चित समूह के देशों की अर्थव्यवस्था दूसरे देशों के विकास और विस्तार से जुड़ी होती है। To Which their own is subjected (डेस सैन्टोस 1971 : 226)

आश्रयता सिद्धांत के कुछ प्रमुख दावे :

सभी आश्रयता के विचारक विकास के नव उदारवादी सिद्धांतों के आलोचक हैं जिनका दावा है कि अल्पविकसित राष्ट्रों को आगे बढ़ने के लिए अभी बहुत करना बाकी है और ठोस आर्थिक व्यवहारों और नीतियों को एक बार जब वे अपना लेंगे तो वे अपनी प्रस्थिति से उबर जायेंगे। दरअसल, 1950 और 1960 के दौरान निर्देशनात्मक सर्वसम्मति थी कि वृद्धि रणनीतियों को सार्वभौमिक रूप से लागू किया जाता है। इस सर्वसम्मति को वाल्ट रेस्तो ने अपनी पुस्तक द स्टेजिस ऑफ इकौनोमिक ग्रोथ में श्रेष्ठ रूप से स्पष्ट किया है। आश्रयता सिद्धांत की राय है कि समृद्ध देशों की सफलता अत्यंत पर निर्भर है और वैश्विक इतिहास के विशिष्ट प्रसंग में यूरोपियाई सत्ताओं के अत्यंत शोषणकारी औपनिवेशिक संबंधों का काफी वर्चस्व था। इन संबंधों की पुनरावृत्ति अब आज के समय में विश्व के गरीब देशों के लिए वैसी प्रबल नहीं है। आश्रयता सिद्धांत नवक्लासिकी मॉडल के केंद्रीय वितरणकारी तंत्र को परित्यक्त करती है जिसे आमतौर पर 'ट्रिकल डाउन' अर्थशास्त्र कहते हैं। आश्रयता के विचारक बहुत से ऐसे संरचनागत तत्वों की जांच करते हैं जिन्हें अर्थव्यवस्था की असफलता के लिए उतरदायी माना जाता है जैसे जातीय, नृजातीय या जेंडर पूर्वाग्रह आदि। ऐसे संरचनागत कारणों के लिए आश्रयता सिद्धांतवादियों का तर्क है कि बाजार अकेले ही पर्याप्त वितरणकारी तंत्र नहीं है (फेरारो, 1996 स्रोत: www.intholyoke edu/acad/intre/dpend)। एक अन्य प्रतिज्ञप्ति जिसे कि आश्रयता सिद्धांत के लिए सामान्य माना जाता है : विश्व का केंद्र/परिधिय/उपाश्रित सामज्यिक और केंद्र/अर्धपरिधिय रूप से विभाजन। केंद्र देश पश्चिमी के उन्नत देश हैं जो अनिवार्यतया अधिक जटिल वस्तुओं का निर्माण करते हैं और जिनका निर्यात केंद्र देशों को किया जाता है। परिधिय देश निर्धन राष्ट्र है जो कृषीय उत्पादों और कच्चे माल और प्राकृतिक संसाधनों जैसे प्राथमिक उत्पादों की आपूर्ति करते हैं। ये अमीर राष्ट्रों के लिए सस्ते श्रमिक और बाजारों का भी बंदोबस्त करते हैं।

इन सभी सिद्धांतों में निहित आम अवधारणा है कि परनिर्भर राष्ट्र प्रौद्योगिकों के अभाव या सामंतवाद जैसे व्यवहारों के अभी भी मौजूद होने के कारण निर्धन नहीं हैं बल्कि असल में जबर्दस्ती इन्हें यूरोपियाई आर्थिक व्यवस्था में समेकित किया गया। ये मुख्य रूप से कच्चे माल के उत्पादक या सस्ते श्रम की खान ही बन कर रह गए और इन्हें ऐसे बाजारों से अपने

MAADHYAM IAS

संसाधनों को ले जाने के अवसरों से वंचित कर दिया गया जो प्रबल राज्यों के साथ प्रतिस्पर्धा कायम किए हुए थे। परिधिय राष्ट्र संरचित असमानता के संबंध में केंद्र राष्ट्रों पर निर्भर हैं और इन्हें ऐसी व्यवस्था में विकसित किया जाता है जो कि पहले से ही विकसित राष्ट्रों द्वारा बसाई गई है जिससे परिधिय राष्ट्रों का क्रमबद्ध हानि का सामना करना ही पड़ता है। अंत:क्रिया करने वाले राष्ट्रों के बीच सत्ता के असीमित संबंधों के कारण यह अंत:निर्भरता से भिन्न है।

- बाहरी बलों का आश्रयता सिद्धांतवादियों का तर्क है कि राष्ट्र के अल्पविकास में भारी भूमिका है। इस बात पर वे सभी सहमत हैं कि परनिर्भर राज्यों के भीतर आर्थिक गतिविधियों को चलाने के लिए बाहरी बलों का अपना एक विशेष महत्व है। ऐसे बाहरी बलों में शामिल हैं : बहुराष्ट्रीय निगम, अंतर्राष्ट्रीय वस्तु बाजार, विदेशी सहायता, संचार और ऐसे अन्य साधन जिनके माध्यम से उच्च उद्योगीकृत देश अपने आर्थिक... हित... विदेश को दर्शा सकते हैं (फेरारो 1996, स्रोत www.mtholyoke. eduacod intrel /depend)।
- निश्चित समय में संसाधनों का रुख मोड़ना (और याद रहे कि परनिर्भरता के संबंधों की निरंतरता पंद्रहवी शताब्दी में यूरोपियाई विस्तार की शुरूआत से बनी हुई है)

  सिर्फ प्रबल राज्यों की ताकत से ही कायम नहीं है बल्कि परनिर्भर राज्यों के कुलीन वर्ग की सत्ता के माध्यम से भी यह असमानता बनी हुई है। आश्रयता के विचारकों का तर्क है कि इन कुलीनों ने परनिर्भर संबंध कायम रखा क्योंकि इनके अपने निजी हित प्रबल राज्यों के हितों के समान थे। इन कुलीनों को प्रबल राज्यों में विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाता था और प्रबल राज्यों के कुलीनों की सोच जैसी ही इनकी सोच थी और इनके मूल्य और संस्कृति भी एक जैसी ही थी। अत: सही मायने में परनिर्भरता संबंध 'सवैच्छिक' संबंध है। इस बात पर बहस करने की जरूरत नहीं है कि परनिर्भर राज्य सोच समझकर अपने निर्धनों के हितों से धोखा कर रहे हैं, कुलीनों का सही रूप से मानना है कि आर्थिक विकास की कुंजी उदारवादी आर्थिक सिद्धांत के निम्नलिखित आदेश में निहित है (वही)।
- आत्म-निर्भरता और घरेलू बाजार की सुरक्षा को सहज शोषणकारी विश्व व्यवस्था से बाजार रहने के महत्वपूर्ण समाधान के रूप में देखा गया। प्रेबिश जैसे सिद्धांतवादियों के आयात स्थानापन्न जैसी विषयवस्तुओं पर विशिष्ट विचार हैं, जबकि कुछ अन्य सिद्धांतवादियों के राज्य की भूमिका और घरेलू हित को सुरक्षित रखने पर अपने तर्क पेश किए। उनका मानना है कि श्रेष्ठ रूप से देश के राष्ट्रीय हित की सुरक्षा उसी देश के निर्धनों की सेवा करके की जाती है और इसके बाद बाहरी एजेंसियों की मांग का अनुसरण करके। राष्ट्रीय हित आखिरकार किससे बनता है या व्यावहारिकता में इसका क्या अर्थ है, इस बात पर स्पष्ट रूप से बहस नहीं की जाती।

  अत: सामान्य रूप से आश्रयता का सिद्धांत विकास की स्वीकृति धारणाओं की आलोचना थी जो कि मूल रूप से मुख्यतया यूरोपियाई राष्ट्रों के बढ़ते वर्चस्व और उनके हितों से जुड़े हुए थे। आश्रयता के सिद्धांत इसलिए बहुत से तीसरी दुनियां के राष्ट्रों में काफी लोकप्रिय है और कुछ ऐसी राजनीति तक पहुंचने का प्रयास करते तो हैं जो उनके देशों के लिए फायदेमंद होगी। लेकिन इनके काफी आलोचक भी हैं। हमने इसके आलोचनात्मक पहलुओं में कहीं भी किसी व्यक्ति विशेष चिंतन की जांच नहीं की है लेकिन अपने अगले अनुभाग में हम कुछ समीक्षाओं पर नजर डालेंगे।

चिंतन एवं कार्रवाई 9.3

विकासशील देश/देशों का आर्थिक पिछड़ापन स्पष्ट करने में आश्रयता सिद्धांत की अनिवार्य प्रतिज्ञप्तियों की आलोचनात्मक जांच कीजिए।

MAADHYAM IAS

9.5 आश्रयता सिद्धांत की समीक्षा

वृद्धि मॉडलों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए आश्रयता सिद्धांत ने वैक्लिपिक उपागम प्रदान किया है। उन्होंने ऐसे देशों के सत्त् असमान संबंधों का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया है जिनका आधा इतिहास उपनिवेशवाद में और आधा साम्राज्यवाद में बंटा हुआ है। जब आश्रयता सिद्धांतों ने उत्तर के बारे में दक्षिण से वेल्कम समीक्षा प्रदान की है तो इनमें कुछ दोष और आलोचना का भी समावेश था। आश्रयता सिद्धांतों की प्रमुख आलोचना रही है कि ये सिद्धांतवादी अपने तर्कों का महत्व देने के लिए कोई ठोस प्रमाणों को पेश नहीं करते। ऐसे कुछ उदाहरण दिए गए हैं लेकिन बहुत से अपवाद हैं जो केंद्र परिधिय सिद्धांतों में सही ढंग से फिट नहीं बैठते जैसे कि दक्षिण पूर्व एशिया के नव उदित औद्योगिक देश।

यह भी कहा गया है कि आश्रयता सिद्धांत अत्यधिक अमूर्त है और विकसित और अल्पविकसित जैसी सजातिक श्रेणियों का प्रयोग करने की ओर प्रवृत है जिससे कि इन श्रेणियों में निहित असमानता पर पूरी तरह पकड़ नहीं बन पाती।

आलोचना का अन्य बिंदु है कि आश्रयता का सिद्धांत बहुराष्ट्रीय निगमों से संबंध कायम रखने को हानिकर मानता है जबकि एक नजरिया यह भी रहा है कि ये प्रौद्योगिकी अंतरण के महत्वपूर्ण माध्यम हैं। आश्रयता सिद्धांत की अन्य आलोचना हैं ये राज्य, पूंजीवादी, उद्योगीकरण जैसे शब्दों पर अपने तर्कों को टिकाते हैं। आश्रयता मत के इन विचारों में कुछ यूरोसेन्ट्रीक पूर्वाग्रहों को निहित किया गया है जैसे ये मान कर चलते हैं कि औद्योगीकरण और औद्योगिक पूँजी का स्वामित्व आर्थिक विकास के महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षित बिंदु हैं। इसने राज्य का विकास एकमात्र अभिकर्ता के रूप में पुनर्गठित कर दिया है। दरअसल, आर्थिक विकास के प्राथमिक और अनिवार्य एजेंट के रूप में राज्य पर इससे परे हट कर विचार करने में यह अयोग्य है। इन सिद्धांतवादियों ने आगे विकास को आर्थिक दृष्टि से देखा है। विकास के सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम स्पष्ट रूप से इनके तर्कों से गायब हैं। आश्रयता सिद्धांतों की एक विशेष आलोचना है कि ये समकालीन विश्व की परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों के प्रतिबिंबित नहीं करते। बहुत सी समीक्षाएं न्यायसंगत हैं और हमें जो बात स्वयं से पूछनी है, वह है कि क्या आश्रयता सिद्धांत के पीछे के अनिवार्य विचार और विचारधारा की मौजूदा संदर्भ में कोई प्रासंगिकता है। आइए आगामी अनुभाग में इस बात पर चर्चा करें।

MAADHIYAM IAS

9.6 आश्रयता सिद्धांत की प्रासंगिकता

बढ़ते वैश्वीकरण ने जो कि अनिवार्य सामाजिक शर्त और प्रक्रिया के रूप में नजर आता है, ने आज के समय में विश्व के अंत:संबद्ध प्रकृति की ओर इशारा किया है। विश्व भर में पूँजी, वित्त, वस्तुओं, जन और विचारों का इतना प्रवाह पहले कभी नहीं रहा। ऐसे कुछ अंत:संबंध की ओर 1950 में ई.सी.एल.ए.सी. ने और बाद में आश्रयता के सिद्धांतवादियों और विश्वव्यवस्था विचारकों ने इशारा किया। दोनों सिद्धांत वैश्विक संदर्भ में अल्पविकास और विकास की समस्याओं को आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रमों के अंत:संबंधों के रूप में देखते हैं। आश्रयता सिद्धांत का पूर्वानुमान है कि विश्वव्यवस्था कुछ चुनिंदा अंतर्राष्ट्रीय निगमों के हाथों में उत्पादन का जिम्मा सौंपने का विश्व को अल्पाधिकार उन्मुख बाजार बनाने की ओर प्रवृत्त है। इससे सिद्धांत उत्पादन में मंदी करने और आमदनी ध्रुवण को तेज करने के लिए लंबी प्रवृत्ति का पूर्वानुमान भी लगता है'' (स्रोत: राबिन्सन रोजस, www.rojasdatabank.org.)।

उद्यौगिकृत देशों और विकासशील देशों के बीच आर्थिक विभाजन और आमदनी अंतराल निरंतर विस्तृत हो रहा है। उत्तर और दक्षिण के बीच का ध्रुवीकरण अब जितना स्पष्ट है

इतना पहले कभी नहीं रहा। 1997 की संयुक्त राष्ट्र मानव रिपोर्ट दर्शाती है कि विश्व आबादी के कुल 10 प्रतिशत के रूप में 48 न्यूनतम विकसित राष्ट्रों के लिए विश्व व्यापार का अंश पिछले दो दशकों में दो भागों में बंट गया है। जैसा कि इन आंकड़ों में दर्शाया गया है अमीर और गरीब राष्ट्रों के बीच विस्तृत अंतराल है। विश्व के लोगों के निर्धनतम 20 प्रतिशत की वैश्विक आमदनी 1960 में 2.3 प्रतिशत और 1991 में 1.4 प्रतिशत से घट कर 1.1 प्रतिशत के मौजूदा स्तर पर पहुंच गई है जबकि उन निर्धनतम 20 प्रतिशत की तुलना में सर्वोच्च धनियों के 20 प्रतिशत की आमदनी 1960 में 30 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 60 प्रतिशत के अनुपात पर पहुंच गई और 1944 तक बढ़कर यह 78:1 हो गई थी। अन्य शब्दों में अमीर और अधिक अमीर हो रहे थे जबकि गरीब और अधिक गरीब बन रहे थे।

"इन प्रवृत्तियों के कम होने के कोई संकेत नज़र नहीं आ रहे, जबकि मानव विकास रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है ये केवल वैश्विक आय का 1 प्रतिशत और समग्र रूप से राष्ट्रीय आय का 2–3 प्रतिशत भाग ही लेगी। ये संख्याएं इस तथ्य की ओर इशारा करती हैं कि लोगों और राष्ट्रों के बीच बढ़ती इस असमानता पर ध्यान देना और इसका विश्लेषण करना भी जरूरी है" (यू.एन.डी.पी. 2001)

यह सही है कि हम अंत:संबद्ध विश्व में रहते हैं। अपने तर्काधारों के लिए आश्रयता सिद्धांतों की जांच करने का कारण है यद्यपि इन्हें देखते हुए नहीं लगता कि ये समकालीन परिस्थितियों और स्थितियों पर अपना प्रभाव डालती है और इनके कुछ सूत्रीकरणों पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है। हालांकि बढ़ते अंत:संबद्ध अर्थशास्त्रों और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के इन सिद्धांतों की आलोचनात्मक जाँच करना बेहतर होगा।

तालिका 9.1:

156 बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए कुल जी.डी.पी. के प्रतिशत के रूप में एस.जी.डी.पी.

	1960	1970	1980	1990	1999
उद्योगीकृत देश (21)	83.2	83.2	78.4	83.3	84.3
उप-सहाराई अफ्रीका (50)	2.5	2.3	2.8	1.4	1.1
दक्षिण एशिया (8)	3.9	3.1	2.2	2.0	2.3
मध्य पूर्व और उत्तर अफ्रीका (9)	1.8	2.6	5.5	3.1	1.8
लेटिन अमेरिका और कैरिबियन (41)	6.7	6.8	7.7	5.9	6.7
पूर्व एशिया और प्रशांत (27)	2.0	2.1	3.3	4.4	3.8

स्रोत: विश्व विकास सूचक और विश्व विकास रिपोर्ट

चिंतन एवं कार्रवाई 9.2

1) क्या आपकी राय में राष्ट्र में अंदरूनी असमानता को स्पष्ट करने में आश्रयता सिद्धांत का प्रयोग किया जा सकता है?

2) अधिकांश विकास के विचारकों का मानना है कि राष्ट्र के विकास के लिए राज्य हस्तक्षेप अत्यंत महत्वपूर्ण है। क्या आप उनके साथ सहमत हैं?

3) क्या आपकी राय में आई एस एफ और विश्व बैंक जैसे सशक्त बहुराष्ट्रीय निगम और एजेंसिया जो कि राज्य नीतियों को प्रभावित करने के लिए जानी जाती हैं, राज्य की भूमिका के महत्व को कम करती हैं?

MAADHYAM IAS

अपनी पद्धति और परिभाषा से संबंधित सभी कमियों के बावजूद आश्रयता सिद्धांत को बहुत से कम विकसित देशों के हाल ही के ऐतिहासिक अनुभव से इसके महत्व को कम कर दिया गया है। अर्थशास्त्र अकेले ऐसे बहुत से कारकों के लिए जिम्मेदार नहीं है जो आर्थिक और सामाजिक प्रगति प्रतिबंधित करते हैं। अंतिम विश्लेषण में यदि हम विश्व को सिर्फ आर्थिक दृष्टि से ही देखते हैं तो अल्पविकास का अध्ययन अधूरा होगा। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों जगहों पर राजनीतिक आर्थिक गतिशीलता पर ध्यान केंद्रित करना जरूरी है। आश्रयता विश्लेषण सही ढंग से अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र में आर्थिक और राजनीतिक संबंधों की अंत:निर्भरता पर जोर देता है। यदि इनके द्वारा उत्पन्न राजनीतिक-आर्थिक गतिशीलता अक्सर भ्रमित है तो हो कम से कम जिन हवालों का जिक्र होता है वे तो ठीक होने चाहिए। विकास अनुभव के पचास वर्षों के बाद बुद्धिजीवी तेजी से इस बात को उठा रहे हैं कि अल्पविकास आर्थिक, राजनतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि जैसे कारकों की सम्भ्रान्त व्यूह रचना का परिणाम है। पिछले समय पर ध्यान देते हुए हम कह सकते हैं कि जैसाकि विकास सिद्धांत के प्रवर्तक अल्बर्ट हिर्शमन ने 30 वर्षों पहले लिखा था:

राजनीति और अर्थव्यवस्था के बीच के संबंध के बारे में सामान्य प्रतिज्ञप्ति लाने का प्रयास करना सिर्फ घिसी-पिटी बात और मायूसी को उत्पन्न करना है। इस स्तर पर संबंधों के लिए ये बातें या तो साफ नजर आती है और इसलिए अरोचक होती हैं या इतनी जटिल और परनिर्भर होती है कि इसके परिणामों को समझा नहीं जा सकता (1971, 8)। संक्षेप में यह कहना मुश्किल होगा कि किसने आश्रयता सिद्धांत को इतिहास के अंधेरे की ओर धकेल दिया।

वैश्वीकरण का अर्थ है कि लेटिन अमेरिका की आर्थिक नीतियां, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय बाजारों और साथ ही साथ स्थानीय और अंतर्राष्ट्रीय निवेशकों के निष्कासन की चुनौती से जुड़ी हुई हैं। आश्रयता के विचारक पूर्वानुमानित रूप से अपने चिंतन को वैध बनाने के लिए इस अंतर्ज्ञान का प्रयोग का यह दावा करते हुए कहते हैं कि वैश्विक आर्थिक एकीकरण वित्तीय और मौद्रिक मुद्दों में बहुत सी सरकारों को अपना हाथ आजमाने की प्रक्रिया को प्रतिबद्ध करता है। जहाँ इस बात को मना नहीं किया जा सकता वहीं नीति कार्रवाई की पहले से निम्न स्वतंत्रता अनिवार्य रूप से विकास के लिए हानिकर नहीं है। असल में बहुत से अर्थशास्त्रियों का दावा है कि अंतर्राष्ट्रीय बाजारों द्वारा विकासशील राष्ट्रों पर थोपे गये नये अनुशासन ने राजनीतिज्ञों के हाथों को बांध कर लापरवाही के सबसे खराब उदाहरणों की छटाई कर दी है। ऐसे वर्तमान से अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिदृश्य से काफी अलग है जब परनिर्भरता सिद्धांतों को 1950 और 1960 के दौरान सर्वप्रथम सूत्रबद्ध किया जा रहा था। लेकिन आगे भी यह लेटिन अमेरिकी सरकार पर है कि वह नए अवसरों का फायदा उठाए और इस नव उदित विश्व आर्थिक परिदृश्य के संदर्भ में पैदा होने वाले नये जोखिमों को सीमाबद्ध करें। इनकी नीतियाँ उन्हें उस सीमा तक उत्तोलक शक्ति देती हैं। जहाँ से वे निजी आर्थिक भाग्य को नियंत्रण करना चाहते हैं। यह अच्छी खबर है कि आश्रयता के सिद्धांत ने अपने अधिक निराशावादी अंदाज में इस संभावना की अनुमति नहीं दी।

9.7 सारांश

आश्रयता सिद्धांत विकास के मुख्य सिद्धांत की आलोचना है। संबद्ध समाज की विविध सामाजिक एवं राजनीतिक गतिशीलता के मद्देनजर बहुत से बुद्धिजीवियों ने इसे स्वीकारा है और बहुतों ने इसे नामंजूर किया है। इस इकाई में हमने इस सिद्धांत की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है। सिद्धांत के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए हमने इकाई की शुरूआत की और इसके साथ-साथ फ्रैंक और वालेटरस्टेन द्वारा आरंभ इसके आगे के विस्तार पर भी हमने ध्यान केंद्रित किया है। केंद्र और परिधिय और विश्व व्यवस्था जैसे परिप्रेक्ष्यों पर काफी वादविवाद किया गया

है। हमने आश्रयता सिद्धांत की अनिवार्य विशेषताओं की प्रस्तुति की है और साथ ही इस सिद्धांत की आलोचना पर भी प्रकाश डाला है। सामाजिक विज्ञान में प्रत्येक सामाजिक सिद्धांत की विशिष्ट संदर्भों में अपनी प्रासंगिकता होती है। हमने समकालीन विश्व में इस सिद्धांत की प्रासंगिकता पर विचारों की प्रस्तुति की है। हमारा प्रयास यहां कोई निष्कर्ष निकालना नहीं है बल्कि वैश्वीकरण और विविध अन्य विकासात्मक कार्यों के संदर्भ में इस सिद्धांत की समीक्षा विकसित करने के लिए कुछ जगह खाली छोड़नी है।

9.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लाल, एस. 1975 ''इज डिपेंडेंसी ए यूजफूल कान्सेप्ट इन अैनालाइजिंग अंडर डेवलपमेंट'', वर्ल्ड डेवलपमेंट, खंड 3।

फ्रैंक, ए.जी. 1973 ''द डेवलपमेंट ऑफ अंडरडेवलपमेंट'', इन जेम्स डी. काकक्रोफ्ट (संपा) डिपेंडेंसी एंड अंडरडेवलपमेंट। अैंकर बुक्सः न्यूयार्क।

यूएनडीपी 2001 मानव विकास रिपोर्ट। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसः नई दिल्ली वर्ल्ड बैंक 2000। विश्व विकास रिपोर्ट। आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसः नई दिल्ली।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 10

सामाजिक और मानव विकास

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 आर्थिक विकास के वृद्धि मॉडल

10.3 विकास के वृद्धि-उन्मुख सिद्धांतों की समीक्षा : साकल्यवादी परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता

10.4 मानव विकास प्रतिवेदन : आय से सांस्कृतिक स्वतंत्रता तक

10.5 मानव विकास क्या है?

10.6 मानव विकास को मापना

10.7 मानव विकास उपागम का विवेचनात्मक मूल्यांकन

10.8 सारांश

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप प्रबल विकास मॉडलों की समीक्षा करने की आवश्यकता का अध्ययन कर सकेंगे और निम्नलिखित का विवेचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे:

- विकास के वृद्धि मॉडल;
- साकल्यवादी परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता; और
- मानव विकास रिपोर्ट और इसका समीक्षात्मक मूल्यांकन।

MAADHYAM IAS

10.1 प्रस्तावना

जब विकास शब्द का उल्लेख किया जाता है तो तुरंत धन की बात मस्तिष्क में उत्पन्न होती है। जब हम पूछते हैं कि विकसित राष्ट्र कौन से हैं, तो अक्सर अमेरिका, जापान, जर्मनी जैसे विकसित राष्ट्रों के नाम सुनने को मिलते हैं और जब पूछा जाता है कि विकास क्या है तो दुबारा जहन में ढेर सारे धन, बहुत से उद्योगों की और जहां सभी के पास अपनी गाड़ी हो, जहां अच्छी सड़कें हों और ऊंची इमारतें हों, जैसी बातें आती हैं। इसी वजह से धन और विकास के इस संबंध से लोग विकास का अर्थ-ढेर सारी दौलत से लगाते हैं। विकास का यह विचार दुबारा विशेष रूप से ऐसे नव-उदित राष्ट्र-राज्यों के माध्यम से विकास प्राप्ति के लिए वृद्धि मॉडलों को अपनाने से जुड़ जाता है जो कि पश्चिम के विकसित राष्ट्रों या अमीरों की समृद्धि और सफलताओं से होड़ लगाने का प्रयास कर रहे थे।

आमतौर पर सभी इससे सहमत हैं कि आर्थिक वृद्धि और आय स्तर महत्वपूर्ण हैं लेकिन इनसे अधिक महत्वपूर्ण बात है कि धन के स्रोतों को कितने सही ढंग से मनुष्यों की सामान्य खुशहाली के लिए शोषित किया जाता है। कुछ देश मानव दशा को बेहतर बनाने के लिए अपनी वृद्धि की सही ढंग से देखरेख करने में सफल रहे हैं। जबकि आर्थिक वृद्धि और मनुष्य की बेहतर दशाओं के बीच स्वाभाविक रूप से बनने वाला कोई संबंध नहीं है और यदि कोई संबंध दिखाया जाता है तो विचार किया जाता है कि ऐसे दशाएँ या नीतियाँ कौन सी हैं जो आय के उच्च स्तरों को मानव विकास में अनूदित करती हैं। इस इकाई में हम मानव विकास के मुद्दे से संबद्ध अन्य प्रश्नों के साथ उपर्युक्त नीतिया आदि पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

इस इकाई का आरंभ हम विकास के ऐसे वृद्धि मॉडलों में मानव विकास के पूर्ववृत्त के विश्लेषण से करेंगे जिन्हें बहुत से देशों ने अपनाया था और चर्चा में यह भी देखेंगे कि किस प्रकार मानव विकास आवश्यकताओं को पूरा करने में ये मॉडल विफल रहे हैं। इसके बाद चर्चा होगी कि मानव विकास क्या है और किस प्रकार वृद्धि मॉडल की तुलना में साकल्यवादी परिप्रेक्ष्य है। इसके अलावा हम मानव विकास को मापने के विविधि कारकों और सूचकांकों की भी जांच करेंगे। इसके अलावा यू.एन.डी.पी. (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम) द्वारा निर्मित मानव विकास रिपोर्ट की जांच और इसका विश्लेषण, विभिन्न देशों की सापेक्षिक स्थितियों को जानने के लिए किया जायेगा। यदि कुछ देश इस मानव विकास संभावना की प्राप्ति में काफी पीछे हैं तो ऐसी दशाओं और नीति मुद्दों पर ध्यान देना होगा जो मानव विकास के रास्ते में आ खड़े होते हैं। इस संदर्भ में हमारी रुचि भारत पर ही लक्षित है लेकिन हम अन्य राष्ट्रों के संदर्भ में और इसके साथ-साथ वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय स्थितियों पर नजर डालेंगे।

10.2 आर्थिक विकास के वृद्धि मॉडल

इस अनुभाग में हम विकास के ऐसे प्रबल विचारों और मूल पाठ की चर्चा करेंगे जिन्हें नकार दिया गया और जो निरंतर आर्थिक विकास पर चर्चा के उपरांत जन की परिकल्पना को बनाएं रखते हैं। इससे पहले कि हम विकास के इस मॉडल के अग्रणी विचारकों और कुछ विशेषताओं और सिद्धांतों की चर्चा करें, आइए पहले विकास की संकल्पना की दर्शनशास्त्रीय और संकल्पनात्मक वंशावली पर नजर डालें।

''आर्थिक विकास'' या ''विकास'' ऐसा शब्द है जिसका अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों, नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों और आम लोगों ने भरसक इस्तेमाल किया कि 20वीं शताब्दी के अंत में एक आम (घरेलू) शब्द बन गया। हालांकि यह संकल्पना, शताब्दियों से पश्चिम में मौजूद रही है। आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण और विशेष रूप से उद्योगवाद ऐसे अन्य शब्द हैं जिनका प्रयोग लोगों ने आर्थिक विकास की चर्चा के दौरान किया है।

MAADHYAM IAS

विकास शब्द का प्रयोग हमेशा से प्रगति के विचार से संबद्ध है। प्रगति की संकल्पना आगे अपनी जड़ों को विकास की संकल्पना में पाती है जिसने 19वीं शताब्दी के बुद्धिजीवियों की कल्पना पर पकड़ हासिल की थी। उदाहरणार्थ, जब आगस्ते काम्त ने जब समाज की तरक्की के बारे में बात की तो उन्होंने ऐसे समाजों की परिकल्पना की जो सरल से जटिल की अग्रसर थी लेकिन थीं, फिर भी तर्कसंगत और वैज्ञानिक आधारयुक्त। इससे यह भी पता चलता है कि गैर-वैज्ञानिक संस्कृति प्रधान समाज से तर्कसंगता और वैज्ञानिक आधार की प्रधानतता वाले समाज की ओर बढ़ना। अत: जब उत्तर-औपनिवेशिक जगत के नए स्वतंत्र राष्ट्रों ने स्वयं को विकसित करने का प्रयास किया तो आधुनिक तर्कसंगत विचारों को अपनाने को अपेक्षित विचार काफी असरदार था।

आधुनिकीकरण के साथ-साथ एक अन्य घनिष्ठ संकल्पना जो नजर आई, वह उद्योगवाद की थी जैसा कि हमने उल्लेख किया था, प्रगति का विचार अपने निहितार्थों में विकासवादी और रैखिक था। इसलिए अविकसित देशों को यहां तक कि बुनियादी ढाँचों और ऐसी दशाओं के रोपण से ही ऐसे चरण से गुजरना पड़ा जो कि पहले से ही विकसित था। विकसित देशों का औद्योगिक आधार पहले से ही सुदृढ़ था और नि:संदेह वे सभी उद्योगवाद की सामाजिक प्रक्रिया के इतिहास से होकर गुजरे थे। जब हम आमदनी या बड़े उद्योगों की दृष्टि से वृद्धि की हिमायत करने वाले आर्थिक विकास के कुछ सिद्धांतों की जांच करते हैं तो पाते हैं कि वे उस समय के सिद्धांतों से काफी प्रभावित थे। आइए इन सिद्धांतों में से कुछ पर संक्षेप में नजर डालें। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर बहुत से देश अपने राष्ट्रों को उसी तरह आगे बढ़ाने का संघर्ष कर रहे थे जिस तरह पिछले उपनिवेशन देशों ने किया था। इस काल में अपनाने योग्य विविध सिद्धांत थे :

क) **रैखिक चरण वृद्धि सिद्धांत (Linear Stage Growth Theory)**: जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था, विकास के विविध चरणों का विचार, विकासवाद के विचारों को जाता है जिसका श्रेय एडम स्मिथ और कार्ल मार्क्स को जाता है। सर्वप्रथम एडम स्मिथ ने पाया कि प्रत्येक समाज चार चरणों से होकर गुजरता है। ये हैं : शिकार करना, पशु चराना, कृषि संबंधी और विनिर्माण संबंधी चरण। कार्ल मार्क्स के अनुसार ऐसे चरण हैं जिनसे प्रत्येक समाज को अवश्य गुजरना चाहिए। ये हैं : सामंतवाद, पूँजीवाद, समाजवाद और साम्यवाद। वाल्ट डब्ल्यू रोस्तो ''वृद्धि के चरण'' मॉडल इन विचारों में जुड़ने वाला एक अन्य विचार है। यह तर्क कि विकसित देशों का अपने कृषि जीवन-निर्वाह समाजों को आधुनिक औद्योगिक दीर्घकायों में तबदील करने का ऐतिहासिक अनुभव विकासशील देशों को बहुत सी बातें सिखा सकता है, से रोस्तो के चरण सिद्धांतों का गठन हुआ (रोस्तो विकास सिद्धांत के लिए इकाई 5 देखें)

ख) **संरचनात्मक-परिवर्तन मॉडल**: हैरोड और डोमर की हिदायतों के मद्देनजर जिनका मानना है कि अधिकांश गरीब देशों में विकास के मार्ग की मुख्य अड़चन नयी पूँजी निर्माण का सापेक्षित निम्न स्तर है। आर्थर ल्यूइस, वृद्धि मॉडल पर एक और नया विचार सामने रखते हैं कि उद्योगों में निवेश, ग्रामीण लोगों को शहरी क्षेत्रों की ओर खींचते हैं जिससे अधिक मजदूरी मिलने से उनके जीवन का स्तर भी बेहतर बनेगा। इसके अलावा, पारंपरिक कृषि क्षेत्रों में जैसा कि श्रम उत्पादकता का स्तर इतना निम्न था कि लोगों का ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़ने का भी सही मायने में उत्पादन पर कोई असर नहीं होगा। असल में गांव की बाकी के लोगों को उपलब्ध भोजन की मात्रा बढ़ जायेगी जिसे कि पहले और कम लोगों में बांटा था। इससे अधिशेष उत्पन्न हो सकता है जिसे आमदनी बनाने के लिए बेचा जा सकता है।

ल्यूइस के अनुसार, गांव छोड़कर शहर में बसने वालों की आमदनी में बढ़ोतरी होगी जिससे अधिक बचत होगी। बचत और निवेश के अभाव में विकास नहीं होता था। इस तरीके से बचत और निवेश को बढ़ाकर विकास किया जा सकता है। श्रम की माँग वाले वर्तमान औद्योगिक क्षेत्र ने ऐसी आमदनी दी जिससे खर्च और बचत दोनों कार्यों को पूरा किया जा सकता था। इससे स्वतः मांग उत्पन्न होगी और निवेश के लिए निधियाँ भी मिलेगी। औद्योगिक क्षेत्र से उत्पन्न आय से उम्मीद थी कि इसका असर अर्थव्यवस्था के निम्नतम लोगों तक जायेगा।

MAADHYAM IAS

तीसरी दुनिया के देश कहलाने वाले ने इन मॉडलों की आलोचना की थी। उन्होंने जो समीक्षा की वह इन पश्चिमी मॉडलों के निहित स्वार्थों पर लक्षित थी (पिछली इकाइयों में आपने इनका अध्ययन अवश्य किया होगा) जब निर्भरता सिद्धांतों द्वारा सृजित प्रहार का असर कम हुआ तो नव-क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के कुछ नये सिद्धांतों को विकसित किया जिन्हें नव-क्लासिकी प्रहार-क्रांति के रूप में जाना जाता है।

ग) **नव-क्लासिकी प्रहार-क्रांति**: निर्भरता सिद्धांतों की तरह नहीं जिनका मानना था कि अल्पविकास अत्यंत बाहरी अभिप्रेरण आधारित परिघटना है, नव-क्लासिकी प्रहार-क्रांति के समर्थकों का मानना है कि अल्पविकास आंतरिक अभिप्रेरणा आधारित परिघटना है। इनका तर्क है कि अल्पविकास, लागत निर्धारण की गलत नीतियों के कारण खराब संसाधन आबंटन का नतीजा है। तीसरी दुनिया के देश अल्पविकसित हैं क्योंकि राज्य का सर्वाधिक वर्चस्व और भ्रष्टाचार और विकासशील देशों में व्याप्त अनिपुणता और आर्थिक प्रोत्साहनों का अभाव। इस सिद्धांत के अनुसार ऐसी अनुज्ञात्मक सरकारों के संदर्भ में खुले और मुक्त बाजार और अहस्तक्षेप (अर्थव्यवस्था) जो संसाधन आबंटन का मार्गदर्शन करने और आर्थिक विकास को बढ़ाने में बाजार स्थलों के करिश्मे और बाजार कीमतों की अदर्शनीय छवि की अनुमति देता हो।

10.3 विकास के वृद्धि-उन्मुख सिद्धांतों की समीक्षा : साकल्यवादी परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता

उपर्युक्त सिद्धांतों द्वारा प्रदत्त हिदायतों को नव स्वतंत्र राष्ट्रों की पहली पीढ़ी ने अपनाया। उन्होंने आमतौर पर इस बात को माना कि वे अपने पारंपरिक स्वरूप की वजह से निर्धन थे और गुजर-बसर के लिए उन्होंने खेतीबाड़ी आधारित उत्पादन का रास्ता चुना था। इसी वजह से जैसा कि भारत में भी किया था, भारी उद्योगों में पहले निवेश किया गया। इसके परिणाम अच्छे साबित नहीं हुए और इसी वजह से अभी तक के औपनिवेशिक और नव स्वतंत्र राष्ट्र जो विकास की सीढ़ी चढ़ने की होड़ में थे उन्होंने इन सिद्धांतों की काफी आलोचना की। इन सिद्धांतों पर बल देना, आर्थिक और गूढ़ दर्शनशास्त्रीय पूर्वधारणाओं का एक अनुक्रम था जो कि अत्यधिक पश्चिमी उन्मुख था।

ऐसे कुछ सिद्धांतों, विशेष रूप से रोस्तो के सिद्धांतों में ऐसा मानना कि अल्पविकसित देशों के विकास का कोई इतिहास नहीं है क्योंकि अभी-भी ये ''पारंपरिक समाज'' के रूप में पहले चरण में ही खड़े हैं एक ऐतिहासिक प्रस्ताव है। ऐसा सुझाव है कि अल्पविकास कहलाने वाले ऐसे देशों को विकास का कोई इतिहास नहीं है। औपनिवेशिक इतिहास की जांच दर्शाती है कि यह सच नहीं है। अधिकांश पारंपरिक मुकुलित उद्योगों को जानबूझ कर विध्वंस कर दिया गया। भारत में सूती कपड़ा उद्योग की तबाही इसका एक उदाहरण है। औपनिवेशिक इतिहास में ऐसे असंख्य उदाहरण हैं।

इसके अलावा, उपभोग और भारी निवेश पर जोर देने वाले क्लासिकी और नव-क्लासिकी सिद्धांतों को अस्थिर और क्षणभंगुर पारिस्थितिकीय संतुलन को प्रभावित करने वाला पाया गया। प्रतिस्पर्धा के लिए मॉडल के रूप में विकसित पश्चिम को प्रस्तुत करके, जैसा कि रोस्तो के मॉडल के अंतिम चरण का सुझाव है, असमानता की भावना निरंतर कायम होती है क्योंकि अधिकाधिक देश चुनिंदा संसाधनों के लिए होड़ करते हैं। हमेशा से अमीर और शक्तिशाली वर्ग हैं जो हमेशा धरती के संसाधनों तक पहुंच कायम करके असाम्य स्थिति पैदा करते हैं। विश्व की आबादी का सिर्फ एक-तिहाई भाग विकसित देशों से बना है, जो विश्व संसाधनों के लगभग 80 फीसदी भाग का उपभोग करते हैं। इसी वजह से विकासशील जगत के लिए विशाल उपभोग का लक्ष्य असंभव है क्योंकि लोगों की विशाल संख्या के लिए उपभोग के इस स्तर को कायम नहीं रखा जा सकता।

MAADHYAM IAS

ऐसे कुछ बातें न केवल लेटिन अमेरिका के निर्भरता सिद्धांतों के पक्ष समर्थकों ने ही, बल्कि तीसरी दुनिया के सभी देशों ने भी इन्हें उठाया और जब पारिस्थितिकी और पर्यावरण की दशा पर और अधिक तथ्य और आंकड़े, विशेष रूप से 1990 के भू शिखर में सामने आ तो पता चला कि वृद्धि मॉडल स्थायित्व से काफी दूर थे।

उपर्युक्त चर्चित अधिकांश सिद्धांत पूँजी और विनिर्माण के समर्थक हैं। धीरे-धीरे पाया गया कि अधिशेष और अधिक धन अर्जन से खुशहाली नहीं मिलती। विकास समीक्षा में आर्थिक और पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्यों के अलावा सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से भी काफी आलोचना की प्राप्ति हुई। पुराने उपागमों में संशोधन और ऐसे नये उपागम थे जिन्होंने मानव नजरियों को संबोधित किया जैसे कि मानव संसाधन विकास उपागम और बुनियादी मानव आवश्यकता उपागम।

मानव संसाधन विकास उपागम ने पूँजी संचयन के लिए आगे मानव सामर्थ्य को एक साधन के रूप में देखा। ऐसे वस्तु उत्पादन जो कि स्वयं में एक अंतिम रूप नहीं थे, मनुष्य इनकी आपूर्ति का एक हिस्सा थे। कल्याणकारी नमूना और बुनियादी आवश्यकता उपागम ने मनुष्यों

को सक्रिय सहभगियों की बजाये विकास के लाभार्थियों के रूप में देखा। बुनियादी आवश्यकता उपागम के अनुसार रोटी, पानी, मकान जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की व्यवस्था का विशेष महत्व है। बड़े रूप में ये मनुष्यों को विकास के लक्ष्य के रूप में नहीं देखते।

1980 के अंत में और 1990 के आरंभ में विकास समीक्षा की ऐसी शृंखला शामिल थी जिसका उदय समाजशास्त्र और मानवशास्त्र दायरे से हुआ। इन समीक्षाओं ने विकास के बुनियादी दर्शनशास्त्रीय और मीमांसीय अभिविन्यास पर सवालिया निशान लगा दिया। उनका मानना था कि प्रकृति पर प्रभुत्व कायम करने और इतिहास के गैर रैखिक नजरिए पर लक्षित विकास के मूल पाठों की आलोचनात्मक जाँच की जानी चाहिए। सांस्कृतिक मूलपाठ के रूप में विकास के विश्लेषण पर और वास्तविकता को बनाने और इसे परिभाषित करने में इसकी भूमिका पर ये उपागम मूलतया लक्षित हैं। इस दायरे में बहुत से मानवशास्त्री (न कि सभी) विकासोत्तर युग के प्रति युद्धोत्तर विकास के समूचे मीमांसीय और राजनीतिक क्षेत्र के बहिष्कार/पुनर्गठन की मांग करते हैं। उनका तर्क है कि विकास के मूलपाठों और विचारधारा की व्याप्ति, विकास उद्यम की ऐतिहासिक और राजनीतिक सच्चाइयों को कृत्रिम रूप देती हैं। ऐसा तर्क है कि विकास मूलपाठ प्रतिनिधित्व के क्षेत्र या आधिपत्य विश्वदृष्टिकोण के रूप में काम करते हैं जो तीसरी दुनिया के लोगों की पहचानों को व्यवस्थित ढंग से एक शक्ल देते हैं और इनका सृजन करते हैं और लोगों की खुशहाली की प्राप्ति के लिए वैकल्पिक सिद्धांतों के बारे में सोचने की अनुमति नहीं देते। इस किस्म की उत्तर विकास समीक्षा से संबद्ध लेखकों में आर्टूरो एस्कोबर (1995), वोल्फगैंग सैच, (1992), राहनेमा और बाट्री (1997) के नाम अग्रणी हैं। ये ऐसी समीक्षाएँ हैं जैसी कि खुशहाली क्या है जैसे मुद्दे पर एक साथ बहुत से प्रश्न उठाने वाली समीक्षाएँ। दरअसल, आय या धन के राष्ट्रीय औसतन, आय वितरण की सही स्थिति को काबू नहीं करते। धीरे-धीरे, महसूस किया जाने लगा कि विकास को खुशहाली के ऐसे बहुविध पहलुओं पर पकड़ बनानी है जो मनुष्यों की न केवल रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य तक पहुंच आदि जैसी बुनियादी आवश्यकताओं पर ही बल्कि स्त्री-पुरुष समानता जैसे सामाजिक मुद्दों और स्थायित्व के मुद्दों पर को भी संबोधित करती है। साकल्यवादी परिप्रेक्ष्य का धीरे-धीरे 1980 के अंत में और 1990 में विशेष रूप से केंद्रबिंदु के रूप में आगे किया गया। समाजों की तुलनात्मक छवियों पर ध्यान देने के लिए ऐसी विविध विधियों की प्राप्ति करने का प्रयास किया गया जो प्रति व्यक्ति आय आदि की बजाय इन सामाजिक मुद्दों पर अपना ध्यान केंद्रित करती हैं। जिन देशों को काफी समृद्ध माना जाता था ऐसा जरूरी नहीं था कि इनकी आय में समानता अधिक होगी या मानव अधिकारों पर इनके अभिलेख अच्छे होंगे। ऐसे बहुत से कारकों पर विचार किया गया जिन्होंने मानव विकास कहलाने वाली जन की समग्र खुशहाली पर अपना ध्यान केंद्रित किया।

MAADHYAM IAS

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) ऐसा पहला कार्यक्रम था जिसने वर्ष 1990 में अपनी रिपोर्ट दी जिसने विकास के मानव पहलू पर ध्यान केंद्रित किया। राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के महत्व को सही ठहराते हुए यह रिपोर्ट जानना चाहती थी कि किस प्रकार ऐसी वृद्धि, विविध समाजों में मानव विकास को अनूदित करती है या ऐसा नहीं कर पाती। आइए मानव विकास रिपोर्ट कहलाने वाली इस प्रारंभिक रिपोर्ट की जांच करें जिसे परियोजना निदेशक महबूब-उल-हक की अगुवाई में पूरा किया गया।

चिंतन और कार्रवाई: 10.1

विकास मूलपाठ (प्रवचन) का निश्चित परिणाम, कम विकसित राष्ट्रों की विकसित राष्ट्रों के तरीकों का न केवल प्रौद्योगिकियों की दृष्टि से बल्कि जीवन शैलियों की दृष्टि से भी नकल मारना रहा है। हमारे अपने भारतीय संदर्भ में अपेक्षित समूह-होड़ करने वाला समूह-धनी और शहरी लोग रहे हैं। अमीरी का चिन्ह सिर्फ मनुष्य धन

ही नहीं है बल्कि ऐसा बंधन है जो आपको धनी और और आधुनिक दर्शाता है। जैसे, ग्रामीण समाज में घासफूस के घर की तुलना में सीमेंट के बने पक्के घर को तरजीह दी जाती हैं। आधुनिक और विकसित प्रौद्योगिकियों और जीवनशैलियों को नकल मारने और अपनाने के ऐसे बहुत से उदाहरण हैं इस संदर्भ में ऐसे बहुत से प्रश्न उभरते हैं।

1) आपकी राय में उदाहरणार्थ, विशेष रूप से तपती धूप वाले मौसम में वस्तुकला की दृष्टि से आधुनिक अभिरूचियाँ पर्यावरणीय दृष्टि से उचित हैं।
2) क्या आप अनुकरण के अन्य तत्वों के बारे में सोच सकते हैं जो आपकी राय में पर्यावरणीय और आर्थिक दृष्टि से अनुचित हैं?
3) ऐसे कुछ उदाहरण दीजिए जो आपकी राय में ग्रामीण भारत के संदर्भ में अच्छे विकास कार्यक्रम हैं, बताइए कि आपकी राय में ये अच्छे उदाहरण क्यों हैं।

10.4 मानव विकास प्रतिवेदन: आय से सांस्कृतिक स्वतंत्रता तक

मानव विकास रिपोर्ट, 1990, रिपोर्ट की शृंखला में पहली रिपोर्ट थी जिसने विकास संबंधी वाद-विवादों के केंद्रबिंदु में आम लोगों को लक्षित किया। जैसा कि इस रिपोर्ट की प्रस्तावना में रेखांकित है : विकास का उद्देश्य लोगों को और अधिक विकल्प प्रदान करना है। उनका एक विकल्प है : अंतिम उद्देश्य के रूप में ही आमदनी तक पहुंच न बनाना बल्कि मानव खुशहाली की प्राप्ति के साधनों के रूप में इस तक पहुंच बनाना। लेकिन इसके अलावा, दीर्घायु, ज्ञान, राजनीतिक स्वतंत्रता निजी सुरक्षा, सामुदायिक सहभागिता और निश्चिय मानव अधिकारों समेत और भी बहुत से विकल्प हैं। जन को आर्थिक रचना के रूप में एक ही आयाम तक सीमित नहीं किया जा सकता (मानव विकास रिपोर्ट 1990 : iii)।

रिपोर्ट अनिवार्यतया विकास के उन पहलुओं की ओर इशारा करती हैं जो मानव आयामों पर अपना ध्यान केंद्रित करते हैं। इसका अर्थ, वृद्धि मॉडलों जैसे पूर्व वर्णित विकास के मॉडल से ही नहीं है। रिपोर्ट से आशय है : व्यावहारिक गूढ़ ज्ञान के आसवन के लिए व्यावहारिक देशी अनुभव का विश्लेषण करना। इसका उद्देश्य विकास के किसी विशिष्ठ मॉडल के बारे में न तो प्रचार करना है और न ही इसकी सिफारिश करनी है। इसका उद्देश्य सभी नीति निर्माताओं के पास उपलब्ध अनुभव को प्रासंगिक बनाना है (वही)।

मानव विकास रिपोर्ट, मानव विकास के नीति विश्लेषण और इसे मापने में अपना योगदान देती हैं। जहां पहली रिपोर्ट मानव विकास की गूढ़ धारणा पर ध्यान देती है, वहीं बाद की रिपोर्टों ने मानव विकास के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जैसे विशिष्ट पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया है। नवीनतम रिपोर्ट, उदाहरणार्थ आज के विविधता से जुड़े जगत में सांस्कृतिक उदारता पर जोर देती है। रिपोर्ट, आंकड़ों और तथ्यों के माध्यम से जटिल और अनियंत्रित परिघटनाओं और सांस्कृतिक उदारता और सांस्कृतिक विविधता जैसी संकल्पनाओं पर अपनी पकड़ बनाने का प्रयास करती है। मानव विकास रिपोर्ट, 2004 के अनुसार, मानव विकास के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा की तुलना में अच्छा जीवन स्तर और राजनीतिक स्वतंत्रता की जरूरत है। जन की सांस्कृतिक पहचानों को अवश्य ही मान्यता मिली चाहिए और राज्य द्वारा इन्हें एक निर्धारित दर्जा भी मिलना चाहिए और जैसा कि अपने जीवन के अन्य पहलुओं में व्याप्त पूर्वाग्रहों की तुलना में लोगों को अपनी पहचानों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी ही चाहिए। संक्षेप में सांस्कृतिक उदारता एक मानव अधिकार है और मानव विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू और इसलिए राज्य का इसके प्रति कुछ करना और ध्यान देना आवश्यक है (एच.डी.आर. 2004 : 6)।

आइए अब मानव विकास की 1990 से 2004 तक की रिपोर्टों और विविध विषयवस्तुओं पर नजर डालें (स्रोत : यू.एन.डी.पी. org)

1990, मानव विकास की संकल्पना और माप

इस रिपोर्ट में इसके मुख्य मुद्दे और इस प्रश्न पर कि किस आर्थिक वृद्धि, मानव विकास को अनूदित करती है या ऐसा करने में विफल है, पर ध्यान केंद्रित किया गया है। मुख्य ध्यान जन पर और किस प्रकार विकास इनकी पसंदों को विकसित करती है, पर आधारित है। रिपोर्ट मानव विकास के अर्थ और माप और नव सम्मिश्रित सूचकांक को प्रस्तावित करने की चर्चा करती है।

1991, मानव विकास वित्तीयन

वित्तीय संसाधनों की बजाय राजनीतिक वचनबद्धता का अभाव, असल में मानव विकास का मूल कारण है। यह मानव विकास रिपोर्ट, 1991 का निष्कर्ष है और विषय पर वार्षिक रिपोर्ट की श्रृंखला में दूसरा अंक है।

1992, मानव विकास के वैश्विक आयाम

आबादी की सर्वाधिक 20 प्रतिशत धनी वर्ग, इस समय निर्धनतम 20 प्रतिशत की तुलना में 150 गुना ज्यादा आमदनी प्राप्त करता है। रिपोर्ट इस स्थिति से परे हटने के लिए द्वि-धारी रणनीति का सुझाव देती है। पहला, अपने लोगों में भारी मात्रा में निवेश और राष्ट्रीय स्तर पर प्रौद्योगिकीय क्षमता को सुदृढ़ करके कुछ विकासशील देशों को अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में तेज होड़ लगाने के योग्य बना सकते हैं (साक्ष्य, ईस्ट एशियन इंडस्लाइजिंग टाइगरस)। दूसरा, संयुक्त राष्ट्र के दायरे में ब्रेटन वुड्स इंस्टीटयूशनस एंड सैटिंग आफ ए डेवलपमेंट सेक्युरिटी काउंसिल समेत कुछ बुनियादी अंतर्राष्ट्रीय सुधारों की व्यवस्था होनी चाहिए।

1993, जन-सहभगिता

रिपोर्ट जांच करती है कि किस प्रकार और किस सीमा तक जन ऐसी घटनाओं और प्रकमणों में भाग लेते हैं जो उनके जीवन को एक रूपरेखा देती है। वह जन सहभागिता के तीन प्रमुख साधनों : जन-हितैषी बाजार, विकेंद्रीकृत अधिशासन और सामुदायिक संगठन विशेष रूप से गैर संगठनों (एन.डी.ओ.) पर ध्यान केंद्रित करती है और बढ़ती बेरोजगारी, बढ़ती समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने के लिए नीति संबंधी ठोस उपायों का सुझाव देती है।

MAADHYAM IAS

1994, सुरक्षा के नये आयाम

रिपोर्ट मानव सुरक्षा की नयी संकल्पना को पेश करती है जो राज्य क्षेत्र की बजाय जन से और हथियारों की बजाय विकास से सुरक्षा को समीकृत करती है। यह मानव सुरक्षा के राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों किस्म के गूढ़ मुद्दों की भी जांच करती है।

1995, लिंग और मानव विकास

रिपोर्ट, पिछले कुछ दशकों में लिंग असमानता को कम करने में प्राप्त प्रगति का विश्लेषण करती है और महिलाओं के बढ़ते सामर्थ्य और सीमित अवसरों के बीच के विस्तृत और निरंतर अंतराल को उजागर करती है। वैश्विक पैमाने पर लिंग समानता में देश के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें क्रमबद्ध करने के लिए दो नये उपायों को पेश किया गया है और इसके बाद महिलाओं के कार्य को गैर-मान्यता दे देना और उनके कार्य के अवमूल्यांकन का विश्लेषण करना शामिल है। अंत में रिपोर्ट आने वाले दशक में जेंडर अवसरों को समीकृत करने के लिए पांच-सूत्रीय कार्यनीति पेश करती है।

1996, आर्थिक वृद्धि और मानव विकास

रिपोर्ट में इस बात पर तर्क किया गया है कि यदि आर्थिक वृद्धि की देखरेख सही ढंग से न की जाये तो इससे बेरोजगारी, एकाकीपन, बर्बरता, अस्तित्वहीनता और घोर अंधकार की

प्राप्ति होगी और जो कि मानव विकास के लिए हानिकारक है। वृद्धि की किस्म की उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी की गरीबी हटाने, मानव विकास और स्थायित्व कायम करने के लिए इसकी परिमात्रा।

1997, मानव विकास के लिये गरीबी उन्मूलन

हर जगह नैतिक अनिवार्यता की बजाय गरीबी को दूर करने का अधिक महत्व है; बजाय इसके, यह एक व्यावहारिक संभाव्यता है। डवैलपमेंट रिपोर्ट 1997 में उपर्युक्त रिपोर्ट का यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण संदेश है। विश्व के पास एक ही पीढ़ी से भी कम समय जितने समय में गरीबी-मुक्त विश्व बनाने के संसाधन और तकनीक है।

1998, मानव विकास के लिए उपभोग

आज विश्व में उपभोग और उत्पादन के स्तर जितने ऊंचे होंगे, प्रौद्योगिकी और सूचना की शक्ति और सामर्थ्य उतने ही अधिक अवसर हम देंगे। सौ वर्षों के विशाल भौतिक विस्तार के बाद क्या होता और आम जनता 21वीं शताब्दी में और अधिक साम्य और मानव उन्नति की प्राप्ति और ऐसी चेष्टा करने का दृष्टिकोण रखते हैं?

1999, मनुष्य की छवि वाला वैश्वीकरण

वैश्विक बाजार, वैश्विक प्रौद्योगिकी, वैश्विक विचार और वैश्विक एकजुटता, हर जगह जन जीवन को समृद्ध बना सकते हैं। यह सुनिश्चित करना, एक चुनौती है कि फायदों के समानता से बांटा जायेगा और ऐसी वर्धित अंत:निर्भरता, मात्र मुनाफे के लिए नहीं बल्कि लोगों के लिए कारगर सिद्ध हेगी। रिपोर्ट में तर्क है कि वैश्वीकरण कोई नयी बात नहीं है लेकिन प्रतिस्पर्धात्मक वैश्विक बाजारों से चालित वैश्वीकरण का मौजूदा युग बाजारों पर नियंत्रण करने की स्थिति में नहीं है और जिसका प्रभाव लोगों पर पड़ रहा है।

2000, मानव अधिकार और मानव विकास

मानव विकास रिपोर्ट, 2000 विकास के मूलभाग के रूप में मानव अधिकारों पर और मानव अधिकारों को महसूस कराने के साधनों के रूप में विकास पर ध्यान देती है। इससे पता चलता है कि किस प्रकार मानव अधिकार, मानव विकास की प्रक्रिया में जवाबदेही के सिद्धांतों और सामाजिक न्याय को शामिल करते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

2001, नई प्रौद्योगिकियों के निर्माण को मानव विकास के लिए कारगर बनाना

प्रौद्योगिकी नेटवर्क, विकास के पारंपरिक नक्शे में बदलाव ला रहे हैं और जन के दृष्टिकोण को विस्तृत कर रहे हैं और ऐसा सामर्थ्य बना रहे हैं जिसे एक ही दशक की प्रगति में महसूस किया जा सके जिससे कि पहले साकार करने में पीढ़ीयों जितना समय चाहिए था।

2002, खंडित विश्व में लोकतंत्र की जड़ों को गहरा करना

यह रिपोर्ट मुख्य रूप से इस विचार पर केंद्रित है कि राजनीति भी सफल विकास में उतनी ही जरूरी है जितनी की अर्थनीति। स्थायी रूप से गरीबी से मुक्ति के लिए साम्य वृद्धि की जरूरत है, लेकिन इसके लिए गरीब लोगों के पास राजनीतिक सत्ता का होना भी जरूरी है और इसकी प्राप्ति का श्रेष्ठ तरीका, समाज के सभी स्तरों पर लोकतांत्रिक अभिशासन को मजबूत और गूढ़ स्वरूपों का निर्माण करना है।

2003, सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य : मानव निर्धनता की समाप्ति के लिए राष्ट्रों में आपसी समझौते

विश्व में मानव विकास का क्षेत्र (रेंज) विस्तृत और असमुचित है। जहां कुछ क्षेत्रों में अभूतपूर्व तरक्की जबकि कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां अभी भी अंधकार है। विश्व में संतुलन और स्थायित्व के लिए सभी राष्ट्रों और धनी और निर्धन के बीच वचनबद्धता कायम करने की और जन के लिए संभावनाओं के खजाने का विस्तार करने वाले वैश्विक विकास समझौते की जरूरत होगी।

2004, विविधता वाले मौजूदा विश्व में सांस्कृतिक उदारता

लोकतंत्र और साम्य वृद्धि की तुलना में लोगों की नृजातिविषयक, धर्म और भाषा की दृष्टि से, समाज में उन्हें शामिल करने के लिए उनकी बढ़ती जरूरतों को पूरा करने का अधिक महत्व है। इसके अलावा बहुसांस्कृतिक नीतियों की जरूरत है जो मतभेदों, विशेषज्ञता आधारित विविधता को मान्यता देते हैं और सांस्कृतिक स्वतंत्रता को बढ़ावा देते हैं ताकि सभी लोग अपनी बोली बोलने का चयन कर सकें, अपने धर्म को चला सकें और अपनी संस्कृति की छवि बनाने में भाग ले सकें ताकि लोग जो बनना चाहते हैं, वे ऐसी प्रक्रिया का चयन कर सकें। जैसा कि हमने उपर्युक्त रिपोर्टों में देखा कि ये बहुत से ऐसे पहलुओं और विकल्पों को पकड़ने का प्रयास करते हैं जो मनुष्य के विकास के लिए, उनके पास होते हैं या नहीं भी होते। पिछले कई वर्षों से ऐसे बहुत से सूचकांक विकसित किए गए हैं ताकि मानव विकास के बहुत से पहलुओं पर पकड़ बनाई जा सके और इसके साथ-साथ इससे मिलती-जुलती छवि प्रस्तुत की जा सकें। अतः ऐसा लगता है कि इन रिपोर्टों के माध्यम से हम विकास की विस्तृत परिधि को देख सकते हैं जो मनुष्यों की बदलती प्रक्रियाओं, स्थितियों और विकल्पों पर ध्यान केंद्रित करती है। आपको हैरत होगी कि मानव विकास किस बारे में हैं। यह सही नहीं है बल्कि जो भी है वह सब इसी में निहित है। आइए आगामी अनुभाग में समझें कि 'मानव विकास' है क्या।

10.5 मानव विकास क्या है?

मानव विकास की धारणा अनिवार्यतया मानव पर विकास के ऐसे सभी मूलतत्वों के मद्देनजर ध्यान केंद्रित करती है जो मनुष्य को रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य आदि जैसी जीने की बुनियादी जरूरतों की दृष्टि से ही मनुष्य का दर्जा नहीं देती, बल्कि मान-मर्यादा की भावना की दृष्टि से भी उसे मनुष्य समझती है जिसे एडम स्मिथ समाज में बिना शर्म के महसूस किए दूसरों के साथ मिलने-जुलने की योग्यता है (एच.डी.आर. 1990 : 10)।

MAADHYAMIAS way to achieve your dream

यह लोगों के विकल्पों को व्यापक बनाने की प्रक्रिया है। मानव विकास उपागम, वृद्धि के पिछले मॉडलों की तुलना में आमदनी को जन विकास के अंतिम लक्ष्य की बजाय, इसका एक साधन मानता है। महसूस किया गया है कि आय वृद्धि और मानव प्रगति के बीच कोई स्वचालित संबंध नहीं है। एच.डी.आर., 1990 के मुताबिक, मानव विकास शब्द का अर्थ यहां लोगों के विकल्पों को विस्तृत करने और उनके द्वारा हासिल खुशहाली का स्तर है मानव विकास के दोनों पहलुओं के बीच के अंतरों को सही तरीके से स्पष्ट करने में भी यह सहायक हैं। ये पहलू हैं : बेहतर स्वास्थ्य या ज्ञान जैसी मानव क्षमताओं का गठन और मनुष्यों द्वारा अर्जित क्षमताओं का उनके द्वारा इस्तेमाल। पिछले सिद्धांतों और मॉडलों की तुलना में मानव विकास उपागम, न केवल बुनियादी आवश्यकताओं और आमदनी जैसे मुद्दों को ही शामिल करने, बल्कि लोगों के ऐसे विकल्पों को भी शामिल करने के लिए संकल्पना को विस्तृत करता है जिनके आधार पर लोग स्वयं को सिर्फ लाभार्थी न समझें बल्कि जिनसे वे उनकी गुजर-बसर सुनिश्चित करने के योग्य बन सकें। मानव विकास, इसके अलावा, सिर्फ बुनियादी तुष्टि से ही संबद्ध नहीं है बल्कि सहभगितापरक गतिशील प्रक्रिया के रूप में भी इसका एक स्थान है। कम विकसित और उच्च विकसित राष्ट्रों पर इसे समान रूप से लागू किया जाता है (वही)।

बॉक्स 10.1: मानव विकास परिभाषित

मानव विकास लोगों की पसंदों को विस्तृत करने की प्रक्रिया है। सिद्धांतया ऐसी पसंदों को असीमित और परिवर्तनशील के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। लेकिन विकास के सभी स्तरों पर तीन मुख्य बिंदु हैं: लोगों का दीर्घ और स्वस्थ जीवन की

ओर बढ़ना, ज्ञान की प्राप्ति और अच्छे जीवन स्तर के लिए आवश्यक संसाधनों तक पहुंच स्थापित करना। यदि ये तीनों अनिवार्य बिंदु उपलब्ध नहीं है तो बाकी के बहुत से अवसरों तक भी पहुंच स्थापित नहीं की जा सकती।

लेकिन मानव विकास का यहां अंत नहीं होता। बहुत से लोगों की अत्यंत बड़ी आकांक्षाएं जो कि राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता से लेकर, सृजनशील और उत्पादनकारी के रूप में अवसरों की प्राप्ति और निजी आत्म-सम्मान और प्रत्याभुत मानव अधिकारों का लाभ उठाने जैसी श्रेणियों में विभाजित है।

मानव विकास के दो पहलू हैं : सामर्थ्य का गठन वैसे बेहतर स्वास्थ्य, ज्ञान और कौशल और लोगों द्वारा अर्जित ऐसे कौशलों का उनके द्वारा इस्तेमाल। यदि मानव विकास के पैमाने इन दोनों पहलुओं के बीच सही संतुलन नहीं बनाते तो मानव निराशा काफी अधिक उत्पन्न होगी।

इस संकल्पना के अनुसार, आय स्पष्ट रूप से ऐसा एक विकल्प है जिसे लेना लोग पसंद करेंगे, लेकिन उनके जीवन का यह सार नहीं है। इसलिए विकास अवश्य ही आय और संपत्ति के विस्तार से कुछ और अधिक होना चाहिए। इसका केंद्र बिंदु निश्चित रूप से जन ही होना चाहिए।
(**स्रोत**: मानव विकास रिपोर्ट, 1990)

10.6 मानव विकास को मापना

जैसा कि विकास रिपोर्टों से पता चलता है, लोग जिन विकल्पों को बनाते हैं, ऐसी प्रक्रिया है जिसे विकल्प परिवर्तन के लिए लोगों के समय और स्थान के विशिष्ट संदर्भों में समझा जा सकता है और जो संस्कृति-विशिष्ट होती है। कुछ विकल्प असंगत प्रतीत होते हैं। पिछले कई वर्षों से विविध मानव विकास रिपोर्टों ने इन पसंदों (विकल्पों) के विविध पहलुओं पर जोर दिया है। हमारे मस्तिष्क में आने वाला प्रश्न है कि यदि विकल्प विस्तृत एंव संस्कृति विशिष्ट हैं तो क्या इन्हें मापना संभव है और क्या तुलना करना संभव है। 1990 की रिपोर्ट लोगों की हर तरह की पसंदों की जटिल छवि प्रस्तुत करने की समस्या को महसूस तो करती है। इस रिपोर्ट के अनुसार बहुत से सूचकों से मिली सूचना उलझनदायक होती है और जो नीति-निर्माताओं को मुख्य प्रवृत्तियों से हटाकर उनकी दिशा बदल देती है। इसलिए जोर देना, 'मुख्य मुद्दा है' (वही)।

आरंभिक रिपोर्टों में, तीन सूचकों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया और तुलनात्मक आँकड़े प्रदान किए गए। मानव जीवन के लिए जिन तीन मूलतत्वों को अनिवार्य माना गया वे हैं: **दीर्घायु, ज्ञान और अच्छा जीवन स्तर**। मानव विकास सूचकों को मापने का कोई मानक तंत्र नहीं है। जैसे, दीघार्यु का हिसाब, सचूक के रूप में जन्म के समय दीघार्यु का पता लगाकर लगाया जा सकता है। दूसरे सूचक, ज्ञान के लिए, साक्षरता संबंधी आँकड़े मुख्य सूचक हैं। यद्यपि साक्षरता की किस्म, इसकी गुणवत्ता आदि को ले कर काफी वादविवाद हुए हैं। लेकिन साक्षरता, अभी-भी शुरुआत है और इसलिए एक अच्छा सूचक है। जैसा कि तीसरे मूलत: अच्छे जीवन के लिए सूचकों को खोजना बेहद मुश्किल है। इसके लिए भू, ऋण, आय और अन्य संसाधनों तक पहुंच स्थापित करने से संबंधित आँकड़ों की जरूरत है। आय के अलावा, अन्य सूचकों के आंकड़ें मुश्किल से उपलब्ध होते हैं और यहाँ तक कि आय का सूचक हमेशा सारी स्थिति से अवगत नहीं करता क्योंकि आमदनी का पता राष्ट्रीय स्तर पर औसतन के हिसाब से लगाया जाता है। हालांकि, खरीद की ताकत से ही लोगों की खरीद शक्ति का निर्धारण करने में मदद मिलती है।

MAADHYAM IAS

सूचकों का हिसाब लगाने की मुख्य कठिनाइयों में से एक है कि इन्हें राष्ट्रीय स्तर पर औसत के रूप में दर्शाया जाता है। औसत, समाज में मौजूद व्यापक असमानता का राज नहीं खोलती। उदाहरणार्थ, पुरूष और महिला साक्षरता के साथ-साथ धनी ओर निर्धन के बीच भी भारी असमानता है। ये असमानताएँ स्वास्थ्य, दीर्घायु और आय जैसे अन्य सूचकों में भी मौजूद हैं। इन असमानताओं को समायोजित करने के प्रयास किए गए हैं। यदि असमानता को औसत उपलब्धि का मूल्य घटाने के रूप में देखा जाता है जैसा कि अभारित माध्य द्वारा दर्शाया जाता है, तो असमानता उपायों के प्रयोग से इन्हें समायोजित किया जा सकता है। ऐसा वर्गीकरण निवारण, देश के निष्पादन के मूल्यांकन में महत्वपूर्ण बदलाव ला सकता है।

जब सांस्कृतिक स्वतंत्रता, सुरक्षा, मानव अंत:क्रिया जैसी मानव खुशहाली के अन्य अनिवार्य एवं समान मूलतत्वों पर बात आती है तो इन श्रेणियों को संकल्पनात्मक बनाने के साथ-साथ इन्हें मापना भी बेहद कठिन होता है (देखें बॉक्स 10.2)।

बॉक्स 10.2: सांस्कृतिक उदारता को मापना

सांस्कृतिक सांख्यिकी का संबंध फिल्में, पुस्तकें, थिएटर जैसी सांस्कृतिक वस्तुओं के निर्माण और खपत से है। लेकिन क्या सांस्कृतिक उदारता और नृजातीय, भाषा या धार्मिक पंक्तियों के साथ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बहिष्कार और जीवन (पद्धति) बहिष्कार जैसे इसके विलोम शब्दों को मापा जा सकता है।

जीवन (पद्धति) बहिष्कार को मापना

सांस्कृतिक पहचान को परिभाषित करने के लिए अन्य बातों के अलावा भाषा, धर्म, इतिहास, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, समारोह, पाक-प्रणाली और मूल्य एक-दूसरे से संबंध जोड़ते हैं। संस्कृति को समझने की ऐसी सभी राहें, समाज के भीतर भाषा नीतियों, विविध धर्मों के उपचार, स्कूली पाठ्यचर्चा और मनोवृत्तियों जैसी सांस्कृतिक पहचानों के बहिष्कार की राह दिखाती हैं। ऐसे मुद्दों पर सूचना इकट्ठी की जा सकती है लेकिन ऐसा करना काफी मुश्किल है। एक तो इस पर साधारण आँकड़े उपलब्ध नहीं होते, इसके अलावा, सांख्यिकी रूप से इन्हें विकसित करने की सूचना को बदलने की वैश्लैषिक चुनौती का सामना भी करना पड़ता है। इसका एक संभावित उपागम है: ऐसे मुद्दों पर विशिष्ट (गुणात्मक) मूल्यांकन जो कि बहुत सी सांस्कृतिक पहचानों के लिए महत्वपूर्ण हैं जैसे भाषा और धर्म।

सहभागितापरक बहिष्कार को मापना

नृजातीय भाषा और धार्मिक पंक्तियों के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक और अपेक्षाकृत कम सीमा तक राजनीतिक बहिष्कार पहले अधिक उन्नत है। हालांकि यह सांस्कृतिक रूप से पहचाने गए समूहों का विश्लेषण है। कुछ आँकड़ा संग्रहणों में धर्म संबंधी, नृजातीय संबंधी और भाषा पहचान संबंधी व ऐसे सांस्कृतिक समूहों पर विशेष रूप से लक्षित कुछ प्रश्न जनगणना के बाद के हुए सर्वेक्षणों में भी शामिल हैं लेकिन इनमें और अधिक व्यापकता और तुलन संबंधी योग्यता की गुंजाइश है। बहु पहचानों को अपनाने की जन को अनुमति देना, एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। राजनीतिक बहिष्कार को पकड़ना ज्यादा मुश्किल है। संसद में अभ्यावेदन और वोटदाता सह-भागिता जैसे कुछ ठोस आँकड़े हैं लेकिन अभिव्यक्ति आंदोलन और संगठन की स्वतंत्रता जैसे अन्य मुद्दों पर पकड़ बनाना अधिक कठिन है और इसके लिए गुणात्मक उपागम की आवश्यकता है।

अगले चरण

राष्ट्रव्यापी स्तर पर और अधिक काम किया जा सकता है जहाँ मुद्दे को समझने का महत्त्व शायद अधिक होगा। इसके लिए बेहतर आँकड़ा अनुवीक्षण संग्रहण की जरूरत

MAADHYAM IAS

होगी, जैसे कि सर्वेक्षण प्रश्नावलियों में पहचानों पर प्रश्नों को शामिल करना और गुणात्मक मूल्यांकनों के साथ-साथ विशिष्ट सांस्कृतिक समूहों पर लक्षित उत्तर-जनगणना सर्वेक्षण। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सांख्यिकीय निकाय की अगुवाई में इस मुद्दे पर तेजी से प्रकाश डाला जा सकता है कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कौन सा है जैसे यूनेस्को (सांख्यिकी) संस्थान ने पहले से ही संस्कृति के मापन पर पहले से ही काफी कार्य किया हुआ है। समन्वयक संस्था, सूचना इकट्ठी करने की हिमायत कर सकती है जैसा कि सांस्कृतिक पहचान पर राष्ट्रीय सर्वेक्षणों को शामिल करना और इन आँकड़ों के लिए यह मुख्य न्यासी साबित हो सकता है। सांस्कृतिक और राजनीतिक बहिष्कार के अधिक गुणात्मक क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीय संस्था बन कर बेशुमार फायदे प्राप्त किए जा सकते हैं जो कि राष्ट्रीय स्तर पर ऐसे जटिल मुद्दों के लिए व्यापक उपागमों में अपनी अग्रणी भूमिका कायम कर सकती है।

सांस्कृतिक उदारता पर सूचकांक का अभाव

संस्कृति के मुद्दों पर ही आँकड़ें बनाने की माँग कायम नहीं की गई है बल्कि इससे काफी आगे जाकर सांस्कृतिक उदारता सूचकांक बनाने की भी मांग है। मानव विकास सूचकांक और अन्य सम्मिश्रित सूचकों के पाठ का अर्थ है कि उपायों का संकल्पनात्मक ढांचे में ही निहित होना जरूरी नहीं है बल्कि इन्हें नीति की दृष्टि से प्रासंगिक और तुलनीय भी अवश्य होना चाहिए।

भेदमूलक नीति और सामाजिक व्यवहार और सांस्कृतिक समूहों द्वारा अनुभव ऐतिहासिक उपेक्षा का विस्तार जैसे मुद्दे पर पकड़ बनाने में संकल्पनात्मक और पद्धति संबंधी चुनौतियाँ असंख्य हैं।

समस्या, अनुभूति से काफी अधिक है। स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे मानव विकास के कुछ अन्य पहलुओं की तरह नहीं जहाँ बहुत से देशों की चुनौतियाँ एक जैसी हैं, बल्कि यहां सांस्कृतिक बहिष्कारों से जूझने में उत्पन्न चुनौतियों अपेक्षाकृत अधिक विविध हैं। भारत जैसे विविधता वाले देश से जापान जैसे सजातीय देश की तुलना करना कभी भी पूरी तरह संभव नहीं होगा, और कैसे यूरोप अप्रवासीय मुद्दों से निपट रहा है, लेकिन अमरीका कैसे मूल निवासियों की स्थानिय स्व:शासन की मांगों को निपटा रहा है।

(स्रोत : मानव विकास रिपोर्ट, 2004)

10.7 मानव विकास उपागम का विवेचनात्मक मूल्यांकन

जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था, मानव विकास खुशहाली के बहुत से आयामों पर ध्यान केंद्रित करता है लेकिन हमारे केंद्र बिंदु और इसे मापने और तुलना करने के योग्य बनाने के लिए, मावन विकास रिपोर्ट टीम ने मानव विकास के तीन महत्वपूर्ण मूलतत्वों पर ध्यान केंद्रित किया था। ये हैं : जीवन प्रत्याशा या दीर्घायु, ज्ञान तक पहुंच या साक्षरता और जीवन स्तर जिसे मुख्यतया आमदनी के स्तरों और इसकी खरीद क्षमता की दृष्टि से मापा जाता है।

मानव विकास सूचकांक (एच.डी.आई.) उपर्युक्त उल्लिखित तीन सूचकों पर ध्यान केंद्रित करता है। हालांकि रिपोर्टों से प्रमाणित है कि एच.डी.आई. एक उपयोगी संकल्पना है लेकिन फिर भी याद रखना जरूरी है कि मानव विकास संकल्पना ऐसे किसी भी सार उपाय की तुलना में जिसे यदि अन्य सूचकांकों से जोड़ भी दिया जाये तो एक अत्यंत विस्तृत और अधिक जटिल है। एच.डी.आई. एक व्यापक उपाय नहीं है। यह मानव विकास के महत्वपूर्ण

पहलुओं को शामिल नहीं करता विशेषकर, निर्णयों में भाग लेने की योग्यता जो समुदाय में दूसरों के आदर का लाभ उठाने के लिए किसी के जीवन को प्रभावित करती है (मानव विकास रिपोर्ट 2004 : 128)। रिपोर्ट में आगे है कि व्यक्ति धनी, शिक्षित और स्वास्थ्य हो सकता है लेकिन ऐसी विकास प्रक्रियाओं में भाग नहीं लेता जिनका उसकी खुशहाली से संबंध है। ऐसी कुछ त्रुटियां है जिन्हें मानव विकास की पहली रिपोर्टों में उजागर किया गया है। 1991 में इन गलतियों से उत्तेजित होकर, 1992 में 'मानव मुक्ति सुचकांक' और 'राजनीतिक मुक्ति सूचकांक' बनाया गया। ऐसे उपाय लोकप्रिय हुए लेकिन शीघ्र ही इसका त्याग, इस तथ्य पर किया गया कि ऐसी जटिल परिघटनाओं को निर्धारित करना काफी मुश्किल है। यद्यपि मानव विकास सूचकांक जैसों पर पकड़ बनाना काफी मुश्किल है, फिर भी बहुत सी रिपोर्टों ने लोकतंत्र, राजनीतिक स्वतंत्रता, बहुसंस्कृतिवद् आदि जैसे पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करके इस मुद्दे के महत्व को कायम रखने का प्रयास किया है। एच.डी.आई. देश की औसतन उपलब्धियों को मापती है, लेकिन प्रत्येक श्रेणी के अंतरों पर पकड़ नहीं बनाती। दो देशों के औसतन साक्षरता स्तर एक जैसे हो सकते हैं लेकिन स्त्री और पुरुषों को लेकर उनमें भिन्नता हो सकती है। मानव विकास रिपोर्ट, 1995 में पेश जेंडर संबद्ध विकास सूचकांक, मानवीय विकास सूचकांक की भाँति ही समान सूचकों के प्रयोग से समान आयामों में उपलब्धियों को मापता है लेकिन पुरुषों और महिलाओं के बीच उपलब्धि की दृष्टि से व्याप्त असमानताओं पर पकड़ बनाता है क्योंकि लिंग (जेंडर) असमानता के लिए मानवीय विकास सूचकांक को नीचे की ओर समायोजित किया गया है। बुनियादी मानव विकास में जितनी अधिक असमानता होगी, मानवीय विकास सूचकांक कि तुलना में देश का लैंगिक विकास सूचकांक उतना ही निम्न होगा। जीडीआई और एचडीआई मूल्यों के नजरिए सर्वाधिक खराब असमानता वाले देशों में सऊदी अरबिया, ओमान, पाकिस्तान, यमन और भारत जैसे देश शामिल हैं।

इसी तरह, उच्च जी.डी.पी. सूचकांक का शत प्रतिशत अर्थ मानवीय विकास सूचकांक पर आपकी उच्च स्थिति नहीं है क्योंकि खुशहाली का अर्थ सिर्फ आमदनी से ही नहीं जुड़ा हुआ। कुछ देशों ने अपनी आमदनी को और अधिक साम्य बनाने के लिए और स्वास्थ्य सुविधाएँ और शिक्षा प्रदान करने के लिए काफी प्रयास किए हैं। अतः गौतेमेला की तुलना में अति निम्न जी.डी.पी. (प्रति व्यक्ति) वाले बोलिविया जैसे देश ने उच्च एच.डी.आई. की प्राप्ति की है क्योंकि इसने उस आय को मानव विकास में बदलने के लिए काफी अधिक किया है।

MAADHYAM IAS

चिंतन और कार्रवाई 10.2

जैसा कि आपने देखा होगा, एच.डी.आई. रैंकिंग में भारत ऐसे कुछ अन्य देशों से निचले स्थान पर हैं जिनका जी.डी.पी. सूचकांक इससे भी निम्न है। भारत का जेंडर विकास सूचकांक (जी.डी.आई.) भी काफी निम्न है।

1. दक्षिण एशिया के ऐसे देशों की सूची बनाइए जिनका जी.डी.पी. भारत से निम्न हैं लेकिन एच.डी.आई. में जिनका भारत से ऊंचा स्थान है।
2. भारत में स्त्री/पुरुष व्यापक असमानता के आपकी नजर में क्या कारण हैं?
3. आपकी राय में राजनीतिक सहभागिता और स्वतंत्रता ऐसे विकास के मूलतत्व क्या जीवन प्रत्याशा और शिक्षा के समान ही या इनसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। अपने उत्तर के कारण दीजिए।

मानव विकास रिपोर्ट और एक सकारात्मक बदलाव आर्थिक विकास के वृद्धि उन्मुख उपायों और मुख्यधारावी कल्याणकारी आर्थिकता की प्रमुख समीक्षा रहा है और उस हद तक इसने अर्थव्यवस्था को मनवांछित मानवोन्मुख दिशा में बदला है। हालांकि ऐसा नहीं है कि मानव विकास उपागम में कोई दोष नहीं है। इस अनुभाग में हम ऐसे कुछ दोषों पर ध्यान केंद्रित

करेंगे और रिपोर्ट का आलोचनात्मक मूल्यांकन करेंगे। मूल्यांकन के लिए हमारा ध्यान समाजशास्त्रीय और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से विकसित है। आर्थिक दृष्टि से इस उपागम का विस्तृत विश्लेषण कर लिया गया है और इस पर अब हम एक सरसरी निगाह डालेंगे। मानव विकास रिपोर्टों पर बल देने का श्रेय अमृत्य सेन और उनके घनिष्ठ मित्र महबूब-उल' हक को जाता है। रिपोर्ट पर क्षमताओं (capabilities) जैसी संकल्पनाओं का काफी प्रभाव देखा गया और अर्थशास्त्र की शब्दावली में इस शब्द को सेन ने पेश किया था। सेन ने इस शब्द की पेशकश ऐसे विकल्पों की दृष्टि से खुशहाली के बहु-आयामी पहलू को समझने के लिए की है जो अपनी क्षमताओं के कारण लोग बना लेते हैं। क्षमता (सामर्थ्य) या विकल्प की संकल्पना ऐसी बातों की पहचान करने का प्रयास करती है कि ऐसी पसंद (विकल्प) क्या हो सकते हैं। ऐसी कुछ मूल और वैध विकल्पों में सशक्तिकरण, समता, स्थायित्व, समुदाय या समूह (हों) में सदस्यता और सुरक्षा जैसे मूलतत्वों का समावेश हो सकता है। वर्षों से प्रकाशित ऐसी रिपोर्टों की शृंखला में इन मूलतत्वों पर पकड़ बनाने के विविधि प्रयास किए गए। विविध देशों की सापेक्षिक उपलब्धियों के पैमाने के रूप में एच.डी.आई. अभी भी विकास का मुख्य सूचक बना हुआ है और जैसा कि अपथोर्प (Apthrope) जैसे कुछ आलोचकों ने इशारा किया है कि यह उपाय (पैमाना) दीर्घायु, शिक्षा और आय जैसे मदों पर ही पकड़ बनाता है जो आगे सिर्फ मानव पूँजी पर ही पकड़ बनाते हैं न कि ऐसी पसंदों पर जो लोग अपने सामर्थ्य के कारण बना लेते है। अपथोर्प जिन्हें विकास अध्ययनों में काफी प्रभावी माना जाता है, उन्होंने एक अन्य मुद्दा उठाया कि वैश्विक मानव विकास रिपोर्ट पर अर्थशास्त्रियों का काफी प्रभाव है और इसलिए यह अर्थशास्त्रीयों के प्रभुत्व से जुड़ा जगत है, चाहें वे इसे शुद्ध अर्थशास्त्र से सामाजिक आयामों की तरह मोड़ने की दलील देते हों।

अपथोर्प के अनुसार विकास रिपोर्ट में 'मानव' एक अच्छी अनुभूति को जन्म देता है, लेकिन यह गंभीर सामाजिक और राजनीतिक विश्लेषण से ध्यान हटा सकता है और इसी वजह से मावन जीवन की असल समझ से भी। प्रयुक्त सामाजिक समष्टि (aggregater) जनाकिकी प्रवृत्तियाँ और क्षेत्र हैं और इनका सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक संरचनाओं या सामाजिक समूहों की निजी श्रेणियों से कोई सरोकार नहीं है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इसके अलावा, सार्वभौमिक और वैश्विक प्रवृत्तियाँ इनमें व्याप्त असमानता को प्रतिबिंबित नहीं करते और बहुत बार ऐसी कुछ श्रेणियाँ दिक्कत उत्पन्न करती हैं। जैसे, जब हम स्वतंत्रता की बात करते हैं तो हमें यह अनुभव करना होगा कि एक विचारधारा के लोगों के लिए जिसे स्वतंत्रता समझा जा सकता है, उसे किसी अन्य विचारधारा का समूह उत्पीड़न समझ सकते हैं। जैसे कुछ महिलाएँ जो पश्चिम में अति यौनाकर्षण उपचार से बचना चाहती हैं, उनके लिए बुर्का पहनना एक स्वतंत्रता का सूचक है। 'मानव अधिकार' वाद-विवादों पर ऐसी बहुत सी आवाजों को सुना गया जिन्होंने इस किस्म के सार्वभौमिकीकरण की तरफ और इस ओर इशारा किया कि किस प्रकार ये अनिवार्यतया समुदायों और जन की श्रेणियों को नहीं दर्शाते। मानव विकास उपागम में मानव श्रेणियों के प्रति लगाए आरापों में से एक है इनकी उत्पत्ति उदार स्थिति से होती है जो व्यक्ति-विशेष आकांशाओं और अधिकारों और विकल्पों की बात करता है लेकिन विश्लेषण के गूढ़ स्तरों की नहीं।

इस बात पर भी काफी आलोचना की गई है कि श्रेणियों और शब्दों में मीमांसीय आधार नही है। आनन्या मुखर्जी रीड (2004) ने मानव विकस रिपोर्ट, 2004 की समीक्षा और बहु-संस्कृतिवाद पर इस रिपोर्ट की सिफारिश में इस ओर इशारा किया कि जहाँ रिपोर्ट, बहुसंस्कृतिवद् की पेचीदा छवि के विविध लक्षणों की पुष्टि करती है वहीं, इन लक्षणों को उत्पन्न करने वाली विशेष संरचनाओं की शक्ति पर हामी भरने से इंकार करती हैं। रीड आगे कहती हैं कि क्या मुद्दों पर बातें करने से सचमुच कुछ कम हो जाता है। जबकि ऐसे मुद्दों

में खुद ही एक पूर घटनाक्रम शामिल होता? वह ऐसा ही मानती हैं जैसा कि मार्लिन फ्राई, नारीवादी दर्शनशास्त्री जब पंछी के पिंजरे से जुड़े अपने तर्क को पेश करती हैं कि जब कोई पिंजरे की एक तार को एक-एक करके देखता है तो यह स्पष्ट नहीं होता कि किस प्रकार किसी जीवंत को कैद करने की ताकत इसमें निहित हो सकती है। लेकिन यदि पिंजरे पर नजर डाली जाये और इस दौरान इसके विशिष्ट प्रतिरूप को ध्यान में रखा जाये जो तारों के एक-दूसरे से जोड़कर इसकी कैद करने की क्षमता का पता लगता है और तब एक अलग छवि नजर आती है। यहाँ समस्या यह नहीं है कि कोई भूल-चूक हुई है। बल्कि यह एक भ्रमित प्रभाव देती है कि पिंजरा सिर्फ तारों की चारदीवारी नहीं है जिसमें से एक-एक तार को हटा कर आजादी ली जा सकती है। उनका यह भी कहना है कि न्याय की वितरित रूपावली से निश्चित रूप से इस तरह की समझ विकसित होती है। युवाओं का उसके इस तर्क की हिमायत करने के लिए वह उदाहरण देती है कि ''वितरण पर ध्यान केंद्रित करने विशिष्ट संरचनात्मक/संस्थागत संदर्भ को मिटाने की ओर प्रवृत होता है जिसके दायरे में ऐसा वितरण पनपता है, यह संदर्भ ऐसी किसी भी संरचना या व्यवहारों और नियमों और मानकों को शामिल करता है जो उनका मार्गदर्शन करते हैं और ऐसी भाषा और संकेतों पर ध्यान देता है जो राज्य की संस्थाओं, परिवार और नागरिक समाज में इनसे संबंधित अंत:क्रिया को दखल देता है (मख्खाजी रीड 2004)।''

10.8 सारांश

इसमें कोई शंका वाली बात नहीं है कि विकास के सामाजिक आयामों को लाने में मानव विकास उपागम और उसके प्रयास विकास के ऐसे वृद्धि उन्मुख और आरोही-अवरोही उपागमों से बेहतर हैं जो सही मायने में समझने का प्रयास करते हैं कि विकास लाने में मनुष्यों के प्रयास अंतिम प्रयास हैं। इस इकाई के पहले कुछ अनुभागों में हमने यह देखने का प्रयास किया कि किस प्रकार ढेर वाद-विवादों और नये उपागमों से ऐसे बदलाव को लाया गया। यह इकाई अनिवार्यतया मानव विकास की समझ को समर्पित है। चूंकि यू.एन.डी.पी. की मानव विकास रिपोर्ट इस उपागम का मूलाधार हैं इसलिए हमने इन रिपोर्टों की पूरी शृंखला पर विस्तृत जानकारी दी है। स्वतंत्रता, मुक्ति, सांस्कृतिक अधिकार आदि जैसी कठिन और जटिल परिघटनाओं को मापने के प्रयास में शामिल हमने कुछ परिभाषाओं ओर समस्यात्मक बातों का अनुसरण किया। जहाँ टीम की तरफ से प्रयास अच्छे साबित हुए हैं वहीं प्रयास मुख्य रूप से अर्थशास्त्र के लिए मानवोचित परिप्रेक्ष्य लाने पर रहा है न कि अर्थव्यवस्था के मौजूदा व्यवहारों की गंभीर मीमांसीय समीक्षा पर। इन रिपोर्टों के मूल्यांकन पर इस पहलू को उजागर किया गया।

10.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मानव विकास रिपोर्ट 1990, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : नई दिल्ली

मानव विकास रिपोर्ट 2004, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : नई दिल्ली

हक, महबूब उल 1998, रिफैक्शन आन ह्यूमन डेवलपमेंट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : नई दिल्ली।

MAADHYAM IAS

इकाई 11

विकास का लैंगिक परिप्रेक्ष्य

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 पुरुष (लिंग) की संकल्पना

11.3 महिला, लिंग और विकास

11.4 लिंग और संविधान : भारत में महिलाएँ

11.5 भारत में विकास नियोजन

11.6 सी.एस.डब्ल्यू.आई. की समीक्षा एवं संसदीय अधिदेश

11.7 महिला विकास का उत्तर-आपातकालीन नियोजन

11.8 महिला और विकास पर छठी योजना इकाई

11.9 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

11.10 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

11.11 नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2000)

11.12 महिलाओं के लिए नीतियाँ और नियोजन

11.13 सारांश

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस इकाई में आप निम्नलिखित का विवेचनात्मक विश्लेषण करेंगे:

- विकास में जेंडर परिप्रेक्ष्य की महत्व;
- भारत में जेंडर परिप्रेक्ष्य और विकास योजना; और
- जेंडर संबंधी मुद्दों से संबंधित नीतियाँ और कार्यनीतियाँ।

11.1 प्रस्तावना

विकास में लैंगिक (जेंडर) परिप्रेक्ष्य से संबंधित यह इकाई एक तरह से पिछली इकाई का क्रमिक भाग है, जो सामाजिक और मानव विकास पर है। मानव विकास उपागम, संवृद्धि से आगे का अध्ययन है और विकास के एक संसूचक के रूप में यह अन्य महत्वपूर्ण संसूचकों का आकलन करता है जो प्रत्यक्ष रूप से समृद्धि और शक्ति संपन्नता से जुड़े मुद्दों की ओर ध्यान केंद्रित करता है। यह प्रश्न पूछता है कि विकास प्रक्रिया से किसको क्या मिला है? यह इकाई भी महिलाओं के संबंध में इसी प्रकार के प्रश्नों का हल ढूंढ़ने का प्रयास है।

यद्यपि कुल मानव आबादी में महिलाओं की संख्या आधी है, लेकिन विकास के लाभों में उनकी भागीदारी या अंश एकदम कम है। महिलाओं को मिलने वाले लाभों की कम प्रतिशतता ने यह मुद्दा उठाया है कि विकास का लक्ष्य क्या होना चाहिए। यह महसूस किया गया कि किसी भी विकास प्रक्रिया में स्त्री-पुरुष (जेंडर) परिप्रेक्ष्य के अभिन्न अंग के रूप में स्थान दिया जाना चाहिए। किसी भी समुदाय को जीवित रखने में हमेशा ही महिलाएँ उस समाज का अभिन्न अंग रही हैं।

महिलाओं ने केवल बच्चों के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व ही नहीं संभाला है, और समाज के विभिन्न क्रियाकलापों के साथ उन्हें एकीकृत नहीं किया बल्कि उन्होंने परिवार और समुदाय की दिन-प्रतिदिन आवश्यकताओं को पूरा करने में भी अपना योगदान दिया है। महिलाएँ खाना बनाती हैं, सफाई करती हैं, कपड़े-बर्तन धोती हैं, भोजन एवं ईंधन इकट्ठा करती हैं, खेतों की जुताई करती हैं और कार्यालयों में श्रमिक के रूप में काम इत्यादि करती हैं। लेकिन उनके कुछ कार्यों को कार्य के रूप में समझा जाता है। महिलाओं को एक पृथक सत्ता के रूप में न देखना यह एक मूल कारण है और इसी वजह से उन्हें विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग नहीं माना जाता है। महिलाओं से संबंधित इन मुद्दों पर बढ़ती चर्चा के कारण विकास की चर्चा में स्त्री-पुरुष परिप्रेक्ष्य को शामिल करने की आवश्यकता महसूस की गई। इस इकाई में हम इससे संबंधित मुद्दों पर चर्चा करेंगे और इसके साथ ही हम भारतीय परिदृश्य पर विचार करेंगे तथा यह देखने और मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे कि महिलाओं को विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग बनाने में विभिन्न योजनाओं में क्या प्रयास किए गए। इन सबका अध्ययन करने से पहले हम स्त्री-पुरुष (जेंडर) शब्द को समझने का प्रयास करेंगे।

11.2 पुरूष (लिंग) की संकल्पना

जब हम महिला-पुरुष लिंग शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, तो आमतौर पर इससे हमारा मतलब इन दो लिंगों के बीच शारीरिक संरचना में पाए जाने वाले अंतर से होता है। जब हम जेंडर शब्द का इस्तेमाल करते हैं तो हमारा अभिप्राय महिला और पुरुष के बीच की शारीरिक संरचना के अंतर से आगे उनकी सामाजिक भूमिका और स्थिति (हैसियत) से होता है। उदाहरण के लिए जब कोई व्यक्ति नारित्व का इस्तेमाल करता है, तो इसका अर्थ है नारी के गुण यानी पालन-पोषण, देख-भाल, मृदुलता, अतार्किक, सहज-अनुभूति, उदारता, आक्रमकहीनता इत्यादि। जब कोई महिला नारी के गुणों की सामाजिक उम्मीदों को पूरा नहीं करती है, तो उसे पूर्ण नारी नहीं माना जाता है या ऐसा माना जाता है कि वह पुत्री, माँ, बहिन की अपनी भूमिका को नहीं निभा रही है, जिनसे एक बिशेष प्रकार की भूमिका की उम्मीद की जाती है। जैसा कि आप जानते हैं कि ये भूमिकाएं सामाजिक सीमाओं में बंधी होती हैं और शक्ति संरचना से उत्पन्न होती हैं। विशेष व्यवस्था में संपूर्ण प्रणाली महिलाओं को समाज या परिवार में निचले स्तर पर रखती है। इस प्रकार के संस्थागत विभेद में शक्ति और हैसियत का झुकाव हमेशा पुरुषों के पक्ष में रहता है और पुरुष प्रधानता वाले विषय संबंधों की प्रमुखता रहती है। लेकिन इस प्रकार के सार्वभौमिक विभेद के बावजूद, विभिन्न स्थितियों और संदर्भों में जेंडर विभेदता में महत्वपूर्ण सूक्ष्म अंतर पाए जाते हैं। सामाजिक स्तरीकरण के चर के रूप में, जेंडर का विश्लेषण वर्ग, वंश, नृजातियता और जाति जैसे अन्य चरों के साथ किया जाता है।

लिंग संबंधों में महिला और पुरुष के सामाजिक अर्थ में अपना योगदान देते हैं और इस प्रकार महिलाओं और पुरुषों के समुचित व्यवहार को समझने में सहायता करते हैं। व्यवहार में जेंडर पर ध्यान केंद्रित करने का अर्थ है महिलाओं और पुरुष के बीच पारस्परिकता की प्रकृति और उनकी सामाजिक भूमिका पर ध्यान देना। तब एक मान्यता यह बनती है कि जेंडर संबंध भी सामाजिक संबंध होते हैं, जैविक या प्राकृतिक संबंध नहीं होते। महिलाओं के संदर्भ में विकास का मूल्यांकन करते समय हम महिलाओं के जेंडर संबंधी पहलू को समझने का प्रयास करते हैं।

लिंग शब्द का अर्थ समझने के बाद अब हम देखेंगे कि विकास प्रक्रिया/परिचर्चा में किस प्रकार महिलाओं के मुद्दे उभरकर आते हैं। सामाजिक विश्लेषण के लिए जेंडर महत्वपूर्ण शब्दों में से एक शब्द है। उन सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक और सांस्कृतिक शक्तियों को समझना महत्वपूर्ण है, जो यह निर्धारित करती हैं कि विकास में पुरुष और महिलाएँ किस प्रकार भाग लेते हैं और उससे लाभान्वित होते हैं।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 11.1: 'दूसरे लिंग' पर सिमन डी बेवर (1949)

अपनी पुस्तक सेंकड सेक्स पर फ्रांसीसी लेखिका और महिलावादी सिमन डी बेवर ने लिखा था:

''महिला पैदा नहीं होती है बल्कि बन जाती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक दशा उस आकृति का निर्धारण नहीं करती है कि समाज में मानव स्त्री रहती है, समग्र रूप से सभ्यता ने ही इस संरचना को बनाया है पुरुष और नपुंसक के बीच मध्यस्थ के रूप में नारीत्व का वर्णन किया है। किसी व्यक्ति द्वारा किया गया हस्तक्षेप ही एक व्यक्ति को दूसरा व्यक्ति स्थापित कर सकता है।

अन्य सभी सामाजिक संबंधों की तरह, जेंडर लैंगिक संबंध भी प्रभावित होते हैं और इस पर प्रभाव पड़ता है कि किस प्रकार समाज और अर्थव्यवस्था समय के साथ-साथ बदल जाते हैं (पर्सन, 1992)। समाजीकरण की प्रक्रिया और उत्पादन/निर्माण के सामाजिक संबंधों का सभी देशों और क्षेत्रों की महिलाओं के जीवन की स्थिति पर एक विशेष प्रभाव होता है।

11.3 महिला, लिंग और विकास

विकास में महिलावाद और महिला के बीच की विचारधारा के बारे में अधिकतर रचनात्मक विचार-विमर्श यू.एन. 'महिला दशक' 1976-85 के दौरान हुआ। समानता विकास और शांति के नारी को प्रस्ताव के रूप में 1975 में मैक्सिको शहर में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया। समानता को एक ऐसे मुद्दे के रूप में देखा गया, जो औद्योगिक पश्चिमी देशों से आया था, शांति को पूर्वी देशों ने प्रस्तुत किया था और मुख्य मुद्दे के रूप में विकास को तीसरे विश्व की महिलाओं के संदर्भ में सामने रखा गया था। महिलाओं के संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर लगातार परिचर्चा की गई और अंत में यह महसूस किया गया कि महिलाओं के मुद्दे को एक अलग भाग के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए (विस्तृत विवरण के लिए बॉक्स 11.2 देखें)।

MAADHYAMIAS 'way to achieve your dream'

बॉक्स 11.2: महिला यू.एन. दशक - 1976-85 में उभरते मुद्दे

महिलाएँ विकास के लिए नये दृष्टिकोण को उजागर कर रही थीं जिसके लिए अनेक अंतर्राष्ट्रीय बैठकें 1970 और 1980 के दशक में आयोजित की गई और इनमें वैश्विक परिप्रेक्ष्य के लिए महिलावादी दर्शन के बारे में सार्वजनिक घोषणा की गई। इस संबंध में आयोजित कुछ महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय बैठकें, बैठकों का दर्शन और योजनाएं निम्नलिखित हैं :

महिला और विकास के लिए एशिया और प्रशांत केंद्र (ए.पी.सी.डब्ल्यू.डी.), 1979

इसकी बैठक का प्रायोजक संयुक्त राष्ट्र संघ था। इसकी बैठक बेंगकाक में हुई थी। इसने दो दीर्घकालिक लक्ष्यों की विचारधारा के रूप में महिलावाद की प्रथम वैश्विक परिभाषा का प्रस्ताव किया था। ये लक्ष्य थे। (1) महिलाओं के घर और घर से बाहर अपने जीवन को नियंत्रित करने के लिए महिला शक्ति द्वारा महिला समानता, अस्मिता और स्वतंत्रता की प्राप्ति, और (2) राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय न्यायोचित, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को मजबूत कर सभी प्रकार की असमानता और दमन को दूर करना (सी.एफ. टिंकर 1990: 77)। विकास के महिलावादी दर्शन का प्रमुख उद्देश्य महिला सशक्तिकरण था।

''भविष्य के लिए कार्यनीति का विकास : महिलावादी परिप्रेक्ष्य'' पर कार्यशाला, 1980

यह कार्यशाला स्टोनी प्वाइंट, न्यूयार्क में आयोजित की गई थी। इसने राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में विकास का सहारा लिया और विकास की सीमित परिभाषा के प्रति असंतोष व्यक्त किया, जो अपने को सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) जैसे सूचकांकों तक सीमित रखता था। इसने एकीकृतवादी उपागमों और महिला सशक्तिकरण की मांग की।

''अन्य महिला विकास पर डकर घोषणा, 1982'' का आयोजन सेनेगल में किया गया था। इस घोषणा का विश्वास था कि अन्य विकास का मूल और महत्वपूर्ण सिद्धांत संरचनात्मक रूपांतरण एक ऐसी अवधारणा होनी चाहिए जो राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय और पारिवारिक स्तर पर आधिपत्य के आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूपों को चुनौती देता हो (उपर्युक्त : 79)।

नैरोबी, यू.एन. दशक की समाप्ति, विश्व सम्मेलन, 1985

तीसरे विश्व की महिलाओं का एक समूह गठित किया गया जिसका उद्देश्य 'महिला के उत्कर्ष बिंदु' डी.ए.डब्ल्यू.एन. नये युग के लिए महिलाओं से संबंधित विकास विकल्प की दृष्टि से विकास के मुद्दों को परिभाषित करना था। इसने महिला आंदोलन और मुद्दों की सांस्कृतिक विविधता लेकिन साथ ही अधीनस्था को समझने के लिए संरचनात्मक एकता की मांग भी की। इसने संरचनात्मक रूपांतरण में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी और आत्मनिर्भरता के लिए गहन प्रतिबद्धता पर जोर दिया, जो पश्चिमी मॉडल की तुलना में स्वदेशी संस्कृति में विद्यमान है।

विकास प्रक्रिया में महिलाओं की अहम भूमिका को लगातार महसूस करने के फलस्वरूप ही 'विकास में महिला' जैसी संकल्पना का जन्म हुआ। विकास में महिला (डब्ल्यू.आई.डी) उपागम ने महिलाओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए विकास प्रयासों में महिलाओं के एकीकरण को बढ़ावा दिया और इस बात पर ध्यान दिया कि समाज में महिलाओं की स्थिति को विकास प्रक्रिया ने किस प्रकार प्रभावित किया। विकास में महिला की भूमिका से संबंधित अध्ययन ने विकास और विकास के अर्थशास्त्र पर जो दिया अर्थात् इसने आर्थिक लाभों पर ध्यान दिया, केवल इसी संवृद्धि पर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि ''कौन क्या प्राप्त करता है'' मानव विकास के सूचक यह दर्शाते हैं कि विकास प्रक्रिया में महिला की समान भूमिका नहीं रही है और उन्हें हमेशा ही नकारात्मक विकास क्रम का द्योतक माना गया है।

जब कभी संसाधनों की कमी महसूस की जाती है, तो ऐसी स्थिति में महिलाएँ सबसे अधिक और सबसे पहले प्रभावित होती हैं। विश्व में पाए जाने वाले संसाधनों में महिला का बहुत कम भागीदारी मिलती है और जब इसमें कमी आती है तो महिलाओं को सर्वाधिक नुकसान उठाना पड़ता है। (सीगर और ऑल्सन 1986)। विश्व बैंक का विकास कार्यक्रमों में प्राथमिक (Early) महिला कार्यक्रम विभिन्न परियोजनाओं और कार्यक्रमों में महिलाओं को विकास कार्यक्रम का विशेष लक्ष्य समूह मानता है। लेकिन, 'विकास में महिला कार्यक्रम' की एक प्रमुख आलोचना यह है कि यह महिला को लाभार्थी के रूप में मानता है। यह इस संकल्पना से शुरू होती है कि महिलाओं को विकास से बाहर रखा गया है। जबकि महिलाओं का समय, शक्ति, कार्य और दक्षता विकास प्रक्रिया के प्रत्येक पहलू में अपना योगदान देता है। स्त्री-पुरुष (जेंडर) संबंधों की असमानता और महिलाओं को हमेशा अधीनस्थ सदस्य के रूप में मानने की अवधारणा यह सुनिश्चित करती है कि महिलाओं के योगदान को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से समान मान्यता प्राप्त नहीं है (पियर्सन 1992)।

विकास में महिला उपागम की समस्या यह है कि यह महिलाओं को विकास की मुख्यधारा का अंग बनाने का प्रयास करता है और इस तथ्य को अनदेखा करता है कि वास्तव में महिलाएँ विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग पहले से ही हैं। विकास प्रक्रिया में हमेशा ही महिलाएँ शामिल रहती हैं। महिलाओं के 'मुक्त श्रम' का अर्थ यह है कि इसकी क्षतिपूर्ति की कोई जरूरत नहीं है और इसके फलस्वरूप संसाधन आबंटन के रूप में इसकी कोई लागत नहीं होती। लेकिन, 'वास्तविक' स्थिति यह है कि महिला घरेलू श्रमिक, पुरुष कार्यबल एवं समाज को अपना काम करने के लिए महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सहयोग प्रदान करती हैं। समाज में महिलाओं की भूमिका में उत्पादक और पुनरुत्पादक दोनों भूमिकाओं का सम्मिश्रण शामिल होता है। महिलाओं की उत्पादक भूमिका में वे सभी कार्य शामिल हैं जो परिवार और समुदाय की आय और संसाधनों में वृद्धि करते हैं जैसे फसल और पशुधन, हस्तशिल्प उत्पादन, विपणन और वेतनशुदा रोजगार।

पुनरूत्पादक गतिविधियां वे कार्य हैं जो पुनरुत्पादन और परिवार तथा समुदाय की देखभाल के लिए किए जाते हैं। इसमें ईंधन और पानी लाना, भोजन तैयार करना, बच्चों की देखरेख करना, शिक्षा, स्वास्थ्य और घर की देखभाल करना आदि शामिल हैं। इन गतिविधियों को गैर आर्थिक माना जाता है। इन कार्यों के लिए आमतौर पर किसी प्रकार की धनराशि नहीं दी जाती और प्रायः राष्ट्रीय आय लेखा के बजट में शामिल नहीं किया जाता है। वास्तव में, समाज में महिलाओं की भूमिका जीवन को बनाए रखती है। सेन और क्रौन (1988) के अनुसार, ''प्रत्येक समाज में महिला द्वारा अपने परिवार को खिलाना-पिलाना, उनके लिए कपड़ों का प्रबंध करना और पालन-पोषण करना उनके ऐसे अदृश्य कार्य हैं, जिनसे वे अपने समाज को बनाए रखती हैं''। सामाजिक पुनरुत्पादन की यह वास्तविकता श्रम के लैंगिक-विभाजन से व्युत्पन्न होती है जो जेंडर-विभाजन और पुरुष प्रधानता से बंधा हुआ है।

सेक्स एक शारीरिक विशेषता है जबकि जेंडर सामाजिक और सांस्कृतिक होता है। मोगडम (1994) ने देखा कि पुरुषों और महिलाओं के बीच श्रम-विभाजन जेंडर-भूमिका का विषय है, न कि सेक्स भूमिका का। जिसका निर्धारण सेक्स की तुलना में संस्कृति द्वारा किया जाता है और श्रम विभाजन के प्रतिमान को समझने की शक्ति संस्कृति में होती है न कि मानव के मनोविज्ञान या शारीरिक-संरचना में। इसके साथ ही संस्कृति स्थिर या सतत (Constant) नहीं होती बल्कि प्रकृति से चर (परिवर्तनशील) होती है। जो विकास की गहराई और क्षेत्र, राज्य की नीति, वर्ग और सामाजिक संरचना जैसे कारकों पर निर्भर करती है।

MAADHYAM IAS

विकास में महिला का संबंध लोगों की वर्तमान स्थिति से है, यह 'महिला' को एक पृथक व्यवहार क्षेत्र के रूप में चिन्हित करता है। 'विकास में महिला' (डब्ल्यू.आई.डी.) की संरचना को 'जेंडर और विकास' (जीएडी) ने 1980 के दशक के अंत से अपने में मिला लिया। जेंडर और विकास ने अपने हस्तक्षेप का विस्तार किया है और संपूर्ण विकास परिप्रेक्ष्य, प्रक्रिया और उसकी मान्यताओं के साथ महिला और पुरुष दोनों के बीच संबंध को शामिल करते हुए असमानता के क्रमिक संबंध को शामिल कर लिया।

नीति (पॉलिसी) संरचना के जेंडर और विकास उपागम में उन माध्यमों को प्रदर्शित करने वाली कार्य विधियाँ शामिल हैं, जिसमें पुरुष और महिला के संबंध बाधित होते हैं अथवा वृद्धि को बढ़ाने के लिए प्रयासों को तेज करते हैं। जैसा कि यूरोपीय आयोग (1993) ने जेंडर सशक्तिकरण उपागम को 'नीति बनाने में महिलाओं की भागीदारी' के रूप में परिभाषित किया है। इसमें अत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास को बढ़ाने पर जोर दिया गया है जिससे वे समाज में और अधिक सक्रिय भूमिका अदा कर सकें। जेंडर सशक्तिकरण महिलाओं के जीवन स्तर में सुधार लाने के लिए रचनात्मक कार्य द्वारा महिलाओं की स्थिति में असंतुलन को दूर करने का प्रयास करता है।

अभ्यास 11.1

जैसाकि हमने उल्लेख किया है, महिलाओं ने हमेशा ही परिवार, वृहत समुदाय और समाज की समृद्धि और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काम किया है। फिर भी उन्हें उनके द्वारा किए गए कुछ ही कार्यों के लिए वेतन एवं मजदूरी दी जाती है। इस स्थिति में निम्नलिखित प्रश्नों को हल करने का प्रयास कीजिए:

1. उन कामों की सूची बनाइए, जिन्हें महिलाएँ करती हैं और जिनके लिए उन्हें वेतन नहीं दिया जाता है।
2. इस सूची को बनाने के लिए हम आपको निम्नलिखित के लिए भी प्रेरित करते हैं (क) प्रतिदिन इन कार्यां को करने वाली महिलाओं को ध्यान से देखें, और (ख) वे अपने काम के बारे में कैसा महसूस करती हैं, इस संबंध में उनसे बातचीत कीजिए।
3. इस प्रेक्षण और महिलाओं के साथ की गई बातचीत के आधार पर महिलाओं के कार्यों पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए और अपने सहपाठियों अथवा संयोजक/अध्यापक से इस पर चर्चा कीजिए।

11.4 लिंग और संविधान : भारत में महिलाएँ

शीर्ष-निम्न उपागम और वृद्धि-अभिमुख विकास परिप्रेक्ष्य के विरुद्ध आलोचना का स्वर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, क्योंकि ये महिलाओं को विकास का अभिन्न अंग बनाने में असफल रहे हैं इनसे लगातार समृद्ध और दरिद्र लोगों के बीच असमानता को बढ़ावा मिला है, जिसमें महिलाएँ दरिद्र और असहाय की स्थिति में हैं। आइए, देखते हैं कि भारत किस प्रकार से महिलाओं और विकास की समस्याओं का समाधान कर रहा है। हम यहाँ तक पहुंचे हैं, इसका आकलन करने के लिए हमें यह जानना जरूरी है कि हमारी नींव क्या है और कहाँ है और इसके लिए हमें सबसे पहले संवैधानिक गारंटी की जांच करेंगे और अगले भाग में हम महिलाओं से संबंधित भोजन और नीतिगत मुद्दों पर चर्चा करेंगे।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

भारत द्वारा अपनाए गए लिंग विषयक सिद्धांतों का उल्लेख भारत के संविधान में किया गया है, जो हमारे मूलभूत दस्तावेजों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज है और जिसमें भारतीय संघ के उद्देश्यों की घोषणा की गई है। महिलाओं की समानता का उल्लेख संविधान के भाग-III (मौलिक अधिकार) में किया गया है। अनुच्छेद 15 की उप-धारा समानता के अधिकारों से संबंधित है। इसमें कहा गया है कि : ''राज्य किसी भी नागरिक के विरुद्ध धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा।''

इसके आगे संविधान के इसी अनुच्छेद की उप-धारा (3) में कहा गया है कि:

''इस अनुच्छेद का कोई भी अंश राज्य को महिलाओं और बच्चों के बारे में किसी भी प्रकार का विशेष प्रावधान करने से नहीं रोकेगा।''

इस प्रकार संविधान महिलाओं को नागरिक के रूप में समान स्थिति प्रदान करता है। कुछ विशेष असक्षमताओं पर विचार करते हुए राज्य रचनात्मक कार्रवाई द्वारा उनको दूर करने का प्रयास करेगा। भारत के संविधान का भाग-IV "राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों" से संबंधित है। इसमें राज्य से इन सिद्धांतों के अनुसार महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए उपाय करने की अपेक्षा की गई है (देसाई 1994)। अनुच्छेद 39, 42 और 44 कुछ ऐसे सिद्धांतों से संबंधित हैं, जिन्हें कानून द्वारा लागू नहीं किया जा सकता, लेकिन महिलाओं से समान नागरीक के रूप में व्यवहार करने के लिए इन्हें मार्गदर्शी सिद्धांत के रूप में अपनाया

जा सकता है। लेकिन संविधान की अन्य कई धाराएँ जैसे— धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, जैसाकि अनुच्छेद 25 से 28 में दिया गया है और इसे राज्य विद्यायिका द्वारा व्यक्तिगत कानून (पर्सनल लॉ) के रूप में दिया गया है, महिलाओं को उसके जीवन के लगभग सभी पहलुओं में मौलिक रूप से समानता से वंचित किया गया है। उन्हें व्यक्तिगत, आर्थिक लैंगिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक समानता और यहाँ तक कि अपने शरीर पर अधिकार के साथ-साथ कुछेक मान्यताओं, मूल्यों और मानकों तथा व्यक्तिगत आचार संहिता को मानने का भी अधिकार नहीं दिया गया है (उपर्युक्त)।

इसके साथ ही संविधान के सम्मिलित आर्थिक मान्यता, जैसा कि मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद 23 और 24 में दिया गया है, शोषण के विरुद्ध अधिकार को प्रत्येक परिवार में महिला के श्रम को अतिरिक्त के रूप में समझा जाता है, शोषण के रूप में समझा जाता है। महिलाओं को उनके पुरुष साथियों की तुलना में कम पारिश्रमिक दिया जाता है, इसका उल्लेख कहीं भी नहीं किया गया है। धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार और शोषण के विरुद्ध अधिकार, मूलतः महिलाओं के प्रति भेदभाव मूलक हैं और घर पर महिला श्रम को शोषण के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं, इस प्रकार यह राज्य का जेंडर के प्रति पक्षपात को दर्शाता है। राज्य द्वारा निजी धार्मिक कानूनों की आज्ञा, विश्व को धार्मिक आधार पर महिलाओं के साथ विभिन्न प्रकार के भेदभावपूर्ण मानक और व्यवहार भी बढ़ावा देता है। निजी कानून, घरेलू, 'निजी' क्षेत्राभिमुख हैं। जबकि संविधान मुख्यतः 'सार्वजनिक क्षेत्र' के निजी कानून से ही संबंधित है। इसका निजी जीवन पर प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से महिलाओं की समाज में हैसियत, स्थिति, अधिकार और बाध्यताओं को स्वरूप प्रदान करने में ये कानून बहुत प्रभावी है। निजी कानूनों के माध्यम से निजी क्षेत्र में महिलाओं की पदोन्नति ने जेंडर न्याय और विकास के समग्र मुद्दे को व्यक्तिगत और सीमित बना दिया है जिसका समाधान विशिष्टीकृत निकायों द्वारा किया जाता है।

जिस तरीके से सामाजिक नीतियां महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव उत्पन्न करती हैं और विकास के व्यवहार और कुछ विशेष कार्यों का सुझाव देती हैं, उससे ऐसे तत्वों एवं मूल्यों का पता चलता है जो राज्य के मार्गदर्शी कारक हैं। महिलाओं की चेतना को क्या हो इस तथ्य में राज्य की नारीत्व की परिभाषा से जुड़ी है और नारीत्व की यह परिभाषा सीमांत नहीं है बल्कि कल्याणवादी के उद्देश्यों पर पूर्ण रूप से केन्द्रित हैं (एलिजाबेथ 1989)

MAADHYAMIAS
'way to achieve your dream'

चिंतन एवं कार्रवाई 11.2

हमारे पास अधिदेश एवं प्रावधानों की पूरी श्रृंखला है जिन्हें हमारे संविधान में सम्मिलित किया गया है और जो भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने का प्रयास करते हैं और इसके साथ-साथ ऐसे बहुत से विधानों पर भी केन्द्रित करते हैं जिन्हें इस संदर्भ में विशेष रूप से निर्मित किया गया है।

आपकी राय में तरीके से इन संवैधानिक प्रावधान एवं अधिनियमों ने भारत में महिलाओं की स्थिति को ऊचा उठाने में सहायता की है? अपने उत्तर को अपने निजी जीवन के किसी अनुभव से जोड़ कर व्यक्त करें।

11.5 भारत में विकास नियोजन

1950 से भारत में आरंभिक विकास नियोजन ने सामाजिक कल्याण सेवाओं की पहचान ऐसी एकमात्र श्रेणी के रूप में की जो अन्य लक्ष्य समूहों में महिलाओं की समस्याओं को नियंत्रित करने का सामर्थ्य रखती थी। ऐसा उपागम, एक ऐसी श्रेणी के रूप में महिलाओं की समझ का परिणाम था जिनके लिए विशेष (और अलग) कार्यक्रम, सेवाओं, रक्षोपाय आदि को

व्यावहारिक रूप दिया गया। सामाजिक कल्याणकारी सेवाएं ऐसे संवेदनशील समूहों तक पहुंच स्थापित करने पर लक्षित थी जो कि विविध श्रेणियों में विभाजित थे।

केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड (सी.एस.डब्ल्यू.बी.) की स्थापना 1953 में हुई और जिसके समक्ष एक ऐसी विकट समस्या आई जो कि सरकारी ढांचे के अभाव से जुड़ी थी और ऐसी कल्याणकारी गतिविधियों से संबद्ध थी जिन्हें इस बोर्ड ने स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से कल्याणकारी कार्यों को बेहतर बनाने के लिए शुरू किया था। इस बोर्ड ने महिला संगठनों को सरकार की भागीदारी में ऐसी गतिविधियों को शुरू करने के लिए भी प्रेरित किया। इस कार्य नीति के भाग के रूप में महिला संगठनों को संवर्धित किया गया विशेष रूप से उन संगठनों को जो कि बुनियादी स्तर के लोगों के साथ काम कर रही थी। पहली और पंच दूसरी पंच-वर्षीय योजनाओं के माध्यम से सी.एस.डब्ल्यू.बी. और समुदाय विकास कार्यक्रम अर्थात दोनों की सहायता से शिक्षा, स्वास्थ्य विशेष रूप से मात् एवं बाल स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य सेवाएं प्रदान करने हेतु महिला मंडलों को वितरण तंत्रों के रूप में संवर्धित किया गया। वीना मजूमदार के अनुसार संस्थान निर्माण एवं महिला संसाधन विकास का ऐसा तालमेल महिलाओं को राजनीति एवं विकासत्मक प्रक्रमों में भाग लेने के लिए तैयार करने पर भी केन्द्रित था। इसलिए यद्यपि इन कार्य नीतियों की भाषा 'कल्याण' के समकालीन अर्थ को प्रतिबिंबित करती थी फिर भी बदलाव की प्रक्रिया में महिला संगठनों को शामिल करके और उन्हें इस दिशा में उद्धीप्त करने का संकल्पनात्मक प्रयास भी किया जा रहा था यद्यपि अपर्याप्त रूप सुव्यक्त नहीं था। हालांकि बढ़ते नौकरशाही नियंत्रण और कार्यक्रमों के अधोगामी रेखांकन एवं सुप्रवाहण और निचले स्तर से संगठनात्मक एवं संस्थागत विकास के संदर्भ में घटते संसाधन सहयोग से ऐसे कार्यों को निम्न प्राथमिकता मिली और लैंगिक समानता को बढ़ाने में शामिल बुनियादी मुद्दों को गंभीरता से नहीं लिया गया।

तीसरी, चौथी और पंचवर्षीय योजनाओं ने संगठन निर्माण एवं मानव संसाधन विकास की कार्यनीतियों को सहयोग देने में गिरावट का अनुभव किया। महिला शिक्षा (1958-59) पर राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट ने कुछ ऐसी प्राथमिकता को देखा जो कि महिलाओं की शिक्षा के अनुरूप थी। तीसरी योजना के समय से आबादी नियंत्रण के मुद्दे के अनुसार ऐसी प्राथमिकताओं में घनी बढ़ोतरी पाई गई। चौथी योजना के आगे चलकर योजना आयोग के निदेशों को परिवार नियोजन को मातृ एवं बाल स्वास्थ्य नियोजन के साथ जोड़ने में असफल रहें और निर्धन समूहों के बच्चों के अनुपूरक पोषण एवं उनकी देखभाल और भावी माताओं को मातृ एवं बाल स्वास्थ्य के साथ समेकित नहीं किया गया था। विकास नियोजन कार्यक्रम (1952) एक अन्य महत्वपूर्ण चरण था जो कि समुदायिक प्रयासों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त विकेन्द्रित विकास पर लक्षित था। आगामी अनुभागों में हम ऐसी विविध योजना कार्यनीतियों एवं नीतियों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे जिससे पता चले कि विकास प्रक्रिया में महिलाओं का स्थान क्या और कैसा था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

11.6 सी.एस.डब्ल्यू.आई. की समीक्षा एवं संसदीय अधिदेश

वर्ष 1971 में शिक्षा एवं सामाजिक कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार ने एक समिति का गठन किया जो कि भारत में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करने के लिए भारत में महिलाओं की स्थिति पर आधारित थी। मंत्रालय, 1975 में 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' के लिए महिला रिपोर्ट की स्थिति के लिए यू.एन. के निवेदन पर काम कर रहा था। समिति के दो कार्य थे:

i) ऐसे संवैधानिक, कानूनी एवं प्रशासनिक प्रावधानों की जांच करना जिनका महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनकी शिक्षा एवं रोजगार पर अपना एक प्रभाव था और

ii) इन प्रावधानों के प्रभाव का निर्धारण करना।

समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि अर्थव्यवस्था और समाज में महिला उत्पीड़न के मामलों में निरंतर बढ़ोतरी थी। सी.एस.डब्ल्यू.आई. की टूवर्डस इक्वैलिटी (समानता की ओर) रिपोर्ट ने लिंग अनुपात में घटोतरी की जनसांख्यिकीय प्रवृतियों को पाया और स्त्री एवं पुरुषों के बीच जीवन प्रत्याशा एवं मृत्यु दरों में व्याप्त असमानता को पाया और महिलाओं की साक्षरता, शिक्षा और रोजी-रोटी तक पहुंच स्थापित करने में शामिल कठिनाइयों को देखा। इस रिपोर्ट का नजरिया था कि भारतीय शासन, लिंग समानता की अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी को पूरा करने में असफल रहा है। कृषि, उद्योग, मत्स्य पालन, पशुधन आदि एवं भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में विकास संबंधी नियोजन प्रक्रिया में ऐसी लाखों महिलाओं की मेहनत को कोई स्वीकृति नहीं दी गई थी जो कि आजीविका अर्जन के कारणों की वजह से इन क्षेत्रों में शामिल थी। अर्थव्यवस्था में महिलाओं की ऐसी बड़ी तादाद को दरकिनार करना और साथ ही साथ उनकी उपेक्षा करना और राज्य के सहयोग से समाज द्वारा उनके महत्व को कम करने की प्रक्रिया लिंग विषयक भेदभाव को दर्शाती है। शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक रोजगार के अवसर खोल कर और इन क्षेत्रों में बढ़ते निवेश से महिला आबादी के बहुत ही छोटे भाग को ही फायदा पहुंचा है। महिलाओं के ऐसे सुविधा प्राप्त भाग को दहेज, पर्सनल लॉ से उत्पन्न असमानता और मौजूदा नियमों के गैरप्रवर्तन जैसे सामाजिक व्यवहारों के संवर्धन से भी चुनौती मिली है। ऐसे मौजूदा नियमों को महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने के लिए बनाया गया था जैसे श्रम या आपराधिक विधि लेकिन नियोजन प्रक्रिया में महिलाओं की आवश्यकताओं उनसे संबंधित चिंताओं के मुद्दे और परिप्रेक्ष्यों को लेकर महिलाओं की समग्र छवि का ऐसे कानूनों में अभाव था। यहां तक कि टूवर्डस इक्वैलिटी (समानता की ओर) रिपोर्ट पर संसदीय वादविवाद ने ऐसी कमियों को दूर करने का प्रयास किया जिनसे भारतीय महिलाएं निरंतर ग्रस्त है। संसद में इसे पेश करने के कुछ ही हफ्तों में नेशनल एमरजेंसी (1974-77) की घोषणा ने सी.एस.डब्ल्यू.आई. की सिफारिशों पर किसी भी गंभीर कार्रवाई को ठंडे बस्ते में डाल दिया।

11.7 महिला विकास का उत्तर-आपातकालीन नियोजन

MAADHYAM IAS

1977 और 1980 के बीच के समय में सरकार की महत्वपूर्ण नीति समीक्षाओं को देखा गया। इनमें से प्रमुख थीं, महिलाओं के रोजगार पर श्रमजीवी समूह की रिपोर्ट (1977-78) ग्रामीण महिलाओं के ग्राम स्तर संगठनों के विकास पर श्रमजीवी समूह की रिपोर्ट 1977, 78 कृषि एवं ग्राम विकास में महिलाओं की सहभागिता एवं भूमिका पर राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट (1979-80)। ऐसी समीक्षाओं ने भारत में महिलाओं के विकास के लिए बुनियादी समस्याओं एवं कार्यनीतियों को स्पष्ट करने के लिए ठोस आधार दिया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवं बगदाद में 1979 में महिला एवं विकास पर आयोजित विशेष सम्मेलन के माध्यम से महिला विकास पर भारतीय एजेंडे को संयुक्त राष्ट्र के मिड-डे केड प्रोग्राम ऑफ एक्शन में सम्मिलित किया गया। भारत ने महिलाओं की स्थिति पर गठित आयोग और मिड-डेकेड कोपेनहेगन सम्मेलन (1980) और प्रोग्राम आफ एक्शन के लिए निर्मित प्रारंभिक समिति में सदस्यता प्राप्त की। विकास पर तीसरी दुनिया के परिप्रेक्ष्यों पर जोर देने में भारत के योगदान की मिड-डेकेड कान्फ्रेंस के दौरान कबूल किया गया और इसी के मद्देनजर डिकेड की कार्यसूची के उप-विषय के रूप में रोजगार, स्वास्थ्य एवं शिक्षा जैसे मुद्दों को अपनाया गया।

वीना मजूमदार की इन कुछ वर्षों में की गई संकल्पनात्मक उपागम की जाँच ने महिलाओं की विकास आवश्यकताओं की पहचान बहु आयामी तरीके से की है जो कि आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों के परे हैं और विविध क्षेत्रों पर महिलाओं की स्थिति की हर नजरिए से जाँच की माँग कर रही है। वह महिला विशिष्ट कार्यक्रमों या एजेंसियों तक इसे सीमित करने की बजाय महिलाओं के लिए विविध क्षेत्रक आबंटनों में उनके हिस्से की माँग करती है। उसने ग्राम रोजगार और विकास क संवर्धन की माँग भी की। उसने सेवा जैसी महिलाओं

के निजी प्रयासों से गठित संगठनों के माध्यम से महिलाओं के विकास की बात की।

दिसंबर 1979 में जारी छठी पंच वर्षीय योजना ने एक नयी शुरुआत की क्योंकि इस योजना में महिलाओं के लिए एक अलग इकाई का समावेश था। इस मसय तक महिलाओं की चिंता के मुद्दों को स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्राम विकास, कृषि आदि ने व्याप्त क्षेत्रक उपागमों के अंतर्गत हमेशा शामिल किया गया था। यह इकाई महिलाओं के लिए साकल्यवादी नियोजन के मद्देनजर पहला प्रयास था। इसका मानना था कि महिलाओं की स्थिति में प्रमुख परिवर्तन लाए बिना आबादी नियंत्रण के उद्देश्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती थी। इस योजना के विकास सहयोग पर 'प्रशासनिक नवीकरण' और लिंग-वाट वितरण आंकड़ों के संग्रहण की आवश्कता का सूझाव दिया और उसके द्वारा सही तंत्र के साथ बेहतर जानकारी की प्राप्ति पर जोर दिया ताकि सुनिश्चित हो कि महिलाओं को सरकार के नजरिए से उनके लिए उपलब्ध उचित हिस्सा मिल रहा है और साथ ही साथ वृद्धि और वितरणशील न्याय के लिए समान अवसर भी मिल रहे हैं।

नियोजन प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता के सिद्धांतों ने ग्रामीण निर्धनों के संगठन के अनुरूप ग्रामीण महिलाओं के संगठन के लिए सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया ताकि उनकी 'सौदाकारी शक्ति' में बढ़ोत्तरी हो और विकास सहयोग तक उनकी पहुंच स्थपित हो सके। हालांकि 1980 में गठित नये योजना आयोग ने महिलाओं को पुन: सामाजिक सेवाओं की ओर मोड़ दिया था और महिलाओं के लिए विकसित उपागमों और परिप्रक्ष्यों और विकासशील कार्यनीतियों पर रोक लगा दी थी। हालांकि इस चरण पर महिलाओं के राष्ट्रीय संगठनों द्वारा अंत:क्षेप ने नियोजन प्रक्रिया पर ठोस प्रभाव छोड़ा। महिलाओं के कुछ एककों के बीच साझेदारी का काम शुरू हुआ और जिसे क्रम और रोजगार सामाजिक कल्याण और ग्राम विकास के मंत्रालयों में गठित किया गया था जो कि महिलाओं के बढ़ते आंदोलनों और महिला अध्ययन के बुद्धिजीवियों की देन थी। महिलाओं के सात संगठनों ने 1980 में संयुक्त ज्ञापन देने के लिए एकजुटता दिखाई और संसद की महिला सदस्यों का सहयोग भी प्राप्त किया और जिसके फलस्वरूप छठी योजना में महिला और विकास पर एक इकाई को शामिल करने के योजना आयोग को प्रेरित किया। भारत के नियोजन इतिहास में यह एक बड़ी उपलब्धि थी।

MAADHYAM IAS

11.8 महिला और विकास पर छठी योजना इकाई

महिला और विकास पर लक्षित इकाई ने महिलाओं की निम्न स्थिति को पहचाना और "स्वतंत्र रोजगार और आय" के अपर्याप्त अवसरों और जनाकिकी प्रवृत्तियों (उच्च मर्त्यता, निम्न आर्थिक सहभागिता, साक्षरता, लिंग-अनुपात आदि) में इसके कारणों को पाया। इसने महिलाओं के विकास के लिए बहु-धारी लेकिन अंतर-निर्भर कार्यनीति को परिभाषित किया जो कि समग्र विकास प्रक्रिया पर आधारित होगी। 'कृषि और वास भूमि' जैसी हस्तांतरित परिसंपत्तियों के मामले में सरकार की पुन: वितरण नीतियों ने वादा किया कि सरकार पति और पत्नी को साझा नाम देने का प्रयास करेगी। इसने बुनियादी स्तर की महिलाओं के स्वैच्छिक संगठनों को सुदृढ़ करने की भी बात की जिसे कि महिलाओं के लिए ऐसे माध्यमों के रूप में देखा गया ताकि महिलाएं भी ऐसे निर्णयों में भाग ले सकें जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं और विविध स्तरों पर महिलाओं की बेहतरी के लिए किए जाने वाले प्रयासों को ऊंचा उठाते हैं। शिक्षा के लिए विशेष सहयोग सेवाओं का हर तरह की शिक्षा तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाने के लिए विस्तारित किया गया। ट्राइसेम कार्यक्रम में महिलाओं के कोटे की संस्था और एक-तिहाई संख्या की मैजिक फिगर पहली बार देखने को मिली। छठी योजना में ऐसे क्षेत्रों में निवारक उपायों का भी प्रस्ताव था जहाँ महिलाओं का रोजगार काफी कम था या धीरे-धीरे कम हो रहा था।

11.9 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

सातवीं पंच वर्षीय योजना में महिलाओं और युवाओं के लिए लाभप्रद रोजगार की प्राप्ति के प्रावधान पर जोर दिया गया था। इस योजना ने महिलाओं को ऐसी सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों में संगठित करने की कार्यनीतियों पर पुनःजोर देने की बात कही गई थी, ताकि महिलाओं की समग्र स्थिति को आर्थिक रूप से विकसित करने के साथ-साथ उनकी सामाजिक शक्ति को सुदृढ़ बनाया जा सके। एक्वुअल प्लान डाक्यूमेंट की 14वीं इकाई में पहली बार नारीत्व से जुड़ी भाषा का प्रयोग पहले से प्रबल पितृसतात्मक ढांचे के विरुद्ध किया गया था, जहाँ महिलाओं का अस्तित्व उत्पीड़ित पर्यावरण तक सीमित था। यह एक संयोग की बात है कि यह ऐसा समय था जब स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी की भयावह हत्या भी हुई थी और उस समय सरकार में बदलाव आ रहा था। हालांकि महिलाओं के कारणों के लिए सरकार के भीतर और बाहर यह आशावाद का समय था। भारत सरकार ने नैरोबी में आयोजित की जाने वाली यूएन सम्मेलन में अपना सहयोग करने के लिए महिला और विकास पर द्वितीय नाम (गुट निरपेक्ष) सम्मेलन आयोजित किया। ग्रामीण महिलाओं के संगठनों और विकास पर आईएलओ प्रायोजित ऐफ्रो-एशियन सम्मेलन में भारत के सरकारी और गैर-सरकारी दोनों नजरियों को भी सराहना मिली। ग्राम विकास विभाग ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी-उन्मूलन कार्यक्रमों में महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत कोटे की घोषणा की। ग्राम विकास अधिकारियों के प्रशिक्षण के अनिवार्य भाग के रूप में लिंग संवेदनशीलता की शुरुआत करने के प्रयास किए जाने लगे।

केंद्र में नव गठित सरकार ने मानव संसाधन मंत्रालय के अंतर्गत महिला एवं बाल विकास विभाग गठित किया। इसमें महिलाओं के लिए शिक्षा, संस्कृति, खेल और युवा मामलों जैसे मुद्दों के विकास का समावेश था। महिलाओं के आंदोलनों और सरकार के भीतर अंदरूनी संघर्ष से उत्पन्न दबाव के फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति के साथ महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा पर दो पैराग्राफों को शामिल किया गया। पहली बार यह संदेश सुनने को मिला कि हर तरह की शिक्षा तक महिलाओं की पहुंच का विस्तार करने के साथ-साथ सभी संस्थानों में व्याप्त पद्धति को जेंडर की सामाजिक संरचना में बदलाव के माध्यम से महिलाओं के असल सशक्तिकरण की जिम्मेवारी में अपना योगदान देना होगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस योजना काल की अन्य भारी उपलब्धि थी, पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के प्रभावी प्रतिनिधित्व का मुद्दा। शुरुआत में इस संदर्भ में सीएसडब्ल्यूआई की सिफारिशों को धीरे-धीरे हटा दिया गया। जनवरी 1985 से सचिव, सामाजिक कल्याण द्वारा इन सिफारिशों पर बहस शुरू करने का प्रयास किया गया। इसके परिणाम को सही रूप लेने में दो वर्षों का समय लगा। महिला एवं बाल विकास विभाग के तत्वाधान में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना (एन पी पी) बनाने की शुरुआत की गई। इस निर्धनता के क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की समस्याओं, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को स्पष्ट करने के लिए स्व-रोजगार प्राप्त महिलाओं के राष्ट्रीय आयोग (एन सी एस ई डब्ल्यू) का गठन किया गया। एन पी पी (1988) संसद, राज्य सभाओं और स्थानीय स्व-शासन निकायों में सभी निर्णयन संबंधी स्तरों पर महिलाओं की सहभागिता और मौजूदगी को बढ़ाना चाहती थी और इन सभी स्तरों पर उसने 30 प्रतिशत आरक्षण का सुझाव भी दिया।

महिला आंदोलनों द्वारा एन पी पी की भारी आलोचना की गई। अंततः 1992 में 73वां और 74वां सांविधानिक संशोधन देखने को मिले। उन्होंने इन निकायों को सांविधानिक प्रस्थिति प्रदान की और नियमित चुनावों का आदेश दिया और महिलाओं को विस्तृत शक्ति / संसाधन सौंपे और स्थानीय निकायों के विविध स्तरों पर महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों को आरक्षित किया। महिलाओं के लिए आरक्षण के मुद्दे पर महिलाओं के आंदोलन संगठनों के नामांकन के सुझावों का खंडन कर दिया। उन्होंने राज्य सभाओं और संसद में भी आरक्षण को नामंजूर

कर दिया। हालांकि पंचायत और नगर निगमों के मामले में ऐसे महत्वपूर्ण जन की प्राप्ति की मांग की गई जो कि अधिक उत्पीड़ित वर्गों से नये नेतृत्व और चिंता के नये मुद्दों को उखाड फेंक सके।

11.10 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

प्लान डाक्यूमेंट का भाग। महिलाओं का उल्लेख सिर्फ आबादी नियंत्रण की आवश्कयता के संदर्भ में ही करता है। सेक्टोरेल यूनिटों के भाग 1 में महिला विशिष्ट कार्यक्रमों के संदर्भ में ही सिर्फ महिलाओं का उल्लेख किया गया है। इस भाग में महिलाओं के कोटे के सिद्धांत या आबंटनों में इन्हें कोई विशेष तरजीह देने जैसी किसी बात का उल्लेख नहीं है।

महिलाओं के विकास की धारा में वर्णित नयी विशेषताओं में महिला के प्रति हिंसा पर एक पैराग्राफ शामिल है और इनमें दो पृष्ठ का स्थितिगत विश्लेषण भी शामिल है जो महिलाओं में बढ़ती बेरोज़गारी, उच्च मर्त्यता और निम्न शिक्षा जैसे समस्याओं को उजागर करता है। इसके अलावा इसमें महिलाओं के कार्य के महत्व के संदर्भ में व्याप्त संकल्पनात्मक, प्रणालीतंत्रीय और दृष्टिकोण संबंधी पूर्वाग्रहों पर भी प्रकाश डाला गया है जो कि अनौपचारिक क्षेत्रों में महिलाओं की एकाग्रता से जुड़े हैं और जिनके परिणामस्वरूप महिलाओं के लिए तो कोई पक्के रोजगार है और श्रम नियमों में उनकी सुरक्षा का प्रावधान नहीं है और जहाँ ऋण, प्रौद्योगिकी तक उनकी पहुंच नहीं है और अन्य किस्म के विकास कार्यों में उन्हें किसी तरह के सहयोग की प्राप्ति नहीं है। पहली बार बालिका (Girl Child) पर पैराग्राफ देखने को मिला जिसके साथ विशेष कार्यक्रमों का वायदा भी था। राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 में पारित किया गया जिससे महिलाओं के लिए सांविधिक लोकपाल के रूप में काम करने के लिए अधिनियमन, अधिनियम के माध्यम से महिलाओं के लिए स्वायत्त राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया ताकि विधि और नीतियों की समीक्षा की जा सके और महिलाओं के सदंर्भ में हिंसा के व्यक्ति विशेष मामलों में दखल दिया जा सके और महिलाओं को अधिकारों से वंचित करने वाले कार्यों में हस्तक्षेप किया जा सके। 1991 में बालिकाओं के लिए गठित राष्ट्रीय कार्य योजना ने छोटी बालिकाओं की उत्तरजीविता, सुरक्षा, विकास और सहभागिता के लिए समयबद्ध सिफारिश की और जहाँ स्त्री/पुरुष भेदभाव की समाप्ति और एक जैसे अधिकारों और महिलाओं की सर्वव्यापकता पर विशेष जोर दिया गया था। जेंडर के विचारणीय मुद्दों को मुख्यधारा में शामिल करने के लिए जेंडर न्याय और जेंडर समानता की प्राप्ति के लिए महिला सशक्तिकरण के लिए निर्मित मसौदा राष्ट्रीय नीति ने नीति निर्देशों को सामने रखा।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

11.11 नवी पंचवर्षीयं योजना (1997-2000)

नवीं योजना के महिलाओं के लिए महत्वपूर्ण उद्देश्य थे। नवीं योजना के अप्रोच पेपर में मुख्य रूप से महिला सशक्तिकरण के मुद्दों, योजना बनाने में जन की सहभागिता, विकेंद्रीकरण और नीतियों के नियोजन पर ध्यान केंद्रित किया गया। भारत में नियोजित विकास के इतिहास में पहली बार नवी योजना के उद्देश्य के रूप में महिला सशक्तिकरण को अपनाया गया था। इस अप्रोच पेपर में प्रत्येक ऐसे क्षेत्र के लिए महिला घटक योजना विकसित करने की कार्यनीति भी घोषित की गई जो महिलाओं को प्राप्त फायदों की पहचान करेगी और क्षेत्र में पहले किए गए जेंडर मूल्यांकन के निष्पादन पर भी प्रकाश डालेगी। विकास के क्षेत्र में पहली बार संसद और राज्य सभाओं में महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण की आवश्यकता पर चर्चा की गई। योजना ने सार्वजनिक क्षेत्रों में महिलाओं के 30 प्रतिशत प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने का प्रस्ताव दिया और सिविल सेवाओं में महिलाओं के बड़े भाग के प्रवेश की बात भी कही। स्वास्थ्य के क्षेत्र में पहले की तरह प्रजनन स्वास्थ्य पर जोर दिया जायेगा और शिक्षा के क्षेत्र

में जेंडर समानता के अलावा कॉलेज स्तर तक बालिकाओं की निःशुल्क शिक्षा की शुरुआत करने की और बालिकाओं के लिए अधिक व्यावसायिक प्रशिक्षण की योजना की शुरुआत करने की बात कही गई। देश के औद्योगिक विकास में महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए, योजना महिला उद्यमियों के लिए 'विकास बैंक' स्थापित करने का प्रस्ताव रखती है ताकि लघु और सूक्ष्य किस्म के क्षेत्र में महिला उद्यमियों की सहायता की जा सके। कृषि क्षेत्र में ग्राम विकास रोजगार योजनाओं के माध्यम से महिलाओं को अधिक सहयोग और हिस्सा देने की बात कही गई। योजना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संकल्प, महिला विकास सेक्टरों के लिए 30 प्रतिशत निधि प्रवाह सुनिश्चित करने के लिए योजना में विशेष महिला घटक का समावेश था।

चिंतन और कार्रवाई 11.3

1) महिला विकास मुद्दे के संदर्भ में किस प्रकार सरकारी नीतियाँ और योजनाएँ एनजीओ जैसे सिविल समाज पहलों से भिन्न है। चर्चा कीजिए।
2) सरकार द्वारा शुरू किए गए ऐसे पांच प्रयासों को सूचीबद्ध कीजिए जिनसे महिलाओं की समस्याओं को दूर करने में सहायता मिली है।

11.12 महिलाओं के लिए नीतियाँ और नियोजन

भारत में महिला विकास संबंधी नियोजन और नीति सूत्रीकरण की समीक्षा राज्यों में महिलाओं के लिए नीति गठन और नियोजन में प्रयासों की कमी को दर्शाती है। महिलाओं की आवश्यकताओं और विकास का बड़ा हिस्सा उन्हें देने में अपेक्षित अनिवार्य तरीकों के संदर्भ में बहुत कम विचारों की उत्पत्ति की गई है। भारत के कुछ चुनिंदा राज्यों में महिला के विकास की नीतियों पर गौर किया जा रहा है। ऐसे प्रयास अपर्याप्त हैं और अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं। ज्यादातर पहल का कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा किया गया है।

MAADHYAM IAS

भारत जैसे संघीय राज्य के लिए कोई भी विकास प्रक्रिया तब तक सफल नहीं होगी जब तक कि राज्य सरकारें महिलाओं की स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह महसूस न करें। राजनीतिक प्रक्रिया के माध्यम से बुनियादी संगठनों की अधिकाधिक शामिल करना। महिला सशक्तिकरण की प्राप्ति का ऐसा तंत्र हो सकता है। इसके अलावा स्त्री/पुरुष की पूर्ण समानता की प्राप्ति के लिए देश के सभी विकास कार्यक्रमों में हमें तंत्र को शामिल करना होगा।

11.13 सारांश

इस इकाई के विविध अनुभागों के माध्यम से हमने सामान्य और भारतीय संदर्भ में अर्थात् इन दोनों में विकास परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की स्थिति और जेंडर की संकल्पना का अध्ययन किया। हमने देखा कि जेंडर सशक्तिकरण उपागम सफलता के अनिवार्य बिंदु के रूप में किस प्रकार निर्णयन प्रक्रिया में महिलाओं की सहभागिता की पहचान करता है। इसका उद्देश्य आत्मनिर्भरता और आत्म-विश्वास को बढ़ाना है ताकि महिलाएं भी समाज में सक्रिय रूप से अपनी भूमिका अदा कर सकें। विकास प्रक्रिया में जेंडर के समावेशन से यह बात पक्की हो जाती है कि विकास का अनुभाव, स्त्री और पुरुष अपनी सामाजिक स्थिति, मूलवंश, वर्ग और औपनिवेशिक इतिहास आदि के आधार पर अलग-अलग ढंग से करते हैं। विविध स्तरों पर ऐसी संरचनाओं और स्थितियों की ओर ध्यान देने की जरूरत है ताकि सुनिश्चित किया जा सके कि महिलाओं ने महत्वपूर्ण भौतिक और गैर-भौतिक संसाधनों पर पहले से अधिक पहुंच और नियंत्रण कायम किया है। इसके अलावा जेंडर आधारित विकास का केंद्र बिंदु ऐसे जेंडर संबंध पर है जो मौजूदा असमानताओं को निर्धारित करता है। महिला सशक्तिकरण

के उपायों में शामिल हैं : लाभप्रद निर्णयन प्रक्रियाओं और समुदाय शक्ति संरचन के लिए आवश्यक ऋण, प्रशिक्षण, कौशल और संसाधन। महिलाओं के विकास का अर्थ है, निहित संरचनात्मक असमानताओं को नियंत्रित करने में उनकी पहुंच। विकास में जेंडर ऐसा उपागम है जो महिलाओं के जीवन की गुणवताओं के बेहतर बनाने में ठोस कार्रवाई के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार करने का प्रयास करता है।

11.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

टिम औलेन एंड अलैन थॉमस (संपा.) पावर्टी एंड डेवलपमेंट। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली।

सेठ मित्रा, 2001, विमेन एंड डेवलपमेंट : इंडियन एक्सपीरियंस। सेज पब्लिकेशन : नई दिल्ली।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

खंड IV

सतत विकास के उपागम

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 12

सूक्ष्म नियोजन

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 संकल्पना, आवश्यकता और उद्देश्य
12.3 भारत में सूक्ष्म नियोजन की पृष्ठभूमि
12.4 उपागम और कार्यनीतियाँ
12.5 सूक्ष्म नियोजन के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा की उन्नति
12.6 सूक्ष्म नियोजन : साकल्यवादी उपागम की आवश्यकता
12.7 सारांश
12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

हमारी यह इकाई आपके लिए:

- सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना, इसकी आवश्यकता और इसके उद्देश्यों का विश्लेषण करने में सहायक होगी;
- विकास की संकल्पना के रूप में सूक्ष्म नियोजन के आविर्भाव से जुड़ी पृष्ठभूमि का विश्लेषण करने में सहायक होगी; और
- सूक्ष्म नियोजन की रणनीतियों का विश्लेषण करने में सहायक होगी, और सूक्ष्म नियोजन के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा की प्रगति का विश्लेषण करने में सहायक होगी।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

12.1 प्रस्तावना

पिछले दो खंड वृद्धि उन्मुख विकास पर आधारित विविध परिप्रेक्ष्यों और इसके साथ-साथ इनकी समीक्षा या इनकी प्रतिक्रिया के रूप मे उत्पन्न सिद्धांतों से संबद्ध थे। इन सैद्धातिक परिप्रेक्ष्यों के अलावा, नियोजन और विकास में सामुदायिक सहभागिता, पर्यावरणीय स्थायित्व आदि की जरूरत जैसे कुछ मुद्दे भी हैं जो समकालीन विकास वार्ता का भाग बन चुके हैं। इस खंड में हम ऐसे ही कुछ मुद्दों पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

भारत जैसे विविधता वाले देश में विकेंद्रीकृत नियोजन जैसी संकल्पना के महत्व को स्वीकारा जा रहा है क्योंकि यह नियोजन के कार्यान्वयन में प्रयुक्त स्थानीय संसाधनों और नियोजन के आयाम को ध्यान में रखती है। सूक्ष्म नियोजन या क्षेत्र नियोजन विकेंद्रीकृत नियोजन का महत्वपूर्ण घटक रहा है।

भारत में सूक्ष्म नियोजन, राष्ट्रीय स्तर पर प्लानिंग के अभिविन्यास और स्थानीयकृत जरूरतों के बीच सेतु के रूप में काम करती है। हमारी यह इकाई, आपको सूक्ष्म नियोजन के विविध आयामों से अवगत कराती है। इकाई की शुरुआत सूक्ष्म नियोजन के लक्ष्यों, उद्देश्य और इसकी संकल्पना से की गई है। इसके बाद सूक्ष्म नियोजन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विशेष रूप से इसकी जरूरतों को भी उजागर किया हैं। इसके अलावा सूक्ष्म नियोजन के सफल कार्यान्वयन के लिए अपेक्षित उपागम और रणनीति की भी जाँच की गई है।

12.2 संकल्पना, आवश्यकता और उद्देश्य

सूक्ष्म नियोजन, विकास का महत्वपूर्ण पहलू है। आरंभ में आइए सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना, इसकी आवश्यकता और उद्देश्यों को स्पष्ट करें। यह विकास का अहम पहलू है।

क) संकल्पना

सूक्ष्म नियोजन शब्द का प्रयोग विविध तरीकों से और अत्यंत विस्तृत एवं विविध संदर्भों में किया जाता है। दरअसल जब तक नियोजन का असली स्तर पूरी तरह परिभाषित न किया जाए तब तक सूक्ष्म नियोजन शब्द अस्पष्ट ही बना रहता है। आजकल सूक्ष्म नियोजन के पर्याय के रूप में ''क्षेत्र नियोजन'' शब्द को प्रयोग करने का चलन शुरू हो गया है। सार के रूप में सूक्ष्म नियोजन शब्द से आशय है : देश के सर्वांगीण विकास के लिए बहु-स्तरीय और विकेंद्रीकृत योजना ।

सूक्ष्म नियोजन अनिवार्यतया स्थानिक विकास नियोजन है जो यथासंभव पूरी सीमा तक प्राकृतिक, मानव और हर किस्म के उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग की ओर प्रवृत है। यह क्षेत्रों में और क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक समूहों में विकास के फल का विस्तार सभी तक बढ़ाने का प्रयास करता है जिससे सामाजिक-आर्थिक असंतुलन कम हो सकते हैं और आम लोगों की जीवन-दशाओं में सुधार हो सकता है। अन्य शब्दों में सूक्ष्म नियोजन का संबंध, शहरी प्रबल अर्थव्यवस्था के लिए मौजूद अति-शहरी (supra urban space) स्थान की तुलना में कृषि आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था में मौजूद अति-स्थानीय स्थान में सामाजिक आर्थिक बदलाव के लिए मानव गतिविधियों को क्रमबद्ध करना है (सिंह 1982:2)।

भारत में सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और स्थानीय आवश्यकताओं के बीच ''नियोजन और विकास'' में संतुलन कायम करने के उद्देश्य से उभरी है, विकास कार्यनीति के रूप में सूक्ष्म नियोजन को इस अनुभूति से कुछ महत्ता मिली कि राष्ट्रीय स्तर पर संपन्न सामान्य नियोजन स्वत: प्रत्येक क्षेत्र के लिए स्थानीय स्तरों पर इसकी व्यावहारिकता सुनिश्चित नहीं करती क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र की अपनी विशिष्टता, संभावनाएं और जरूरतें हैं। इसलिए सफल योजना को राष्ट्रीय प्राथमिकताओं, संसाधनों और निधियों के निवेश से उत्पन्न सीमाओं को ध्यान में रखते समय सूक्ष्म स्तर पर इन परिवर्तनों के प्रति अवश्य संवेदनशील होना चाहिए।

MAADHYAM IAS

ख) आवश्यकता (Need)

भारत जैसे विकासशील देशों की विकास नीतियों में सामाजिक समता और संतुलित स्थानिक (spatial) विकास का मुद्दा अब केंद्र बिंदु बन गया है। इसके लिए वृहत-आर्थिक क्षेत्रीय उपागम (Macro-economic sectoral approach) की तुलना में नियोजन के संदर्भ में स्थानीय स्तर या प्रादेशिक/क्षेत्र उपागम पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। यह बात इस व्याख्या से उभरी है कि अपने सही परिप्रेक्ष्य में सूक्ष्म नियोजन विविध क्षेत्रीय स्तरों पर उत्पन्न होने वाली सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के प्रति ज्यादा ध्यान देने की ओर प्रवृत्त है।

भौगोलिक दृष्टि से भारत जैसे विविधता वाले देश में राष्ट्रीय स्तर पर एकल क्षेत्रीय नियोजन की तुलना में सामाजिक-आर्थिक रूप से सर्वांगीण विकास के लिए सूक्ष्म नियोजन का सुझाव दिया जाता है। क्योंकि जिस जगह में लोग रहते हैं और काम करते हैं वह वास्तविक है और ऐसी जगह और इसके समुदाय को अनदेखा करने का अर्थ मूल आवास, अर्थव्यवस्था और समाज के बीच की अंत:पृष्ठीय बुनियादी वास्तविकता को अनदेखा करना है। सूक्ष्म नियोजन का मूल तर्क है कि जैसे विकास के लिए संसाधन स्थानबद्ध है उसी तरह नियोजन भी स्थानिक (spatial) दायरे में ही होना चाहिए ताकि मानव, प्राकृतिक और अन्य सभी संसाधनों का भरसक प्रयोग किया जा सके और विकास के फायदों को बराबरी से सभी में बाँटा जा सके ताकि

इससे आर्थिक वृद्धि और विकास की देखरेख में आगे की कोई क्षेत्रीय असमानता की संभावना को नियंत्रित करने में सहायता मिल सके।

निर्धनों तक विकास के फायदों को ले जाने के लिए और संतुलित वृद्धि की निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए और सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए योजना बनाने में माइक्रों स्तर उपागम को अपनाने क सुझाव दिया गया। कुछ जानकारों ने इस बात पर विचार किया कि माइक्रो/क्षेत्रीय नियोजन उसी रूप में नियोजन उद्देश्यों और कार्यनीति को अपना सकता है जिस प्रकार राष्ट्रीय स्तर पर इसका लाभ उठाया जाता है, विशेष रूप से किसी क्षेत्र में राष्ट्रीय योजना के सूत्रीकरण और प्रचालन में उभरती विशिष्ट विशेषताओं पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित (गाडगिल 1967: 6) सामरिक रूप से सूक्ष्म नियोजन विविध क्षेत्रों के लिए उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर प्राथमिकताए तय करने में सहायक होती है और इसके साथ-साथ मैक्रो-स्तर के नियोजन के सफल कार्यान्वयन के लिए भी, अक्सर माइक्रो-नियोजन पर विचार करना जरूरी होता है।

ग) लक्ष्य और उद्देश्य

'सूक्ष्म-नियोजन' में उद्देश्य निम्न स्तर से योजना बनाना अर्थात स्थानीय क्षेत्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए और संतुलित क्षेत्रीय विकास की प्राप्ति के उद्देश्य से विभिन्न क्षेत्रों के एकीकरण की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने के लिए समुदाय की सक्रिय सहभागिता से ऊपर बढ़ते हुए सुपरिभाषित क्षेत्र की ओर बढ़ना। इसलिए किसी क्षेत्र या विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों की अवस्थिति और उनके अंत: संबंध, सूक्ष्म स्तर के नियोजन के प्रमुख विचारणीय बिंदु हैं।

सूक्ष्म नियोजन मानव गतिविधियों के ऐसे स्थानिक प्रतिरूप के विकास पर विचार करती है जिसके बिना नियोजन के आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों की पूर्ति अनुमानित आधार के अनुरूप नहीं की जा सकती। इसलिए ऐसे क्षेत्रों पर ज्यादा जोर दिया जाता है जो निम्न आमदनी वाले समूहों विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के गरीब वर्गों और उन्हें बेहतर जीवन स्तर देने और उनकी शोचनीय सामाजिक आर्थिक दशाओं को बेहतर बनाने पर लक्षित है। अत: ग्रामीण निर्धनता और असमानता के उन्मूलन के लिए माइक्रो-स्तर के विकास नियोजन के माध्यम से स्थानिक किस्म के आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय प्रबंधन पर जोर दिया गया है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि विकास नियोजन पर भारत का दृष्टिकोण राष्ट्रीय उद्देश्यों और प्राथमिकताओं पर जोर देने वाला विशेष रूप से वृहदोन्मुख है। जबकि दूसरी तरफ, सूक्ष्म नियोजन को व्यावहारिक दृष्टि से राष्ट्रीय प्राथमिकताओं और स्थानीय आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए विकसित किया गया।

MAADHYAM IAS

चिंतन और कारवाई 12.1

सूक्ष्म नियोजन से आप क्या समझते हैं!

इसकी आवश्यकता, लक्ष्यों और उद्देश्यों को उजागर कीजिए।

12.3 भारत में सूक्ष्म नियोजन की पृष्ठभूमि

भारतीय नियोजन आरम्भ से ही लोकतंत्र और समाजवाद की संकल्पना में गहराई से बसी विचारधारा के दायरे में देश के संसाधनों के निपुण शोषण द्वारा लोगों के बेहतर जीवन स्तर को विकसित करने और समुदाय की सेवाओं में सभी के लिए रोजगार के अवसर प्रदान करने और उत्पादन को बढ़ाने पर जोर दिया गया है (सिंह 1969 : 254) इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ग्रामीण क्षेत्रों और कमजोर/पिछड़े वर्गों के कल्याण को विशेष महत्व दिया गया है। लेकिन सच्चाई में कुछ विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों और देश के आर्थिक रूप से विकसित/उन्नत कुछ चुनिंदा क्षेत्रों द्वारा फायदों को बड़े भाग को अपने अधिकार में ले लिया जाता है। इससे

ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे गरीब, बेरोजगार और अल्परोजगार और विशेष रूप से ग्रामीण आबादी के कमजोर वर्गों में सामाजिक तनाव उत्पन्न हुआ है और जिससे अंत में प्रादेशिक असमानता और क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हुआ है।

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में से पहली दो ने सूक्ष्म स्तर या क्षेत्रीय नियोजन और विकास की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया, तीसरी योजना के दौरान नियोजन में क्षेत्रीय स्तर ध्यान केंद्रित करना पहली बार और अधिक स्पष्ट रूप में नजर आया। इसने क्षेत्रीय विकास की समास्याओं पर गंभीरता से विचार करने की ओर ध्यान केंद्रित किया। लेकिन नियोजन के स्थानिक आयामों के संदर्भ में उचित राष्ट्रीय नीति के अभाव में, विकास के लिए माइक्रो-स्तर क्षेत्रीय उपागम को वास्तविक नियोजन कार्यनीति शामिल नहीं किया जा सका।

चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) ने हालांकि गौर किया कि देश के कुछ विशेष क्षेत्र दूसरे क्षेत्रों की मेहनत के बूते पर आगे बढ़ रहे थे और आबादी के कुछ निश्चित वर्ग जिनके पास कुछ संसाधन थे वे फलफूल रहे थे जबकि आबादी का अत्यधिक बड़ा भाग आमतौर पर आर्थिक तरक्की की मुख्यधारा से बाहर ही बना रहा। ऐसे कुछ क्षेत्रीय असंतुलनों को सही करने के लिए इसने इस पूर्णधारणा सूक्ष्म नियोजन (जिला स्तर) की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर निर्मित योजनांओं को और अधिक कुशल ढंग से निम्न स्तर के लोगों के लिए काफी नीचे तक लाया जा सकें। अतः चौथी योजना ने बुनियादी स्तर पर सूक्ष्म नियोजन की उपयुक्त कार्यनीति विकसित करने के लिए वृद्धि केंद्रों पर आनुभविक अध्ययनों के लिए और जिला स्तर पर योजना बनाने को पर्याप्त महत्व दिया (चौथी पंचवर्षीय योजना 1969: 229-30)।

चौथी योजना ने दरअसल किसी किस्म की सूक्ष्म नियोजन के माध्यम से क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता पर जोर देते हुए भारतीय नियोजन को एक नया आयाम दिया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

भारतीय नियोजन में पहली बार जिला और निम्न स्तरों पर सूक्ष्म नियोजन को सुदृढ़ करने की अनिवार्यता पर इसने जोर दिया। चौथी योजना ने क्षेत्रीय संसाधन संभावनाओं और सीमाओं को ध्यान में रखकर क्षेत्र विकास के नाम के अंतर्गत बुनियादी स्तर से माइक्रो/क्षेत्रीय नियोजन की शुरुआत की। योजनाकारों और नीति निर्माताओं ने गहराई से महसूस किया कि मैक्रो अर्थात (राष्ट्र/राज्य) स्तर पर नियोजन, संसाधनों में स्थानीय असमानताओं और आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रख सकता। इसलिए जिला और खंड स्तर पर निर्मित क्षेत्र विकास ढाँचे को, राज्य स्तर पर सूत्रबद्ध ढाँचे की तुलना में अधिक यथार्थवादी महसूस किया गया। इसलिए, लघु-स्तर पर क्षेत्रीय नियोजन के लिए शुरूआत में जिले को नियोजन इकाई के रूप में चुना गया।

पिछले क्षेत्रों के विकास को तेज करने के लिए और सामाजिक-आर्थिक विकास में क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए लक्षित ''क्षेत्र'' के स्थायी विकास के लिए समेकित क्षेत्र विकास की संकल्पना का उदय हुआ था। वृद्धि केंद्र, वृद्धि पोल, सर्विस सेंटर मुख्य स्थान आदि जैसे विविध मॉडलों को पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों के अंदरूनी प्रदेशों पर ध्यान देने के लिए उस क्षेत्र के आर्थिक आधार और समष्टि संभावना पर विचार करके चौथी और पांचवीं योजनाओं के दौरान ऐसे मॉडलों को विकसित किया गया।

अतः समेकित क्षेत्र विकास से आशय किसी विशिष्ट के संतुलित विकास के लिए भौतिक स्थान की तुलना में सामाजिक और आर्थिक गतिविधियों की उपयुक्त अवस्थिति से है, इसलिए समेकित क्षेत्र विकास संकल्पना ने उपयुक्त स्थानों में विशिष्ट कार्यों की पहचान करके आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों के विकेंद्रीकरण के लिए नया ढाँचा प्रदान किया (सेन 1972 : 3-9)।

चिंतन और कार्रवाई 12.2

भारत में सूक्ष्म प्लानिंग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर संक्षेप में नोट लिखिए।

12.4 उपागम और कार्यनीतियाँ

माइक्रो स्तर नियोजन को ग्रामीण क्षेत्रों में समेकित क्षेत्र विकास लाने की विधि के रूप में देखा जाता है। सूक्ष्म नियोजन के लिए मुख्य स्थानों के समग्र सोपानक्रम और इसके अंदरूनी भाग इसका केंद्र बिंदु हैं। सूक्ष्म नियोजन में ऐसी योजना बनाने पर जोर दिया जाता है जो निम्नतम स्तर से सुपरिभाषित क्षेत्र की ओर बढ़ती है। बहुत से मामलों में यह क्षेत्र जिले से जुड़ा होता है। ऐसा करके स्थानीय क्षेत्रों की आवश्यकताओं और इसके साथ-साथ क्षेत्र विकास का उद्देश्य पूरा किया जाता है। किसी क्षेत्र की तुलना में विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों में अवस्थिति और उनके अंत: संबंध, सूक्ष्म नियोजन के मुख्य विचारणीय बिंदु हैं (वही)।

विकास का विस्तृत ढांचा प्रदान करते समय, राष्ट्रीय योजनाओं में सामरिक रूप से सूक्ष्म नियोजन विविध-क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर उनके लिए प्राथमिकताएँ तय करने में सहायता करती है। इस बात को महसूस किया गया है कि सूक्ष्म-स्तर नियोजन के बिना किसी भी राष्ट्रीय योजना को उचित ढंग से लागू नहीं किया जा सकता है। इसके साथ ही साथ राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के बिना कोई भी सूक्ष्म नियोजन संभव नहीं है। इसलिए सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए नियोजन की 'वृध्द्' और 'सूक्ष्म' अर्थात् दोनों विधियाँ एक-दूसरे की पूरक हैं और देश के समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए इनका मिलाजुला प्रयोग अनिवार्य है या अन्य शब्दों में, किसी भी विकास नियोजन के प्रभावी बनाने के लिए बुनियादी स्तर से शुरू करते हुए राष्ट्रीय स्तर तक समन्वित तरीके से काम करते हुए एक साथ द्विधारी उपागम का अनुसरण करने की ज़रूरत है (सिंह 1999 : 247)। सूक्ष्म नियोजन अपने सही परिप्रेक्ष्य में विविध क्षेत्रीय स्तरों पर उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का निवारण करने का प्रयास करती हैं। यह स्थानिक दायरे के भीतर योजना बनाने की पेशकश करती है ताकि हर किस्म के संसाधनों का भरसक प्रयोग हो सके और विकास का फल भी सामाजिक रूप से सभी को बराबर से मिल सकें। एक बिंदु पर सूक्ष्म नियोजन का अर्थ अक्सर 'क्षेत्रीय' और 'क्षेत्र' नियोजन से लिया जाता है। नीति की दृष्टि से सूक्ष्म नियोजन विशेष रूप से भारत जैसे देश के लिए सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए यथार्थवादी उपागम प्रदान करती है जहाँ क्षेत्रीय असमानताएं और असंतुलन काफी तीक्षण हैं और गरीबी और बेरोजगारी की समस्याएं ग्रामीण क्षेत्रों में विशिष्ट लक्षणों के साथ चेतावनी दे रही है। बुनियादी स्तर पर स्थानिक समस्याओं, संसाधनों और आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान देते हुए यह राष्ट्रीय योजना के विस्तृत दायरे के भीतर विकास की स्थानिक प्रक्रिया पर जोर देती है।

MAADHYAM IAS

सूक्ष्म नियोजन के पीछे मूल विचार स्थानिक विकास के मार्ग में उत्पन्न विविध अवरोधों और ऐसे क्षेत्रों में वृद्धि संभावनाओं की खोज करने में 'बुनियादी' दृष्टिकोण प्रदान करना है। 1970 में, ग्रामीण भारत में सूक्ष्म-स्तर नियोजन और विकास के लिए बुनियादी साधन के रूप में 'ग्रोथ सेंटर' मॉडल की पहचान की गई थी। सूक्ष्म नियोजन में आबादी के कमजोर वर्गों और पिछड़े प्रदेशों / क्षेत्रों के विकास पर मुख्य जोर दिया गया है।

सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना को सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों के लोगों की संतुलित वृद्धि के लिए जिले या खंड स्तर पर किए जाने वाले प्रयासों की योजना बनाने के लिए विकसित किया गया। सूक्ष्म नियोजन, नियोजन के क्षेत्र में सूक्ष्म स्तर पर वैज्ञानिक स्थानीय योजना प्रदान करके सही मायने में एक बड़ी उपलब्धि थी। सूक्ष्म नियोजन के भौगोलिक क्षेत्र-विस्तार के ध्यान में रखकर जिसके दायरे में विविध विकास कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से संगठित एवं कार्यान्वित किया जा सकता है, 'सूक्ष्म-क्षेत्रों' की क्षेत्र विकास योजनाओं के सूत्रीकरण

के लिए उचित इकाइयों के रूप में पहचान की गई क्योंकि बुनियादी स्तर से इनकी घनिष्ठता पाई गई थी और इसके अंतर्गत जन की प्रत्यक्ष और सक्रिय सहभागिता और योजना के कार्यान्वयन के पर्याप्त अवसर शामिल थे।

सूक्ष्म नियोजन के लिए एकल मानक के रूप में विकास की स्थानिय प्रक्रिया (निम्नतम स्तर से सुपरिभाषित क्षेत्र की ओर बढ़ने वाली योजना पर जोर देता है। सूक्ष्म-स्तर क्षेत्र नियोजन के पीछे मूलाधार है कि विशिष्ट सेवाओं की उपलब्धता के आधार पर बस्तियों का सोपानक्रम है और ऐसी आबादी है जिसे सर्वाधिक उपयुक्त स्थानों पर होने की जरूरत है। सूक्ष्म नियोजन उपागम विविध समेकित क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के माध्यम से आगे बढ़ने के लिए पिछड़े क्षेत्रों को अवसर देता है। यह उपयुक्त स्थानों पर विशिष्ट कार्यों को भांप कर आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों के विकेंद्रीकरण के लिए ढांचा भी प्रदान करता है। इसलिए किसी क्षेत्र के संदर्भ में विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों की अवस्थिति और उनके अंतः संबंध सूक्ष्म-स्तर नियोजन के मुख्य विचारणीय मुद्दे हैं (सिंह 1982 : 33)।

बाद के समय में सूक्ष्म नियोजन उपागम से बहुत से नये क्षेत्र विशिष्ट विकास कार्यक्रमों की शुरुआत भी हुई। इनमें से सर्वाधिक लोकप्रिय हैं : कमान क्षेत्र विकास (सी ए डी), मरुभूमि विकास कार्यक्रम (डी डी पी), सूखा-संभावित क्षेत्र विकास कार्यक्रम (डी पी ए पी) समेकित क्षेत्र विकास कार्यक्रम (आई ए डी पी) पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (एच ए डी पी) जनजातीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम (टी ए डी पी) और समग्र ग्राम विकास कार्यक्रम (डब्ल्यू वी डी पी)। ये सभी कार्यक्रम ऐसे विशिष्ट क्षेत्रों या प्रदेशों के प्रति निदेशित हैं जिनमें कुछ कमियाँ हैं या जहाँ कुछ निश्चित समस्याओं के उत्पन्न होने की पूरी संभावना है।

चिंतन और कार्रवाई 12.3

अपने क्षेत्र की किसी माइक्रो-परियोजना का पता लगाइए। इस परियोजना की प्रकृति इसे प्राप्त निधियों के स्रोत और इसके उद्देश्यों और उपलब्धियों के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए। अपनी जानकारी के आधार पर इस परियोजना की सफलता / विफलता के लिए उत्तरदायी कारणों पर तीन पेजों का नोट लिखिए।

MAADHYAM IAS

12.5 सूक्ष्म नियोजन के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा की उन्नति

सूक्ष्म नियोजन की कार्यनीति, सामाजिक चिंता के विविध क्षेत्रों में लागू की जाती है। जैसे कि शिक्षा, मानव विकास का महत्वपूर्ण घटक है इसलिए इस अनुभाग में हम जाँच करेंगे कि सूक्ष्म नियोजन का प्रयोग किस प्रकार भारत में प्राथमिक शिक्ष की उन्नति के लिए किया जाता है।

जैसा कि आप जानते हैं, शिक्षा समवर्ती सूची में शामिल हैं, इसलिए केंद्र और राज्य सरकार दोनों शिक्षा पर नियम बना सकते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से केंद्र एवं राज्य सरकारें प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को पूरा करने के लिए प्राथमिक औपचारिक और गैर-औपचारिक शिक्षा के प्रावधान का विस्तार करते आ रहे हैं। यू ई ई के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए राज्य, जिला और यहाँ तक कि ग्राम स्तर पर बहुत सी कार्यनीतियों को सूत्रबद्ध किया गया है। अब चुनौती शिक्षा में मौजूदा सुधारों को कायम रखना है और इन्हें और अधिक गूढ़ करना है और प्राथमिक शिक्षा के विस्तार और इसमें सुधार के लिए स्थानीय नियोजन और कार्यनीतियें के रखरखाव की व्यवस्था को बढ़ावा देना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 और इसकी कार्य-नीति (1992) ने प्रारंभिक शिक्षा के प्रबंधन के लिए ग्राम शिक्षा समितियों (वी ई सी) के सूत्रीकरण की कल्पना की।

इस नीति ने परिवार-वार और बाल-वार कार्य योजना की रूपरेखा विकसित कर, एक प्रक्रिया के रूप में सूक्ष्म नियोजन पर जोर दिया और जिसके अंतर्गत, प्रत्येक बच्चा नियमित रूप से अपनी सहूलियत की जगह पर अपनी शिक्षा जारी रख सकता है और कम से कम स्कूल में आठ वर्ष की पढ़ाई पूरी कर सकता है (भारत सरकार, 2005)।

संविधान में 73वां और 74वां संशोधन, गतिविधियों के विकेंद्रीकरण की बात करता है और स्थानीय स्व-शासन संस्थाओं या पंचायती राज संस्था की सहभागिता और सत्ता अंतरण की प्रक्रिया को सुगम बनाता है। बुनियादी स्तर पर यू ई ई कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए महिलाओं, अनुसूचित जातियों और जनजातियों, अल्पसंख्यकों, अभिभावकों और शैक्षिक कार्यकर्ताओं ने इन संस्थाओं का भरसक लाभ उठाया है। जैसा कि पंचायती राज संस्थाओं को सूक्ष्म नियोजन और स्कूल मानचित्रण के आधार पर मौजूदा प्राथमिक और उच्च विद्यालयों की अवस्थिति और पुनर्स्थिति पर विचार करने की भी जिम्मेदारी सौंपी गई और जो ग्राम स्तर पर विकेंद्रकृत स्कूल प्रबंधन के लिए प्रभावी साधन के रूप में उभरी है। आठवीं योजना के समय से, प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ने योजना तंत्र को राज्य से जिला स्तर पर परिवर्तित कर दिया है और 'लोक जुम्बिश' ने निर्णय लेने की प्रक्रियाओं को खंड स्तर की समिति को सौंपते हुए इस दिशा में एक कदम और आगे बढ़ाया। ग्राम स्तर पर ग्राम शिक्षा समिति की मुख्य जिम्मेदारी सामुदायिक गतिशीलता, स्कूल चित्रण, सूक्ष्म नियोजन, स्कूल और इमारतों का निर्माण और शैक्षणिक पाठ्यचर्चा जैसे मुद्दों की देखरेख करना है। ऐसे सामुदायिक आधारित कार्यक्रमों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है :

1) सामुदायिक गतिशीलत और सहभागिता

बुनियादी स्तर पर सामुदायिक सहयोग और सहभागिता की मजबूत आधारशीला पर ही शिक्षा जगत के नवीन प्रयास आधारित हैं। जब परियोजना के दौरान विविध स्तरों पर शैक्षिक प्रगति की चर्चा और इसका विश्लेषण किया जाता है तो "जन की स्वीकृति और सहभागिता को सूचक के रूप में देखा जाता है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के प्रयासों में और अच्छी किस्म की शिक्षा प्रदान करने में प्रत्येक बच्चे के लिए अच्छी किस्म की शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए ग्राम समुदाय को एकत्र करना, 'लोक जुम्बिश' (एलजे) और शिक्षा कर्मी परियोजाना (एस के पी) अर्थात् दोनों की मूल रणनीति है।

MAADHYAM IAS

2) शिक्षा कर्मी परियोजना (एस के पी)

इस परियोजना ने 2000 ग्रामों में ग्राम शिक्षा समितियों (वी ई सी) का गठन किया और इसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देन और ग्रामीण स्तर पर योजना के कार्य को प्रेरित करना भी है। वी ई सी की भूमिका: स्कूली बुनियादी ढांचे के अनुरक्षण, मरम्मत और निर्माण के लिए संसाधन जुटाना है और स्थानीय समुदाय और शिक्षा कर्मियों (शैक्षिक कार्यकर्ता) से सलाह करके स्कूली कामकाजों और स्कूल के समय का निर्धारण करने की है। शिक्षा कर्मी परियोजना (एस के पी) को 1987 से स्वीडिश इंटरनेशनल डेवलपमेंट कार्पोरेशन एजेंसी (एस आई डी ए) के सहयोग से लागू किया गया है। परियोजन का उद्देश्य, राजस्थान के दूर-दराज के और सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े ग्रामों में विशेष रूप से बालिकाओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनिकरण और गुणात्मक सुधार पर जोर देना है। जैसा कि यू ई ई के उद्देश्य की पूर्ति में शिक्षक अनुपस्थिति प्रमुख बाधा के रूप में पाई गई है, इसलिए परियोजना ने शिक्षकों की छवि को बदलते हुए शिक्षा कर्मी के रूप में फिलहाल बंद स्कूलों में देहाती नवयुवकों को कड़ा प्रशिक्षण और पर्यवेक्षी सहयोग दे कर एक नवीन दृष्टिकोण को अपनाया है। इस नवीन परियोजना की महत्वपूर्ण विशेषता, प्राथमिक स्कूलों की कार्यप्रणाली में सुधार लाने में समुदाय को एकत्र करना और उनकी सहभागिता को महत्व देना है।

3) लोक जुम्बिश परियोजना

लोक जुम्बिश (एल जे) परियोजना का कार्य स्थानीय रूप से चयनित व्यक्तियों विशेष रूप से ग्राम स्तर पर महिला प्रतिनिधियों को सशक्त करना है जो अक्सर एल ए कोर टीम या महिला समूहों के सदस्यों की भांति सक्रिय हैं, ग्राम शिक्षा समितियों का गठन सोच समझकर किया जाता है और एल जे कार्यक्रम की देखरेख के लिए उन्हें प्रशिक्षित किया जाता है। सिर्फ पांच वर्ष पुरानी लोक जुम्बिश परियोजना ने राजस्थान के प्राथमिक शिक्षा परिदृश्य पर अमिट छाप छोड़ी है। इस परियोजना को लाभ पहुंचाने की दृष्टि से 75 खंडों तक इसका विस्तार किया गया है और इससे लगभग 12 मिलियन लोगों को फायदा हुआ है। इसके अलावा प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को बढ़ावा देने के लिए सरकारी एजेंसियों, अध्यापकों, गैर सरकारी संगठनों और अंत: क्रियात्मक समूह प्रयासों में चयनित प्रतिनिधियों और लोगों को एक साथ जोड़ने में इस परियोजना ने भारी सफलता हासिल की है। लोक जुम्बिश के सात मागदर्शी सिद्धांत हैं :

- उत्पाद उपागम की बजाय एक प्रक्रिया के रूप में लक्ष्य की पूर्ति;
- भागीदारी;
- विकेंद्रीकृत कार्यप्रणाली;
- सहभागितापरक अधिगम;
- शिक्षा पद्धति की मुख्यधारा में इस परियोजना का एकीकरण;
- प्रबंध में लचीलापन; और
- गुणवत्ता और मिशन माध्यम के प्रति समर्पित नेतृत्व के बहु स्तरों की सर्जना।

एल जे अंतर्गत सभी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में पर्यावरण निर्माण पर विशेष ध्यान दिया गया है। इससे जन सहभागिता, जन संचार के विविधा माध्यमों का प्रयोग और जन को प्रदत्त संदेशों की स्पष्टता से संबंधित मुद्दों की समझ विकसित करने में सहायता मिलती है (वही)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

चिंतन और कार्रवाई 12.4

अपने इलाके में सरकारी सहायता प्राप्त प्राथमिक स्कूल का दौरा कीजिए ताकि आप स्कूल प्रबंधन में स्थानीय लोगों की सहभागिता पर जानकारी एकत्र कर सकें। इसके अलावा यह भी पता लगाइए कि स्थानीय लोगों की सहभागिता किस प्रकार स्कूल की कार्य प्रणाली के स्कूल में विद्यार्थियों के नामांकन और स्कूल में विद्यार्थी के रूप में उनके बने रहने जैसी बातों को प्रभावित करती है। अपने प्रेक्षण के आधार पर लगभग 500 शब्दों में नोट लिखिए।

12.6 सूक्ष्म नियोजन : साकल्यवादी उपागम की आवश्कता

भारत में सूक्ष्म नियोजन वर्ष 1970 के आरंभ में दिलचस्पी और अध्ययन के लिए विषयवस्तु का मुद्दा बना। देश की उभरती सामाजिक-आर्थिक दशाओं और क्षेत्रीय असमानताओं की जाँच करने में नियोजन के पिछले अपर्याप्त प्रयासों का ध्यान में रखकर सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना का सूत्रपात हुआ। क्षेत्र के समेकित और संतुलित विकास के लिए सूक्ष्म नियोजन एक नवीन दृष्टिकोण है। किसी क्षेत्र में विशिष्ट संसाधनों और सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों की अवस्थिति और उनके अंत:संबंध, सूक्ष्म-लैबल नियोजन की दिलचस्पी के मुख्य मुद्दे हैं।

सूक्ष्म नियोजन विस्तृत रूप से उत्पन्न तरह-तरह की स्थानीय समस्याओं, उलझनों, संसाधनों, बुनियादी ढांचों और आवश्यकताओं पर जोर दे कर विशिष्ट क्षेत्रों की विशिष्ट स्थानीय समस्याओं के प्रति अपना खुद का ध्यान केंद्रित करती है। संक्षेप में सूक्ष्म नियोजन, संबद्ध नियोजन तत्व के संसाधनों के आबंटन से संबद्ध है ताकि ऐसे तत्व के संभावित लक्ष्यों को अधिकाधिक बनाया जा सके (सिंह 1999 : 246)।

तीसरी योजना तक भारत ने कार्यान्वयन की दृष्टि से किसी भी तरह की सूक्ष्म-स्तर योजना को विकसित किए बिना मैक्रो-स्तर नियोजन को ही अपनाया हुआ था। चौथी योजना में हालांकि, प्राकृतिक और मानव संसाधनों के उचित सदुपयोग द्वारा अल्पविकसित क्षेत्र को खुशहाल बनाने में सूक्ष्म नियोजन की आवश्यकता की कल्पना की गई। प्रत्येक क्षेत्र में बुनियादी ढांचा प्रदान करने और वृद्धि संबंधी अन्य अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए क्षेत्र विकास कार्यक्रम के माध्यम से जिला और निम्न स्तरों पर सूक्ष्म नियोजन को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पर इस योजना ने जोर दिया। सूक्ष्म नियोजन के प्रतिपादकों ने महसूस किया कि राष्ट्रीय और राज्य स्तरों की योजना स्थानीय संसाधनों और आवश्यकताओं में पाई जाने वाली भिन्नता को ध्यान में नहीं रख सकती है इसलिए उच्च स्तर पर योजना बनाने की बजाय जिला और खंड-स्तरों पर क्षेत्र विकास ढांचा कायम करने पर विचर करना अधिक यथार्थवादी पाया गया।

किसी भी माइक्रो या क्षेत्र नियोजन के मामले में इसकी सही मायने में नीति बनाने और सफल प्रदर्शन के लिए चार मुख्य बातों पर विचार करना जरूरी है। ये हैं : (1) क्षेत्र की विशिष्ट आवश्यकताओं की पहचान, (2) क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों पर लागू सीमाओं और अवसरों का सही निर्धारण, और बहु स्थानिक स्तरों पर उचित तालमेल स्थापित करना।

इसके अलावा विस्तृत माइक्रो-स्तर क्षेत्र विकास योजना तैयार करने में आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को और अधिक तालमेल में एकल लक्ष्य के रूप में आपस में जोड़ने की जरूरत है।

अंत में, भारत जैसे देश में जहाँ अलग-अलग जातियों के लोग हैं और क्षेत्रों में भारी विविधता है, वहाँ विकास के स्तरों में विस्तृत स्थानीय भिन्नता ऐसे अलग उपागम (नजरिए) की माँग करती है जिसमें निर्मित योजना स्थानीय संसाधनों की संभावना अर्थात् ऐसे संसाधनों की उपलब्धता पर आधारित हो और जो स्थानीय आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील हो। इस उद्देश्य के लिए माइक्रोस्तर प्रादेशिक और स्थानीय नियोजन, राष्ट्रीय योजना के समग्र ढांचे के भीतर क्षेत्र विशिष्ट विकास को बढ़ावा देने के लिए उचित साधन है। ऐसे साधनों के माध्यम से प्रदेश में व्याप्त निष्क्रियता, निर्धनता, बेरोजगारी और असमानता का उन्मूलन करके ग्रामीण क्षेत्रों में प्रगति, खुशहाली, स्व-रोजगार और समना जैसी बातों को कायम किया जा सकता है। हालांकि, सूक्ष्म नियोजन के असरदार होने के लिए सूक्ष्म नियोजन के अंत: विषयक उपागम को अपनाने की जरूरत है।

MAADHYAM IAS

12.7 सारांश

बेशक, सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना एक बहुचर्चित वार्ता का भाग बन गई है। फिर भी यह संकल्पना आम आदमी से नीति निर्माताओं तक अलग रूप में देखी जाती है। हमारी यह इकाई हमें सूक्ष्म नियोजन की संकल्पना, इसकी आवश्यकताओं और उद्देश्यों से अवगत कराती है। यह जाँच करती है कि किस प्रकार भारत में इस संकल्पना का सूत्रपात हुआ और किस प्रकार विविध योजनाओं में इस पर विचार किया गया। सूक्ष्म नियोजन, बुनियादी स्तर पर वृद्धि संभावनाओं की खोज करने पर लक्षित है। इसके अतिरिक्त भारत में सामाजिक दिलचस्पी के विविध क्षेत्रों में सूक्ष्म नियोजन को लागू किया गया है। इसके अलावा इकाई में हमने देखा कि भारत में शिक्षा की तरक्की के लिए किस प्रकार सूक्ष्म नियोजन का प्रयोग किया जाता है। अंततः यह मानव विकास के क्षेत्र में सूक्ष्म नियोजन के लिए साकल्यवादी उपागम की आवश्यकता को उजागर करती है।

12.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गाडगिल, डी.आर. 1967, डिस्ट्रिक्ट डेवलपमेंट प्लानिंग, गोखेल इंस्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एंड इकनॉमिक : पुणे।

सिंह, राधा रमन, 1982, स्टडिज इन रिजिनल-प्लानिंग एंड सोशल डेवलपमेंट एसोसिएटिड बुक एजेंसी : पटना।

सिंह, त्रिलोक, 1969, टूवर्डस आफ इनटैगरेटिड सोसायटी: रिफलैक्शन अन प्लानिंग, सोशल पॉलिसी एंड रूरल इंस्टीट्यूशनस, ओरिएंट लांगमैन : बाम्बे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 13

परिस्थितिकी, पर्यावरण और विकास

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 पारिस्थितिकी और स्थायी विकास

13.3 पर्यावरणीय चिंता के मुद्दे और समकालीन सामाजिक सिद्धांत

13.4 पारिस्थितिकीय और पर्यावरण पर विकास के परिणाम

13.5 पारिस्थितिकी आंदोलन और उत्तरजीविता

13.6 पारिस्थितिकीय चिंता के मुद्दों के रूप में विकास परियोजनाएँ

13.7 पर्यावरणीय चिंता के मुद्दों का अंतर्राष्ट्रीयकरण

13.8 प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए सहभागितापरक उपागम

13.9 सारांश

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

हमारी यह इकाई निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डालते हुए विकास के पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय मुद्दों से आपको परिचित कराती है:

- पारिस्थितिकी, पर्यावरण और विकास के आपसी संबंध;
- पारिस्थितिकी और पर्यावरण पर विकास के परिणाम; और
- पारिस्थितिकीय आंदोलनों की चिंता के मुद्दे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

13.1 प्रस्तावना

हमारी यह इकाई आपको 'पारिस्थितिकी, पर्यावरण और विकास' के अंतः संबंधों से अवगत कराती है। इकाई की शुरुआत संकल्पनाओं और उनके विकास पर चर्चा की गई। इस इकाई पारिस्थितिकी और पर्यावरण पर विकास के परिणामों की चर्चा करती है। इसके अलावा पर्यावरण के निम्नीकरण, सामाजिक प्रदूषण और वनों की तबाही जैसे मुद्दों पर भी इकाई में चर्चा की गई है। पर्यावरणीय आंदोलनों के प्रमुख विचारणीय मुद्दों पर भी चर्चा की गई है। इस इकाई का अंतिम अनुभाग ऐसी कुछ विकास परियोजनाओं से संबंधित है जिन्होंने विश्व भर के पर्यावरणविदों को एक चेतावनी दे दी है।

13.2 पारिस्थितिकी और स्थायी विकास

हाल की के वर्षो में 'स्थायी' विकास शब्द ने विस्तृत अंतरराष्ट्रीय मुद्रा की प्राप्ति की है। कारण है : न केवल स्थानीय राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर बल्कि राष्ट्रों और सरकारों में भी पर्यावरणीय समझ में होने वाली बढ़ोतरी। पर्यावरणीय स्थायित्व सुनिश्चित करते हुए सातवां सहस्राब्दि विकास लक्ष्य भावी पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक पारितंत्र की उत्पादन क्षमता का संरक्षण और स्थायी विकास प्रतिरूपों की प्राप्ति की मांग करता है।

1980 की शुरुआत तक, विश्व के बहुत से देशों में पारिस्थितिकी को विकास नियोजन के अनिवार्य तत्व के रूप में शामिल नहीं किया गया था और इसी वजह से मुख्य मुद्दे के

रूप में इस पर गंभीरता से विचार नहीं किया गया। वर्षों में आर्थिक विस्तार के वैश्विक पर्यावरण के लिए खतरनाक परिणाम रहे हैं। ओजोन परत का कम होना, वायु प्रदूषण वनों और जैव-विविधता का हनन, पौधों और पशुओं की प्रजातियों की विलुप्ति, समुद्री जीवन का हनन, और मृदा एवं जल प्रदूषण खतरनाक दर पर बढ़ रहा है। पर्यावरणीय विविधता के महत्व को महसूस करके और मानव बस्तियों पर इनके द्वारा उत्पन्न समस्याएँ और इनका प्रभाव, जीवन की गुणवत्ता, विकासात्मक समस्याएं और उर्वरता, मृत्युता और रूग्णता में होने वाले परिवर्तनों के मद्देनजर, 1980 के दौरान पारिस्थितिकी की संकल्पना ने अपने महत्व की ओर सभी का ध्यान केंद्रित किया। इससे यह बात सामने आई कि सामान्य तौर पर जीवन की बेहतरी के लिए पारितंत्र को सुरक्षित करना बेहद जरूरी है।

बॉक्स 13.1: पारिस्थितिकी

'पारिस्थितिकी' शब्द का अर्थ भौगोलिक पर्यावरण के साथ बदलता रहता है और इसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिकीय परिवर्तन अक्सर साधराण प्रौद्योगिकियों का प्रयोग करने वाले लोगों की भौतिक संस्कृति पर पर्यावरण के सीधे-सीधे प्रभाव के अध्ययन तक ही सीमित रहते हैं... उसी तरह सामाजिक पारिस्थितिकी का संबंध न केवल ऐसे पर्यावरण उत्पन्न प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया से है जहां प्रौद्योगिकी अत्याधुनिक नहीं है बल्कि इसका संबंध ऐसे समूहों के वितरण और संघटन से भी है जो कि प्राकृतिक संसाधन के शोषण, और ऐसे समूहीकरण से उत्पन्न परोक्ष संबंधों और विशिष्ट प्राकृतिक वासों से जुड़ी विश्वव्यवस्था की सामान्य परिकल्पना के लिए जरूरी है।''

(स्रोत : शब्दकोश-समाजशास्त्र 1969 : 62)।

पिछले समय की तुलना में मानव इतिहास का हाल ही का समय, संसाधन सुदुपयोग की अपनी उत्साहवर्धक उच्च दरों को स्पष्ट करता है। औद्योगिक और कृषीय उत्पादों के निरंतर और प्रबल उत्पादन ने संसाधनों के प्रवाह और विश्व भर के समग्र भंडार पर बढ़ती मांगों को उत्पन्न किया है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

प्राकृतिक संसाधनों की वाणिज्यीकरण पर लक्षित विकास अंत:क्षेपों में एक ऐसा बदलाव शामिल है जिसके मद्देनजर संसाधन संबंधी अधिकारों पर ध्यान केंद्रित किया जाता है और उसे लागू किया जाता है। विकास की संसाधन मांग ने आर्थिक रूप से पिछड़े निर्धनों और शक्तिहीनों की उत्तरजीविता को या सीधे तौर पर उनकी बुनियादी आवश्यकताओं से संसाधनों का रुख मोड़ कर या जीवन-सहायक प्राकृतिक संसाधनों का नवीकरण सुनिश्चित करने वाली अनिवार्य पारिस्थितिकीय प्रक्रिया को तबाह करके प्राकृतिक संसाधन आधार को संकुचित कर दिया है। चिरस्थायी विकास के लिए सजीव और निर्जीव संसाधन आधार के आर्थिक कारकों के साथ-साथ इसे सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिकीय कारकों और इनके दीर्घकालिक और अल्पकालिक लाभ और हानियों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

क) स्थायी विकास

ब्रंडलैंड आयोग ने अपनी रिपोर्ट में स्थायी विकास को ऐसे विकास के रूप में परिभाषित किया है "जो भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता से बिना किसी तरह का समझौता किए मौजूदा पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करता है''। इस परिभाषा में दो तरह की संकल्पनाओं का समावेश है–'आवश्यकता' की संकल्पना विशेष रूप से विश्व के निर्धन वर्ग की अनिवार्य आवश्यकताएँ जिन्हें अनिवार्य प्राथमिकता दी जाती चाहिए और मौजूदा और भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण की योग्यता पर प्रोद्योगिकी और सामाजिक संगठन द्वारा लागू सीमाओं का विचार बनाना।

अत: आर्थिक और सामाजिक विकास के लक्ष्यों को अवश्य ही विकसित/ विकासशील,

बाजार-उन्मुख या केंद्रीय स्तर पर नियोजित सभी देशों के स्थायित्व की दृष्टि से ही परिभाषित किया जाना चाहिए। व्याख्या एक-दूसरे से भिन्न होगी लेकिन कुछ विशिष्ट विशेषताएं एक जैसी ही होनी चाहिए और ये स्थायी विकास की बुनियादी संकल्पना पर 'सभी की सर्वसम्मति से बने विचारों के रूप में प्रवाहित होनी चाहिए और विकास की प्राप्ति के लिए विस्तृत सामरिक ढांचे पर आधारित होनी चाहिए'।

विकास में अर्थव्यवस्था और समाज का रूप परिवर्तन होता रहता है। ऐसा विकास पथ जो कि भौतिक दृष्टि से स्थायी है, यहां तक कि स्थिर सामजिक और राजनीतिक व्यवस्था में भी सैद्धांतिक रूप से अनुकरण किया जा सकता है। लेकिन भौतिक स्थायित्व को तब तक सुरक्षित नहीं किया जा सकता जब तक कि विकास नीतियां, संसाधनों तक पहुंच बनाने में होने वाले परिवर्तन और लागतों और लाभों के वितरण में होने वाले परिवर्तनों जैसे विचारणीय बिंदुओं पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं करेंगी।

ख) प्राकृतिक संसाधनों पर औपनिवेशिक प्रभुत्व

सदियों से भू, पानी और वनों जैसे प्रभाव प्राकृतिक संसाधनों पर ग्रामीण समुदायों का नियंत्रण कायम था और इनको प्रयोग भी ये लोग मिलजुल कर ही करते थे जिससे ऐसे नवीकृत संसाधनों का स्थायी प्रयोग सुनिश्चित होता था। संसाधन नियंत्रण में पहला मूल-परिवर्तन और गैर-स्थानीय कारकों द्वारा इन प्राकृतिक संसाधनों पर उत्पन्न प्रमुख वादविवादों के आविर्भाव, विश्व के इस भाग पर औपनिवेशिक प्रभुत्व कायम होने से जुड़ा हुआ है। ऐसे प्रभुत्व ने लाभ की प्राप्ति और आमदनी की वृद्धि के लिए सही क्रम में आगे बढ़ते हुए सामान्य लेकिन प्रमुख संसाधनों को वस्तुओं में तब्दील कर दिया। इस प्रवृत्ति से शय मिलने में बड़ी सीमा तक पहली औद्योगिक क्रांति जिसने यूरोपियाई उद्योगों को दक्षिण अफ्रीका के संसाधनों तक पहुंच स्थापित करने की अनुमति दी थी। मुख्य संसाधनों को वस्तुओं में तब्दील करने के दो निहितार्थ हैं— पहला, यह राजनीतिक दृष्टि से निर्बल समूहों को अपने अधिकारों को बनाए रखने से वंचित करता है जिनकी प्राप्ति उन्हें सामान्य संसाधनों तक पहुंच स्थापित करके हुई थी; दूसरा, संसाधन प्रयोग पर सामाजिक अवरोधों को हटा कर यह प्रकृति से उसे संसाधनों को नया रूप देने और उनकी वृद्धि कायम रखने का अधिकार अपने कब्जे में कर लेती है जो कि सामान्य संपदा प्रबंधन का आधार है। अंतरराष्ट्रीय औपनिवेशिक संरचना के विध्वंस होने और क्षेत्र में प्रभुसत्ता वाले देशों की स्थापना से, प्राकृतिक संसाधनों पर ऐसे अंतरराष्ट्रीय वाद-विवाद का कम होने का अनुभव था और इसके बदले व्यापक रूप से राष्ट्रीय हितों के मार्गदर्शन में संसाधन नीतियों ने जगह कायम कर ली। हालांकि संसाधन प्रयोग नीतियां औपनिवेशिक प्रतिरूप के साथ अपनी रफ्तार पर आगे चलती रहीं और हाल ही के वर्षों में तीसरी दुनिया के कुलीन वर्ग की मांगों को पूरा करने और अंतरराष्ट्रीय अपेक्षाओं को पूरा करने में संसाधन प्रयोग में दूसरा महत्वपूर्ण बदलाव लाया गया है जिससे विविध-हितों में एक अन्य प्रचंड द्वंद्व उत्पन्न होने के आसार हैं। इस द्वंद्व का सर्वाधिक गंभीर और चुनौतीपूर्ण लाभ जो नजर आयेगा, वह शायद ऐसा राजनीतिक दृष्टि से दुर्बल और सामाजिक असंगठित समूह है जिसकी संसाधन अपेक्षाएं न्यूनतम हैं और जिसकी उत्तरजीविता मुख्य रूप से बाजार व्यवस्था से परे प्रकृति के उत्पादों पर सीधे तौर पर निर्भर है। संसाधन सदुपयोग से हाल ही में होने वाले परिवर्तनों ने पूरी तरह ऐसे समूहों की उत्तरजीविता आवश्यकताओं पर अपना नियंत्रण कायम कर लिया है। ऐसे परिवर्तन मुख्यतया दक्षिण के कुलीन वर्गों और उत्तर के देशों की अपेक्षाओं की देन हैं।

> **चिंतन और कार्रवाई 13.1**
>
> आपकी राय में उपभोग में बढ़ोतरी किस प्रकार विकास की प्रक्रिया का प्रभावित करती है?

ग) वैश्विक बाजारों का विस्तार

विचारधारा के रूप में विकास, वैश्विक बाजार प्रभुत्व के परोक्ष प्रवेश की अनुमति देता है। इससे अंतरराष्ट्रीय सहायता और विदेश ऋण की आवश्यकता उत्पन्न होती है जो कि ऐसी

विकास परियोजनाओं के लिए पूंजी प्रदान करती है जो संसाधनों को बाजार में चलाता है या उन पर एकल स्वामित्व कायम करता है। इसी वजह से स्थानीय संसाधन, धीरे-धीरे स्थानीय समुदायों के नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं और यहां तक कि राष्ट्रीय सरकारें भी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के हाथों की कठपुतली बन जाती हैं। वानिकी परियोजनाएं, बांध परियोजनाएं और मत्स्य पालन परियोजनाओं दूर दराज के गांव के संसाधनों में अंतरराष्ट्रीय निवेश और सहायता को शामिल करते हैं। विश्व बैंक जैसी बहुपक्षीय विकास एजेंसियां पर्यावरणीय दृष्टि से कृषि वानिकी और सिंचाई जैसे संवेदनशील क्षेत्रों के लिए ऋण देती हैं और इन ऋणों के माध्यम से बाजार अर्थव्यवस्था को प्रमुखता प्रदान करता है और प्रकृति की अर्थव्यवस्था और उत्तरजीविता अर्थव्यवस्था को अपरिहार्य रूप देता है। सिंचाई परियोजनाओं में ऋण की शर्त से प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग के माध्यम और निवेश पर वापसी की दर का निर्धारण होता है जो कि नकदी फसलों की खेतीबाड़ी और पानी की बर्बादी के लिए अत्यावश्यक है यद्यपि इससे पूरी जमीन पानी से भर जाती है या शुष्क मरुभूमि बन जाती है। अंतरराष्ट्रीय वित्त घोषित विकास परियोजनाओं के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों पर उत्पन्न वादविवाद जनजातीय और कृषीय समुदायों को ऐसे अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के मुकाबले में खड़ा कर देते हैं जहां राज्य की भूमिका, बेदाबल स्थानीय समुदायों के अभिकर्ता के रूप में विकास की विचारधाराओं और वैश्विक योजनाओं का रास्ता अवरोधरहित बनाने की होती है। अत: वैश्विक बाजार अर्थव्यवस्था से नाता जोड़ने का अर्थ प्रकृति की अर्थव्यवस्था और उत्तरजीविता अर्थव्यवस्था के लिए विचारणीय मुद्दे को अनदेखा करना है।

तीसरी दुनिया के देशों के आर्थिक विकास में अंतरराष्ट्रीय वित्त का भारी प्रयोग प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन की कार्यनीतियों में भारी बदलाव लाता है। जरूरी संसाधनों के निर्यात में तेजी में वृद्धि होने से देश ऋण के जाल में फंस गए हैं और साथ ही साथ वहां पारिस्थितिकीय निम्नीकरण भी काफी हुआ है।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 13.2: चैरनोबिल महाविपत्ति

26 अप्रैल 1986 को बेलोरसियन सीमा से 12 किमी. दूर केव क्षेत्र, यूक्रेन में महाविपत्ति उत्पन्न हुई अर्थात चैरनोबिल नाभिकीय पावर स्टेशन की एक पावर इकाई में घोर संकट पैदा हो गया। अपने बड़े आकार और दीर्घकालिक जटिल परिणामों के कारण परमाणविक ऊर्जा प्रयोग के समग्र विश्व इतिहास में यह सर्वाधीक भीष्ण महाविपति है। बंद रिएक्टर के धमाके के परिणामस्वरूप, रेडियोएक्टिव पदार्थों की भारी मात्रा में वातावरण में घुलमिल गई। दुर्घटना से बेलारस क्षेत्र के 23 फीसदी भाग पर रेडियो - एक्टिव प्रभाव का भारी असर पड़ा जहाँ पर कि 2 मलियिन से भी लोगों की 3778 बस्तियाँ थी। प्रभावित कुल क्षेत्र यूक्रेन का 4.8 प्रतिशत भाग था और रूस का 0.5 प्रतिशत।

चेरनोबेल दुर्घटना के बाद पारिस्थितिकीय आपदा का क्षेत्र बन गया। स्थिति बद से बदतर बन गई जब रेडियोएक्टिव संदूषण का नया क्षेत्र, पहले से मौजूद उच्च रासायनिक प्रदूषण वाले क्षेत्र से जुड़ गया। कृषीय भूमियों का क्षेत्र रेडियोएक्टिव सीजियम-137 से संदूषित हो गया और ऐसा प्रभावित क्षेत्र 1600 हजार हैक्टर तक फैला हुआ है। बेलोटस में 1685 हजार हैक्टर का वन रेडियोएक्टि तत्वों से संदूषित है। इस महाविपत्ति ने बेटोरस के लाखों रहने वालों के भाग्य पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ा है। ऐसी महाविपत्ति से कृषीय उत्पादन और वानिकी को सामान्य होने में काफी दशकों का समय लगेगा।

स्रोत: www//belonusguide.com

13.3 पर्यावरणीय चिंता के मुद्दे और समकालीन सामाजिक सिद्धांत

मौजूदा पारिस्थितिकीय संकटों के कारणों और परिणामों पर हाल ही में जो चिंता व्यक्त की गई है, आधुनिक सामाजिक सिद्धांत में उसका विशेष महत्व है। मनुष्यों और प्रकृति के बीच का संबंध और प्रकृति पर मानव कार्यों के हानिकर प्रभाव जो कि अभी तक का उपेक्षित क्षेत्र रहा है, मुख्य मुद्दे के रूप में उभरा है। समकालीन सिद्धांत में अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा पर्यावरणीय राजनीति/आंदोलनों की वृद्धि है जो उत्पादन के आधुनिक औद्योगिक / पूंजीवाद माध्यम के लिए चुनौती है जो कि पर्यावरणीय रूप से अनिवार्यतया विनाशकारी है।

एंथनी गिड्डन ने अपनी बाद की रचनओं में पर्यावरणीय समस्याओं को विकासशील देशों के औद्योगिक क्षेत्रों आधुनिक औद्योगिक समाजों के लिए उत्तरदायी ठहराया है। संकट का मूल बिंदू चाहे कुछ भी हो, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के तालमेल से चित्रित आधुनिक उद्योग विश्व की प्रकृति में अभी तक का सबसे बड़ा बदलाव लाने के लिए उत्तरदायी है (गिडड्न 1990 : 60)। अलरिच बैक, पूर्व के सभी समाजों से आधुनिक समाज को अलग करता है क्योंकि यह समाज पर्यावरणीय निम्नीकरण के कारण विनाशकारी क्षमताओं पर आधारित है।

पूर्व-औद्योगिक समाजों में, प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न जोखिम और उनकी गूढ़ प्रकृति को स्वैच्छिक निर्णयन के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता था। औद्योगिक समाजों में जोखिम की प्रकृति बदल गई। कार्य-स्थल पर होने वाली दुर्घटनाओं और औद्योगिक जोखिमों या बेरोजगारी से बढ़ते खतरे जो कि आर्थिक चक्रों में होने वाले परिणाम हैं अर्थात् इनके लिए ज्यादा समय तक प्रकृति को दोषी नहीं माना जा सकता। इन समाजों ने बीमा, क्षतिपूर्ति, सुरक्षा आदि के रूप में खतरों और जोखिमों से जूझने के लिए विशिष्ट संस्थाओं और विधियों को भी विकसित किया। जोखिम समाजों की विशेषताओं में पर्यावरण का निरंतर बढ़ता ह्रास और पर्यावरणीय संकटों का समावेश है। मुल रूप से चर्चा में आधुनिकीकरण के जोखिम और परिणाम निहित हैं जिन्हें पौधों, पशुओं और मनुष्यों के जीवन के लिए स्थायी चुनौती के रूप में देखा गया है। 19वीं और 20वीं शताब्दी के पहले 50 वर्षों में फैक्ट्री या व्यावसायिक खतरों के विपरीत, अब ये निश्चित स्थानों या समूहों तक ही सीमित नहीं है बल्कि बजाय इसके, वैश्वीकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है (बैक 1992 : 13)।

पर्यावरणीय संकटों और जोखिमों के विभिन्न किस्म के वास्तविक या संभावित प्रभावों के मद्देनजर इनसे जूझने की पिछली विधियाँ भी ध्वस्त हो गई हैं। लेकिन जब 'चेरनोबिल' (देखें बॉक्स 13.1) जैसे बड़े पैमाने की आपदाएं उत्पन्न होती हैं तो इसके खिलाफ आवाज भी उठाई जाती है जो कि राज्य और अन्य संस्थाओं की वैधता को चुनौती देती है जो कि ऐसी समस्याओं से जूझने में शक्तिहीन नजर आते हैं।

गिड्डन पारिस्थितिक चुनौतियों पर प्रतिक्रिया के रूप में पर्यावरणीय राजनीति के उद्‌भव के लिए दो व्याखाएं पेश करता है इसलिए आदर्श मूल्यों और नैतिक अपरिहार्यता से बनी राजनीति की शुरुआत हुई। गिड्डन का मानना है कि पारिस्थितिकीय आंदोलन हमें आधुनिकता के ऐसे आयामों का मुकाबला करने के लिए विवश करते हैं जिन्हें अभी तक अनदेखा किया गया है। इसके अलावा ये प्रकृति और मनुष्यों के बीच के सूक्ष्म संबंधों के प्रति हमें संवेदनशील बनाते है जिन्हें कि अन्यथा अनन्वेषितही छोड़ दिया जाता है (गिड्डन 1987 : 49)।

हैबरमैस, पारिस्थितिकी आंदोलनों को प्राण-जगत को बसाने की प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं। चंकि ये प्राण-जगत के अभिव्यक्तिशील क्रम को मूर्त रूप में देखने के अभिव्यक्ति है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इसके अलावा सरकार के प्रशासनिक तंत्र में होने वाले आर्थिक विकास या तकनीकी सुधार इन तनावों को कम नहीं कर सकते। हैबरमैस के लिए पूंजीवाद, पर्यावरणीय निम्नीकरण का मूल कारण है।

ये सभी सामाजिक सिद्धांतवादी, राज्य शक्ति और नागरिक समाज के लोकतंत्रिकरण की आवश्यकता पर जोर देते हैं। गिड्डन (1990 : 170) का सुझाव है कि न केवल प्रभाव बल्कि बेरोक वैज्ञानिक और प्रैद्योगिकीय विकास के गूढ़ तर्कशस्त्र का भी हमें मुकाबला करना होगा यदि हमें इसके भावी नुकसान को अनदेखा करना है। उसका तर्क है कि चूंकि अधिकांश अनुवर्ती पारिस्थितिकीय मुद्दे वैश्विक हैं इसलिए अत:क्षेपों के स्वरूपों का आधार भी अनिवर्यतया वैश्विक ही होना चाहिए। स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय लोकतंत्र के नये स्वरूप उभर सकते हैं और किसी भी रजनीति का अनिवार्य घट्क गठित करते हैं जो कि आधुनिकता की चुनौतियों को लांघने का प्रयास करते हैं। हैबरमैस आधुनिक राज्य सत्ता की सीमाओं के महत्व को ध्यान में रखते हुए सार्वजनिक क्षेत्र के निर्माण और प्रतिरक्षा के लिए तर्क देता है जहां एक उचित लोकतांत्रिक वार्ता उत्पन्न हो सकती है। बैक, जोखिम समिति के खतरों पर मुख्य राजनीतिक प्रतिक्रिया के रूप में पारिस्थितिकीय लोकतंत्र का तर्क देता है। शोध कार्यक्रम विकास योजनाएं और नव प्रौद्योगिकियों के आगमन पर खुल कर चर्चा होनी चाहिए और इसके साथ-साथ इन पर कानूनी और संस्थागत नियंत्रण को और अधिक प्रभावी बनाना चाहिए। उपर्युक्त सभी बुद्धिजीवियों ने पर्यावरण स्थायित्व को हमेशा अनिवार्य पूर्व-शर्त के रूप में उदारवादी लोकतंत्र की सहभागी विशेषता की बजाय पहले से मौजूद प्रबल प्रतिनिधित्व की सीमाओं की ओर इशारा किया है।

पर्यावरणीय मुद्दों के विश्लेषण में समाशास्त्रीय/सामाजिक विज्ञान परिप्रेक्ष्य अभी भी उभर रहा है। सामाजिक सच्चाई की मांगों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए समाजशास्त्री हमारे समय की बहुत सी पर्यावरणीय समस्याओं के बहुत से आयामों की खोजबीन करने की मात्र शुरुआत कर रहे हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

पारिस्थितिकीय/पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य, समाजशास्त्रीय दिलचस्पी के मुद्दों के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों के अछूते आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है। आधुनिकीकरण/विकास कार्यक्रमों की सशक्त समीक्षा के रूप में यह परिप्रेक्ष्य, परियोजना की अस्थिरता को उजागर करता है। उत्पादन का औद्योगिक पूँजीवाद तरीका और उपभोग, इसके अस्तित्व के लिए अनिवार्य संसाधन आधार को नष्ट कर देता है और यहाँ तक कि खुद मानव जीवन के लिए भी खतरा है।

पर्यावरणीय राजनीति और आंदोलनों की वृद्धि ने समाजशास्त्रीय जाँच के नये क्षेत्रों को खोल दिया है जो चारों ओर की राजनीति के परंपरागत द्विभाजन से परे है जो वर्ग विभाजन को ओर जहाँ तक कि राष्ट्रीय सीमाओं को भी समाप्त करता है और किसी जानी मानी पहल के प्रयोग से नागरिक (सिविल) समाज क दायरे में सक्रियतावाद के लिए जगह बनाता है। बुनियादी तौर पर यह मनुष्यों और उनके प्राकृतिक पर्यावरण के बीच के संबंध की पुन: परिभाषा और प्रकृति पर मानव कार्रवाई के प्रभावों पर पुन: विचार करने की मांग करता है।

13.4 पारिस्थितिकीय और पर्यावरण पर विकास के परिणाम

वायु, जल, भूमि और ऊर्जा समेत जीवन के लिए अनविार्य पद्धतियों में मानव पारिस्थितिकी के महत्वपूर्ण प्रभाव को भलीभांति स्पष्ट किया गया है। मानव आबादी के बढ़ने के साथ-साथ खाद्य उत्पादन में और आवासीय संकट बढ़ जाता है। जिससे पर्यावरणीय प्रदूषण उत्पन्न होता है जो नकारात्मक रूप से हमारे आसपड़ोस को बदल देता है। ऐसी परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए विस्तार या जगह की बदली करना जरूरी है और मानव के अस्तित्व और

सुख सुविधा को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक जंगलों को नष्ट करने की जरूरत है। ऐसी मानव गतिविधियाँ यथासमय में हर तरह का प्रदूषण उत्पन्न करते हैं जो कि आज चिंता का विश्वव्यापी मुद्दा है। ऐसी मानव गतिविधियों पर चर्चा इस प्रकार है :

क) जल प्रदूषण

जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत हैं :

i) औद्योगिक (अपशिष्ट) या जहरीले गौण उत्पाद।

ii) मलजल अपशिष्ट: इसमें अपघटित जैविक पदार्थ और नदी, झरने, झीलों आदि में सीधे बहा दिए जाने वाले रोगोत्पादक एजेंट शामिल हैं।

iii) कृषीय प्रदूषक: इनमें शामिल हैं, उर्वरक रेग नियंत्रक रासायनिक (पेस्टनाशी, कीटनाशी, शाकनाशी और कवकनाशी) जैसे कृषीय पोषकतत्वों का अत्यधिक इस्तेमाल।

इन प्रदूषकों का असर मानवों और पौधों और पशुओं पर एक जैसा है। हालांकि उपर्युक्त प्रदूषकों में से औद्योगिक अपशिष्ट अधिक प्रदूषण उत्पन्न करते हैं।

ख) वायु प्रदूषण और शोर

स्रोत हैं:

i) **औद्योगिक विनिर्माण प्रक्रम:** स्टील, रासायनिक पौधे, तेलशोधक कारखाने, उर्वरक फैक्टरियाँ आदि।

ii) **दहन:** कोयले, तेल और जंगल आग का औद्योगिक और घरेलू दहन, धुएं, मिट्टी, कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फ़र डाइऑक्साइड आदि के माध्यम से।

iii) **ऑटोमोबाइल:** इनसे निकलने वाला कार्बन मोनो ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, निलंबित कणिकीय पदार्थ।

iv) **विविध:** पेस्ट नियंत्रण के लिए फसलों पर छिड़काव, नाभिकीय ऊर्जा कार्यक्रम आदि।

v) **विकिरण प्रदूषण:** चेटनोबिल या भोपाल में घटित गैस त्रासदी, इसके उदाहरण हैं।

MAADHYAM IAS

इस संदर्भ में भी उद्योगों, विनिर्माण और विकिरण से निकलने वाली गैसों से भी बड़ा प्रदूषण उत्पन्न होता है।

ग) मृदा प्रदूषण

i) **नाभिकीय युक्तियों के विस्फोट से गिरने वाली ठोस टुकड़े।**

ii) **कृषीय गतिविधियाँ** — अजैविक उर्वरक और रासायनिक आधारित विविध पेस्टनाशियों का जरूरत से ज्यादा इस्तेमाल।

घ) वनों की तबादी

बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन से मृदा अपरदन, बाढ़ आना, नदियों में मिट्टी जम जाना और कृषीय क्षेत्रों का संकुचन और जमीनों पर शुष्कता पैदा होना है। स्थानीय ग्रामीण जो ईंधन के रूप में लकड़ी का प्रयोग करते हैं कि तुलना में वन कन्ट्रैक्टरों के माध्यम से वनोन्मूलन ज्यादा देखने को मिलता है।

इस तरह का प्रत्येक प्रदूषण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मानव, स्वास्थ्य, पशु एवं वनस्पति जगत को पर्यावरण के माध्यम से प्रभावित करता है।

चिंतन एवं कार्रवाई 13.2

विश्व की आधे से अधिक की आबादी पहले से ही शहरों में बसी हुई है और शहरीकरण की गति तेजी से बढ़ रही है। विश्व के 8 मिलियन की आबादी से अधिक के अधिकांश महाशहर विकासशील जगत में हैं। हम शहरीकरण को किस प्रकार और अधिक स्थायी बनाते हैं? क्या हम वायु और जल प्रदूषण और कृषिभूमियों के हनन और प्रकृति से अलग-थलग होने जैसी समस्याओं को अनदेखा कर सकते हैं? आज के समय में मानव सम्मुख के समक्ष आने वाले प्रमुख पारिस्थितिकीय चुनौतियाँ क्या हैं?

13.5 पारिस्थितिकी आंदोलन और उत्तरजीविता

समकालीन में विश्व के सभी भागों में ऐसे पारिस्थितिकी आंदोलनों के उद्भव जैसी विशेषताएं पायी जाती हैं जो सामाजिक समानता और पारिस्थितिकीय स्थायित्व सुनिश्चित करने के लिए प्राकृतिक संसाधन सदुपयोग के प्रतिरूप को पुन: निर्मित करने और इनका विस्तार करने का प्रयास कर रहे थे। प्राकृतिक संसाधन और उत्तरजीविता के लिए जन के अधिकार जैसे मुद्दों से उत्पन्न वादविवादों से पारिस्थितिकी आंदोलनों का उद्भव हो रहा है और इनका विस्तार भारतीय उपमहाद्वीप जैसे क्षेत्रों में हो रहा है जहाँ अधिकांश प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग पहले से बड़ी संख्या में लोगों की उत्तरजीविता संबंधी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जा रहा है। ऐसी दशाओं के अंतर्गत संसाधन और ऊर्जा संघन उत्पादन प्रौद्योगिकियों की पेशकश से अल्पसंख्यकों की आर्थिक वृद्धि होती है जबकि इसके साथ-साथ इससे बड़ी संख्या में लोगों की उत्तरजीविता के लिए मूलभूत सामग्री नष्ट हो जाती है। इस तरह पारिस्थितिकी आंदोलन ने विकास की प्रबल संकल्पनाओं और सूचकों की वैधता पर सवालिया निशान लगा दिया है। तृतीय विश्व पारिस्थितिकीय आंदोलन जो राज्य नियंत्रित बाजार विकास से उत्पन्न बर्बादी पर रोक लगाते हैं, वे बाजार के संकीर्ण दायरे में परिभाषित राजनीति और अर्थनीतियें की संकल्पनाओं को चुनौती दे रहे हैं। वे इस बात को स्पष्ट करते हैं कि यह लोकतंत्र का विचार है जो कि बाजार लोकतंत्र से अधिक विस्तृत और गूढ़ है। यह मानव समाज के सभी खंडों और अमानवीय प्रकृति के जीवन को ध्यान में रखकर सभी प्राणियों के लिए लोकतंत्र की पारिस्थितिकीय संकल्पना है और इस संकल्पना में उन सभी की विशाल संख्या भी शामिल है जो बाजारी दायरे में न तो किसी किस्म का उत्पादन या उपभोग करते हैं या कर सकते हैं और जिन्हें बाजार के संदर्भ में अनावश्यक माना जाता है। तृतीय विश्व पारिस्थितिकी आंदोलन ऐसे तरीकों को उजागर करते हैं जिनके माध्यम से पारिस्थितिकी और समता और स्थायित्व और न्याय के मुद्दों को गहराई से एक दूसरे में जोड़ा जाता है।

MAADHYAM IAS

स्वतंत्र भारत में पारिस्थितिकी आंदोलनों की प्रबलता और पहुंच लगातार बढ़ते गए हैं क्योंकि विकास की प्रक्रिया में सहायक प्राकृतिक संसाधनों को लूटने वालों की संख्या और शक्ति भी पहले से अधिक सुदृढ़ हो गई थी। इस प्रक्रिया को ऊर्जा और संसाधन संघन औद्योगिक गतिविधि के विस्तृत प्रसार और विशाल बांध, वन शोषण, खदान और ऊर्जा संघन कृषि जैसी प्रमुख विकास परियोजनाओं के रूप में देखा जाता है। भारत में व्याप्त विविध पारिस्थितिकी आंदोलनों में 'चिपको आंदोलन' सर्वाधिक सुप्रसिद्ध है। इस आंदोलन में पेड़ों को गिराने के कार्य को रोकने के लिए पेड़ों को चारों ओर से घेरकर उनसे चिपकना है। इस आंदोलन की शुरुआत उत्तर प्रदेश राज्य में पहाड़ी लोगों से हुई जो बाहरी ठेकेदारों के शोषण से वन संसाधनों को बचाना चाहते थे। बाद में इसने पारिस्थितिकीय आंदोलन का रूप ले लिया जो कि भारत में पहाड़ी क्षेत्रों में जलसंकटों के प्राकृतिक स्थायित्व के रखरखव पर लक्षित था। समान प्रचंड प्रतिक्रिया झारखंड क्षेत्र के प्रमुख वन संसाधनों को बचाने के लिए भी वहां के लोगों ने दिखाई। इसी तरह बिहार-उड़ीसा सीमा क्षेत्र के साथ-साथ मध्य प्रदेश के बस्तर क्षेत्र में भी ऐसी ही प्रचंड प्रतिक्रिया वहां के लोगों ने व्यक्त की, जहाँ मिश्रित, प्राकृतिक संसाधनों को वाणिज्यिक किस्म के पौधों के रोपण में बदलने के प्रयास किए गए थे और

जो कि वहाँ के जनजातिय लोगों के लिए पूर्णतया 'हानिप्रद' था। चिपको आंदोलन से प्रेरित होकर हिमालय में 'अपिको आंदोलन' सक्रिय रूप से चलाया गया जिसने गैर कानूनी रूप से वनों की अत्यधिक कटाई के खिलाफ आवाज उठाई और जो बहुउद्देश्य किस्म के पेड़ों को ऐसी प्राकृतिक संसाधनों के बदले लगाने के विरुद्ध में चलाया गया था। राजस्थान के अरावली पर्वतों में वृक्ष रोपण का विशाल कार्यक्रम शुरू किया गया ताकि ऐसे लोगों को रोजगार दिया जा सकें। जो अभी तक पेड़ों की कटाई में जुटे थे।

खनिज संसाधनों का शोषण, विशेष रूप से हिमालय, पश्चिमी घाटों और मध्य भारत के संवेदनशील जलसंभरों में खुली खदानों में होने वाली गतिविधियों से भी भारी पर्यावरणीय क्षति पहुंची है जिसके परिणामस्वरूप अंधाधुंध खदानी गतिविधियों के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए इन क्षेत्रों में भी पर्यावरणीय आंदोलनों की शुरुआत हुई। इनमें से सर्वाधिक सफल आंदोलन, इन घाटी में खुली खदानों में चूना पत्थर का काम करने के विरूद्ध आवाज उठाने वाले आंदोलन थे।

बड़ी नदी घाटी परियोजनाएँ भारत में काफी तेज गति से जिनका आगमन हो रहा है, ऐसी विकास परियोजनाओं का अन्य समूह हैं जिनके विरुद्ध जन ने पारिस्थितिकी आंदोलनों की शुरूआत की है। बड़ी नदी घाटी परियोजनाओं के लिए पूर्वापेक्षित कारक के रूप में बड़े पैमाने पर वन और कृषीय भूमि का जल में डूब जाने से घने जंगल और भोजन देने वाली श्रेष्ठ भूमि का भारी मात्रा में हनन होता है और भारत में विशेष रूप से जनजातीय लोगों के लिए ये आमतौर पर उत्तरजीविता का भौतिक आधार रहे हैं। यू पी हिमालयाई क्षेत्र में तेहरी उच्च बांध के विरुद्ध चलाए जाने वाले पारिस्थितिकीय आंदोलन, बांध स्थल से ऊपर या नीचे रहने वाले लोगों के जीवन के संभावित खतरे का खुलासा करता है जिसका कारण है जल को अवरुद्ध करने से निरुयन्दन और तेज भूकंपीय झटकों से बड़े पैमाने पर जीवन का अस्त-व्यस्त होना।

13.6 पारिस्थितिकीय चिंता के मुद्दों के रूप में विकास परियोजनाएँ

MAADHYAM IAS

इस अनुभाग में हम कुछ ऐसी परियोजनाओं की प्रस्तुति करेंगे जिन पर भारत में हाल ही के वर्षों में पारिस्थितिकी और पर्यावरण के लिए चुनौती के रूप में विस्तृत चर्चा की गई है।

क) तेहरी जलविद्युत परियोजना

विवादास्पद तेहरी बांध, विकास की मांगों के मद्देनजर हिमालयाई भौगोलिक व्यवस्था और पारिस्थितिकी के संदर्भ में मानव निर्मित मनमानी, तबाही का जीवंत उदाहरण है। निचले हिमालय में इसकी जल और विद्युत क्षमता को निखारने के लिए उच्च बांध स्थापित करने का विचार 1949 में बनाया गया और पहले इसके लिए समुद्री सतह से 1550 मीटर की ऊंचाई पर 1000 वर्ष पहले से पवित्र शहर तेहरी से डेढ़ किलोमीटर नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली नदी भगीरथी को इस उद्देश्य के लिए चुना गया। तेहरी बांध के विकास और अवस्थिति को लेकर बहुत सी शंकाएं उभरी।

तेहरी बांध, मध्य हिमालयाई भूकंपीय अंतराल में स्थित हैं। जहाँ भारतीय पट्टिका प्रति वर्ष 2 सेमी की रफ्तार पर एशियाई मुख्य भूमि से टकरा रही है। बांध निर्माण से उत्पन्न भौगोलिक उथल-पथल से भूकंप आने की संभावना और प्रबलता और तीव्र हो गई है। भगीरथी घाटी मार्ग की दीवारों के रूप में नजर आने वाली चट्टानों में पानी रिसने का खतरा है और इनमें इकट्ठे होने वाले जल से पर्वतीय ढलानों पर भारी भार पड़ेगा। इसके साथ-साथ नदी तल के पत्थर का भी निरंतर क्षय हो रहा है जिससे बांध की नींव के कमजोर होने का डर है जो कि पहले से ही गलत इरादे पर बनी है। इसके अलावा, तेहरी बांध के बनने से जल के प्राकृतिक प्रवाह में अवसादों (Sediments) के शामिल होने से नदी तल का स्तर बढ़ जायेगा जिससे आसपास बनी घनी बस्तियों को भारी खतरा पैदा हो सकता है। इससे बहुत

से गांव बाढ़ की चपेट में आ जायेंगे और ऐसे गांव के मूलवासी जो पीढ़ियों से यहां रह रहे हैं, वे विस्थापित हो जायेंगे।

इस क्षेत्र की सर्वाधिक उत्कृष्ट भूमि को छीन लिया गया है और जिन लोगों ने इस भूमि को उत्कृष्ट/उपजाऊ बनाया था, उन्हें इसे वापिस करने के लिए मजबूर किया गया और इसके बदले उन्हें बंजर भूमि के टुकड़े सौंप दिए गए। पुनर्वास योजना ने ग्राम की समग्र छवि को ध्यान में नहीं रखा और अलग-अलग परिवारों के रूप में इनकी तरह ध्यान केंद्रित किया जिससे तोल-मोल करने की इनकी सामूहिक शक्ति और सामुदायिक संस्कृति घूमिल हो गई। गढ़वाल हिमालय के लोग इस परियोजना के खिलाफ हैं और उनक विरोध ने आंदोलन का रूप ले लिया है। परियोजना की ताजी समीक्षा और बांध निर्माण की अधिक गूढ़ अनुवीक्षा का कार्य चल रहा है।

ख) नर्मदा नदी घाटी परियोजना

नर्मदा नदी घाटी परियोजना, देश की सबसे बड़ी परियोजना है और जिससे 30 बड़े बांधों के निर्माण की उम्मीद है और जिनमें से 10 नर्मदा नदी पर और 20 इसकी सहायक नदियों पर बनेंगे। इसके साथ-साथ 135 मध्यम और 3000 छोटे बांध बनेंगे। इनमें से दो महाबांध हैं: सरदार सरोवर और नर्मदा सागर। इस विशाल नदी घाटी में लगभग 21 मिलियन लोग रहते हैं जो कि 98,796 वर्ग किलोमीटर में बंटे हुए हैं। यहाँ तक लगभग 80 फीसदी की आबादी जिनमें जनजातीय संख्या भी काफी है, गांव में बसे हैं और कृषि और वनों पर निर्भर है।

नर्मदा सागर और सरदार सरोवर बांधों को आगे-पीछे करके निर्मित किया जाना था। लेकिन नर्मदा सागर से अनुमान है कि 90,000 वर्ग किलोमीटर का इलाका इससे पानी में डूब जायेगा और इसलिए इसे बनाने के प्रारंभिक विचार से ही यह वादविवादों में उलझ कर रह गया है। जबकि सरदार सरोवर बांध को बनाने का मुद्दा गुजरात सरकार ने गर्मजोशी से उठाया है। परियोजना से प्रभावित लोगों की संख्या बेशुमार है और निंरतर बढ़ रही है। परियोजना के लिए सैकड़ों ग्रामों को खाली कराना होगा जिससे ग्रामीण और जनजातीय लोग विस्थापित और संपत्तिहीन हो जायेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आजीविका अर्जन के उनके पारंपरिक स्रोत नष्ट हो जायेंगे और पुन:स्थापना का अर्थ सही मायने में उनके लिए कभी भी पहले जैसा नहीं होगा। निमर से किसान जो बागवानी का काम करते हैं जब उन्हें ऐसी उपजाऊ भूमि से बाहर कर दिया जायेगा तो वे अपने फूल कहाँ उगाएंगे? इस बात पर सभी की सहमति है कि इन बांधों के बनने से गंभीर पारिस्थितिकीय परिणाम उत्पन्न होंगे। भारी मात्रा में पानी के एक जगह अवरुद्ध होने से और मृदा के वर्धित खारेपन से स्थिति बद से बदतर हो जायेगी। मेधा पाटेकर और ऐसे बहुत से आंदोलनकारियों ने पर्यावरण पर ऐसे नकारात्मक प्रभावों की तरफ ध्यान आकृष्ट किया है। हड़ताल और अनिश्चितकाल तक भूख हड़ताल जैसे तरीकों से आंदोलनकारियों ने अपना आक्रोश प्रकट किया है। बहुत सी ऐसी विषमताओं के कारण सरदार सरोवर बांध के निर्माण का काम ठप पड़ गया है जिन्हें सरकार की परियोजना रिपोर्ट में पाया गया है।

ग) भोपाल गैस त्रासदी

भोपाल गैस आपदा जैसी आपदा भारतीय इतिहास में एक अलग पहचान बनाए हुए है। इससे बहुराष्ट्रों द्वारा मुनाफा कमाने के लिए विकासशील देशों के अंधाधुंध शोषण का पता चलता है।

पेस्टनाशी बनाने के लिए सुस्थापित, यूनियन कारबाइड संयंत्र का विस्तार बहुत से पर्यावरणीय खतरों के बावजूद भी किया गया। संयंत्र सुरक्षा पद्धति सही मायने में कारगार नहीं थी जिससे प्राणलेवा रिसाव उत्पन्न हो गया और खतरनाक रासायनिक वातावरण में घुलमिल गए। भोपाल शहर में 40 किलोमीटर वर्ग मीटर के क्षेत्र ऐसी गैस का घना कोहरा छा गया जिसके जहरीले

तत्व लोगों पर छिटक रहे थे। इससे वहाँ के गरीब वर्गक पर सर्वाधिक गंभीर प्रभाव पड़ा। ऐसे सैकड़ों लोग मर गए जबकि बहुत से लोगों की सांसों में जहरीले तत्वों के घुल जाने से आज भी वे जीर्ण रोगों से ग्रस्त हैं। भोपाल नरसंहार का अर्थ मुनाफे की खोज में बड़े उद्योगों और बहुराष्ट्र कंपनियों द्वारा विकसित घातक पेस्टनाशियों और रासायनिक की शृंखला से ही नहीं जुड़ा हुआ बल्कि यह ऐसे तृतीय विश्व के देशों की गाथा है जहाँ ऐसी कंपनियाँ अपने खतरनाक उत्पादों की धम्म से पटक देते हैं और घातक रासायनिकों से प्रयोग भी करते हैं। छोटे-बड़े शहरों में विशेष रूप से ऐसी तंग बस्तियों के लोग ऐसी आपदाओं का निशाना सबसे पहले बनते हैं। पेस्टनाशी, कृषि रासायनिक और पैट्रोरासायनिक, बैटरी निर्माण जैसे, कामों का लेन-देन करने वाले अंतर्राष्ट्रीय डीलर जो कि सुरक्षित मानकों की परवाह किए बिना और लोगों का अंधाधुंध शोषण करने के कारण पर्यावरण के लिए बड़ी चुनौती हैं।

घ) चिल्का झींगी उत्पादन

चिल्का झील उड़ीसा में खारे पानी की सबसे बड़ी झील है। यह एक सुरक्षित पक्षी विहार है और जिसमें हज़ारों किसानों और मूल मछुआरों को रोज़ी-रोटी मिलती है। यहां असंख्या किस्म की मछलियां और समुद्री जीवन का वातावरण है। इस अनूठे पारितंत्र में पानी के तल पर पनपने वाले पौइनों की भरमार है जो कि झींगी मछली के लिएं विशेष रूप से उपयोगी हैं। झींगा मछली पालन को विकसित करने में इसका प्राकृतिक शक्ति इसे भारी व्यवसाय का रूप देता है। चिल्का के पश्चजल में समेकित झींगी उत्पादन परियोजना (आई एस एफ पी) का विचार कुछ बड़े व्यावसायिकों का विचार है। परियोजना के शुरू होने पर चिल्का के भाग के साथ कृत्रिम झील बनाने के लिए 13 किमी का बाँध बनाया जायेगा। इसे बाद में छोटे पोखरों में बाँट दिया जायेगा जिनमें जरूरत के मुताबिक समुद्री पानी या ताजा पानी भर दिया जायेगा।

जैसा कि परियोजना में प्रस्तावित है 30-40 दिनों में 250-350 ग्राम झींगी के उत्पादन के लिए प्रोटीन समृद्ध चारा, रासायनिक उर्वरक और पेस्टनाशियों को पानी में डालना होगा। जहरीले अपशिष्टों को चिल्का को समुद्र से जोड़ने वाली संकरी खाड़ी में धम्म करके फेंक दिया जायेगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आई एस एफ पी बाँध निर्माण से चिल्का का प्राकृतिक उतार-चढ़ाव अपना लय खो देगा जिससे मछलियों के आने-जाने का मार्ग भी प्रभावित होगा। रासायनिकों और पेस्टनाशियों के प्रयोग से इसका लहलहाता तल प्रभावित होगा और पंपों की आवाज से पक्षी डर कर इस तरफ देखेंगे भी नहीं। मवेशी, शुष्क मौसम में लहलहाते इस प्रायद्वीप पर नयी घाय को चरने के योग्य भी नहीं होंगे। चारों तरफ पानी और खारापन नजर आएगा जिससे पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ जाएगा।

चिंतन और प्रतिबिंब 13.3

विकास की दुविधा की चर्चा कीजिए। किस किस्म का विकास न्यायसंगत और चिरस्थायी होगा?

13.7 पर्यावरणीय चिंता के मुद्दों का अंतर्राष्ट्रीयकरण

पर्यावरणीय मुद्दों पर बढ़ती अंतरराष्ट्रीय चिंता के मद्देनजर लिंटन काल्डवेल (1990) ने नोट किया है कि किसी भी प्रभुत्व संपन्न राष्ट्र के मूल सिद्धांतों को अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण सहयोग की दृष्टि से संशोधित किया जा रहा है। "लिंटन की राय में राष्ट्रों को सामान्य अनिवार्यता के मुद्दों के मद्देनजर अन्य राष्ट्रों को सहयोग दे कर अपनी सांस्कृतिक पहचान और अखंडता को समाप्त करने की जरूरत नहीं है। अमल में, अंतरराष्ट्रीय नीति को राष्ट्रों की सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय भिन्नता की बहाली और इन्हें संरक्षित करने के प्रति निदेशित किया

गया है (वही)''। प्रश्न अंतरराष्ट्रीय पर्यावरणीय सहयोग और राष्ट्रीय पहचान और प्रभुत्व के बीच सिर्फ अनुबंधन बनाना ही नहीं है। स्थायी विकास के महत्वपूर्ण मुद्दों के मद्देनजर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पारिस्थितिकीय मुद्दों के लिए द्वंद्व और वादविवाद की बढ़ती प्रवृति देखी गई है।

विविध अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में स्थायी विकास पर हाल ही में किए जाने वाले विचार विमर्शों को उत्तर-दक्षिण बँटवारे और सोपान क्रम के प्रश्नों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए विवश किया गया। इस संदर्भ में बहुत से मतभेद उत्पन्न हैं जिसका कारण वैश्विक पर्यावरणीय निम्नीकरण से लेकर पारिस्थितिकीय संकटों को नियंत्रित करने के तंत्रों के लिए उत्पन्न कारणों से संबंधित विविध मुद्दे हैं।

जहां कुछ तृतीय विश्व देशों के अल्पविकास को ही पर्यावरणीय क्षति का मुख्य कारण मानते हैं वहीं इसी देश के कुछ समर्थकों का तर्क है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पारिस्थितिकीय संकट के रास्ते खोलने में औद्योगिक तरक्की के साथ-साथ विकास की मूल प्रक्रिया सहायक रही है, अंतरराष्ट्रीय स्तर के पर्यावरणीय समझौतों में तृतीय विश्व वक्ता माँग करते हैं कि उत्तर के औद्योगिक देशों को दक्षिण के पर्यावरणीय दृष्टि से प्रदूषण उत्पन्न करने वाले उद्योगों को बदलने के प्रयासों में कमी लानी चाहिए। ओजोन परत के कम होने, पादपगृह प्रभाव आदि जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर के पर्यावरणीय संकटों को दूर करने की जिम्मेवारी अभी भी उत्तर और दक्षिण में वादविवाद का मुद्दा बना हुआ है।

अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से महत्वपूर्ण पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य विशिष्ट समस्याओं से जूझने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर के न केवल और अधिक नये और विस्तृत क्षेत्रों को सृजित करने की प्रेरणा देता है बल्कि ऐसी बदलावकारी राजनीति की माँग भी करता है जो वैश्विक रूप से असमान सत्ता संबंधों पर भी ध्यान केंद्रित करता है। अलग-अलग दशाओं से राष्ट्र राज्य व्यवस्था को मिलने वाली चुनौतियाँ पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से नये परिप्रेक्ष्यों का प्रदान करती हैं। पर्यावरणीय आंदोलनकारियों और विचारकों ने परंपरागत रूप से तर्क दिया है कि चूंकि राज्य के पास असीम शक्ति है और संसाधन संग्रहण का यह एक साधन है बजाए इसके स्थानीय स्वशासन और पारिस्थितिकीय दृष्टि से चिरस्थायी संसाधन संग्रहण का साधन बनाया जाना चाहिए। उनका मानना है कि स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर के जन और उनके पर्यावरण पर वैश्वीकरण बलों का प्रचंड हमला समकालीन पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य से विकास के लिए नयी चुनौतियों का पैदा करेगा।

MAADHYAM IAS

बदलते वैश्विक संदर्भ में स्थानीय समुदायों के लिए ऐसे बहुराष्ट्रीय कार्पोरेशन और एजेंसियों द्वारा उनकी प्राकृतिक धरोहर की लूटपाट को रोकना बेहद मुश्किल होता जा रहा है। पारिस्थितिकी आंदोलन अपनी छितरित प्रकृति और राष्ट्र-राज्य की बदलती छवि के कारण अपने निजी दोष को महसूस करते समय राष्ट्र-राज्य और अंतरराष्ट्रीय मामलों के वृहद-राजनीति और आंदोलनों की लघु राजनीति के बीच के अनुबंधन पर भी पुन:ध्यान केंद्रित करने के लिए विवश हैं। अनिवार्य वैकल्पिक मार्ग के रूप में सिविल समाज और राज्य को नये लोकतांत्रिक तरीकों से पुन: बनाने पर विचार किया जा रहा है।

पारिस्थितिकी और स्थायी विकास पर अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य, ऐसी बदलावकारी राजनीति की बात सोचता है जो कि स्थानीय भागों से सीधे वैश्विक राज्यों तक संसाधनों का संग्रहण की मौजूदा प्रक्रियाओं और सत्ता के सोपनाक्रम के लिए कड़ी चुनौती है। राजनीति का ऐसा बदलाव मनुष्यों और प्रकृति का शोषण करने वाले ऐसे बलों को चुनौती देने में संघर्षों के विकास के माध्यम से प्रकृति और संसाधनों के चिरस्थायित्व को देखता है। ऐसा ही परिप्रेक्ष्य सार्थक और सहज लोकतांत्रिक स्थानीय-वैश्विक अनुबंधनों को अंदरूनी उपागम के साथ देखता है।

13.8 प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन के लिए सहभागितापरक उपागम

संरक्षणवादियों, विकासवादियों, महिला आंदोलनकारियों जनजातिय और अन्य उत्पीड़ित समूहों की पर्यावरण-विकास मुद्दों पर अलग-अलग धारणाएँ हैं और इन मुद्दों पर ऐसे ही वादविवाद से पता चलता है कि प्रत्येक वर्ग की ऐसे मुद्दों पर अपनी एक अलग स्थिति है या संरक्षण, निर्धनों की विशेष रूप से महिलाओं जीवन-निर्वाह संबंधी आवश्यकताओं और आर्थिक वृद्धि मॉडलों और महत्वपूर्ण संसाधनों के स्थायित्व और पारितंत्र के लिए मौजूदा चुनौतियों और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में शामिल लागतों और लाभों के वितरण जैसे मुद्दों पर प्रत्येक वर्ग का जोर देने का अपना एक अलग तरीका है। पर्यावरण विकास संबंधों पर ध्यान केंद्रित करने से प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और नियंत्रण के मुद्दों को नया रूप दिया गया है क्योंकि इससे वैश्विक अर्थव्यवस्था की माँगों का पता चलता है जो लोगों के पारंपरिक अधिकारों और उनकी आजीविका पर उनके दावे से जुड़ा उनका हक मार कर निर्धारित की गई हैं। राजनीतिक और आर्थिक संग्राम जैसे-जैसे प्रबल रूप धारण करते हैं, आजीविका हित और व्यावसायिक हित भी, न खत्म होने वाले वादविवाद में उलझ जाते हैं और इनमें समझौता कराना आसान नहीं होगा।

पिछले कई वर्षों से औपचारिक और अनौपचारिक अर्थात दोनों व्यवस्थाओं में प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन के लिए बहुत से दृष्टिकोणों को रेखांकित किया गया है ताकि सक्षमता के आधार पर सहभगितापरक प्रक्रियाओं को सहयोग दिया जाये और जिसमें उपयुक्त संस्थागत व्यवस्थाओं के माध्यम से राज्य और समुदाय के बीच भागीदारी कायम की जाये और इस कार्य में स्थानीय लोगों को भी शामिल किया जाये। प्राकृतिक संसाधनों के विकेंद्रीकृत प्रबंधन की कार्यसूची के मद्देनजर हम विभिन्न संस्थागत व्यवस्थाओं की पहचान कर सकते हैं जैसे अपने बलबूते से आरंभ प्रयोगकर्त्ता समूह, सरकारी पहलों (संयुक्त जन प्रबंधन या जलविभाजक प्रबंधन) के माध्यम से सुस्थापित औपचारिक स्तर के समुदाय और स्थानीय स्व-शासन (पंचायती राज) संस्थाएँ ऐसे स्थानीय संस्थागत बंदोबस्त राज्य-समुदायिक गतिशीलता को बदलने में विकल्पों, प्राथमिकताओं और सौदाकारी पद्धतियों की रूपरेखा विकसित करते हैं।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

स्थानीय संसाधनों के समुदाय प्रबंधन या विकेंद्रीकृत कार्यनीति का महत्व बढ़ गया है क्योंकि इससे आजीविका को सुरक्षा प्रदान करने की उम्मीद की जाती है जिससे संसाधनों का और अधिक स्थायी प्रबंधन कायम होगा। प्राकृतिक संसाधनों के सामुदायिक प्रबंधन की तरफदारी में अक्सर जो तर्क दिया जाता है वह ऐसी घरेलू (देसी) महिला ज्ञान पद्धतियों से संबंधित है जो कि किसी विशिष्ट समुदाय या संदर्भ में उन्हीं मूल प्रथाओं में व्याप्त है। शिव का तर्क है कि "तीसरी दुनिया की महिला जनजातियों और कृषक चिंतन और कार्रवाई की पारिस्थितिकीय श्रेणियों में बौद्धिक शिक्षा का भंडार हैं "(शिवा 1988)।

पर्यावरणीय मुद्दों पर महिलाओं की प्रतिक्रियाओं पर उनकी आजीविका पद्धति श्रम विभाजन, उत्पादनकारी संसाधनों पर असमान पहुँच और सूचना और ज्ञान के कारण अवरोध उत्पन्न हो जाता है। स्थानीय गैरसरकारी संगठनों ने स्थानीय संसाधन आधार के प्रबंधन और सामाजिक न्याय निर्धनता और देश के मूलवासियों के अधिकारों के मुद्दों से स्त्री/पुरुष समानता के मुद्दों को जोड़ने के लिए विकल्पों का निर्माण करने का प्रयास किया है। सामाजिक न्याय और स्थानीय जन के अधिकार के लिए वादविवाद का मूलाधार है कि संसाधनों के निरंतर प्रयोग में स्थानीय समुदायों का विशेष महत्व है और विशिष्ट सामाजिक और पारिस्थितिकीय दशाओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने और इनके अनुकूल बनने में इनकी स्थिति बेहतर है। स्थानीय पारिस्थितिकीय व्यवहारों प्रक्रियाओं से भी ये भली-भांति अवगत होते हैं और ये पहुँच और प्रबंधन के पारंपरिक तरीकों के माध्यम से संसाधनों की देखरेख भी कर सकते हैं।

पिछले दो दशकों के दौरान प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और जैव-विविधता संरक्षण दाता एजेंसियों में और अन्य देशों में प्रमुख प्राथमिकताओं के रूप में उभरे हैं। राष्ट्रों को वैश्विक संसाधन प्रबंधन पहलों के अनुरूप लाने के लिए जन-उन्मुख और समुदाय-आधारित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन ऐसी रणनीति का भाग बन गए हैं (न्यूमैन, 2005)।

चिंतन और कार्रवाई 13.4

आने वाले समय में स्थायित्व कायम करने के लिए जीवनशैली और व्यवहार में भारी बदलाव करना अनिवार्य है। चर्चा कीजिए।

13.9 सारांश

पर्यावरणीय मुद्दों पर चिंता व्यक्त करने की सीमाएं तेजी से विलुप्त हो रही हैं। पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्यों और आंदोलनों में स्थानीय-वैश्विक अनुबंधन और अधिक स्पष्ट रूप से नजर आ रहा है। जहाँ विश्व भर में व्याप्त लोगों और समुदायों के विविध भाग आंदोलनों के माध्यम से पर्यावरण और उत्तरजीविता के मुद्दों को तेजी से उठा रहे हैं वहीं राष्ट्र-राज्य, अंतरराष्ट्रीय स्तर के पर्यावरणीय क्षेत्रों को सृजित करने इंटरनेशनल प्रोटोकोल विकसित करने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर के विचार-विमर्शों और सम्मेलनों में जुटे हुए हैं। हमारे समय की पारिस्थितिकी संबंधी राजनीति पर ध्यान केंद्रित करने का सार्थक प्रयास, स्थानीय-वैश्विक मानकों के दायरे में और इसके बीच उभरती द्वंद्वात्मक और सहमति-जन्य गतिशीलता पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है और इसे समझना है। आज के समय में पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्यों को और अधिक सटीक दृष्टि से व्यक्त करने की जरूरत है।

हमारी यह इकाई पारिस्थितिकी, पर्यावरण और विकास के बीच के अंत:संबंध को स्पष्ट करती है। यह बताती है कि किस तरह पारिस्थितिकी और पर्यावरण, सामाजिक सिद्धांत पर ध्यान केंद्रित करती है। हम ये मानते हैं कि 'पर्यावरणीय मुद्दों' पर हमारी अधिकांश प्रतिक्रियाएं निरर्थक ही रहेगी जब तक कि विश्व में हर स्तर पर इस बात को समझ नहीं लिया जाता कि हमारी प्रजातियाँ, हमारी प्रकृति का अभिन्न भाग है। लेकिन इसके साथ-साथ हमें अपनी सीमाओं का भी अवश्य पता होना चाहिए। इस बात को समझकर या इसके अभाव में भी भावी समाज और राज्य व्यवस्था के लिए इसके अनेक निहितार्थ हैं। इसके कुछ ऐसे क्षेत्रों के लिए विविध अर्थ हैं जितने कि विचारधारा, विकास, प्रौद्योगिकीय विकल्प और उपभोक्ता स्वतंत्रता जैसी विषयवस्तु और दिशा अपना अलग अर्थ है। इस इकाई का मुख्य भाग मौजूदा समय में अपनाए जाने वाले विकास संबंधी व्यवहारों द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय संकट के असीम भागों पर ध्यान केंद्रित करना है। इसके अलावा हमने संसक्त, तर्कसंगत और पारिस्थितिकीय परिप्रेक्ष्य विकसित करने में घोर चुनौतियाँ उत्पन्न करने वाले इस संकट के समाधान की तत्काल आवश्यकता को भी समझा। अंतत: इस इकाई में संसाधनों के प्रबंधन के लिए वैकल्पिक प्रतिमान की छानबीन भी की गई है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

13.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मुंशी, आई, 2000 ''एनवायरमेंट इन सोशोलाजिक्ल थ्योरी'' सोशोलाजिक्ल बुलेटिन, खंड 49, संख्या 2, 258-62.

शिवा वी, 1991, इकौलोजी एंड द पॉलिटिक्स ऑफ सरवाइवल : यूएन यूनिवर्सिटी प्रेस एंड सेज पब्लिकेशन : नई दिल्ली।

यू एन डी पी 2003; ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : नई दिल्ली।

इकाई 14

नृजातीय विकास

इकाई की रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 विकास सिद्धांतों में दिलचस्पी के नये मुद्दे

14.3 वैकल्पिक उपागमों का आर्विभाव

14.4 नृजाति-विकास की पद्धति

14.5 सारांश

14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य:

- विकासात्मक परिप्रेक्ष्य के पुन:अभिविन्यास को स्पष्ट करना है;
- विकास में सांस्कृतिक महत्व को समझाना है;
- अन्तर्जात (englogenous) विकास उपागम को व्यक्त करना है; और
- नृजाति-विकास की रणनीतियों को स्पष्ट करना है।

14.1 प्रस्तावना

हमारी यह इकाई स्थायी विकास के उपागमों में से एक उपागम अर्थात् नृजाति-विकास से संबंधित है। नृजाति-विकास पर बारीकी से नजर डालने से पहले, पिछले कई वर्षों से विकास के उपागमों की बढ़ती तादाद पर चर्चा करना बेहद जरूरी है। इससे हमें यह समझने में सहायता मिलेगी कि क्यों और कैसे पिछले कई वर्षों से मानव समाजों के सभी वर्गों पर ध्यान केंद्रित करने वाले उपयुक्त विकास सिद्धांतों को विकसित करने की माँग निरंतर बढ़ रही है। समय-समय पर विभिन्न बुद्धिजीवियों में अपने निजी विकास के लिए समुदायों की सांस्कृतिक और विशिष्ट आवश्यकताओं की विविधता को समझने के महत्व की ओर इशारा किया है। विकास के सामाजिक और सांस्कृतिक आयामों के बारे में बढ़ती हुई इस दिलचस्पी ने विकासात्मक सोच में बहुत से परिवर्तन किए हैं और इसके परिणामस्वरूप, स्थायी विकास और नृजाति-विकास के उपागम, पिछले विकासात्मक सिद्धांतों के समालोचकों के रूप में उभरे हैं। इन मुद्दों के मद्देनजर हमारी यह इकाई विकास पर विविध परिप्रेक्ष्यों, विकास से सांस्कृतिक महत्व और नृजाति-विकास की रणनीतियों को स्पष्ट करेगी।

MAADHYAM IAS

14.2 विकास सिद्धांतों में दिलचस्पी के नये मुद्दे

विकास सिद्धांतों के अध्ययन से पता चलता है कि इन सिद्धांतों से संबद्ध अर्थ और संकल्पनाएं समय-समय पर बदलते रहते हैं। प्रारंभ में, विकास का मूल अर्थ पश्चिम के उन्नत औद्योगिक ऐसे देशों की प्रस्थिति की प्राप्ति करना था जिन्हें मुख्यतया दोषों के निवारण और तरक्की के मर्ज के रूप उल्लिखित किया जाता है। 20वीं शताब्दी के विकास विचारकों ने पिछली शताब्दी की विकास सांच का खंडन किया क्योंकि यह शताब्दी उस समाज के विकास प्रतिरूपों को व्यक्त करने में विफल रही थी। 19वीं शताब्दी की विफलता पर उनकी प्रतिक्रिया, गैर-पश्चिमी देशों की उद्योगीकरण की प्रक्रिया से संबंधित है जहां इस बदलाव ने लोगों के

एक बड़े वर्ग को जड़ से उखाड़ फेंका और उन्हें बेरोज़गार कर दिया। इस बात का दावा भी किया गया कि इस विकास उपागम ने यहां तक कि इन समाजों के सदस्यों के सामाजिक संबंधों को भी हिला दिया है।

क) आर्थिक वृद्धि से मानव विकास तक

विकास की औपनिवेशिक अर्थनीतियों की बढ़ती तादाद ने ऐसे औपनिवेशिक देशों की अपने शासकों पर बढ़ती निर्भरता को जनित किया है। औपनिवेशिक शासकों में मुख्यतया यूरोपियाई देश शामिल हैं। ऐसा अनुभव है कि इस निर्भरता ने औपनिवेशिक देशों में उचित उद्योगीकरण के किसी भी किस्म के परिवेश को सृजित नहीं किया, यद्यपि औपनिवेशिक शासकों के हित में कुछ विकास का काम हुआ था। विकास के नाम पर यूरोपियाई या औपनिवेशिक देशों ने मूल निर्माताओं का विध्वंस कर दिया जैसा कि भारत के वस्त्र उद्योग के मामले में और मिस्र, तुर्की और फारस में उद्योगीकरण में विध्वंस प्रयासों के मामले में पाया गया (स्टैवरिनोस 1981, पिटरिस 2001)।

धीरे-धीरे आर्थिक वृद्धि सिद्धांत का उदय विकास सोच के रूप में हुआ। मशीनीकरण और उद्योगीकरण आर्थिक वृद्धि की संकल्पना के भाग बन गए हैं। विकास के क्षेत्र विस्तार को विस्तृत करने के लिए, राजनीतिक आधुनिकीकरण के आयाम को शामिल किया गया है। इसके अलावा, सोच विकसित करने के नये तरीके ने विस्तृत आयामों को अपनाया है। 1980 के मध्य में विकास उपागमों में अलग दिशा को लाने के लिए मानव विकास की संकल्पना में अर्मत्य के योगदान का विशेष महत्व है।

समाज का संरचनात्मक सुधार, विकास सोच के नव-उदारवाद का आधार है। समाज का यह संरचनात्मक सुधार, अर्थव्यवस्था के निजीकरण और उदारवाद के माध्यम से घटित हुआ। क्लासिकी और आधुनिक विकास के सभी सिद्धांत बुनियादी रूप से संरचनात्मक हैं। विकास सिद्धांतों की प्रगति के बाद के चरण में इस संरचनात्मक जोर ने घटना-क्रिया-विज्ञान (phenomenology) के प्रभाव के साथ बदलना शुरू कर दिया है। इस सैद्धांतिक अभिविन्यास ने विकास नजरिए का रूख संरचनात्मक से संस्थागत की ओर कर दिया। इसे नियतिवादी (deterministic) से व्याख्यापरक (interpretative) और भौतिकवाद (materialist) से बहुआयामी और साकल्यवादी नजरियों में परिवर्तित होने के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। ऐसे परिवर्तन को संरचनात्मकतावादी (structuralism) से निर्माणात्मक (constructivism) की ओर रूख करने के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। निर्माणवाद (Constructivism) का स्रोत घटना क्रिया-विज्ञान और नृजातिय प्रविधि ethnomethodology में पाया जाता है। (पिटरिस 2001)।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बॉक्स 14.1: घटनाक्रिया विज्ञान (Phenomenology) और मानव विज्ञान विधि (Ethnomethodology)

शब्दिक रूप से घटना-क्रिया विज्ञान किसी परिघटना; किसी मामले या हमारे अनुभव में जिस तरह ये मामले (घटनाएं) उभरते हैं या जिन तरीकों से हम ऐसी घटनाओं का अनुभव करते है, इनका अध्ययन करना है। घटना-क्रिया-विज्ञान व्यक्तिपरक या उतम पुरुष के नज़रिए से प्राप्त अनुभवों अर्थात ऐसे विविध अनुभवों का अध्ययन करता है। घटना-क्रिया-विज्ञान समाजशास्त्र को प्रभावित करने वाली वास्तविकता की प्रकृति के बारे में 20वीं शताब्दी की दार्शनिक सोच है। जर्मन दर्शनशास्त्री एडवर्ड हसरल (1859-1938) का घटना-क्रिया-विज्ञान से गूढ़ संबंध है। इस विज्ञान का तर्क है कि एकमात्र 'परिघटना' जिसके बारे में हम सुनिश्चित हो सकते हैं, वह है कि हम ऐसे व्यक्ति है जो चौकन्ने हो कर प्रत्येक वस्तु पर सोच-विचार करते हैं इसलिए हमें अपने आसपास की किसी भी परिघटना पर इस दृष्टि से सोचना चाहिए जिस

ढंग से हम सजगता से इनका अनुभव करते हैं। ऐसी जाँच पहले से निर्मित आकस्मिक विचारों से मुक्त होनी चाहिए। ऐसे विचारों ने अल्फ्रंड शयूट्ज (1899-1959) जैसे समाजशास्त्रियों को प्रभावित किया जिनका मानना था कि समाजशास्त्र को इस ढंग से देखना चाहिए जिस ढंग से कोई व्यक्ति-विशेष सामाजिक जगत का निर्माण करता है (शयूट्ज 1967)। घटना-क्रिया-विज्ञान का प्रयोग समाजशास्त्र में दो बुनियादी तरीकों से किया जाता है। ये हैं: (1) गूढ़ समाजशास्त्रीय समस्याओं के बारे में चिंता करना, (2) समाजशास्त्रीय शोध विधियों की उपर्युक्ता को ऊँचा उठाना। इस उपागम के दो प्रभाव हैं। ये है: रचनात्मक (Constructivism) और मानवजातिय विधि (Ethnomethodology), नृजातीय कार्यप्रणाली (Ethnomethodology), घटना क्रिया विज्ञान (Phenomenology) में सामाजिक व्यवस्था के लिए पार्सोनियन दिलचस्पी को समेकित करती है और ऐसे साधनों की जाँच करती है जिनसे क्रिया सामान्य जीवन को संभव बनाती है। (गार्फिंकल 1967)।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के रूप में नृजातीय प्रविधि ethnomethodology का सूत्रपात अमेरिकी समाजशास्त्री हारोल्ड 'गार्फिंकल द्वारा 1960 के आरंभ में हुआ। इसके पीछे के मुख्य विचार उसकी पुस्तक स्टडिज इन एथनोमैथोडालोजि (1967) में परिभाषित हैं। यह उस तरीके से उन सभी समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्यों से भिन्न हैं जो पहले से मान कर चलते हैं कि सामाजिक जगत क्रमबद्ध व्यवस्था पर आधारित है। इस पूर्वधारणा से आगे बढ़ते हैं कि सामाजिक व्यवस्था कल्पित है।

उनके नज़रिए से सामाजिक व्यवस्था सामाजिक नायकों के मस्तिष्क में पनपती है जब समाज कुछ विशेष प्रभावों और अनुभवों के अनुक्रम के रूप में किसी व्यक्ति-विशेष का सामना करती है और जिसे कि उसे व्यक्ति को किसी भी तरीके से ससक्त प्रतिरूप में व्यवस्थित करना ही चाहिए।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

हालांकि विकास अध्ययन में विस्तृत परिप्रेक्ष्यों में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ उपागमों में परिवर्तनों की अन्य प्रवृत्ति देखी जा सकती है। विकास उपागम की शुरूआत और अधिक विशिष्ट और सुस्पष्ट होने के लिए धीरे-धीरे हुई। दिग्विन्यास में यह और अधिक स्थानिक और प्रादेशिक बन गया है। विकास के प्रारंभिक और आधुनिक विचारक बुनियादी तौर पर संरचनात्मकता structuralism के सैद्धांतिक अभिविन्यास से संबंद्ध रहे हैं, लेकिन बाद वाले विकास के विचारकों ने इस नजरिए का खंडन किया है। यह उपागम सैद्धांतिक अभिविन्यास में और अधिक विविधताओं को दर्शाता है। प्रारंभिक समूह, विकास के लिए विश्व-व्यापी अनुप्रयोग वाले सामान्य सैद्धांतिक अभिविन्यास से संबंद्ध हैं। लेकिन मौजूदा के विकास विचारक generalised सिद्धांतों के सामान्य अनुप्रयोग में विश्वास नहीं करते, अब विकास उपागमों का विस्तृत क्षेत्रों में इतना महत्व नहीं रह गया। ऐसे विकास उपागमों का संबंध न सिर्फ वृद्धि से बल्कि कि किस्म की वृद्धि से और न सिर्फ विकास बल्कि किस किस्म के विकास जैसी बातों से है। इससे विविध नई दिशाओं में उपागमों के उदय में सहायता मिली है और जिन्हें स्थायी विकास, जन-हितैषी वृद्धि, जन-समर्थक वृद्धि आदि जैसे नामों से जाना जाता है। अब विकास उपागम का संबंध समूहों, नायक-उन्मुख उपागम (लांग 1994) और सहभागी उपागम से है (3 मेन 1988)।

ख) स्थायी विकास

स्थायी विकास के लिए समुदाय के अपने अंदरूनी भाग से ही उत्पन्न विकास उपागम की जरूरत है। पहले ऐसा लगता था कि अन्य देशों से प्रौद्योगिकी और पूंजी हस्तांतरण से विकास होगा। लेकिन समाज की विकास प्रक्रिया की निरंतरता में धीरे-धीरे ऐसी सोच को गलत महसूस किया गया। बुद्धिजीवियों के समूहों का मानना है कि विकास को हमेशा कायम रखने

के लिए सहभागितापरक और समुदाय आधारित कार्यक्रम होने चाहिए। विकास उपागम की पहचान स्वयं स्थानीय लोगों द्वारा उनकी अपनी आवश्यकताओं के आधार पर होनी चाहिए। स्थानीय लोगों की सहूलियत के मुताबिक परियोजना सिद्धांतों की रूपरेखा और कार्यान्वयन और तकनीकों को ऐसे स्थानीय लोगों की सहायता से विकसित किया जाता है जिनके द्वारा विकास योजना की रूपरेखा बनाई जाती है।

चूंकि यह लोगों को अपनी तरक्की अर्थात् उनका अपना विकास है इसलिए विकास प्रक्रिया अनिवार्यतया जन-सहभागिता पर निर्भर करती है। स्थायी विकास स्थानीय लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली निर्णय लेने (decision making) प्रक्रिया में स्थानीय लोगों को शामिल करने पर जोर देता है। जिन लोगों के लिए विकास कार्यक्रम अपनाया गया है उन्हें ऐसे कार्यक्रम की योजना बनाने और इसे लागू करने में अवश्य भाग लेना चाहिए। इसका मानना है कि जिन विकास कार्यक्रमों में स्थानीय लोगों को शामिल नहीं किया जाता वे अक्सर विफल हो जाते हैं। इसलिए सामुदायिक सहभागिता या जन सहभागिता अनिवार्य है।

ग) विकास में संस्कृति का महत्व

औपनिवेशिक काल के दौरान औपनिवेशी (colonised) समाजों में अपने निजी विकास के लिए स्वयं को आधुनिक (नवीन) बनाने की प्रवृत्ति देखी गई है। उन्होंने आधुनिक समाजों अर्थात अपने colonial शासकों की विशेषताओं को अपनाने का प्रयास किया है। इसलिए आधुनिकीकरण और विकास का अर्थ उपनिवेशी (colonised) समाजों और संस्कृति का पश्चिमीकरण है। इस प्रक्रिया ने सामाजिक बदलाव में मजबूत प्रवृत्ति को स्थापित किया है। लेकिन उपनिवेश (colony) मुक्त राष्ट्रीय संस्कृति के विकास के साथ-साथ इस उपागम और धारणा का पतन शुरू हो गया। संस्कृति धीरे-धीरे विकास अध्ययनों का एक भाग बन गई है। वर्ष 1996 में संस्कृति और विकास पर विश्व आयोग के गठन के साथ-साथ सांस्कृतिक आयामों और विकास की महत्त बढ़ती जा रही है। अब संस्कृति को विकास प्रक्रिया के अवरोध के रूप में नहीं देखा जाता बल्कि समाज के विकास के लिए इसे एक असरदार कारक माना जाता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

समय के साथ-साथ सांस्कृतिक विविधताओं के आधार पर विकास अध्ययनों का झुकाव सांस्कृतिक आयामों की तरफ पहले से अधिक होता जा रहा है। पहले के अधिकांश विकास अध्ययनों में राष्ट्र को विकास की इकाई माना गया है। लेकिन धीरे-धीरे यह 'राष्ट्र' संकल्पना में काफी परिवर्तन हुए हैं। अब राष्ट्र को हमेशा विकास की इकाई के रूप में नहीं देखा जाता। विकास अध्ययनों में सामुदायिक विकास, स्थानीय आर्थिक विकास और माइक्रो-प्रादेशिक (क्षेत्रीय) विकास जैसी संकल्पनाओं का महत्व बढ़ रहा है। स्थानीय विकास अपने विविध रूपों में जैसे शहरी विकास, ग्राम विकास, क्षेत्रीय विकास, क्षेत्रीय असमानता, क्षेत्रीयता regionalism, नृजाति विकास (ethnic development), विकास अध्ययनों के सामान्य अभिविन्यास पहलू हैं।

हालांकि, राष्ट्र से परे भी अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और ग्लोबल मैक्रो-आर्थिक नीतियों वाले मैक्रो-क्षेत्रीय स्तर पर विकास की प्रवृत्ति देखी गई है। क्षेत्रीय स्तर विकास की सुपरिचित इकाई बन चुका है। विश्व स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं और यू एन पद्धति की ग्लोबल मैक्रो नीतियों वाला एक अन्य विकासात्मक उपागम है। विकास में संस्कृति को महत्व देने की बात नयी है। बहुत से पहले के उपागमों में संस्कृति को महत्व दिया गया है। मानव विज्ञान/नृ विज्ञान (Anthropology) के विशेष रूप से संस्कृति और विकास अध्ययनों की उत्पत्ति हुई है। इसलिए (anthropological methodology) नृवैज्ञानिक विधि ने अपने बदलावों के रास्ते में विकास अध्ययनों को प्रभावित और संशोधित किया है। नृविज्ञानी (Anthropological) सहभागी प्रेक्षण विधि धीरे-धीरे सहभागी और एक्शन उन्मुख विकास अध्ययनों के रूप में

उभरी है। विकास अध्ययनों में सहभागितापरक एक्शन रिसर्च, त्वरित ग्राम मूल्यांकन और लक्ष्य-उन्मुख परियोजना नियोजन का प्रयोग ज्यादातर किया जाता है।

अब विकास नियोजन आमतौर पर संस्कृति आधारित है क्योंकि संस्कृति के दायरे से बाहर विकास का काम करना संभव नहीं है। विकास में संस्कृति को आर्थिक विकास की दृष्टि से स्पष्ट किया जाता है। राजनीतिक और सामाजिक विकास की महता इससे कम है। डच डेवलपमेंट कार्पोरेशन पॉलिसी, स्थायी विकास के आधार के रूप में संस्कृति पर ज़ोर देता है। स्थायी विकास के लिए संस्कृति का तर्क, स्टेवनहेगन (1986) द्वारा विकसित किया गया और हेटन (1995) ने भी आगे इस तर्क का अनुसरण किया। उनके नजरिए के अनुसार और विकास को मानव-जाति (जन) पर विचार करना चाहिए जिनके लिए विकास की आवश्यकता है। इसी बात को नृजाति-विकास उपागम के रूप में जाना जाता है। यही वह दृष्टिकोण है जिस पर देसी संस्कृति के विकास के साथ विचार किया जाता है। डच डेवलपमेंट पॉलिसी समग्र रूप से राष्ट्र की बजाय समुदायों को संस्कृति के वाहक के रूप में मान्यता देती है। यह राष्ट्र के समुदायों में सांस्कृतिक विविधताओं और सांस्कृतिक भिन्नताओं को कायम रखती है।

चिंतन और कार्रवाई 14.1

योजना बनाने के कार्य में संस्कृति को ध्यान में रखना क्यों ज़रूरी है? सोदाहरण चर्चा कीजिए।

14.3 वैकल्पिक उपागमों का आर्विभाव

विकासात्मक सिद्धांतों के विकास की राह में वृद्धि उन्मुख सिद्धांतों और अन्य जैसे प्रमुख विकास सिद्धांतों की कड़ी आलोचना की गई है। धीरे-धीरे, वैकल्पिक विकास सिद्धांतों का आविर्भाव, पिछले सिद्धांतों के दोषों को अनदेखा करने के रूप में हुआ है। वैकल्पिक उपागम और उनकी पद्धतियों का आविर्भाव ऐसे विकास प्रतिमान के रूप में हुआ है जो प्रमुख विकास उपागमों से सैद्धांतिक विचलन की ओर इशारा करते हैं। वैकल्पिक सिद्धांतों में से कुछ स्थानीय विकास से संबंधित हैं।

MAADHYAM IAS

प्रमुख विकास सिद्धांतों के वैकल्पिक सिद्धांत के रूप में निर्भरता का सिद्धांत, पश्चिमी समाजों की दिशा में गैर-पश्चिमी समाजों में होने वाले संरचनात्मक मैक्रो आर्थिक परिवर्तनों से संबंधित है। ऐसा एक अन्य वैकल्पिक विकास उपागम है जो विकास के लिए परिवर्तन लाने में लोगों की क्षमता पर ज़ोर देता है। यह विकास उपागम, विविध माध्यमों, सहभागी कार्रवाई और जन केंद्रित विकास पर निर्भर है। अपने निजी विकास के लिए यह अन्य समाजों या देशों पर निर्भर नहीं करता।

क) वैकल्पिक विकास

वर्ष 1970 के बाद से वैकल्पिक विकास उपागमों का आर्विभाव, जन केंद्रित विकास के रूप में हुआ है। यह विकास ऐसे लोगों की जरूरतों की तुष्टि से संबंधित है, जिनके लिए विकास अपेक्षित है। ऐसे विकास को अर्न्तजातीय (endogenous) विकास भी कहते हैं। इस उपागम के साथ, इसकी अपनी कुछ विशिष्ट विधियां भी इससे संबद्ध हैं। आमतौर पर ऐसे उपागम के लिए सहभागितापरक विधि का प्रयोग भी किया जाता है। सहभागितापरक विधि विकास प्रक्रिया की शुरूआत समुदाय के भीतर से ही करती है और ऐसे समुदाय के विकास के लिए जन की बुनियादी आवश्यकताओं को ध्यान में रखती है। वैकल्पिक विकास संबंधी उपागम अपनी पद्धति, सहभागितापरकता, अर्न्तजातीय (endogenous) आत्म-निर्भरता और उद्देश्य उन्मुख की दृष्टि से विकास के पिछले उपागमों से अलग है। इसलिए इस संदर्भ में विकास

की शुरुआत, जनसमूहों के बीच से ही की जानी चाहिए और उनकी बुनियादी आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। (Hettue) (1995) का मानना है कि ये मुख्यधारा (mainstream) उपागम है। वह पारंपरिक और विकास-विरोधी सिद्धांतों के विचार पर मुख्यधारा कम ज़ोर देता है।

विकासात्मक सिद्धांतों के विकास की राह पर वैकल्पिक विकास उपागमों को, mainstream विकास के भाग के रूप में संस्थागत (institutionalised) बना दिया गया है। वैकल्पिक उपागम को रूढ़िवादी की बजाय प्रगतिशील के रूप में स्वीकार किया गया है; यह किसी सुस्पष्ट विचारधारा को नहीं अपनाता और मुख्यधारा (mainstream) विकास विचारधारा द्वारा इसे अन्तर्लीन (absorb) किया जा सकता है। (पिटर्स 2001)।

Hettue (1995) एक अन्य विकास उपागम की प्रस्तुति करती है जो कि बुनियादी आवश्यकताओं, आत्म-निर्भरता, स्थायी और अर्न्तजातीय (endogenous) विकास का मिला जुला रूप है। लेकिन इसे प्रतिमान या वैकल्पिक मॉडल के रूप में विकसित नहीं किया जा सका। आज के समय में वैकल्पिक विकास (alternative development) और मुख्यधारावी विकास (mainstream development) के उपागमों के बीच कोई खास फर्क नहीं है। सहभागिता और स्थायित्व जैसे वैकल्पिक विकास के घटकों को mainstream development द्वारा अपनाया गया है। सिद्धांतों की दृष्टि से इनमें कोई ज्यादा फर्क नहीं है। धीरे-धीरे मुख्यधारा विकल्प विकास (Mainstream Alternative Development) (एम.ए.डी.) के नाम से इसे सभी जानने लगे हैं।

ख) अन्तर्जातीय (Endogenous) विकास उपागम

इस उपागम के विचार का उदय, वैकल्पिक विकास के उपगम से हुआ है। अपने निजी विकास के संदर्भ में यह मनुष्य की निजी संस्कृति पर अधिक जोर देता है। जैसा कि इसका नाम इशारा करता है, यह विकास को संस्कृति के अंदर से ही उत्पन्न होने के रूप में देखता है। संस्कृति संबंधी अपनी निजी आधारशिला से यह प्रेरणा शक्ति प्राप्त करता है और विकास की प्रक्रिया को तेज बनाता है। 'endogenous' शब्द की धारणा, समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और सांकितक पहलुओं पर अपना ध्यान केंद्रित करती हैं। जब हम अन्तर्जातीय (endogenous) विकास कहते हैं तो हम मानते हैं कि यह मुख्यधारा के (mainstream) विकास से उलट है और जो बदलाव की प्रक्रिया अर्थात् आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से अर्थात् पश्चिमी समाजों की सांस्कृतिक विशेषताओं का अनुकरण करने वाले समाज के विकास पर ज़ोर देता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे पश्चिमीकरण कहा जा सकता है। लेकिन विकास का अर्थ सभी पारंपरिक और समाज के मौजूदा रीति-रिवाजों, मूल्यों और विश्वासों से पीछा छुड़ाना है जो इसके आत्म विकास को विकसित करने की मंशा रखता है। जब संस्कृति के भीतर से ही लक्ष्यों और मूल्यों को उत्पन्न किया जाता है तो इससे आत्म-विश्वास भी उत्पन्न होगा। यहाँ माना जाता है कि आधुनिकता की उत्पत्ति अपनी निजी संस्कृति से ही होती है, इसलिए आधुनिकीकरण का अर्थ, पश्चिम से उधार के रूप में प्राप्त की जाने वाली कोई वस्तु नहीं है। परंपरा के आधुनिकीकरण में आस्था कायम करने की जरूरत नहीं है। किसी भी समाज की उत्पत्ति स्वत: हो सकती है। दूसरों के विकास पथ की सहायता से यह अपना खुद का विकास कर सकता है। रहमान (1993) का कहना है कि विकास अर्न्तजातीय (endogenous) है– इसके लिए कोई ऐसे नियम नहीं हैं जिनका अनुसरण विकास प्राप्ति की दृष्टि से किया जाये, यदि कोई समाज किसी भी पश्चिमी देश के नमूने का अनुसरण करके यदि खुद को आधुनिक बनाने का प्रयास करता है तो इससे अपनी निजी संस्कृति में पश्चिमी सांस्कृतिक मूलतत्वों को आमंत्रित करके अपनी निजी संस्कृति का विध्वंस ही होगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इसका अर्थ है खुद के सामाजिक मूल्यों, नैतिकता और विश्वास पद्धति को नुकसान पहुँचाना। पश्चिमी नमूने के रूप में आधुनिकीकरण के लिए किए जाने वाले किसी बदलाव को परंपरा हमेशा रोकती है। इसलिए परंपरा और आधुनिकता के बीच द्वंद्व उत्पन्न हो सकता है जिससे समाज की पारंपरिक सांस्कृतिक स्थिति हिल सकती है (सो 1990)। लेकिन आधुनिकीकरण का अर्थ है समाज के भीतर से नये अवयवों की खोज और इन नये अवयवों के प्रति स्वंय को ढालना। परंपरा को नवीकरण, परिवर्तन, विकास और आधुनिकीकरण के स्रोतों के रूप में भी देखा जा सकता है।

ऐसा देखा गया है कि विकास का अन्तर्जातीय विचार, वैकल्पिक विकास उपागम की नींव है। लेकिन संस्कृति में अन्तर्जातीय क्या है और बर्हिजातीय तत्व क्या है, इस पर विचार करने में कुछ दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। संस्कृति और विकास संबंधी सोच में अन्तर्जातीय और बर्हिजातीय तत्वों के बीच हमेशा कोई विशेष सीमा रेखा नहीं हो सकती। अन्तर्जातीय संकल्पना में विकास की इकाई के संदर्भ में भी कुछ सामने आती है। पारंपरिक विचार में "समाज" का प्रयोग "राज्य" या "राष्ट्र" या विकास की इकाई के रूप में किया जाता है।

मुख्यधारावी विकास के उपागमों की आलोचना करते समय, नृजाति-विकास उपागम ने इस बात को उजागर किया है कि विकास के आंकड़े आमतौर पर देश के या राष्ट्रीय स्तर के आंकड़ों को दर्शाते हैं। देश के आंकड़ों के अलावा, लेटिन अमेरिका, अफ्रीका, एशिया, कैरिबियन आदि देशों को ध्यान में रखकर क्षेत्रीय स्तर पर विकास के अन्य आंकड़े उपलब्ध हैं। विकास अध्ययनों में क्षेत्र, राष्ट्र की भांति विकास की सुपरिचित इकाई बन गए हैं। विकास एक्शन को मापने का अन्य तरीका है, यू.एन. व्यवस्था के अंतर्गत विश्व स्थानीय, राष्ट्रीय और वृहत क्षिजिनल इकाइयां। विकास की ऐसी विस्तृत इकाइयों का राष्ट्र या क्षेत्र आदि के नृजाति समूह या समुदाय की भांति माइक्रो-स्तर पर कोई सुव्यवस्थित गहरा उपागम नहीं है। समुदाय के नृजाति समूह का आवश्यकता आधारित उपागम, समुदाय के खुद के विचारों के माइक्रो और गूढ़ विश्लेषण की मांग करता है। अन्य शब्दों में यह है जिसे देसी ज्ञान को समझना कहा जाता है। देसी समझबूझ का विचार स्थानीय ज्ञान को मान्यता देने के रूप में उभरा है (चैम्बर 1983, ब्रोकेंशा संपा और होबर्ट 1993)। अग्रवाल (1995) ने इस ओर इशारा किया है कि लोगों के अपने खुद के विकास में उनके ज्ञान को अनदेखा करना, विकासात्मक प्रयासों में विफलता सुनिश्चित करने जैसा है। विकासात्मक उपागम के रूख का बदलना साफ नजर आता है जिस पर कि विकास के क्षेत्रों में ज्ञानप्राप्ति या सकारोन्मुख उपागम के प्रतिरोध में नृजातीय विधि का खासा असर है। विकास में संरचनात्मक उपागमों की आलोचना करते हुए नारमैन लाग (1992) ने ''नायक-उन्मुख'' उपागम का समर्थन किया है और वह नृविज्ञानी (anthropological) उपागम अपनाने को बेहतर समझते हैं।

MAADHYAM IAS

चिंतन और कार्रवाई 14.2

विकास के संदर्भ में विविध वैकल्पिक उपागमों की चर्चा कीजिए और विकास के लिए विशिष्ट उपागम के रूप में नृजाति-विकास के आविर्भाव के लिए उत्तरदायी कारणों का वर्णन कीजिए।

14.4 नृजाति-विकास की पद्धति

नृजाति-विकास की संकल्पना और विधीय उपागम, सहभागी प्रेक्षण जैसी रूढ़िगत नृवैज्ञानिक विधि को अपनाते हैं। इस संकल्पना से वैकल्पिक विकास की पद्धति सामने आती है जो कि जन-सहभागिता पर आधारित है। इसे ही सहभागितापरक विधि के रूप में जाना जाता है। इसके पीछे छिपा विचार है कि विकास लोगों के मिले-जुले प्रयासों पर आधारित होना

चाहिए और इसे निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में स्थानीय लोगों को अवश्य शामिल करना चाहिए। विशेषकर ऐसी निर्णय संबंधी प्रक्रियाएं जो उनके जीवन और उनके विकास पर अपना असर छोड़ती हैं। ऐसे व्यक्ति या समुदाय जिनके लिए विकास कार्यक्रमों को अपनाया जाता है, उन्हें विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने में अवश्य शामिल किया जाना चाहिए। जिन कार्यक्रमों में समुदाय या स्थानीय लोगों को शामिल नहीं किया जाता, वे अक्सर विफल हो जाते हैं। सहभागितापरक एक्शन रिसर्च, त्वरित ग्रामीण मूल्यांकन, क्रिटिकल पैडागौगी और सशक्तिकरण, वैकल्पिक विकास कार्यक्रम के विविध मूलतत्व हैं। इन विधियों की विशेषता क्या है? इन विधियों को स्थानीय सामुदायिक संदर्भ में लागू किया जाता है।

ऐसा तर्क है कि चूंकि विकास की शुरुआत बाहर की बजाय समाज के भीतर से ही होती है, इसलिए इसे अवश्य ही सहभागितापरक और सामुदायिक आधारित होना ही चाहिए। विकास की पहल की पहचान स्थानीय लोगों द्वारा ही की जानी चाहिए ओर जिन्हे स्थानीय दशाओं के अनुकूल सिद्धांतों और तकनीकों का प्रयोग करते हुए विकास परियोजनाओं की रूपरेखा बनाने और इसे लागू करने में स्वयं को अवश्य शामिल करना चाहिए। कोहेन और अपहोफ (1980) ने सहभागिता को इस रूप में व्यक्त किया है: ऐसी विशिष्ट स्थितियों या कार्यों में बहुत से लोगों को शामिल करना जो मिलजुल कर अपनी खुशहाली अर्थात् अपनी आमदनी, सुरक्षा या आत्म-सम्मान को ऊँचा उठाते हैं। पॉल (1987) ने विकास के संदर्भ में सहभागिता को इस ऐसी सामुदायिक सहभागिता के रूप में परिभाषित किया है। जिसका अर्थ ऐसी सक्रिय प्रक्रिया से है जहाँ लाभार्थी परियोजना के फायदों में मात्र अपना हिस्सा प्राप्त करने की बजाय विकास परियोजनाओं की अवधि और इन्हें लागू करने की प्रक्रिया में अपना प्रभाव दिखाते हैं। संथानम (1993) सहभागिता को हर तरह की कार्रवाई के प्रति व्यक्ति विशेष की तरफ से उत्पन्न वचनबद्धता के रूप में परिभाषित करते हैं जिससे व्यक्ति-विशेष किसी भी समूह स्थिति में कुछ निश्चित सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए बिना किसी सामाजिक-आर्थिक अवरोधों पर ध्यान दिए मुहिम में भाग लेता है या अपनी भूमिका निभाता है। ऐसी वचनबद्धता तभी संभव है जब उसे ऐसी स्थिति से अवगत कराया जाता है ताकि उसे अपनी खुद की सोच पर आधारित मनोवृत्ति कायम करने के योग्य बनाया जा सके। लेले (1975) ने अफ्रीका में अपने अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया कि स्थानीय सहभागिता का अर्थ स्थानीय आवश्यकताओं के नियोजन और निर्धारण में आम लोगों को शामिल करना हो सकता है। ऐसे लोगों को उनके समाज के लिए निर्मित योजनाओं के प्रति सूचित भी किया जाना चाहिए यदि उनसे आशा की जाती है कि कार्यक्रम को लागू करने में वे अपनी सहमति व्यक्त करें और इसमें अपना सहयोग दें। इस तरह सहभागिता स्व-विकास को तेज करने में आत्म-निर्भरता ला सकती है।

MAADHYAM IAS

> **चिंतन और कार्रवाई** 14.3
>
> आपके अपने समुदाय में पानी, बिजली, सड़कों की मरम्मत या यहां तक कि आजीविका सुरक्षा को लेकर बहुत सी समस्याएं हो सकती हैं। समुदाय सदस्य के रूप में अपने निजी अनुभव के आधार पर स्पष्ट कीजिए कि किस प्रकार आपके समुदाय के सांस्कृतिक संसाधनों को ऐसी किसी भी समस्या के समाधान के लिए अपनाया जा सकता है।

14.5 सारांश

हमारी इस इकाई की शुरुआत, विकास के विविध सिद्धांतों पर लघु चर्चा से की गई है। समकालीन जगत में स्थायी विकास और विकास में संस्कृति के महत्व जैसे मुद्दे विकासवार्ता के महत्वपूर्ण आयाम हैं। अब विकास को सिर्फ आर्थिक वृद्धि की दृष्टि से ही परिभाषित नहीं किया जाता। समाज के सांस्कृतिक आयाम समकालीन विकास अभिविन्यास में

अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं को निभाने के रूप में उभरे हैं। इस संदर्भ में विकास के लिए विविध वैकल्पिक उपागम जैसे अन्तर्जातीय (endogenous) विकास और नृजाति-विकास उपागमों को खुल कर स्पष्ट किया गया है।

14.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अग्रवाल, ए, 1995, ''इनडिजिनस एंड सांयटिफिक नौलेज: सॅम क्रिटिक्ल कमैन्ट्स'', इनडिजिनस नौलेज एंड डेवलपमेंट मानीटर 3.3.

ओमेव, टी.के., 1998, ''चेंजिंग पैराडाइम आफ डेवलपमेंट: द इवौल्विंग पार्टिसिपेट्री सोसाइटी'', जर्नल आफ सोशल एंड इकनामिक्स डेवलपमेंट 1 : 35-45.

पॉल, एस, 1987 ''कम्यूनिटी पार्टिसिपेशन इन डेवलपमेंट प्रोजैक्ट्स: द वर्ल्ड बैंक एक्पीरिंयस'', इन द वर्ल्ड बैंक रीडिंगस इन कम्यूनिटी पार्टिसिपेशन। द वर्ल्ड बैंक, वाशिंगटन डी.सी.,

पिटर्स, जे.एन., 2001, डेवलपमेंट थियोरी, विस्तार पब्लिकेशनस: नई दिल्ली।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 15

जनसंख्या और विकास

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

15.3 जनसंख्या नियंत्रण की राजनीति: पर्यावरण और जेंडर

15.4 भारत: आबादी अनुभव और विकास संबंधी चिंता के मुद्दे

15.5 सारांश

15.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अधिगम उद्देश्य

- हमारी यह इकाई आपके लिए विकास पर माल्थस और नव माल्थस परिप्रेक्ष्यों को स्पष्ट करने में सहायक होगी;
- जनसंख्या नियंत्रण पर चर्चा करने और राज्य की भूमिका को स्पष्ट करने में सहायक होगी;
- जनसंख्या नियंत्रण की राजनीति को स्पष्ट करने में सहायक होगी; और
- भारत के जनसंख्या अनुभव और विकासात्मक मुद्दों को स्पष्ट करने में सहायक होगी।

15.1 प्रस्तावना

MAADHYAM IAS

हमारी यह इकाई आबादी (जनसंख्या) की भूमिका और विकास से इसके संबंध को रेखांकित करने का प्रयास करती है। भारत में पारंपरिक रूप से आबादी के अध्ययन का अर्थ जनसांख्यिकीकारों का है और यह कार्य ऐसे सरकारी जनगणना अधिकारियों का है जो दस वर्षों में एक बाद भारतीय जनगणना रिपोर्ट को उजागर करते हैं। आबादी अध्ययन का अर्थ मात्र संख्याएं गिनते जाने या जन्म/मृत्यु का हिसाब किताब रखने से काफी अधिक है। इससे समाज की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को एक नजर में जाना जा सकता है और अपने सामाजिक और आर्थिक विकास के सफर के निर्धारण में इसकी अपनी एक प्रासंगिकता है। जनगणना एक लंबा चौड़ा अभ्यास है। भारत में रहने वाले लोगों की संख्या पर आंकड़े एकत्र करने की ओर साथ ही साथ आबादी की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर सूचना एकत्र करने की यह लंबी प्रक्रिया है। हर जनगणना के दौरान, चिंता के समान मुद्दों को उठाया गया है और अति जनसंख्या और निर्धनता और बेरोजगारी के स्तरों के मुद्दों पर समान उद्घोषणाएं की जाती है। समग्र रूप से समाज को समझने में आबादी अध्ययनों का महत्व है कि जीवन के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक भागों ने विभिन्न विषयों के जानकारों के ध्यान को आकृष्ट किया है। इसके साथ-साथ आबादी के अध्ययन पर काफी वादविवाद और मतभेद उत्पन्न हुए हैं और देश के लिए विकास की वांछित स्थिति पर लंबे समय से बहस भी चली आ रही है।

लंबे समय से विश्व की अति आबादी वैश्विक स्तर का मुख्य मुद्दा रहा है। विकासशील देश कहलाने वाले देश (मुख्यतया एशियाई और अफ्रीकी देशों) में उच्च आबादी दर के लिए, तर्क दिया जाता है कि इससे वैश्विक स्तर पर सीमित और पहले से अति-शोषित प्राकृतिक संसाधन आधार से अधिक व्यक्तियों को ऐसे संसाधन देने से विश्व भर में संकट उत्पन्न

हो सकता है। वैश्विक संकटों और अति आबादी के मुद्दे को समझने के बहुत से परिप्रेक्ष्य हैं। कुछ जानकारों के मुताबिक वैश्विक संकटों को बदतर बनाने में अति आबादी की भूमिका से संबंद्ध अति शब्द को बढ़ चढ़ कर व्यक्त किया जाता है। संकटों के कारण के रूप में आबादी पर जरूरत से अधिक जोर देने के संदर्भ में उनका तर्क है कि समृद्ध देशों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के जरूरत से ज्यादा और फुजूलखर्च प्रयोग के लिए अन्य संरचनागत कारणों से ध्यान हटा लिया जाता है। इस संदर्भ में, विकास पर होने वाले वाद विवाद का महत्व बढ़ जाता है और आबादी के मुद्दे के इर्दगिर्द घूमती राजनीति पर ध्यान केंद्रित होता है। हमारी मौजूदा इकाई कुछ ऐसे मुख्य मुद्दों को प्रस्तुत करने का प्रयास करती है जो जनसंख्या और विकास पर होने वाले तर्क-वितर्क में अहम भूमिका निभाते हैं।

आबादी के विचारणीय मुद्दे की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, इसकी शुरूआत के कारण, उठाए जाने वाले मुद्दे और इनके साथ विकसित होने वाली राजनीति और किस प्रकार यह विषयवस्तु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर दस्तक देने लगी अर्थात् इन सभी मुद्दों को पहले अनुभाग में स्पष्ट किया गया है। दूसरे अनुभाग में ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दों की रूपरेखा विकसित की गई है जो आबादी पर उभरने वाले प्रश्नों से उत्पन्न होते हैं और कैसे यह मुद्दा विकास और संबंद्ध पर्यावरण और यह जेंडर के मुद्दों के संदर्भ में विकसित और विकासशील देशों के बीच विवाद या समझौते का बिंदु बन जाता है। हमारा तीसरा अनुभाग आबादी मुद्दों और विकास और भारतीय अनुभवों की प्रस्तुति करता है और देश में आबादी संकटों को समझने में किस प्रकार नीतियों में परिवर्तन करता है। अंत में आबादी और विकास के वाद-विवाद के संदर्भ में इकाई के विविध अनुभागों में उठाए गए मुख्य मुद्दों की सार प्रस्तुति की गई है।

15.2 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

MAADHYAM IAS

थामसे माल्थस की रचना और आन द प्रिंसिपल ऑफ पापुलेशन (1798) को आबादी पर अभी तक के किए कार्यों में अग्रणी माना जाता है जिसमें थॉमस ने जनसंख्या वृद्धि के आधारभूति सिद्धांत का स्पष्ट किया है। इस सिद्धांत के अनुसार प्राकृतिक संसाधन जो प्रदान करते हैं, उसकी तुलना में आबादी काफी अधिक तेजी से बढ़ती है। यदि नियंत्रण न किया जाये तो हर पच्चीस वर्षों में जन की संख्या दुगुनी हो जाती है। यह वृद्धि (1,2,4,8 आदि) की ज्यामितीय दर पर बढ़ती है जबकि खाद्य उत्पादन गणितीय दर (1,2,3,4,5 आदि) पर बढ़ते हैं और यदि प्राकृतिक संसाधनों का सीमित आधार होगा तो खाद्य आपूर्ति की कमी होगी। आबादी और खाद्य आपूर्ति की वृद्धि की दरों के बीच की यह दूरी उसके अनुसार युद्ध, अकाल और महामारी जैसी 'सकारात्मक' दशाओं को उत्पन्न करती हैं और जिसे वह अति आबादी का नियंत्रण कहता है। वह आबादी नियंत्रण के लिए गर्भ निरोधक विधियां और गर्भपात के प्रयोग के विरुद्ध था। अति आबादी के कुछ 'निवारक' उपायों के रूप में वह चिरकालिक ब्रह्मचर्य और देरी से विवाह जैसी बातों का सुझाव देता है। माल्थस ने अपना सिद्धांत तब प्रस्तावित किया जब औषधी के क्षेत्र में होने वाले सुधार और समग्र औद्योगिक वृद्धि के कारण यूरोप में मृत्यु दर में काफी घटोतरी नजर आ रही थी। जिसके फलस्वरूप यूरोप में आबादी तेजी से बढ़ी लेकिन औद्योगिक प्रसार और उपनिवेश अधिग्रहण.से बढ़ती आबादी व्यवस्थित हो गई। इसके अलावा 1800 और 1930 के वर्षों के बीच रोजगार के बेहतर अवसरों की तलाश में अनुमानित 400 मिलियन लोग यूरोप से उत्तर अमेरिका में जा कर बस गए। यूरोप में अतिआबादी की बजाय जनह्रास हो गया। अमेरिका आबादी में होने वाली बढ़ोतरी को ले कर चिंतित था क्योंकि प्रवासियों की भारी संख्या यहां आकर बस गई थी और इनकी आबादी आगे तेजी से बढ़ रही थी। अमेरिका ने तब कड़ी आप्रवास संबंधी नीतियां लागू की और कुछ यूरोपियाई देशों को इस वजह से अमेरिका से काफी नाराजगी भी हुई क्योंकि इससे उन्होने बेहतर आर्थिक अवसरों के द्वार भी बंद कर दिए। फ्रांस ऐसा पहला देश था जिसने वर्ष 1800 के आसपास जन्म दर में घटोतरी का अनुभव किया और

फ्रांस की कम उर्वरता दर को 1870 में प्रशिया से उसकी हार के कारणों में से एक भी माना जाता है। 1919 में समस्या से निपटने के लिए सरकारी प्रयास भी किए गए जब उपचारात्मक कार्रवाई का सुझाव देने के लिए स्वास्थ्य मंत्रालय के भाग के रूप में एक अलग परिषद की स्थापना की गई। बड़े परिवार के विचार को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने कई तरह के उपाय पेश किए। बड़े परिवारों की रोजी रोटी चलाने वालों को सहयोग देने के लिए सरकार ने पारिवारिक भत्ता देना भी शुरू किया। 1923 में गर्भपात के विरुद्ध बनाए गए नियम को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए संशोधित किया गया।

अन्य यूरोपियाई देशों में भी निम्न जन्म दर देखी गई जिसकी वजह से पूर्व प्रसव संबंधी उपायों को इटली और जर्मनी जैसे देशों में अपनाया गया। (इन उपायों के अंतर्गत स्थानीय लोगों को घरों में ही रखे जाना जैसी बातों का समावेश था) उदाहरण के तौर पर इटली में गर्भपात, जन्म नियंत्रण उपायों और उत्प्रसाव के विरुद्ध कड़े नियमों को पेश किया गया। नाज़ी जर्मनी में दंपत्तियों को परिवार शुरू करने के लिए विवाह ऋण दिए। इटली और फ्रांस में यह विशेषता पहले से व्याप्त थी। उस समय के फासिस्टवाद प्रोनैटलिस्ट उपाय संबंधी (pro-natalist measures related) और नाजी प्रचार के संदर्भ में प्रो नेटलिस्ट संबंधी उपाय काफी कारगर साबित हुए और नृजातीय और प्रजातीय कोलाहल खूब मचा। जाति (race) और विज्ञान पर ध्यान केंद्रित करके सुजननिक (evgenics) का आविर्भाव हुआ जो कि राजनीतिक आंदोलन और ऐसी विचारधारा थी जिसने विशेष रूप से जब जर्मन पर हिटलर का शासन था, उस समय रखी शताब्दी के आरंभ में यूरोप पर अपना वर्चस्व कायम किया। मानव जाति की कोटि को बेहतर बनाने में सुजननिक (evgenics) कल्पित उच्च मानव जीवों की वरणात्मक नस्ल है। सामान्य रूप से जातीय भेदभाव और जर्मनी में यहूदियों के उत्पीड़न के लिए सुजननिक बुनियादी औचित्य बन गया।

बहुत सी आशंकाओं और इसके फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तक यूरोप के नीति उपायों पर जनसांख्यिकी के मुद्दों ने अपनी पकड़ बनाए रखी। (1900 और 1914) के बीच के समय में राष्ट्र-संघों के आबादी पर चिंता का मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नज़र आने लगा और जिसमें इसके विविध मंचों पर चर्चा के लिए गर्भ-विरोध और प्रवास संबंधी मुद्दों को उठाया गया था। माल्थस सिद्धांत के समर्थक देश जैसे कि फ्रांस, इटली और हालैंड ने अतिआबादी और युद्ध के बीच के संबंध पर बहस की। उनके अनुसार, देशों के बीच आर्थिक दुश्मनी और तनाव का मुख्य कारण आबादी दबाव था। प्रो. नेटलिस्ट आंदोलनों को काफी नाराजगी के रूप में देखा गया क्योंकि इसमें आर्थिक संसाधनों का अभाव भी शामिल था जिससे नृजातीय और प्रजातीय दुश्मनी पैदा हो गई। ब्रिटिश माल्थस लीग (1919) और छठी अंतर्राष्ट्रीय नव माल्थस और जन्म नियंत्रण सम्मेलन जैसे विविध फोरमों में नव-माल्थसों ने बारंबार जन्म दर को नियंत्रित करने का प्रण लिया ताकि लोग आराम से अपने देश में बिना इस भावना के रह सकें कि उन्हें अपने प्रादेशिक आधार को विस्तार करने की जरूरत है। ब्रिटिश माल्थस लीग ने ऐसे किसी भी देश को सदस्यता न देने के संकल्प को अपनाया जिसने अपनी जन्म दर को नियंत्रित करने का प्रण नहीं लिया था।

नव-माल्थसवाद शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 1877 में डा. सैम्युअल वेन हयूटन ने किया था जो कि माल्थस लीग के उपाध्यक्षों में से एक थे। नव माल्थसवाद जन्म नियंत्रण पक्ष में चलाया जाने वाला एक अभियान ही नहीं था बल्कि मानव आचरण और व्यवहार पर आबादी के प्रभावों के संदर्भ में एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य भी था। दो वजहों से नव-माल्थसवाद अभियान परंपरागत माल्थस स्थिति से भिन्न था। इसने जन्म नियंत्रण की विधियों पर विशेष जोर दिया और श्रमिक वर्ग की अति आबादी संबंधी समस्याओं की पहचान भी की गई। लोगों की भीड़भाड़ से भरी औद्योगिक मलीन बस्तियों की पहचान नैतिक विकार के स्थलों के रूप में की। इस बात ने आबादी के मुद्दे पर उत्पन्न वादविवाद का रूख निर्धनता के मुद्दों

और संसाधनों तक असमान पहुँच से न हटा कर संतति-निग्रह (birth control) की ओर कर दिया। दरअसल इसके पीछे छिपी धारणा थी कि साधारण व्यक्ति तक पहुंच स्थापित करना या संसाधनों की उन तक उपलब्धता उन्हें ज्यादा संतान की प्राप्ति करने से रोकने का कोई खास बड़ा कारण नहीं देती। नव-माल्थसवाद ने निजी संपत्ति, व्यक्तित्ववाद और पूंजीवाद की विचारधारा को इसी वजह से पुनर्बलित किया (रौस 1998)। नव माल्थसवाद को अति आबादी के मुद्दे पर कुलीन भावनाओं के पक्ष में पाया गया। साधारण व्यक्तियों की बढ़ती संख्या से आतंकित कुलीन वर्ग ने अपनी संपत्ति पर भावी द्वंद्वों को रोकने के महत्वपूर्ण साधन के रूप में जन्म नियंत्रण (birth control) पर गौर किया।

फ्रांसीसी प्रतिनिधियों ने इस संदर्भ में दोनों तरह की स्थिति कायम करने की कोशिश की जबकि वे इस आधार पर गर्भनिरोधकों के प्रति सजग थे कि इस व्यवहार से सिर्फ यौन रस का आनंद उठाने को बढ़ावा मिलता है और इस व्यवहार से व्यक्ति इसे परिणामस्वरूप उत्पन्न अपनी जिम्मेवारी को नहीं समझता। उनके अनुसार, गर्भ निरोधक विवाह और पारिवारिक मूल्यों की विचारधारा और पवित्रता का हवन था। कैथोलिक चर्च के लिए जन्म नियंत्रण गैरकानूनी और अनैतिक व्यवहार था और यह ईसाई धर्म की बुनियादी विचारधारा के विरूद्ध भी था। 1920 तक चिकित्सीय दृष्टि से सभी पेशेवर भी जन्म नियंत्रण के विरुद्ध थे क्योंकि उनकी राय में यह एक गंदा और अनैतिक व्यवहार था। लेकिन इसके बाद मनोवृत्ति में धीरे-धीरे बदलाव आया जैसा कि 1921 में ब्रिटिश मेडिकल पेशवरों द्वारा औंगलिकन चर्च को की गई अपील से पता चलता है, जिसमें इन पेशवरों ने चर्च से मौजूदा चिकित्सीय ज्ञान के मद्देनजर जन्म नियंत्रण पर चर्च को अपनी राय पर पुनः विचार करने की सिफारिश की थी। अमेरिका में भी 1929 में न्यायालय ने स्वास्थ्य कारणों के लिए गर्भ निरोधकों के इस्तेमाल के लिए चिकित्सकों के अधिकार को ठीक बताया और चिकित्सीय पाठ्यचर्चा में जन्म नियंत्रण संबंधी ज्ञान को शामिल करने पर भी हामी भरी। यूरोप और अमेरिका के विविध भागों में जन्म नियंत्रण क्लीनिक स्थापित किए गए और जो कि जन्म नियंत्रण अभियानों का एक नया चरण था। जन्म नियंत्रण शब्द को कम दोषपूर्ण और अधिक सामाजिक बनाने की दृष्टि में 'परिवार नियोजन' और 'नियोजित पितृत्व' जैसे शब्दों का प्रयोग होने लगा और अब बच्चों के जन्म के बीच में अंतराल और मातृ स्वास्थ्य पर जोर दिया जाने लगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

यौन संबंधों और व्यक्ति-विशेष के घरेलू जीवन को नियंत्रित करने का प्रयास करने में जन्म नियंत्रण व्यक्ति विशेष स्वतंत्रता के आधुनिक मूल्यों और व्यक्ति विशेष की गोपनीयता के अधिकार के विरूद्ध चला गया। दूसरी तरफ इसने उस समय व्याप्त रूढ़िवादिता पर भी सवालिया निशान लगाया और जन्म नियंत्रण को व्यक्ति-विशेष की संतान प्राप्ति की इच्छा या अनिच्छा के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। हालांकि जन्म नियंत्रण वाद-विवाद का स्रोत यह नहीं था कि क्या व्यक्ति विशेष की स्वतंत्रता सुरक्षित की जानी चाहिए या नहीं बल्कि मुख्य मुद्दा था कि अति आबादी को नियंत्रित कैसे किया जायें और विश्व को इसके प्रभावों से कैसे बचाया जाये। वाद-विवाद में मुख्य रूप से प्रवास, श्रमिकों की उपलब्धता, संसाधनों पर द्वंद्व और व्याप्त निर्धनता जैसे बातों पर विशेष रूप से गौर किया गया। इस संदर्भ में मुख्य ध्यान विकासात्मक और राजनीतिक पहलुओं पर था।

पूर्व सोवियत संघ पहला ऐसा देश था जिसकी सरकार ने जन्म नियंत्रण परामर्श और सेवाएं निःशुल्क उपलब्ध कराने का प्रयास किया। परिवार नियोजन के प्रमुख समर्थक लेनिन ने नव-माल्थस प्रचार को इस बात से अलग कहा जिसे वह चिकित्सीय ज्ञान के प्रसार की स्वतंत्रता और स्त्री और पुरुषों के प्रारंभिक लोकतांत्रिक अधिकारों की प्रतिरक्षा के रूप में देखते थे (सिमोंड और कार्डर 1973:21)। समाजवादी निरंतर इस बात पर कायम रहे कि अति आबादी के मुद्दे पर मचाया जाने वाला शोर, असमानता और वर्ग संघर्ष के मुख्य मुद्दों से ध्यान

हटाने का एक तरीका था। उनके नजरिए से बढ़ती आबादी की तुलना में संसाधनों पर कायम की जाने वाली असामान्य पहुंच मुख्य मुद्दा था। समाजवादियों के अनुसार सभी के लिए पर्याप्त संसाधन के बशर्ते इन संसाधनों को बराबरी से बाँटा जायें। मूल समस्या संसाधनों के असमान वितरण में निहित थी और जहां समृद्ध और अमीर वर्ग अपने नियंत्रण के तले के संसाधनों के बड़े हिस्से को छोड़ना नहीं चाहते थे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र में बहुत से नये स्वतंत्र देशों के शामिल होने से स्थिति में बदलाव आया। तब तक नव-माल्थस जनसांख्यिकीय बदलाव संबंधी सिद्धांत को सभी ने भलीभांति स्वीकार कर लिया था। इस सिद्धांत के अनुसार, सभी देश जनसांख्यिकीय उद्गम के चार चरणों से हो कर गुजरते हैं। पहला चरण है, पूर्व-औद्योगिक चरण जहां कि मुख्य विशेषता उच्च जन्म और मृत्यु दर है और निम्न जनसंख्या वृद्धि है। दूसरा चरण जनसंख्या विस्फोट से जुड़ा हुआ है। जहां प्रौद्योगिकी में और जीवन की सामाजिक दशाओं के सुधार की ओर इशारा है। यहाँ मृत्यु दर निम्न है लेकिन जन्म दर उच्च ही बनी हुई है जिससे आबादी की वृद्धि दर उच्च है। तीसरा चरण, सामाजिक-आर्थिक बदलावों के कारण जन्म दर में घटोतरी की शुरूआत की ओर इशारा करता है और चौथा चरण इस प्रवृत्ति को स्थिर बनाता है और आबादी की निम्न और समुचित वृद्धि दर को स्थापित करता है। इस सिद्धांत का रोचक पहलू कि आबादी दर को समाज के आर्थिक विकास के स्तर को प्रभावित करना था। इसने आर्थिक रूप से विकसित देश के मुख्य सूचक के रूप में निम्न आबादी दर को स्थापित किया। तीसरी दुनिया के उत्तर-औपनिवेशिक देश नव-माल्थस विश्लेषण के रूप में नजर आयें। जिन देशों ने औपनिवेशिक शासन के बंधनों को तोड़ा था वे शायद जनसांख्यिकीय बदलाव के दूसरे चरण से हो कर गुजर रहे थे अर्थात् वे उच्च जन्म दर और निम्न मृत्यु दर का अनुभव कर रहे थे। बेहतर चिकित्सीय सुविधाएं और सूखे के कम हो जाने से आबादी न सिर्फ स्थिर हो गई बल्कि काफी तेजी से बढ़ी भी। आर्थिक विकास और प्रौद्योगिकीय वृद्धि की दृष्टि से उच्च/विकसित देशों की तुलना में उन्हें काफी पिछड़ा माना गया और यह स्थिति आबादी के वृद्धि दर के उच्च होने के रूप में नज़र भी आ रही थी। विकसित देशों के लिए यह चिंता का मुद्दा था। वर्षों तक औपनिवेशिकता की जंजीरों में जकड़े जाने की वजह से ये देश गरीब हो गए थे और अपनी बड़ी संख्या के जीवन-निर्वाह के लिए इनके पास कुछ भी नहीं था।

MAADHYAM IAS

आबादी में घटोतरी संयुक्त राष्ट्र में प्राथमिकता का मुख्य मुद्दा बन गई। मुख्य ध्यान विकासशील देशों में पौषणिक स्तरों को बढ़ाने और महिलाओं और बच्चों को बेहतर स्वास्थ्य प्रदान करना था। 1945 में आबादी आयोग गठित करने का प्रस्ताव सामने आया जिसका पूर्व सोवियत संघ और यूगोस्लाविया ने इस आधार पर खंडन किया कि एक अन्य आयोग से सिर्फ मुद्दों में और अधिक उलझन पैदा होगा। लेकिन आयोग का विरोध करने का मुख्य कारण था कि यह सिर्फ मुख्यतया ''आबादी बदलावों'' पर ही लक्षित था और वृद्धि की बजाय जनसंख्या विस्फोट के उत्पन्न चुनौती पर टिका हुआ था। इस आयोग ने विकासशील देशों में आर्थिक पिछड़ेपन के निर्माण में वैश्विक पूंजीवाद विकास की भूमिका को अनदेखा किया। फिर भी 1946 में औपचारिक रूप से आयोग का गठन किया गया। यद्यपि इस आयोग में निर्णय लेने की शक्ति नहीं थी। इस आयोग ने अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई एल ओ), खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ ए ओ) और विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू एच ओ) जैसी संयुक्त राष्ट्र की अन्य विशिष्ट एजेंसियों के सहयोग से अपना कामकाज आगे बढ़ाया।

चिंतन और कार्रवाई 15.1

आबादी वृद्धि और नियंत्रण पर माल्थस और नव माल्थस दृष्टिकोणों के बीच का मुख्य अंतर क्या है? यूरोप में आबादी नियंत्रण में चर्च की भूमिका क्या रही है?

15.3 जनसंख्या नियंत्रण की राजनीति: पर्यावरण और जेंडर

जैसा कि पिछले अनुभाग में चर्चा की गई थी, द्वितीय विश्व युद्ध के आसपास के समय में ही विकासशील जगत में जनसांख्यिकीय बदलाव लाने के उपाय निकालने के तरीकों और तकनीकों को विकसित करने के वैज्ञानिक अध्ययनों को अमेरिका में भलीभांति विकसित किया गया। संयुक्त राष्ट्र ने भी तीसरी दुनिया के देशों को अपनी भूमिका को ध्यान में रखते हुए उन्हें अपनी सरकारी जिम्मेवारियों में जन्म नियंत्रण और परिवार नियोजन को शामिल करने की प्रेरणा दी। इसके पीछे दिया मुख्य दृष्टिकोण था कि विकासशील देशों में अल्पविकास और निर्धनता का मुख्य कारण अति आबादी था और इसी वजह से जो कुछ भी उत्पादित किया जाता वह बहुत से लोगों का पेट भरने पर खर्च कर दिया जाता। इसी वजह से प्रति व्यक्ति आय निम्न है और लोग निर्धनता के दायरे से बाहर आने के योग्य नहीं हैं। वे गंदी दशाओं में रहते हैं, शिक्षा स्वास्थ्य सुविधाएं और परिवार नियोजन की तकनीकों तक उनकी पहुंच नहीं है और इस आशा वे अधिक संतान उत्पन्न करते है ताकि श्रम करने के लिए घर में अधिक सदस्य हों जिससे परिवार को आमदनी मिल सके। नव-माल्थस सिद्धांत के अनुसार यह ऐसा दुष्चक्र है जो निर्धनता को कायम रखता है और इस जाल को काटने का एक ही तरीका है और वह है; आबादी की वृद्धि को नियंत्रित करना।

जब तीसरी दुनिया के देश यह तर्क देते हैं कि विकास ही श्रेष्ठ गर्भ निरोधक है तो स्थिति आपे से बाहर हो जाती है। इस विचार के अनुसार सामाजिक-आर्थिक विकास के साथ और बाद में जीवन स्तर के बेहतर बनने से जनसंख्या दर कम हो जायेगी। नव-माल्थस सिद्धांत को इस आधार पर यह बात स्वीकार्य नहीं है कि जिस हिसाब से आबादी की दर तेजी से बढ़ रही है उस हिसाब से विश्व इतनी देर तक इंतजार नहीं कर सकता। वैश्विक परिस्थितिकीय संकटों के बारे में जागरूकता के बढ़ने के साथ-साथ बेचैनी भी बढ़ गई है। पर्यावरणविदों ने धरती की क्षमता और इसके संसाधनों की सीमा की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और माल्थस परिकल्पना का यही मुख्य केंद्रबिंदु है। पारिस्थितिकीय आंदोलन जिस पर पिछली शताब्दी में बल दिया गया उसने लगातार इस बारे में चेतावनी दी है कि यदि धरती से ऐसे ही संसाधनों का अतिशोषण होता रहा तो आने वाला भविष्य अंधकार में डूब जायेगा। नव-माल्थसों के लिए यह तर्क सीधे तौर पर अति आबादी के मुद्दे को संबोधित करता है कि धरती के अतिशोषण का प्रभाव ऐसे लोगों की भारी संख्या पर पड़ेगा जो इस पर निर्भर हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इस तर्क की हालांकि अत्यंत सरल होने और वास्तविकता में गलत होने की वजह से समीक्षा की गई। औद्योगिकीकृत राष्ट्र जो विश्व आबादी के 25% से भी कम हैं, वे विश्व की 75% ऊर्जा और दो-तिहाई ग्रीन गैस हाउसों का प्रयोग करते हैं जिनसे ओजोन परत को नुकसान पहुँचता है। इसके प्रभाव सभी जगह पड़ते हैं और सभी इससे प्रभावित हैं। इसके अलावा तीसरी दुनिया के देशों को तीसरी दुनिया के उच्च देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा निर्मित जहरीले पदार्थों और रासायनिकों के लिए कचरा घर के रूप में इस्तेमाल किया गया है। अत: इससे पता चलता है कि परिस्थितिकीय संकट का स्रोत 'अति आबादी' नहीं है बल्कि 'अति उपभोग' है। संकट इस तथ्य में निहित है कि प्रकृति की जनन दर, औद्योगिक उत्पादन की दर से निम्न है।

निर्धनता और आबादी पर नव-माल्थस स्थिति कुछ विशेष कारकों की खोजबीन करने में भी विफल रही है। ये हैं: वर्ग और स्थिति की संरचनागत असमानताओं की भूमिका और विस्तार की पहचान करना, उत्पादन के साधनों पर असमान पहुंच और निर्धनता की दशाओं के कारण संरचनागत सुधारों का अभाव। श्रम सघन कृषीय क्षेत्र में मशीनीकरण के कारण वर्ग अंतर पर जोर दिया है और निम्न वर्ग के उत्पीड़न को बढ़ा दिया है। भारत में हरित क्रांति नामक अभियान जो कि खाद्य उत्पादन को बढ़ाने और देश में खाद्य आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को

पूरा करने पर आधारित था, इसकी प्राप्ति उच्च पैदावार देने वाले बीजों की मिली जुली किस्म की पेशकश और कृषि की विधियों के प्रौद्योगिकीय उत्पादन के माध्यम से की गई। इस उदाहरण का महत्व इसलिए है क्योंकि इसकी पेशकश आर्थिक वृद्धि और कृषीय उत्पादन को बढ़ाने के लिए की गई थी। हरित क्रांति के तत्काल लक्ष्यों के बावजूद इसके सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय जटिलताओं को भी उत्पन्न किया। भू-सुधार के अभाव में कृषि के व्यापारीकरण का लाभ समृद्ध कृषकों को हुआ और गरीब किसानों में इससे कर्जे की स्थिति उत्पन्न हो गई। हरित क्रांति से उत्पन्न वित्तीय संसाधनों का लाभ उठाने के लिए उस हिसाब से गरीब किसानों के बाद जमीन नहीं थी।

बॉक्स 15.1: मिथक और तथ्य

मिथक: निर्धन व्यक्तियों की स्थिति बेहतर होगी यदि पालन पोषण की दृष्टि से उनकी संतान कम होगी।

तथ्य: यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या बच्चे हमारी परिसंपत्ति हैं या देयता। अमेरिका में, उदाहरणार्थ 18 वर्ष की आयु के बच्चे के लिए कालेज शुल्क को छोड़ कर यदि उसे सहयोग प्रदान करने की लागत देखें तो यह 100,000 डालर से अधिक होगी और 50 प्रतिशत अमेरिकी महिलाएं गर्भ निरोधक विधियों का इस्तेमाल कर रही हैं क्योंकि उनका मानना है कि वे एक और संतान का पालन पोषण करने का सामर्थ्य नहीं रखतीं। लेकिन दक्षिण के देशों में 10 वर्ष की आयु में लड़के जितना उपभोग करते हैं उससे दुगुने से अधिक पहले से ही कमा रहे हैं और 15 वर्ष की आयु तक उनके माता-पिता ने जितना उन पर खर्च किया है, उतना उन्हें वापिस कर देते हैं।

(स्रोत: फैक्ट्स अगेंस्ट मिथ्स 1993)

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

पर्यावरणीय परिणामों के लिए पेस्टनाशियों, रासायनिक उर्वरकों और मिलीजुली किस्म के बीजों का मृदा गुणवता पर बुरा प्रभाव पड़ा। दरअसल वाणिज्यिक कृषि और जमीनी पानी के अति उपयोग ने पूरे भारत में सूखे की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पर्यावरणयी संकट ने यहां तक कि आधुनिक और उच्च देशों के विकास के परखे और परीक्षित मार्ग पर भी सवालिया निशान लगा दिया है। बड़े बांधों के निर्माण और एक ही फसल को उगाने और वाणिज्यिक कृषि ने न केवल गरीबी की दशाओं को उत्पन्न किया है बल्कि उपयुक्त जनसांख्यिकीय बदलाव लाने के लिए प्रगति और विकास में प्रबल आस्था की पद्धति पर भी सवालिया निशान लगा दिया है। पर्यावरण के अतिशोषण ने विश्व की आबादी के बड़े भाग को जोखिम में डाल दिया है। लाखों लोगों ने अपनी आजीविका खो दी है और घोर स्वास्थ्य संबंधी खतरों का भी उन्हें सामना करना पड़ रहा है और वैकल्पिक रोज़गार की तलाश में पहले से घोर आबादी वाले शहरों में जा कर बाटने के लिए विवश कर दिया गया है। विश्व भर की मूल जातियों या जनजातियों जैसा कि इस नाम से भारत में इन्हें जाना जाता है अर्थात इन सभी ने अपने प्राकृतिक वासों की तबाही के विरुद्ध सामूहिक रूप से प्रदर्शन किया है क्योंकि इनकी आजीविका का स्रोत ऐसे विकास से क्षतिग्रस्त हो गया है और रोजगार की तलाश में इन्हें दूसरी जगह जा कर बसने के लिए विवश किया गया है।

उर्वरता (जनन क्षमता) और निर्धनता पर किए अध्ययनों से निर्धनता और अधिक संतान प्राप्ति की प्रवृत्ति के बीच के जटिल संबंध का खुलासा हुआ है। किसी सिद्धांतवादी के लिए नव माल्थस आस्था की तुलना में बच्चों को देयता के रूप में नहीं बल्कि परिसंपत्ति के रूप में देखा जाता है। अधिक संतान प्राप्ति का अभिप्रेरण एक वर्ग से दूसरे वर्ग में भिन्न है। भूमिहीन किसान जो शारीरिक श्रम पर निर्भर हैं; वे अधिक संतान की प्राप्ति चाहते हैं। उस संदर्भ

में तब अति आबादी निर्धनता का कारण नहीं है बल्कि शायद एक संकेत है। उनके लिए अधिक संतान उनकी दरिद्रता का कारण नहीं है बल्कि उनकी तरफ से लिया गया परिकलित और तार्किक आर्थिक निर्णय है। आई एल ओ के आंकड़ों के अनुसार 1995 में ऐसे 250 मिलिन बच्चे थे जो अपने जीवन यापन के लिए 4 से 14 वर्ष की आयु से ही काम करने में लगे हुए थे और इनमें से 50 फीसदी पूर्णकालिक रोजगार में जुटे हुए थे (बैंदरेज 1997: 159)। विश्व विकास रिपोर्ट 1984 इस तर्क को थाईलैंड, दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया और तुर्की में किए अपने परिणामों से और सुदृढ़ बताते हुए इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि इन देशों में बच्चों को एक तरह का निवेश माना जाता है और वह भी ऐसे व्यक्तियों के रूप में जो भविष्य में अपने माता-पिता की देखरेख करेंगे। बच्चों पर इतनी अधिक निर्भरता इस बात को स्पष्ट करती है कि तीसरी दुनिया में, इस निवेश के अलावा संस्थागत सहयोग संरचनाओं कल्याणकारी कार्यक्रमों का अभाव था और इनका असर अधिक प्रभावशाली नहीं था। स्पष्ट रूप से आबादी पर एकदेशीय केंद्रबिंदु निर्धनता को स्पष्ट नहीं कर सकता या तीसरी दुनिया में इसकी व्यापकता का निवारण नहीं कर सकता।

बॉक्स 15.2: मिथक और तथ्य

मिथक: मुस्लिम अपने धर्म की वजह से परिवार नियोजन के व्यवहार को नहीं अपनाते।
तथ्य: इस्लाम में परिवार नियोजन की मनाही नहीं है। विभिन्न देशों के बहुत से उलेमाओं ने दरअसल पहले से ही 'फतवा' जारी किया हुआ है जिसमें उनका कहना है कि चिकित्सीय और आर्थिक कारणों की वजह से परिवार नियोजन के विविध स्थायी तरीकों को अपनाने की अनुमति है। तुर्की और इंडोनेशिया जैसे इस्लामिक देशों में उदाहरणार्थ परिवार नियोजन विधियाँ काफी लोकप्रिय हैं। तुर्की में 63% और इंडोनेशिया में 48% आबादी गर्भ निरोधक विधियों को अपनाएं हुए हैं।

इस्लाम में माँ के स्वास्थ्य की सुरक्षा वाले मामलों को छोड़ कर बाकी हर तरह के मामले में गर्भ धारण के 120 दिनों के बाद गर्भपात कराने की मनाही है।

(स्रोत: फैक्ट्स अगैंस्ट मिथस 1993)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

अति आबादी के मुद्दे के साथ-साथ अन्य कारक जिस पर चर्चा करने की आवश्यकता है, वह हैं: विकासशील देशों में शिशु मृत्यु दर और उर्वरता दर अर्थात दोनों का एक साथ उच्च पाया जाना। इसके छिपे कारणों का विश्लेषण इन बातों के संरचनात्मक कारकों को खोल कर सामने रखता है। महिलाओं की निम्न स्थिति, उचित पोषण का अभाव और निजी स्वास्थ्य शिशु मर्त्यता की उच्च दर के सामान्य कारण पाए गए हैं, शिशु मर्त्यता सिर्फ जन्म के पहले वर्ष वाले बच्चों की मृत्यु को ही पंजीकृत करती है जबकि ऐसे भी बहुत से बच्चे हैं जो जन्म के पहले वर्ष के बाद भी जीवित रहते हैं लेकिन उचित पोषण और देखभाल के अभाव में मर जाते हैं। पितृसत्तात्मक मूल्यों से प्रभावित व्यवस्था में जहाँ लड़के को अधिक महत्व दिया जाता है और महिलाओं को सिर्फ उनके जनन क्षमता के आधार पर ही पहचाना जाता है, वहाँ अधिक संतान होने का अभिप्रेरण संरचनात्मक है। ऐसी स्थिति में बच्चे को जन्म देने या न देने के निर्णय का अधिकार महिलाओं के पास नहीं होता या उनमें ऐसी शक्ति नहीं होती कि वे ऐसी व्यवस्था में स्वीकार किए जाने के उद्देश्य में अपनी नारीत्व वाली भूमिका का प्रयोग कर सकें।

महिलाओं की उर्वरता को नियंत्रित करने के लिए गर्भ निरोधक या जन्म नियंत्रण की अन्य तकनीकों का दुरूपयोग किया गया है। इस तरह अपनी जनन क्षमता को नियंत्रित करने का अधिकार महिलाओं को प्रदान करने की बजाय जन्म नियंत्रण तकनीकों महिलाओं की देह को नियंत्रित करने के साधनों को प्राप्ति की गई है। इस बिंदु पर समग्र भारत में गैर कानूनी

और निजी लिंग निर्धारण क्लीनिकों पर ध्यान केंद्रीत किया गया है। बालिका शिशुहत्या और बच्चों को जन्म न देने के लिए गर्भावस्था की समाप्ति कराना एक सामान्य व्यवहार बन गया है। इसी तरह चीन में 1980 के आरंभ में बालिका शिशु हत्या पुनरूत्थान और बच्चों को अकेले छोड़ देना जैसी बातों को सरकार के परिवार नियोजन कार्यक्रम द्वारा उत्पन्न दबाव का कारण बताया गया। डर था कि बालिका शिशु की संख्या में होने वाली कमी से महिलाओं के प्रति कई अन्य शोषणात्मक व्यवहारों को अपना लिया जायेगा जैसे शिशुओं के जन्म पर ही उनकी सगाई कर देना और यौन और आर्थिक दासता के नये किस्मों की पेशकश।

पहले से तीसरी दुनिया को प्रौद्योगिकी अंतरण की राजनीति पर भी वाद-विवाद हो रहा है। विकासशील जगत में पहले जगत की बहुत सी पुरानी (निरर्थक) प्रौद्योगिकियों के लिए कूड़ा घर आबादी के प्रति चिंता और अब एच आई वी/एड्स को या बाजार उत्पन्न करने के चक्करदार साधनों के रूप में भी देखा गया है। ऐसे परिदृश्य में क्या जन्म को नियंत्रित करना और आबादी को घटोतरी करना ही पर्याप्त है। क्या यह जरूरी नहीं कि जन्म नियंत्रण प्रौद्योगिकियों के इर्दगिर्द घूमते नैतिक मुद्दों पर भी ध्यान केंद्रीत किया जाये? यदि आप चाहते हैं कि परिवार नियोजन तकनीकें और जन्म नियंत्रण उपाय सार्थक सिद्ध हो तो महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक दशाओं को बेहतर बनाना होगा। महिलाओं की जननी की भूमिकाओं पर ध्यान केंद्रित करके माँ के रूप में उनसे जो उम्मीद की जाती है या ऐसी जो बाध्यताएं उनके जिम्मे हैं उन पर जब खुलकर बातचीत की जाती है तो महिलाओं की उत्पादनशील क्षमताओं पर इस समय ध्यान नहीं दिया जाता।

चिंतन और कार्रवाई 15.2

राज्य की आबादी नियंत्रण नीति किस प्रकार समाज में महिलाओं की स्थिति को प्रभावित करती है?

MAADHYAM IAS

15.4 भारत: आबादी अनुभव और विकास संबंधी चिंता के मुद्दे

भारत 1952 में सरकारी तौर पर परिवार नियोजन पर राष्ट्रीय कार्यक्रम को अपनाने और आबादी संबंधी समस्याओं को मान्यता देने में पहल करने वाले देशों में से एक है। स्वतंत्रता से पहले ही 1930 के आसपास भारत में बढ़ती आबादी पर चिंता व्यक्त की जाने लगी थी। 1881 से 1931 के बीच में भारत की आबादी 27.7 मिलियन से 279.0 मिलियन हो गई और 1931 और 1940 के बीच में यह बढ़ कर 279.0 मिलियन से 318.7 मिलियन हो गई। यह असाधारण बढ़ोतरी थी। पहले दशक में 10 फीसदी से बढ़ कर अगले दशक में 14 फीसदी हो गई। यह अभूतपूर्व किस्म की वृद्धि थी। इसका मुख्य कारण था; महामारी और भुखमरी जैसी स्थितियों को नियंत्रित करने के उपायों पर ध्यान देना। अंग्रेजी सरकार की तुलना में सामाजिक सुधारकों, बुद्धिजीवियों और कांग्रेस दल के सदस्यों ने बढ़ती आबादी पर अधिक चिंता व्यक्त की। अंग्रेजी सरकार इस मुद्दे को उठाने में काफी सजगता बरत रही थी क्योंकि उन्होंने ब्रिटेन में जन्म नियंत्रण पर लोगों की प्रतिक्रिया को अपनी आँखों से देखा था और इस मुद्दे पर अब दुबारा वे भारतीयों में किसी तरह की बेचैनी या व्याकुलता की स्थिति उत्पन्न नहीं करना चाहते थे।

महात्मा गाँधी की अगुआई में अधिकांश कांग्रेस कार्यकर्ता जन्म नियंत्रण संबंधी उपायों के विरूद्ध थे। गर्भनिरोधकों के प्रयोग को पाप माना गया। इसे लिंग की स्वाभाविक भूमिका के विरूद्ध माना गया। लेकिन ऐसे बहुत से नेतागण, बुद्धिजीवी और भारतीय सिविल सेवा के प्रशिक्षणार्थी जो इग्लैंड जा चुके थे, वे माल्थस सिद्धांत से भलीभांति अवगत थे और उनके विचार में भारत में अति आबादी और निर्धनता का कारण युद्ध, सूखा और महामारियों आदि का पूरा खतरा बना हुआ था। 1929 में जल्द से जल्द नव-माल्थस लीग की स्थापना की

गई। लीग ने 'द मद्रास बर्थ कन्ट्रोल बुलेटिन' नामक जर्नल प्रकाशित करना शुरू किया। यह मुंबई में पहली बार हुआ जब पहली बार जन्म नियंत्रण को आबादी नियंत्रण के साधन के रूप में नहीं देखा गया बल्कि इसे महिलाओं को बारंबार प्रसव पीड़ा से न गुजरने और अवांछित गर्भपातों से छुटकारा पाने और महिलाओं के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने की विधि के रूप में देखा गया। प्रो. आर. डी. कार्टे ने मुंबई में महिलाओं के अधिकारों के बारे में जन को जागृत करने और जन्म नियंत्रण के बारे में जन को शिक्षित करने का जीव पर्यंत मिशन शुरू किया। बाद में 1949 में गठित भारत परिवार कल्याण संघ के वे सदस्य भी बनें। 1935 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन ने थिरूवनंतपुरम (केरल) में आयोजित अपनी वार्षिक सभा में जन्म नियंत्रण के मुद्दे को भी उठाया और समाज में महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने के नजरिए से जन्म नियंत्रण के मुहिम को कायम रखने का संकल्प अपनाया।

बंगाल में पड़ने वाले अकाल में जहाँ 1.5 मिलियन लोग भुखमरी से मर गए थे, उस पर जब छानबीन की गई तो अर्थव्यवस्था पर बढ़ती आबादी के प्रभाव और निर्धनता को इसका मुख्य कारण पाया गया। इसी तरह 1949 की भोरे समिति ने भी संचारी रोगों की रोकथाम और लोक स्वास्थ्य और स्वच्छता के मुद्दों को आबादी नियंत्रण से जोड़ा। स्वतंत्रता के बाद दोनों रिपोर्टों के मिलेजुले रूप से परिवार नियोजन कार्यक्रम का आधार गठित किया गया और इसे भारत की पंच-वर्षीय विकास योजनाओं में भी शामिल किया गया। पहली पंच वर्षीय योजना (1951-1956) में कुछ इस तरह भावनाओं को स्पष्ट किया गया; जन्म दर को उस सीमा तक कम करना ज़रूरी है जहाँ आबादी को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अपेक्षाओं के अनुकूल वाले स्तर पर कायम किया जा सके (श्रीनिवासन 1995: 30)। इसमें यह बात स्पष्ट थी कि असल मंशा सिर्फ आबादी को घटाना ही नहीं थी बल्कि ऐसे स्तर पर आबादी वृद्धि को समुचित भी बनाना था जहां वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के तालमेल में कायम रहें। लेकिन आबादी नियंत्रण को एक स्वतंत्र कार्यक्रम के रूप में आगे बढ़ाया गया और जो विकास और सामाजिक बदलाव से संबंधित चिंता के मुद्दों से अलग मुद्दा था।

पहली और दूसरी (1956-61) योजना में कोई भी जनसांख्यिकीय लक्ष्यों या संख्यात लक्ष्यों को निर्धारित नहीं किया गया था और लोगों से परिवार नियोजन सेवाओं का लाभ उठाने पर क्लीनिक जाने की आशा की जा रही थी। जन्म नियंत्रण की डाइअफ्रैम, कान्डोम, वैजीनल फोम गोलियों जैसी नियमित विधियों को प्रदान करने के अलावा नसबंदी सेवाएं भी प्रदान की गई। तीसरी योजना (1961-66) ने क्लीनिक-उन्मुख उपागम की बजाय विस्तार-शिक्षा उपागम को आगे किया जो कि बजाय सरकारी क्लीनिकों में जा कर परिवार नियोजन की बातों को समझने का इंतजार करने के लोगों को जन्म नियंत्रण का संदेश देने पर लक्षित थी। जन को दिए जाने वाले संदेश में छोटा परिवार अपनाने पर जोर था जो कि न केवल महिलाओं के स्वास्थ्य को सुधारने और अपने बच्चों को बेहतर भविष्य देने की दृष्टि से एक समझदारी भरा निर्णय था बल्कि स्वस्थ और खुशहाल देश के निर्माण के लिए भी जरूरी था। परिवार नियोजन कार्यक्रम को सरकारी तौर पर लोक स्वास्थ्य विभाग के भाग के रूप में गठित किया गया और परिवार नियोजन विधियों को अपनाने के लिए ग्रामीणों को प्रेरित, सूचित और इस ओर उनका रूख मोड़ने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में ए.एन.एम. की नियुक्ति की गई। चौथी योजना (1969-74) में नसबंदी के लक्ष्यों को निर्धारित किया गया और लक्ष्यों की पूर्ति के लिए लोगों के आप्रेशन के लिए शिविर लगाए गए। यद्यपि 61 फीसदी लक्ष्य की प्राप्ति कर ली गई थी लेकिन फिर भी जनसंख्या वृद्धि उसी दर पर बढ़ती रही जिसने नीति निर्माताओं और प्रशासकों को उलझन में डाल दिया।

पांचवी योजना (1974-79) थी जब राष्ट्रीय जनसंख्या नीति (1976) को सूत्रबद्ध किया गया। परिवार नियोजन लक्ष्यों की पूर्ति करने में स्वास्थ्य विभाग की संगठनात्मक संरचना को बेहतर बनाने और इस विभाग की कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए सामूहिक प्रयास किए गए। सरकारी

कार्यक्रमों, ग्राम और शहरी केंद्रो को नसबंदी के लिए निशाना बनाया गया। इस मुहिम के तुरंत बाद आपात स्थिति की घोषणा, इस अभियान से जैसा कि बहुत से विश्लेषक मानते हैं, यह आबादी कम करने का निर्बाध और आवेशयुक्त पहलू था। आपातस्थिति ने लोगों के मन में बलपूर्वक नसबंदी कराने का डर पैदा कर दिया और जन्म नियंत्रण के संदर्भ में लोगों के मन से डर को दूर करने के लिए नव निर्वाचित जनता सरकार ने इस संदर्भ में अपना नज़रिया बदल दिया। इस सरकार ने 'परिवार नियोजन' की बजाय 'परिवार कल्याण' शब्द को अपनाया ताकि लोगों को कार्यक्रम में प्रभाविता की झलक मिले। अब जोर था लोगों को इस विषय पर शिक्षित करने के उपरांत उन्हें परिवार कल्याण उपायों को अपनाने के लिए प्रेरित करना। 1976 नीति की बहुत सी सिफारिशों को कभी भी अपनाया नहीं गया। जैसे लड़के और लड़कियों की विवाह की उम्र को क्रमश: 21 और 18 कर दिया गया था। छठी योजना (1980-85) ने कुछ दीर्घकालिक और अंशकालिक लक्ष्यों को रखा जो कि सातवीं योजना (1985-91) में भी कायम रहे। दीर्घकालिक लक्ष्यों ने परिवार के आकार और जन्म दर और शिशु मर्त्यता और मृत्यु दर को कम करने पर ध्यान केंद्रित किया जबकि अंशकालिक लक्ष्य में आई यू डी (Intra-Uterine) युक्तियों और अन्य परंपरागत गर्भविरोधकों के प्रयोग और नसबंदी को बढ़ावा देना था।

इन योजनाओं ने दर्शाया कि इस संदर्भ में जिन कानूनों को बनाया गया था या जिन जन्म नियंत्रण संबंधी कार्यक्रमों को लागू किया गया था वे वांछित परिणाम देने में समर्थ नहीं थे। आबादी पहेली के गूढ़ अध्ययन से पता चलता है कि देश में निर्धनता के स्तर और आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए जिन उपायों को साथ में अपनाया गया था वे व्यावहारिकता में कभी लागू ही नहीं किए गए। ऐसे अधिकांश उपाय कागज़ी रूप ले कर ही रह गए और सभी के लिए रोजगार की प्राप्ति और शिक्षा और स्वास्थ्य और जल और स्वच्छता की नियमित बुनियादी सेवाओं को प्रदान करके लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना और इसके साथ-साथ बिना दिक्कत के इन सेवाओं की प्राप्ति के लिए जन के सामर्थ्य को सुदृढ़ बनाया अर्थात् ये सभी ऐसी बाते हैं जिनकी प्राप्ति अभी की जानी है। देश के बाकी हिस्सों की तुलना में भारत के उत्तरी राज्यों में आबादी की उच्च वृद्धि दर पायी गई है। बड़ी दिलचस्पी की बात है कि केरल एक ऐसा राज्य है जिसकी उर्वरता दर में घटोतरी हुई है लेकिन फिर भी वह देश के आर्थिक रूप से सर्वाधिक पिछड़े राज्यों में से एक हैं। केरल अनुभव दर्शाता है कि आबादी नियमन के लिए किस प्रकार आर्थिक वृद्धि ही सिर्फ सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त नहीं है। दरअसल कम्युनिस्ट वचस्व पश्चिम बंगाल राज्य को महिला साक्षरता पर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण केरल जैसी सफलता नहीं मिली है।

MAADHYAM IAS way to achieve your dream

गोवा, केरल और तमिलनाडु जैसे राज्यों का विश्लेषण जिसने आबादी वृद्धि में घटोतरी को पंजीकृत किया है, लेकिन इसके लिए कई अन्य असंबद्ध कारणों पर भी प्रकाश डाला है। गोवा, चर्च की ठोस मौजूदगी के बावजूद परिवार नियोजन अभिप्रचार के कभी विरूद्ध नहीं रहा। केरल की भांति इस राज्य ने भी हमेशा महिला साक्षरता के उच्च स्तर को दर्शाया है। इस राज्य में महिलाओं की विवाह की उम्र, देश के बाकी हिस्सों की तुलना में उच्च है। पिछले दो दशकों से केरल में कम्युनिस्टवाद के वचस्व और सुदृढ़ कार्यकारी आंदोलन, आर्थिक और सामाजिक बदलाव लाने के योग्य थे। भू सुधार और कृषि और संगठित क्षेत्रों में न्यूनतम वेतन का विनियमन और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए और निर्धनता के स्तरों में घटोतरी लाने के लिए प्राथमिक और उच्चतर शिक्षा को विशेष महत्व देकर और उर्वरता की दर के नियमन के लिए अनुकूल दशाओं और आबादी वृद्धि में घटोतरी की प्राप्ति की जा सकी।

तमिलनाडु के अनुभव परिवार नियोज़न कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने में मजबूत नौकरशाही की भूमिका और राजनीतिक इच्छाशक्ति का खुलासा करते हैं। सेल्फ रिस्पेक्ट मूवमेंट के

लिए सुप्रसिद्ध परियार की अगुआई में 1920 में जाति महिलाओं की स्थिति और शिक्षा और गर्भनिरोध उपायों जैसे मुद्दों पर उनके ठोस आधारभूत विचारों के चलते जन्म नियंत्रण कार्यक्रमों को लागू करने के लिए राजनीतिक और सामाजिक वातारण पहले से ही बना लिया गया था। तमिलनाडु में परिवार नियोजन कार्यक्रमों में नौकरशाही की भूमिका पथ प्रदर्शक की रही और राज्य में नौकरशाही ने विस्तृत मातृ और बाल कल्याण कार्यक्रम विकसित किया। राज्य 'कैम्प अैप्रोच' को भी क्रमबद्ध ढंग से संस्थागत रूप दिया गया। जिला स्तर पर भी कार्यक्रम को विकेंद्रीकृत किया गया और इसे जिला प्रशासकों की विशेष जिम्मेवारी बनाया गया। कार्यक्रम में गर्भनिरोधक सेवाओं के बारे में विस्तार या अनुदेशों और शिक्षण या जागरूकता निर्माण के घटकों को शामिल किया गया और ऐसे व्यक्तियों के लिए नसबंदी (वेस्कटोमा) आप्रेशन कराने के बाद उसकी देखभाल संबंधी सेवाओं को भी शामिल किया गया। अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा वित्तपोषित मिड डे मील कार्यक्रम जो कि 9 मिलियन से भी अधिक स्कूली बच्चों को खाना दिए जाने पर लक्षित हैं और ऐसी अंतर्राष्ट्रीय पहलों से ग्रामों में दो सौ हजार से भी अधिक महिलाओं को रोजगार देने वाले ऐसे कार्यक्रमों ने कार्यक्रम के लिए सामूहिक आधार बनाने की पहल में सहायता भी की।

स्पष्ट रूप से उर्वरता और आबादी नियमन की आपूर्ति उन्मुख सेवाओं को इन सेवाओं के लिए मांग के सिद्धांत द्वारा पूर्ण बनाया जाना चाहिए। संबद्ध नागरिकों, संगठनों और सरकार द्वारा उर्वरता नियमन की मांग या अभिप्रेरण को सृजित किया जाना चाहिए। धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट है कि आबादी नियंत्रण का लक्ष्य-उन्मुख कार्यक्रम अधिक विस्तृत नहीं है और निर्धनता, निरक्षरता और खराब स्वास्थ्य को कायम रखने वाली दशाओं के संदर्भ में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जैसे विस्तृत मुद्दों पर ध्यान केंद्रित नहीं करता। आबादी नियंत्रण के किसी भी नीति संबंधी ढांचे को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समानता के साथ-साथ पर्यावरण हितैषी आर्थिक वृद्धि के लिए भी अनुकूल दशाएं उत्पन्न करनी होगी। नौकरशाही सक्षमता और अच्छा शासन, स्वास्थ्य सेवाओं की सफल वितरण पद्धति का भी आधार है। जब तक इस आबादी समस्या के लिये बहु कांटेदार उपागम को अपनाया नहीं जाता और पूरी ईमानदारी से उसे लागू नहीं किया जाता तब तक आबादी वृद्धि को नियंत्रित करना यदि असंभव नहीं भी है तब भी मुश्किल तो है ही। भारत की 1994 की राष्ट्रीय आबादी नीति इस नजरिए से खुल का निर्धन-समर्थक, प्रकृति-समर्थक और महिला आबादी समर्थक कार्यक्रमों पर अपना तर्क देती है कि लोग स्वयं स्रोत होने की बजाय आबादी समस्या से जूझने में सक्रिय भागीदारों के रूप में काम करते हैं। भारतीय सरकार द्वारा विकास के लिए प्रशासन के निम्नतम स्तर पर नीतियों को विकेंद्रीकृत करना और स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लागू करने में गैर-सरकारी संगठनों और ग्राम परिषदों के चयनित प्रतिनिधियों को शामिल करके और साथ ही साथ वैकल्पिक चिकित्सयी पद्धतियों और स्वास्थ्य वितरण पद्धतियों को सरकार की मुख्यधारा में शामिल करके विकास और आबादी के लिए चौ तरफा प्रहार करने वाले उपागम को विकसित करने का प्रयास किया गया है। हालांकि नीतिगत बदलावों को सुदृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति और सामाजिक उतरदायित्व के सहयोग से लागू किया जाना चाहिए।

MAADHYAM IAS

चिंतन और कार्रवाई 15.3

भारत के किन्हीं दो राज्यों का चयन कीजिए। निम्नलिखित को ध्यान में रखते हुए 1991 और 2001 की जनगणना से इन राज्यों पर आंकड़े एकत्र कीजिए।

क) ग्रामीण, शहरी, स्त्री और पुरुष की आबादी;

ख) ग्रामीण, शहरी, स्त्री और पुरुष की साक्षरता; और

ग) ग्रामीण, शहरी, स्त्री और पुरुष संबंधी कार्य सहभागिता।

इन आंकड़ों का तालिकाबद्ध तरीके से व्यवस्थित कीजिए और निम्नलिखित प्रश्नों को ध्यान में रख कर इन राज्यों में इनसे उत्पन्न सह संबंधों की तुलना कीजिए:

क) जेंडर के मद्देनज़र इन राज्यों में आबादी वृद्धि का प्रतिरूप क्या है?

ख) क्या साक्षरता और आबादी वृद्धि के बीच कोई संबंध है?

ग) कार्य सहभागिता और आबादी वृद्धि के बीच क्या संबंध है।

15.5 सारांश

इस इकाई में जनसंख्या वृद्धि के मुद्दे को समझने में आंकड़ों से परे जाने का प्रयास किया गया है। आबादी नियंत्रण का मुद्दा सदैव वादविवादों से घिरा रहा है। पहला अनुभाग दर्शाता है कि शुरूआत में आबादी संबंधी वादविवाद किस प्रकार पश्चिमी जगत में होने वाले सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ा हुआ था। आबादी घटोतरी और धार्मिक रूढ़िवादिता और शहरी केंद्रो में जरूरत से अधिक भीड़भाड़ और श्रमिकों की उपलब्धता आबादी वृद्धि पर होने वाले वादविवादों को जटिल बनाता है। यहां हमारा मुख्य प्रयास आबादी के मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करते समय विशिष्ट रणनीतियों को अपनाने में सैद्धांतिक स्थितियों के महत्व को दर्शाना है।

दूसरा अनुभाग वाद-विवाद को थोड़ा आगे सरकाता है क्योंकि इसका संबंध द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तीसरे जगत के नव स्वतंत्र राष्ट्रों और उच्च देशों से है। अति आबादी की पहचान तीसरे जगत में पिछड़ेपन और निर्धनता के मुख्य कारण के रूप में की गई है। जब तीसरी दुनिया के देशों को लगा कि आर्थिक विकास से आबादी की दर में घटोतरी होगी तो उन्नत देशों ने इस राय पर अपनी हामी नहीं भरी। विशेष रूप से 'लिमिट टू ग्रोथ' परिकल्पना के परिणामस्वरूप तीसरी जगत पर आबादी नियंत्रण का दबाव और अधिक तेज कर दिया गया। इस परिकल्पना का तर्क है कि पृथ्वी लंबे समय तक अपने सीमित संसाधन के आधार पर निरंतर बढ़ती आबादी को कायम रखने के योग्य नहीं होगी। अनुभाग महिलाओं पर जनसंख्या राजनीति के निहितार्थों की जाँच भी करता है।

MAADHYAM IAS way to achieve your dream

इकाई का तीसरा अनुभाग भारत में आबादी पर विस्तृत नीति अभिविन्यासों का पता लगाता है और देश के विभिन्न भागों में कार्यक्रमों की सफलता और विफलता के लिए कारणों को समझने के लिए केस अध्ययन प्रस्तुत करता है। विश्लेषणों से विस्तृत संरचनागत और सामाजिक सुधारों की भूमिका पता चलता है और इनकी सफलता के निहित कारणों के रूप में सक्षम सरकारी वितरण पद्धतियों का पता चलता है। इन केस अध्ययनों ने आबादी पर देशव्यापी वादविवाद को अधिक विकसित किया है और इसी वजह से ऐसे कुछ मुद्दों पर नीति स्तर पर गौर किया गया है। यह इकाई आरंभ से मौजूदा स्तर तक ऐसे वाद विवाद का पता लगाती है जहाँ मुख्य नज़रिया ऐसे कुछ मुद्दों परध्यान केंद्रित करने से है जिन्होंने विश्वभर में और साथ ही साथ देश में इसकी वृद्धि और सघनता में अपना योगदान दिया है।

15.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अहमद अजुददीन, डेनियल नोयन और एच.एन. शर्मा (संपा.) 1997, डेमोग्राफिक ट्रांजिशन। द थर्ड वर्ल्ड सिनैरिओ। रावत पब्लिकेशन: जयपुर और दिल्ली।

बंदरेज, अशोक 1997, विमेन, पापुलेशन एंड ग्लोबल क्राइसिस। ए पॉलिटिक्ल इकौनोमिक्स ऐनालेसिस 'जेड बुक्स' लंदन।

चौबे, पी.के. 2001, पापुलेशन पॉलिसी फार इंडिया। परस्पैक्टिव, इश्यूस एंड चैलेंजिस, कनिष्का पब्लिशर्स, दिल्ली।

शब्दावली

परहितवाद (Altruism) : इस शब्द का अर्थ निजी लाभ की अपेक्षा किए बिना दूसरों की सहायता करना है। प्रसिद्ध सामाजिक चिंतक दुर्खीम ने परहितवाद और परहितवादी आत्मघात के बारे में विचार से चर्चा की है। उनके अनुसार परहितवाद रचना का हिंसक और स्वैच्छिक कार्य है जिससे कोई निजी लाभ नहीं। समाज में व्यक्ति का एकीकरण बहुत गहरा हो और सामूहिक चेतना भी बहुत प्रबल हो, तो यह परहितवादी आत्मघात की स्थिति होती है।

वैराग्यवृत्ति (Ascetism) : यह आध्यात्मिक जीवन को मजबूत बनाने के उद्देश्य से दैहिक-सांसारिक दुखों का त्याग करना है। सतत आत्म-त्याग (self-denial) और आत्म-यातना (self-mortification) के जरिए किया जाता है। दुनिया के अधिकांश प्रमुख धर्मों में वैराग्य का चलन बराबर रहा है। बौद्ध, हिन्दु, इस्लाम, यहूदी, ईसाई इत्यादि सभी धर्मों में विशेष वैरागी पंथों और वैराग्य आदर्शों मिलते हैं। इन धर्मवलंबियों में 'उपवास' वैराग्य का एक सबसे आम चलन है।

भुगतान संतुलन (Balance of Payment) : यह दो देशों के बीच एक वर्ष दौरान हुए लेन-देन के सरकारी आकलनों का एक रिकार्ड है। यह वस्तुओं और सेवाओं के आयात निर्यात और हस्तांतरण जैसे प्रेषित धन (remittance) और देश में आने वाली और बाहर जाने वाली पूंजी (कैपिटल एकाउंड में होने वाले लेन-देन) से उत्पन्न होने वाले बाहरी लेन-देन का कुल योग है।

MAADHYAM IAS

बर्बरता/बर्बर-अवस्था (Barbarism) : असभ्य या गंठारु अवस्था या दशा तौर-तरीके में अशिष्टता कला, विद्वता, साहित्य इत्यादि का ज्ञान न होना।

जैवविविधता (Bio-diversity) : यह शब्द धरती पर विद्यमान नाना प्रकार के पारिस्थितिक तंत्रों, पादय और जंतु प्रजातियों और आनुवांशिक भिन्नताओं के लिए प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि धरती पर 50 लाख से लेकर 3 करोड़ प्रजातियां विद्यमान हैं।

नौकरशाही (Bureaucracy) : यह सरकार और उसकी संस्थाओं को एक सांगठनिक ढांचे के रूप में व्यक्त करने की समाजशास्त्रीय अवधारणा है। इस ढांचे की विशेषता, नियमित प्रक्रिया, उत्तरदायित्व का बंटवारा, क्रमपरंपरा (hierarchy) और अवैयक्तिक संबंध हैं। वेबर के अनुसार आधुनिक नौकरशाही की विशेषताओं में इसकी अवैयक्तिकता, प्रशासन के साधनों का सकेंद्रण, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को दूर करना और सत्ता की एक ऐसी प्रणाली का कार्यान्वयन है जो व्यावहारिक दृष्टि से अपरिवर्तनीय होती है।

सभ्यता (Civilisation) : मानव समाज में बौद्धिक, सांस्कृतिक और भौतिक विकास की एक उन्नत अवस्था जिसमें कला और विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति देखने में आती है और जटिल

राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का आविर्भाव होता है। इसमें लेखन समेत अभिलेख रखने का काम भी होता है।

सामूहिक संपत्ति संसाधन : (Common Property Resources) सामाजिक और कानूनी संस्थाओं के माध्यम से उपयोग में लाए जाने वाले प्राकृतिक संसाधन। ये संस्थाएं संसाधनों से होने वाले लाभों का बंटवारा सुनिश्चित करने के अलावा उनके उपयोग के लिए नियम कानून भी लागू करती हैं। ऐसे प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन सामुदायिक होता है। यह ''मुक्त पहुंच'' वाले संसाधनों से भिन्न है।

सांझी जमीन/गोचर : (Commons) यह भूमि का ऐसा टुकड़ा है जो प्राचीन काल से लोगों को अपने पशु चराने के लिए उपलब्ध रही है। यह ऐसा संसाधन है जिसे एक समुदाय के सभी सदस्य उपयोग कर सकते हैं। समुदाय का प्रत्येक सदस्य इसका स्वामी होता है। समुदाय यह मान सकता है कि एक समय में सिर्फ कुछ ही सदस्य उसका उपभोग कर सकते हैं। साझी जमीन का सरूप भिन्न समुदायों में भिन्न हो सकता है, पर उसमें अक्सर सांस्कृतिक और प्राकृतिक संसाधन शामिल हो सकते हैं। साझी जमीन एक सीमाबद्ध) मगर आपूरणीय संसाधन है, जिसको सुलभ बनाए रखने के लिए उसका प्रयोग जिम्मेदारी से करना जरूरी है।

तुलनात्मक लाभ : (Comparative Advantage) यह मुक्त बाजार सिद्धांत का घटक है। इसके अनुसार अगर कोई देश किसी माल को बाहरी देशों से सस्ते में बना सकता है और उसे उन देशों को दे जो उसे सस्तें में नहीं बना सकते तो उससे संपदा का विस्तार होगा और हर कोई लाभ में रहेगा। इस सिद्धांत का प्रतिपादन डेविड रिकार्डो नामक अर्थशास्त्री ने किया था। उन्होंने इसे तुलनात्मक लागत नाम दिया। उनका तर्क है कि जो देश ऐसे उत्पादों के लिए व्यापार करता है जिन्हें वह दूसरे देश से कम कीमत पर प्राप्त कर सकता है तो उसकी स्थिति उससे बेहतर होगी अगर वह उन उत्पादों को अपने घर में बना रहा होता।

अनुषंगिक (Concomitant) : परस्पर संबंद्ध तथ्य या परिघटनाएं। ऐसी सामाजिक घटना या स्थिति जो एक ही समय पर या एक दूसरे के संबंध में घटे।

विसरण (Diffusion) : यह किसी चीज का स्वतः स्फूर्त फैलाव है जैसे कण, ताप या संवेग। सांस्कृतिक विज्ञान में विसरण का तात्पर्य विचारों या कलाकृतियों का एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में फैलाव है।

प्रोक्ति (Discourse) : इस शब्द का प्रयोग डा. ओर्दि्वन रेन ने संप्रेषण कार्य सिद्धांत (Communicative Action Theory) में संवाद के एक विशेष रूप को बताने के लिए किया था जिसमें प्रभावित सभी पक्षों को अपने दावों को पेश करने और उन्हें सामाजिक या राजनीतिक प्रभुत्व से मुक्त परिप्रेक्ष्य में उनकी स्वीकारित जांच करने का समान अधिकार और दायित्व हो। मिकेल

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

फौकॉल्ट (Michel Fancault) प्रोवत्ति को विचारों या ज्ञान की एक प्रणाली के रूप में देखते थे जो एक विशेष शब्दावली में अंकित होती है (जैसे मनोविश्लेषण, नृ-विज्ञान, सांस्कृतिक-साहित्यिक अध्ययन)। फौकॉल्ट के अनुसार एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि इन संवादों का इस्तेमाल कुछ खास लोगों को खास 'प्रभार' में वर्गीकृत कर उन पर अपनी शक्ति के निष्पादन को वैधता प्रदान करने के लिये गया था।

विकास का आर्थिक वृद्धि मॉडल (Economic Growth Model of Development) : विकास का मॉडल जिसका सरोकार एक राष्ट्र-राज्य की आर्थिक वृद्धि से है। इस वृद्धि को सकल राष्ट्रीय/घरेलू उत्पाद (GNP/GDP) और प्रति व्यक्ति आय के रूप में मापा जाता है। विकास का यह मॉडल जहां की संभव हो देश के भीतर और घरेलू संचव संभव न होने पर विदेशी सहायता से पूंजी संचय (Capital accumulation) पर आधारित है और इसकी विशेषता तेज औद्योगीकरण है। आर्थिक वृद्धि की जो राजनीतियां पश्चिमी देशों में सफल हो चुकी थीं, उन्हें नव-स्वतंत्र कम विकसित देशों के लिए भी सुझाया गया। विकास के आर्थिक वृद्धि के मॉडल की एक अवधारणा यह थी कि GNP/GDP में वृद्धि अपने आप निम्न आय वर्गों तक पहुंच जाएगी।

पारिस्थिक तंत्र (Ecosystem) : अन्योयक्रिया करते और परस्पर निर्भर ज़ीव जंतुओं का स्थानीय समूह और वातावरण जिसमें वे रहते हैं और उस पर निर्भर रहते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

समतावादी (Egalitarion) : एक ऐसा सामाजिक गठन जो सभी लोगों को समान मानता है, जिसमें हर व्यक्ति को संसाधन और नेतृत्वकारी गतिविधियों में अन्य का आदर पाने का समान अवसर मिलता है।

पर्यावरण (Environment) : प्राकृतिक पर्यावरण पूरा या एक भौगोलिक क्षेत्र विशेष में प्राकृतिक संसार, जिसमें पादय, जंतु (जिसमें मनुष्य भी शामिल हैं) रहते हैं और क्रियाशील रहते हैं, उसके अम्य तत्वों को प्रभावित करते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं।

पर्यावरणवाद (Environmentalism) : यह ऐसा आंदोलन या सक्रियावाद है जो प्राकृतिक विश्व को मनुष्य की हानिकारक गतिविधियों से बचाने के लिए कम कर रहा है। इसका लक्ष्य पर्यावरण विशेषकर प्रकृति की रक्षा करना या उसकी स्थिति में सुधार लाना है। अक्सर यह जन शिक्षा कार्यक्रम पैरवी, विधान और संधियों के रूप में प्रकट होता है।

बर्हिजात (Escogenous) : इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'एक्जो' (Exo) और 'जेन' (Gen) से हुई है, जिनका अर्थ क्रमशः 'बाहरी' और उत्पादन' है। अतः इसका अर्थ ऐसे कार्य या वस्तु से है जो किसी प्रणाली में बाहर से आई हो। यह अंतर्जात का उलट है जिसका अर्थ ऐसी चीज से है जो प्रणाली के भीतर से जन्मी हो।

जेमिनशाफ्ट और गेजेलशाफ्ट (Gemeinschaft and Gesselschaft) : ये सामाजिक श्रेणियां हैं, जिन्हें सबसे पहले जर्मन समाजशास्त्री फर्डिनैंड टोनीज ने दो सामान्य प्रकार के मानव संबंधों को बताने के लिए प्रयोग किया था। (टोनीज के अनुसार सामान्य प्ररूप शुद्धत: एक संकल्पनात्मक उपकरण है, जिसे तर्क के आधार पर तैयार करना होता है, जबकि मैक्स वेबर के अनुसार आदर्श प्ररूप एक ऐसी अवधारणा है, जो ऐतिहासिक/सामाजिक परिवर्तन के मुख्य तत्वों को उभार के बनती है)। जेमिनशाफ्ट एक प्रकार का समुदाय है, जिसे पारंपरिक समाजों में आम बताया जाता है और जिसे स्थिरता और अनौपचारिक व्यक्तिगत संपर्क से जोड़ कर देखा जाता है। गेजेलशाफ्ट आमतौर पर शहरी औद्योगिक समाजों में पाया जाने वाला संबंध है। अस्थाई और उपयोगितावादी सामाजिक संबंध इस तरह के संबंध की विशेषता हैं।

जेंडर (लिंग) (Gender) : इसका तात्पर्य समाज द्वारा गढ़ी गई और पुरुषों और महिलाओं के लिए प्रदत्त भूमिकाओं और इन भूमिकाओं के फलस्वरूप उपजे समाज द्वारा निर्धारित संबंधों से है। ये भूमिकाएं अधिगनित होती हैं, कालांतर में बदल जाती हैं और संस्कृति के भीत्तर और विभिन्न संस्कृतियों में इनके स्वरूप में भारी अंतर हो सकता है। सामाजिक विश्लेषण आकलन के लिए जेंडर एक मुख्य प्रस्थान बिंदु है। स्त्री-पुरूष संसाधनों और क्रियाकलापों में किस तरह भागीदारी करते हैं, लाभान्वित होते हैं और उन पर अधिकार रखते हैं, इसका निर्धारण करने वाली सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक शक्तियों का समझना जरूरी है। इस तरह जेंडर (लिंग) विशेष संबंधी सीमाओं, खतरों और अवसरों को प्रकाश में लाया जा सकता है।

MAADHYAM IAS

सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) : किसी राष्ट्र की सीमाओं और एक खास अवधि के भीतर निर्मित सभी वस्तुओं और सेवाओं का आर्थिक (मौद्रिक) मूल्य।

प्राधान्य/आधिपत्य (Hegemony) : किसी एक समूह का बलपूर्वक या बल के बिना दूसरे समूह पर इस हद तक प्रभुत्व जमा लेना कि प्रभावी पक्ष अपने लाभ में व्यापार/लेन-देन की शर्तें थोप सकता है। व्यापक स्तर पर सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य वैषम्य आ जाता है और वे प्रभावी समूह के पक्ष में आ खड़े होते हैं। अधिपत्य के फलस्वरूप कुछ सांस्कृतिक विश्वासों मूल्यों और चलनों का सशक्तीकरण होता है, तो अन्य का उनमें मिल जाती हैं या उनका आंशिक अपवर्जन हो जाता है।

मानवाधिकार (Human Rights) : मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं लोग जिन्हें इसलिए पाने के अधिकारी हैं कि वे मनुष्य हैं, भले वे किसी भी राष्ट्र, नस्ल, जातीयता, जेंडर (लिंग) या धर्म के हों। ये ऐसे बुनियादी मानक हैं जिसके बिना लोग गरिमापूर्ण जीवन नहीं जी सकते। किसी व्यक्ति के मानवाधिकारों का हनन का मतलब उसके साथ ऐसे व्यवहार करना है जैसे वह

मनुष्य नहीं हो। मानवाधिकारों की पैरवी करना सभी लोगों के लिए मानव गरिमा की मांग करना है।

तात्कालिकता (Immediacy) : मध्यस्थ ऐजेंसी की कमी। उदाहरण के लिए टेलिवीजन कवरेज की तात्कालिकता।

साम्राज्यवाद (Imperialism) : किसी साम्राज्य या राष्ट्र का दूसरे देशों पर शासन या नियंत्रण थोपने या उपनिवेश और आश्रित देश हासिल करने की नीति। उपनिवेशवाद 1914 में अपनी ऊँचाई पर था, जब दुनिया की 85 प्रतिशत भूमि चंद औपनिवेशिक शक्तियों के नियंत्रण में थी जिनमें अधिकांश यूरोपीय थीं।

आयात स्थानापत्ति (Impart Substitution) : आर्थिक विकास की रणनीति जो आयात की जगह घरेलू उत्पादन को तरजीह देती है। इस सिद्धांत के पैरोकार प्राथमिक उत्पादों की जगह औद्योगिक वस्तुओं के निर्याण के पक्षधर होते हैं। इनका जोर घरेलू उद्योगों की वृद्धि पर रहता है, जिसके लिए उसे प्रशुल्क (tariff) और गैर प्रशुल्क (non-tariff) उपायों के जरिए आयात से बचाना होता है। उनका तर्क है कि कच्चे माल का निर्यात और निर्मित उत्पादों आयात विकासशील देशों की औद्योगिक वृद्धि के लिए अच्छा नहीं है।

अहस्तक्षेप/लेसे-फेअर : लेसे फेअर एक फ्रेंच मुहावरा है जिसका अर्थ किसी चीज को किसी के करने के लिए छोड़ दो, निकल जाने दो ("leave to do, leave to pass") या "चीज़ों को उनके हाल पर छोड़ दो, उनको निकल जाने दो (let things alone, let them pass)। इस मुहावरे का प्रयोग सबसे पहले अठारहवीं सदी के प्रकृति तंत्रवादी (Physiocraf) ने व्यापार में सरकारी हस्तक्षेप के खिलाफ समावेश के रूप में किया था। इस मुहावरे का प्रयोग अब पूर्णत: मुक्त बाजार अर्थ-व्यवस्था के लिए होता है। यह सिद्धांत शुद्धत पूंजीवादी या मुक्त बाजार का दृष्टिकोण लेकर चलता है। इसकी मूल धारणा यह है कि वस्तुओं और सेवाओं मूल्य निर्धारण, उत्पादन और वितरण जैसे निजी आर्थिक फैसलों में कम सरकारी हस्तक्षेप एक बेहतर प्रणाली का निर्माण करेगा। एडमं स्मिथ ने अंग्रेजी भाषा बोलने वाले देशों में लेसे-फेअर आर्थिक सिद्धांतों को लोकप्रिय बनाने में बड़ी भूमिका अदा की हालांकि वे इसके कई पहलुओं के आलोचक भी थे (जैसे व्यापार चलनों से संबंधित सरकारी नियमन का अभाव)।

भूमि-सुधार (Land reforms) : भूमि सुधार जिसे कृषि सुधार भी कहा जाता है, सरकार द्वारा शुरू किया गया या समर्थित कृषि भूमि के स्वामित्व या पुनर्वितरण या हस्तांतरण है। इसका तात्पर्य अक्सर धनाढ्य (कुलीन) भू-स्वामियों की बड़ी बड़ी जोतों (जैसे प्लांटेशन, विशाल रैंच या कृषि व्यापार भूमि) का स्वामी उन लोगों को बनाना है, जो उनमें काम करते हों।

रूपक (Metaphor) : किसी तथ्य या परिघटना का स्पष्ट करने के लिए प्रयोग किया जाने वाला मुहावरा। यह एक अलंकार है, जिसमें

दो चीजों की तुलना प्राय: यह कहकर की जाती है कि अमुक चीज वैसी है या फिर उसके लिए साधारण शब्द की जगह ऐसे शब्द का प्रयोग किया जाता है जो अधिक वर्णनात्मक हो।

मिश्र या मिली-जुली अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) : यह अर्थव्यवस्था पूंजीवाद और समाजवाद का मिला जुला रूप है। कुछ स्रोत मिली-जुली अर्थ-व्यवस्था को परिभाषित करने के लिए 'समाजवाद' की जगह आदेश अर्थ व्यवस्था (Command Economy)। यह ऐसी अर्थ-व्यवस्था है, जिसमें संसाधनों का आबंटन आंशिक रूप से निजी व्यक्तियों और निजी स्वामित्व वाले व्यापारिक उद्यमों के निर्णयों और अंशत: सरकार और सरकारी स्वामित्व वाले उद्यमों के निर्णयों के जरिए होता है। इन्हें क्रमश: निजी (Private Sector) और सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) कहा जाता है। भारत ने स्वतंत्रता होने के बाद मिली-जुली अर्थ-व्यवस्था की नीति अपनायी। 1990 के दशक आरंभ में नई आर्थिक नीति अपनाने के बाद ही आर्थिक नीतियों में बदलाव होने लगा।

मॉडल (Model) : किसी परिघटना का कल्पित (hypothetical) या परीक्षित निरूपण।

राष्ट्र-राज्य (Nation State) : राष्ट्र-राज्य का एक विशिष्ट रूप है, जिसका अस्तित्व एक राष्ट्र विशेष को संप्रभु क्षेत्र प्रदान करने के लिए है। उसे इसी कार्य से वैधता मिलती है। राष्ट्र-राज्य के आदर्श-मॉडल में, जनसंख्या एक राष्ट्र और सिर्फ उसी राष्ट्र को बनाती है। राज्य उसको सिर्फ आयास ही प्रदान नहीं करता बल्कि उसकी और उसकी राष्ट्रीय पहचान की रक्षा भी करता है। एक राष्ट्र राज्य एक संघीय राज्य भी हो सकता है।

MAADHYAM IAS

नवउदारवाद (Neoliberalism) : यह एक राजनीतिक-आर्थिक दर्शन है। 1970 दशक में शुरू हुई। सरकारी नीतियों पर इसके बड़े निहितार्थ रहे और 1980 के बाद से यह दर्शन प्रभावी होता चला गया है। यह दर्शन अर्थव्यवस्था में सरकारी हस्तक्षेप को अस्वीकार करता है। बल्कि यह मुक्त-बाजार विधियों को बढ़ावा देकर उन्नति और सामाजिक न्याय हासिल करने पर जोर देता है। यह व्यापारिक कार्यों को कम से कम अंकुश लगाने की बात करता है।

नई आर्थिक नीति : यह आर्थिक सुधारों की एक प्रणाली है, जो अंशत: बाजारोमुखी है। इसकी स्थापना क्रांतिकारी चिंतक लेनिन ने 1921 में युद्ध साम्यवाद के दौर के बाद पूर्व सोवियतसंघ में की थी। युद्ध साम्यवाद में अनाज की जबरिया उगाही, समूचे व्यापार और उद्योग का राष्ट्रीयकरण, श्रम पर कठोर नियंत्रण वस्तु में भुगतान और वितीय पूंजी की जब्ती शामिल है। इसके और युद्ध की बर्बादी के फलस्वरूप औद्योगिक और कृषि उत्पादन में भारी गिरावट आ गई और लोगों को भारी वचन का सामना करना पड़ा।

अर्थ-व्यवस्था में फिर से प्राण फूंकने के लिए लेनिन ने तब NEP शुरू किया। इस नई आर्थिक नीति (NEP) से सीमित पूंजीवादी प्रणाली की ओर वापसी की शुरूआत हुई। भारत ने नई आर्थिक नीति 1991 में अपनायी। इसका उद्देश्य बाजार में भारत की सार्थिकता को उनत बनाना और निर्यात में वृद्धि दर को तेज करना है। नई आर्थिक नीति का एक और पहलू प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करना और घरेलू भी निवेश को बढ़ाना है। यह बाजारोमुखी है और इसमें सरकारी नियंत्रण ओर हस्तक्षेप कम रहता है।

अल्पतंत्र (Oligarchy) : इस शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों से हुआ है, जिनका अर्थ 'कुछ' और 'शासन' है। अल्पतंत्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है, जिसमें अधिकतर राजनीतिक शक्ति समाज के छोटे से धड़े के हाथों में रहती है, जो धन, सैन्य बल, निर्ममता या राजनीतिक प्रभाव में सबसे अधिक शक्तिशाली होता है। इस धड़े की शक्ति के द्वारा या जनता पर अंकुश लगाकर या उससे राय लेने की जरूरत या उसके प्रति जवाबदेही को खत्म करके कायम रहती है।

अल्पाधिकारवादी (Oligarchic Market) : यह ऐसी बाजार व्यवस्था है जिसमें माल बेचने वाले कुछ गिने-चुने लोग होते हैं। अल्पाधिकार बाजार तब अस्तित्व में आता है जब किसी उद्योग पर कुछ गिनी-चुनी कंपनियों हावी हो जाएं। एक ऐसी स्थिति, जिसमें कुछ ही विक्रेता हों, वह "अल्पधिकारवादी परस्पर निर्भरता" (Oligarchistic interdependence) कहलाती है। अल्पाधिकारवादी बाजार में मूल्य का निर्धारण आपसी सहमति से होता है। इसमें आपूर्ति और मांग की कोई भूमिका नहीं होती। अल्पाधिकार वाद के लिए जरूरी नहीं है कि किसी एक वस्तु विशेष या सेवा विशेष के उत्पादन का नियंत्रण कुछ कंपनियों के हाथ में हो। बल्कि उनके लिए इतना काफी है कि सकल उत्पादन या बिक्री में उनका हिस्सा बड़ा हो।

मुक्त पहुंच संसाधन (Open Access Resources) : सभी को सुलभ प्राकृतिक संसाधन जिनके प्रयोग पर कोई अंकुश नहीं। इनके प्रयोग पर कोई अंकुश न होने के कारण उनके अधिक दोहन की संभावना रहती है।

प्राच्यवाद (Orientation) : इस शब्द का प्रयोग फिलिस्तीनी सांस्कृतिक समालोचक एडवर्ड सैद ने 1978 में प्रकाशित अपनी पुस्तक ओरिएंटैलिज्म (Orientalism) में किया था। प्राच्यवय से उनका तात्पर्य एक ऐसी विचारधारा से है, जिसमें पूर्व या 'प्राच्य' दुनिया के बारे में विभिन्न पश्चिमी संवादों में अवास्तविक छवियां मिथक रच दिए गए हैं। उनके अनुसार पाश्च्य देशों में सभी एशियाई सांस्कृतियों को एक समरूप या एकांगी संपूर्ण इकाई के रूप में देखने और उन्हें एक ऐसे कृत्रिक ढांचे में रखने की गलत प्रकृति है, जो उनकी संस्कृति के उलट है और अपनी संस्कृति को भी उन्होंने

कृत्रिक ढंग से सोचा है। इस सोच का यही मतलब है कि सभी पश्चिमी लोग विवेकी और रेखीय हैं तो सभी एशियाई अविवेकी और त्रिविभ हैं।

प्रतिमान (Paradigm) : यह एक पैटर्न या मॉडल है। यह मान्यताओं, अवधारणों, चलनों और मूल्यों का एक संकलन। समूह है जिसके माध्यम से विशेषकर बौद्धिक जगत वास्तविकता को देखता है।

पितृसत्ता (Patriarchy) : यह एक ऐसा सामाजिक गठन है जिसमें कुल या परिवार पर पिता का अधिपत्य रहता है, पत्नी और बच्चे कानूनन उस पर निर्भर रहते हैं और वंश और उत्तराधिकार पुरुष संतति पर चलते हैं। सामाजिक प्रणाली में पितृसत्ता का अर्थ है समाज के सभी स्तरों पर स्वामित्व और नियंत्रण में पुरुष प्रधानता। समाज ही जेंडर या लिंग जन्य भेदभाव की प्रणाली को चलाने और बनाए रखने का काम करता है। इसमें नियंत्रण प्रणाली को पितृसत्तात्मक विचारधारा के रूप में न्यायसंगत ठहराया जाता है। यह विचारों की एक ऐसी प्रणाली है, जो पुरुष श्रेष्ठता में विश्वास पर आधारित है। इस विचारधारा में कभी-कभी तो यह दावा किया जाता है कि श्रम का जेंडर (लिंग) विभाजन जीवविज्ञान पर आधारित है या इसका आधार शास्त्र हैं।

शिक्षाशास्त्र (Pedagogy) : इसका अर्थ शिक्षकों के द्वारा अधिगम को सुगम बनाने के लिए अपनायी जाने वाली रणनीतियां, तकनीक और नजरिया है। इसकी शाब्दिक परिभाषा बच्चों के पढ़ाने का 'विज्ञान' है। पर इस शब्द को सभी संदर्भों में अध्ययन और अधिगम के अध्ययन के रूप में लिया जाता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

संदर्भ

Agarwal, A. 1992. "What is Sustainable Development", *Down to Earth.* June 15th: 50-51

Agarwal, A. 1995. "Indigenous and Scientific Knowledge: Some Critical Comments", *Indigenous Knowledge and Development Monitor. December. http://www.nuffic.nl/ciran*

Ahmed, Aijazuddin, Daniel Noin and H.N. Sharma (eds.) 1997. *Demographic Transition: The Third World Scenario.* Rawat Publications: Delhi

Albow, M.C. 1968. "Rationality". In Mitchell (ed.) *A New Dictionary of Sociology.* Routledge and Kegan Paul: London

Appadurai, Arjun 1996. *Modernity at Large, Cultural Dimensions of Globalisation.* University of Minnesota Press: London

Apthorpe, R. 1997. "Writing Development Policy and Policy Analysis Plain or Clear: On Language, Genre and Power". In C. Shore and S. Wright (eds.) *Anthropology of Policy: Critical Perspectives on Governance and Power.* Routledge: London

Aron, Raymond 1965. *Main Currents in Sociological Thought.* Basic Books: New York

Bandarage, Asoka 1997. *Women, Population and Global Crisis. A Political-Economic Analysis.* Zed Books: New Jersey

Barnett, T. 1988. *Sociology and Development.* Hutchinson: London

Batliwala, S. 1993. *Empowerment of Women in South Asia: Concepts and Practices.* ASSBAF: Sydney

Baviskar, Amita 1997. "Ecology and Development in India: A Field and its Future", *Sociological Bulletin.* Vol. 46, No. 2, September, pp. 193-207

Beauvoir, Simone de 1949. *The Second Sex.* Penguin: London

Beck, U. 1992. *Risk Society: Towards a New Modernity.* Sage Publications: London

Beck, U. 1995. *Ecological Politics in an Age of Risk.* Polity Press: Cambridge

Bendix, R. 1964. *Nation-building and Citizenship.* Wiley: New York

Benjamin, Walter 2000. *The Work of Art in the Age of Mechanical Reproduction.* http://pixels.filmtv.ucla.edu/gallery/web/julian_scaff/benjamin/benjamin.html, March 8

Bernhard, Glaeser 1997. "Environment and Developing Countries". In Michael Redclift and Graham Woodgate (eds.) *The International Handbook of Environmental Sociology.* Edward Elgar: Cheltenham

Beteille, A. 2000. *Antinomies of Society: Essays on Ideologies and Institutions.* Oxford University Press: New Delhi

Blaney, D.L. and Pasha, M. K. 1993. "Civil Society and Democracy in the Third World: Ambiguities and Historical Possibilities", *Studies in Comparative International Development.* Vol. 28 No. 1: 3-24

Bodenheimer, Jonas S. 1971. "Dependency and Imperialism: the Roots of Latin American Underdevelopment". In Fann, K.T. and D.C. Hodges (eds.) *Readings in U.S. Imperialism.* Porter Sergent: Boston

Bose, Ashish 1989. *From Population to People.* D.K. Publication: Delhi

Bottomore, T.B. 1962. *Sociology: A Guide to Problems and Litterature.* Unwin University Books: London

Boyer, R. 1990. *The Regulation School: a Critical Introduction.* Columbia Press: New York

Braaten, Jane 1991. *Habermas's Critical Theory of Society.* State University of New York Press: Albany

Brokensha, D.D. Warren and O. Werner (eds.) 1980. *Indigenous Knowledge Systems and Development.* University Press of America: New York

Calhoun, Criag etal (eds.) 2002. *Contemporary Sociological Theory.* Blackwell: New York

MAADHYAM IAS

Cambridge, S. (ed.) 1996. *Development Studies: A Reader* E. Arnold: New York

Chambers, R. 1983. *Rural Development: Putting the Last First*. Longman: London

Chambers, R. 1989. *The State and Rural Development: Ideologies and an Agenda for 1990s*. IDS Discussion Paper 169. Institute of Development Studies: Brighton

Chandhoke, N. 1995. *State and Civil Society: Exploration in Political Theory*. Sage Publication: New Delhi

Chandra, Sudhir 1975. Consciousness in Later 19th Century India. Manas Publications: New Delhi

Chaubey, P.K. 2001. *Population Policy for India. Perspectives, Issues and Challenges*. Kanishka Publishers: Delhi

Caldwell, Lynton K. 1990. *International Environmental Policy: Emergence and Dimensions*. Duke University Press: U.S.A.

Cohan, J. L. and Arato, A. 1994. *Civil Society and Political Theory*. MIT Press: London

Cohen, J.M. and Uphaff 1980. "Participation's Place in Rural Development: Seeking Clarity Through Specificity", *World Development*. Vol. 8, No. 30

Collins, P.H. 1990. *Black Feminist Thought: Knowledge, Consciousness and the Politics of Empowerment*. Routledge: London

Coser, L. A. 1996. *Masters of Sociological Thought*. Rawat Publication: New Delhi

Cowen, M .P. and R .W. Shenton 1996. *Doctrines of Development*. Routledge: London

Davis, Kingsley 1949. *Human Society*. Macmillian: New York

Darwin, Charles 1999 (reprint). *The Origin of Species*. Wordsworth Edition: London

Dean, Mitchell 2001 "Michel Foucault: A Man in Danger". In George Ritzer and Barry Smart (eds.) *Handbook of Social Theory*. Sage Publications: London

Desai, A.R. (ed.) 1971. *Essays on Modernisation of Underdeveloped Societies*. Vol 1. Thacker and Co. Ltd.: Mumbai

Desai, S. 1994. *Gender Inequalities and Demographic Behaviour, India*. St. Martin's Press: New York

Deutsch, Karl W. 1961. "Social Mobilisation and Political Development", *American Political Science Review*. Vol. 55, No.3, pp. 493-514

Dhanagare, D. N. 1995. "Disentangling the Divide Between Indigenous and Scientific Knowledge", *Development and Change*

Dhanagare, D. N. 1996. "Development Process and Environmental Problems" (in Marathi), *Samajshastra Sanshodhan Patrika*. No.5, March pp.7-19

Dos Santos, T. 1971 "The Structural Theory of Imperialism", *Journal of Peace Research*

Dube, S.C. 1988. *Modernisation and Development*. Vistaar publications: New Delhi

Dube, S.C. 1992. *Understanding Change: Anthropological and Sociological Perspectives*. Vikas Publishing House: New Delhi

Durkheim, Emile 1984 (reprint). *The Division of Labour in Society*. The Free Press: New York

Editorial 2002. "Johannesburg Fiasco", *The Hindu*. Chennai, September 9

Eduardo, Sevilla-Guzman and Graham Woodgate 1997. "Sustainable Rural Development: From Industrial Agriculture to Agroecology." In Michael Redclift and Graham Woodgate (eds.) *The International Handbook of Environmental Sociology*. Cheltenham: Edward Elgar

Edwards, M. 2000. *NGO Rights and Responsibilities*. The Foreign Policy Centre: London

Edwards, R. 1991. "The Inevitable Future? Post Fordism in Open Learning", *Open Leaning* Vol. 6 No. 2: 36-42

Eisenstadt, S.N. 1996. *Modernisation: Protest and Change*. Prentice Hall: Englewood Cliffs

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

Elliott, Anthony 1996. *Subject to Ourselves: Social Theory, Psychoanalysis and Postmodernity.* Polity Press: Cambridge

Erich, Fromm 1996. *To Have or To be*. Continuum International Publishing Group:

Escobar, Arturo 1995. *Encountering Development: Making and Unmaking of the Third World: Studies in Culture, Power and History.* Princeton University Press: Princeton

Esteva Gustavo 1997. "Development" In W. Sachs (ed.) *The Development Dictionary: A Guide to Knowledge as Power.* Zed Books: London

Farganis, James 1996. *Readings in Social Theory: The Classic Tradition to Post-Modernism.* McGraw-Hill: New York

Fisher, W. F. 1997. "Development and Resistance in the Narmada Valley". In William F. Fisher (ed.) *Toward Sustainable Development - Struggling over India's Narmada River.* Rawat Publications: New Delhi

Frank, A.G. 1973. "The Development of Underdevelopment". In James D. Cockcroft et al (eds.) *Dependence and Underdevelopment.* Anchor Books: New York

Frank, A.G. 1975. On Capitalist Underdevelopment. Oxford University Press: Bombay

Friberg, M. and B. Hettne 1985. "The Greening of the World Towards a Non-deterministic Model of Global Process". In Addo, H.S. Amin et al (eds.) *Development as Social Transformation.* Hodder and Stoughton: London

Friedmann, J. 1992. *Empowerment: The Politics of Alternative Development.* Black well: Oxford

Gadgil, D.R. 1967. *District Development Planning.* Gokhale Institute of Politics and Economics: Poona

Gandhi, M.K. 1938. *Hind Swaraj or Indian Home Rule.* Navajivan Trust: Ahmedabad

Gandhi, M.K. 1968. *The Selected Works of Mahatma Gandhi*, Vol.III. Navajivan Trust: Ahmedabad

Giddens, A. 1990. *The Consequences of Modernity.* Stanford University Press: Stanford

Giddens, A. 1991. *Modernity and Self - Identity: Self and Society in the Late Modern Age.* Stanford University Press: Stanford

Gisbert, P.S.J. 1994. *Fundamentals of Sociology.* Orient Longman: Bombay

Government of India 1969. *Fourth Five-Year Plan.* Planning Commission: New Delhi

Gramsci, A. 1998. *Selections from the Prison Notebooks* (reprint). Orient Longman: Chennai

Grosz, Elizabeth 1989. "Sexual Difference and the Problem of Essentialism", Centre for Culture Studies Journal. Vol. 3/9. University of California

Gultung, J. 1979. *Development and Technology: Towards A Technology of Self-reliance.* United Nations: New York

Gupta, D. 1999. "Civil Society or the State/ What Happened to the Citisenship". In Guha R. and J. Parry (eds.) *Institutions and Inequalities: Essays in Honour of Andre Betelle.* Oxford University Press: New Delhi

Haq, Mahbub ul 1998. *Reflections on Human Development.* Oxford University Press: New Delhi

Harvey, D. 1989. *The Condition of Post-modernity.* Blackwell: Oxford

Hayek, F. 1944. *The Road to Serfdom.* Chicago University Press: Chicago

Hayek, F. 1982. *Law, Legislation and Liberty.* Chicago University Press: Chicago

Hettne, B. 1995 (2nd edition). *Development Theory and the Three Worlds.* Longman: London

Hirschman, A.O. 1971. "Political Economics and Possibilism". In Hirschman, A.O. (ed.) *A Bias for Hope New Haven.* Yale University Press: Yale

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

Hirschman, A.O. 1981. "The Rise and Decline of Development Economics". In Hirschman, A.O. (ed.) *Essays in Trespassing*. Cambridge University Press: Cambridge

Hobart, M. (ed.) *An Anthropological Critique of Development: The Growth of Ignorance.* Routledge: London

Hollingsworth, J R and R Boyer (eds.) 1997. *Contemporary Capitalism: The Embeddedness of Institutions.* Cambridge University Press: Cambridge

Huntington, Sammel P. 1971. "The Change to Change: Modernisation, Development and Politics". In Cyril E. Black (ed.) *Comparative Modernisation: A Reader.* Free Press: New York

Kabeer, Naila 1995. *Reversed Realities: Gender Hierarchies in Development Thought.* Kali for Women: New Delhi

Kellner, Douglas 1989. *Critical Theory, Marxism and Modernity.* Polity Press: Oxford

Kellner, Douglas 1990. *Critical Theory and the Crisis of Social Theory. From Illuminations,* http://www.uta.edu/huma/illuminations/kell5.htm

Kellner, Douglas 1995. *Media Culture: Cultural Sudies, Identity and Politics Between the Modern and the Postmodern.* Routledge: New York

Keynes, 1936. *General Theory of Employment, Interest and Money.* MacMillian Cambridge University Press: New York

Khor, Martin 2000. "Development - Time for a Paradigm Shift". In *The Hindu Survey of the Environment - 2000.* The Hindu: Chennai pp. 37-43

Kitching, G. 1989: *Development and Underdevelopment in Historical Perspective.* Routledge: London

Knaonerburg, J. 1986. *Empowerment of the Poor: A Comparative Analysis of Two Development Endeavours in Kenya.* Institute Voor de Tropan: Kninlijk

Krishnaraj, Maithreyi 1993. "New Economic Policy and Development of Women: Issues and Implications". In IAWS (ed.) *The New Economic Policy and Women: A Collection of Background Papers to Sixth National Conference.* IAWS: Mumbai

Kumar, K. 1993. "Civil Society: An Inquiry into the Usefulness of a Historical Term", *British Journal of Sociology.* Vol. GG No. 3, 375-95

Lall, S. 1975. "Is Dependency a Useful Concept in Analysing Underdevelopment?", *World Development.* Vol. 3

Landis, Judson R. 1969. *Current Perspectives on Social Problems.* Wordsworth Belmont: CA

Lele, U. (ed.) 1975. *The Design for Rural Development: Lessons for Africa.* John Hopkins University Press: Baltimore

Long, N. 1992. "From Paradigm Lost to Paradigm Regained? The Case for an Actor-oriented Sociology of Development". In Long, N. and A. Long (eds.) *Battlefields of Knowledge.* Routhledge: London

Malthus, Thomas 1798. *Essay on Principle of Pupulation*

Macionis, John J. 1997. *Sociology.* 6th edition. Prentice Hall Publications: Englewood Cliffs, New Jersey

MacPherson, C.B. 1996. *The Real World of Democracy.* Clarendon Press: Oxford

Marglin, Stephen A. 1990. "Toward the Decolonization of the Mind". In F.A. Marglin and S.A. Marglin (eds.) *Dominating Knowledge: Development, Culture and Resistance.* Oxford University Press: New York

Mary Eyelyn, Tucker 2002. *The Ethical Challenges in Promoting Sustainable Development.* http://www.earthdialogues.org

Max-Neef Manfred, A. 1991. *Human Scale Development.* The Apex Press: New York

Marx, Karl 1992. *Capital: A Critique of Political Economy.* Translated by Ben Fowkes. Penquin: U.K.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

Marx, Karl 1998 (reprint) *The Communist Manifesto*. Penguin: New York

Mies, Maria 1999. *Patriarchy and Accumulation on a World Scale: Women in International Division of Labour*. Zed Books: London

Ministry of Education and Social Welfare 1974. *Towards Equality: Report of Committee on Status of Women in India*. Government of India: New Delhi

Moghadam, V. 1994. *Identity Politics and Women: Cultural Reassertions and Feminisms in International Perspective*. Westview: Colorado

Mohanty, R. N. 1998. "Environment and Development: Search for an Alternative Paradigm". In Pawar, S. N. and R.B. Patil (eds.) *Sociology of Environment*. Rawat Publications: New Delhi

Molyneux, Maxine and Sahra, Razavi (ed.) 2003. *Gender Justice; Development and Rights*. Oxford University Press: New York

Molyneux, Maxine 1985. "Mobilization without Emancipation? Women's Interests, the State and Revolution in Nicaragua", *Feminist Studies* 11(2) pp

Moser, Caroline O.N. 1993. *Gender Planning and Development: Theory, Practice and Training*. Routledge: London

Mukherjee Reed, Ananya 2004. *Cultural Liberty in Todays Diverse World*. International Development Economics Associates: New Delhi

Munshi, Indra 2000. "Environment in Sociological Theory", *Sociological Bulletin*. pp.253-266

N.C.E.R.T. 2002. *Indian Economics Development*. N.C.E.R.T.: New Delhi

Nanda, B.R. 1981 (reprint) *Mahatma Gandhi: A Biography*. Oxford University Press: New Delhi

Narain, Sunita 2002. "Southern Challenges: Need for One Vision", *The Hindu Survey of the Environment*. The Hindu: Chennai pp.13-17

Nayar, K. R. 1994. "Politics of Sustainable Development", *Economic and Political Weekly*. May 28, 1327-1330

Neumann, Roderick P. 2005. *Making Political Ecology*. Oxford University Press: U.S.A.

Nisbet, Robert A. 1969. *Social Change and History; Aspects of the Western Theory of Development*. Oxford University Press: New York

Nozik, R. 1974. *Anarchy, State and Utopia*. Basic Books: New York

Oommen, T.K. 1998. "Changing Paradigm of Development: The Evolving Participatory Society", *Journal of Social and Economic Development*. 1:35-45

Pandey, Ragendra 1985. *Sociology of Development: Concepts, Theories and Issues*. Mittal Publications: New Delhi

Panie, T. 1997. *The Rights of Man*. Wordsworth Editions: UK

Paul, S. 1987. "Community Participation in Development Project: The World Bank Experience". In World Bank *Readings in Community Participation*. The World Bank: Washington, D.C.

Pieterse, J.N. 2001. *Development Theory*. Vistaar Publications: New Delhi

Poggi, G. 1978. *The Development of the Modern State*. Hutchinson: London

Polanyi, K. 1944. *The Great Transformation: the Political and Economic Origins of Our Time*. Beacon Press: Boston

Prafitt, T. 2002. *The End of Development: Modernity, Post Modernity and Development*. Pluto Press: London

Putnam, R. 1993. *Making Democracy Work: Civic Traditions in Modern Italy*. Princeton University Press: Princeton

Rahman, M.A. 1993. *People's Self-development: Perspectives on Participatory Action Research*. Zed and Dhaka University Press: London and Dhaka

MAADHYAM IAS

Rahnema, M. and V. Bawtree (eds.) 1997. *The Agony of the Modern State in and the Post-Development Reader*. Zed Books: London

Reddy, C. R. 2002. "A Tired Reprise of Rio", *The Hindu*. Chennai. August 31

Reddy, V. Ratna. 1995. "Environment and Sustainable Agricultural Development", *Economic and Political Weekly*. March 25, pp. 21-27

Ritzer, George 2000. *Modern Sociological Theory*. 5th edition. Higher Education: McGraw Hill: UK

Rojas, Robinson 1984. *Latin America: Blockages to Development*. Doctoral Dissertation, London http://www.rrojasdatabank.org

Ross, Eric. B. 1998. *The Malthus Factor: Poverty, Politics and Population in Capitalist Development*. Zed Books: New York

Rostow, Prem W.W. 1960. *The Stages of Economic Growth*. Cambridge University Press: Cambridge

Rowlands Jo 1997. "What is Empowerment". In H. Afshar and F. Alikhan (ed.) *Empowering Women for Development: Experiences from Some Third World Countries*. Book Links: Hyderabad

Sachs, Wolfgang 1992. "Introduction". In W. Sachs (ed.) *The Development Dictionary: A Guide to Knowledge as Power*. Zed Books: London

Sachs, Wolfgang 1997. "Sustainable Development". In Michael Redclift and Graham Woodgate (eds.) *The International Handbook of Environmental Sociology*. Edward Elgar: Cheltenham

Salas, R. and D. Valentei (eds.) 1986. *Population and Socio-economic Development*. Progress Publishers: Moscow

Salunkhe, S. A. 2003. "The Concept of Sustainable Development: Roots, Connotations and Critical Evaluation", *Social Change* Vol. 33, No.1, pp. 67-80

Santhanam, M.L. 1993. "Community Participation for Sustainable Development", *The Indian Journal of Public Administration*. Vol. XXXIX, No. 3

Seager, Joni and Olson, Ann 1986. *Women in the World: An International Atlas*. Pan Books: London

Schrijvers, Joke 1993. *The Violence of Development: A Choice for Intellectuals*. Kali for Women: New Delhi

Scoth, Lash 1990. *Sociology of Post Modernism*. Routledge: London

Scott, M. 2001. "Danger- Landmines: NGO-Government Collaboration in the Ottawa Process". In Michael Edwards and John Gaventa (eds.) *Global Citizen Action*. Lynne Rienner Publishers: Boulder

Sen G. and C. Grown 1988. *Development, Crisis and Alternative Visions*. Earthscan: London

Sen, Amarthya 1999. *Freedom as Development*. Oxford University Press: New Delhi

Sen, Lalit K. 1972. "The Need for Micro-Level Planning in India". In Lalit K. Sen (ed.) *Readings on Micro-Level Planning and Rural Growth Centres*.

Seth, Mira 2001. *Women and Development: Indian Experience*. Sage Publication: New Delhi

Sharma, K. 1992 "Grass-root Organisations and Women's Empowerment: Some Issues in Contemporary Debates", *Samya Shakti*. Vol. VI: 28-43

Singh, Baljit 1961. *New Step in Village India: A Study of Land Reforms and Group Dynamics*. Asia Publication: Delhi

Singh, Katar 1999. *Rural Development: Principles, Policies and Management*. Sage Publications: New Delhi

Singh, Radha Raman 1982. *Studies in Regional Planning and Rural Development*. Associated Book Agency: Patna

Singh, Tarlok 1969. *Towards an Integrated Society: Reflections on Planning, Social Policy and Rural Institutions*. Orient Longman: Bombay

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

Marx, Karl 1998 (reprint) *The Communist Manifesto*. Penguin: New York

Mies, Maria 1999. *Patriarchy and Accumulation on a World Scale: Women in International Division of Labour*. Zed Books: London

Ministry of Education and Social Welfare 1974. *Towards Equality: Report of Committee on Status of Women in India*. Government of India: New Delhi

Moghadam, V. 1994. *Identity Politics and Women: Cultural Reassertions and Feminisms in International Perspective*. Westview: Colorado

Mohanty, R. N. 1998. "Environment and Development: Search for an Alternative Paradigm". In Pawar, S. N. and R.B. Patil (eds.) *Sociology of Environment*. Rawat Publications: New Delhi

Molyneux, Maxine and Sahra, Razavi (ed.) 2003. *Gender Justice; Development and Rights*. Oxford University Press: New York

Molyneux, Maxine 1985. "Mobilization without Emancipation? Women's Interests, the State and Revolution in Nicaragua", *Feminist Studies* 11(2) pp

Moser, Caroline O.N. 1993. *Gender Planning and Development: Theory, Practice and Training*. Routledge: London

Mukherjee Reed, Ananya 2004. *Cultural Liberty in Todays Diverse World*. International Development Economics Associates: New Delhi

Munshi, Indra 2000. "Environment in Sociological Theory", *Sociological Bulletin*. pp.253-266

N.C.E.R.T. 2002. *Indian Economics Development*. N.C.E.R.T.: New Delhi

Nanda, B.R. 1981 (reprint) *Mahatma Gandhi: A Biography*. Oxford University Press: New Delhi

Narain, Sunita 2002. "Southern Challenges: Need for One Vision", *The Hindu Survey of the Environment*. The Hindu: Chennai pp.13-17

Nayar, K. R. 1994. "Politics of Sustainable Development", *Economic and Political Weekly*. May 28, 1327-1330

Neumann, Roderick P. 2005. *Making Political Ecology*. Oxford University Press: U.S.A.

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

Nisbet, Robert A. 1969. *Social Change and History; Aspects of the Western Theory of Development*. Oxford University Press: New York

Nozik, R. 1974. *Anarchy, State and Utopia*. Basic Books: New York

Oommen, T.K. 1998. "Changing Paradigm of Development: The Evolving Participatory Society", *Journal of Social and Economic Development*. 1:35-45

Pandey, Ragendra 1985. *Sociology of Development: Concepts, Theories and Issues*. Mittal Publications: New Delhi

Panie, T. 1997. *The Rights of Man*. Wordsworth Editions: UK

Paul, S. 1987. "Community Participation in Development Project: The World Bank Experience". In World Bank *Readings in Community Participation*. The World Bank: Washington, D.C.

Pieterse, J.N. 2001. *Development Theory*. Vistaar Publications: New Delhi

Poggi, G. 1978. *The Development of the Modern State*. Hutchinson: London

Polanyi, K. 1944. *The Great Transformation: the Political and Economic Origins of Our Time*. Beacon Press: Boston

Prafitt, T. 2002. *The End of Development: Modernity, Post Modernity and Development*. Pluto Press: London

Putnam, R. 1993. *Making Democracy Work: Civic Traditions in Modern Italy*. Princeton University Press: Princeton

Rahman, M.A. 1993. *People's Self-development: Perspectives on Participatory Action Research*. Zed and Dhaka University Press: London and Dhaka

Rahnema, M. and V. Bawtree (eds.) 1997. *The Agony of the Modern State in and the Post-Development Reader*. Zed Books: London

Reddy, C. R. 2002. "A Tired Reprise of Rio", *The Hindu*. Chennai. August 31

Reddy, V. Ratna. 1995. "Environment and Sustainable Agricultural Development", *Economic and Political Weekly*. March 25, pp. 21-27

Ritzer, George 2000. *Modern Sociological Theory*. 5th edition. Higher Education: McGraw Hill: UK

Rojas, Robinson 1984. *Latin America: Blockages to Development*. Doctoral Dissertation, London http://www.rrojasdatabank.org

Ross, Eric. B. 1998. *The Malthus Factor: Poverty, Politics and Population in Capitalist Development*. Zed Books: New York

Rostow, Prem W.W. 1960. *The Stages of Economic Growth*. Cambridge University Press: Cambridge

Rowlands Jo 1997. "What is Empowerment". In H. Afshar and F. Alikhan (ed.) *Empowering Women for Development: Experiences from Some Third World Countries*. Book Links: Hyderabad

Sachs, Wolfgang 1992. "Introduction". In W. Sachs (ed.) *The Development Dictionary: A Guide to Knowledge as Power*. Zed Books: London

Sachs, Wolfgang 1997. "Sustainable Development". In Michael Redclift and Graham Woodgate (eds.) *The International Handbook of Environmental Sociology*. Edward Elgar: Cheltenham

Salas, R. and D. Valentei (eds.) 1986. *Population and Socio-economic Development*. Progress Publishers: Moscow

Salunkhe, S. A. 2003. "The Concept of Sustainable Development: Roots, Connotations and Critical Evaluation", *Social Change* Vol. 33, No.1, pp. 67-80

Santhanam, M.L. 1993. "Community Participation for Sustainable Development", *The Indian Journal of Public Administration*. Vol. XXXIX, No. 3

Seager, Joni and Olson, Ann 1986. *Women in the World: An International Atlas*. Pan Books: London

Schrijvers, Joke 1993. *The Violence of Development: A Choice for Intellectuals*. Kali for Women: New Delhi

Scoth, Lash 1990. *Sociology of Post Modernism*. Routledge: London

Scott, M. 2001. "Danger- Landmines: NGO-Government Collaboration in the Ottawa Process". In Michael Edwards and John Gaventa (eds.) *Global Citizen Action*. Lynne Rienner Publishers: Boulder

Sen G. and C. Grown 1988. *Development, Crisis and Alternative Visions*. Earthscan: London

Sen, Amarthya 1999. *Freedom as Development*. Oxford University Press: New Delhi

Sen, Lalit K. 1972. "The Need for Micro-Level Planning in India". In Lalit K. Sen (ed.) *Readings on Micro-Level Planning and Rural Growth Centres*.

Seth, Mira 2001. *Women and Development: Indian Experience*. Sage Publication: New Delhi

Sharma, K. 1992 "Grass-root Organisations and Women's Empowerment: Some Issues in Contemporary Debates", *Samya Shakti*. Vol. VI: 28-43

Singh, Baljit 1961. *New Step in Village India: A Study of Land Reforms and Group Dynamics*. Asia Publication: Delhi

Singh, Katar 1999. *Rural Development: Principles, Policies and Management*. Sage Publications: New Delhi

Singh, Radha Raman 1982. *Studies in Regional Planning and Rural Development*. Associated Book Agency: Patna

Singh, Tarlok 1969. *Towards an Integrated Society: Reflections on Planning, Social Policy and Rural Institutions*. Orient Longman: Bombay

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

Singh, Yogendra 1977. *Modernisation of Indian Tradition*. Thomson: Faridabad

SinghaRoy, D.K. 1995. "Peasant Movement and Empowerment of Rural Women", *Economic and Political Weekly*. Sept. 16: 2306-11

SinghaRoy, D.K. 2001. "Critical Issues in Grassroots Mobilisation and Collective Action". D.K. SinghaRoy (ed.) *Social Development and Empowerment of the Marginalised Groups: Perspectives and Strategies*. Sage Publications: New Delhi

Sittirak, S. 1988. *The Daughters of Development: Women in a Changing Environment*. Zed Books: London

Smythe, E. and P.J. Smith. 2003. "NGOs, Technology and the Changing Face of Trade Politics". In K. L. Brock (ed.) *Delicate Dances: Public Policy and the Non Profit Sector*. McGill-Queen's University Press: London

So, A.Y. 1990. *Social Change and Development*. Sage Publications: London

Somjee, A.H. 1991. *Development Theory*. Macmillian: London

Spencer, E. 1967 (reprint). *The Evolution of Society*. University of Chicago Press: Chicago

Srinivasan, K. 1995. *Regulating Reproduction in India's Population. Efforts, Results and Recommendations*. Sage Publications: Delhi

Starke, Linda 1990. *Signs of Hope*. Oxford University Press: New York

Stavenhagen, R. 1986. "Ethno development: A Neglected Dimension in Development Thinking". In A. Apthorpe and A. Krahl (ed.) *Development Studies: Critique and renewal*. Leiden: Brill

Stavrianos, L.S. 1981. *Global rift: the Third World Comes of Age*. William Morrow: New York

Sunkel, O. 1969. "National Development Policy and External Dependence in Latin America", *Journal of Development Studies*

Symonds, Richard and Michael Carder 1973. *The United Nations and the Population Question 1945-1970*. McGraw Hill Book Company: Great Britain

Tendulkar, Dinanath G. 1982 (reprint). *Mahatma: Life of Mohanchand Karamchand Gandhi*. Vol. 1-8. Publication Division, Ministry of Broadcasting, Government of India: New Delhi

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

Thomas, Allan 2000. "Meanings and Views of Development". In Tim Allen and Allan Thomas (eds.) *Poverty and Development into the 21st century*. Oxford University Press: Oxford

Tim, Allan 2000. "Poverty and the End of Development". In Tim Allen and Allan Thomas (eds.) *Poverty and Development into the 21st century*. Oxford University Press: Oxford

Timasheff, Nicholas S. 1967. *Sociological Theory: Its Nature and Growth*. Random House: New York

Toffler, A. 1980. *The Third Wave*. Pan Books: London

Torfing, J. 1999. *New Theories of Discourse*. Blackwell: Mass

Tucker Kenneth, H. Jr. 1998. *Anthony Giddens and Modern Social Theory*. Sage Publications: London

UNDP 1990. *Human Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

UNDP 1993. *UNDP and Civil Society*. Oxford University Press: New York

UNDP 1996. *Human Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

UNDP 1997. *Human Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

UNDP 1998. *Human Development in South Asia*. Oxford University Press: New Delhi

UNDP 1998. *Human Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

UNDP 2001. *Human Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

UNDP 2004. *Human Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

United Nations 1995. *Declaration of the World Summit for Social Development*. United Nations: Compenhagen

Valentey, D.I. (ed.) 1974. *The Theory of Population. Essays in Marxist Research*. Progress Publishers: Moscow

Vandana Shiva 1988. *Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India*. Kali for Women: New Delhi

Wallerstein, I. 1974. *The Modern World System: Capitalist Agriculture and the Origins of the European World Economy in the Sixteenth Century*. Academic Press: New York

Wallerstein, I. 1979. *The Politics of the World economy*. Cambridge University Press: Cambridge

Watson, George (ed.) 1957. *The Unservile State: Essays in Liberty and Welfare*. George Allen and Unwin: London

Weber, Max 1967 (reprint). *The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism*. Vintage: New York

Webster, F. 1995. *Theories of Information Society*. Routledge: London

Wilbert, Moore 1963. *Social Change*. Prentice Hall: U.K.

Willber, Charles K. and Jameson P. Kenneth 1988. "Paradigm of Economic Development and Beyond". In Charles K.Willber (ed.) *The Political Economy of Development and Undevelopment*. Random House: New York

Wolfe, A. 1977. *The Limits of Legitimacy*. Free Press: New York

World Bank 1992. *World Development Report: Development and the Environment*. Oxford University Press: New York

World Bank 1997. *World Development Report*. Oxford University Press: New Delhi

World Bank 1999. *World Development Report 1999/2000: Entering the 21st century: the changing development landscape*. Oxford University Press: New York

World Commission on Environment and Development 1987. A chapter from "Our Common Future" reproduced under the title "Towards Sustainable Development", *Science Age*. August pp.30-38

World Commission on Culture and Development 1996. *Our Creative Diversity*. UNESCO: Paris

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 16
भारत

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 विकास की दिशा
16.3 भारतीय अर्थव्यवस्था का ठहराव
16.4 स्वतंत्रता के पश्चात विकास का चरण
16.5 वर्तमान परिदृश्यः उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण
16.6 भारत में सूचना एवं संचार तकनीक (आई.सी.टी.) में क्रांति
16.7 सुधार युग में निर्धनता का आकलन व उन्मूलन
16.8 विकास और सामाजिक कार्यक्षेत्र
16.9 सारांश
16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य स्पष्ट करना है किः

- स्वतंत्रता से पूर्व और पश्चात विकास प्रणालियाँ;
- भारत की पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और उद्देश्य;
- 1990 भारत की विकास नीतियाँ; और
- आई. सी. टी. के विकास का प्रभाव और सामाजिक सम्प्रदाय में उदारीकरण और निजीकरण की नीतियाँ।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

16.1 प्रस्तावना

हम पुस्तक के पिछले चार खंडों में विकास के समाजशास्त्रीय अध्ययन की धारणा, विकास और आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य और साथ ही साथ विकास की मुख्यधारा के परिप्रेक्ष्य के वैकल्पिक रास्तों से भी भली-भाँति परिचित हो चुके हैं। हमने देखा कि पिछले कुछ दशकों से किस तरह सामाजिक और मानवीय कारक विकास के गंभीर वार्तालाप में संगठित हुए। पिछले खंड विशेष रूप से खंड 3 और 4 में विकास के वैकल्पिक प्रणालियों जो विकास के सामाजिक और मानवीय पहलुओं पर ज़्यादा केंद्रित थे, विचार-विमर्श किया। इसी को जारी रखते हुए खंड 5 ने पूरे विश्व के देशों के विकास के अनुभवों की चर्चा की। हम भारत के विकास के अनुभवों की चर्चा से शुरू करेंगे।

मुख्यतः हम देशों को उनकी अर्थव्यवस्था के अनुसार देखते हैं और अक्सर हम उनको "विकसित", "विकासशील" और "अल्पविकसित" के नाम से विभाजित कर देते हैं। "आर्थिक विकास की प्रणाली को किसी एक वर्ष में प्रति व्यक्ति आय के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है। लेकिन अगर हम "विकास" शब्द के अर्थ को समूचे तौर पर ध्यान में रखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के सभी वर्गों का पूर्ण विकास भी उतना ही ज़रूरी है जितना कि आर्थिक विकास। दूसरे शब्दों में "विकास" शब्द आर्थिक और सामाजिक दोनों स्तरों पर होना चाहिए। उदाहरण के तौर पर अगर हम पाते हैं कि एक देश में प्रति व्यक्ति आय दुगनी हो जाती है लेकिन मूल समस्याएँ — जैसे ग़रीबी, बेरोज़गारी और असमानता

मुख्यतः वैसे की वैसे ही रहती है तो "विकास" शब्द अपना वास्तविक अर्थ खो देता है। इसलिए आर्थिक विकास को मानवीय विकास से जोड़ना चाहिए। जब हम सामाजिक कार्यक्षेत्र के अंतर्गत "विकास" शब्द को जोड़ते हैं तो हम जनसंख्या के सभी वर्गों के मानव विकास के पहलुओं को ध्यान में रखकर चर्चा करते हैं।

इस इकाई में विकास की दशा का ऐतिहासिक विकास बताया गया है। यह उपनिवेशवादी, उत्तर उपनिवेशवादी तथा भारत की वर्तमान विकास नीतियों पर नज़र डालती है। उपनिवेशवादी युग में भारत आर्थिक विकास में एक पिछड़ा और गतिहीन राज्य था। विकास में एक पिछड़ा और गतिहीन राज्य था। स्वतंत्रता मिलने पर जब भारत ने योजनाबद्ध विकास को चुना तो सभी चीज़ों में परिवर्तन आने लगा। विश्वव्यापीकरण की तीव्र गति तथा राष्ट्रीय राजतंत्र के अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक (WMF) तथा अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के तहत अर्थव्यवस्था के निजीकरण व उदारीकरण को नीतियों की तरफ़ एक महत्वपूर्ण झुकाव आया है जिसके फलस्वरूप समाज के अन्य क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ा है। इन सभी पक्षों की इस इकाई में विस्तार से चर्चा की गई है।

16.2 विकास की दिशा

किसी भी समाज में विकास की दिशा को निर्धारित करना आसान नहीं है। इसके लिए बृहद् स्तर पर योजना की आवश्यकता पड़ती है तथा स्वतंत्रता के पश्चात इस योजना के मुख्य उद्देश्यों का आधार भारतीय संविधान में बताए गए निदेशक सिद्धांत हैं। इसके अनुसार, "राज्य के लोगों के कल्याण को बढ़ाने के लिए उनकी सुरक्षा और रक्षा के लिए जितना संभव हो, प्रयास करने चाहिए, सामाजिक व्यवस्था जिसमें न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक — राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को सूचित करेगा"।

जैसे कि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसी भी तरह के विकास के साथ-साथ ढेर सारी योजना की ज़रूरत होती है। जैसे कि योजना का अपने आप में अर्थ है, "एक विशेष लक्ष्य निश्चित करना या लक्ष्यों का समूह"। विकास के संदर्भ में, योजना का क्षेत्र आर्थिक होने के साथ-साथ सामाजिक भी है। हालांकि 1950 में योजना-आयोग की स्थापना विकास की रूपरेखा तैयार करने के लिए कर दी गई थी, पर स्वतंत्रता मिलने से पहले ही भारत ने इसकी तैयारियाँ शुरू कर दी थी, जब 1935 में भारत सरकार अधिनियम के तहत 1937 में कई प्रांतों में सरकार बन चुकी थी।

MAADHYAM IAS

योजना-आयोग का गठन

आज़ादी के संघर्ष के समय कांग्रेस द्वारा जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय-योजना समिति तथा 29 उपसमितियाँ अलग-अलग क्षेत्रों में बनाई गई। समिति ने राज्यों को आर्थिक संरचना के विकास और मूल उद्योगों को अपने संरक्षण में चलाने के लिए अनिवार्य भूमिका निभाने के लिए कुटीर और ग्रामीण उद्योगों को प्रोत्साहन देना, मध्यस्थों का भूमि के हिस्से का उन्मूलन करने का परामर्श दिया। एक व्यस्क श्रमिक के लिए संतुलित-आहार, जिसमें 2400-2800 इकाई की कैलोरी मूल्य हो, 30 गज कपड़ा प्रति-व्यक्ति और 100 वर्गफुट प्रति व्यक्ति आवास को मद्देनज़र रखते हुए दस सालों के अंदर इसने राष्ट्रीय आय को दो से तीन गुना बढ़ाने की अपेक्षा रखी। औद्योगीकरण में भारी अभियांत्रिकी व यंत्र उद्योग, विद्युत ऊर्जा और वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान, लघु व कुटीर उद्योगों के समायोजन पर अधिक ज़ोर दिया तथा औद्योगिक विकास में राज्य व राजकीय क्षेत्र की प्रभावशाली भूमिका और मुख्य राजनीतिक नीति-राष्ट्रीय स्वावलंबन का, जहाँ तक विस्तार संभव हो, को प्रोत्साहन दिया।

इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए 1944 में तीन योजनाएँ सामने रखी गई — बम्बई योजना (The Bombay Plan), जनसाधारण योजना (The People]s Plan) और गाँधीवाद योजना (Gandhian Plan) (देखें बॉक्स 16.1)। उसी समय कई सांप्रादायिक योजनाएं और शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित योजनाएँ तैयार की गई। सन् 1946 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में अंतरिम सरकार बनाई गई तब परामर्श योजना मंडल (Adivisory Planning Board) स्थापित किया गया जिसने राष्ट्रीय योजना आयोग के निर्माण का परामर्श दिया।

बॉक्स 16.1: बम्बई योजना, जनसाधारण योजना और गाँधीवाद योजना

सन् 1938 में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति ने स्वतंत्रता के पश्चात भारत के विकास की योजना प्रणाली को पूरा कर लिया था। 1944 में व्यापारियों ने तथाकथित, "बम्बई योजना" प्रकाशित की। हस्ताक्षरकों में जी. डी. बिरला ने वस्त्रोद्योग, जूट और बीमा में भरपूर अभिरुचि, जे. आर. डी. टाटा ने अंतरिम विमान सेवा तथा लोहा और इस्पात में रुचि; और कस्तूरीबाई लालबाई ने वस्त्रोद्योग और पोत परिवहन में अपनी अभिरुचि दिखाई। स्वतंत्रता के पश्चात औद्योगिक और कृषि नीति को सूत्रित करने और उसका अवलोकन करने के लिए इसने नेहरू का मार्गदर्शन किया। औद्योगिक व सैन्य स्तरों पर भारत को एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरने के लिए इसमें एक दिव्य दृष्टि निहित थी। इसने इस बात की भी पुष्टि की कि सरकार आर्थिक जीवन का कड़ाई से नियंत्रण करेगी।

1944 में राष्ट्रीय श्रम संघ ने एम. एन. राय के नेतृत्व में अपनी योजना "जनसाधारण योजना" भी निकाली। जिसमें कृषि में सुधार और लघु उद्योगों के विकास के द्वारा पीढ़ी को रोज़गार देने की प्राथमिकता दी गई। महात्मा-गाँधी और उनके शिष्यों की अपनी "गाँधीवाद योजना" (Gandian Plan) थी। सभी का ग़रीबी उन्मूलन ही सर्वोपरि लक्ष्य था। गाँधी ने ग्रामीण स्तर पर अर्थव्यवस्था के विकास को केंद्रित रखा। यह पद्धति भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि को मुख्य आधार बनाना चाहती थी तथा ग्रामीण इकाइयों को स्वावलम्बी बनाने की संभावना पर विचार किया। गाँधीवादियों को छोड़कर, बाकी सबने राज्य समर्थक औद्योगीकरण को लक्ष्य प्राप्ति का साधन माना और इस उद्देश्य के लिए केन्द्रीय योजना के प्रयोजन को आवश्यक माना।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

15 मार्च 1950 को मंत्रीमंडल संघ के निश्चय से योजना आयोग का गठन किया गया। आयोग को पहली पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा विकास के नमूने के रूप में तैयार करने को कहा गया। तभी से देश की आवश्यकता और संसाधनों को ध्यान में रखकर कई पंचवर्षीय योजनाएँ प्रारंभ की गई। विभिन्न प्रकार की पंचवर्षीय योजना की नीतियों पर प्रकाश डालने से पहले हम आज़ादी के समय की स्थिति का विश्लेषण कर लेते हैं।

सोचिए और कीजिए 16.1

"विकास को प्रति व्यक्ति आय के संबंध में ही स्पष्ट किया जा सकता है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? अगर नहीं तो कारण दीजिए।

16.3 भारतीय अर्थव्यवस्था का ठहराव

आज़ादी के समय, भारतीय अर्थव्यवस्था बहुत बुरी दशा में थी। उपनिवेशवाद के लंबे दौर के कारण यह उस गतिहीनता के दौर से गुज़र रही थी, विशेषकर न सिर्फ़ ग़रीबी, लेकिन प्रति व्यक्ति आय की बढ़ोतरी, जो कि लगभग 0.5 प्रतिशत प्रति वर्ष थी।

यही भावनाएं पहली पंचवर्षीय योजना के प्रलेख में प्रतिध्वनित हुई थी। यह मुख्यतः इसलिए था क्योंकि बुनियादी परिस्थितियाँ जिनके अंतर्गत अर्थव्यवस्था का लगातार विकास होता है, अनुपस्थित थीं। 19वीं सदी के पिछले अर्ध में आधुनिक औद्योगिकता का गहरा प्रभाव प्रारंभ में मशीन से बनी वस्तुओं का आयात करके इस देश में महसूस किया गया, जिसने आर्थिक जीवन के परंपरागम रूप पर विपरीत असर डाला, इसने भी विकास की नई रेखाओं के साथ कोई प्रेरणा उत्पन्न नहीं की। इसके पश्चात जो परिवर्तन हुआ उसकी विशिष्टता न तो उद्योगों का विकास था और न ही आर्थिक संरचना का विविधीकरण अपितु भारत की पारंपरिक कला, शिल्पकला और उद्योगों का ह्रास हुआ और जनसंख्या का घनत्व बढ़ा। पीछे हटने के फलस्वरूप कृषि के क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादकता का ह्रास हुआ। बेरोज़गार और अल्प-रोज़गार में सतत वृद्धि इसका परिणाम था और इससे जनता में "जयनीय संतोष" के दृष्टिकोण में वृद्धि हुई।

इस तरह के परिवेश में बहुत कम आर्थिक और सामाजिक प्रगति हो सकती थी। औपनिवेशवादी युग में जो भी अधिशेष उपलब्ध था उसे आंशिक रूप से विदेशों से तैयार सामान तथा विदेशी व्यापार के हितों के तहत नई यातायात प्रणाली के साजों सामान इत्यादि जैसे आयातों की ख़रीद पर केंद्रित किया गया और आंशिक रूप से विदेशी व्यापार के हितों को ध्यान में रखते हुए मुख्य रूप से नई परिवहन व्यवस्था को तैयार किया गया। आधुनिक व्यापार और उद्योग को बढ़ाने का उत्तरदायित्व शहरी क्षेत्र के कुछ वर्गों के हाथों में सकेन्द्रित था और 19वीं शताब्दी के अंत तक देश में बड़े स्तर के उद्योगों की श्रेणी में सिर्फ़ वस्त्रोद्योग ने ही अपनी जड़े ज़माई थी। कृषि के सुधार और ग्रामीण क्षेत्रों की ज़रूरतों पर बहुत कम ध्यान दिया गया। (कपिला 2001: 25-26)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सोचिए और कीजिए 16.2

भारतीय अर्थव्यवस्था आज़ादी के समय गतिहीनता के दौर से गुज़र रही थी। कौन सी स्थितियाँ भारतीय अर्थव्यवस्था की बुरी दशा के लिए उत्तरदायी थीं?

16.4 स्वतंत्रता के पश्चात विकास का चरण

स्वतंत्रता मिलने पर भारत ने सामाजिक और आर्थिक विकास का रास्ता चुना, जिसके लिए 15 मार्च 1950 में योजना-आयोग, पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में, जोकि भारत के प्रथम प्रधानमंत्री थे, बनाया गया। तभी से भारत के प्रधानमंत्री ही योजना आयोग की अध्यक्षता करते है। भारतीय अर्थव्यवस्था की पृष्ठभूमि से पूर्णरूप से परिचित होने के बाद, अब हम विकास की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के मुख्य लक्ष्य और उद्देश्यों का विश्लेषण कर सकते हैं।

क) **पहली योजना (1951-56)**

पहली पंचवर्षीय योजना ने देश के विकास के लिए योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया। इसके दो मुख्य उद्देश्य थे। पहला, भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिहीनता की स्थिति, जोकि द्वितीय विश्व-युद्ध और देश के विभाजन के दौरान आ गई थी, से बाहर निकालना। दूसरा, भारतीय अर्थव्यवस्था के संपूर्ण संतुलित विकास की प्रक्रिया को प्रारंभ करना, ताकि लोगों के रहने के स्तर में एक अवधि में नियमित सुधार हो सके।

पहली योजना ने सबसे ज़्यादी प्राथमिकता कृषि को प्रदान की, विशेष महत्व, ग्रामीण पुनः निर्माण कार्यक्रम और भूमि सुधार, जिसमें विभिन्न सिंचाई और विद्युत-शक्ति परियोजनाओं को प्रारंभ किया गया। कुल लागत 3069/- करोड़ का 44.6 प्रतिशत विकास के लिए निर्धारित किया गया। बचत और निवेश राष्ट्रीय आय के अनुपात में 5 से 6 प्रतिशत तक बढ़ने का

आकलन किया गया। 1950 के शुरू में 1968-69 में 20 प्रतिशत और उसके बाद उस स्तर तक स्थिर रहेगी। 20 सालों में औसतन आय के दुगना होने की अपेक्षा की गई और प्रति व्यक्ति आय 27 सालों में (वही: 34)।

ख) दूसरी योजना (1956-61)

1954 में संसद ने घोषणा की कि समाज में आय व संपति में अधिक समता के लिए आर्थिक नीति को समाजवादी नमूने को हासिल करना होगा। इस प्रकार द्वितीय योजना का मुख्य लक्ष्य विकास के उस प्रतिरूप को बढ़ावा देना था जिसके द्वारा भारतीय समाज में समाजवादी अभिरचना का निर्माण हो सके।

द्वितीय योजना के मुख्य लक्ष्य :

- राष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि;
- तीव्र औद्योगीकरण तथा मूल व भारी उद्योगों के विकास पर ज़ोर;
- रोज़गार अवसरों का अधिक विस्तार; और
- आय व संपत्ति की असमानताओं में कमी तथा आर्थिक शक्ति का और अधिक समान वितरण।

द्वितीय योजना के अंतर्गत औद्योगीकरण पर विशेष ज़ोर दिया गया तथा 1960-61 तक राष्ट्रीय आय में प्रति वर्ष 11 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

आर्थिक वृद्धि की विकास युक्ति को आधुनिक औद्योगीकरण के द्वारा तीसरी योजना में भी जारी रखा गया।

ग) तृतीय योजना (1961-66)

तृतीय योजना, जो आत्मनिर्भरता पर केन्द्रित थी, के तत्काल उद्देश्य थे :

- प्रतिवर्ष राष्ट्रीय आम में 5 प्रतिशत से ऊपर की वृद्धि लक्ष्य तथा इसके साथ ही निवेश के ऐसे स्वरूप का आश्वासन जिसमें आने वाले योजना काल में वृद्धि को इस दर को बनाए रखना;
- खाद्य.पदार्थों में आत्म.निर्भरता अर्जित करना तथा उद्योग व निर्यात की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कृषि उत्पादन को बढ़ाना;
- मूल उद्योगों जैसे इस्पात, रसायन, ईंधन और ऊर्जा का विस्तार तथा कल-पुर्ज़े निर्माण क्षमता की स्थापना, जिससे कि आगे औद्योगीकरण की ज़रूरतों को दस वर्षों के अंतराल के भीतर पूरा किया जा सके या मुख्यतः देश के अपने संसाधनों द्वारा;
- देश की जन-शक्ति का भरपूर इस्तेमाल और रोज़गार अवसरों का संतोषजनक विस्तार; और
- अवसरों की अधिक समानता को स्थापित करना तथा आय व संपत्ति की असमानताओं में कमी तथा आर्थिक शक्ति का और अधिक वितरण (इंडिया 1989: 331)।

इस प्रकार विकास की युक्ति में राजकीय क्षेत्र से अपेक्षा की गई कि आधारभूत सुविधाएं जैसे मूल व भारी उद्योगों की वृद्धि को बढ़ावा दिया जाए तथा दूसरी तरफ उत्पादन के साधनों के राजकीय स्वामित्व के विस्तार के द्वारा आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण को कम किया जाये।

पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में विकास के पहले चरण के उत्पादन के चक्रवृद्धि विकास दर में 8 से 10 प्रतिशत, खाद्य-प्रदाथों के मुकाबले में नियमित सुधार को दर्शाया।

MAADHYAM IAS

घ) वार्षिक योजनाएं (1966-69)

50 और 60 के दशक में स्थिर जिससे विकास और योजना के रास्ते का सही मार्गदर्शन हुआ। किंतु 1965 के भारत-पाक तनाव, प्रचंड अकाल के दो साल, मुद्रा का अवमूल्यन, मूल्यों में वृद्धि तथा योजना प्रयोजन के लिए मौजूद संसाधनों में कमी के फलस्वरूप चतुर्थ योजना के अंतिम रूप को तैयार करने में विलंब हुआ। इसी कारणवश चौथी योजना की जगह 1966 से 1969 के अंतराल में तीन वार्षिक योजनाओं को तैयार किया गया।

ङ) चौथी योजना (1969-74)

चौथी योजना में रोज़गार व शिक्षा के द्वारा समाज के कमज़ोर तबकों की स्थिति को सुधारने पर ज़ोर दिया गया। समानता व सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का लक्ष्य रखा गया।

च) पाँचवी योजना (1974-79)

इस दौरान अर्थव्यवस्था घोर मुद्रा स्फीति दबावों को झेल रही थी। यद्यपि आत्म-निर्भरता और ग़रीबी रेखा के नीचे रह रहे लोगों के ख़पत स्तर को ऊँचा उठाने के लिए विभिन्न तरीकों को अपनाना इस योजना के मुख्य उद्देश्य थे परंतु स्फीति को नियंत्रण में रखने तथा आर्थिक स्थिति में स्थिरता लाने पर भी ज़ोर दिया गया।

सोचिए और कीजिए 16.3

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं से परिचित होने के पश्चात क्या आप उनके मुख्य उद्देश्यों, उपलब्धियों तथा कमियों के बारे में बता सकते हैं?

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

छ) छठी योजना (1980-85)

पिछले तीन दशकों की योजना की उपलब्धियों की कमियों को ध्यान में रखते हुए छठी पंचवर्षीय योजना का स्वरूप तैयार किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग़रीबी को हटाना था। इसलिए कृषि तथा उद्योग के आर्थिक आधार को मज़बूत बनाने के लिए उपायों को बनाया गया। ग्रामीण क्षेत्रों में रोज़गार के अवसरों को बढ़ाने पर भी ज़ोर दिया गया।

ज) सातवीं योजना (1985-90)

सातवीं योजना के मुख्य उद्देश्यों में रोज़गार अवसरों को बढ़ाना तथा उत्पादकता बढ़ाने के साथ-साथ खाद्य-पदार्थ उत्पादन की वृद्धि थे, इसके साथ ही ग़रीबी उन्मूलन व ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में ग़रीबों के स्तर को सुधारने पर ज़ोर दिया गया।

झ) आठवीं योजना (1992-97) और नौंवी योजना (1997-2002)

जबकि सातवीं पंचवर्षीय योजना बिना किसी अवरोध के चली, फिर भी कुछ अस्थिर राजनैतिक गतिविधियाँ हुईं जैसे पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी की हत्या इत्यादि जिसके परिणामस्वरूप विदेशी मुद्रा की कमी से आर्थिक संकट व अस्थिर सरकारें रहीं। इसीलिए 1992 में सामान्य स्थिति के बहाल होने पर आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) को लागू किया गया जिसके तहत इस शताब्दी के अंत तक पर्याप्त रोज़गार से लगभग पूर्ण रोज़गार व आत्म-निर्भरता की स्थिति को हासिल करने के लक्ष्यों पर ज़ोर दिया गया।

ढाँचागत समायोजन कार्यक्रमों व आर्थिक उदारीकरण के आगमन के परिपेक्ष्य में आठवीं योजना को शुरू किया गया (इसकी चर्चा आगे की जाएगी)। इस योजना के चलते विकास के क्षेत्र में एक नया मोड़ आया जब विकास में योजना की भूमिका पर सवाल खड़ा किया

गया और विभिन्न दृष्टिकोणों से उसका विश्लेषण किया गया। इस प्रकार नौवीं योजना का स्वरूप तैयार किया गया जिसमें राज्य व निजी क्षेत्र की भूमिका को एक दूसरे का पूरक व आवश्यक माना गया। अर्थव्यवस्था की विकास दर को बढ़ाने के मद्देनज़र कृषि व ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गई।

ण) **दसवीं योजना (2002-2007)**

वर्तमान दसवीं पंचवर्षीय योजना जारी है, जिसमें सभी व्यक्तियों व समूहों के लिए सामाजिक व आर्थिक अवसरों का विस्तार, असमानताओं में कमी तथा प्रतिवर्ष 8.0 वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया।

जैसा कि पहले भी बताया गया है कि स्थिति की ज़रूरतों व मांगों को ध्यान में रखते हुए नीतियों व कार्यक्रमों में कई परिवर्तन लाए गए। इन सुधारों को हम "उदारीकरण", "निजीकरण" तथा विश्वव्यापीकरण" की अवधारणाओं के द्वारा समझ सकते हैं।

16.5 वर्तमान परिदृश्यः उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण

1990 के आरंभ में भारत ने अपनी अर्थव्यवस्था "नई आर्थिक नीति (NEP) और ढाँचागत समायोजन कार्यक्रम अपनाने से की। 1980 के दशक के दौरान जबकि भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की कोशिशें की गई थी परंतु 1991-92 के दौरान ही भारतीय सरकार ने व्यापक आर्थिक सुधार कार्यक्रमों को लागू करने के लिए जी-तोड़ कोशिश की जोकि भुगतान-संतुलन संकट के दबाव का भी नतीजा थी जिसकी वजह है देश को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से आर्थिक सहायता लेने पर मज़बूर होना पड़ा। देशों में उत्पन्न भुगतान संकट को लेकर अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक समितियों में उस समय यह धारणा व्याप्त थी कि यह मुख्यतः देश द्वारा अपनाई गई दोषपूर्ण समष्टि आर्थिक नीतियों का परिणाम है। उनका मानना था कि बढ़ती हुई अक्षमता तथा देश के उत्पाद से संबंधित प्रतियोगिता का अभाव मुख्य तौर पर बाज़ार के साधनों के लुप्त होने से संबंधित है जो सरकारी नियंत्रण को अधिकता व परिमापात्मक प्रतिबंधों तथा अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के पहले से मौजूद आधिपत्य का नतीजा है। समष्टि आर्थिक तथा कुशलता बढ़ाने वाली नीतियों के द्वारा देश के सामने मौजूद समस्याओं को सुलझाने की कोशिश की गई। इसी को नज़र में रखते हुए वर्ष 1991 में भारत ने उदारीकरण और निजीकरण की प्रणालियों के द्वारा नई आर्थिक नीति को अपनाया जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन मिला (भल्ला, एस.) (Bhalla, S., 2000)। जिसने देश के विश्वव्यापीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया और विश्वव्यापी बाज़ार के साथ जोड़ा।

1991 की नई आर्थिक नीति के अंतर्गत प्रामाणिक संरचनात्मक समायोजन मापदंड (इकाई 21 में आप इसके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे) रुपये का अवमूल्यन सम्मिलित करते हुए, ब्याज-दर में वृद्धि, सार्वजनिक निवेश और खर्चे में कमी, निजीकरण के साथ चल रहे सार्वजनिक उद्यम के लाभ को प्राथमिकता, सार्वजनिक क्षेत्र के खाद्य और उर्वरक की आर्थिक सहायता में कमी, आयात में वृद्धि और पूंजी गहन में विदेशी निवेश और ऊँची तकनीकी गतिविधियाँ और निर्यात के लिए नक़द मुआवज़ा सहायता का उन्मूलन, बाज़ार द्वारा संचालित विनिमय दर तरीके में निष्पक्ष तेज़ परिवर्तन, विदेशी निवेश संस्थागत (FII) खोलकर विदेशी पूंजी के अंतर्वाह को बढ़ावा देना, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) के नियंत्रण में अधिक छूट, सरकार का इसकी वित्तीय ज़रूरतें पूरी करने के लिए कुल केंद्रीय बैंक उधार का महत्वपूर्ण मापदंड और आर. बी. आई. (RBI) को देश के आंतरिक और बाह्य संतुलन बनाने के लिए स्वायत्त शासन के पूरी तरह मापदंड दिये गये। वहाँ आयात की प्रतिस्थापन नीति का परित्याग और क्रमिक उद्योग का उदारीकरण, जिसका असर मुख्यतः घरेलू उत्पादन और अवशोषण के संयोजन पर पड़ा था। 1991 में सुधारों के प्रारंभ के पश्चात एक बाज़ार-हितैषी तरीके का हस्तक्षेप

हुआ। कुछ सामरिक उद्योगों को छोड़कर, स्थापना और क्षमता विस्तार के लिए सरकार के लाइसेंस प्रणाली का उन्मूलन हुआ। अंतर्राष्ट्रीय उद्योग को उदार बनाया गया। प्रतियोगिता और कुशलता को बढ़ावा देने और सभी तरह के आयात कोटा को हटाया गया, उपभोक्ता वस्तुओं को छोड़कर और शुल्क-दर को मध्यम स्तर पर कम करना। विदेशी निवेश का संवर्धन आधुनिक तकनीक और विश्व श्रम विभाजन के लाभ के लिए किया गया (पारिख 1999)।

भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण

"वैश्वीकरण" शब्द अर्थव्यवस्था के संदर्भ में चर्चा करता है:

क) उद्योग व्यवधान को घटाना और देश के अंदर और बाहर माल की स्वतंत्र पूर्ति व आपूर्ति का अवलोकन;

ख) विदेशी पूंजी की निवेश के लिए स्वतंत्र आपूर्ति;

ग) विदेशी पूंजी तकनीक की स्वतंत्र आपूर्ति; और

घ) श्रम और जनशक्ति की स्वतंत्र गति।

भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्वव्यापीकरण से तात्पर्य उदारीकरण व मुक्त निजी निवेश के द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था से एकीकरण है। भारतीय अर्थव्यवस्था को सुधारने तथा चुनौतियों का सामना करने के लिए इसकी शुरूआत की गई है।

सोचिए और कीजिए 16.4

स्वतंत्रता के पश्चात नई आर्थिक नीति अपनाने से जो परिवर्तन भारत की आर्थिक नीति में आए हैं उनकी चर्चा कीजिए।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

व्यापार, उद्योग और वित्त का उदारीकरण और निजीकरण तथा बुनियादी संरचना

1991 से पहले कई सालों से अब तक भारतीय अर्थव्यवस्था का नियमित उदारीकरण होता रहा है। अंतर्राष्ट्रीय उद्योग का उदारीकरण हुआ और अधिक से अधिक क्षेत्र विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और निवेश सूची में पूंजी लगाने के लिए खुले जिन्होंने विदेशी निवेशकों को दूरसंचार, सड़कें, समुद्र और हवाई अड्डे, बीमा और दूसरे मुख्य क्षेत्रों में प्रवेश को आसान बनाया।

1991 में, भारत सरकार ने उद्योग के विभिन्न चरणों से संबंधित उदारीकरण के कई मापदंड स्थापित किए। उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों और निर्यात में लगी औद्योगिक कम्पनियों के लिए 51 प्रतिशत निष्पक्ष स्वीकृति अपने आप शामिल है, निर्यात से जुड़ी हुई इकाइयों के लिए 100 प्रतिशत निष्पक्ष हिस्सा, कुछ शर्तों पर और अप्रवासियों और समुद्र-पार से आए सामूहिक वर्ग (OCBS) की उच्च प्राथमिकता वाले उद्योगों आदि में 100 प्रतिशत निष्पक्ष निवेश की स्वीकृति मिली।

1996-1997 में 13 और क्षेत्रों को 51 प्रतिशत निष्पक्ष अपने आप स्वीकृति के रास्ते में शामिल करके, उदारीकरण को और आगे बढ़ाया, 50 प्रतिशत तक आगे बढ़ाते हुए 9 प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में अपने आप स्वीकृति और विदेशी निवेश प्रवर्तन बोर्ड (FPIB) के पुनः निर्माण की घोषणा की।

अगले साल में एफ. पी. आई बी. (FPIB) के रास्ते द्वारा वित्तीय सेवा में एफ.डी.आई. (FDI) को स्वीकृति दी गई और ए. डी. आई. (FDI) के लिए पन्द्रह गैर-बैंकिंग वित्तीय-सेवा का परिचय कराया गया। एफ. डी. आई. (FDI) के लिए स्वचालित मार्ग की स्वीकृति को कुछ बुनियादी संरचना की गतिविधियों के लिए सरल बनाया गया।

हर अनुवर्ती साल में एफ. डी. आई. का उदारीकरण घोषित किया गया, जिसमें 1999 में घरेलू बीमा कंपनियों में 26 प्रतिशत विदेशी निष्पक्ष सहयोग था और 2002 में निवेश को सभी क्षेत्रों में लगाया गया, एक छोटी नकारात्मक सूची, जो स्वचालित मार्ग में आती है, उसे एफ. डी. आई. (FDI) की अनुमति के लिए छोड़ दिया गया।

1995-96 में, विदेशी निवेश सूची में निवेश को उदार बनाया गया, एन.आर.आई. (NRIs), ओ. सी. बी. (OCBs) और विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) को भारतीय कंपनियों में 24 प्रतिशत निष्पक्ष निवेश की स्वीकृति दी। यह सीमा 1998-99 में 30 प्रतिशत तक बढ़ा दी गई। पुरानी प्रतिभूतियाँ और अप्रैल 1998 से सरकारी हुण्डियों में निवेश करने की स्वीकृति दी। 1995 से अब तक हर साल वैश्विक न्यासी रसीद (Global Depository Receipts) और अमेरिकन डिपोजिट्री रेसिप्ट (American Depository Receipts) के द्वारा भारतीय कंपनियों में विदेशी पूंजी के प्रवेश को उदार बनाने के लिए कई तरह के क़दम उठाये गए। चीन और दूसरी दक्षिणपूर्वी एशिया की अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में जैसे कि इंडोनेशिया, मलेशिया और थाईलैंड– भारत उदारीकरण के मापदंडों के बावजूद बहुत कम एफ. डी. आई (FDIs) को लुभा सका। दीर्घकालीन पूंजी के अंतःप्रवाह के लिए भारत की सीमित सफलता, विशेषकर एफ. डी. आई. (FDI) का श्रेय तीन कारकों को जाता है। पहला उदारीकरण के बाद भी भारी नियंत्रण पूरी तरह से नहीं गया है। दूसरा, प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में एफ. डी. आई. (FDI) को घरेलू उद्योग से मुक़ाबला करना पड़ता है। तीसरा, भौतिक और क़ानूनी आधारभूत ढाँचे में अपर्याप्ता भारत की समावेशन क्षमता को सीमित करता है और इसलिए इसको निजी विदेशी निवेशकों की तरफ़ आकर्षित करता है (श्रीनिवासन 2003)।

औद्योगिक क्षेत्र औद्योगिक अनुज्ञापन का उदारीकरण का हिस्सा होने पर, निवेश के स्तर पर ध्यान दिए बिना, जुलाई 1991 में 18 उद्योगों को छोड़कर बाक़ी सबके लिए इसका उन्मूलन कर दिया गया। 1998-99 में, इसमें से 12 को अनुज्ञापन की मांग से हटा दिया गया। कई उद्योग जिनको सिर्फ़ सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा विकास के लिए आरक्षित रखा गया था उन्हें 1991-92 में 17 से घटाकर 2000-01 में 3 तक कर दिया। यह दो मुख्य सुधार हैं। एकाधिकार (Monopoly) और प्रतिबंधक व्यापार प्रचलन (Restrictive Trade Practices) (MRTP) 1969 एक्ट का संशोधन 1991-92 में हुआ, एम. आर. टी. पी. (MRTP) और प्रभावशाली व्यवसाय का ध्यान रखते हुए, परिसम्पत्ति को प्रारंभ की सीमाओं को ख़त्म किया गया। दि कम्पीटिशन बिल (The Competition Bill) जिसमें आधुनिक प्रतियोगी क़ानून का समावेश था, को संसद में 2001 में प्रस्तुत किया गया। लघु उद्योगों (SSI) द्वारा वस्तुओं के उत्पादन के आरक्षण का उन्मूलन 1997 से 2003 तक हुआ, सब मिलाकर 163 वस्तुओं को आरक्षित नहीं रखा गया (वही)।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

वित्तीय क्षेत्रों में सुधारों का मुख्य दबाव कुशल और स्थायी वित्तीय संगठनों और बाज़ार की रचना करने पर था, बैंकिंग के साथ-साथ ग़ैर-बैंकिंग वित्तीय संगठनों ने सुधार के विषय में अनियमित वातावरण का सृजन और बाज़ार बल को स्वतंत्र व्यापार के योग्य बनाना और जबकि उसी समय विवेकपूर्ण आदर्श और निरीक्षण व्यवस्था को मज़बूत बनाने की ओर ध्यान केंद्रित किया। बैंकिंग क्षेत्र में, विशेष ध्यान परिचालन के लचीलेपन की सूचना देने और प्रक्रियात्मक स्वशासन और कुशलता को बढ़ाने, उत्पादकता और लाभदायक व्यवस्था को ताक़त देने और आर्थिक मज़बूती सुनिश्चित करने के उद्देश्य पर बल दिया गया। वित्तीय बाज़ार में सुधारों का ध्यान ढांचे के अवरोधों के निष्कासन, नए खिलाड़ियों/उपकरणों का परिचय, वित्तीय परिसंपत्ति का मुफ्त मूल्यांकन, परिमाण नियंत्रण पर छूट, व्यापार में सुधार, निकासी और समंजन अभ्यास, अधिक पारदर्शकता आदि पर दिया गया।

> **सोचिए और कीजिए 16.5**
>
> भारत सरकार द्वारा भारतीय उद्योग और वित्तीय क्षेत्र के उदारीकरण के लिए क्या क़दम उठाए गए। इसके सामाजिक उलझावों की जाँच कीजिए।

दिसम्बर 1991 में सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों (PSUS) का हिस्सा होने से इक्विटी (Equity) का अनिवेश शुरू हुआ और 1991-92 में अनिवेश कमीशन की स्थापना इक्विटी अनिवेश के लिए पी. एस. यू. (PSUS) को पहचानने और अनिवेश की निश्चयमात्रा की सलाह देने के लिए हुई। पहले दशक में सुधारों की गति और राजस्व की प्राप्ति संतोषजनक नहीं थी, जो सार्वजनिक संतुलित इक्विटी 78,300 करोड़ रुपये लक्ष्य का लगभग 35 प्रतिशत जिसे 1991-92 से 2002-03 (भारत 2003) की अवधि में अनुभव किया गया)। भारत एल्यूमीनियम कंपनी लिमिटेड (BALCO) के सफलतापूर्वक निजीकरण विशेषकर सुप्रीम कोर्ट की चुनौती के पश्चात इसकी पुष्टि, ने बेहतरी के लिए निजीकरण के स्वरूप में परिवर्तन कर दिया। यद्यपि पी. एस. यू. का अच्छी संख्या में अनिवेश या तो अक्विटी की बिक्री के द्वारा या युक्तिपूर्ण बिक्री के द्वारा हुआ, इंडियन एयरलाइन्स, एयर-इंडिया आदि उच्च रूपरेखा वाले पी. एस. यू. के अनिवेश पर राजकीय असहमति से सलाह दी कि राजकीय अर्थव्यवस्था हमारे देश में बृहत स्तर पर अनिवेश के लिए अभी भी प्रतिकूल है।

अक्तूबर 1991 में आधारभूत ढांचे के क्षेत्र में निजीकरण संगत वैधीकरण के सुधार से शुरू हुआ और निजी उद्यम की शक्ति उत्पादन में प्रवेश करने की अनुमति दी। लेकिन डेढ़ दशक के बाद भी यह क्षेत्र कोई प्रगति नहीं कर पाया। जबकि दूरसंचार क्षेत्र में सुधारों को अधिक सफलता प्राप्त हुई। 1992 में मूल्य वर्धित सेवा (Value added services) निजी क्षेत्र के लिए खोली गई, इसके पश्चात 1994-95 में नेशलन टेलीकॉम पालिसी (National Telecom Policy) को प्रतिपादित किया गया, जिसने मूल दूरसंचार सेवाओं को प्रतियोगिता में प्रवेश दिलाया। अगर किसी भारतीय और विदेशी फ़र्म के बीच संयुक्त व्यापार समझौता होता है तो 49 प्रतिशत तक विदेशी इक्विटी सहयोग की अनुमति मिली। 1997 में दि टेलीकॉम रेग्युलेटरी ॲथारिटी ऑफ़ इंडिया (TRAI) की स्थापना हुई। सार्वजनिक रूप से अपने दूरसंचार व्यवसाय और नीति-निर्माण कार्य, जो दोनों ही मुख्य रूप से दूरसंचार विभाग में आते हैं, सेवा-प्रबंधक कार्य को इनसे अलग करने के इरादे से, एक अलग दूर संचार सेवा विभाग 1999-2000 में स्थापित किया गया। 2000-01 में दो सार्वजनिक क्षेत्र की सेवा व्यवस्था करने वालों को सही बना दिया गया। 2002-03 में लंबी दूरी वाले अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, जिस पर सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार था, अप्रतिबंधित प्रवेश के लिए खोला गया। (अप्रैल 2002 में, दि यूनिवर्सल सर्विस स्पोर्ट पॉलिसी (The Universl Service Support Policy) कार्यान्वित हुई, जिसके अंतर्गत व्यापक कार्य उगाही (Universal Service Levy) सभी दूरसंचार संवाहकों (शुद्ध मूल्य पर जुड़ने वाली सेवा व्यवस्था को छोड़कर) कुल राजस्व का 5 प्रतिशत समायोजन निश्चित किया गया। सुधारों के दो मुख्य लक्ष्य हैं: अधिक से अधिक व्यक्तियों तक न्यूनतम मूल्य की आवाज़ टेलीफोन से सूचना तेज वाले कम्प्यूटर नेटवर्क बड़ी संख्या में फ़र्मों को उपलब्ध हो सके (श्रीनिवासन 2003)।

आधारभूत ढांचे के सुधारों के क्षेत्र में सड़कें एक दूसरा क्षेत्र है। इसका मूल सुधार था राष्ट्रीय, राज्य और ग्रामीण सड़क निर्माण के लिए धन-राशि के मुख्य नए स्त्रोतों का निर्माण करना, जिसे कि सेंट्रल रोडफंड (CRF) के नाम से जाना जाता है जोकि 2000 एक्ट के सेंट्रल रोडफंड में आता है। राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना (The National Highway Development Project) जिसे सी. आर. एफ. द्वारा वित्तीय सहायता मिली, दुनिया का एक मात्र सबसे बड़ी राजमार्ग (हाईवे) परियोजना है। इसके अंतर्गत 6000 कि. मी. के करीब गोल्डन क्वाड्रिलेटरेल (GO) जो चार महानगरों चेन्नई, दिल्ली, कोलकत्ता और मुंबई और

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

7300 कि. मी. उंत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम के बीच की पट्टी को जोड़ती है। भारतीय रेलवे (IR) ने कई सुधारों को अपना कार्य सुधारने के लिए प्रारंभ किया है। सरकार ने चार मेट्रो हवाई अड्डों (चेन्नई, दिल्ली, कोलकत्ता और मुंबई) के पुनः निर्माण की स्वीकृति भी दे दी है जो विश्व में उच्च कोटि के होंगे और मुख्य विचार के संबंध में स्वीकृति भी दे दी है, नए अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे बैंगलोर, हैदराबाद और गोवा को तैयार करने में निजी क्षेत्र का सहयोग होगा (भारत 2003)।

सोचिए और कीजिए 16.6

क्या आपने अख़बार में दूरसंचार के क्षेत्र में अनिवेश से संबंधित राजनैतिक बहस को पढ़ा है? आपके विचार ने दूरसंचार क्षेत्र के निजीकरण से संकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव क्या हैं।

आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में सुधारों का प्रभाव

डेढ़ दशक से भारत ने नई आर्थिक नीति अपनाई और अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का रास्ता प्रारंभ किया। मिश्रित अर्थव्यवस्था से सहसा नीति परिवर्तन नीति जिसका 1990 तक अनुगमन किया गया, अपना प्रभाव आर्थिक और सामाजिक दोनों क्षेत्रों में दिखायेगा। यहाँ हम इन प्रभावों को इक्ट्ठा कर लेते हैं यहाँ पर यह बात ज़ोर देने वाली है कि सभी समष्टि अर्थशास्त्र सूचकों का श्रेय सिर्फ़ सुधार कार्यक्रमों को ही नहीं जाता है।

अगर हम इसकी पिछली अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में सकारात्मक प्रभाव को देखते हैं तो हम पाते हैं कि 1991-92 में सकल घरेलू उत्पादन (GDP) दर नीचे गिरने के साथ ही कुल निवेश में भी तीव्र ह्रास हुआ और 1992-93 से आगे से सकल घरेलू उत्पादन में तेज़ी आई। वास्तव में न केवल सकल घरेलू उत्पादन दर बढ़ी, प्रति व्यक्ति आय और पूंजी संग्रह में भी, 70 और 80 के दशकों के संवादी औसत की तुलना में, 1992-2001 में अधिक वृद्धि हुई। 1993-94 और 1992-2000 के बीच निर्धनता दर 36.0 प्रतिशत से 26.1 प्रतिशत तक नीचे गिरी (भारत 2003)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बाह्य क्षेत्र में अर्थव्यवस्था का कार्य उल्लेखनीय था। शेष भुगतान, विदेशी विनिमय आरक्षण में वृद्धि, अल्पकालिक ऋण में तीव्र ह्रास जैसे विदेशी विनिमय आरक्षण प्रतिशत आदि, में महत्वपूर्ण सुधार हुआ, आर्थिक अर्थव्यवस्था के सुधारों की वजह से अर्थव्यवस्था और अधिक उन्मुक्त हो गई और देश में विदेशी व्यापार के नियति के हिस्से में वृद्धि 0.5 प्रतिशत से नीचे तक तकरीबन 0.6 प्रतिशत एक दशक से ऊपर की अवधि के दौरान हुई।

वित्तीय सुधारों की कुछ मुख्य उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं।

- उद्योग के घरेलू नियंत्रण को हटाना, औद्योगिक व्यवस्था के अनुज्ञापन और उत्पादन-नियंत्रण को अलग-अलग करना जिसने कि घरेलू प्रतियोगिता को बढ़ाया है।
- व्यापार का उदारीक़रण और शुल्क-दर में महत्वपूर्ण गिरावट
- वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण

इन सकारात्मक विकास की प्रवृतियों के साथ उस समय कुछ नकारात्मक विचारधारा भी थी। तीव्र पुनः प्राप्ति के प्रबंध के पश्चात आर्थिक सुधारों के शुरू के कुछ सालों में भारत की अर्थव्यवस्था ने इसके विकास के संवेग को खो दिया। 1992-97 की तुलना में औसल जी. डी. पी (GDP) और प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि 1997-2001 में सार्थक रूप से बहुत नीचे थी। 1990 के दशक के दौरान दूसरा चिंताजनक परिवर्तन वह था संपूर्ण रोज़गार में बहुत निम्न वृद्धि जोकि सुधार के कार्यक्रम इस तथ्य को झुठलाते थे कि श्रम की तीव्र गतिविधियों

की प्रेरणा के द्वारा देश की विकास प्रक्रिया में विशाल अनुपर्युक्त मानव-संसाधनों को मदद मिलेगी। 1983-94 और 1994-2000 की अवधि में नवीनतम सर्वेक्षण दिखाता है कि कुल रोज़गार की वार्षिक वृद्धि दर 2.04 प्रतिशत से 0.98 प्रतिशत की गिरावट में रिकार्ड की गई।

वित्तीय क्षेत्र के सुधार दूसरे क्षेत्रों के सुधारों की अपेक्षा अधिक व्यापक थे। फिर भी इस क्षेत्र ने भी कुछ नकारात्मक विकास का प्रदर्शन किया है। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण यह है:

अ) वाणिज्य क्षेत्र में बैंक के उधार का ह्रास और बैंक की बढ़ती हुई प्रतिभूति न्यूनतम संविदा की SLR से ज़्यादा न हो।

ब) पूंजी-बाज़ार की असफलता, विशेषकर 1995-2000 में, घरेलू पूंजी-बाज़ार के लिए वित्त की व्यवस्था करना। 1980 के दशक और उससे पहले एक और प्रतिघात भारतीय अर्थव्यवस्था के उन्मुक्त होने का यह था कि इसे काफ़ी हद तक बाह्य (वित्तीय) आघातों के प्रभाव में डाला गया था (रक्षित 1998)।

सामाजिक क्षेत्र में भी विश्वव्यापीकरण के लक्षण, नकारात्मक और सकारात्मक, दोनों प्रवृत्तियों के थे। परंपरागत तकनीक के स्थान पर आधुनिक तकनीक के आने से बेरोज़गारी ने नकारात्मक प्रभाव डाला, जबकि रोज़गार बाज़ार में नए अवसरों की उपर्युक्तता ने अपना सकारात्मक प्रभाव छोड़ा है। SEWA एकॅडमी द्वारा वैश्वीकरण का अनौपचारिक क्षेत्र पर प्रभाव (The Impact of Globalisation on Informal Sector) पर अध्ययन बताता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्वव्यापीकरण के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव इस क्षेत्र पर है। उदाहरण के तौर पर निर्माण के क्षेत्र में मशीनों के आने से शहरी क्षेत्र में श्रम की मांग में कमी हुई है जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ी है। जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में भी मिट्टी की बजाय घर सीमेंट और ईंटों से बनने लगे हैं। दूसरी तरफ, विश्व-बाज़ार में कढ़ाई के काम की वृद्धि ने कढ़ाई के कारीगरों के लिए काम में बढ़ोतरी हुई है। दूसरी तरफ विश्वव्यापीकरण के कारण वस्त्रोद्योग के कारीगरों ने भी सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक प्रभावों से गुज़रे हैं। कपड़ों की बढ़ती हुई मांग से वस्त्रोद्योग के क्षेत्र में काम की वृद्धि हुई है। लेकिन फैशन की दुनिया में लगातार परिवर्तन ने कार्य-क्षमता को बढ़ाने की मांग की है जोकि अनौपचारिक क्षेत्र के कारीगरों के लिए कठिन है। छोटे और सीमांत किसानों ने भी विश्वव्यापीकरण से लाभ कमाया है जैसे कि वे साल में तीन बार तकनीकी सुधार के कारण अपनी भूमि पर खेती कर सकते हैं लेकिन अधिक उर्वरक और कीटनाशक के उपयोग ने किसानों के कुल लाभ को कम किया है।

सोचिए और कीजिए 16.7

व्यापार के उदारीकरण के साथ भारत में श्रम-मानदंडों की जाँच पड़ताल कीजिए। कार्यवाही के लिए अखबार की रिर्पोट आदि लीजिए।

उदारीकरण और विश्वव्यापीकरण की विकासशील तकनीकों के कारण चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में उपकरण और औषधियाँ हमारे देश में भी उपलब्ध हैं। इसलिए फोन की सहायता से आज अमरीका और जर्मनी के विशेषज्ञ डॉक्टर भारत में ही लगातार चल रहे ऑपरेशन में सहायता कर सकते हैं। ऑपरेशन के लिए ज़रूरी प्रगतिशील उपकरणों का उत्पादन भी भारत में ही हो रहा है, जिसने कि ऑपरेशन के वक्त ज़रूरी सामान की लागत कीमतों को कम किया है। भारत सरकार के औषधियों से मूल्य-नियंत्रण को हटाने से दवा-विनिर्माताओं के बीच कड़ी प्रतिस्पर्धा देखी गई है। इसके परिणामस्वरूप कुछ दवाओं की कीमतें कम हुई हैं।

MAADHYAM IAS

इन सकारात्मक पहलुओं के बावजूद, विश्वव्यापीकरण के कारण स्वास्थ्य क्षेत्र में कुछ नकारात्मक पहलू भी हैं। उदाहरण के लिए, कुछ ज़रूरी और जीवन-रक्षक दवाएं, मूल्य नियंत्रण के उन्मूलन से मंहगी हो गई हैं और बहुत सारी अयुक्त दवाएं पहले से ज़्यादा बाज़ार में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, आजकल उच्च दर्जे की एन्टीबायोटिक्स (antibiotics) छोटी सी स्थिति में भी लिख दी जाती हैं जैसे सर्दी और खाँसी। इसका उल्टा असर दवा विरोध होता है।

16.6 भारत में सूचना एवं संचार तकनीक (आई.सी.टी.) में क्रांति

नए युग ने दुनिया के अंतःसंयोजकों को बहुत अधिक जोड़कर, आंकड़ों और सूचना के तेज़ बहाव, समय और राष्ट्रीय सीमाओं को छोटा करके, इसका स्वागत किया है। इस तेज़ परिवर्तन के पीछे जो शक्ति है, वे हैं सूचना और संचार की तकनीकों (आई. सी. टी.) में क्रांतिकारी परिवर्तन।

21वीं सदी के शुरू में भारत में डिज़िटल अर्थव्यवस्था का विकास हुआ और इसके फलस्वरूप सेल्युलर फोन बाज़ार, ठेके पर काम देने की प्रकृति में बढ़त, इंटरनैट का विकास, जन-माध्यम की प्रगति, ग्रामीण आई. सी. टी. में विकास इसका प्रमाण है। भारत में आई. सी. टी. राजस्व 1990 में 150,00,000,000 (150 मिलियन डालर) से 1999 में 4 खरब डालर तक बढ़ा। विश्व का बाह्य स्रोतों का बाज़ार 100 बिलियन डालर से ऊपर का है, 185 फ़ॉरचून (Fartune) 500 कंपनियाँ भारत की बाह्य स्रोतों की जो साफ्टवेयर की आवश्यकताएं हैं उनको पूरा करती है। वर्तमानकालिक भारत की 1250 कंपनियाँ आई. सी. टी. साफ्टवेयर का निर्यात कर रही हैं (*ह्यूमन डवेलपमेंट रिर्पोट* 2001)।

भारत सरकार अपनी भूमि और लोगों में सूचना एवं संचार तकनीक में क्रांति को प्रोत्साहन देने के लिए विशेष पहल कर रही है। कम्प्यूटर के पुर्ज़े और सेल्युलर फोन पर उत्पादन शुल्क की कटौती से 2004-2005 में सूचना एवं संचार तकनीक उद्योग में मशीनी पुर्ज़ों की घरेलू मांग बढ़ने की आशाएं हैं। कई तरह की उच्च रूपरेखा की घटनाओं को आई. सी. टी. क्रांति के महत्व और बेहतर परिणामों के लिए इसे वहाँ केंद्रित किया गया है, विशेषकर जहाँ भारत की अधिकतर जनसंख्या रहती है।

MAADHYAM IAS

भारत के आई. टी. मंत्रालय ने सूचना एवं संचार तकनीक में भाषा के द्वारा क्रांति लाई है। भारत 22 सरकारी भाषाओं का देश है, जिसमें से भारतीय जनसंख्या का 5 प्रतिशत ही अंग्रेज़ी पढ़ और समझ सकता है। अगर भारत दूरसंचार में ध्यानपूर्वक प्रवेश करने की प्रमाणित कर भी देता है, सिर्फ़ अंग्रेज़ी में इसकी उपलब्धता सूचना एवं संचार तकनीक को ज़्यादा उपयोगी नहीं बना पायेगी। इसको सब तक आसानी से पहुंचाने के लिए इसकी उपलब्धता सरकारी भारतीय भाषाओं में होनी चाहिए। 2005 में हिंदी का साफ्टवेयर निकाला गया था। सरकार कम्प्यूटर साफ्टवेयर को बाकी की भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराने की कोशिश में लगी हुई है।

सूचना एवं संचार तकनीक को प्रभावकारी तरीके से ग़रीबी कम करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह ग़रीबों के स्वास्थ्य की पहुंच में सुधार कर सकता है, लघु उधार, सरकारी सेवाएं और रोज़गार के सीधे अवसर उपलब्ध कराना, लोगों को प्रशिक्षण और शिक्षा उपलब्ध कराना, कृषि और ग़ैर कृषि उत्पादन, संग्रहण और बाज़ार के लिए ग़रीबों की सहायता कर सकता है। सूचना एवं संचार तकनीक उत्पादन को सहज बना सकती है और समुदाय पर आधारित जानकारी का आदान-प्रदान कर सकते है और छोटे और औसत दर्ज़े के उद्योगों की स्थापना को बढ़ा सकता है। जानकारी में जो बाधाएं आती हैं उन्हें तोड़कर ग्रामीण ग़रीबों के लिए मांग द्वारा सूचना और सेवाओं की व्यवस्था कर सकता है। निर्धनता से पहले भारत में सूचना एवं संचार तकनीक ने कई नई शुरूआत की जिनका लक्ष्य मुख्यतः बाज़ार की उपलब्धता को सुधारना और आजीविका के सुधार के लिए और अधिक जानकारी

देना था। उदाहरण के लिए ग्रामीण सूचना और अनुसंधान परियोजना (Information Village Research Project) अनुसंधान केंद्र द्वारा दीर्घकालीन कृषि और ग्रामीण विकास एम. एस. स्वामीनाथन द्वारा रिसर्च फाउण्डेशन चेन्नई और तमिलनाडू में चलाई गई (www.mscrt.org)। यह दूरकेंद्र द्वारा लोगों को दूरसंचार सुविधा और सूचना सेवाएं जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, बाज़ार आंकड़े, तकनीकी और पिछड़े हुए समुदाय के लिए आजीविका की सुविधा की व्यवस्था करता है। संस्था के दूरकेंद्र ग्रामीण किसानों को कृषि के आंकड़ों की व्यवस्था कराता है, मूल्य और कृषि-निवेश की उपलब्धता (कीटनाशक, उर्वरक और बीज), स्वास्थ्य और जीवन बीमा, कल्याण के अवसर और दूसरी ज़रूरी जानकारी की व्यवस्था करता है। ई-कामर्स को भी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में उपर्युक्त स्थान मिल गया है। इलैक्ट्रानिक्स कार्मस, या ई-कामर्स, वस्तुओं और सेवाओं को क्रय-विक्रय नेटवर्क पर विशेषकर इंटरनेट द्वारा शामिल करता है। यह वस्तुएं और सेवाएं विश्व में कहीं से भी मंगाई जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, तमिलनाडू में एक गाँव जिसकी परंपरागत सूती साड़ियाँ बनाने में विशिष्टता है, पूरे विश्व में अपनी वस्तुओं को व्यापारियों की एक वैब साइट द्वारा जो अमरीका की. एक गैर-सरकारी संगठन (NGO) द्वारा संचालित की जाती है और जिसे PEOP Link (www.peoplink.org) द्वारा जाना जाता है, बेचता हैं पांडिचेरी में दूरसंचार केन्द्र सेवाओं ने वहाँ के ग्रामवासियों को उनकी स्थानीय जड़ी-बूटियों के बारे में बहुत अधिक जानकारी को जड़ी-बूटियाँसंसाधन केंद्र की स्थापना के लिए कार्य में लाने के लिए प्रोत्साहित किया। दूरसंचार की सेवाओं का उपयोग करते हुए, ग्रामवासियों ने यह भी सीख लिया है कि जड़ी बूटियों को कैसे बांधकर बाज़ार में [illegible] है।

भारत में नई सूचना और संचार तकनीकों को व्यापक रूप से शिक्षा और गहन अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए इस्तेमाल किया गया है। आजकल इंटरनेट दूर से अध्ययन और प्रशिक्षण के हज़ारों कार्यक्रमों का संचालक वस्तुतः किसी भी सोचने योग्य विषय पर करता है। आई. जी. एन. ओ. यू. (Indira Gandhi National Open University) उदाहरण के तौर पर कई तरह के शैक्षिक कार्यक्रम इंटरनेट के द्वारा प्रस्तुत करता है। साथ ही इसने व्यापक रूप से नई आई. सी. टीस. के आजकल के कार्यक्रमों जैसे प्रवेश प्रक्रिया परिणामों को प्रकाशित करना, लाईब्रेरी सुविधाएं आदि।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बाक्स 16.2: भारत में ज्ञानदूत परियोजनाः ई-सरकार में एक नई खोज

ज्ञानदूत परियोजना ई-सरकार में एक नई खोज के रूप में पहचानी जाती है, जिसने 2000 में सार्वजनिक सेवा और प्रजातंत्र में स्टॉकहोम चेलैंज आई. टी. अवार्ड (Stocksholm challenge Award) जीता। केंद्र भारत में जो सीमांत जनजातीय हैं उन्हें इस परियोजना ने यह पहला मौका दिया है कि वे विद्युत-साधनों द्वारा अपनी जानकारी को पहुंच को बढ़ा सके। मध्य-प्रदेश राज्य में, धर क्षेत्र में, जनसंख्या अनुमानतः 1.7 मिलियन होगी, अधिकतर जो ग़रीब हैं और ग़रीबी रेखा पर हैं। 60 प्रतिशत के करीब लोग ग़रीबी रेखा से नीचे हैं और अधिकतर अशिक्षित हैं। वे कृषि के छोटे उत्पादनों पर निर्भर करते हैं और अधिकतर उनका शोषण बिचौलियों, स्थानीय साहूकार, और भ्रष्टाचारी कर्मचारी करते है। ज्ञानदूत परियोजना ने 31गाँवों के केंद्रों को जोड़ते हुए कम्प्यूटर नेटवर्क शुरू किया और आई. सी. टी. के द्वारा विभिन्न ऑन लाइन सेवाओं की व्यवस्था की, जिसमें (क) ज़मीन से संबंधित राजस्व का कार्य-विवरण, (ख) सार्वजनिक शिकायत की क्षतिपूर्ति, (ग) गाँव की नीलामी, (घ) वैवाहिक स्थल, (ङ) सरकारी सेवाएं और हक़दारी, (च) विशेषज्ञ परामर्श, (छ) सामाजिक समस्याओं पर मुफ्त ई-मेल सुविधा, (ज) रोज़गार समाचार, और (झ) गाँव का एक अख़बार। इस परियोजना के लाभ आधा मिलियन से ज़्यादा लोगों तक पहुंचे नागरिक और सरकार के बीच सुधरी हुई अंतःक्रिया ने पारस्परिक क्रिया और संवाद को स्वीकृति दी, नए संबंधों का निर्माण, अंतर्वयक्तिक नेटवर्क का विकास और दो क्षेत्रों की आपस में संबंध की स्थापना की। सूचना पर बृहतर प्रवेश और नियंत्रण ने समुदाय को अधिक शक्ति दी और परिणामस्वरूप बेहतर शासन आया।

स्रोतः http://www.challenge.stockholm.se/projects.asp

सूचना एवं संचार तकनीक को व्यापक रूप से अपनी जनसंख्या को उपलब्ध कराने के लिए भारत को अभी बहुत लंबा रास्ता तय करना है। नवीनतम तकनीकों की अंकीय भेदनीति के संबंध में अभिगमन, भारतीय जनसंख्या के महत्वपूर्ण बहुमत में व्यापक रूप से आज भी निरंतर बना हुआ है। अंकीय भेदनीति भौगोलिक स्थिति, शैक्षिक उपलब्धि, आय-विभाजन, कौशल उपलब्धि आदि में निरंतर बनी हुई है। काफ़ी हद भारत में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आई. सी. टी.) का प्रवेश सिर्फ़ शहरी क्षेत्रों में ही हो पाया है। ग्रामीण भारत को इस तरह के विकास में से पूरी तरह से निकाल दिया है जहाँ भारतीय जनसंख्या का 90 प्रतिशत रहता है। वहाँ कई और सामाजिक कारक भी हैं, जैसे जाति, धर्म और वर्ग आदि, जो अभी भी भारत के सामाजिक ढांचे पर शासन करते हैं और जो समाज में असमानताओं के अस्तित्व को सहज बनाता है और साथ ही यह (आई. सी. टी.) के प्रेरित विकास को भी दर्शाता है।

16.7 सुधार युग में निर्धनता का आकलन व उन्मूलन

भारत में ग़रीबी मुख्यतः एक ग्रामीण तथ्य है। भारत के तीन चौथाई से ज़्यादा ग़रीब लोग ग्रामीण क्षेत्रों में रहते है। विभिन्न राज्यों के उस पार ग़रीबी में भी व्यापक रूप से परिवर्तन देखा जा सकते हैं। इसके अतिरिक विभिन्न क्षेत्रों के उस पार ग़रीबी कम करने की प्रगति भी अनियमित है। इक्नॉमिक सर्वे के एकत्रित आंकड़ों के आधार पर देव और रानॉडे (Dev and Ranade, 1999) ने सुधार से पहले और पश्चात की अवधि में निर्धनता की दशा की तुलना की है। उनके अनुसारः

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सुधार की अवधि के पहले दो सालों में ग़रीबी बढ़ी।
- 1980 के दशक में ग्रामीण ग़रीबी के तेज़ी से ह्रास होने के तथ्य पर 1991 की अवधि में विराम लग गया।
- 1980 के दशक में ग़रीबी के निरंकुश संख्या में ह्रास हुआ। इसके विपरीत, 1991 की अवधि के पश्चात ने ग़रीबी की निरंकुश संख्या में वृद्धि दिखाई।
- सुधार अवधि के पश्चात ग्रामीण निर्धनता की अपेक्षा शहरी निर्धनता में तेजी से ह्रास हुआ।

वे इस नतीजे पर पहुंचे कि आर्थिक सुधारों का प्रभाव भारत के ग़रीबों पर उनसे कुछ लैटिन अमरीकी देशों से अच्छा रहा लेकिन कुछ पूर्वी एशिया के देशों से बुरा रहा (देव और रॉनाडे 1999)।

तालिका 16.1: भारत में ग़रीबी दर 1973 से अब तक

वर्ष	समस्त भारत, प्रतिशत	ग्रामीण, प्रतिशत	शहरी, प्रतिशत
1973	54.9	56.4	49.0
1978	51.3	53.1	45.2
1983	44.5	45.7	40.8
1988	38.9	39.1	38.2
1994	36.0	37.3	32.4
1999	26.1	27.1	23.6

स्रोतः इक्नॉमिक सर्वे 2000-2001

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

भारत सरकार ने निर्धनता को कम करने के लिए कई तरह के कार्यक्रम अपनाएं जिससे कि ग़रीब अपनी आर्थिक, भौतिक और सामाजिक स्थितियाँ सुधार सकें। यह कार्यक्रम प्रत्यक्ष रूप से ग़रीबों को ध्यान में रखकर बनाए गये हैं और सामान्य आर्थिक गतिविधियों से मिले लाभ सीधे ग़रीबों को ही जायेंगे। वे कार्यक्रम जिनका लक्ष्य ग़रीबी कम करना है, पूरी जनसंख्या की बजाय उनका लक्ष्य सिर्फ़ ग़रीबों की सहायता करना ही है। विकास के कार्यक्रमों का मूलाधार ग़रीब हैं क्योंकि इन कार्यक्रमों से जो लाभ या सामाजिक आय आयेगी, वह आय वितरण के संबंध में जनसंख्या के उच्च-सिरे की तुलना में निचले सिरे की जनसंख्या को अधिक होंगे।

भारत में ग़रीबों के लिए मुख्य प्रचलित कार्यक्रमों को हम मौटे-तौर पर तीन श्रेणियों में रख सकते हैं। i) रोज़गार वेतन कार्यक्रम, ii) उधार पर आधारित स्वनियोजन कार्यक्रम, iii) सार्वजनिक वितरण व्यवस्था और पोषण कार्यक्रम।

आर्थिक सुधार और ग़रीबी उन्मूलन पर प्रभाव

अर्थव्यवस्था के उन्मुक्त होने का एक प्रभाव यह पड़ा है कि इससे बड़े महानगरीय शहर पुनःक्रियाशील हो गए हैं। निजी निवेश, विदेशी और भारतीय दोनों का ही झुकाव बड़े शहरों में और उसके आसपास ही केंद्रित हो गया है (शाव 1999)। स्थानीय सरकारों ने इन निवेशों को आकर्षित करने के लिए कई तरह के प्रोत्साहन पेश किए हैं। बड़े महानगरीय शहर बाह्य रूप संस्कार के प्रयोग जैसे शहर की सफाई सुन्दरीकरण और पर्यावरण नियंत्रण जैसे कार्यक्रमों में लगे हुए हैं। जबकि शहरों की अधिकतर जगह निजी व्यापारियों और सेवा उद्योग संस्थापकों द्वारा अर्जित कर ली गई और ग़रीब, विशेषकर गंदी बस्तियों में रहने वाले, फेरी वाले, अभावग्रस्त बस्तियों में रहने वालों को शहर से बाहर, उपान्त क्षेत्र में भेज दिया (कुन्डू 1997)। शहर के उपान्त क्षेत्र का ह्रास निम्न मूल्य के रोज़गार गरीब जीवन-स्तर, की बजह से शहरी ग़रीबों की हालत और ख़राब होती गई।

MAADHYAM IAS

विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के कई आयाम खुलने से यंत्र निर्माण कला की मुख्य रूप से कल्पना की गई, व्यापार को ऐसे माध्यम से देखा गया जो वृद्धि के इंजन की तरह कार्य करेगा ओर विकास का फल ग़रीबों तक पहुंच पायेगा। कुछ हद तक परिणाम मिले जुले थे, परंपरागत व्यापार सिद्धांत निर्धारण के विपरीत, बहुत सारे देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं में व्यापक रूप से फैली हुई असमानताओं का प्रेक्षण कर रहे थे (बारधन 2001)।

व्यापार के अंतर्राष्ट्रीयकरण ने विश्वव्यापीकरण के लिए परिदृश्य खोल दिए है, श्रम बाज़ार में उत्पादन द्वारा उत्पन्न गहरे परिवर्तन, जैसे कि वेतन में बढ़ती विषमताएं, कार्य का बढ़ता हुआ संविदात्मकरण, निपुणता के आधार पर काम का पृथक्करण आदि। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत का 90 प्रतिशत कार्यबल असंगठित क्षेत्र में लगा हुआ है। शायद ही कोई क़ानूनी समर्थन, सामाजिक व्यय, या किसी भी तरह का समर्थन इस वर्ग के कर्मचारियों को हो, जोकि सब वर्गों में सबसे ग़रीब कर्मचारी हैं। न ही इनके पास संस्थागत समर्थन है जिससे यह सामूहिक रूप से सौदा करने की क्षमता रख सके। इनमें से अधिकतर लोगों के पास काम करने का कोई नियत स्थान नहीं है, काम के निर्धारित घंटे नहीं है, वेतन नियत नहीं है, और नौकरी का कोई सुरक्षा नहीं है। इस तरह वह निर्धनता के वर्ग में सबसे अधिक असुरक्षित समझा जाने लगा। विश्वव्यापीकरण के संबंध में तर्क दिया जाता है कि इसने अर्थव्यवस्था में रोज़गार उपलब्धियों को "अनौपचारिक" और "अनियमततापूर्ण" कर दिया है, इसलिए इससे आगे रोज़गार के संगठित रूप को विस्तृत करना चाहिए। यह देखा गया है कि आर्थिक सुधारों ने इस क्षेत्र को सिर्फ़ कमज़ोर किया है।

सोचिए और कीजिए 16.8

क्या आप सोचते है कि भारत में पिछली डेढ़ शताब्दी से आर्थिक सुधारों ने हमारे समाज से ग़रीबी उन्मूलन को सरल बनाया है? अपने उत्तर को उचित सिद्ध करने में मान्य कारण दीजिए।

1990 के दशक में सामाजिक क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) के अनुपात में व्यय गतिहीन रहा है और निश्चित रूप से ग्रामीण विकास से दूर हुए है (देव और मुईज 2002)। स्वास्थ्य पर व्यय का हिस्सा गतिहीन रहा है और शैक्षिक ह्रासोन्मुख होती रही है। इससे आगे सरकार वर्तमानकालिक व्यय के आकार को पेंशन के ख़ाते को कम करके, आर्थिक सहायता आदि को कम करके घटाने की कोशिश कर रही है। सामाजिक क्षेत्र के व्यय को कम करने से ग़रीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है (अधिक जानकारी के लिए इकाई 21 की सहायता लें)।

हालांकि ग़रीबी का वृह्त स्तर पर ह्रास हुआ है, ग़रीबी-रेखा से नीचे रह रहे लोगों के अनुपात में महत्वपूर्ण ह्रास हुआ है, जो 1977-78 में 51.3 प्रतिशत और 1999-2000 में 28.1 प्रतिशत रह गया, सुधार-ढाँचे में व्यापक रूप से ग्रामीण-शहरी और अंतर्राज्यी विषमताएं हैं।

दसवीं योजना (2002-2007) ने ग़रीबी के अनुपात को कम करने का लक्ष्य 2007 में 5 प्रतिशत भाग और 2012 तक 15 प्रतिशत भाग रखा है। ग्रामीण और शहरी ग़रीबी का लक्ष्य 2007 में 21.1 प्रतिशत और 15.1 प्रतिशत क्रमानुसार है। ग़रीबी के साथ जुड़ी समस्या बेरोज़गारी की है। बेराज़गारी में अंतर्राज्यीय अन्तर बहुत बड़े हैं। 1993-94 से 1999-2000 की अवधि में रोज़गार में सबसे ज़्यादा वृद्धि हरियाणा (2.43 प्रतिशत) उसके बाद गुजरात (2.31 प्रतिशत), जबकि केरल में सबसे कम वृद्धि 0.7 प्रतिशत रिकार्ड की गई।

MAADHYAM IAS

16.8 विकास और सामाजिक कार्यक्षेत्र

जब शिक्षा की बात आती है, भारत ने 1951 में 18.3 प्रतिशत से 2001 में 64.8 प्रतिशत की वृद्धि दिखाई लेकिन फिर भी क्षेत्र के कई विकासशील देशों से पिछड़ा ही रहा, जैसे कि तालिका 16.3 में दिखाया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में (1986) निरक्षरता के उन्मूलन के लिए विस्तृत नीति ढाँचे की व्यवस्था की गई और सार्वभौम बुनियादी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, संविधान में (86वां संशोधन) एक्ट, 2002 संसद द्वारा पास किया गया है। नवम्बर 2000 में, एक व्यापक कार्यक्रम जिसे सर्व शिक्षा अभियान के नाम से जाना जाता है, की शुरूआत की गई। जिसका लक्ष्य स्कूल के कार्य करने के तरीके में सुधार समुदाय की अपनी पहुंच के द्वारा लाया जाए और 2010 तक 6 से 14 साल की आयु के बच्चों को प्रारंभिक गुणात्मक शिक्षा प्रदान की जाये।

तालिका 16.2: भारत में साक्षरता दर (1951-2001)

जनगणना वर्ष	व्यक्ति	पुरुष	महिलाएँ	पुरुष-महिला का साक्षरता में अंतर
1951	18.33	2.16	8.86	18.30
1961	38.30	40.40	15.35	25.05
1971	34.45	45.96	21.97	23.98
1981	43.57	56.38	29.76	26.62
1991	52.21	64.13	39.29	24.84
2001	64.84	75.85	54.16	21.69

स्रोत: भारतीय जनगणना (ए. आर. खान, 2003: 85)

तालिका 16.3: विश्व में भारत की वयस्क और युवा साक्षरता दर स्थिति

देश	व्यस्क साक्षरता दर (प्रतिशत 15 साल और ऊपर)		युवा साक्षरता दर (प्रतिशत 15-24 साल और ऊपर)	
	1990	2001	1990	2001
चीन	78.3	85.8	95.3	97.9
भारत	49.3	58.0	64.3	73.3
नेपाल	30.4	42.9	46.6	61.6
पाकिस्तान	35.4	44.0	47.4	57.8
श्रीलंका	88.7	91.9	95.1	96.9
बंगला देश	34.2	40.6	42.0	49.1

स्रोत: UNDP 2003

2003-04 में प्रारंभिक स्तर पर लड़कियों के लिए शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू किया गया। राष्ट्रीय बालिका बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम जिसमें प्रारंभिक स्तर पर लड़कियों की शिक्षा के लिए अतिरिक्त घटकों की व्यवस्था सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत की जाए (प्राथमिक स्कूलों की संख्या 2000-01 में 6.39 लाख से बढ़कर 2001-02 में 6.64 लाख हो गई। 5 मई 1988 को राष्ट्रीय साक्षरता मिशन प्रक्षेपित किया गया, देश के निरक्षरों को प्रकार्यात्मक साक्षरता, एक तकनीकी मिशन के रूप में, 15-35 साल के आयु वर्ग में तय समय तरीके से दी जाए। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति, जिसमें 1992 में परिवर्तन कर दिया गया, ने भी राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को, देश में से निरक्षरता उन्मूलन का एक साधन मानकर स्वीकृति दे दी, बाकी दो साधन हैं — प्रारंभिक शिक्षा का भूमंडलीकरण और अनौपचारिक शिक्षा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जनसंख्या और परिवार कल्याण

भारत की जनसंख्या, भारत की जनगणना के अनुसार, 2001 में 1027 मिलियन, जिसमें 531 मिलियन पुरुष और 496 मिलियन महिलाएं थीं। अभी भारत, ऊँची जन्म-दर और नीची मृत्यु-दर के चरण से गुज़र रहा है। जबकि पिछले दो दशकों से, अशोधित जन्म-दर का 33.9 प्रति हजार व्यक्तियों 1981 में 2002 में 25 प्रति हज़ार व्यक्तियों का ह्रास हुआ, अशोधित मृत्यु-दर का भी 1981 में 12.5 प्रति हज़ार व्यक्तियों से 2002 में 8.1 प्रति हज़ार व्यक्तियों की दर में ह्रास हुआ।

अच्छी स्वास्थ्य दशा (राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002) सुरक्षित पीने का पानी और कम मूल्य की स्वास्थ्य रक्षा की व्यवस्था करना सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों के कुछ लक्ष्यों में से थे) दूसरा मुद्दा, जोकि परिवार कल्याण का केंद्र है, स्त्रियों और बच्चों का विकास है। हालांकि कुल जनसंख्या में स्त्रियां 48 प्रतिशत हैं, परंतु राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण नीति 2001 के अंतर्गत कई योजनाओं की शुरूआत हुई। ज़िससे कि समाज में स्त्रियों को सही स्थान मिल सके। समन्वित बाल विकास सेवा योजना को 1975 में पहली बार, 33 चुनिंदा प्रखंडों में, छोटे बचचों (0-6 वर्ष) के संपूर्ण विकास को बढ़ाने के लिए आरंभ किया गया। उसी समय कई तरह की योजनाएं, समाज के पिछड़े वर्गों-अनुसूचित जाति (SCs), पिछड़े हुए वर्ग (OBCs) और अल्पसंख्यक के सुधार के लिए प्रस्तुत की गई।

सोचिए और कीजिए 16.9

मानव और सामाजिक कार्यक्षेत्र के अलग.अलग क्षेत्र कौन.से हैं जिस पर विकास के तरीकों को केंद्रित होना चाहिए?

16.9 सारांश

स्वतंत्रता से पहले के दशकों में आर्थिक गतिहीनता की स्थिति की तुलना में भारत आर्थिक, सामाजिक और मानव प्रगति में लंबा सफर तय करके आगे आया है। इस इकाई के पहले आधे हिस्से में हमने देखा स्वतंत्रता से लेकर 1990 के शुरू तक भारत ने विकास के रास्ते के लिए जो रास्ता अपनाया, वह भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक नया मोड़ था। 1991 में भारत ने नई आर्थिक नीति अपनाकर वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के रास्ते पर जाने का निश्चय किया। इस इकाई का दूसरा हिस्सा 1991 से अब तक व्यापार, उदारीकरण और निजीकरण क्षेत्र में जो परिवर्तन आए हैं, उनके विषय में चर्चा करता है। आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र के सुधारों का मूल्यांकन भी करता है। इस तरह का निर्धारण हमें इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि भारत की आर्थिक नीतियों की प्राथमिकता सिर्फ़ आर्थिक प्रगति ही नहीं बल्कि मानव और सामाजिक विकास भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। भारत को लोगों की आर्थिक, मानव और सामाजिक प्रगति के लिए अभी और अधिक हासिल करना है।

16.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

खान, ए. आर. 2003. *इकॉनामिक सर्वे* (2003-04). वी. पी. जी. बुक्सः दिल्ली

कपिला, उमा (ed.) 2001. *इंडियन इकॉनामी सिन्स इनडीपेनडैंस,* एकॅडेमिक फ़ाउंडेशनः नई दिल्ली

रक्षित मिहिर (ed.) 1998. *स्टडी इन मैक्रोइकनामिक्स इन डेवेलपिंग कन्ट्रिज़.* ओ.यू.पी.: नई दिल्ली

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 17
कनाडा

इकाई की रूपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 कनाडा का आर्थिक इतिहास
17.3 कनाडा की अर्थव्यवस्था — विहंगवालोकन
17.4 आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय
17.5 मेकडॉनल्ड आयोग: भविष्य की आर्थिक संभावनाएँ
17.6 आर्थिक और सामाजिक संकेतक
17.7 भारत के साथ संबंध
17.8 सारांश
17.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के द्वारा समझने-समझाने का प्रयास किया गया है:

- कनाडा का आर्थिक इतिहास;
- कनाडा में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय;
- द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात आर्थिक विकास और नीतियाँ; और
- कनाडा में सामाजिक विकास के मानदंड।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

17.1 प्रस्तावना

कनाडा, विश्व के दूसरे सबसे बड़े देश में, भौगोलिक क्षेत्र में अद्‌भुत विविधता देखने को मिलती है, जिसमें भव्य रॉकी पर्वतमाला, पश्चिमी तट पर फैला नीला प्रशान्त महासागर, सुन्दर झीलें तथा केंद्रीय कनाडा में भव्य निआगरा जल-प्रपात है। इसके इलावा पश्चिमी अर्धवृत्त में कनाडा सबसे बड़ा देश है, जिसका कुल क्षेत्रफल 9,970,610 वर्ग कि. मी. तथा विश्व की सबसे लंबी तटीय रेखा जो 244,000 कि. मी. तक फैली हुई है। विश्व की सबसे मज़बूत अर्थव्यवस्था वाले देशों में न केवल कनाडा की गिनती होती है बल्कि कितने वर्षों से इसे पूरे विश्व में पहले स्थान पर रखा गया है। संयुक्त राष्ट्र ने पूरी दुनिया में रहने के प्रयोजन से कनाडा को श्रेष्ठ देश बताया हैं। सर्वेक्षण में कुल 174 देशों की तुलना की गई, 200 निष्पादन मानदंडों का इस्तेमाल किया गया जिसमें शिक्षा की सुविधा, बेहतरीन स्वास्थ्य सुविधाएं, कनाडा के शहरों में अपराध की कम घटनाएं तथा स्वच्छ पर्यावरण शामिल थे।

मानव विकास सूचकांक (HDR 2004), में नार्वे, स्वीडन तथा आस्ट्रेलिया के बाद कनाडा को चौथा स्थान प्राप्त है। व्यापार के क्षेत्र में पूरे विश्व में कनाडा आठवें स्थान पर आता है, स्फीति की न्यूनतम दर के साथ कनाडा न केवल विश्व पूरे विश्व में विदेशी निवेश में क्रियाशील है बल्कि पूरी दुनिया भर से भी इसमें विदेशी निवेश किया जाता है।

कनाडा, जिसकी जनसंख्या 31.4 मिलियन (2002) है, 1867 में 10 प्रांतों व 2 प्रदेशों के संघ के द्वारा बनाया गया। इस समय कनाडा में 10 प्रांत और 3 प्रदेश हैं जिनकी अपनी अपनी राजधानी है।

यह इकाई कनाड़ा की संक्षिप्त पृष्ठभूमि तथा कनाडा की विभिन्न क्षेत्रों की मुख्य आर्थिक क्रियाविधियों से अवगत करायेगी। यह इकाई कनाडा के आर्थिक इतिहास पर नज़र डालेगी जो कनाडा की बदलती हुई आर्थिक पद्धतियों और औद्योगिक मामलों में उसकी क्षेत्रीय एकता की वचनबद्धता को दर्शाती है। व्यापार के क्षेत्र में जबकि कनाडा का खुला रवैया रहा है फिर भी देश के कई भागों के अंतर्गत आर्थिक राष्ट्रवाद की कोशिशें की गई है। इन सभी की चर्चा इस इकाई में की गई है। इस इकाई में देश के आर्थिक विकास की चर्चा के साथ-साथ विकास के विभिन्न सामाजिक मानदंडों का भी अवलोकन किया गया है।

17.2 कनाडा का आर्थिक इतिहास

यद्यपि कनाडा, एक मात्र आर्थिक इकाई है, लेकिन निम्नलिखित भाग में हम कनाडा की आर्थिक पृष्ठभूमि का अवलोकन हम प्रदेश के अनुसार करेंगे।

i) मध्य कनाडा

शुरू में ज़्यादातर मूल निवासी शिकारी और खाद्य-संग्रह करने वाले थे और कृषि एक छोटे से आरोक्यूइन समूहों (Iroquoian groups) द्वारा ही की जाती थी। आमतौर पर वहाँ व्यापार होता था लेकिन कोई विशेष व्यापारी वर्ग नहीं था। 16वीं सदी में फ्रांस और ब्रिटिश व्यापारियों के आने से देशवासियों में कई तरह के आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए।

1871 और उसके बाद तेज़ औद्योगीकरण और शहरीकरण की वजह से अधिकतर मध्य कनाड़ा का उद्योग और देश के दो बड़े उद्योगों की पीसाई (willing) और लकड़ी उद्योग (Lumbering) देश के कुछ हिस्सों और छोटे गांवों में बिखर गया। 1911 तक ओनटारियो (Ontario's) की आधी जनसंख्या शहरी और नगरों में रहने लगी (दी कनाडियन एनसाइक्लोपीडिया 2000: 714) (The Canadian Encyclopedia)।

ii) अटलांटिक कनाडा

'फर' व्यापार को मिलाकर, अटलांटिक क्षेत्र में समुद्री मत्स्य क्षेत्र ने आर्थिक विकास को आगे बढ़ाया। लेकिन 1920 और 1930 के दशक सुखद नहीं थे, जब लोहा, इस्पात, कोयला और मशीन उद्योग बहुत मुश्किल में थे और मछली पालन की तरह उन्हें भी विकट मंदी का सामना करना पड़ा। रेल परिवहन को केंद्र की ओर से बराबर रियायत मिलने के बावजूद नए विनिर्माताओं को कोई खास सफलता नहीं मिली। ब्रिटेन में सेब और लकड़ी के नए संरक्षित बाज़ार और नए लुगदी और क़ागज संयत्रों से आशा की कुछ उम्मीद जागी। द्वितीय युद्ध उन समुदायों के लिए उत्तेजक खुशहाली लेकर आया जिन्होंने नौसेना और वायु सेना में कार्य किए और 1945 के बाद स्थिति में सुधार हुआ (वहीः 715)।

iii) पश्चिमी कनाडा

पश्चिमी कनाडा में "फर" उद्योग आर्थिक विकास की शुरुआत थी। 1890 के आखिर में जब विश्व मूल्य बढ़े, परिवहन व्यय गिरे, शुष्क भूमि खेती के तरीके सुधरे और उपयुक्त क़िस्म का गेहूँ उपलब्ध हुआ तब विकास की संभावनाएं बढ़ी। 1929 तक प्रेरी (Prairie) प्रांतों ने भी गेहूं अर्थव्यवस्था के विस्तार से अल्पधिक आनन्द प्राप्त किया, जिसे कि रोपा गया था, 1914 से पहले, विशाल रेल-व्यवस्था, शहरों और नगरों का जाल, कोयला खनन और पशुफ़ार्म थे। 1914 तक सीमान्त क्षेत्र की व्यवस्था का उत्तर-पश्चिम की ओर विस्तार किया गया ताकि विदेशी भूमि से प्रवासियों को आकर्षित कर सके। इसका परिणाम क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था था जो पूरी तरह से एक ही फसल और स्थानीय लाभ के विश्व-मूल्य पर निर्भर करती है, जोकि दोनों ही घटते-बढ़ते रहते हैं (वहीः 715)।

MAADHYAM IAS

सोचिए और कीजिए 17.1

क्या देश की अर्थव्यवस्था में बाज़ार कोई भूमिका निभाते हैं? उदाहरण सहित कारण दीजिए।

1945 के बाद संसाधन निर्मित विकास, तेज़ी से शहरीकरण और उत्तेजनात्मक तरीके से जीवन-स्तर में बढ़ोत्तरी, नई परियोजनाओं तेल, गैस, पाइपलाईन निर्माण और पोटाश, की वजह से हुआ पूर्वोतर रूस, चीन और विकासशील देशों में गेहूं के नए बाज़ार से एक नई दिशा मिली। पश्चिमी प्रांत पूरी तरह से मुख्य उपज और निवेश क्रिया के निर्यात पर निर्भर थे, जोकि मुख्य उद्योग उत्पन्न कर सकते थे। पश्चिम विकास की तरफ रूका रहा जैसे कि 1896 और 1914 के बीच था (वही: 716)।

1980 तक कनाडा के अधिकतर लोग सफ़ेदपोश नौकरी करते थे और शहरों में रहते थे। वहाँ उनकी आय और जीवन-स्तर में कम असमानता थी। लेकिन विभिन्न क्षेत्रों की अर्थव्यवस्थाएं काफ़ी भिन्न थीं विनिर्माता से लेकर राष्ट्रीय उत्पाद की आधिक्य निर्माण तक। इस अवधि के दौरान सभी तरह के विकास के बावजूद, अटलांटिक क्षेत्र में, सापेक्षिक रूप से जीवन-स्तर नीचे था।

17.3 कनाडा की अर्थव्यवस्था – विहंगवालोकन

कनाडा हमेशा ही मुक्त अर्थव्यवस्था रही है। देश के आंतरिक भाग में देश की आर्थिक सफलता में उन्मुक्त उद्योग, पूंजी और श्रम सहायक रहे हैं, लेकिन यह अर्थव्यवस्था के उतार-चढ़ाव का भी अनावृत करता है। 1850 तक लगातार यूरोपीयों के आगमन के कारण कनाडा मुख्य रूप से उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था बनी रही जो पहले फ्रांस और बाद में ब्रिटिश अर्थव्यवस्था से एकीकृत हो गया। 1840 व 1850 के दौरान एक नया मोड़ आया जब ब्रिटेन ने मुक्त व्यापार नीतियों को अपनाया तथा ब्रिटिश उत्तरी अमरिकी उपनिवेशों को अपनी खुद की व्यापार नीतियों की रूपरेखा तैयार करने की इज़ाजत दे दी। यह संयोग ही था कि देश के विभिन्न भागों में गेहूं निर्यात में वृद्धि भी इसी दौरान हुई। सीमा शुल्क व्यवधानों के होते हुए भी औद्योगीकरण की कोशिशें तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों को ग्रेट ब्रिटेन से अमेरिका की तरफ धीरे-धीरे मोड़ना 19वीं शताब्दी के आखिरी दशक के मुख्य लक्षण थे। 1866 में अन्योन्यता संधि (Reciprocity Treaty) के नवीकरण न होने की वजह से औद्योगिक नीतियों द्वारा अमेरिका की तरफ झुकाव को ज़्यादा प्रोत्साहित नहीं किया गया, 1900 के पहले दशक के अंत तक कनाडा और अमेरिका औद्योगिक युद्ध के कगार पर खड़े थे। विदेशी पूंजी का मुख्य स्रोत इंग्लैंड ही रहा परंतु 1870 से 1914 के दौरान कनाडा में अमरीकी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में काफ़ी बढ़ोतरी हुई। प्रवासी प्रतिरूप कुछ हद तक कनाडा और अमरीकी सीमान्त क्षेत्रों की स्थानीय व्यवस्था के आकर्षण पर निर्भर थे। प्रेरी में गेहूँ के अभूतपूर्व उत्पादन से पूरे देश की कुल जनसंख्या व उसके फैलाव में वृहद् स्तर पर बदलाव हुए। इसी दौरान पूर्वी यूरोप से बहुत अधिक संख्या में प्रवासियों का प्रवेश भी इसी दौरान हुआ जिसके फलस्वरूप प्रेरी की जनसंख्या का सम्मिश्रण कनाडा के बाकी हिस्सों से बिल्कुल अलग है। 1914 से 1939 तक की अवधि के दौरान देशीय तथा अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में अस्थिरता रही। 1920 में तीव्र वृद्धि हुई तथा अमेरिका के साथ आर्थिक संबंधों के झुकाव में निरंतरता बनी रही। 1930 के मध्य तक औद्योगिक उदारीकरण की आपसी संधि के लिए कनाडा अमेरिका को राज़ी करने की कोशिशें कर रहा था। 1939-45 में युद्ध के दौरान तथा पश्चात कनाडा अमेरिका और इंग्लैंउ को उदार व्यापारिक व्यवस्था, जो उदार व्यापारिक नीतियों पर आधारित थी, के क्षेत्र में पूरे संसार का नेतृत्व करने के लिए राज़ी करने में मदद कर रहा था। यद्यपि गैट (GATT) में कनाडा ने सक्रिय भूमिका निभाई तथा बहुपक्षवाद का दृढ़ प्रस्तावक था, अन्य औद्योगिक देशों के मुक़ाबले, औद्योगिक अवरोधों में कमी बहुत धीरे-धीरे

MAADHYAM IAS

हुई। औद्योगिक अवरोधों के बावजूद भी विश्व में ठोस उदारीकरण हुआ तथा विश्व अर्थव्यवस्था में कनाडा ने मुख्य भूमिका निभाई जो 1970 में शुरू होने वाले 67 शिखर सम्मेलन में उसकी उपस्थिति से झलकती है। बहुपक्षीय पद्धति के बावजूद कनाडा का व्यापार-क्षेत्र मुख्यतः अमरीका में ही केन्द्रित रहा। 1950 और 1960 दशक के दौरान लंबी आर्थिक तेज़ी के दौरान कनाडा ने श्रम और पूंजी का बहुत अधिक अंतःप्रवाह अनुभव किया। कनाडा की मुक्त अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण था लेकिन इसका ज़्यादा झुकाव USA की तरफ था और इन लक्षणों को सरलता से बदला नहीं जा सकता था। विदेशी निवेश को नियमित करने की कोशिशों की वजह से अमेरिका के साथ मतभेद उत्पन्न हो गए, परंतु इससे कनाडा के जनजीवन में अमेरीकी निगम की मौजूदगी बड़े पैमाने पर कम नहीं हुई। 1970 के दशक तक UK मुख्य व्यापारी साझेदार नहीं रह गया और उत्तरी अमेरिका के पश्चात पूर्वी एशिया अगल महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया तथा यह तथ्य सबसे ज़्यादा वैंकुवर (Vancouver) में देखा गया।

एक सम्पन्न उच्च तकनीकी औद्योगिक समाज के रूप में कनाडा बाज़ार आधारित आर्थिक व्यवस्था, औद्योगिक प्रणाली तथा उच्च जीवन-स्तर में अमेरिका से गहरी समानता रखता है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात, निर्माण, खनन तथा सेवा क्षेत्रों में प्रभावशाली वृद्धि के कारण पूरा देश एक बड़ी ग्रामीण अर्थव्यवस्था से मुख्यतः औद्योगिक और शहरी व्यवस्था में परिवर्तित हो गया है। बेरोज़गार दर नियमित रूप से कम हो रही है तथा असल (Real) विकास की दर 1993 से सामान्यतः तक़रीबन 3.0 प्रतिशत है। सरकारी बजट आधिक्य बृहत् सार्वजनिक क्षेत्रों के ऋण कम करने में जुटे हुए हैं। 1989 अमेरिका-कनाडा स्वतंत्र व्यापार समझौता (FTA) और 1994 उत्तरी अमेरिका स्वतंत्र व्यापार समझौता (NAFTA) (देखिए बॉक्स 17.1) से अमेरीका के साथ व्यापारिक और आर्थिक एकीकरण में प्रभावशाली वृद्धि हुई हैं। अपने विशाल प्राकृतिक संसाधनों, कुशल श्रम शक्ति तथा आधुनिक पूंजी संयंत्र के द्वारा कनाडा भविष्य में सुदृढ़ आर्थिक संभावनाओं का पूर्वानुमान कर सकता है। अंग्रेज़ी तथा फ्रेंच भाषायी क्षेत्रों में निरंतर संवैधानिक गतिरोध से संघ के टूटने की संभावना बढ़ती जा रही है जिससे विदेशी निवेशक दुविधा महसूस करते हैं।

MAADHYAM IAS

1998 सितंबर के आसपास कनाडा डॉलर की कीमत न्यूनतम स्तर पर पहुंच गई जोकि अमेरीकी डॉलर के 65 सेंट से भी कम था। परंतु इसके बाद यह ऊपर ही ऊपर चढ़ता गया तथा हाल ही में इसका मूल्य अमेरीकी डॉलर के मुकाबले 80 सेंट तक पहुंच गया है। कनाडा के डॉलर की इस सफलता के पीछे मुख्यतः अमरीका का ईराकी युद्ध में शामिल होना है तथा अन्य कारक जैसे अमेरीकी रोज़गार में नए प्रवाह जैसे ठेके पर काम बाहर देना तथा बड़ी संख्या में लोगों का आगमन कनाडा डॉलर का मूल्य मुख्यतः 85 से 90 सेंट (US) रेंज में रहा है।

बॉक्स 17.1: कनाडा और उत्तरी अमेरीकन स्वतंत्र व्यापार समझौता (NAFTA)

जनवरी 1944 में कनाडा, अमेरीका और मेक्सिको ने उत्तरी अमेरीकन स्वतंत्र व्यापार समझौता (NAFTA) प्रारंभ किया और विश्व के सबसे बड़े स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र को रूप दिया। इसके साथ ही NAFTA ने भविष्य के विकास के लिए मज़बूत नींव स्थापित की और व्यापार उदारीकरण के लिए लाभ के बहुमूल्य उदाहरण सामने रखे।

1994 से उत्तरी अमेरीकन स्वतंत्र व्यापार समझौता (NAFTA) ने आर्थिक वृद्धि और तीन सदस्य देशों के सभी लोगों के बढ़ते जीवन स्तर में वृद्धि की। कनाडा के भविष्य को समृद्धि बनाने में NAFTA एक मज़बूत आधार साबित हुआ और पूरे महाद्वीप में व्यापार और निवेश के नियम और प्रक्रिया को मज़बूत किया।

NAFTA ने कनाडा और मेक्सिकों को अमंरीका में निर्यात बढ़ाने के लिए समर्थ बनाया। अब कनाडा के निर्माता अपना आधे से ज़्यादा उत्पादन अमेरीका को भेजते हैं जबकि मेक्सिकों का अमेरीका के आयात बाज़ार में दुगना हिस्सा हो गया जो पूर्व NAFTA 1993 में 6.9 प्रतिशत से बढ़कर 2002 में 11.6 प्रतिशत हो गया। तीनों देशों के निर्माता, उत्तरी अमेरीकन अर्थव्यवस्था में क्रियाशील होने से, जो बृहत स्तर पर संगठित और कार्यकुशल है, अपनी पूरी क्षमता को अच्छी तरह से पहचानते हैं। 2002 में अमेरीका के 50 में से 39 राज्यों के माल के निर्यात के लिए कनाडा एक महत्वपूर्ण स्थान था। जनवरी 1, 2003 में लागू, कनाडा और मेक्सिकों के बीच, अंतिम शुल्क दर में कमी के पश्चात NAFTA क्षेत्र में सारा शुल्क-रहित उद्योग होने लगा।

कनाडा एक सफल औद्योगिक राष्ट्र है। इसके निर्यात का लेखा-जोखा, कुल सकल घरेलू उत्पाद का 40 प्रतिशत से ऊपर था — एक उच्च समानुपात जो कि किसी भी G-7 देश से अधिक था। कनाडा में तक़रीबन चार में से एक नौकरी को, विश्व बाज़ार में, इसकी सफलता से जोड़ा गया है। NAFTA ने इस लक्ष्य की प्राप्ति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज 86.6 प्रतिशत कुल माल का निर्यात NAFTA के साझेदारों को जाता है। 1994 से अब तक कनाडा में 2.3 मिलियन के नज़दीक नौकरियों का सृजन किया गया, पूर्व NAFTA रोज़गार स्तर में 17.5 प्रतिशत से ऊपर की वृद्धि दिखाई।

स्रोत: http%//www.dfait-macci.gc.ca

17.4 आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

आर्थिक राष्ट्रवाद के आंदोलन का मुख्य लक्ष्य कनाडा के लोगों का अपनी ही अर्थव्यवस्था के ऊपर नियंत्रण करना था। यह आंदोलन, जो कि कनाडा अर्थव्यवस्था पर विदेशी नियंत्रण का परिणाम था, के दो अलग मुख्य क्षेत्र थे।

क) **उद्योग में संरक्षणवाद:** यह असल में 1879 की राष्ट्रीय नीति का नतीजा था, जिसने कनाडा में छोटे उद्योगों को बड़े और ज़्यादा स्थापित प्रतिष्ठानों के विपरीत उनकी रक्षा करके, औद्योगिक आधार के सर्जन को प्रोत्साहन दिया। उसी तरह संरक्षणवाद को उद्योग में शुल्क दर की उस व्यवस्था को स्थापित करना था, जिसने घरेलू उत्पादन की वस्तुओं का पक्ष लेकर आयात का विरोध किया था।

ख) **विदेशी नियंत्रण:** कनाडा के व्यवसाय पर विदेशियों का स्वामित्व इसका दूसरा संबंधित क्षेत्र था। यह द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात का कथन है।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात कनाडा की अर्थव्यवस्था में विदेशी स्वामित्व में वृद्धि हुई जो कि बहुराष्ट्रीय निगम के उदय के साथ जुड़ी हुई थी। बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने अपनी शाखा या सहायक कंपनियां कनाडा के अंदर शुरू की। जैसे-जैसे विदेशी निगमों का स्वामित्व बढ़ा, आर्थिक राष्ट्रवादों ने अपनी बहुत अधिक दिलचस्पी दिखाई, जिन्होंने परिणामस्वरूप कनाडा की अर्थव्यवस्था में विदेशी स्वामित्व की गतिविधियों पर नज़र रखने और उनकी वृद्धि की जांच करने की मांग की, लेकिन वहाँ एक और वर्ग भी था जो सभी राष्ट्रों के साथ "स्वतंत्र और निर्बाध" उद्योग के पक्ष में था। यह अवलोकन वास्तविक तौर पर अर्थव्यवस्था के सिद्धांत तुलनात्मक लाभ के क़ानून पर आधारित था। यह तर्क कि,"आर्थिक वृद्धि अधिकतम होगी जब सरकार का प्रतिबंध न्यूनतम होगा और सभी देश, विशेष रूप से जिस माल का उत्पादन अच्छा करते हैं, एक दूसरे के साथ स्वतंत्र रूप से उद्योग कर सकें"। इस सिद्धांत को मद्देनज़र रखते हुए विदेशी कंपनियों के लिए भी शर्त रखी गई कि "विदेशी स्वामित्व वाले व्यवसाय अपने आपको कनाडा में स्थापित करने में तभी सफलता प्राप्त कर पायेंगे जब वो एक सीमा तक स्थानीय बाज़ार से सस्ती वस्तुओं का उत्पादन कर सकें, तभी कनाडा के

उपभोक्ता और कनाडा की अर्थव्यवस्था लाभान्वित हो पायेगी।" (दि कनाडियन एन्साइक्लपीड़िया 2000: 716) (The Canadian Encyclopedia 2000: 716) स्वतंत्र बाज़ार के प्रचलन से यह तर्क आर्थिक प्रतियोगिता के परिवेश पर आधारित था लेकिन आर्थिक राष्ट्रवादियों द्वारा इस पर प्रश्न खड़ा किया गया, जिन्होंने बहुराष्ट्रीय और अमेरीकी व्यवसाय की उपस्थिति को कनाडा के छोटे उद्योगों के लिए लाभप्रद नहीं माना। आर्थिक राष्ट्रवादों की दिलचस्पी सरकार द्वारा प्रायोजित चार क्रमबद्ध रिर्पोटों में स्पष्ट हुई, जिनकी रूपरेखा पिछले कई दशकों से बनी हुई थी।

क) **गोर्डन आयोग**: कनाडा की अर्थव्यवस्था में जब विदेशी स्वामित्व की बढ़ोतरी हुई तब पहली रिर्पोट – कनाडा का आर्थिक विवरण (1955-1957) निकली जो इसी का परिणाम था। इसका नाम गोर्डन आयोग, इसके अध्यक्ष, वाल्टर एल. गोर्डन के ऊपर रखा गया (विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की वृद्धि की तरफ ध्यान दिलाया गया और यह भी महसूस किया गया कि "तर्कसंगत कनाडियन अभिरुचि" के साथ इस प्रक्रिया में समझौता किया गया था। रिर्पोट ने सलाह दी कि कनाडा के वासियों को अनुमति दी जाए कि विदेशी स्वामित्व वाले उप-व्यवसाय जो कनाडा में चल रहे हैं, में वह हिस्सेदार हों।

दुर्भाग्यवश रिर्पोट ने ज़्यादा ध्यान आकर्षित नहीं किया और सामान्य तर्क यह था कि "कनाडा और कनाडा के कर्मचारी, उद्योग और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर लगे प्रतिबंध के हटने से लाभान्वित हो सकेंगे क्योंकि आर्थिक गतिविधियों और आय के स्तर को और कोई इतनी तेज़ी से नहीं बढ़ा सकेगा"।

1960 में आर्थिक राष्ट्रवाद की एक नई लहर का उद्‌गम हुआ, जिसने अंत में 1960 और 1970 के शुरू में तीन और सरकार द्वारा प्रायोजित रिर्पोटों का नेतृत्व किया जिसने कनाडा में विदेशी स्वामित्व के उप-व्यवसायों द्वारा खड़ी की गई मुश्किलों का वर्णन किया।

तब वहाँ पर बहुत सारी समस्याएं थीं। उदाहरण के तौर पर कनाडा के शाखा कारखाने में न केवल अनुसंधान और विकास के संचालन की सुविधाओं का अभाव था बल्कि पूर्ण विपणन और कार्य विभाग का भी अभाव था क्योंकि इनके कार्य अक्सर अमेरीका या यूरोप में जो मूल कंपनी थी, उनके द्वारा संचालित होते थे। दूसरी, मुख्य समस्या प्रबंध से संबंधित थी। चूंकि कंपनियों का संचालन बाहर से होता था, कनाडा के मैनेजर और प्रबंध का संभावित विकास नहीं हो पाया। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि कनाडा की औद्योगिक संरचना अमेरीकी क्षमताओं पर निर्भर थी और अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तन और प्रतियोगिता के योग्य नहीं थी। इसके अतिरिक्त विदेशी स्वामित्व के उप-व्यवसाय बोर्ड में कनाडियन निदेशकों का अभाव कनाडियन कंपनियों के खरीद का पर्याप्त आदेश प्राप्त नहीं हुआ। विभिन्न समस्याओं के जवाब में कई नीतियों के सुझाव दिए गए।

ख) **वॉटकिन्स टॉस्कफोर्स**: 1968 में प्रकाशित रिर्पोट में इसने परामर्श दिया– "एक विशेष शाखा का जो सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ मिलकर कार्यवाही करने में सहयोग स्थापित कर सके"। फ़र्म के व्यवहार पर नज़र रखना और उनकी गतिविधियों पर अधिक जानकारी जुटाना शाखा के अन्य कामों में से एक था।

सोचिए और कीजिए 17.2

किसी भी देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को किस सीमा तक व्यापार करने की अनुमति होनी चाहिए? क्या यह स्वतंत्र व्यापार अथवा 'नियंत्रित व्यापार' होना चाहिए? चर्चा कीजिए।

MAADHYAM IAS

ग) **वॉन रिर्पोट**: यह रिर्पोट 1970 में प्रकाशित हुई और इसने परामर्श किया कि विदेशी फ़र्मों में कनाडा वासियों को 51 प्रतिशत स्वामित्व हासिल करने का प्रयास करना चाहिए और क़ानून ऐसा हो कि जो "अतिरिक्त देशीय अधिकार क्षेत्र अमेरीका के बराबर हो। कनाडा में जो निगम काम कर रहे है उनके लिए यह क़ानून हो कि वह किसी भी देश के निर्यात आर्डर को तर्कसंगत आधार पर मना नहीं कर सकते और यह उन निगमों के लिए अवैध होगा, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि उस देश के अमेरीका के साथ राजनयिक संबंध किस प्रकार के हैं। यह प्रस्ताव भी रखा गया कि भविष्य में किसी भी कनाडियन व्यापार को अधिकार में लेने से पहले संचालन विभाग की सहमति ज़रूरी हो जैसा कि वॉकिन्स रिर्पोट की रूपरेखा में भी वर्णित है और अर्थव्यवस्था के कुछ मूल क्षेत्रों की पहचान करें "जहाँ इससे आगे अधिकार में लेना अस्वीकृत होगा" (वहीः 716)।

घ) **ग्रे रिर्पोट**: ग्रे रिपोर्ट, 1972 में प्रकाशित हुई जो कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (Foreign Direct Investment) के नाम से भी जानी जाती है, ने एक "छानबीन शाखा"(Screening agency) स्थापित करने का परामर्श दिया और कुछ विशेष क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अनुमति दी और कुछ में वर्जित रखा।

इन रिपोर्टों ने 1970 के दशक में राष्ट्रवादी मनोभावों को कनाडा में आधार बनाया। 1974 में, विदेशी निवेश समीक्षा एजेंसी [The Foreign Investment Review Agency (FIRA)] जो कि दि वॉकिन्स, वॉन और ग्रे रिपोर्टों के सुझाव पर आधारित थी, विद्यमान व्यापार के विदेशी स्वामित्व के सारे प्रस्तावों की समीक्षा शुरू की या विदेशी स्वामित्व वाले व्यापार को कनाडा में शुरू करने की सलाह दी, जिसका उद्देश्य कनाडावासियों को इन कंपनियों द्वारा अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना था। विदेशी निवेश समीक्षा एजेंसी (FIRA) की संरचना बड़े ध्यान से ग्रे रिपोर्ट के परामर्श पर रखी गई, जिसके पहले अध्यक्ष हर्ब ग्रे थे (वहीः 717)। कनाडा की ऊर्जा आपूर्ति का विश्लेषण करने और कनाडावासियों को ऊर्जा उद्योग में स्वामित्व के अवसरों में वृद्धि की व्यवस्था करने के लिए 1980 में नेशनल एनर्जी प्रोग्राम (NEP) उदारवादी सरकार द्वारा स्थापित किया गया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि कनाडा में आर्थिक राष्ट्रवाद को इसकी अमेरीका के ऊपर निर्भरता के संदर्भ में अच्छी तरह समझा जा सकता है। आर्थिक नियंत्रण को आगे बढ़ाते हुए, सामाजिक और सांस्कृतिक नियंत्रण को भी राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक पहचान के लिए इस्तेमाल किया गया।

17.5 मेकडॉनल्ड आयोगः भविष्य की आर्थिक संभावनाएँ

कनाडा के इतिहास में अब तक का यह सबसे बड़ा कमीशन है। 1982 में इसे भविष्य में देश के आर्थिक विवरण और राजनैतिक संस्था की प्रभावपूर्णता को जांचने-परखने के लिए नियुक्त किया गया। पूर्व वित्त मंत्री, डॉनल्ड एस. मेकडॉनल्ड द्वारा इसकी अध्यक्षता की गई। इसमें 12 अन्य आयुक्त शामिल थे जो कनाडा के समाज के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करते थे। सितम्बर 1985 में तीन खंडों की रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसने कई सुझाव दिए, जिसमें तीन अंतर्निहित थे — रिपोर्ट ने इस बात पर ज़ोर दिया कि कनाडा एक लचीली अर्थव्यवस्था के रूप में क़ायम रही जो तेज़ी से अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिवर्तनों और नई तकनीकों के साथ अपने आपको सक्षम बना सके। यंत्र-निर्माण के बाज़ार पर अधिक विश्वास, सरकार के हस्तक्षेप का सामना करते हुए और अमेरीका के साथ एक "स्वतंत्र उद्योग" समझौता, इस विषय की प्रमाणिकता थी। हालांकि यह आयोग इस बात पर राज़ी हो गया कि "कल्याणकारी राज्य" का समस्त प्रयोजन बनाए रखा जाए। रिर्पोट ने अधिक आर्थिक दक्षता और सामाजिक निष्पक्षता के लिए आय-सुरक्षा के महत्वपूर्ण सुधार कार्यक्रमों की सलाह

दी। आयोग ने संसदीय सरकार के परंपरागत प्रतिरूप की पुष्टि की, लेकिन कनाडा के विभिन्न क्षेत्रों की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए संघीय सरकार को सक्रिय करने के लिए चुनी हुए राज्य-परिषद को अपनाने की सलाह दी (*दि कनाडियन एन्साइक्लपीडियाः 718*)।

इसके सुझावों और मज़बूत सहयोग जो इसे व्यावसायिक समुदाय, सरकारों और जन-माध्यम से मिला, रिर्पोट की आलोचना श्रम-आंदोलन, राष्ट्रवादी वर्ग और सामाजिक सक्रियतावादियों द्वारा की गई।

1984 और 1999 के बीच, जबकि जनसंख्या के कुछ हिस्से ने ही सम्पत्ति में वृद्धि का उपभोग किया, वास्तविकता यह थी कि कनाडा में सम्पत्ति का वितरण असमान हो गया था। हम कनाडा की वर्तमान अर्थव्यवस्था का विश्लेषण कई सामाजिक और आर्थिक मानदंडों को ध्यान में रखकर कर सकते हैं।

17.6 आर्थिक और सामाजिक संकेतक

क) **साल और सेवाएंः** कनाडा की अर्थव्यवस्था का वर्णन करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है, जाँचना व परखना कि वे किस तरह की वस्तुओं का उत्पादन व उपभोग करते है और किस तरह के कार्य करते है, किस तरह की नौकरी करते हैं, कितना कमाते हैं और किसके लिए काम और उद्योग करते हैं।

कनाडावासी, "लकड़ी काटने वाले और पानी ढोने वाले" (वही 652) मशहूर हैं (परंतु अपने लिए दूसरों के लिए नहीं)। और शुरू में देश का विकास देश के प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास करने की इच्छा से प्रेरित हुआ। उस समय कनाडा में वास्तव में जबकि संसाधन उद्योग, जैसे कि दूसरे विकसित देशों में, अभी भी समस्त आर्थिक गतिविधि में महत्वपूर्ण हिस्से का स्पष्टीकरण करने में लगा हुआ हैं, अधिकतर क्षमता निर्माण और कार्यक्षेत्र में लगी हुई है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1997 में समस्त कनाडा की उत्पादन क्षमता में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि खेती बारी और संसाधन उद्योगों, वानिकी, मछली पालन, खनन और पेट्रोलियम, विद्युत शक्ति, गैस और पानी मिलकर इनकी गणना 15 प्रतिशत से नीचे की हुई। कनाडा का विशाल कार्यक्षेत्र और छोटा निर्माण क्षेत्र है। 1977 में कार्यक्षेत्र में 73 प्रतिशत कर्मचारी नियुक्त हुए, 15.5 प्रतिशत निमार्ण में और सिर्फ़ 5.1 प्रतिशत खेतीबाड़ी और प्राकृतिक संसाधनों में।

ख) **काम का स्वरूपः** कनाडा की आर्थिक गतिविधि का वर्णन करने का दूसरा तरीका यह देखना है कि कार्य के प्रकार और मात्रा जो कनाडावासी करते हैं, न कि यह देखना कि वह क्या उत्पादन करते हैं, क्या उत्पादन हुआ और उत्पादन के लिए किस तरह का कार्य किया गया। यह अक्सर भूल जाते हैं, कि इसके बीच जो अंतर है वह निर्णायक है। इसके अतिरिक्त यंत्रीकरण की वजह से प्रत्यक्ष उत्पादन के कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि हुई। कनाडा में ज़ो वास्तव में काटना, ड्रा, ड्रिल (बरमा बेधक), या खेती करते हैं, उनकी गिनती बहुत कम है, जबकि 10 में से 7 व्यक्ति कनाडा के दफ़्तर में काम करते हैं। उसी समय सहयोग की दर में उत्तेजनात्मक वृद्धि हुई है – 1946 में 55 प्रतिशत जो 1997 में 64.8 प्रतिशत हो गई जोकि मुख्य रूप से स्त्रियों के श्रम-बल में सहयोग देने से हुई। स्त्री सहयोग की दर 24.7 प्रतिशत से बढ़कर 57.5 हो गई जबकि पुरुषों की दर 85.1 प्रतिशत से गिरकर 72.5 प्रतिशत हो गई, स्त्रियों के सहयोग की दर में वृद्धि के लिए ज़िम्मेदार तथ्य हैं – जनन नियंत्रण, श्रम बचत के घरेलू उपकरणों का आविष्कार, अभिवृत्ति में परिवर्हन, सार्वजनिक क्षेत्र की वृद्धि, आदि।

लेकिन बेरोज़गारी की दर को रोकने में सहयोग दर असफल रही जो कि औसतन 1960 के दशक में 5.2 प्रतिशत से 1970 के दशक में 6.7 प्रतिशत, 1980 और 1986 में 9.9 प्रतिशत थी। यह दो मुख्य कारण थे जो बेरोज़गारी की दर को बढ़ाने में ज़िम्मेदार थे। एक तरफ यह माना गया कि बेरोज़गारी बीमा प्रोग्राम की वजह से कई लोगों ने "बेरोज़गारी की अवधि के दौर में" इसे अपनी पसंद से भुगतना मंजूर किया, और कई सहायक कर्मचारी, अधिकतर औरतें और नौजवान लोग — संभवतः रोज़गार के लिए इतने इच्छुक नहीं थे जितने कि 1950 के दशक के आदर्श कर्मचारी, घर का मुखिया ज़िसके अलावा और कोई नहीं कमाता था। दूसरी तरफ, पिछले दो दशकों से बेरोज़गारी की दर नौजवान पुरुषों में भी बढ़ रही है"। लेकिन 1996 से बेरोज़गारी की दर गिर रही है जो 1996 में 9.6 प्रतिशत से 1997 में 9.1 प्रतिशत, 2003 में 7.6 प्रतिशत (देखें तालिका 17.1)।

तालिका 17.1: सामाजिक संकेतक

क्र.सं.	श्रम-बल	1996	1997	1998	1999	2000	2001	2002	2003
1.	श्रम बल ('000)	14,900	15,153	15,148	15,721	15,999	16,246	16,689	17,047
2.	कुल ('000)	13,43	13,774	14,140	14,531	14,910	15,077	15,412	15,746
3.	पुरुष	7,346	7,508	7,661	7,866	8,049	8,110	8,262	8,407
4.	महिलाएं	6,117	6,266	6,479	6,665	6,860	6,967	7,150	7,339
5.	कर्मचारी अंश-कालिक(%)	19.2	19.1	18.9	18.5	18.1	18.1	18.7	18.8
6.	पुरुष	10.8	10.5	10.6	10.3	10.3	10.4	10.9	11.0
7.	महिलाएं	29.2	29.4	28.8	28.0	27.3	27.1	27.7	27.8
8.	अनैच्छिक अंश-कालिक	35.0	31.1	29.2	2.7	25.3	25.8	27.0	27.6
9.	पूर्ण-कालिक खोज	-	10.6	10.0	9.0	7.4	7.5	8.2	8.9
10.	नियुक्त महिलाओं का प्रतिशत जिनका सबसे छोटा बच्चा 6 साल से नीचे	15.9	15.6	15.0	14.7	14.3	13.7	13.4	12.9
11.	स्वयं नियुक्त कर्मचारियों का प्रतिशत	16.1	17.1	17.2	16.9	16.2	15.3	15.2	15.3
12.	40 घंटे प्रति हफ्ता नियुक्त कर्मचारियों का (%)[2]	21.2	18.9	18.9	18.4	18.0	17.5	16.9	16.6
13.	अल्पकालिक/समझौता पद पर नियुक्त कर्मचारियों का (%)	-	9.4	9.8	10.0	10.5	110.9	11.0	10.5
14.	गर्मियों में नियुक्त पूर्ण-कालिक विद्यार्थियों का (%)	47.9	45.7	47.2	48.8	50.9	51.3	52.3	53.1
15.	बेरोज़गार दर (%)	9.6	9.1	8.3	7.6	6.8	7.2	7.7	7.6
16.	पुरुष 15-24 के बीच	16.9	17.1	16.6	15.3	13.9	14.5	14.3	15.6
17.	पुरुष 25-54 के बीच	8.9	8.0	7.2	6.5	5.7	6.3	6.9	6.6
18.	महिलाएं 15-24 के बीच	13.7	15.2	13.6	12.6	11.3	11.0	11.8	11.9
19.	महिलाएं 25-54 के बीच	8.5	7.6	6.9	6.3	5.8	6.0	6.3	6.4
20.	जनसंख्या जो हाई स्कूल या कम	12.4	12.1	11.2	10.3	9.3	9.6	10.2	10.2
21.	जनसंख्या तो माध्यमिक शिक्षा पूर्ण कर चुकी हो	8.1	7.4	6.5	5.9	5.2	5.8	6.0	5.9
22.	जनसंख्या विश्वविद्यालय की डिग्री के साथ	6.2	4.8	4.4	4.3	3.9	4.6	5.0	5.5

23. शिक्षा प्रारंभिक/ माध्यमिक स्कूलों में कुल नामांकन ('000)	5,415	5,386	5,370	5,442	-	-	-	-
24. माध्यमिक स्कूल स्नातकता दर (%)	76.4	76.3	76.0	76.3	77.1	76.9	-	-
25. माध्यमिक के पश्चात नामांकन('000)	-	-	-	-	-	-	-	-
26. समुदाय कालेज पूर्ण-कालिक	397.3	398.6	403.5	408.8	-	-	-	-
27. समुदाय कालेज अंश-कालिक	87.1	91.6	9.14	85.4	-	-	-	-
28. विश्वविद्यालय पूर्ण-कालिक[3]	573.6	573.1	580.4	588.4	605.2	-	-	-
29. विश्वविद्यालय अंश-कालिक[3]	256.1	249.7	246.0	255.4	256.4	-	-	-
30. 18-24 के बीच जनसंख्या का पूर्ण-कालिक माध्यमिक के पश्चात में नामांकन का (%)	34.6	34.3	34.4	34.4	-	-	-	-
32. 18-21 के बीच में कालेज में जनसंख्या का (%)	24.7	24.6	24.7	24.6	-	-	-	-
33. 18-24 के बीच विश्वविद्यालय में जनसंख्या का (%)	20.4	20.2	20.3	20.4	-	-	-	-
34. समुदाय कालेज डिप्लोमा स्वीकृत ('000)	85.9	91.4	88.4	-	-	-	-	-
35. स्नातक की और पहली व्यवसायिक डिग्री स्वीकृत ('000)	128.0	125.8	124.8	126.4	128.0	-	-	-
36. कृषि विज्ञान और जैविक विज्ञान	9,288	9,664	10,079	10,307	10,283	-	-	-
37. शिक्षा	21,421	20,638	19,374	20,352	20,779	-	-	-
38. इंजीनियरिंग और व्यावहारिक विज्ञान	9,415	9,138	9,255	9,393	9,831	-	-	-
39. फाइन और व्यावहारिक कला	4,142	4,105	4,276	4,198	4,367	-	-	-
40. स्वास्थ्य व्यवसाय	8,663	8,837	8,620	8,679	8,527	-	-	-
41. मानविकी और संबंधित	15,889	15,014	14,721	14,373	14,221	-	-	-
42. गणित और शारीरिक विज्ञान	7,005	7,091	7,239	7,537	8,527	-		-
43. सामाजिक विज्ञान	48,422	47,751	4,760	47,912	47,471	-	-	-

स्रोतः स्टेटिसटिक्स कनाडा, लेबर फोर्स सर्वे, *एजुकेशन इन कनाडा,* 2000 (कैटलॉग नं: 81,229) एंड सेंटर फॉर एजुकेशन स्टेटिसटिक्स।

ग) **शिक्षा** – शिक्षा व्यक्ति और समाज के विकास में, लोगों को समर्थ करने, उनकी निर्णय लेने की शक्ति को बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इससे यह भी पता चलता है कि शिक्षा का स्तर, लोगों की नौकरी की किस्म और आय जो उन्हें मिलती है, को प्रभावित करता है। 2001 की जनगणना के अनुसार वे लोग, जिनके पास स्नातक की डिग्री थी संभावितः वह हाई स्कूल के स्नातक से ज्यादा कमा सकते थे।

एक और विचारधारा शिक्षा के संबंध में देखी गई। जब ज़्यादा से ज्यादा नौकरियों की मांग माध्यमिक के पश्चात की शिक्षा थी, नौज़वान पुरुष और स्त्रियों ने अपने माता-पिता के घर में ही रहने को उचित समझा और शादी को स्थगित कर स्वयं अपना परिवार शुरू किया (कनाडियन सोशल ट्रेंडस 2003: 19)।

MAADHYAM IAS

जनगणना में आंकड़े बताते है कि कनाडावासी लगातार अपनी शिक्षा को बढ़ाने में लगे हैं ताकि वे अच्छी नौकरियों से खुद को और अपने परिवार को सहारा दे सकें। इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि कनाडा की जनसंख्या पहले से अच्छी नौकरियों का उपभोग कर रही है और आर्थिक सहकारिता और विकास संगठन (OECD) के देशों में कार्यरत जनसंख्या जिसमें कालेज तथा यूनिवर्सिटी शिक्षा शामिल है, में कनाडा का स्थान सबसे उच्च है।

कार्य-बल, शिक्षा, नौकरी के अवसर आदि को आगे बढ़ाते हुए वहां और कई संकेतक है जो किसी भी देश के जीवन-स्तर या आर्थिक विकास को निश्चित करते हैं।

सोचिए और कीजिए 17.3

विकास के आर्थिक और सामाजिक संकेतकों का संग्रह करते हुए कनाडा के वर्तमान विकास की विचारधारा का मूल्यांकन कीजिए।

जब शिक्षा की बात आती है, हम यह पाते हैं कि शैक्षिक सफलताएं जो कनाडावासियों द्वारा अर्जित की गई, वह बहुत विशाल है। विश्वविद्यालय की डिग्री के साथ व्यक्तियों का अनुपात, उदाहरण के लिए, दस गुणा बढ़ा, 25 साल से ऊपर की जनसंख्या का 2 प्रतिशत से 20 प्रतिशत तक 1951 से 2001 तक, जबकि कनाडावासियों का 9 से कम श्रेणी का हिस्सा 55 प्रतिशत से गिरकर 11 प्रतिशत हो गया। 1990 के दशक में विश्वविद्यालय का शिक्षा का प्रचलन साफ दिखाई दिया। 1991 से 2001 तक 25 साल से ऊपर के व्यक्तियों में विश्वविद्यालय की डिग्री का अनुपात 15 से 20 प्रतिशत के बीच बढ़ा (कनाडियन सोशल ट्रेंडस 2003:19)।

विकास के तीन प्रतिमान — सार्वभौमिक और तकनीकी रूप से उन्नत अर्थव्यवस्था, जहाँ कुशल कर्मचारियों द्वारा धन-संपत्ति उत्पन्न की जाती है, 1990 के दशक में अप्रवासी कारीगरों का आगमन और 1990 के मंदी के दशक में अनिश्चित श्रम-बाज़ार की स्थिति ने उच्च शिक्षा पर ज़ोर दिया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

घ) कनाडा में जीवन-स्तर

कनाडावासी उच्च जीवन-स्तर का उपभोग करते हैं। "सामान्य आंकलन में कनाडावासी का प्रतिव्यक्ति कुल उत्पादन (GP per capita) 5 प्रतिशत से लेकर 15 प्रतिशत जो कि अमेरीका के स्तर से नीचे और तकरीबन उत्तरी यूरोप के लोकतंत्र के बराबर है"।

2003 के चौथे तिमाही में, आर्थिक वृद्धि 0.9 प्रतिशत तक बढ़ाने में निर्यात का बहुत बड़ा योगदान था। जैसे ही विनिर्माताओं की गतिविधियाँ बढ़ी, कनाडावासी परिवहन सेवा पर लगातार अधिक खर्च करने लगे और औद्योगिक वस्तुओं और माल की मांग करने लगे जो 3.9 प्रतिशत तक सुदृढ़ हो गई।

उपभोक्ता व्यय का विकास में सबसे बड़ा योगदान था। निजी व्यय में वृद्धि (+3.3%) जो कि पिछले दशक की औसत वृद्धि से मेल खाती है और 2002 की वृद्धि के समान है।

फर्नीचर और फ़र्श को ढकने के सामान की बिक्री (+8.1%) सुदृढ़ ही रही जो गृह-निर्माण में तेज़ी से प्रभावित हुई लेकिन पिछले साल से यह वृद्धि कम हो गई (स्टेटिसटिक्स कनाडा, कैटलॉग 2001: 15)।

श्रम आय में 3.4 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो 1996 से अब तक की न्यूनतम वृद्धि है। यद्यपि 2003 के शुरू में श्रम-आय कम थी, साल के अंत में श्रम-आय में तीन-चौथाई की वृद्धि हुई। उत्पादन उद्योग में रोज़गार की वृद्धि ने माल उत्पादन करने वाले उद्योगों के विकास में वृद्धि की। निपटान आय 2.8 प्रतिशत से बढ़ी, निजी ख़र्च में लगभग आंशिक रूप से वृद्धि हुई (नाममात्र आधार)। इसके परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र में बचत अचानक घट गई और बचत दर

गिरकर 2.0 हो गई, जो दशक की न्यूनतम वृद्धि थी। वास्तविक पारिवारिक ऋणदान में 2002 में 16 मिलियन डॉलर की वृद्धि थी जो 2003 में बढ़कर 43 मिलियन डॉलर हो गई (वही: 15-16)। हमें उपरोक्त विश्लेषण से यह निर्णय नहीं ले लेना चाहिए कि कनाडा एक समजातीय समाज, जो समानता पर आधारित है, का प्रतिनिधित्व करता है। वास्तविकता में यह कई क्षेत्रीय समस्याओं की तरफ इशारा करती है जो असमान अर्थव्यवस्था से संबंधित हैं। कनाडा के पांच परंपरागत क्षेत्रों का औद्योगिक ढांचा सार्थकता से अलग है। अनटरिओं और क्यूबेक में विनिर्माता क्षेत्र गतिविधि का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है, परेसिस में खेतीबारी, पेट्रोलियम और खनन, मेरीटाइम्स में मतस्य और खेतीबारी, और ब्रिटिश कोलम्बिया में वन-विज्ञान और मतस्य।

> **सोचिए और कीजिए 17.4**
>
> क्या "विकास" और "समानता" के बीच कोई संबंध है? कनाडा विश्व के विकसित देशों में से एक है लेकिन क्या यह समान अर्थव्यवस्था का भी ज़िक्र करता है? स्पष्ट कीजिए।

प्रतिव्यक्ति आय में से क्षेत्रीय विषमताएं या क्षेत्रीय भिन्नताएं अधिक या कम स्थिर बनी रहीं परंतु कनाडा के व्यक्तियों की आय में असमानताएं उससे कहीं अधिक हैं। 1984 से 1999 की अवधि में यद्यपि कुछ लोग संपत्ति की वृद्धि का उपभोग कर रहे थे, बाकी नहीं, क्योंकि इस अवधि में संपत्ति का वितरण असमान था। एक अध्ययन (रेमे मरिसेब्त क्सूबी ज़ौ और मारो ट्रोल, "क्या परिवार अमीर हो रहें हैं"? की असमानताओं का विश्लेषण करने के लिए किया गया; निष्कर्ष निकाला कि असल में इसका अधिक झुकाव संपत्ति के असमान वितरण पर था। कुछ वर्ग जैसे बच्चों के साथ नौजवान दम्पति और हाल ही में आए आप्रवासियों ने महत्वपूर्ण ह्रास को झेला। बच्चों के साथ नौजवान दम्पतियों का बढ़ता अनुपात, जिनके पास शून्य या नकारात्मक संपत्ति है, परामर्श देते हैं कि आजकल के नौजवान परिवार नकारात्मक आघात से असुरक्षित हो सकते हैं, जिनके पास संग्रह की हुई बचत नहीं है, जो उन्हें आर्थिक तनाव के दौरान उससे छुटकारा दिला सकती है (वही: 19)।

MAADHYAM IAS

समाज के सामाजिक ढांचे को ध्यान में रखते हुए पुनर्वितरण के लक्ष्य के लिए जो नीतियां बनाई गई थीं उनमें परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है और संपत्ति के वितरण में अधिक समानता होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त कनाडा न केवल दूरसंचार, नवप्रवर्तन, संयोजकता, कम्प्यूटर के विकास और इंटरनेट अर्थव्यवस्था में विश्व में सबसे आगे है, वह अपनी लकड़ी की वस्तुओं, जो निर्माण, मरम्मत और भीतरी सजावट के काम आती हैं, के लिए भी प्रसिद्ध है।

17.7 भारत के साथ संबंध

भारत कनाडा का एक महत्वपूर्ण औद्योगिक साझेदार है। "2003 में भारत का कनाडा के साथ द्विपक्षीय उद्योग पिछले दशक में करीब-करीब तीन गुना बढ़ गया जो 2.2 बिलियन डॉलर तक पहुँच गया। भारत कनाडा में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के उद्‌गम स्रोत के लिए और बाज़ार के लिए भारत को ही प्राथमिकता देता है और देता रहेगा। 2002 में भारत को निर्यात 674 मिलियन डॉलर से बढ़कर 2003 में 733 मिलियन डॉलर हो गया जो कि 8.7 प्रतिशत की वृद्धि थी। पेपर, वायुयान, उर्वरक, लोहा और इस्पात और वस्त्रोद्योग (खेलपरिधान) में महत्वपूर्ण बढ़ोतरी रिकार्ड की गई। कनाडा के भारत निर्यात में दूरसंचार साज-सामान, मटर, दालें, पोटाश और लकड़ी का गूदा सम्मिलित हैं। भारत का कनाडा को निर्यात 2002 में 1.3 खरब डॉलर से बढ़कर 2003 में 1.4 खरब डालर तक बढ़ा। परिधान, धागे और कपड़ा, कीमती रत्न, मसाले, चमड़े को वस्तुएं और फ्रोज़न समुद्री भोजन (sea food) प्रबलता से कनाडा को निर्यात किए जाते हैं।

17.8 सारांश

विश्व के औद्योगीकृत देशों में से कनाडा एक है और मानव विकास के संबंध में विश्व में यह चौथे स्थान पर है। यह G-7 के सात मार्ग-दर्शन करने वाले औद्योगिक देशों, जिसमें कि अमेरीका, दि युनाइटेड किंगड्म, फ़्रांस, जर्मनी, इटली, कनाडा और जापान है, में से एक मज़बूत और स्वस्थ देश है। G-7 देशों में कनाडा ने रोज़गार के संबंध में कनाडा ने मज़बूत वृद्धि का अनुभव किया। हाल में हुए आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने वाला संचालित बल है। कनाडा का सार्वभौमिक क्षेत्र — जैसे कि ऊर्जा के बढ़ते मूल्य, और कनाडियन डॉलर के मूल्यांकन में इसका सहयोग। इस इकाई ने पहले के भागों में देश के आर्थिक दृश्य का अन्वेषण किया है। कनाडा के आर्थिक विकास के साथ देश के लोगों और सरकार के साथ कनाडा ने सामाजिक और पर्यावरण संबंधी विकास को भी समान महत्व दिया है। जानकारी पर आधारित अर्थव्यवस्था के विकास के प्रयास में कनाडा ने व्यक्तियों को जानकारी निपुणता और कौशलता उपलब्ध कराने पर ज़ोर दिया जिससे कि वो समाज और अर्थव्यवस्था में प्रभावपूर्ण तरीके से भाग ले सके। इकाई का बाद का भाग कनाडा के विकास के सामाजिक क्षेत्रों का निरीक्षण करता है।

17.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

जेम्स एच. मार्श (ed). 1988. *दि कनाडियन एन्साइक्लोपीडिया.* सेकन्ड एडीशन, वाल्यूम 1, हरटिंग पब्लिर्शसः एडमंटन

वाल्ज़, पी. इयूगीन (Walz, P. Eugene) (ed). 1999. *दि कनाडियन एन्साइक्लोपीडिया.* मॅक्डैलांड और स्टूअर्ड (McDelland and Steward) Inc.: टोरन्टो

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 18
ज़िम्बाब्वे

इकाई की रूपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि
18.3 दक्षिणी अफ़्रीका के क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य
18.4 समकालीन राजनैतिक परिदृश्य
18.5 ज़िम्बाब्वे की आर्थिक विकास नीतियाँ (1991-2001)
18.6 आर्थिक ढाँचे की समायोजन नीतियों का प्रभावः वृहद आर्थिक संकट
18.7 ग़रीबी उन्मूलन की कार्यनीतियाँ
18.8 अर्थव्यवस्था का स्वदेशीकरण
18.9 स्वतंत्रता के पश्चात विकास का परिदृश्य – विहंगवालोकन
18.10 सारांश
18.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

यह इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- ज़िम्बाब्वे के ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण का वर्णन कर सकेंगे;
- ज़िम्बाब्वे के समकालीन सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक दृश्य का वर्णन की चर्चा कर सकेंगे; और
- ज़िम्बाब्वे में विकासात्मक पहल पर प्रकाश डाल सकेंगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

18.1 प्रस्तावना

अफ़्रीका महाद्वीप में ज़िम्बाब्वे आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक विकसित देश है जहाँ प्राकृतिक-संसाधन प्रचुर-मात्रा में पाए जाते हैं। 18 अप्रैल 1980 में स्वतंत्रता की लंबी लड़ाई के बाद ज़िम्बाब्वे एक स्वतंत्र राज्य बन गया जो कि ब्रिटेन का उपनिवेश दक्षिणी रोहडेशिया था। नया राष्ट्र होने के बावजूद इस देश ने उप-सहारा अफ़्रीका देशों के मुक़ाबले अस्वाभाविक आर्थिक विकास के स्तर के लक्ष्य को प्राप्त किया। आर्थिक विकास में दक्षिण-अफ़्रीका के बाद ज़िम्बाब्वे दूसरी आर्थिक-व्यवस्था का एक अन्तरवर्ती संकेत-सूचक है जो अविकसित पराश्रित परिवर्तन से आत्म-निर्भर औद्योगीकरण बन गया है।

यह इकाई ज़िम्बाब्वे देश की जनसांख्यिकीय विशेषताओं, ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की चर्चा से शुरू होती है। ज़िम्बाब्वे को क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत बेहतर रूप से समझने के लिए हमने उसकी तुलना विभिन्न दक्षिणी अफ़्रीकी देशों से की है। देश की समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दृश्य की चर्चा इसमें विस्तार से हुई है। यह इकाई आपको ज़िम्बाब्वे की विकास की दशा को समझने में सहायता करेगी।

18.2 ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

भूगोल

ज़िम्बाब्वे दक्षिण में सब तरफ से देशों से जकड़ा हुआ है, अफ़्रीकी महाद्वीप का उप-सहारा क्षेत्र दक्षिण में दक्षिण अफ़्रीका से घिरा है, पश्चिम में बोत्सवाना (Botswana), पूर्व में मोज़ामबीक

(Mozambique), और उत्तर में ज़ाम्बिया से घिरा हुआ है। 391,090 वर्ग कि. मी. के क्षेत्रफल के साथ, ज़िम्बाब्वे कोलोरॉडो (Colorado) राज्य से थोड़ा ही बड़ा है। ज़िम्बाब्वे की राजधानी हरारे है, जोकि सबसे बड़ा शहर और जहाँ की जनसंख्या 1,100,000 है।

ज़िम्बाब्वे में विस्तृत-मात्रा में दुर्लभ खनिज-संसाधन, फसलों की पैदावार के लिए अनुकूल जलवायु से सम्पन्न ज़िम्बाब्वे की अर्थव्यवस्था समान रूप से खनन और अनिवार्य और नक़दी फसल के उत्पादन की तरफ आकृष्ट हुई है।

लोग

ज़िम्बाब्वे में मुख्य रूप से दो मुख्य जातीय समूह हैं। जनसंख्या जिसमें 74 प्रतिशत शोहना और नदेबेले (Ndebele) 20 प्रतिशत हैं। अन्य जातीय समूह अश्वेत वर्गों और एशियाओं का है जो जनसंख्या का 4 प्रतिशत हैं जबकि जनसंख्या का सिर्फ़ 1 प्रतिशत श्वेत लोगों यानि अंग्रेज़ों का है। ज़िम्बाब्वे की सरकारी भाषा अंग्रेज़ी है। बाकी भाषाओं में नदेबेले/सिंदबेले, शोहना और कई जनजातीय भाषाएं हैं।

बॉक्स 18.1: तथ्यों पर एक नज़र

सरकारी नाम	:	ज़िम्बाब्वे एक. गणराज्य
राजधानी	:	हरारे
क्षेत्रफल (हज़ार किलोमीटर)	:	391
जनसंख्या (मिलियनस)	:	12.9 (2003)
जनसंख्या का घनत्व (प्रति कि. मी.^{2})	:	33 (2003)
शहरी जनसंख्या (: 2001)	:	36
सकल राष्ट्रीय आय (GNI) (प्रति व्यक्ति)	:	यू. एस. + 470 (2002)
जी. एन. आई. क्रय.शक्ति समता (PPP) (प्रति व्यक्ति)	:	यू. एस. : 2,280 (जी.डी.पी.–2001)
जी. डी. पी. का ढाँचा (2001)	:	कृषि संबंधी : 18 प्रतिशत उद्योग : 24 प्रतिशत नौकरियाँ : 58 प्रतिशत
मानव विकास सूचकांक (HDI) श्रेणीकरण (2004)	:	177 देशों का 147वां
लैंगिक भेदभाव संबंधित विकास सूचकांक (GDI) श्रेणीकरण (2004)	:	177 देशों का 147वां
जन्म के वक्त जीवन प्रत्याशा 2004	:	33.1
5 वर्ष के नीचे मृत्यु-संख्या (प्रति 1000)	:	123 (2002)
व्यस्क साक्षरता दर (2004)	:	कुल : 89 प्रतिशत पुरुष : 93 प्रतिशत महिलाएं : 85 प्रतिशत

स्रोत: यू. एन. डी. पी., मानव विकास रिर्पोट 2004, यू.एन.एफ.पी.ए., दि स्टेट ऑफ वर्ल्ड पापुलेशन 2003, UNICEF, दि स्टेअ ऑफ दि वर्ल्डस चिल्ड्रन 2004, वर्ल्ड बैंक, वर्ल्ड डिवेलपमैंट रिर्पोट 2004, WWF, लिविंग प्लेनट रिर्पोट 2002।

MAADHYAM IAS

इतिहास

ज़िम्बाब्वे का इतिहास 9वीं शताब्दी ईसा पूर्व से चला आ रहा है, वो अवधि जिसमें माना जाता है कि कई बड़ी इमारतें बनाई गई, जोकि प्राचीन और विशाल सभ्यता की सूचक है। कई जगहों में से सबसे प्रभावशाली है ग्रेट स्टोन हाऊस या ग्रेट ज़िम्बाब्वे और बाकी इमारतों की प्रभावशाली प्रकृति के बावजूद यह माना जाता है कि जिस सभ्यता ने उन्हें बनाया वो नए युग में उसे देखने के लिए नहीं रहे।

ग्रेट ज़िम्बाब्वे के निर्माण के 900 सालों के पश्चात कई और स्थल बनाए गए, जब 1888 में ज़िम्बाब्वे ब्रिटिश उप-निवेशवाद का लक्ष्य बन गया। यही साल था जब जॉन सेसिल रोडिस (John Cecil Rhodes) ने खनिज के अधिकार ब्रिटिश राज के लिए प्राप्त कर लिए और ज़िम्बाब्वे को ग्रेट ब्रिटेन में लाने की प्रक्रिया शुरू कर दी। उसकी इस उपलब्धि के पश्चात ब्रिटिश राज ने उसे सम्मानार्थ यह उपाधि दी कि एक क्षेत्र को उसका नाम दे दिया, जिसे अब रोडेशिया के नाम से जाना जाता है। हालांकि यह एक उपनिवेश था, रोहडेशिया ने पूर्णतया अधिकार-पत्र के अस्तित्व और स्वशासन और स्वायतशासन का अनुभव किया। इसने उन गुटों के उद्गमन की अनुमति दी जो रोहडेशिया के खनिज संबंधी और कृषि-संबंधी विकास में दिलचस्पी रखते थे और सिर्फ़ घरेलू विकास के लिए इस सामर्थ्य को बढ़ाना चाहते थे। हालांकि इस विकास से पूरे देश को लाभ होना था, लेकिन उनका नमूना इस तरह तैयार किया गया कि वो सिर्फ़ अंग्रेज़ों को लाभ पहुंचाएं। रोहडेशिया की स्वशासन और प्रजातिवादी प्रकृति ने बाद में देश के राजनैतिक भविष्य पर काफ़ी गहरा प्रभाव छोड़ा।

बॉक्स 18.2

ज़िम्बाब्वे विक्टोरिया जल-प्रपातों का घर है, जिसे कि दुनिया के प्राकृतिक अजूबों में से एक माना जाता है, पत्थरों का अंतः क्षेत्र ग्रेट ज़िम्बाब्वे पिछले साम्राज्य के अवशेष, और हाथियों का झुंड और कई शिकारी सुविस्तृत फैले हुए बीहड़ जंगलों में घूमते हुए।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

राजनीति

1960 के आसपास रोहडेशिया एक दो गुटों का देश था। शासन करने वाले अंग्रेज़ों का अल्पमत जो इंग्लैंड से संपूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे और देशी अफ़्रीकियों का बहुमत जो अपने देश पर पूरा नियंत्रण चाहते थे और संस्थागत जातिवाद को खत्म करना चाहते थे। जीर्ण-शीर्ण अर्थव्यवस्था के साथ और अल्पमत अंग्रेज़ शासकों के साथ अफ़्रीका के लोगों की असंतुष्टि से रोहडेशिया एक ऐसी अवधि में उतर गया जहाँ आर्थिक और राजनैतिक हड़बड़ाहट ने अनिश्चितता और साधारण राजनैतिक अस्थिरता को जन्म दिया। 1960 के दशक के मध्य में अल्पमत अंग्रेज़ों ने एकपक्षीय स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इसका विचार इंग्लैंड के दबाव से मुक्त होना था जोकि "ज़ोर देकर" कर रहा था कि अफ़्रीका का बहुमत सरकार के पक्ष में अपना मत दे।

1980 में पहली बार रोहडेशिया में स्वतंत्र दलीय चुनाव हुए जो राबर्ट मुगाबे की ज़िम्बाब्वे अफ़्रीकन राष्ट्रीय संघ (ZANU) ने निरपेक्ष बहुमत से जीते। 18 अप्रैल 1980 को ब्रिटिश सरकार ने पूर्व रोहडेशिया को औपचारिक रूप से स्वतंत्रता की स्वीकृति दी और चार महीने बाद ज़िम्बाब्वे को राष्ट्रीय संघ में एक सदस्य को हैसियत से प्रवेश मिला। ज़िम्बाब्वे की राजनैतिक व्यवस्था, जिसका अस्तित्व आज तक भी है, दलीय और बहुसंख्यकों की संसदीय व्यवस्था द्वारा कार्यान्वित हुई। राबर्ट मुगाबे राष्ट्रपति बने रहे और उन्होंने गुट-निरपेक्षता की विदेश नीति का लाभ उठाया। इसके अतिरिक्त ज़िम्बाब्वे अफ़्रीका एकता संघ का सदस्य है (OAU) और अपने पड़ोसी देश अफ़्रीकी राज्य, दक्षिण अफ़्रीका के साथ मुख्य व्यापार कर रहा है। 1980 से लेकर अब तक की अवधि में ज़िम्बाब्वे ने मौलिक आर्थिक व्यवस्था को

समझा क्योंकि यही वह दौर था जब ज़िम्बाब्वे के आर्थिक ढांचे ने अपने आपको बेहतर रूप से व्यक्त किया।

अर्थव्यवस्था

ज़िम्बाब्वे की आर्थिक संरचना बहुत अधिक समर्थ हैं। स्वतंत्रता से पहले शुरू के सालों में ज़िम्बाब्वे ने अपने खनन उद्योग को बहुत अधिक बढ़ावा दिया जिसके परिणामस्वरूप अफ़्रीका में यह अब सर्वाधिक विकसित देश है। ताँबा, निकॅल, सोना और अन्य धातुओं के खनन से देश की सकल घरेलू उत्पाद का लगभग आधा हिस्सा प्राप्त होता है। बाकी आधा हिस्सा कृषि से प्राप्त होता है। खेतिहर लोग केवल जीवनयापन भर के लिए उत्पादन कर पाते हैं।

ज़िम्बाब्वे के खनिज निर्यात उद्योग का राष्ट्र के विकास की सफलता में महत्वपूर्ण योगदान है। छोटा होने के बावजूद, देश के खनन उद्योग का आधुनिकीकरण और अनुकूलतापूर्वक निर्यात की ओर इसका विकास किया गया है। कई खंडजित सड़कें, खानें, और दूसरे उद्योगों को जोड़ती हैं। जोकि मिलकर खनन को पूर्ण बनाते हैं इन उद्योगों में भारी यंत्र सम्मिलित हैं। खानों के समीप के क्षेत्र भी अच्छी तरह विकसित हैं और उनका शहरीकरण हुआ है ताकि योग्य और पर्याप्त कार्यबल सुनिश्चित कर सके। अंत में ज़िम्बाब्वे ने वस्त्रोद्योग जैसे अकुशल उत्पाद के व्यापार में गुट-निरपेक्ष देशों के साथ भाग लिया। इसने देश को अकारण उद्योग की साझेदारी की निर्भरता को काफ़ी हद तक कम किया।

सोचिए और कीजिए 18.1

वर्तमान ज़िम्बाब्वे को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का सारांश दीजिए।

18.3 दक्षिणी अफ़्रीका के क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य

MAADHYAM IAS

पिछले दशक में, सिर्फ़ दो विकासशील क्षेत्रों पूर्व और दक्षिण एशिया ने 2 प्रतिशत से ऊपर की वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में प्राप्त की। लेटिन अमरीका में प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि एक प्रतिशत से कम और बाकी विकासशील देश के क्षेत्रों में नकारात्मक रही। उप-सहारान अफ़्रीका क्षेत्र का प्रदर्शन प्रति व्यक्ति आय में सबसे बुरा रहा जिसमें 3 प्रतिशत वार्षिक की दर से ह्रास होता गया।

यह निराशाजनक रिकार्ड नवीनतम अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष के आंकलन के अंतर के स्थान पर खड़ा होता है, जोकि उप-सहारा अफ़्रीका में 1994 में 2.1 प्रतिशत से 1995 में 5.0 प्रतिशत और आगे 1996 में 5.5 प्रतिशत की तीव्र वृद्धि दिखाता है। अगर यह मान लिया जाए कि यह प्रक्षेप सही हैं, उप-सहारा की वृद्धि विश्व की अर्थव्यवस्था से काफ़ी ऊपर है और समग्र रूप से विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से औसतन सिर्फ़ थोड़ी ही पीछे है। दक्षिण अफ़्रीका क्षेत्र विशेष रूप से दक्षिण अफ़्रीका और ज़िम्बाब्वे — मुख्य रूप से इसके पुनःक्रियाशील होने के ज़िम्मेदार हैं।

वर्तमान सालों में दक्षिणी अफ़्रीका राजनैतिक हड़बड़ाहट से बहुदलीय लोकतंत्र और सुधरे हुए शासन की ओर असाधारण विकास किया है। उसी समय आर्थिक सुधार और संरचनात्मक समायोजन नीतियों ने आर्थिक नीतियों का क्रमिक अभिसरण दिखाया है। ये उन्नति दक्षिणी अफ़्रीका में नई रंगभेद के पश्चात की शांति और सुरक्षा और अधिक तेज़ दीर्घकालीन आर्थिक वृद्धि के लिए बढ़ी हुई संभावनाएं दिखाती है।

मुख्य अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाज़ारों और व्यापारिक राष्ट्रों के गुट के परिप्रेक्ष्य में इसका अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि दक्षिण अफ़्रीका एक आशाजनक बाज़ार का प्रतिनिधित्व करता है। अमरीकी 140 बिलियन डालर पर, क्षेत्रीय सकल घरेलू उत्पाद अपेक्षाकृत कम है, लेकिन

विकास के लिए सामर्थ्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। दक्षिणी अफ़्रीका एक बेजोड़ क्षेत्रीय मिश्रण का समाविष्ट करता है जिसमें सुसंस्कृत दक्षिणी अफ़्रीका की अर्थव्यवस्था, एक बड़ी जनसंख्या का पृष्ठ-प्रदेश और विस्तृत अप्रयुक्त प्राकृतिक संसाधन का आधार और सामान्यतः कम मूल्य की सम्पत्ति का प्रतिनिधित्व करता है। यह सामर्थ्य व्यर्थ नहीं गया है और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) के संतोषजनक मोड़ से क्षेत्र में अंतःप्रवाह को पहले से दर्ज किया गया है। 1994 से लेकर अब तक दक्षिणी अफ़्रीका और ज़िम्बाब्वे ने अपेक्षाकृत उम्मीद से अधिक कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अंतःप्रवाह दर्ज किया।

मूल आंकड़े जो दक्षिणी अफ़्रीका की अर्थव्यवस्था का वर्णन करते हैं (देखें तालिका 18.1) उनकी तुलना बड़ी और "उद्गामी" अर्थव्यवस्थाएं जो दुनिया में चारों ओर हैं, के साथ की जाती है। क्षेत्र की ग्यारह "केन्द्रीय" अर्थव्यवस्थाएं उस जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है जो पहले से ही अमरीका के आधे के बराबर बड़ी हैं और संभवतः तीस सालों में अमेरीका के बराबर हो जायेंगी, इसकी सकल घरेलू उत्पाद इंडोनेशिया से अधिक और भारत के दो तिहाई के क़रीब बड़ी है। दक्षिण अफ़्रीका को मिलाकर क्षेत्र की प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद (दक्षिण अफ़्रीका को मिलाकर) महत्वपूर्ण रूप से पूर्व एशिया और प्रशान्त से औसतन अधिक है, जबकि अगर दक्षिण अफ़्रीका को निकाल दिया जाए तो सकल राष्ट्रीय उत्पाद प्रति व्यक्ति थोड़ी ही भारत से नीचे है। इन तथ्यों के साथ न जाते हुए कि आय इतनी असमान है, वहाँ काफ़ी बड़ा मध्यम-वर्ग (जिसकी परिभाषित घरेलू आय अमेरीकी (2,484 डालर से ऊपर) दक्षिणी अफ़्रीका में है।

तालिका 18.1: दक्षिणी अफ़्रीका का विकास समुदाय (SADVC): मूल आंकड़े (1993) जनसंख्या, जी.डी.पी. और प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. (GDP) के अनुसार वर्गीकरण

जनसंख्या (मिलियन में)		**जी.डी.पी. (बिलियन में अमरीकी डालर)**		**प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. अमरीकी डालर**	
दक्षिण अफ़्रीका	39.7	दक्षिण अफ़्रीका	105.64	मारिशस	3,030
तनज़ानिया	28.0	अंगोला	12.33	दक्षिण अफ़्रीका	2,980
मोज़ेमबीक	15.1	ज़िम्बाब्वे	4.99	बोटसवाना	2,790
ज़िम्बाब्वे	10.7	बोटसवाना	3.81	नामीबिया	1,820
मालवी	10.5	ज़ाम्बिया	3.69	स्वाज़ीलैंड	1,190
अंगोला	10.3	मारिशस	2.78	अंगोला	1,200
ज़ाम्बिया	8.9	नामीबिया	2.11	लिसोथो	650
लिंसोथो	1.9	तनज़ानिया	2.09	ज़िम्बाब्वे	520
नामीबिया	1.5	मालवी	1.81	ज़ाम्बिया	380
बोटसवाना	1.4	मोज़ेमबीक	1.37	मालवी	200
मारिशस	1.1	स्वाज़ीलैंड	1.05	तनज़ानिया	90
स्वाज़ीलैंड	0.9	लिंसोथो	0.61	मोज़ेमबीक	90
कुल	**130.0**	**कुल**	**142.27**	**औसत**	**1,094**
दक्षिण अफ़्रीका को छोड़कर					
कुल	**90.3**	**कुल**	**36.63**	**औसत**	**406**

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

दक्षिण अफ़्रीका की अर्थव्यवस्था का आकार इसे निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण क्षेत्रीय बल देता है। हालांकि इसकी जनसंख्या दक्षिण अफ़्रीका का सिर्फ़ 40 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करती है, इसका कुल घरेलू उत्पाद उपमहाद्वीप की कुल पैदावार का 75 प्रतिशत का लेखा-जोखा रखता है। दखिणी अफ़्रीका का क्षेत्र में एकीकरण में अब तक राजनैतिक बाधाएं थी, लेकिन वो अब विखंडित हो चुकी हैं। दक्षिण अफ़्रीका के दलीय परिवर्तन ने उद्योग के उत्थापन और वित्तीय स्वीकृति पर प्रकाश डाला हैं अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार ने अनुकूल सुधरे हुए उपागमन से दक्षिण अफ़्रीका में ही आर्थिक नीति का दुबारा से आंकलन देखा है। नई सरकार लगातार अंतर्मुखी नीतियों को बदलकर व्यापार को विकास के चालक के रूप में निश्चित करना चाहती है।

> **सोचिए और कीजिए 18.2**
>
> दक्षिणी अफ़्रीका की अर्थव्यवस्था की चर्चा, ज़िम्बाब्वे की भूमिका पर अधिक ज़ोर देकर कीजिए।

18.4 समकालीन राजनैतिक परिदृश्य

ज़िम्बाब्वे एक क़ानूनन बहुदलीय प्रजातंत्र है जिसकी 150 सदस्यों वाली विधान सभा से 120 सदस्य हर पांच साल के लिए चुनाव क्षेत्र से चुनकर आते हैं। शेष 30 सीटें राष्ट्रपति द्वारा बिना चुने लोकसभा सदस्यों और प्रांतीय राज्यपालों में बांट दी जाती है। राष्ट्रपति का चुनाव, हर छः साल बाद अलग से राष्ट्रपति वोट के द्वारा होता है। जैसा कि उम्मीद थी, ज़िम्बाब्वे अफ़्रीकन नेशनल यूनियन पेट्रिऑटिक फंर्ट अत्यधिक बहुमत से मार्च 1995 के आम चुनावों को जीता और पदासीन राष्ट्रपति, राबर्ट मुगावे को बहुत कम विरोध का सामना राष्ट्रपति चुनाव में करना पड़ा। हालांकि ज़िम्बाब्वे एक विधितः बहुदलीय प्रजातंत्र है, लोकसभा में सिर्फ़ चार सदस्य ही शासक दल के हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1980 में स्वतंत्रता के समय, संसाधनों के स्वामित्व की पहुंच में ज़िम्बाब्वे के बहुत अधिक असमान वितरण को चित्रित किया गया था। आय का विषम वितरण, आर्थिक सम्पति का स्वामित्व जैसे ज़मीन, घर, व्यापार और दूसरी सम्पति के साधनों का संयोजन बहुत अधिक असमान सामाजिक सेवाओं तक पहुंच जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य से हुआ था। अन्याय का सबसे अधिक प्रत्यक्ष पहलू इसका जातीय स्वरूप था।

इस तरह, तर्कसंगतता और सरकार की शक्ति का आधार सिर्फ़ राष्ट्रवादी और जातीय विरोधी मंच ही नहीं था बल्कि पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन की भी व्यक्त वचनबद्धता थी। इस वचनबद्धता ने कार्यसूची प्रमाणित की जिसने सामाजिक, आर्थिक और जातीय असमानताओं की सुधारने की तलाश शुरू की और आगे राज्य की नीतियों को, निजी क्षेत्र की शक्ति और प्रभाव को कम करके आगे बढ़ाया।

सामाजिक वाकपटुता के बावजूद, परिवर्तन का विस्तार, स्वामित्व के परिवर्तन सहित, वास्तव में काफ़ी सीमित था। सरकार ने अपना ध्यान वेतन और मूल्य-नियंत्रण और सामाजिक सेवाओं, विशेषकर स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में केंद्रित रखा। उत्पादक क्षेत्र को आवश्यक रूप से अधिकार में नहीं लिया गया था बल्कि राज्य ने स्वैच्छिक अनिवेश के द्वारा व्यापार को अधिकार में ले लिया था या राज्य का नए जोखिमों में भाग लेना स्वतंत्रता के पश्चात के काल में सक्रिय नीतियों को परिभाषित करता है।

जैसे ही 1980 के दशक ने प्रगति की, सरकार के सामाजिक आदर्शों और नीतियों के बीच का अंतर तेज़ी से बढ़ता गया। 1991 से लेकर अब तक सरकार अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक द्वारा सहायता प्राप्त आर्थिक ढांचे के समायोजन कार्यक्रम को कार्यान्वित करता

रहा है। यह अब पूरी तरह से साफ़ है कि खुद श्री मुगाबे और उनकी तकरीबन पूरी सरकार ढांचे के समायोजन के नए पथ के साथ पूरी तरह वचनबद्ध है।

इन परिवर्तनों से ज़िम्बाब्वे में प्रत्यक्ष और प्रकार्यात्मक अनेकत्व की शुरुआत हुई जिसे कि सरकार द्वारा नियंत्रित माध्यम का सशक्त वैकल्पिक समर्थन प्राप्त है। वैकल्पिक प्रेस को दबाने के लिए कोई गंभीर परिवर्तन नहीं किया गया था और न ही इस मामले के लिए कोई तर्कसंगत दबाव वर्ग था और वर्तमान के कुछ सालों में कई प्रमुख निजी क्षेत्र के समर्थक-वर्ग सरकार की नीतियों को प्रभावित करने में सफल हुए हैं।

संविधान के अनुसार, ज़िम्बाब्वे पहले से ही बहुदलीय प्रजातंत्र है इसलिए किसी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर भी जे.ए.एन.यू.पी.एफ. (ZANU-PF) लगातार संपूर्ण रूप से राष्ट्रीय राजनीति पर हावी होती रही है और शासक दल, जैड. ए.एन.यू.पी. एफ. (ZANU-PF) के लिए कोई भी राजनैतिक चुनौती का प्रत्यक्ष विवरण नहीं है। जैसा कि श्री मुगाबे ने अपने आप अपने पद को, पार्टी के नेता होने और राष्ट्रीय राष्ट्रपति होने के नाते, दोनों को ही मज़बूत स्थिति में रखा है और पार्टी के अंदर या बाहर ऐसा कोई भी इतना समीप नहीं है जो उनके पद को चुनौती दे सके।

1990 का दशक पश्चिम के साथ संवेदनशील रिश्तों को प्रमाणित करता है क्योंकि ज़िम्बाब्वे ने खाड़ी-युद्ध में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (United Nations Security Council) का अध्यक्ष बनकर समर्थक की भूमिका निभाई थी। भूतकाल के दंडनीय प्रस्थान में पश्चिमी हस्तक्षेप ने तीसरी दुनिया के देशों में ज़िम्बाब्वे ने इराक के कुवैत पर आक्रमण को समर्थन दिया और सैन्य हस्तक्षेप के पक्ष में मत दिया। सोमालिया में शांति बनाए रखने के प्रयत्न में ज़िम्बाब्वे ने फ़ौज भेजी, जिसके लिए उसने अंतर्राष्ट्रीय प्रशंसा भी हासिल की और तीसरी दुनिया और पश्चिम की सुरक्षा-परिषद के बीच संभावतः अलग रहने को रोकने में सहायता की।

MAADHYAM IAS

हालांकि यह कहना मुश्किल है कि देश भ्रष्टाचार से मुक्त है, सामान्य रूप से महाद्वीप पर और कहीं और बड़े पैमाने पर नियमित रूप से भ्रष्टाचार को रोकने के प्रबंध किए हैं। अधिकतर प्रकाशित जोखिम दर निर्धारण देशों में ज़िम्बाब्वे को राजनैतिक जोखिम में न्यूनतम जोखिम तथ्य पर रखा गया है।

सोचिए और कीजिए 18.3

एक दशक में ताकत की प्राप्ति तक ज़िम्बाब्वे सरकार ने आर्थिक और राजनैतिक नीतियों में जो बदलाव किए हैं उनका मूल्यांकन कीजिए।

18.5 ज़िम्बाब्वे की आर्थिक विकास नीतियाँ (1991-2001)

1980 में ज़िम्बाब्वे ने युद्ध के पश्चात पुनः निर्माण का कार्यक्रम शुरू किया जिसमें कुछ विदेशी दाताओं द्वारा मदद की गई। सामान्य रूप से पुनः निर्माण सफल रहा, जबकि अर्थव्यवस्था का पुनः पूंजीकरण और पुनःएकीकरण विश्व अर्थव्यवस्था में हो गया। पिछले दो दशकों के दौरान ज़िम्बाब्से सरकार पश्चिमी दाता के दबाव के आगे झुक गई और आर्थिक संकट के जवाब में पांच साल के आर्थिक ढांचे के समायोजन कार्यक्रम को (ESAP) कार्यान्वित करने को राज़ी हो गई, जोकि 1980 के दशक से देश को पीड़ित कर रहे थे। प्रस्तुत मापदंड थेः

- मूल्य-नियंत्रण का निष्कासन;
- वेतन-नियंत्रण का निष्कासन;
- सरकारी व्यय में कमी;

- ज़िम्बाब्वे के डालर में 40 प्रतिशत का अवमूल्यन;
- मूल उपभोक्ता वस्तुओं में आर्थिक सहायता का निष्कासन;
- विदेशी मुद्रा की नियतन व्यवस्था का उदारीकरण;
- अनुत्पादक आयात के संरक्षण का निष्कासन उद्योगों का प्रतिस्थापन करके और विदेश में बढ़े हुए प्रेषित लाभ से; और
- अन्य सार्वजनिक उद्योगों का नव-निर्माण

बाद में, 1991 के शुरू में, ज़िम्बाब्वे सरकार ने आर्थिक सुधारों के प्राधार की घोषणा की (1991-95)।

इसका लक्ष्य कुशलता और प्रबंध के सुधारों के कार्यक्रमों को कार्यान्वित किया जाए, साथ ही साथ सार्वजनिक उद्योगों का व्यापारीकरण और निजीकरण किया जाए। 1998 में इससे आगे ज़िम्बाब्वे सरकार ने दूसरे चरण की इसकी आर्थिक ढांचे के समायोजन कार्यक्रम प्रक्षेपित किए, ज़िम्बाब्वे के आर्थिक और सामाजिक रूपान्तर के कार्यक्रम (ZIMPREST)। 2000 में जैड. आई.एम.पी.आर.ई.एस.टी. (ZMPREST) ने समष्टि अर्थशास्त्र सुधारों के द्वारा इसकी रूपरेखा तैयार की। इस योजना ने 2000 तक वास्तविक वार्षिक सकल घरेलू उत्पाद की 6 प्रतिशत की वृद्धि और हर साल 44,000 नई नौकरियों के सृजन पर विचार किया। इस तरह के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, बचत और निवेश को सकल घरेलू उत्पाद के कम से कम 23 प्रतिशत तक पहुंचने की और बजट घाटे को कम करके 5 प्रतिशत से भी कम की अपेक्षा की जाती है। जैड. आई. एम.पी.आर.ई.एस.टी. (ZIMPREST) ने भी दलीय संस्थाओं के गुण में सुधार, अच्छे शासन की खोज और भ्रष्टाचार के उन्मूलन की कोशिश करी। इस प्रकार राजनैतिक परिस्थितियां जैड. आई.एम.पी.आर.ई.एस.टी. (ZIMPREST) के साथ जोड़ी गईं।

18.6 आर्थिक ढाँचे की समायोजन नीतियों का प्रभावः वृहद आर्थिक संकट

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

1991 से लेकर अब तक ज़िम्बाब्वे के डॉलर का बार-बार अवमूल्यन होता रहा है और संकट के बाद यह ज़मीन की क्षतिपूर्ति की प्रक्रिया के साथ शुरू हो गया, जोकि करीब-करीब बेकार था। अर्थव्यवस्था के उदार उदारीकरण ने सरंक्षणवाद को बहुत ऊपर उठाया। इसने घरेलू उद्योग के लिए सस्ते आयात के दरवाज़े खोल दिए और परिणामस्वरूप कई श्रम-गहन उद्योग बंद हो गए और श्रमिकों की संख्या भी कम करनी पड़ी। ज़िम्बाब्वे के वस्त्रोद्योग निर्यात पर दक्षिण अफ़्रीका के शुल्क लागू करने के निर्णय ने स्थिति को और भी बदतर बना दिया। देश में प्रचंड सूखे ने महत्वपूर्णता से कृषि की पैदावार को प्रभावित किया, जोकि विदेशी मुद्रा का मुख्य स्त्रोत है। इस तरह 1991 से लेकर 2001, तक ज़िम्बाब्वे की घरेलू उत्पाद सकल (GDP) का ह्रास नकारात्मक वृद्धि में 11.5 प्रतिशत की समाप्ति पर था।

दक्षिण अफ़्रीका के साथ व्यापार संबंधों का महत्व

ज़िम्बाब्वे, दक्षिण अफ़्रीका का महाद्वीप पर सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है। यह दक्षिण अफ़्रीका को बहुत अधिक मुख्य वस्तुएं निर्यात करता है और ईंधन और विद्युत के लिए दक्षिण अफ़्रीका पर निर्भर है। औद्योगिक संतुलन दक्षिण अफ़्रीका के निर्यात के पक्ष में है मुख्यतः निर्मित वस्तुओं का ज़िम्बाब्वे को निर्यात करना। दक्षिण अफ़्रीका के संरक्षणवाद ने यह आश्वस्त किया कि ज़िम्बाब्वे की वस्तुएं दक्षिण अफ़्रीका में कम प्रतियोगी बनी रहें और इसने भी 1990 के दशक में ज़िम्बाब्वे की अर्थव्यवस्था की ओर नीचे झुका दिया।

बेरोज़गारी

काफ़ी सालों से अब तक व्यापक रूप से फ़ैली बेरोज़गारी और कुशल युवा व्यावसायिकों का देश में बाहरी रूप प्रगति पर रहा जिससे कि दक्षिण अफ़्रीका, ब्रिटेन, उत्तरी अमेरीका और आस्ट्रेलिया भी सबसे अधिक पसंद किए जाने वाले लक्ष्य हैं। इस प्रकार आर्थिक नीति सुधारों का परिणाम रोज़गार अवसरों का ह्रास हुआ है। यह तथ्य कि ज़िम्बाब्वे तेज़ी से बढ़ रही बेरोज़गारी के संकट का सामना कर रहा है, यह कुल जनसंख्या के विधानुसरण रोज़गार के प्रतिशत में से लेकर 1996 में 112 प्रतिशत तक नीचे गिरी।

बॉक्स 18.3: ज़िम्बाब्वे में बेरोज़गारी की स्थिति

1990 में ज़िम्बाब्वे ने आर्थिक सुधार पर कार्यक्रम प्रारंभ किया (ESAP) और 1991-92 में अपनी ज़िंदगी का एक सबसे बुरा सूखा देखा –जिसमें कि 70 प्रतिशत के करीब जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती थी और अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर थी, इसने बहुत बड़ी घोर विपत्ति गठन किया। इसका एक परिणाम यह हुआ कि बहुत बड़ी संख्या में लोग शहरी क्षेत्रों में नौकरी की तलाश में स्थानांतरित होने लगे। 1995-96 में आगे एक ओर सूखे ने इस प्रभाव को संयोजित किया। 1995 में ए.आई.डी.एस (AIDS) महामारी का असर ज़्यादा दिखाई देने लगा और तब तक परिवारों की बढ़ती हुई सहायता व्यवस्था को मानना पड़ा। विशेषकर अनाथ बच्चों को, जब कमाने वाले मर चुके थे। 1995 तक खराब होती हुई आर्थिक स्थितियां और बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार और अपराध ही उस समय के प्रतिमान थे। आज हम अख़बार में बार-बार यह लेख पढ़ते हैं कि हजारों को निकाल दिया गया, व्यापार बंद हो रहे हैं, बेरोज़गारी बढ़ रही है, आदि। 1990 में स्फीति 15 प्रतिशत से सबसे अधिक अक्तूबर 1999 में 70 प्रतिशत तक आगे बढ़ी और 2000 में 56 प्रतिशत ज़िम्बाब्वे की बेरोज़गारी की दर ने 2002 में अभूतपूर्व 70 प्रतिशत तक पहुंचने की तैयारी कर ली है। आर्थिक विश्लेषक ने कहा कि आर्थिक दाव पर लगा श्रम और व्यापार की निकट भविष्य में घटित होने वाली असफलता और सरकार का औद्योगिक विस्तार को प्रोत्साहन देना और अवसरों का सृजन करना, बेरोज़गारी को बढ़ावा देगा।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बढ़ी हुई ग़रीबी

ज़िम्बाब्वे में अभी भी आय वितरण विश्व में बहुत असमान हैः एक उपभोग पर सर्वेक्षण दिखाता है कि अमीरों के बीच उपभोग दर 20 प्रतिशत देश की जनसंख्या का 55.7 प्रतिशत गरीब 20 प्रतिशत का सिर्फ़ 4.6 प्रतिशत ही बनाता है (मानव विकास रिर्पोट, 2005)।

ज़िम्बाब्वे में इ.एस.ए.पी. (ESAP) के परिणाम के बाद गरीबी का भार बढ़ा है। 1995 में ज़िम्बाब्वे सरकार ने गरीबी निर्धारण अध्ययन (Poverty Assessment Study) का भार अपने ऊपर लिया जो बताता है कि जनसंख्या का 62 प्रतिशत गरीबी में रह रहा था। रिर्पोट के अनुसार जनसंख्या का 42 प्रतिशत कुटुम्ब से संबंधित है, जो कि 'आहार गरीबी रेखा' से नीचे थे; और जनसंख्या का 62 प्रतिशत उस कुटुम्ब से संबंधित है जिसकी आय बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए काफ़ी है। इसके साथ रिर्पोट यह भी संकेत करती है कि गरीबी का भार ग्रामीण क्षेत्रों में ज़्यादा था, जहाँ 72 प्रतिशत कुटुम्ब की आय 'कुल उपभोग गरीबी रेखा' से नीचे थी, 46 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों की तुलना में।

राजनैतिक असंतोष

सार्वजनिक व्यय में कटौती से कई सार्वजनिक आर्थिक सहायता को ख़त्म किया गया, उनको गति देने के लिए उपभोक्ताओं से फीस की प्रस्तावना को शुरू किया गया और जिसका अर्थ यह समझा गया कि गरीब यह अत्यधिक महत्वपूर्ण सेवाओं को प्राप्त करने में असमर्थ है। यह सब ऊँची मुद्रा स्फीति, बढ़ता हुआ निर्वाह खर्च, वास्तविक वेतन के ह्रास के साथ जुड़ गया,

जिसका परिणाम न केवल व्यापक रूप से बढ़ती हुई गरीबी थी बल्कि वर्तमान जैड. ए. एन. यू.पी.एफ. (ZANU-PF) के शासनकाल के साथ मोह भंग भी हो गया।

सोचिए और कीजिए 18.4

ज़िम्बाब्वे ने किन आर्थिक नीतियों का अनुसरण किया? इसके साथ आर्थिक संकट और सुधारों की भी चर्चा कीजिए, जिन संकटों को पराजित करने का कार्य भार इसने अपने ऊपर लिया।

18.7 गरीबी उन्मूलन की कार्यनीतियाँ

1980 से अब तक ज़िम्बाब्वे में गरीबी की समस्या और इसे कैसे नियंत्रित और दीर्घकालीन में खत्म किया जाए, विकास और योजना के गंभीर वार्तालाप में मुख्य विवाद का विषय है निस्संदेह, नीतियों का पहले से ही ऊपर से निरीक्षण किया गया और भूतकाल की असमानताओं को सुधारने के तरीके निकाले गए, लेकिन दीर्घकाल में वहाँ पर समतावादी समाज की राजनैतिक नज़रिया जो "विकास और निष्पक्षता" ओर अधिक मौटे तौर पर अवस्थापक औपनिवेशक समाज से एक समाजवादी समाज में परिवर्तन, जिसमें आदमी से आदमी का शोषण नहीं होगा। ज़िम्बाब्वे अफ़्रीका राष्ट्रीय संघ पेट्रिऑटिक फ्रंट (ZANU-PF) और निर्दलीय सरकार जो 1980 में सत्ता में आई थी, वह शासक वर्ग की दीर्घ काल की योजना दिखाई देती थी।

इस योजना का आर्थिक संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम (ESAP), के परिचय के बाद जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है अब और अनुसरण नहीं हुआ था। जब ई.एस.ए.पी. (ESAP) का परिचय कराया गया था, जब सामाजिक पहलुओं का समायोजन (Social Dimensions of Adjustments, SDA) एक महत्वपूर्ण अवयव था और सामाजिक विकास कोष (SDF), जिनको ई. एस. ए. पी. (ESAP) के क्षणिक नकारात्मक परिणामों की विशेष रूप से कार्यवाही शुरू करनी थी। फिर भी एस. डी. ए. (SDA) की युक्ति और 1991-92 के सूखे ने स्पष्ट रूप से इशारा किया कि "विस्तृत स्तर के विकास के मुद्दों से मुकाबला करने के लिए सरकार की कारवाई को अधिक ब्योरेवार योजना की ज़रूरत है"। इस निष्कर्ष ने गरीबी उन्मूलन कार्य योजना (PAAP) के सूत्रण का आरंभ किया, जो पेरिस में दिसम्बर 1993 में परामर्शी समूह सभा (Consultative Group Meeting) हुई, उसमें व्यापक नीति पेपर प्रस्तुत किए गए। सामाजिक पहलुओं के समायोजन कार्यक्रम (SDA) के लक्ष्य है:

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

अ) गरीब और असुरक्षित वर्ग को ढांचे के समायोजन के द्वारा जो अनुचित कठिनाई होती है, उससे सुरक्षित रखा जाए, अल्पकालिक मुआवज़ा योजना के द्वारा जो कि प्रत्यक्ष कल्याण भुगतान का रूप ले लेगी।

ब) आंतरिक कुटुम्ब को मज़बूत किया जाए और समुदाय स्तर पर संतुलन या जीवित रहने के लिए तरीके और युक्तियां और उसके द्वारा इन सब वर्गों का सुधार कार्यक्रम की मुख्यधारा में पूर्ण करने के लिए जोड़ा जाए।

स) शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्रों में मूल्य वसूली कार्यक्रमों द्वारा वित्तीय कर के मूल्य को न्यूनतम किया जाए जबकि शिक्षा और स्वास्थ्य के स्तर में कोई समझौता नहीं होगा, उसी समय तीसरे पक्ष की अधिकतम भागेदारी और सहायता, उल्लेखनीय गैर-सरकारी संगठन (NGOs), कर्मचारी संगठन, नियोजक संगठन और स्थानीय प्राधिकारी, आर्थिक क्रियाओं को सरल बनाना।

ह) आमतौर पर गरीबी कम करना और ज़िम्बाब्वे के समाज के सबसे गरीब वर्ग के जीवन. स्तर को सुधारने में सहयोग देना।

कार्यक्रम की रूपरेखा: एस.डी.ए. (SDA) के दो मुख्य भाग है, अर्थात रोज़गार और प्रशिक्षण भाग के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा नेट कार्यक्रम।

रोज़गार प्रशिक्षण और कार्यक्रम: इस कार्यक्रम की रूपरेखा छटनी किए हुए कर्मचारियों और असमर्थ लोगों के कष्ट कम करने के लिए बनाई गयी। इस कार्यक्रम में छटनी किए हुए कर्मचारी के पास दो विकल्प हैं:

i) अगर व्यक्ति अभी भी युवा है और कुछ मूल प्रायोगिक निपुणता अर्जित करना चाहता/चाहती है, उसे दुबारा से बदली हुई आशान्वित विस्तृत अर्थव्यवस्था में नौकरी मिल सकती है, फिर वे कठोर "निपुणता प्रशिक्षण" का चुनाव कर सकता है।

ii) अगर छटनी किया हुआ कर्मचारी यह सोचता है कि किसी और के साथ काम नहीं करना चाहता लेकिन वह स्वःरोज़गार शुरू करना चाहता है, तब वह व्यापार निपुणता प्रशिक्षण कार्यक्रम का चुनाव कर सकता है।

सामाजिक सुरक्षा नैट कार्यक्रम: सामाजिक सुरक्षा नैट कार्यक्रम की रूपरेखा असुरक्षित वर्ग की निम्न आय और उनके कष्ट को कम करने और गरीब जो मूल्य के विनियंत्रण के प्रतिघात से बुरी तरह प्रभावित हुए है; सरकारी व्यय में कमी और बढ़ती हुई कीमत वसूली। इस कार्यक्रम के क्षेत्र के अंतर्गत:

i) **शिक्षा सहयोग:** इसके अंतर्गत उन परिवारों के लिए स्कूल की फीस का भुगतान जो 400 डालर प्रति माह से कम कमाते हैं और फीस देने में असमर्थ हैं, जिसका कीमत वसूली मापदंड में परिचय कराया गया।

ii) **खाद्य-सुरक्षा:** यह शहरी गरीबों की प्रत्यक्ष नकद आर्थिक सहायता को सम्मिलित करता है जो नई खाद्य मूल्य (मकई आहार) का अब और भुगतान करने में असमर्थ हैं, जो मूल्य विनियंत्रण मापदंड द्वारा और आर्थिक सहायता को हटा कर आगे लाया गया है।

यह कार्यक्रम सामाजिक कल्याण विभाग द्वारा कार्यान्वित किया गया जिसका पर्याप्त मात्रा में जिला-स्तर पर विकेन्द्रीकरण हुआ हैं। चूंकि इस कार्यक्रम से गरीब और असुरक्षित लोगों को लाभ होना है, यह संकेत करता है कि इसे किसी लक्ष्य को आधार मानकर आगे बढ़ना है। इसलिए अलग-अलग घटकों के अलग-अलग लक्ष्य और सपुर्दगी के तरीके थे।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 18.4

विश्व में एच.आई.वी. (HIV) एड्स (AIDS) की व्यापकता दर सबसे अधिक ज़िम्बाब्वे में व्यस्क जनसंख्या का 35 प्रतिशत हैं। इसका अर्थव्यवस्था पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा है, जोकि परिवार और सरकार का स्वास्थ्य पर अतिरिक्त व्यय को बहुत अधिक बढ़ा रहा है, नष्ट हुए अवसर, डगमगाते हुई मानव और दीर्घकालीन विकास और घटी हुई उत्पादकता और दीर्घकालीन प्रगति।

सोचिए और कीजिए 18.5

ज़िम्बाब्वे ने गरीबी की समस्या से संघर्ष करने के लिए क्या सुझाव रखें?

18.8 अर्थव्यवस्था का स्वदेशीकरण

देशीकरण की प्रक्रिया देशी समुदाय को सामर्थ्य देना है जिसका लक्ष्य आर्थिक संसाधनों के स्वामित्व और प्रबंध के रंगभेद की असमानता को कम करना है। यह एक बहुमुखी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत:

क) व्यापार के विकास और विस्तार के लिए स्थितियों का सर्जन करना जिस व्यापार का स्वामित्व और नियंत्रण देशज लोगों के पास है;

ख) देशज लोगों द्वारा नए व्यापार के सर्जन को सरल बनाना;

ग) जहाँ परिस्थितियों के कारण (उदाहरण के लिए बिक्री) ग़ैर देशज से देशज लोगों के लिए व्यापार का स्वामित्व व नियंत्रण का हस्तान्तरण सरल बनाना;

घ) संयुक्त व्यापार में विदेशी और स्थानीय लोगों के साथ देशज लोगों की भागेदारी को बढ़ाना;

ङ) ग़ैर देशज स्वामित्व व्यापार में अफ़्रीका के लोगों की प्रभावी व्यवस्था और नीति बनाने की दशा में सुधार में तेज़ी लाना; और

च) रोज़गार के अवसरों को बढ़ाना और ग्रामीण क्षेत्रों को लक्ष्य बनाकर विशेष ध्यान दिया जाए ताकि देशज लोगों की सामाजिक और भौतिक स्थितियों को सुधारा जा सके।

यह नीति उन देशज लोगों को सामर्थ्य देने की कोशिश करती है जिनका पिछले 90 सालों से आर्थिक और सामाजिक नीतियों में अग्रसक्रिय (अंग्रेज़ों की ओर) होने से अहित हो रहा था। यह नीति देशीकरण के कार्यक्रम द्वारा सकारात्मक क्रिया की गणना प्रक्रिया द्वारा अफ़्रीका के लोगों को तरक्की प्राप्त करने की चर्चा करती है।

सोचिए और कीजिए 18.6

ज़िम्बाब्वे की अर्थव्यवस्था के देशीकरण की प्रक्रिया की चर्चा कीजिए।

18.9 स्वतंत्रता के पश्चात विकास का परिदृश्य – विहंगवालोकन

MAADHYAM IAS

उपनिवेशवाद के दौरान जो असंतुलन आए थे, स्वतंत्रता के समय ज़िम्बाब्वे की सरकार ने चिंता का विषय जानकर उन्हें सुधारने के लिए सामाजिक नीति को विशेष प्रमुखता दी। उस दबाव का परिणाम यह हुआ कि इन क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुई, विशेषकर, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-आपूर्ति और स्वच्छता और आवर्तक सूखे के प्रभाव को कम करने में। यह सफलताएं हासिल हुई क्योंकि:

क) सामाजिक न्याय के राजनैतिक और दार्शनिक लक्ष्य; और

ख) असमानता और विभेदात्मक अभ्यास और ढांचे जो पहले ही उपनिवेश में विरासत में पाये गए, उन्हें विखंडित करने की ज़रूरत है।

मानव संसाधन और आधारभूत ढांचे के विकास में महत्वपूर्ण प्रगति 1980-1990 की अवधि की विशेषता थी। जीवन-स्तर सूचक बढ़े। प्रारंभिक शिक्षा के नामांकन 83 प्रतिशत तक बढ़े और बच्चों के प्रतिरक्षीकरण का 61 प्रतिशत तक़ विस्तार हुआ। शिशु मृत्यु-संख्या में 29 प्रतिशत का ह्रास हुआ और जीवन-प्रत्याशा 55 से 59 साल तक बढ़ी। संदर्भ के अंदर ही नीति की चुनौतियों पर दबाव डालते हुए 1980 और 1990 के बीच सामाजिक क्षेत्रों में सराहनीय विस्तार हुआ। आर्थिक विकास और प्रतिव्यक्ति आय के बढ़ने के साथ-साथ सामाजिक लाभ नहीं बढ़े थे।

1980 से 1989 तक की अवधि में जनसंख्या 3 प्रतिशत प्रति वर्ष, सकल घरेलू उत्पाद (GDP) जो 2 प्रतिशत बढ़ा, तीव्र गति से आगे बढ़ी। उसी समय निजी क्षेत्र में निवेश नीचे गिरा जबकि घरेलू सकल उत्पाद 1985 में 12 प्रतिशत से 1987 में 8 प्रतिशत नीचे गिरा। जब कोई विदेशी निवेश नहीं था जबकि मुख्य उपयोगी वस्तुओं की कीमतों में ह्रास ने विदेशी विनिमय के अभाव को बदतर बना दिया। कई तरह के असंतुलन वित्तीय, मुद्रा, पूंजी और श्रम बाज़ार

में उत्पन्न हो गए। 1990 में अर्थव्यवस्था में निम्न निवेश, कम विकास, बढ़ता हुआ बजट का घाटा, बढ़ती हुई बेरोज़गारी मुद्रा-स्फीति और सामान्य आर्थिक ह्रास के गहरे घटना-चक्र के संकट में आ गई।

आर्थिक संरचनात्मक समायोजन का परिचय ज़िम्बाब्वे सरकार ने अक्तूबर 1990 में पांच क्षेत्रों से संबंधित कार्यक्रम जिसमें व्यापार, मुद्रा, वित्तीय-कर और निवेश नीति सुधार, अधिनियम रहित और सामाजिक समायोजन के पहलू सम्मिलित थे। आर्थिक संरचनात्मक समायोजन का मूलाधार, जोकि आर्थिक नीति का मूल अंग था, आर्थिक विकास के लिए दीर्घकालीन नीति ढांचे के विकास की ज़रूरत को महसूस किया गया जो अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए विस्तार से, बहुत सारे प्रभावों से, रोज़गार और आय में वृद्धि की ओर, और उसके द्वारा जीवन स्तर और लोगों की योग्यता में सुधार के द्वारा प्रतिबिम्बित होगी।

सामान्य तौर पर ज़िम्बाब्वे की सरकार सार्वजनिक संसाधनों को उन क्षेत्रों की ओर अनुप्रेषित करने में सफल रही है जोकि दीर्घकालीन विस्तृत आधार की टिकाऊ विकास का मूलाधार है: मानव-विकास; आधारभूत ढांचे जो गरीबों के लिए कार्य कर रहा है; सार्वजनिक क्षेत्र जो तर्क संगतता से कुशल है और बहुमत के हित के लिए कार्य कर रहा है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से सुधार की संभावनाएं प्रभावोत्पादकता और सार्वजनिक क्षेत्र के उपलब्ध संसाधनों का कुशलता से उपयोग दोनों ही है और सार्वजनिक क्षेत्र में निगरानी ओर समायोजन के हस्तक्षेप में सुधार और अधिक उपर्युक्त प्रश्न तेज़ी से बदलती हुई सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की सीमाओं में सुधार की है। प्रभावोत्पादकता के प्रश्न को संबोधित करना मुश्किल है क्योंकि यह बड़े स्तर पर निष्पक्षता ओर विकास के मुद्दों पर, जो व्यापार से अलग हो गया है कार्यवाही करता है। जबकि गरीबों में निवेश अक्सर ऊँची सामाजिक लाभ-दर देता है, अधिकतर जिसका आंतरीकरण गरीब द्वारा प्रत्यक्ष उपभोग या मानव पूंजी संचय के रूप में, जिसका लाभ काफ़ी सालों बाद होगा, होता है। इसलिए अक्सर इस तरह के निवेशों के आर्थिक प्रभावों को मापना मुश्किल हो जाता है।

MAADHYAM IAS

संपूर्ण रूप से ज़िम्बाब्वे ने अधिक न्यायोचित सामाजिक-आर्थिक प्रगति और विकास की दिशा में प्रभावशाली प्रगति की है। देश का मूल निवेश प्रतिरूप विभिन्न प्रकार की सामाजिक पूंजी और देश की दीर्घकालीन टिकी प्रगति के बीच अच्छा संतुलन स्थापित करता है। हालांकि कुछ मुश्किल विकल्प सामने थे विशेषकर, शायद, भूमि परिसंपत्ति के प्रतिरूप में परिवर्तन की संभावना से संबंधित विकल्प जो विश्वास दिला सकते हैं कि विकास के वित्तीय प्रतिरूप को क़ायम रखना, जो जनसंख्या के बढ़ते हुए अनुपात को ज़िम्बाब्वे के संपूर्ण विकास में भाग लेने की स्वीकृति देगा।

सोचिए और कीजिए 18.7

ज़िम्बाब्वे का वर्तमान राजनैतिक दृश्य क्या है? आप अख़वार पढ़ सकते हैं; इंटरनेट पर जाकर और अधिक जानकारी प्राप्त करके अपना उत्तर लिख सकते हैं।

18.10 सारांश

ज़िम्बाब्वे की आर्थिक व्यवस्था, सापेक्षिक रूप से एक नया देश, एक अंतरवर्ती देश का संकेत सूचक है एक देश जो पराश्रिता अविकसित से आत्मनिर्भर औद्योगीकरण में परिवर्तित हुआ और ज़िम्बाब्वे समाज और उनकी विकास की दिशा के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करना ही इसको महत्त्वपूर्ण बनाता है। ज़िम्बाब्वे की खनिज समृद्धि, विशाल सभ्यता का देश जिसने अंग्रेज़ों को भी आकर्षित किया और 19वीं शताब्दी में उन्होंने देश का उपनिवेशन किया। यह तक़रीबन एक शताब्दी तक ब्रिटिश का उपनिवेश बना रहा। ज़िम्बाब्वे के आर्थिक,

सामाजिक और मानव विकास के प्रयास सराहनीय रहे। उसके बाद 1980 में यह स्वतंत्र हो गया। देश के विकास की सफलता में मूल रूप से खनिज निर्यात उद्योग काफ़ी महत्वपूर्ण रहा है।

इस इकाई के शुरू के भाग ज़िम्बाब्वे देश की पृष्ठभूमि की जनसांख्यिकीय, ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक के साथ-साथ दक्षिण अफ़्रीकन क्षेत्र में इसकी तुलनात्मक स्थिति के बारे में विचार विमर्श भी करती है। आगे के भागों में ज़िम्बाब्वे की स्वतंत्रता के पश्चात की राजनैतिक, आर्थिक ओर सामाजिक दशाओं की विस्तार से चर्चा हुई है। हम देख सकते हैं कि ब्रिटिश उप-निवेशवाद के समय जो असंतुलन पहले से पाए गये थे, उन्हें सुधारने के लिए स्वतंत्र ज़िम्बाब्वे की सरकार सामाजिक नीति को प्राथमिकता के हस्तक्षेप से उन्हें सुधारना चाहती थी। इसने सामाजिक और मानव विकास के महत्वपूर्ण मोर्चों की सराहनीय प्रगति को सरल बनाया। 1980 के दशक में देश में आर्थिक संकट के समय आर्थिक संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम को अपनाने से नीति के हस्तक्षेप में परिवर्तन हुआ। विकास के मुद्दों का विस्तृत रूप से मुक़ाबला करने के लिए सरकार पहल करती है, जैसे सामाजिक विकास निधि और सामाजिक समायोजन के पहलू की भी चर्चा इस इकाई में हुई है।

18.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मैकुम्ब, जॉन (Makumbe, John) 1996. *पार्टीस्पिट्री डेवलपमेंटः दि केस ऑफ़ ज़िम्बाब्वे.* यूनिवर्सिटी ऑफ ज़िम्बाब्वे प्रेसः हरारे

नीमा, ए. जी. (Nhema, A.G.) 2002. *डेमोक्रेसी इन ज़िम्बाब्वेः फ्रोम लिबरेशन टू लिबरलाइज़ेशन.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ ज़िम्बाब्वे पब्लिकेशन्सः हरारे

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 19
ब्राज़ील

इकाई की रूपरेखा

19.1 प्रस्तावना

19.2 संक्षिप्त पृष्ठभूमि

19.3 लोग और इतिहास

19.4 ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था

19.5 ब्राज़ील के व्यापार – साझीदार

19.6 सरकार और राजनीति

19.7 पर्यावरण संबंधी मुद्दे

19.8 समाजिक चुनौतियाँ

19.9 सारांश

19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको इन बातों में मदद करेगी:

- ब्राज़ील की जनसांख्यिकी एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का वर्णन करने;
- ब्राज़ील के आर्थिक, राजनैतिक एवं पर्यावरणीय विषयों को स्पष्ट करने; और
- ब्राज़ील के समक्ष सामाजिक मुद्दों और चुनौतियों की जांच करने।

MAADHYAM IAS

19.1 प्रस्तावना

विश्व में पांचवां सबसे बड़ा देश, ब्राज़ील दक्षिण अमेरिका में सबसे बड़ा देश है। ब्राज़ील दक्षिण अमेरिका के कुछ क्षेत्रफल के लगभग आधे भाग पर फैला है और इसकी सीमाएं इस महाद्वीप के ग्यारह देशों में से नौ को छूती हैं। शहरों और कस्बों में रहने वाली अपनी 80% आबादी के साथ ब्राज़ील लैटिन अमेरिका में सर्वाधिक शहरीकृत और उद्योगीकृत देश हैं साओ पौलो और रिओ डि जेनेरो विश्व के दस सबसे बड़े शहरों में आते हैं। तथापि, ब्राज़ील के अमेज़न क्षेत्र के कुछ भाग, जहां विश्व के कुछ सबसे विस्तीर्ण निर्जन प्रदेश पाए जाते है, आधुनिक विश्व के साथ आने की प्रक्रिया में होने के बावजूद देश में लोगों द्वारा छिट-पुट रूप से ही आवासित हैं।

यह इकाई ब्राज़ील के आबादी संघटन एवं अन्य जनसांख्यिकीय तथ्यों पर चर्चा के साथ शुरू होती है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ब्राज़ील की वर्तमान स्थिति को समझने हेतु प्रस्तुत की गई है। विकास की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए ब्राज़ील की मौजूदा सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दशाओं का विश्लेषण किया गया है। अन्तोगत्वा, इस इकाई में देश के समक्ष प्रमुख मुद्दों और चुनौतियों की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

19.2 संक्षिप्त पृष्ठभूमि

गहन विषमताएं और विविधता ब्राज़ील की पहचान हैं। इनमें से कुछ प्रकृति में भौगोलिक अथवा जनवायवीय हैं, तो अन्य प्रजातीय अथवा नृजातीय। ब्राज़ील की आबादी में मुख्य रूप से सहजात अमेरिकी, अफ्रीकी और यूरोपीय मूल के लोग हैं तथा प्रवासियों की उत्तरोत्तर

श्रृंखला, मुख्यतः एशिया व यूरोप से, जिसने इस तालमेल में इज़ाफा किया है। तथापि, अन्य विरोधाभासों की प्रकृति में सामाजिक हैं। ब्राज़ील की 17 करोड़ जनता की जीवन दशाएं नाटकीय रूप से भिन्न-भिन्न हैं और आय वैषम्य न सिर्फ़ क्षेत्र-क्षेत्र के बीच बल्कि महानगरीय केंद्रों, गैर-महानगरीय शहरी केन्द्रों व ग्रामीण क्षेत्रों के बीच भी अर्थपूर्ण है।

बाक्स 19.1 : तथ्य एक झलक में

अधिकारिक नाम	:	ब्राज़ील संघीय गणतंत्र
राजधानी	:	ब्राज़ीलिया
क्षेत्रफल हजार वर्ग किलामीटर	:	8,547
जनसंख्या(करोड़)	:	17.85 (2003)
जनसंख्या घनत्व (प्रति वर्ग किमी.)	:	21 (2003)
शहरी जनसंख्या (%-2001)	:	82
सकल राष्ट्रीय आय(GNI) (प्रति व्यक्ति)	:	2,850 अमेरिकी डॉलर (2002)
सकल राष्ट्रीय आय कम सकल तुल्यता (PPP) (प्रति व्यक्ति)	:	7,250 अमेरिकी डॉलर (2002)
सकल घरेलू उत्पाद की संरचना	:	कृषिः 8, उद्योगः 36, सेवा : 56
मानव विकास सूचकांक(एच डी आई) स्थान(2004)	:	177 देशों में 65वाँ
लिंग संबधित विकास सूचकांक(जी डी आई)स्थान	:	177 देशों में 60वाँ (2004)
जन्म के समय जीवन प्रत्याशा	:	68.1(2004)
5 वर्ष से कम की मृत्युदर (प्रति हज़ार)		36 (2004)
प्रौढ़ साक्षरता दर (2004)	:	कुल : 86.4 पुरुष : 86.2 स्त्री : 86.5

स्रोतः यू एन डी पी, हयूमन डिवैलपमेन्ट रिपोर्ट 2004 9 यू एन एफ पी ए, द स्टेट ऑफ वर्ल्ड पॉपुलेशन 2003; यूनिसेफ, द स्टेट ऑफ द वर्ल्ड'स चिल्ड्रन्स 2004, वर्ल्ड डिवैलपमेन्ट रिपोर्ट 2004; डब्ल्यु डब्ल्यु एफ, लिविंग प्लैनट रिपोर्ट 2002

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

19.3 लोग और इतिहास

अनुमानतः 156 फीलिपन आबादी वाले ब्राज़ील की जनसंख्या लैटिन अमेरिका में सबसे अधिक और विश्व में छठे स्थान पर है। अधिकांश लोग दक्षिण मध्य क्षेत्र में रहते हैं , जिसमें शामिल हैं : साओ पौलो, रिओ डि जेनेरो और बेलो हॉरिज़ॉन्ट आदि औद्योगिक शहर। शहरी विकास की गति तीव्र रही हैः 1991 के आसपास कुल 75% आबादी शहरी इलाकों में रहने लगी थी। तीव्र विकास ने आर्थिक विकास में मदद की है, बल्कि बड़े शहरों के लिए गंभीर सामाजिक, पर्यावरणीय एवं राजनीतिक समस्याएं भी पैदा की है।

ब्राज़ीलियाई जन समाज के चार प्रमुख घटक हैं : पुर्तगाली, जिन्होंने 16वीं शताब्दी में इस क्षेत्र को उपनिवेश बनायाः अफ्रीकी, जो ब्राज़ील में गुलाम बनाकर लाए गए; अन्य विभिन्न यूरोपीय, मध्य पूर्वी एवं एशियाई प्रवासी समूह, जो ब्राज़ील में 19वीं सदी मध्य से बसे हैं ; और तूपी व गुआरानी भाषा समूह के दर्शन लोग। पुर्तगालियों एवं देशज लोगों अथवा गुलामों

के बीच अन्तर्विवाह सामान्यतः होते थे। यद्यपि ब्राज़ील का प्रमुख यूरोपीय नृजातीय जनसमूह कभी पुर्तगाली ही था, तदन्तर प्रव्रसन की लहरों ने एक विविध नृजातीय एवं सांस्कृतिक विरासत में योगदान दिया। 1875 से लेकर 1960 तक लगभग 50 लाख यूरोपीय लोग ब्राज़ील में आप्रवासन कर चुके थे, जो मुख्य रूप से साओ पौलो, पराना, सेन्टा केटरीना और रिओ डी सूल, आदि चार दक्षिणी राज्यों में बसे। अप्रवासी लोग मुख्य रूप से इटली, जर्मनी, स्पेन, जापान, पौलेंड और मध्य पूर्व से आये हैं। जापान से बाहर सबसे बड़ा जापानी समुदाय साओ पौलो में ही है। वर्ग विभिन्नताओं के बावजूद राष्ट्रीय पहचान सशक्त है, और प्रजातीय संघर्ष एक अपेक्षाकृत नयी दृश्य घटना है।

देशज पूरी तरह से भारतीय, जो मुख्य रूप से उत्तरी व पश्चिमी सीमा क्षेत्रों में और ऊपरी अमेज़न नदी क्षेत्र में पाये जाते हैं, जनसंख्या के एक प्रतिशत से भी कम हैं। बाहरी दुनिया के साथ सम्पर्क और अन्तर्वर्ती क्षेत्रों में व्यावसायिक विस्तार बढ़ने के साथ ही उनकी संख्या घटती जा रही है। आरक्षण लागू करने व अन्य प्रकार की सहायता उपलब्ध कराने संबंधी ब्राज़ीलियाई सरकार के कार्यक्रम वर्षों से चलते रहे हैं परन्तु विवादग्रस्त व प्रायः निष्प्रभावी ही रहे हैं।

ब्राज़ील अमेरिका में एकमात्र पुर्तगाली भाषी देश है। समस्त ब्राज़ील वासियों के लगभग 80% रोमन कैथेलिक चर्च से संबंध रखते हैं; अधिकांश अन्य प्रोटैस्टैन्ट अथवा अफ्रीकी धर्मों से व्युत्पन्न प्रथाओं को अपनाने वाले हैं।

सन 1500 में ब्राज़ील पैड्रो अल्वेयर कैब्रल द्वारा पुर्तगाल के कब्ज़े में आ गया। सन 1808 तक इस पर एक उपनिवेश के रूप में लिस्बन से शासन किया जाता रहा, जबकि शाही परिवार ने नेपोलियन की सेना से भागकर रिओ डि जेनेरो में ही पुर्तगाली सरकार की कुर्सी जमा ली थी। ब्राज़ील डॉम जोआओ भाष्टम् के अधीन एक राज्य बन गया जो 1821 में पुर्तगाल लौट गया। उसके पुत्र ने 7 सितम्बर 1822 को ब्राज़ील की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और डॉम पैड्रों प्रथम की उपाधि लेकर सम्राट बन गया। उसके पुत्र डॉम पैड्रो द्वितीय ने 1831 से 1889 तक शासन किया, जबकि एक संघीय गणतंत्र की स्थापना हो चुकी थी। राज्य की राजकुमारी ईसाबेल द्वारा गुलामी अर्थात् दास प्रथा को एक वर्ष पहले ही समाप्त किया जा चुका था, जबकि डॉम पैड्रो द्वितीय यूरोप में था।

सन 1889 से 1930 तक सरकार एक संवैधानिक लोकतंत्र रही, जिसमें राष्ट्रपतित्व साओ पौलो और मीना गेरे जैसे प्रमुख राज्यों के बीच अदल बदल कर ही रहता था। यह काल एक सैन्य-विपल्व के साथ सभारत हुआ और उत्तरोत्तर राष्ट्रपति फिर सेना से ही बनाए जाने लगे।

ब्राज़ील ने एक लोकप्रिय रूप से निर्वाचित सरकार हेतु अपना अवस्थान्तर गमन 1989 में ही पूरा कर लिया, जबकि 29 वर्षों में प्रथम प्रत्यक्ष राष्ट्रपति चुनाव में फ़र्नेन्डो डि मैलो ने 53 प्रतिशत मत प्राप्त कर लिए। सन 1992 में एक बड़े भ्रष्टाचार लोकापवाद अर्थात स्कैण्डल ने महाभियोग और राष्ट्रपति कॉलर के त्यागपत्र की ओर प्रवृत्त किया। उपराष्ट्रपति इतामर फ्रेंको ने उसका स्थान लिया और 3 अक्तूबर 1994 को होने वाले राष्ट्रपति चुनावों में सभारत होने वाले कॉलर के शेष कार्यकाल तक शासन किया, जबकि फर्नेन्डो हेनरिक फार्दोसो को 54% मतों से चुन लिया गया। फार्दोसो ने कार्यभार 1 जनवरी 1995 को संभाला।

राष्ट्रपति फार्दोसो ने दीर्घावधि स्थिरता और विकास हेतु आधार तैयार करने और ब्राज़ील के आत्यन्तिक सामाजिक-आर्थिक असंतुलनों को कम करने का प्रयास किया। कांग्रेस को प्रस्तुत उनके प्रस्तावों में ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था को उदार बनाने हेतु संवैधानिक संशोधन शामिल हैं, ताकि बेहतर विदेशी भागीदारी हो और व्यापक सुधार लागू हों — सामाजिक सुरक्षा, सरकार प्रशासन और कराधाम समेत ताकि अत्याधिक सार्वजनिक क्षेत्र व्यय कम हो और सरकारी कुशलता बढ़े। (http://www.economist.com/countires/brazil)।

MAADHYAM IAS

सोचिए और कीजिए 19.1

ब्राज़ीलियाई जनसंख्या की संरचना पर चर्चा करें और उसके ऐतिहासिक उदगमों को प्रस्तुत करें।

19.4 ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था

20वीं शताब्दी के आरंभ तक ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था की विशेषताएं रहीं — घटनाचक्रों का अनुक्रमण, जिनमें से प्रत्येक किसी न किसी एकल निर्यात की चीज़ों के दोहन पर आधारित था: उपनिवेशीकरण के आरंभिक वर्षों में इमारती लकड़ी (ब्राज़ील वुड); 16वीं एवं 17वीं शताब्दियों में गन्ना; 18वीं शताब्दी में बहुमूल्य धातुएं (सोना व चांदी) और रत्न (हीरा व पन्ना) ओर अन्तोगत्वा 19वीं शताब्दी में कॉफी। दास श्रमिकों को उत्पादन कार्य में लगाया जाता था जो क्रम 19वीं शताब्दी के अंतिम दौर तक चलता रहा। इन घटनाओं के समानान्तर ही, स्थानीय उपभोग हेतु छोटे पैमाने पर कृषि और पशुपालन का भी विकास हुआ। उद्योगीकरण का प्रथम उत्थान प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान हुआ, परन्तु ब्राज़ील तीस के दशक के बाद ही आधुनिक आर्थिक निष्पादन के स्तर पर पहुँच सका। चालीस के दशक में, अमेरिकी एक्सिम बैंक की वित्तीय मदद से वोल्टा रेडॉन्डो स्थित रिओ डि जेनेरो राज्य में प्रथम इस्पात संयंत्र लगाया गया।

सत्तर के दशक में निर्यातित कृषि उत्पादों की संख्या में एक व्यापक वृद्धि देखी गई। सोयाबीन ब्राज़ील के परंपरागत कृषि उपार्जकों – कॉफी, कोको और चीनी – से आगे निकल गया। अर्ध-संसाधित एवं विनिर्मित कृषि उत्पादों का परिमाण मूल्य और वैविध्य यथेष्ट रूप से बढ़ा, ऐसा काफ़ी हद तक कच्ची फसलों की अपेक्षा संसाधित माल के पक्ष में अधिक सरकारी प्रोत्साहनों के फलस्वरूप हुआ।

अस्सी के दशक में, देश की अर्थव्यवस्था में कृषि निरन्तर एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही, परन्तु अब की बार चीनी, कॉफी अथवा रबर की भांति किसी एक फसल को प्रधानता नहीं मिली, जैसे कि वे अपने चरमोत्कर्ष पर थीं। वित्तीय प्रोत्साहनों और विशेष ऋण सुविधाओं के माध्यम से संघीय सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में बृहतर दक्षता को बढ़ावा दिया। इसके अतिरिक्त, अनेक तरीकों से ग्रामीण समुदायों से शहरी क्षेत्रों की ओर जनसंचालन की दिशा बदलने के प्रयास किए गए, जैसे समान सामाजिक लाभ प्रदान करके, कृषि सुधारों हेतु युक्तिपरक योजनाएं शुरू करके, अब तक अलाभकारी रही छोटी जोतों को प्रोत्साहन देकर और व्यापक रूप से, उन क्षेत्रों में जीवन-स्तर सुधार कर जो मुख्य केन्द्रों से बहुत दूर स्थित हैं। कृषि उत्पादकता में वृद्धियां जनसंख्या वृद्धि से काफी अधिक रही है। इससे ब्राज़ीलियाई किसान न सिर्फ़ घरेलू बाज़ार हेतु अधिक उत्पादन करने बल्कि अपने निर्यातों को बढ़ाने में भी स्वयं को स्वतंत्र अनुभव करने लगा।

ब्राज़ील आज भी विश्व में कॉफी और चीनी (गन्ने से) का सबसे बड़ा उत्पादक है, कोको उत्पादकों में दूसरा सबसे बड़ा और तम्बाकू उत्पादकों में चौथा। फसलों के वैविध्यीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए मत दो दशकों में अनेक योजनाएं शुरू की गई, जिन्होंने प्रभावशाली परिणाम दिए हैं। खाद्यान्न का उत्पादन निरन्तर बढ़ा है, जिसमें शामिल हैं — गेहूँ, चावल, मक्का और विशेष रूप से सोयाबीन।

कृषि देश के सकल घरेलू उत्पाद के 13% का हिसाब देती है। फसल उत्पादन कुल कृषि उत्पादन के लगभग 90% का हिसाब देता है। कृषि अर्थव्यवस्था के शेष 10% में शामिल हैं– पशुपालन कार्य, मुख्य रूप से गाय के मांस का उत्पादन, मुर्गीपालन, सुअर का मांस, दूध और अण्डे।

वन उत्पादन, मुख्य रूप से रबड़ (जो कभी ब्राज़ील के निर्यातों में मुख्य घटक था) के साथ-साथ ब्राज़ील के काष्ठुल, काजू, मोम और रेशा भी अब अधिकांश रूप में कृषि अधीन बाग़ानों से आते हैं, न कि जंगली वन वृक्षों से, जैसा कि पहले होता था। अपनी व्यापक जलवायु विविधता श्रृंखला के कारण ब्राज़ील लगभग हर प्रकार का फल उगाता है — उत्तर में उष्णकटिबंधी किस्मों (विभिन्न गिरीदार फल व नाशपती सरीखे आंबों का दो से लेकर दक्षिण के शीतोष्णकटिबंधी क्षेत्रों में नींबू जाति के फलों व अंगूर के विपुल उत्पादन तक। ब्राज़ील सांद्र संतरे के रस का सबसे बड़ा निर्यातक है।

पचास से सत्तर के दशक तक औद्योगिकरण की प्रक्रिया ने अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के विस्तार, जैसे स्वचालित वाहन उद्योग, पैट्रोरसादनों एवं इस्पात के साथ साथ वृहद अधिरचना परियोजनाओं के आरंभ हेतु वार्षिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP) दर विश्व में उच्चतम गिनी जाती थी, तथा 1974 तक औसंतन 7.4%। सत्तर के दशक में ब्राज़ील ने, लैटिन अमेरिका स्थित कई अन्य देशों की भांति, अमेरिकी, यूरोपीय और जापानी बैंकों से अत्याधिक तरल पूंजी ली। वृहद् पूंजी अन्तर्वाह आधरचना निवेशों की ओर अभिमुख थे और राज्य उद्यम उन क्षेत्रों में लगाए गए थे जो कि निजी निवेश के लिए आकर्षक नहीं थे। इस पूंजी निषेचन का परिणाम प्रभावशाली रहा : ब्राज़ील का सकल घरेलू उत्पाद (GDP) सत्तर के दशक के विश्व तेल संवर के प्रभाव के बावजूद 1970 से 1980 तक 8.5% प्रतिवर्ष की औसत दर से बढ़ा। इस दशक के दौरान प्रति व्यक्ति आय भी चार गुना बढ़ गई, यथा 1980 से 2200 अमेरिकी डॉलर (http ://www.embasy of brazil in London historical prespective)।

अस्सी के दशक के आरंभ में तथापि अमेरिकी ब्याज दरों में सार्थक वृद्धि अंतर्राष्ट्रीय पूंजी बाज़ारों को प्रभावित करने लगी, जिससे विदेशी ऋणग्रस्तता की ओर प्रवृत्त करने वाली वे दशाएं समाप्त हो गई जो तब तक वहां विद्यमान थीं। विश्व अर्थव्यवस्था में ब्याज दरों में इस यथेष्ट वृद्धि ने ब्राज़ील के साथ-साथ अन्य लैटिन अमेरिकी देशों पर भी दबाव डाला कि असभ्य आर्थिक सामजस्य लागू करें, जिससे नकारात्मक वृद्धि दरों की ओर प्रवृत्त किया। पूंजी प्रवाहों आस्थगम ने ब्राज़ील की निवेश क्षमता को घटा दिया। ऋण भार ने लोक वित्त साधनों को प्रभावित किया और मुद्रास्फीति के गतिवर्धन में योगदान दिया।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

अस्सी के दशक के उत्तरार्ध में , मुद्रा स्थिरीकरण पर अभिलक्षित सख्त कदमों की श्रृंखला शुरू की गई इनमें शामिल था: सूचीकरण (यथा, मुद्रास्फीति के अनुसार वेतनों एवं अनुबंधों संबंधी एक नीति) की समाप्ति और सभी मूल्यों का स्थिरीकरण। वर्ष 1987 में सरकार ने विदेश-व्यापार ऋण पर ब्याज भुगतानों को तब तक आस्थगित रखा जब तक कि ऋणदाताओं के साथ एक ऋण पुनर्नियोजन समझौता नहीं हो गया। हांलाकि इस प्रकार के उपाय वांछित परिणाम उत्पन्न करने में विफल रहे, अस्सी के दशक तक व्यापार संतुलन में पर्दारत अधिशेष प्रदान करता हुआ समग्र आर्थिक उत्पादन निरन्तर बढ़ता रहा ताकि ऋण सेवा कार्य को उसमें शामिल किया जा सके।

एक ओर अस्सी के दशक के सफर ने ब्राज़ील के "आयात प्रतिस्थापन" प्रति मास (वह नीति जिसने विदेशों में कुछ विनिर्माणों के क्रय पर प्रतिबंध लगाते हुए ब्राज़ीलियाई उद्योग को प्रेषित किया) के निः शेषण का संकेत दिया तो दूसरी ओर इसने देश की अर्थव्यवस्था को उदारीकृत करने में योगदान दिया। नब्बे के दशक के आरंभ में ब्राज़ील एक दूरगामी आर्थिक सुधारों की श्रृंखला में जुट गया। वे विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के लिए व्यापार उदारीकरण, विनियमन, निजीकरण और एक विधिसंगत एवं संरचनात्मक ढांचा तैयार करने में सफल रहे।

आर्थिक सुधार नब्बे के दशक भर चलते रहे और विश्व व्यापार संगठन के एक सदस्य के रूप में ब्राज़ील के दायित्वों के मद्देनज़र राज्य एकाधिकारों के उन्मूलन, माल व सेवाओं में व्यापार अवरोधों के साथ-साथ परिदानों को भी घटाने अथवा मिटाने जैसे उपायों को भी इनमें शामिल किया गया।

वर्ष 1994 में, मुद्रास्फीति कम करने हेतु अनेक कुंठित प्रयासों के पश्चात् ब्राज़ीलियाई सरकार ने योजना शुरू की, जो कि एक सफल स्थिरीकरण योजना थी जिसमें व्यवहार्य मुद्रा के साथ पर सीवर को रखा। रीयल योजना के मुख्य अभिलक्षण थे : (क) मुद्रा संबंधी सुधार हेतु एक क्रमिक दृष्टिकोण; (ख) यू आर वी (URV) के प्रयोग से अर्थव्यवस्था का "विसूचीकरण" और (ग) मुद्रा का मूल्यांकन, जो कि डॉलर के सहारे चलती थी, हांलाकि यह किसी मुद्रा मंडल के मुकाबले कहीं अधिक सुगम्य विनिमय दर कार्यप्रणाली के आधार पर था, जैसाकि अर्जेन्टाइना में "विनिमेयता" योजना में होता था।

संक्षेप में, स्थावर योजना में घरेलू मुद्रा स्थिरक को एक बाह्य मुद्रा स्थिरक के साथ जोड़ा गया। इन स्थिरकों पर उच्च ब्याज दरों और मूल्यांकन विनिमय दरों का नियंत्रण रहता था। तदोपरांत मुद्रा के अवमूल्यन संबंधी एक काफी अनुक्रमिक उपाय खोजा गया ताकि आर्थिक कार्यकलाप को मूल्य स्थिरता एवं अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की अपेक्षाओं के अनुरूप उत्प्रेरित किया जा सके।

फलस्वरूप, उक्त योजना मुद्रास्फीति दर में एक तीव्र एवं सतत गिरावट में सफलतापूर्वक पारित हुई। मुद्रा के मूल्य पुनर्स्थापित और आर्थिक विकास की वापसी से जनसामान्य के निचले तबकों की क्रय शक्ति में बढ़ोतरी हुई और ग़रीबी में एक महत्वपूर्ण गिरावट दर्ज़ की गई।

निम्न वर्गों, जिन्हें अनम्य सूचीकरण से बचाव हेतु कोई वित्तीय संरक्षण प्राप्त नहीं था, ने अपनी जीवन शैली में भरते सुधारों का अनुभव किया। वर्ष 1980 से 1993 तक अर्थव्यवस्था की औसत वास्तविक दर 2.1% प्रति वर्ष रही। 1994 से 1997 तक अधिकांश अवधि वास्तविक वृद्धि दर 3% से 6% के बीच बनी रही। वर्ष 2001 के आरंभ में यह 4% से किंचित ऊपर ही रही।

MAADHYAM IAS

बाज़ार उदारीकरण और आर्थिक स्थिरीकरण ने ब्राज़ील का व्यापार लगभग दुगुना हो गया है, यथा 50 अरब अमेरिकी डॉलर से 1996 में अनुमानित 100 अरब अमेरिकी डॉलर। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 1993 में एक अरब अमेरिकी डॉलर से भी कम से 1996 में अनुमानित सात अरब अमेरिकी डॉलर तक। ब्राज़ील में सबसे बड़ा विदेशी निवेशकर्त्ता है, जो कुल विदेश निवेश के 34% , यथा लगभग 20 अरब अमेरिकी डॉलर का हिसाब देता है। वर्ष 1997 एवं 1998 के लिए नियोजित ब्राज़ील के दूर संचार, ऊर्जा एवं खनन क्षेत्रों में चालू एवं भावी निजीकरण अमेरिकी कम्पनियां के लिए काफ़ी दिलचस्पी का विषय है।

सोचिए और कीजिए 19.2

ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था की दशा पर चर्चा करें। समाचारपत्रों, इन्टरनेट, टेलीविज़न आदि के माध्यम से ब्राज़ील के नवीनतम आर्थिक सुधारों के विषय में और जानकारी प्राप्त करें।

19.5 ब्राज़ील के व्यापार – साझीदार

अस्सी के दशक में अनेक दक्षिण अमेरिकी देश निरंकुश सैन्य शक्ति से एक काफ़ी लोकतांत्रिक असैनिक सरकार में बदल गए। इस परिवर्तन ने अन्य देशों के साथ व्यापार समझोतों को आसान बनाने में मदद की। वर्ष 1988 से ही दक्षिण अमेरिका उल्लेखनीय

आर्थिक एकीकरण, राजनीतिक सहयोग, क्षेत्रीय व्यापार की वृद्धि और स्वतंत्र व्यापार संबंधों का लाभ उठा रहा हैं।

संगठनों के बनाय जाने से, जैसे मर्कैडो कॅम्यून डेल़ सर (मर्कोसर -MERCOSUR) अर्थात् दक्षिण का आम बाज़ार और एन्डियन ग्रुप विश्व व्यापार में दक्षिण अमेरिका के आर्थिक विकास एवं स्वर्धेयता को और आर्थिक गति और मज़बूती मिली।

मर्कोसर के सदस्य हैं – अर्जेन्टाइना, ब्राज़ील पैराग्वे और उरूग्वे। इन देशों के राष्ट्राध्यक्ष अन्य देशों से आयात होने वाली अनेक वस्तुओं के लिए सर्वसामान्य शुल्कदरें तय करने को सहमत हुए।

ब्राज़ील निम्नलिखित को बहुत से उत्पाद निर्यात करता है :

- यूरोपीय संघ
- अमेरिका
- जापान
- दक्षिण अमेरिका

ब्राज़ील का अधिकांश आयात यहां से होता है:

- मध्य पूर्व
- अमेरिका
- यूरोपीय संघ

ब्राज़ील में व्यापार से जुड़े अन्य अभिलक्षण हैं:

- ब्राज़ील कॉफ़ी और सोयाबीन का निर्यात करता हैं।
- विनिर्मित उत्पाद जैसे – कारें, वस्त्र एवं जूते, महत्वपूर्ण निर्यात उत्पाद बन गए हैं।
- आयात में शामिल हैं – रसायनों, तेल, खाद्य पदार्थों आदि मदें तथा उद्योग हेतु भारी मशीनरी। अधिकांश तेल आयात मध्य पूर्व से होता है।
- ब्राज़ील में व्यापार अधिशेष होता है, इसमें से काफ़ी सारा पैसा ऋणों को चुकाने और ब्राज़ील के विशाल राष्ट्रीय ऋण को घटाने में लगाया गया है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

19.6 सरकार और राजनीति

शासन के क्षेत्र में ब्राज़ील तीसरा सबसे बड़ा लोकतंत्र है (भारत और अमेरिका के बाद)। सैन्य तानाशाही (1964-85) की समाप्ति से ही यहां असैनिक लोकतांत्रिक शासन कायम है। "आर्थिक चमत्कार" काल (1967 -74) के बाद से ब्राज़ील राजनीतिक उदारीकरण के साथ समवर्ती एक "मंदस्फीति" के दौर में प्रवेश कर गया। सैन्य शासनकाल में ब्राज़ीलियाई समाज 70% शहरी हो चुका था ; अर्थव्यवस्था उद्योगीकृत हो चुकी थी और प्राथमिक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक विनिर्मित वस्तुएं निर्यात की जाने लगी थी; तथा लगभग 55% जनसंख्या का नाम मतदाताओं में दर्ज़ हो चुका था। संयुक्त राज्यों के साथ समूहन और राजकाजी स्वतंत्रता के बीच विदेश-नीति डॉवाडोल थी। एक असैनिक राष्ट्राध्यक्ष हेतु अवस्थांतर गमन 1985 में हुआ। 1985 से 1997 तक ब्राज़ील ने चार भिन्न राजनीतिक प्रतिमानों का अनुभव किया। जोसे सार्नी (1985-90 के दौरान राष्ट्रपति) के कार्यकाल में राजनीतिक सौदावारी, ग्राहक वर्ग एवं आर्थिक राष्ट्रवाद की 1964 पूर्व परंपरा की ओर पश्चगमन; फ़र्नैन्डो कॉलर डि मैलो (1990-92 के दौरान राष्ट्रपति) के कार्यकाल में सामाजिक राष्ट्रवाद संबंधी एक अनियमित

व्यक्तिगत शैली और फ़र्नेन्डा हैरिक फ़ार्दोसो (1995-2002 के दौरान राष्ट्रपति) के कार्यकाल में एक सर्वसम्मति शैली सामाजिक-लोकतांत्रिक एवं नवोदारवाद गठबंधन।

फार्दोसो राष्ट्रपति पद पर 1 जनवरी 1995 को आरूढ़ हुए। नई सरकार को अवस्थांतर गमन परिपूर्ण प्राय था। राष्ट्रपति फार्दोसो 1998 में पुनः अगले चार वर्ष की अवधि हेतु निर्वाचित हुए। अपने दो जनादेशों के दौरान राष्ट्रपति फार्दोसो ने महत्वपूर्ण सुधार कार्य किए, आर्थिक एवं सामाजिक दोनों क्षेत्रों में। 1995 में फार्दोसों सरकार का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण कार्य था– 1988 के संविधान का मुख्य धाराओं में सुधार को बढ़ावा देना ताकि अर्थव्यवस्था में राज्य की भूमिका घटे, संघीय अधिकारी तंत्र में सुधार हो, सामाजिक सुरक्षा प्रणाली को मान्यता मिले, संघवादी संबंध फिर से कारगर हों, जटिल कर प्रणाली का कायापलट हो और राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व को सशक्त बनाने हेतु चुनाव एवं पार्टी संबंधी सुधार शुरू हों (http://www.brazilbrazil.com/politics)।

वर्ष 1994 में शुरू की गई आर्थिक योजना (प्लैनो रीपल) ने ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण मोड़ आने का संकेत दिया। यह मुद्रा स्फीति घटाने में व्यापक रूप में सफल रही और उसने अन्य क्षेत्रों में प्रगति हेतु भी मार्ग प्रशस्त किया।

निम्न मुद्रास्फीति ने परिणामतः प्लैनो रीयल के प्रभाव चार वर्षों में यथेष्ट आर्थिक विकास सुनिश्चित करने में मदद की। 1994 से 1997 तक अर्थव्यवस्था ने 3.5% की एक औसत दर से विकास किया और रोज़गार स्वरूप हज़ारों नौकरियों को जन्म दिया।

हाल के वर्षों में विश्व अर्थव्यवस्था में आए संकट की वजह से अर्थव्यवस्था में विकास प्रतिमान का ह्रास हुआ हैं फिर भी, 1994 एवं 1999 के बीच 2.3% प्रतिवर्ष की विकास दर 1994 से पूर्व देखी गई विकास दर के मुकाबले सार्थक रूप से ऊंची रही।

वर्ष 1999-2000 के वित्तीय संकट (देखें बॉक्स 19.2) से ब्राज़ील उबरकर आया और 2001-2003 से वास्तविक वेतन घटे व ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था पनपी, औसतम 1.1% प्रतिवर्ष, क्योंकि देश ने घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक आघातों की श्रृंखला को झेला था। वित्तीय विध्वसं के बिना इन आघातों को ब्राज़ील द्वारा झेला जाना ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था एवं आर्थिक कार्यक्रम के लचीनेपन की बदौलत ही था, जो कि पूर्व राष्ट्रपति फोर्दोसो द्वारा पटरी पर लाई गई और वर्ष 2002 में निर्वाचित वर्तमान राष्ट्रपति ल्यूला ड सिल्वा द्वारा सुदृढ़ बनाई गई। 1994 उपरांत उन्होंने अनेक सुधार कार्य शुरू किए। आर्थिक कार्यक्रम के तीन स्तंभ हैं: एक अनिधिक विनिमय दर, एक मुद्रास्फीति अभिलक्षित नियमप्रणाली और एक चुस्त राजकोषीय नीति जिनको अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष कार्यक्रमों की एक श्रृंखला द्वारा दृढ़ता प्रदान की गई है। वर्ष 2001 और 2002 में मुद्रा का तेज़ी से अवमूल्यन हुआ, जिसने एक नाटकीय चालू खाता समन्जन में योगदान दिया। वर्ष 2003 में ब्राज़ील ने रिकार्ड व्यापार अधिशेष दर्शाया और 1992 के बाद से अब पहली बार चालू खाता अधिशेष दर्ज़ कराया।

यद्यपि आर्थिक प्रबंधन अच्छा रहा है, फिर भी महत्वपूर्ण आर्थिक भेदयताएं कायम हैं। सबसे महत्वूपर्ण ऋण संबंधी हैं: सरकारी वित्त-साधनों पर दबाव डालता सरकार का अधिकंश रूप में घरेलू ऋण 1994 से 2003 तक अविचल बड़ा, जबकि ब्राज़ील का विदेश-ऋण (निजी व सरकारी ऋण का तालमेल) ब्राज़ील के संतुलित (परन्तु विकासशील) निर्यात आधार की तुलना में कहीं अधिक है। एक अन्य चुनौती है — रोज़गार पैदा करने व सरकारी ऋण भार को अधिक नियंत्रणीय बनाने हेतु एक समयावधि विशेष तक आर्थिक विकास जारी रखना। परन्तु ब्राज़ील का आर्थिक मोर्चा कहीं आशाप्रद प्रतीत होगा यदि हम निराशाजनक 2003 पश्चात हाल के आर्थिक कायापलट को देखें। जब यह व्यवस्था एक दिखाई निर्यात हेतु 0.2 प्रतिशत तथा सिकुड़ गई, और एक सशक्त मुद्रा वर्ष 2004 में ब्राजीलियाई अर्थव्यवस्था

हेतु 5.3 प्रतिशत विकास में पारित हुई, जो कि उक्त दशक में सर्वोत्तम था (http://www.nationmaster.com/country/br/economy)।

बॉक्स 19.2 : ब्राज़ील में आर्थिक संकट

एक आर्थिक समिति का सख्ती से पालन करने के बावजूद जिसने एक पूर्ण परिवर्तित मुद्रा, उच्च ब्याज दरों, वृहद पूंजी अन्तर्वाहों एवं उदारीकरण को अपरिहार्य बना दिया, ब्राज़ील गत शताब्दी के अंत में जाते जाते संकट में पड़ ही गया। अमेरिकी डॉलर के मुकाबले ब्राज़ीलियाई मुद्रा रीयल का तेज़ी से अवमूल्यन हुआ। इस संकट के मूल को अस्सी के दशक की वित्तीय नीतियों में तलाशा जा सकता है। दशक के अंत आते आते ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था अपनी मुद्रा के अवमूल्यन से परेशान हो गई अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के शुरुआती स्थिरीकरण कार्यक्रम मुद्रा स्फीति को रोकने अथवा विकास लाने में विफल रहे – वस्तुतः उन्होंने इस क्षेत्र में अनेक मुश्किलें पैदा कर दीं। तदन्तर प्रदर्शनों में बाज़ार उदारीकरण पर आधारित एक विकास समिति के साथ अधिक व्यावहारिक प्रति स्फीति नीतियां शामिल की गई। वर्ष 1990 में राष्ट्पति कॉलर ने मुद्रा स्फीति रोकने के लिए बैंक के खातों का प्रयोग बंद कर दिए जाने के संबंधी आदेश जारी किया। कॉलर जिन्हें बाद में भ्रष्टाचार के आरोपों के चलते पदच्चयुत कर दिया गया, ने अर्थव्यवस्था पर छायी शुल्क दरों को घटाया तथा सार्वजनिक व्यय कम करने के प्रयास किया। वर्ष 1994 में फ़र्नैन्डो हेन्रिक फार्दोसो जो अगल सरकार में ब्राज़ीलियाई सामाजिक लोकतांत्रिक दल (PSDB) के आर्थिक मंत्री थे, ने "पलैनो रीयल" योजना शुरू की जिसको अंतर्राष्ट्रीय वित्त जगत का पूरा समर्थन प्राप्त था। इसने डॉलर के मुकाबले अपनी मुद्रा पर अंकुश लगाकर तथा ब्याज को ऊंचा रख व विनिमय दर को पूर्णपरिवर्तित कर अति स्फीति पर रोक लगा दी। एक बेहतर जीवन स्तर की ओर अभिमुख निम्न आय परिवारों के कंधों से "स्फीति कर" का बोझ हटा दिया। इस सफलता ने अक्तूबर 1994 में राष्ट्रपति पद के लिए फार्दोसो का चुना जाना सुनिश्चित कर दिया।

यह व्यापक रूप से माना जाता था कि ब्राज़ीलियाई राष्ट्रपति चुनाव में फ़र्नैन्डो हेन्रिक फोर्दोसो की विजय अवमूल्यन नामक वायरस से ब्राज़ील की रक्षा करेगी। ब्राज़ील के "पलैनो रीयल" के जन्मदाता, फोर्दोसो को एक 41.5 अरब अमेरिकी डॉलर के ऋण की खातिर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) द्वारा तय शर्तों को पूरा करने के लिए अभिकल्पित संरचानात्मक संमजन कार्यक्रमों एवं आर्थिक सुधारों को लागू करना था। फार्दोसो की शासन व्यवस्था अपने वायदे पूरे नहीं कर सकी। यह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष समर्पित बजट और ब्राज़ीलियाई विधायिका में आर्थिक सुधार लाने में अक्षम रहा।

ब्राज़ील के लोग इस बात को स्वीकार करते थे कि रीयल का अवमूल्यन अपरिहार्य है अतः ये अपना धन ब्राज़ील से बाहर तथा अमेरिका यूरोप व आयतर बन्दरगाहों में बैंक एवं आढ़त खातों में लगाने लगे। जितना अधिक डॉलर ब्राज़ील से निकला ब्राज़ील के भविष्य के बारे में उतना ही अधिक नकारात्मक अपेक्षाएं बढ़ीं खासकर रीयल के भावी मूल्य के विषय में। जितनी अधिक नकारी अपेक्षाएं थी उतना ही पूंजी उत्पतन। रीयल को बचाने के प्रयास में ब्राज़ीलियाई सैन्ट्रल बैंक ने ब्याज दरें लगभग 50% तक बढ़ा दी। वस्तुतः उच्च ब्याज दरों ने ब्राज़ीलियाई अर्थव्यवस्था में परिसम्पति मूल्यों में गिरावट को तेज़ ही किया, जिसकी वजह थेः वर्तमान ऋणों से सामान्तर समर्थन घटना, दिवालों की दर एवं जोखिम बढ़ना और संपूर्ण वित्त व्यवस्था पर असाधरण बोझ का बढ़ना।

राष्ट्रपति फार्दोसो ने निश्चय किया कि समाधान रीयल का अवमूल्यन ही है । इससे पहले उन्होंने अवमूल्यन न करने का संकल्प लिया था। इस प्रकार, अवमूल्यन ने ब्राजीलियाई सम्पन्न वर्ग के वित्त बाज़ारों एवं समुदाय में नकारात्मक अपेक्षाओं को और प्रबलित किया। रीयल डॉलर विनिमय दर में 9% अवमूलयन ने वित्त संकट को गहराते हुए ब्राज़ील से बाहर डॉलर प्रवाह की ओर प्रवृत्त किया।

MAADHYAM IAS

19.7 पर्यावरण संबंधी मुद्दे

ब्राज़ील का आधा भाग वनों से घिरा है, जहां अमेज़न गोल घाटी ने विश्व का सबसे बड़ा वर्षावन है। इस विशिष्ट वन की उत्कृष्ट संरचना में जो कि समग्र विश्व के संपूर्ण वर्षावनों का 40% है, ग्रहीय ऑक्सीजन उत्पादन का एक बटे पांचवां (1/5) भाग और ग्रहीय अक्षर जल का भी एक बटे पांचवां (1/5) भाग स्थित है। अमेज़न ग्रह के पादप एवं जन्तु आबादी के एक बटे दसवें भाग का निवासस्थान भी है। अमेज़न में हाल के प्रव्रसनों एवं वनक्षेत्रों के व्यापक दहन ने ब्राज़ील पर अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान केन्द्रित कर दिया है।

विश्व की सबसे बड़ी पर्यावरणीय समस्याओं में ब्राज़ीलियाई अमेज़न में निर्वनीकरण निःसंदेह ऐसी समस्या है जिसने सर्वाधिक लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है, क्योंकि यह बड़ी संख्या में अभिकर्त्ताओं, सरकारों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं , गैर-सरकारी संगठनों एवं संचार माध्यमों का चिंतन विषय है। अमेज़न के वर्षावन और मैटो गैसों के पैष्टानल (विशाल रिक्त भूमियां) निर्वनकरण काटो और जलाओ कृषि, महामार्ग निर्माण, अवैध खनन, मादक द्रव अवैध व्यापार एवं प्रदूषण आदि के माध्यम से होने वाले मानवीय हस्तक्षेप के दुष्प्रभावों से ग्रस्त हैं। बांध-निर्माण ने भी वर्षावनों की विशाल चौड़ी पट्टियों को नष्ट कर दिया है।

बॉक्स 19.3: समदृष्टि एवं पर्यावरण को बढ़ावा देना–ब्राज़ील से प्राप्त एक रचनात्मक राजकोषीय उदाहरण

वर्ष 1992 में अधिकोश ब्राज़ीलियाई राज्यों ने एक परिस्थितिकी मूल्य वर्णित कर (ICMS-F अर्थात् Imposto sobre circulacao de mercadorias e sequicos) अपना लिया। माल, सेवाओं, ऊर्जा एवं संचार माध्यमों पर चंदे के रूप में यह कर ब्राज़ील में राजस्व का सबसे बड़ा स्रोत है। इसका अभिप्राय परिणामी राजस्व हानि के लिए परिरक्षण क्षेत्रों वाली नगरपालिकाओं की प्रतिपूर्ति करना था। कर से प्राप्त राजस्व प्रायः पार्को और आरक्षित भण्डारों के रखरखाव हेतु प्रयोग किया जाता है। इसमें औज़ारों की खरीद और कर्मचारियों का वेतन भी शामिल है। कुछ राज्यों में प्रतीयमानः कर ने संरक्षित क्षेत्रों की संख्या एवं आकार को यथेष्ट रूप से बढ़ा दिया है। वर्ष 1991 एवं 2000 के बीच पराना परीक्षण क्षेत्रों में 10 लाख हैक्टेयर से भी अधिक बढ़ोतरी हुई यथा 16.5% वृद्धि।

MAADHYAM IAS

वर्ष 1992 में रिया डि जेनेरो को संयुक्त राष्ट्र द्वारा अब तक की सबसे बड़ी विश्व नगर सभा स्थल के रूप में चुना गया था। यानी संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (UNCED) जिसे पृथ्वी सम्मेलन अथवा 'अर्थ समिट' के नाम से बेहतर जाना जाता है। विश्व में लगभग हर देश, हज़ारों पत्रकारों ओर कहीं अधिक गैर-सरकारी संगठनों ने इस बैठक में भाग लिया जहां विश्व के कुछ सर्वोत्तम मेधावी जन का प्रमुख स्थान दिया गया था। निरूत्साहित करने वाला कार्य था — सम्पन्न उत्तरी गोलार्द्ध एवं विभिन्न दक्षिणी गोलार्द्ध की विवादग्रस्त प्राथमिकताओं के भावी संतुलन हेतु एक रूपरेखा तैयार किया जाना। उत्तरी गोलार्द्ध का सार तत्व वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के लिए उन्नत जीवनस्तर की सेवार्थ पर्यावरणीय अखंडता का समर्थन करता था। जो कि सातस्य अथवा दीर्घावधि प्रत्युत्तरता की अवधारणा के ईदर्गिद ही सलंग्न हेतु दक्षिणी गोलार्द्ध में रहने वालों के लिए गरीबों के अहस्तांतरणीय अधिकार के सामने मौण के रूप में देखा, जिसका परिणाम हुआ विश्व के अलाभांवितो हेतु एक ऊंचा जीवन स्तर। इन दोनों पसारी लक्ष्यों को पारंपरिक रूप से अपकारी माना गया था, परन्तु दियो में अपनाया गया दृष्टिकोण भिन्न था; पृथ्वी सम्मेलन ने पर्यावरण एवं विकास को प्रयोज्यक्षम रूप से अनुपूरक के रूप में परिभाषित किया और इस धारणा के इर्द गिर्द ही एक दुर्लभ विश मतैक्य दिखाई दिया जो एक नये लक्ष्य की ओर संकेत करता था : सतत विकास। विकास के पर्यावरणीय रूप से सचेत रूपों की इस अवधारणा को एक दस्तावेज़ में ढाल दिया गया जो दिया'92 से उद्भूत हुआ। इसका नाम पड़ा "कार्यसूची 21" जिसमें मानवमात्र के

भविष्य हेतु सर्व लक्ष्य के रूप में सतत विकास की ओर संकेत करते हुए एक ही पृष्ठ पर समस्त विश्व को रखा गया था। "कार्यसूची 21" पर समझौते के आसार ने उल्लेखनीय उपलब्धि को सामने रखा, परन्तु एक राजनीतिक प्रतीक के रूप में इसकी स्वीकार्यता यह उत्तर नहीं दे सकी कि क्या सतत् विकास, वाक़ई संभव था। यह शीघ्र ही ज़ाहिर हो गया कि उत्तर व दक्षिण ने "कार्यसूचि 21" में वांछित अनुसार प्रत्येक को पर्याप्त मिला ताकि वे सतत विकास के उद्देश्य को स्वीकार कर सके, उत्तर ने सातव्य घटक पर केन्द्रित किया जबकि दक्षिण ने गरीब देशों के लिए आर्थिक विकास को प्राथमिकता दी।

सोचिए और कीजिए 19.3

ब्राज़ील की प्रमुख पर्यावरण संबंधी चुनौती क्या है? इसका सामना करने के लिए क्या उपाय किए जा रहे हैं?

19.8 सामाजिक चुनौतियाँ

अस्सी के दशक से ब्राज़ील अपनी सामाजिक स्थिति के संबंध में एक विशेष रूप से गंभीर दौर से गुज़र रहा है : बहुत बड़ी संख्या में ब्राज़ीलवासी गरीबी और अभावग्रस्तता में रह रहे हैं जबकि धर्मसंपदा एवं आय के लिहाज से असमानता अनैतिक रूप से उच्च अनुपातों पर पहुंच गई है। सबसे अमीर 10% घरों के पास सबसे गरीब 10% की आय का 70 गुणा है (*मानव विकास रिपोर्ट,* 2003)। गरीबी और असमानता की जड़ें देश के अतीत में ही कहीं हैं परन्तु उनके अधिक तत्कालिक कारण 'चालिस एवं सत्तर' के दशकों के बीच राज्य द्वारा कराये गए आयात प्रतिस्थापन पर आधारित विकास प्रक्रिया में तलाशे जा सकते हैं; साथ ही उस विकास प्रतिमान के संकट में आर्थिक समन्जन में असफल प्रयासों में और भूमण्डलीकरण द्वारा लागू आर्थिक पुनर्गठन प्रक्रिया के अब भी प्रारंभिक परिणामों में भी।

निःसंदेह, संरक्षित उद्योगीकरण पर आधारित आर्थिक विकास का प्रतिमान एक शहरी औद्योगिक अर्थव्यवस्था के सुधार हेतु ज़िम्मेदार था जो कि वैविध्यपूर्ण और जटिल थी, उपभोग एवं व्याप्ति के आधार पर और पूंजीवाद के कगार पर। यहा विकास प्रतिमान बहरहाल, गरीबी एवं दुर्दशा को दूर करने के कगार पर। यह विकास प्रतिमान, बहरहाल, गरीबी एवं दुर्दशा को दूर करने में सक्षम नहीं था। यद्यपि इसने अपने घटनाचक्र में सर्वाधिक गतिशील बिंदुओं पर उन्हें घटाने में योगदान दिया था। यहां धनसंपदा एवं आय की असमानताएं घटाने में सक्षम नहीं था क्योंकि इन पर ज़ोर हाल के दिनों में ही दिया गया। कुछ सामाजिक समूह इसके लाभों के हाशियों पर ही बने हुए हैं, उदाहरण के लिए स्थायी रूप से भूमिहीन ग्रामीण कर्मचारी वर्ग छोटी-छोटी जोतों के मालिक उत्तरोत्तर शक्तिहीन और कर्ज़ के साथ-साथ सीमित शहरी श्रमिकों के अभागेपन के शिकार होते गए।(http://www.mre.gov.br/c dbrazil)।

आर्थिक विकास संबंधी इस प्रतिमान के उत्तरोत्तर शक्तिहीन होने की प्रक्रिया पूरे अस्सी के दशक में प्रचलित रही। यह वही काल था जिसका जिम्मा ऋण से कर के रूप में किया जाता है और आर्थिक गतिवाद के बढ़ते नुकसान बढ़ते सार्वजनिक ऋण एवं राज्य व जन प्रशासन में परिणामी संकट के रूप में भी, जिसको कि आर्थिक स्थिरता लाने दे असफल प्रयासों से जुड़े बारंबार मुद्रास्फीति, भाग्य के फेर एवं अनिश्चितताओं द्वारा जटिल बना दिया गया था। ब्राज़ील की सामाजिक समस्याओं द्वारा यह स्थिति उस काल में और भी विकट बना दी गई: एक बार फिर से गरीब एवं अभावग्रस्त लोगों के आकस्मिक संयोग में वृद्धि हो गई, जो कि असमानता पर ज़ोर दिए जाने और मध्यम एवं निम्न मध्यम वर्गों के कुछ तबकों खासकर वे जो राज्य व उसके कार्यकलापों पर निर्भर थे की बढ़ती असुरक्षा के साथ हुआ। इसी काल में ब्राज़ील नब्बे के दशक में प्रवेश करने जा रहा था चूंकि तकनीकी एवं प्रबंधन

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

आधुनिकीकरण के साथ-साथ व्यापार अवसरों की ओर भी ले जाती एक आर्थिक पुनर्गठन प्रक्रिया चल रही थी जो घरेलू बाज़ार में तेज़ प्रतिस्पर्धी को भी जन्म दे रही थी। इन कारकों ने एक गहरा असर डाला है और आगामी कुछ वर्ष 1994 – मध्य में ब्राज़ील में शुरू किए गए। 'रीयल प्लैन' द्वारा प्रस्तुत आर्थिक स्थिरीकरण में हाल के सफल परीक्षण ने उस रूझान में गिरावट की शुरुआत का संकेत दिया, खासकर जनसमुदाय के सबसे गरीब तबकों के लिए। तथापि, मुद्रा स्फीति समाप्त होते ही जनसमुदाय के कुछ तबके, जो इससे लाभान्वित हो रहे थे, आर्थिक असुरक्षित महसूस करना शुरू कर सकते थे।

ये विभिन्न प्रक्रियाएं एक जटिल आधार को जन्म दे रही हैं, जिसका संकेत वर्जनाओं एंव सामाजिक भेयताओं से मिलता है। इन मुद्दों को सार्वजनिक एवं सरकारी नीतियों की एक विविध श्रृंखला द्वारा हल किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निर्दिष्ट रूप से सामाजिक क्षेत्र पर अभिलक्षित योजनाओं एवं कार्यवाइयों की एक श्रृंखला तैयार एवं लागू की जा रही है, ताकि मूल सामाजिक अधिकारों एवं अवसर की समानता को प्रोत्साहित समेकित एवं प्रत्याभूत किया जा सके, बशर्ते बारंबार खतरे की स्थिति से सुरक्षा मिले और असुरक्षित समूहों को सामाजिक सुरक्षा मिल जाए।

ब्राज़ील की क्षेत्रीय एवं सामाजिक असंगतियां उसकी शिक्षा पद्धति की व्यापक असमानताओं में भी प्रकट होती है। वर्ष 1994 में यूनिसेफ ने ब्राज़ील की बुनियादी शिक्षा-प्रणाली को विश्व में अंतिम दर्ज़े पर रखा, जहां गरीब राज्यों में गैर हाज़री की दरें काफ़ी ऊंची थीं । एक आशाजनक घटनाक्रम में, हांलाकि ब्राज़ील में प्राथमिक शिक्षा में आमूलचूल सुधार किया जा रहा है। गत 10 वर्षों में निरक्षरता दरें सम्पन्नतम एवं विपंतिम राज्यों के बीच बढ़ती रही हैं। और यद्यपि ग़रीबी नब्बे के दशकारंभ में घटने लगी थी ऐसा असमान रूप से ही हुआ। उत्तर एकमात्र ऐसा भूभाग है जहां गरीबी में वृद्धि देखी गई है, 1990 में 36% से बढ़कर 2001 में 44%। जब समग्र विकास अच्छा हो रहा है तो इतने सारे लोगों के क्यों पीछे छोड़ा जा रहा हैं? दोष औसत संसाधनों में कमी का नहीं है बल्कि तेज़ी से बढ़ती असमानता का है (मैन्डोन्का, 2003)। न केवल उत्तरी भाग में गरीबी बढ़ती देखी जा रही है, यह सम्पन्न शहरी दक्षिणी भाग से भिन्न मानव विकास में भी पिछड़ रहा है (स्वओ पौलो, दिओ डि जेनेरो और दिओ ग्रैंड डो सल) और उत्तर पूर्व से भी भिन्न जहां उसके मानव विकास सूचकांक में यथा सुधार देखे गए हैं।

MAADHYAM IAS

इसमें ब्राज़ीलियाई सामाजिक मुद्दे की प्रगति में समक्ष एक अतिरिक्त चुनौती खड़ी कर दी गई है: लोकतांत्रिक चुनौती। जनसांख्यिकीय अवस्थान्तर गमन जो कि गत तीस वर्षों से प्रगति कर रहा है जनसंख्या के आयु सुधार में पारिवारिक व्यवहार में और रोज़गार बाज़ार में महत्वपूर्ण परिवर्तन ले आया है।

इसने सामाजिक सुरक्षा प्रणाली के दूरगामी कायापलट को प्रवृत्त किया है, जिसमें उसका विस्तार एवं सुधार शामिल है। इन परिवर्तनों को लाने में आने वाली चुनौती को लोकतांत्रिक संस्थाओं का सम्मान करना चाहिए और उस परिप्रेक्ष्य में लोकतंत्र को समेकित करने एवं सशक्त बनाने की प्रक्रिया में सामाजिक नीतियों की भूमिका सुनिश्चित करनी चाहिए।

ब्राज़ील में स्वस्थ सूचकों ने गत 50 वर्षों ने काफ़ी प्रगति दर्शायी है। ब्राज़ीलवासियो के औसत जीवन प्रत्याशा उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। शिशु मृत्युदरें, यद्यपि ये अब भी विश्व एवं लैटिन अमेरिकी मानकों, दोनों के अनुसार ऊंची हैं, चालीस के दशकारंभ में लगभग चार गुणा घट गई है।

रूग्णता दर प्राधार एवं मृत्युदर पार्श्वचित्र में यथेष्ट परिवर्तन आए हैं। तथाकथित संघात्मक रोगों पर पूर्व केंद्रित मृत्यु के मुख्य कारण आज तलाशे जाने हैं जो कि बढ़े शहरीकरण के

चलते जीर्ण आकर्षक रोगों (हृदय संवहन संबंधी समस्याओं एवं गिल्टियों) और दुर्घटनाओं एवं मानव हत्याओं जैसे बाह्य कारणों में मिलते हैं जहां दोनों ही बड़े शहरों में दैनिक जीवन से बड़े पैमाने पर फलित होते हैं (http://learn.co.uk.learning resources for national curriculum)।

इसका अर्थ यह नहीं है कि संक्रामक रोग गायब हो गए हैं। वे अब भी कायम हैं; हांलाकि ग्रामीण दरिद्रता वाले विशेष रूप से आंतरिक निवासियों से ही जुड़े हैं और बड़े पैमाने पर प्रव्रजन गतिविधियों से ताल्लुक रखते हैं, उल्लेखनीय रूप से उत्तर पूर्वी , उत्तर एवं मध्य पूर्वी क्षेत्रों में । उत्तर-पूर्व उदाहरण के लिए अब भी उच्च शिशु मृत्युदरें दर्शाता है। जो कि विशेष रूप से बच्चों एवं नवजात शिशुओं के उच्च अनुपात संबंधी पोषण की निकृष्ट दशा से जुड़ी हैं। महामारियों का फिर से लौटना, जैसे हैजा, जिन्हें मिटाया जा चुका था और नई बीमारियों का प्रवेश जैसे एड्स, रोग पार्श्वचित्र के नए अभिलक्षण हैं, जिसके लिए सरकार से रक्षात्मक कार्यवाही के नए स्वरूपों की अपेक्षा की जाती है।

अब तक हुई प्रगति के बावजूद ब्राज़ील अब भी अपने स्वास्थ्य सूचकों में क्षेत्रीय भिन्नताएं दर्शाता है। उत्तर-पूर्व जैसे क्षेत्रों में रूगणता के ऐसे प्रतिमान हैं जो अफ्रीका, एशिया एवं लैटिन अमेरिका आदि स्थित सबसे पिछड़े देशों से काफ़ी मिलते जुलते हैं जबकि दक्षिण-पूर्व एवं संघीय जिला आदि राज्यों में सूचकों की आन्तरकि भिन्नता के बावजूद स्वास्थ्य दशाएं ऐसी मिलेंगी जैसा कि अधिकांश विकसित देशों में देखी जाती है

सोचिए और कीजिए 19.4

ब्राज़ील में तीव्र जनसंख्या वृद्धि के निहितार्थों पर चर्चा करें।

19.9 सारांश

आर्थिक एवं पर्यावरण संबंधी मुद्दों के संबंध में ब्राज़ील का विश्वव्यापी प्रभाव है। इसका आर्थिक उत्पादन, जनसंख्या, आधार एवं प्राकृतिक संसाधन विपुलता आदि सभी विश्व के शीर्ष दस में हैं। एक सीमान्त समाज के रूप में जो अपरिमित माने जाने वाले राज्य क्षेत्र में तेज़ी से फेली, ब्राज़ीलियाई संस्कृति ने भ्रष्टाचरित्रता, अथवा वृहद स्तरीय अपव्यय का भाव अपना लिया। विशेष रूप से यह विश्वास कि "बड़े का अर्थ सदैव बेहतर होता है" ने ब्राज़ील के लिए समस्याएं पैदा कर दी हैं। यह प्रवृति निरंतर ब्राज़ील को सता रही है क्योंकि विश्व आलोचक विशाल जन परियोजनाओं पर व्यापक व्यय के माध्यम से समस्याओं को शीघ्रता से निपटाने के अभिप्राय वाली ध्वंश योजनाओं से जुड़े अपव्ययी आर्थिक एवं पर्यावरणीय कार्यकलापों की ओर संकेत करते हैं।

अपनी सामाजिक विषमता के बावजूद ब्राज़ील के पास एक सशक्त राष्ट्रीय संस्कृति है जिसमें उसके अधिकांश नागरिक भागीदार हैं। प्रजातीय संकरण भी एक कारक है ज़ो एक व्यापक रूप में स्वीकृत सामाजिक सहिष्णुता में सहभागी है। यद्यपि प्रजातीय एवं नृजातीय भेदभाव के उदाहरण ब्राज़ील के इतिहास में दृष्टव्य हैं, वे अमेरिका में अल्पसंख्यकों द्वारा अनुभव किए जा रहे भेदभाव के मुकाबले कम प्रबल, खुल्लमखुला और नियमबद्ध हैं। ब्राज़ीलियाई संस्कृति को बांध कर रखने वाला एक अन्य कारक है रोमन कैथलिकवाद की व्यापक भूमिका, जिसमें कि 80 प्रतिशत जनसंख्या आस्था रखती है। यद्यपि विश्व में अनेक देश सॉकर के खेल के प्रति मन रखते हैं कहीं भी इतनी संख्या में लोग इस गंभीरता के साथ इस खेल को नहीं अपनाते जैसे कि ब्राज़ील के लोग। यह अंशतः इस कारण सत्य है कि अन्य किसी भी देश अंतर्राष्ट्रीय सॉकर में इतनी सफलता नही मिली है जितनी कि ब्राज़ील को। सॉकर ब्राज़ील में महज मनोरंजन से कहीं अधिक है जो इसे यहां सशक्त संस्कृति में योगकारी एक और शक्ति का रूप अथवा ब्राजीलियाई पन का भाव प्रदान करता है।

MAADHYAM IAS

यइ इकाई ब्राज़ील के जनसांख्यिकीय एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक परिचर्चा के साथ आरंभ होती है। ब्राज़ील के आर्थिक इतिहास का विश्लेषण राष्ट्रीय आर्थिक दृष्टिकोणों में एक बदलाव दर्शाता है। यह इकाई ब्राज़ील में भूमि एवं लोगों के विकास संबंधी राजनीतिक, पर्यावरणीय एवं सामाजिक चिन्तन विषयों पर भी नज़र डालती है।

19.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

मारिया, जे.एफ. विलमसन एवं एदुआर्दो जिआनेती द फॉन्सेका सं.) (1997), *द ब्राज़ीलियन इकॉन्मी: स्ट्रक्चर एण्ड पर्फोमेन्स इन रीसेन्ट डैकेड्स:* नार्थ साउथ सैन्टर प्रैस : मियामी विश्वविद्यालय

ई. ब्रैडफोर्ड बर्न्स (1993), *ए हिस्ट्री ऑफ ब्राज़ील,* प्रेन्टिस हॉल : न्यूजर्सी

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

खंड 6

भूमंडलीकरण

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 20
भूमंडलीकरण के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम

इकाई की रूपरेखा

20.1 प्रस्तावना
20.2 भूमंडलीकरण की अवधारणा और परिभाषा
20.3 वर्तमान भूमंडलीकरण की विशेषताएं
20.4 भूमंडलीकरण के आर्थिक आयाम
20.5 भूमंडलीकरण के सामाजिक आयाम
20.6 भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक आयाम
20.7 सारांश
20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप निम्नलिखित बातों का आलोचनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे:

- भूमंडलीकरण शब्द और उसके विभिन्न अभिलक्षण;
- भूमंडलीकरण के सामाजिक एवं आर्थिक आयाम; और
- विभिन्न सांस्कृतिक प्रक्रियाएं और उनका भूमंडलीकरण से संबंध।

MAADHYAM IAS

20.1 प्रस्तावना

जैसा कि आप जानते हैं, प्रस्तुत खण्ड (खण्ड VI) का विषय है भूमंडलीकरण अर्थात् वैश्वीकरण। यह सत्य है कि समकालीन विश्व में शायद ही कोई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कार्यक्षेत्र होगा जो भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से अछूता हो। भूमंडलीकरण विभिन्न सभाओं के बीच विभिन्न सहज गुणों के आदान प्रदान के रूप में कोई नई दृश्यवरण नहीं है, बल्कि एक चालू प्रक्रिया है। भूमंडलीकरण की वर्तमान प्रक्रिया को जो पहले की प्रक्रियाओं से भिन्न और पृथक बनाता है वह है इन अदल बदल प्रक्रियाओं की निरंतरता एवं घनत्व में तीव्र वृद्धि। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया व संवद्ध पहलुओं की वर्तमान गति के विषय में अधिक जानना आवश्यक है। इस खण्ड में हम भूमंडलीकरण प्रक्रिया एवं विकास की अवधारणा पर उसके प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे। प्रस्तुत इकाई में भूमंडलीकरण की अवधारणा एवं अभिलक्षणों तथा उसके विभिन्न आयामों पर चर्चा की गई है। इकाई के प्रथम भाग में भूमंडलीकरण की नितान्त संकल्पना एवं इस संकल्पना को विभिन्न विद्वानों ने किस प्रकार परिभाषित किया है इस पर चर्चा की जाएगी। तदोपरांत इसमें भूमंडलीकरण के आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों पर अधिक विस्तार से चर्चा है। हर पहलू को सामान्य स्थिति के साथ साथ भारतीय स्थिति के संबंध में भी विस्तारपूर्वक समझाया गया है।

20.2 भूमंडलीकरण की अवधारणा और परिभाषा

नितान्त सरल शब्दों में भूमंडलीकरण को बढ़ती भूमंडलीय अन्तर्सम्बद्धता के रूप में चित्रित किया जा सकता है। यह कोई परिणाम नहीं अपितु एक प्रक्रिया है, जो विश्व के विभिन्न भागों बढ़ती अन्तर्संबद्धता की ओर झुकाव का इशारा करती है, न कि उनके परस्पर जुड़े होने की

ओर। यह मुख्य रूप से आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, प्रौद्योगिक सहजगुणों का एक विनिमय है जो समाजों के बीच उस वक्त होता है जब वे एक दूसरे के संपर्क में आते हैं। यद्यपि यह विनिमय अतिपूर्वकाल से चल रहा है, इस प्रक्रिया को सर्वप्रथम "भूमंडलीकरण" 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के आस पास कहा गया जबकि इस विषय पर काफ़ी साहित्य सत्तर के दशकांत एवं अस्सी के दशक से ही दृष्टिगत होने लगा था (बेयर 2003)।

भूमंडलीकरण का उल्लेख विश्व बाज़ार में आधुनिकीकरण की अवधारणा के रूप में मार्क्स एवं सेन्ट साइमन की वृतियों में भी मिलता हैं (केबल 1999)। कुछ विद्वानों का कहना है कि भूमंडलीकरण की यह प्रक्रिया मानव जाति के उत्पन्न होने के समय से ही चल रही है और इसने सभी संस्कृतियों, दूरस्थ एवं पृथक को भी, हालांकि घटती बढ़ती मात्रा में, प्रभावित किया है (ग्रिफ़िन 2004)। वर्तमान भूमंडलीकरण उस प्रक्रिया से भिन्न है जिसे अतीत में मुख्यतः विनिमय की मात्रा और अन्तर्संबद्धता के रूप में देखा जा सकता था। आज हर चीज़ पूर्वकाल की तुलना में काफ़ी तेज़ी से होती है भूमंडलीकरण की वर्तमान प्रक्रिया जिसका वर्णन लोकप्रिय रूप से राष्ट्रों के बीच व्यापार एवं निवेश हेतु अवरोधों के श्रमिक निरावरण के रूप में किया जाता है, 20वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में शुरू हुई। इसका लक्ष्य आर्थिक एवं सामाजिक विकास के वृहत्तर उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए प्रतिस्पर्धात्मकता के माध्यम से आर्थिक कुशलता लाना बताया जाता है। यह मानव जीवन के सभी पहलुओं को छूता है; चाहे वह आर्थिक हो, सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो, राजनीतिक हो या फिर पर्यावरण संबंधी।

वर्तमान भूमंडलीकरण की सर्वाधिक सामान्य परिभाषा विश्व अर्थव्यवस्था से विभिन्न देशों के तेज़ी से जुड़ने का संकेत देती है। यह अधिकतर पूंजी उत्पादों एवं सूचना की एक अधिक अवध गति के परिणामस्वरूप जन्म लेता है, जो कि न सिर्फ़ अर्थव्यवस्था को बल्कि जैसा कि पहले भी कहा गया राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरण संबंधी रणक्षेत्रों को भी प्रभावित करता है। अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति शास्त्र, समाजशास्त्र आदि अनेक शास्त्र विधाएं भूमंडलीकरण की संकल्पना का विस्तृत वर्णन एवं परिभाषा करने के लिए विभिन्न मानदण्ड अपनाती है। एन्टॅनी गिडन, एक समाजशास्त्री ने भूमंडलीकरण को विश्वव्यापी सामाजिक संबंधों के तीव्रीकरण के रूप में परिभाषित किया है, जिसके माध्यम से सुदूर स्थान आपस में इस प्रकार जुड़ जाते हैं कि एक स्थान में होने वाली घटनाएं मीलों दूर किसी अन्य स्थान पर होने वाली प्रक्रिया से प्रभावित होती हैं और ये एक दूसरे को प्रभावित करते हैं (गिडन 2000)। डेविड हैन्डरसन (1999), एक अर्थशास्त्री, भूमंडलीकरण को एक ऐसे दृष्टांत के रूप में लेते हैं जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय रूप से जुड़े हुए बाज़ार दो शर्ते पूरी करते हैं : (i) माल, सेवाओं, श्रम एवं पूंजी का निर्बाध संचलन निवेशों और उत्पादनों के लिहाज से एक सकल बाज़ार के रूप में सामने आता है, और (ii) विदेशी निवेशकों के साथ-साथ विदेशों में कार्यरत स्वदेशवासियों को भी पूर्ण राष्ट्रीय सम्मान दिया जाता है, जिससे आर्थिक रूप से उन्हें विदेशी नहीं कहा जाता है। मेघनाद देसाई (2004) के अनुसार भूमंडलीकरण दुनिया भर में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं का बढ़ना परस्पर अन्योन्याश्रय संबंध एवं एकीकरण है।

किनाइची ओमी की उक्ति "सीमाहीन संसार" क्रांतिक प्रगति एवं आधुनिकता के साथ-साथ परंपरागत राष्ट्र राज्य के दबावों से परे जीवन का भाव भी दर्शाती है, जो कि भूमंडलीकरण विषयक अधिकांश लेखन को अनुप्राणित करती है (ओमी 1990)। रिचर्ड आ'ब्रियन (1992) के अनुसार भूमंडलीकरण अनिवार्दतः अन्तर्राष्ट्रीय, बहुराष्ट्रीय, अपतरीय एवं भूमंडीय कार्यकलापों के तालमेल की ओर संकेत करता है और इसमें घरेलू से भूमंडीय की ओर व्यापक प्रगति शामिल होती है। मैल्कम वॉटर्स (1995) को एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में लेते हैं जिसमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं पर भूगोल के अवरोध पीछे हट जाते हैं और जिसमें लोग उत्तरोत्तर इस बात से भिज्ञ हो जाते हैं कि ये अवरोध दूर हो रहे हैं। उसके

MAADHYAM IAS

अनुसार भूमंडलीकरण का महज अर्थ है वृहतर सुसंबद्धता और सीमाओं को तोड़ना। शोल्ते (1999) भी भूमंडलीकरण को एक विसीमान्तीकरण प्रक्रिया और भूमंडलीय संबंधों को अधिराष्ट्रीय मानते हैं। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार भूमंडलीकरण का अनिवार्यतः अर्थ है मानव कार्यकलाप के सभी क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं वाणिज्य, शासन प्रणाली तथा वर्तमान कालीन नई संचार प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप गैर सरकारी, गुटबाज़ी (Lobbying) (गैलिगन व अन्य 2001) पीटर्स (2001)। वर्तमानकालीन भूमंडलीकरण को त्वरित भूमंडलीकरण कहते हैं। वर्तमान त्वरित भूमंडलीकरण आपस में गुत्थी की प्रवृतियों का मिला जुला रूप है। उनके अनुसार वर्तमान त्वरति भूमंडलीकरण एक पैकेज के रूप में प्रस्तुत होता है। जिसके साथ ही जुड़े होते हैं : (i) सूचनाबद्धीकरण अर्थात् सूचना एंव संचार प्रौद्योगिकियों की भूमिका (ii) लचीलापन यानी लचीले उत्पादन के लिए उत्पादन प्रणालियों में परिवर्तन, और (iii) राज्यों एवं क्षेत्रीयकरण का पुनर्विन्यास वह भूमंडलीकरण की एक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं

– विश्व के विभिन्न भागों की बढ़ती अन्तर्सबद्धता; उसे जागरूकता के रूप में देखते हैं

– बढती अन्तर्सम्बद्धता को मान्यता भूमंडलीकरण व्यक्तिपरवता के रूप में; और उसे परियोजना के रूप में भी देखते हैं (देखें बॉक्स 21.1)

– भूमंडलीकरण के विशिष्ट स्वरूपों का अनुसमर्थन एवं अनुशीलन, तथा भूमंडलीकरण को एक विशिष्ट दिशा में संचालित एवं परिचालित करने का प्रयास करते है।

बॉक्स 20.1: परियोजनाओं के रूप में भूमंडलीकरण

भूमंडलीकरण परियोजनाएं	**अभिकर्त्ता**
	रणनीतिक विश्ववाद सुपर पॉवर पॉलिटिक्स, नाटो
संघबद्ध विश्ववाद	अन्तर्राष्ट्रीय बैंक
	बहुराष्ट्रीय बैंक
	पराराष्ट्रीय उद्यम
आर्थिक एवं वित्तीय विश्व प्रबंधन	अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान
	विश्व व्यापार संगठन, जी–7
विकासात्मक विश्ववाद	विश्व बैंक संयुक्त राष्ट्र एजन्सियां
	(यू एन डी पी इत्यादि)
परिस्थितिकीय विश्ववाद	यू एन सी ई डी, विश्व पर्यावरण सुविधा
संचार माध्यम विश्ववाद	मीडिया इण्ड. सी एन एन
नारी अधिकारवादी विश्ववाद	भगिनीत्व विश्वव्यापी है (नैरोबी, बीज़िंग, बैरो अधिवेशन)
श्रम विश्ववाद	टाई एल ओ, मज़दूर संघ अन्तर्राष्ट्रीयवाद
इस्लामिक विश्ववाद	उल्लमा राजनीति
कैथोलिक विश्ववाद	बेरिकन (उदाहरणार्थ लूमन, 2000)
अखिलचर्ची विश्ववाद	अन्तधार्मिक बातचीत जैसा की विश्व चर्च परिषद में होता है
उपभोक्ता विश्ववाद (दैनिक विश्ववाद)	मैक डोनाल्डीकरण
प्रति विश्ववाद	स्थानीयवाद, नव संरक्षण वाद, नियोजन

स्रोत : पीटर्स 2001

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उपर्युक्त विवरण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भूमंडलीकरण एक बहुमुखी, बहुआयामी और वितक्षण दृश्यधरना है जिसका समकालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंधों की एक समग्र श्रृंखला पर अपना संभावित प्रभाव होता है। आइए, अब यह समझने का प्रयास करते हैं कि आखिर कौन सी बात भूमंडलीकरण की वर्तमान प्रक्रिया को अतीत की प्रक्रिया से अलग पहचान प्रदान करती है।

20.3 वर्तमान भूमंडलीकरण की विशेषताएं

द्वितीय विश्वयुद्ध से ही अनेक देशों द्वारा एक आर्थिक बाज़ारोन्मुखी दृष्टिकोण का सुविवेचित रूप से अपनाया जाना और आर्थिक गतिविधियों का बढ़ा अन्तर्राष्ट्रीयकरण देखा जा रहा है। यह प्रवृति अस्सी के दशक के आरंभ में महत्वपूर्ण रूप से बढ़ गई जब उद्योगीकृत देश, जैसे अमेरिका और इंग्लैंड ने आर्थिक कार्यकलापों के अधिक बाज़ार समन्वयन की ओर रूख कर लिया। समाजवादी देशों द्वारा अपना अवस्थान्तर गमन पूंजीवाद की ओर करते हुए यह प्रवृति नब्बे के दशक के आरंभ में अपनाई गई। इस अवधि में दुनिया भर में विकास के एक अनुकूल मार्ग के रूप में निर्यातोन्मुखी विकास रणनीति और व्यापार उदारीकरण (इसके विषय में हम इस इकाई के परवर्ती भाग के अलावा इस खण्ड की आगामी इकाईयों में भी पढ़ेंगे) का विश्वव्यापी अंगीकरण देखा गया, जो कि या तो स्वेच्छा से हुआ या फिर विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा बाध्य किए जाने से (पायकज एव फ़ौरें 2002)। इससे भूमंडलीकरण की गति काफ़ी हद तक बढ़ गई।

परिणामतः पूर्व दिनों के मुकाबले गत कुछ दशकों में विश्व उत्पादन में तीव्रतर वृद्धि हुई है। विश्व व्यापार विश्व उत्पादन की तुलना में महत्वपूर्ण रूप वहीं अधिक तेज़ी से बढ़ा है और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएं अधिक उदार और अधिक गहन रूप से समेकित हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी प्रवाह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के मुकाबले और भी तेज़ी से बढ़ा है। विचारों, प्रौद्योगिकियों एवं सांस्कृतिक सहज गुणों का आदान-प्रदान अपेक्षाकृत अधिक तेज़ी से हो रहा है। समसमायिक भूमंडलीकरण ने माल व सेवाओं के आदान-प्रदान को पहले से अधिक मात्रा में बढ़ाया है और इसने पहले से कहीं अधिक किस्मों की चीज़ों के विनिमय की ओर प्रवृत्त किया है। अनेक वस्तुएं एवं सेवाएं कभी व्यापार के दायरे में नहीं आती थीं अब वे विश्व व्यापार में नियमित प्रवेश पाती है। उदाहरण के लिए एक जापानी वास्तुकार फ्रांस में भवन निर्माण की अभिकल्पना कर सकता है; विपणन सेवाएं भारत से अमेरिका अथवा इंग्लैण्ड प्रेषित की जा सकती हैं, आदि। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों (ICTs) की उन्नति ने भौगोलिक दूरी को महत्वपूर्ण रूप से घटा दिया है। इण्टरनैट और मोबाइल फोन जैसी प्रौद्योगिकियों ने लोगों के लिए तत्काल विश्व के किसी भी कोने में बातचीत करना संभव बना दिया है। इसने ज्ञान समाज (इसके विषय में अधिक हम खण्ड VII में पढ़ेंगे) की संवृद्धि और विकास को तेज़ कर दिया है।

विश्वव्यापी रूप से लोगों के काम की तलाश में प्रवसन या देशान्तरण की घटनाएं भी बढ़ी हैं। भूमंडलीकरण के ताज़ा दौर में विश्व संगठनों की आपेक्षिक शक्ति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। एक ओर अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के साथ-साथ **विश्व व्यापार संगठन (WTO)** एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जो विश्व व्यापार नियंत्रित करता है – भी अधिक शक्तिशाली हो गए हैं। दूसरी ओर, विश्व संस्थाएं जिन्होंने अधिक मानव केंद्रित हितों पर ध्यान केंद्रित किया है, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ (UN) तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) की स्थिति पृष्ठभूमि में चली गई और कमजोर हो गई। यह परिवर्तन विश्व स्तरीय परिवर्तन के कारण हुआ।(क्वाक् एवं ईस्कन, 2001)। अधिक शक्तिशाली संस्थाओं (IMF, WTO, विश्व बैंक) ने अर्थव्यवस्थाओं में बाज़ारों के बढ़े प्रयोग

MAADHYAM IAS

एवं कम सरकारी हस्तक्षेप की ओर अग्रसर किया है ताकि राष्ट्रीय सरकारों का नियंत्रण कम होने से व्यापार एवं पूंजी निवेश का मुक्त प्रवाह हो। विश्व संस्थाओं के शक्ति में यह बदलाव मानव जीवन के हर पहलू में प्रवर होता है।

भूमंडलीकरण की चालू प्रक्रिया राष्ट्रीय नीतियों के वैश्वीकरण एवं राष्ट्रीय सरकारों की नीति निर्माण कार्ययोजनाओं में भी परिणत हुई है। आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं प्रौद्योगिकीय क्षेत्रों समेत राष्ट्रीय नीतियां जो कि अब तक किसी देश स्थित राज्यों एवं लोगों के अधिकार क्षेत्र में ही होती थीं। उत्तरोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय अभिकरणों एवं बड़े निजी निगमों के प्रभाव में आती जा रही हैं। इन अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के बढ़ते दबाव के चलते राष्ट्रीय सरकारों को अपनी अर्थव्यवस्थाएं पुनर्गठित करनी पड़ी हैं जो कि मुक्त व्यापार में अधिक भारी प्रयास और सामाजिक क्षेत्र में कम व्यय की अपेक्षा करती है। उन्हें करों में वृद्धि करनी पड़ी या फिर शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, सफाई व्यवस्था, आवासीय परिदान, ईंधन सार्वजनिक वितरण प्रणालियों एवं परिवहन आदि सामाजिक क्षेत्रों पर खर्चों को घटाकर सरकारी व्यय को कम करना पड़ा। राष्ट्रीय सरकारों को जन उपभोग की अनिवार्य वस्तुओं या जिन्सों पर प्रयोज्य लागू मूल्य प्रणाली को सभारत करना पड़ा। भूमंडलीकरण से जुड़ी बहिरंगताओं का भी पर्यावरण पर एक विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा, विश्व बुराइयों की एक नई श्रृंखला में जन्म लिया है, उदाहरण के लिए, भूतायन ओज़ोन परत का अवक्षय आदि।

भारत में भूमंडलीकरण प्रक्रिया को अतिरिक्त प्रेरणा उस वक्त मिली जब उससे अपनी अर्थव्यवस्था को एक बड़े संकट के चलते नब्बे के दशकारंभ में खोल दिया; यह संकट एक विदेशी मुद्रा संबंधी निर्णायक घटना के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था। जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को देय ऋणों का न चुका पाने के कगार पर ला खड़ा किया था। भारत ने एक नई आर्थिक नीति अपनाई जिसमें भूमंडलीकरण उदारीकरण और निजीकरण संबंधी मूल सिद्धांत शामिल थे। भारत सरकार द्वारा अपनाई गई इन नवोदारवादी नीतियों के दो मुख्य घटक रहे हैं – भारत के निजी क्षेत्र का उदारीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार। भूमंडलीकरण ने आयात शुल्क एवं निर्यात प्रतिबंधों में कमी लाकर, विदेशी निवेशों को बढ़ावा देकर और विदेशी प्रौद्योगिकी एवं कौशलों के मुक्त प्रवाह की अनुमति देकर आदि उपायों से भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया (बग्गी व अन्य 2001)।

MAADHYAM IAS

बाह्य व्यापार से प्रतिबंधों को हटाने से वस्तुओं के संचलन पर कुछ आन्तरिक प्रतिबंध भी हट गए हैं। साथ ही वर्तमान सरकारी लाइसेंसिंग प्रणाली (लोकप्रिय रूप से जिसे लाइसेंस परमिट राज कहा जाता है) में भी काफ़ी ढील मिली है। खासकर निजी प्रतिष्ठानों के साथ साथ अनेक उत्पादों से प्रतिबंध हटा लिया गया। लाइसेंस परमिट राज अब बीते कल की बात हो गई है। विदेश व्यापार महानिदेशक की भूमिका समाप्त प्राय हो गयी है और विदेशी माल व सेवाओं के मुक्त प्राय प्रवाह को अनुमति मिल गयी है। उर्वरक एवं कृषि को दिए जाने वाले परिदान बहुत ही कम अथवा समाप्त ही कर देने पड़े। एक ज़ोरदार गिरावट गरीबी उन्मूलन योजनाओं एवं स्वास्थ्य व शिक्षा हेतु आबंटन में देखी गई। साथ ही न सिर्फ विश्वश्व्यापी रूप से उत्पादन का समेकन हुआ है बल्कि आन्तरिक रूप से देश के भीतर भी ऐसा हुआ है। सार्वजनिक रूप सें स्वत्वप्राप्त कम्पनियों का, राज्य व समुदाय नियंत्रित संसाधनों का, अब तक आरक्षित रहे क्षेत्रों जैसे बैंकिंग एवं बीमा आदि का तेज़ी से निजीकरण होता देखा गया है (अधिक विस्तृत जानकारी के लिए इकाई 16 देखें)। श्रम संरक्षण का विनिमय हुआ है जिसने संविदा श्रमिकों की व्यापक संख्या में वृद्धि एवं उप-अनुबंधन की ओर प्रवृत्त किया है (सावविला एवं सिंहा, 2002)।

सोचिए और कीजिए 20.1

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? अपनी समझ पर आधारित भूमंडलीकरण के कोई चार प्रभाव बताएं जो आपके आस पड़ोस में रहने वाले आम आदमी की जीवनशैली पर पड़े हों।

20.4 भूमंडलीकरण के आर्थिक आयाम

इस इकाई के पूर्ववर्ती पाठांश में हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि भूमंडलीकरण एक जटिल और बहुआयामी दृश्यधरन्त है। यद्यपि यह मानव जीवन के सभी पहलुओं पर अपनी प्रभाव डालती है, भूमंडलीकरण का आर्थिक आयाम दूसरों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण और दूरगामी है। आर्थिक भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर के सबसे महत्वपूर्ण आयाम हैं: राष्ट्रीय आर्थिक अवरोधों का दूर होना; व्यापारिक, वित्तीय एवं उत्पादन संबंधी गतिविधियों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रसार; तथा पारदर्शीय निगमों एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की बढ़ती शक्ति। यहां इस पाठांश में भूमंडलीकरण के आर्थिक आयामों पर चर्चा उदारीकरण और निजीकरण के लिहाज से की जायेगी, साथ ही अन्य परिप्रेक्ष्य होंगे। व्यापार एवं सेवाओं का मुक्त प्रवाह, जिसमें शामिल हैं विश्व व्यापार संगठन का उद्‌गम एवं क्रियाशीलता, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का पतन; विदेशी सीधा निवेश, जिसमें शामिल हैं वित्तीय बाज़ार का वैश्वीकरण, पारदर्शीय समेकित उत्पादन एवं बहुराष्ट्रीय व पारदर्शीय कम्पनियों की क्रियाशीलता; निवेश में उदारीकरण; विश्व अर्थव्यवस्था का विकास; अधिसंरचनात्मक विकास; सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों (ICTs) का विकास; सेवाओं की बर्हिसूत्रण (outsourcing) तथा व्यापार संबंधी बौद्धिक सम्पदा अधिकार(TRIPs)।

क) उदारीकरण (Liberalisation)

सामान्यतया उदारीकरण का अर्थ होता है प्रतिबंधों में छूट प्रायः सामाजिक अथवा आर्थिक नीति के क्षेत्रों में। प्रायः ही यह शब्द आर्थिक उदारीकरण का अर्थ प्रदान करने के लिए प्रयोग किया जाता है, विशेष रूप से व्यापार उदारीकरण अथवा पूंजी बाज़ार उदारीकरण; इन नीतियों का उल्लेख प्रायः नव-उदारवाद के रूप में किया जाता है। भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर के साथ ही उत्पन्न नीति परिवेश में एक बड़ी नीति है आर्थिक नीति का उदारीकरण, जिसमें शामिल था बाज़ारों का खुलना और माल व सेवाओं के उत्पादन पर स्वामित्व एवं नियंत्रण के लिहाज से राष्ट्रीय सरकारों की घटती भूमिका। यह "उदारीकरण क्रांति" उन अनेक कार्यकलापों की वैद्यता के समक्ष चुनौती प्रस्तुत करती है जो कि आधुनिक (1914 के बाद) विश्व में राष्ट्र राज्य सरकारें किया करती थीं, जैसे राष्ट्रीकृत उद्योगों को चलाना, व्यापार विनिमय एवं मूल्य निर्धारण तथा वांछित आधारभूत ढांचे एवं सार्वजनिक सेवाओं पर एकाधिकार (स्ट्रेंज, 1996)।

पश्चिमी देशों में नव-उदारवादियों द्वारा समर्थित मुक्त बाज़ार आर्थिक नीतियों, जिन्हें अस्सी के दशक में ब्रिटेन में मार्गरेट थैचर द्वारा और अमेरिका में रोनाल्ड रीगन द्वारा व्यवहार में लाया गया था, शीघ्र ही अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं (IGIs) की औपचारिक नीति बन गई जिन्होंने दुनिया भर के देशों को वित्तीय सहायता अथवा ऋणों के अनुदान के लिए शर्तों के रूप में व्यापार एवं निवेश के क्षेत्रों में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के विनियमन एवं उदारीकरण पर ज़ोर देना शुरू कर दिया। चुंकि समकालीन विश्व में आर्थिक शक्तियों का कार्य व्यापार राष्ट्रीय सरकारों के नियंत्रण से परे होता है, नव उदारवादियों का आह्वान राज्य एवं जन-समाज के बीच संबंधों के बुनियादी पुनर्गठन के लिए है जो कि आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र में राज्य के साथ अव्यक्त रहे जिन पर कि बाज़ार शक्तियों की मुक्त गतिविधि का नियंत्रण होगा (बनर्जी, 2000)। उन्होंने मुक्त व्यापार का समर्थन दिया, जिसका आधुनिक प्रचलित

अर्थ है आयात शुल्कों, निर्यात उदारता, घरेलू उत्पादन रियायतों, व्यापार कोटा, अथवा आयात लाइसेंसों जैसे प्रतिबंधों के बिना किया जाने वाला व्यापार अथवा वाणिज्य। मुक्त व्यापार हेतु बुनियादी तर्क "तुलनात्मक लाभ" के आर्थिक सिद्धांत पर आधारित हैं जिसका अर्थ है हर क्षेत्र को इस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि वह सबसे सस्ता और कुशलतापूर्वक क्या उत्पन्न कर सकता है, और उसे अपने उत्पादों का विनिमय उनसे करना चाहिए जो आर्थिक रूप से इन्हें उत्पन्न करने में कम सक्षम हों।

भारत में, भूमंडलीकरण की प्रति ने उस वक्त जोर पकड़ा जब तत्कालीन केन्द्र सरकार (नरसिंहा राव सरकार) ने जून 1991 में आर्थिक उदारीकरण पर अभिलक्षित अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ओर विश्व बैंक के आदेश पर सुधारों का पैकेज लागू किया। भारत में उदारीकरण योजना की जड़ें दरअसल सत्तर के दशक के अंत में जनता सरकार की पहल में और इंदिरा गांधी द्वारा लागू अस्सी के दशक के आरंभ में औद्योगिक नीति सुधारों में और अंततः अस्सी के दशक मध्य में राजीव गांधी सरकार द्वारा चलाई गई नई आर्थिक नीति में तलाशी जा सकती है। परन्तु ये शुरुआती पहलकारियां और उनका क्रियान्वयन 1991 में नरसिंहा राव की पहलकारी के मुकाबले धीमा ही रहा, जो कि अधिक महत्त्वाकांक्षी और अर्थव्यवस्था को राज्य हस्तक्षेप से मुक्त करने पर अभिलक्षित थी।

श्राव सरकार द्वारा लागू किए गए सुधारों में शामिल थेः रुंपये के अवमूल्यन पर अंकुश लगाते अल्पावाही स्थिरीकरण उपाय, सरकारी खर्च पर रोक (उवर्रकों एवं पैट्रोलियम पर रियायत घटाकर) वित्तीय घाटा कम करने हेतु एक योजना तथा भारतीय बाज़ारों हेतु विदेशी पूंजी के प्रवाह प्रतिबंधों का हटाया जाना। मध्यम एवं दीर्घ अवधि के संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम में शामिल थी। उपायों की एक श्रृखंला जो कि व्यापार के उदारीकरण एवं उद्योग के विनिमयन पर अभिलक्षित थी, साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र की परिधि सीमित करने पर थी जिसमें शामिल थेः लाभ कमाने वाले व्यापार समवायों की इक्विटियों अर्थात् साधारण हिस्सों (नियत ब्याजरहित) में विनिमेश और घाटे में चल रहे व्यापार समवायों के लिए परिदानों की समाप्ति, वित्तीय क्षेत्र एवं कर प्रणालियों संबंधी सुधार तथा विदेशी पूंजी प्रवाहों को सरल बनाने के उपाय(बायर्स 1998)।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

भारत सरकार की उदारीकरण नीति के प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं

- आर्थिक शासन प्रबंध में राज्य की भूमिका में आयी गिरावट
- कुछ आर्थिक क्षेत्रों से राज्यों का हाथ खींचना और उसके स्थान पर निजी क्षेत्र का आना
- बुनियादी और मुख्य उद्योगो, बैंकिंग, बीमा व अन्य सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों में सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्रों का अवनति पर होना
- शिक्षा आवास एवं स्वास्थ्य जैसी जन सताज सेवाओं के प्रावधान में राज्य की भूमिका का घटना और
- निजी क्षेत्र की व्यायवतर भागीदारी के माध्यम से भावी विकास एवं तदनुसार वस्तु विनिमय हेतु बाज़ार पर अधिक निर्भरता।

ख) निजीकरण (Privatisation)

अस्सी के दशक में अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के साथ ही इंग्लैण्ड और अमेरिका के नव-उदारवादियों ने उद्योगों एवं सेवाओं के निजीकरण की भी वकालत की ताकि उद्यमों को विश्व अर्थव्यवस्था की चुनौतियों का सामना करने हेतु अधिक प्रतिस्पर्धा और कुशल बनाया जा सके। इंग्लैंड में अस्सी के दशक तक 80 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र का निजीकरण किया जा चुका था (मण्डल 1993)। निजीकरण का काफ़ी हद तक अर्थ था सार्वजनिक स्वत्व वाली

परिसम्पतियों को चरणबद्ध रूप से निजी स्वामित्वों को बेच डालना। निजीकरण निम्नलिखित तकनीकों में से किसी एक अथवा सभी को अपनाकर किया जा सकता है।

- शेयरों को सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत करना – पब्लिक लिमिटेड कम्पनी के सभी अथवा कुछ शेयरों को सार्वजनिक बिक्री के लिए रखा जाना।
- शेयरों की निजी बिक्री – राज्य स्वत्वाधिकार वाले उद्यम के सभी या कुछ शेयरों को निजी व्यक्ति अथवा क्रेता समूह को बेचा जाता है।
- राज्य स्वत्वाधिकार वाले उद्यम में नया निजी निवेश – निजी शेयर निर्गमन को निजी क्षेत्र अथवा जनता द्वारा आर्थिक सहायता दिया जाना।
- निजी क्षेत्र का सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश – निजी समूहों को सार्वजनिक क्षेत्र हेतु आरक्षित क्षेत्रों में जाने की अनुमति, जैसे भारत में विद्युत एवं दूर संचार क्षेत्र।
- परिचालन एवं संपोषण के लिए सेवाओं एवं उपयोगी वस्तुओं का अनुबंध निजी परिचालकों अथवा ठेकेदारों से किया जाना, जबकि स्वत्वाधिकार सरकार के पास ही रहता है। जैसे जलापूर्ति, अपजल उपचार आदि।
- सरकारी अथवा राज्य उद्यानों की परिसम्पत्तियों की बिक्री निजी बिक्री के रूप में न कि शेयरों के रूप में।
- कम्पनियों की गौण इकाइयों का पुनर्गठन अथवा विखंडीकरण।
- प्रबन्धन/कर्मचारी बाई आउट – इसमें प्रबंधन अथवा कर्मचारी वर्ग संपूर्ण खरीद कर नियंत्रण ब्याज उपार्जित करता है जिसमें कि सरकार द्वारा दिए गए ऋण पर शेयर खरीदे जाते हैं।

अर्थव्यवस्था के निजीकरण का लक्ष्य लेकर भारत सरकार ने नब्बे के दशक में विभिन्न कदम उठाये। उद्योगों के विनियमन हेतु लाइसेंस राज की समाप्ति, एकाधिकार एवं नियामक व्यापार पद्धति (MRTP) विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) जैसे कानूनों को खत्म करना, आदिवासी भारतीयों के लिए शत प्रतिशत साधारण शेयरों को मंजूरी, अनुमोदन समितियों को गत्यानुकूल बनाना, सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रमों (PSUs) में विनिवेश तथा सहयोगात्मक वैज्ञानिक व्यवस्था लाने के लिए औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्गठन बोर्ड की इकाइयों का संदर्भ जैसी पहलकारियों का अभिप्राय भारतीय अर्थव्यवस्था का अधिकाधिक निजीकरण ही था।

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

ग) विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) और वित्त बाज़ारों का वैश्वीकरण

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अर्थ है उत्पादन की हिस्सेदारी के साथ प्रतिफलित किसी विदेशी पक्षकार द्वारा उत्पादन में निवेशित धन। उदारीकरण के तीनों महत्वपूर्ण पहलुओं – वित्त, व्यापार एवं निवेश – में वित्तीय/आर्थिक उदारीकरण सर्वाधिक सुनिर्दिष्ट है। इस भूमंडलीकरण के युग में आर्थिक वैश्वीकरण उदारीकरण देखा गया है। आर्थिक वैश्वीकरण और वित्तीय उदारीकरण पूंजी के संचालन पर ही केंद्रित हैं जिसका कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश एक मुख्य रूप है।

अस्सी के दशकारंभ से ही विदेशी प्रत्यक्ष/सीधा निवेश प्रवाह विश्व उत्पादन अथवा व्यापार या फिर घरेलू निर्धारित निवेश के मुकाबले काफ़ी तेज़ी से बढ़ता रहा है। नब्बे के दशक में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में बहुत अधिक वृद्धि हुई। अस्सी के दशक के अंत में इस निवेश की शुरुआती लहर प्राय पूरी तरह विकसित देशों में ही थी। (कुल 80 प्रतिशत से अधिक) और ये मुख्य रूप से पांच शीर्ष विकसित देश थे (दो तिहाई से भी अधिक), नब्बे के दशक में

विकासशील देश भी काफ़ी विदेश सीधा निवेश आकर्षित करने लगे और इस निवेश की प्रमाणिय भौगोलिक विस्तार देखा गया है। नब्बे के दशक के आरंभ में विदेशी सीधा निवेश का विकासशील देशों की ओर प्रवाह आपेक्षिक रूप से बढ़ा है जिसका औसत 1991-95 में कुल 32 प्रतिशत रहा जबकि 1981-90 में यह मात्र 17 प्रतिशत था। इसका कारण था नब्बे के दशक के अधिकांश विकासशील देशों में विदेशी निवेश का उदारीकरण (खोर 2001)। प्रत्यक्ष निवेश के लिए निजी पूंजी प्रवाह और विकासशील देशों के लिए निवेश सूची लागत 1990 में 25 अरब डॉलर से बढ़कर 1997 में 150 अरब डॉलर हो गयी (पारिख 1999)। साथ ही इस अवधि में इस निवेश के माध्यम से विश्व बाज़ारों के अंतर्राष्ट्रीय संभेदन वाले जगत् में गुणात्मक एवं यात्रात्मक परिवर्तन भी देखे गए हैं। यूरोपीय संघ के राष्ट्रत्रय, जापान एवं उत्तर अमेरिका के भीतर निवेश प्रवाहों द्वारा अभिलक्षित अस्सी के दशक का विदेशी सीधा निवेश प्रस्फुटन नब्बे के दशक में गैर ओ ई सी डी अर्थात आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन देशों में भी पहुंच गया। इन प्रवाहों का श्रेय पाने वाले थे : एशियाई देश (चीन सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैण्ड इण्डोनेशिया) लैटिन अमेरिकी देश विशेष रूप से (मैक्सिको, चिली, अर्जैन्टाइना और ब्राज़ील) तथा पूर्वी यूरोपीय देश। इस काल में विश्व स्तर पर वृहद नैगम संधियों की वृद्धि भी हुई। विदेशी सीधा निवेश मुख्य रूप से बाज़ार प्रेरित ही रहे और वे सेवा क्षेत्र पर छाये रहे।

तथापि विदेशी सीधा निवेश का प्रवाह विकासशील देशों तक में एक समान नहीं था। इस निवेश का काफ़ी हिस्सा केवल कुछ ही विकासशील देशों पर केंद्रित रहा। अल्पतम विकसित देश विशेष रूप से अपनी नीतियों को उदारीकृत करने के बावजूद केवल थोड़ा सा ही विदेशी सीधा निवेश प्राप्त कर पा रहे थे। इन निजी पूंजी प्रवाहों के कुछ नकारात्मक प्रभाव भी पड़े। वित्त बाज़ारों एवं प्रणालियों तथा वित्त प्रवाहों की विशाल राशियों के बीच अन्तर्सम्बद्धता की वजह से इस व्यवस्था की भंगुरता एवं भेदता के विषय में एक व्यापक और बढ़ती चिन्ता दिखाई पड़ती थी। कुछ महत्वपूर्ण हिस्सों में अथवा स्वयं सामान्य प्रणाली में ही एक बिगाड़ पैदा हो जाने का खतरा था क्योंकि विश्व के एक हिस्से में अथवा व्यवस्था में ही किसी दोष के उत्पन्न हो जाने से व्यापक अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ सकते थे। ये चिन्ताएं पूर्व एशियाई वित्त संकट द्वारा उजागर की गई जो कि 1997 के उत्तरार्ध में शुरू हुआ और द्वितीय विश्वयुद्धोपरांत हाल में उग्रतम वित्तीय हलचल एवं आर्थिक मंदी को जन्म देता हुआ, रूस, ब्राज़ील व अन्य देशों में भी फैल गया।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

इसके बावजूद नब्बे के दशक में विश्वभर में एक सर्वसम्मति शनैः शनैः उभरी कि विदेशी पूंजी को यदि उचित रूप से प्रयोग किया जाए तो यह आर्थिक विकास में सार्थक रूप से योगदान दे सकती है। भारत के साथ भी यही बात थी। भारत में विदेशी सीधा निवेश स्वीकृतियों का सबसे बड़ा भाग वांछित आधारभूत ढांचे और मुख्य क्षेत्रों में रहा है, जैसे बिजली, दूरसंचार, ऊर्जा अनुसंधान तथा रासायनिक एवं धातु उद्योग। भारत ने विदेशी सीधा निवेश स्वीकृत करने में एक केस दर केस दृष्टिकोण अपनाया। भारत ने विदेशी सीधा निवेश स्वीकृत करने में एक केस दर केस दृष्टिकोण अपनाया। भारत में विदेशी सीधा निवेश अनेक मोर्चों पर अन्य देशों के सापेक्ष भारत के मूल्यांकन पर निर्भर करता है। मुख्य तर्काधार हैं: राजनीतिक स्थिरता एवं सुधारों के विश्वसनीयता, अधि संरचना की स्थिति खासकर विद्युत परिवहन एवं संचार राष्ट्रीय नीति व्यवस्था सरकारी नीतियों के कार्यान्वयन में गति एवं पारदर्शिता, श्रम बाज़ार दशाएं तथा बौद्धिक संपदा अधिकार विषय (रे 2000)। भारत में विदेशी सीधा निवेश की अनुमति निम्न प्रकार के निवेशों के तहत दी जाती है।

- वित्तीय सहयोग के माध्यम से
- संयुक्त व्यवसायों एवं तकनीकी सहयोग के माध्यम से

- यूरो इश्यूज के मार्फ़त पूंजी बाज़ार के माध्यम से
- निजी नियोजनों एवं विशेष आबंटन के माध्यम से।

विदेशी प्रत्यक्ष निवेश कोई एक तरफ प्रक्रिया नहीं है। मुक्त बाज़ार व्यवस्था में भारतीय कंपनियां भी विदेशों में संयुक्त व्यवसायों के माध्याम से विश्वव्यापी होती जा रही हैं। वर्ष 2001-02 में भारत का निर्यात 3257.2 करोड़ तक चला गया था। अनेक भारतीय कंपनियों ने अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर सम्मानित खिलाड़ियों का रूप ले लिया है। कृषि उत्पाद, समुदाय उत्पाद, अनाज, तिलहन, चाय व कॉफ़ी कुछ प्रमुख उत्पाद हैं जो भारत निर्यात करता रहा हैं।

सोचिए और कीजिए 20.2

दो उदाहरणों की मदद से भारतीय संदर्भ में विदेशी-प्रत्यक्ष निवेश को स्पष्ट करें। स्थानीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के तीन-तीन लाभ व हानियों की सूची बनाएं

घ) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नियामक निकाय – विश्व व्यापार संगठन (WTO)

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) – अन्तर्राष्ट्रीय परिसमापकता (liquidity) में मददगार एक विश्व-निकाय; और विश्व बैंक – एक कार्यक्षेत्रीय परिधिय संस्थान (देखें बॉक्स 20.1) की तर्ज़ पर एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन स्थापित करने का प्रस्ताव कर विश्व व्यापार को नियमित करने के लिए दुनिया भर के अनेक देशों द्वारा कदम उठाए गए। जब अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन अनेक कारणों से मूर्तरूप नहीं ले सका तो दुनिया भर के 23 राष्ट्र व्यापार-वार्ताएं जारी रखने पर सहमत हो गए जो कि अन्ततोगत्वा सीमा शुल्क एवं व्यापार विषयक आम सहमति (GATT) में सम्मिलित कर ली गई जो फिर औपचारिक रूप से अक्तूबर 1947 में अस्तित्व में आया। इसने द्वितीय विश्वयुद्धोपरांत काल में व्यापार की भूमिका बढ़ा दी। इसी के साथ कुछ तो स्वायत्त नीतियों और कुछ 'गैट' के तहत बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं के सिलसिले के कारण विकासशील और विकसित दोनों ही देशों में सीमा शुल्क अवरोध धीरे-धीरे दूर हो गए। गैट समझौतों के आठवें दौर में जिसे लोकप्रिय रूप से 'उरूग्वे दौर' कहते हैं, अनुबंधकारी पक्षकार बहुपक्षीय व्यापार समझौतों को लागू करने के लिए विश्व व्यापार संगठन की स्थापना के लिए सहमत हो गए।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 20.2: ब्रैटन वुडन संस्थाएं

ब्रैटन वुड्ज़ संस्थाएं हैं विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष। विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में हुआ। इनकी स्थापना जुलाई 1944 में ब्रैटन वुड्ज़, न्यू हैम्पशाइर, अमेरिका में 43 देशों की एक सभा में हुई। ये मुख्य विशेषज्ञों की एक तिकड़ी के विचारों पर आधारित थीं – अमेरिकी राजस्व विभाग सचिव हैनरी मॉर्गेन्थ्, उनके मुख्य आर्थिक सलाहकार हैरी डैक्सटर व्हाइट और ब्रिटिश अर्थशास्त्री जॉन मेनार्ड कीन्स। ये व्यापार एवं आर्थिक सम्बन्धों के क्षेत्र में सहमतिजन्य निर्णयन् एवं सहयोग की अवधारणाओं पर आधारित एक युद्धोपरांत आर्थिक व्यवस्था लाना चाहते थे। सहबद्ध देशों, विशेषतः अमेरिका और ब्रिटेन के नेताओं द्वारा यह महसूस किया गया कि पूर्वकालीन विश्व आर्थिक मंदी और व्यापार संघर्षों के अस्थिरकारी प्रभावों से बचने के लिए एक बहुपक्षीय ढांचा तैयार किए जाने की आवश्यकता है। अब उद्देश्य था युद्धोंपरांत छिन्न-भिन्न अर्थव्यवस्था के पुनर्निमाण में मदद करना और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देना। मूल ब्रैटन वुडज़ समझौते में एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन हेतु योजनाएं भी शामिल थीं परन्तु ये 1995 में विश्व व्यापार संगठन के विरचन तक प्रसुप्तावस्था में हीं रहीं।

स्रोत : **(http: //www.brettonwoodsproject.org)**

विश्व व्यापार संगठन जो 'गैट' के स्थान पर 1 जनवरी 1995 को अस्तित्व में आया, राष्ट्रों के बीच व्यापार के विश्वव्यापी नियमों को तय करता एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है। 'गैट' एक द्विपक्षीय समझौता था, जबकि विश्व व्यापार संगठन एक संगठनात्मक व्यवस्था है जिसका अर्थ है संगठन का कोई भी निर्णय सभी सदस्य राष्ट्रों पर प्रयोज्य होगा। इस संगठन का कथित उद्देश्य है अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संबंध में नियम तय करने व लागू करने संबंधी एक विश्व निर्णयन प्राधार प्रदान करना। इसका सचिवालय जेनेवा में स्थित है। इसका मुख्य कार्य है यह सुनिश्चित करना कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार निर्विध्न पूर्वानुमेय रूप से और यथासंभव स्वतंत्र रूप से चलता रहे। वर्ष 2005 में विश्व व्यापार संगठन की सदस्य संख्या 148 देश हो गई जो विश्व व्यापर के 97 प्रतिशत का योगदान करते हैं तथा अधिकाधिक देश इस संगठन के सदस्य बनने को बाध्य किए जाते हैं। निर्णय विश्व व्यापार संगठन के संपूर्ण सदस्य वर्ग द्वारा लिए जाते हैं और समझौतों को हर एक सदस्य राष्ट्र की संसद द्वारा अभिपुष्ट किया जाना होता है। संगठन का शीर्षस्तरीय निर्णयन निकाय है 'मन्त्रीय सभा' जिसकी बैठक दो वर्षों में कम से कम एक बार अवश्य होती है। पंचम विश्व व्यापार संगठन मंत्रीय सम्मेलन सितम्बर 2003 में केनन मैक्सिको में हुआ था।

विश्व व्यापार संगठन के मुख्य कार्य हैं :

- व्यापार समझौतों को लागू करना;
- व्यापार समझौतों के लिए एक मंच कायम करना;
- व्यापार विवादों को निपटाना;
- राष्ट्रीय व्यापार नीतियों का विवेचन करना;
- विकासशील देशों के लिए तकनीकी सहायता और प्रशिक्षण उपलब्ध कराना; और
- अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ सहयोग करना।

MAADHYAM IAS

विश्व व्यापार संगठन विश्व व्यापार को नियंत्रित करने में एक महत्त्वपूर्ण अभिकर्ता के रूप में उभरा है। यह एक विश्व व्यापार नियामक निकाय रखने की वजह से अधिक महत्वपूर्ण हो गया क्योंकि नब्बे के दशक में व्यापार उदारीकरण क्रमशः बढता गया। विश्व सकल घरेलू उत्पाद में विश्व निर्यातों का भाग 1950 में लगभग 6 प्रतिशत से 1973 में 12 प्रतिशत और 1992 में 16 प्रतिशत तक बढ़ गया (नवंबर 1997)। विश्व व्यापर संगठन समझौते मुख्य रूप से माल, सेवाओं, बौद्धिक संपदा, विवाद संमजन एवं नीति सर्वेक्षण में होते हैं। माल में होने वाले व्यापार समझौतों में सभी पहलू शामिल होते हैं। जैसे निम्न सीमा शुल्क दरें व अन्य व्यापार अवरोध साथ ही विशिष्ट क्षेत्र जैसे कृषि एवं बुना कपड़ा तथा विशिष्ट मुद्दे जैसे राज्य व्यापार, उत्पाद मानक परिदान एवं कूड़ा करकट जमा करने के खिलाफ़ कार्यवाई। सेवाक्षेत्र में शामिल हैं: बैंक, बीमा कंपनियां दूर संचार पर्यटन संचालक, होटल श्रृंखलाएं एवं परिवहन कंपनियां। ये सब अब पहले से अधिक निर्वाध और निष्पक्ष रूप से व्यापार करते हैं। बौद्धिक संपदा समझौते का अर्थ है विचारों एवं रचनात्मकता में व्यापार एवं निवेश हेतु नियम प्रस्तुत करना। विश्व व्यापार संगठन प्रणाली देशों को प्रोत्साहित करती है कि वे अपने मतभेद सलाह मशवरे से ही निबटाएं। देश अपने विवादों को संगठन के समक्ष भी लाते हैं यदि उन्हें लगता है कि समझौतों के तहत उनके अधिकारों का अति क्रमण हो रहा है। संगठन का व्यापार नीति सर्वेक्षण तंत्र हर एक देश की राष्ट्रीय नीतियों में पारदर्शिता बढ़ाने का प्रस्ताव करता है (अधिक विस्तृत जानकारी के लिए देखें इकाई 23)।

विश्व व्यापार संगठन नियमों की एक श्रृंखला प्रस्तुत करता है जो कि "व्यापार संबंधी निवेश उपायों" (TRIMs) का निषेध करने हेतु अभिकल्पित है, जिसमें वे अनेक तरीके शामिल हैं जिनसे राष्ट्रीय सरकारें उद्योगों एवं व्यापार समवायों के विकास में सहायतार्थ उद्योग एवं

निवेश नीतियां बनाने का प्रयास कर सकती हैं। "व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा" के संबंध में संगठन के नियम प्रतिलिप्याधिकार एवं बौद्धिक संपदा अधिकारों के क्षेत्र में अभूतपूर्व संरक्षण प्रदान करते है।

संगठन के साथ राष्ट्रीय सरकारों के वर्तमान समझौतों में सदस्य राज्यों के विकास एवं नीतियों से अपेक्षा की जाती है कि उन्हें परिवर्तित कर उसी की विचारधारा में लाया जाये। अननुपालन का परिणाम व्यापार दंडों में परिलक्षित हो सकता है जो कि विवाद समाधान प्रणाली के माध्यम से किसी देश के निर्यातों के विरूद्ध लगाये जाते हैं। तदनुसार विश्व व्यापार संगठन को यह प्रणाली एक सशक्त बाध्यवरण तंत्र प्रदान करती है। इस प्रकार राष्ट्रीय सरकारों को संगठन के विस्तार क्षेत्र में रहकर ही मुद्दों की व्यापक श्रृंखला में आत्म नियंत्रणों एवं दायित्वों का पालन करना पड़ता है। संगठन की कार्यपरकता बाज़ार के सशक्तिकरण अथवा राज्य हेतु अल्पायाम भूमिका तथा तीव्र उदारीकरण को बढ़ावा देती है।

भारत 'गैट' और उसके परवर्ती विश्व व्यापार का एक संस्थापक सदस्य है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रबंधन में लिप्त एक उत्तरोत्तर नियम आधारित व्यवस्था में भारत की भागीदारी से दावा किया जाता है कि अधिक स्थिरता और पूर्वानुमेयता सुनिश्चित हुई है, जो कि अधिक व्यापार एवं समृद्धि की ओर ले जा सकती है। संगठन के सदस्य के रूप में भारत स्वतः ही सभी संगठन राष्ट्रों हेतु अपने निर्वातों के लिए सर्वाधिक अनुकूल राष्ट्र एवं राष्ट्रीय व्यवहार का लाभ उठाता हे (विस्तृत विवरण के लिए देखें इकाई 23)। भारत ने वर्ष 2005 में संगठन मानव बौद्धिक संपदा नियमों को लागू करने के लिए आवश्यक वैधानिक परिवर्तन किए, हालांकि यह शुरुआत में विरोध दर्शाने के बाद ही हुआ।

ड) बहुराष्ट्रीय एवं पराराष्ट्रीय कंपनियां और उनकी कार्यपरकता

अर्थव्यवस्थाओं और वित्त बाज़ारों के विनियमन ने राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर वित्तीय लेन देनों में तेज़ बढ़ोतरी की ओर अग्रसर किया। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय अभिकर्त्ताओं की एक नई श्रृंखला सामने लेकर आयी है – बहुराष्ट्रीय नियम (MNCs)। इन निगमों का उल्लेख प्रायः निगम दैत्यों के रूप में किया जाता है। ऐसे कुछ निगमों की वार्षिक व्यापार मात्रा तो कुछ देशों के संयुक्त सकल घरेलू उत्पाद के बराबर ही है (1994)। इन संस्थाओं की विभिन्न देशों में एक साथ आर्थिक गतिविधि होती है। नब्बे के दशक में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने दुनियाभर में बहुराष्ट्रीय निगमों की गतिविधियों को तेज़ कर दिया।

MAADHYAM IAS

यह प्रक्रिया 20वीं शताब्दी की ओर अग्रसर होते हुए और तेज़ हो गई, जिसका परिणाम हुआ परादेशीय निगमों द्वारा आर्थिक संसाधनों एवं सत्ता का वृहत्तर संकेन्द्रक एवं एकाधिकारता, एक प्रक्रिया जिसे मार्टिन खोर (2001) पराराष्ट्रीयकरण(transnationalisation) की संज्ञा देते हैं। यहां कम से कम पराराष्ट्रीय निगम विश्व आर्थिक संसाधनों, उत्पादन एवं बाज़ार शेयरों का एक वृहत्तर और तेज़ी से बढ़ते हिस्से पर अख्तियार करते जा रहे हैं। जहां एक बहुराष्ट्रीय कंपनी एक ही उत्पाद के बाज़ार पर अधिपत्य कायम किया करती थी, एक बड़ी पराराष्ट्रीय कंपनी अब प्रतीकात्मक ढंग से एकाधिक उत्पादों, सेवाओं एवं क्षेत्रों में उत्पादन अथवा व्यापार करती हैं। विलीनीकरणों और अधिग्रहणों के माध्यम से ये अल्प से अल्पतर पराराष्ट्रीय परादेशीय निगम (TNCs) अब विश्व बाज़ार का वृहद से वृहत्तर हिस्से पर नियंत्रण रखते हैं, चाहे वह उपभोक्ता वस्तुएं हों, विनिर्माण कार्य हों या फिर सेवाएं।

बॉक्स 20.3 : बहुराष्ट्रीय अथवा पराराष्ट्रीय कंपनियां

बहुराष्ट्रीय कंपनियां कार्य प्रणालियों की प्रकृति पर निर्भर करते हुए जिन्हें पराराष्ट्रीय निगम भी कहा जाता है, आधुनिक वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलक्षण हैं। एक बहुराष्ट्रीय कंपनी को एक ऐसी कंपनी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो

अनेक देशों में काम करती है और उसकी उत्पादन अथवा सेवा सुविधाएं उसके अपने मूल देश से बाहर होती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों का इतिहास : वर्ष 1600 में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना के साथ आरंभ हुआ का जा सकता है। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति से ही ऐसी कंपनियों की तेज़ी से बढ़कर होती रही है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के अनुभागों के अनुसार, अपने मुख्यालय देश से बाहर प्रत्यक्ष निवेशों वाली 5000 कंपनियां कार्यरत हैं। उनमें से 100 सबसे बड़ी कंपनियां सीमा पर परिसम्पत्तियों के लगभग 40 प्रतिशत का लेखा रखती हैं संभव है कि वे विश्व व्यापार के लगभग एक चौथाई का लेखा रखती है। अधिकांश व्यापार अन्तःकंपनी व्यापार होता है, यानी एक ही कंपनी की विभिन्न शाखाओं के बीच होता है। इस बात के अनेक कारण हैं कि क्यों कंपनियां समुद्र पार व्यापार में निवेश कर बहुराष्ट्रीय बनने का निर्णय ले लेती हैं। उसमें उत्पादन सुविधाओं को बाज़ार अथवा कच्चे माल के स्रोत के नज़दीक ही रखने की इच्छा निहित हो सकती है ताकि परिवहन लागतों को कम किया जा सके। यदि किसी देश में आयातित माल पर ऊंचे सीमा शुल्क लगते हैं तो उसी देश में कारखाना लगा दिए जाने से उस बाज़ार हेतु सीमा शुल्क मुक्त सुगमता प्राप्त कर लेने के रूप में देखा जा सकता है।

यद्यपि बहुराष्ट्रीय कंपनियां सभी व्यापार समकायों की ही भांति, मुख्य रूप से बनाने की इच्छा से ही प्रेरित होती हैं, विकासशील देशों में उनके द्वारा उत्पादन सुविधाओं की स्थापना ऐसे देशों के लोगों के लिए अनेक तरीको से लाभकारी भी हो सकती है और हानिकारक भी। यह लाभकारी हो सकती है। उदाहरण के लिए (क) रोज़गार/नौकरियों का सृजन, (ख) उन्नत प्रौद्योगिकी प्रक्रिया का सूत्रपात करने और उसके द्वारा श्रम संबंधी एवं पर्यावरण संबंधी उच्च मानक स्थापित करने (ग) करों का भुगतान कर राजस्व प्रदान करने, आपके लिहाज से। यह इन तरीकों से हानिकारक हो सकती है: (क) मेज़बान सरकारों की नीतियों को प्रभावित करके, (ख) अधिक से अधिक लाभ कमाने के लिए असुरक्षित एवं शोषणकारी श्रम दशाएं प्रदान करके (ग) अपने लाभ का मेज़बान राष्ट्र में पुनर्निवेश करने की बजाय स्वदेश भेज देने से, (घ) छोटे पैमाने के कंपनियों को कारोबार से बाहर कर देने से (ड) करों की चोरी करके, (च) मानवाधिकार का उल्लंघन करने और पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने से, आदि।

स्रोतः (http // www.curriculamon line.gov.uk)

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उदारीकरण, निजीकरण व अन्य व्यापार से जुड़े पहलुओं के अलावा कुछ अतिरिक्त आर्थिक दृष्टिकोण भी हैं जो भूमंडलीकरण प्रक्रिया के प्रभाव को प्रकट करते हैं आइए, उनमें से कुछ पर चर्चा करें।

च) अधिसंरचना विकास (Infrastructure Development)

भूमंडलीकरण के वर्तमान दौर ने दुनिया भर के देशों को वांछित आधारभूत ढांचा अर्थात् अधिरचना के तीव्रतर और बेहतर विकास का आश्वासन दिया कि आयात व निर्यात पर निर्भर उद्योगों के कष्ट कम होंगे और वे विश्व - बाज़ार में अधिक स्पर्द्धेय हो सकेंगे। उदाहरण के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय रूप से स्पर्द्धेय बनने के लिए भारत को पत्तन सुविधाएं विकसित करने की आवश्यकता थी। नब्बे के दशक मध्य तक भारतीय बंदरगाहों की कुल निर्वहन क्षमता 19 करोड़ टन व्यापार वार्षिक ही थी, जो कि सिंगापुर जैसे शहर के किसी भी बंदरगाह की तुलना में काफ़ी कम था। साथ ही, माल डिब्बों की उठाई धराई दरें भी अन्तर्राष्ट्रीय दरों के मुकाबले काफ़ी कम थीं (गॉर्डन 1997)। यह दर्शाता है कि भारत को विदेश व्यापार अधिक से अधिक आकर्षित करने के लिए सड़क निर्माण में, पत्तन सुविधाएं विकसित करने तथा विद्युत एवं दूर संचार क्षेत्र में व्यापक निवेश की आवश्यकता थी। नब्बे के दशक मध्य में भारत सरकार ने अधिरचना विकास में आगामी एक दशक में कुल 200 अरब डॉलर खर्च किए जाने का विचार बना लिया। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए सरकार ने निजी क्षेत्र से और

विदेशी निवेशकों से धन इकट्ठा किया और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने अपने विद्युत, दुरसंचार एवं परिवहन क्षेत्रों को विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के लिए खोल दिया।

छ) सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICTs) का विस्तार और सूचना युग का सूत्रपात

समकालीन समाज के प्रभावशाली पहलुओं में एक है अपने महत्वपूर्ण निहितार्थों के साथ इलैक्ट्रानिक गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में अनुप्रयोग हेतु सूचना प्रौद्योगिकी का तेज़ी से विकास। यदि हम विश्व अर्थव्यवस्था की प्रगति का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि 19वीं शताब्दी से ही विश्व-अर्थव्यवस्था का इतिहास अग्रणी वाणिज्य एवं उद्योग क्षेत्र में एक नियमित अग्रमन कर रहा है (मॉदल्स्बी एवं थॉम्प्सन, 1996)। उन्नीसवीं शती- मध्य के बाद से अग्रणी क्षेत्र रहे विद्युत शक्ति, रासायन एवं इस्पात। 1914 के बाद शुरू होने वाले उद्योग थे टेलिफ़ोन, रेडियों और फिर टेलीविज़न समेत इलैक्ट्रानिक्स तथा तेल व रबड़ के साथ स्वचालित वाहन। सत्तर के दशक से विश्व अर्थव्यवस्था में नेतृत्व उद्योगों की एक नई श्रृंखला की ओर चला गया है, यथा जो कम्प्यूटरों टेलीविज़न, डिजीटल टेलिफोन व अन्य संचार साधनों से जुड़ी है, जिसे समष्टिक रूप में सूचना उद्योग कहा जा सकता है। इनमें प्रमुख हैं : कम्प्यूटर उद्योग जिसमें वृहद, हार्ड एवं सॉफ्टवेयर क्षेत्रों समेत अनेक उपविभाग शामिल हैं; सैल्युलर, वायरलैस एवं केबल जैसे नए क्षेत्रों वाले दूर संचार माध्यमों में तब्दील पुनर्जीवित टेलिफ़ोन उद्योग; तथा अपने विषयवस्तु प्रदाताओं एवं वितरकों के साथ समस्त बहुमुखी सदावर्धमान संचार माध्यम। द थर्ड वेव (1980) में ऑल्विन टॉफ्लर आर्थिक श्रम विकास की तीन अवधियों का वर्णन करते हैं : कृषि लहर जो 8000 ई. पू. से 18वीं शती मध्य तक रही, औद्योगिक लहर जो 20वीं शती अंत तक रही और सूचना लहर जो साठ के दशक में शुरू हुई और आने वाले कई दशकों तक चलेगी। उनके अनुसार प्रथम लहर शारीरिक श्रम से प्रेरित थी, दूसरी लहर मशीन एवं श्रमिक प्रेरित तथा तीसरी लहर सूचना प्रौद्योगिक एवं ज्ञान कर्मियों द्वारा प्रेरित है।

MAADHYAM IAS

वर्तमान परिवर्तन गति, सूचना संप्रेषण हेतु क्षमता विस्तार एवं संचार माध्यमों का प्रचुरोद्भव आदि सबका स्वरूप अतीत के स्वरूपों से नितांत भिन्न है। प्रौद्योगिकी एवं सूचना के असाधारण प्रस्फुटन ने समय और दूरी संबंधी दोहरी संकल्पनाओं को काफ़ी क्षीण कर दिया है। विशेष रूप से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी समकालीन मानव अस्तित्व के अन्य सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण शाखा-विस्तार के साथ हांलाकि उत्पादन की विश्व व्यवस्था में संभवतः सर्वाधिक प्रभावी शक्ति के रूप में उभरी है (काकोविज़, 1999)। उन्नत संचार ने सूचना संप्रेषण हेतु वास्तविक दूरी को घटा दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय टेलीफ़ोन एवं फ़ैक्स यातायात व्यापार बहुत ही तत्कालिक सस्ता और व्यक्ति को सरलता से सुलभ हो गया हैं इंटरनैट संचार एवं सूचना की एक प्रमाणिक रूप से सर्वाधिक व्यवस्था प्रदान करता है। सैटेलाइट एवं केबल टी.वी. तथा अति उच्च आवृति रेडियो ने समाचार और मनोरंजन के क्षेत्र में विकल्पों की बाढ़ सी ला दी है। गत कुछ दशकों में सूचना प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार ने दुनियाभर में सेवा की आउटसोर्सिंग में एक आश्चर्यजनक वृद्धि कर दी हैं।

तीसरी लहर के दौरान सूचना संग्रहण, संप्रेषण, भण्डारण एवं पुनर्प्रापण की प्रक्रिया समृद्धि और गुणात्मक रूप से भिन्न जीवन शैली की कुन्जी बन गयी। प्रायः किसी भी क्षेत्र में सफलता सूचना प्रौद्योगिकी के बिना असंभव बन गयी है। कृषि, विनिर्माण शिक्षा पुलिस कार्य औषधि मनोरंजन बैंकिंग आदि कोई भी क्षेत्र हो सूचना प्रौद्योगिकी प्रतीयमानतः उस हर चीज़ को बदल डालने को तैयार है जो कि मनुष्य उन्नत समाजों में करता है (लायन 1988)। दूर संचार माध्यमों की मदद से कम्प्यूटर कार्य की शुरुआत को सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के नवयुग का आरंभकाल माना जाता है। डेनियल बैल (1976) सूचना प्रौद्योगिकी के विस्तृत प्रसार की भविष्यवाणी करते हैं और नयी दूर संचार अधिरचना की स्थापना के फलस्वरूप बड़े

सामाजिक परिवर्तनों का भविष्यदर्शन भी करते हैं, जिसे वह सूचना समाज कहते हैं। बैल का कहना है सूचना समाज में सूचना प्रौद्योगिकी श्रम काल को घटा देती है और उत्पादन श्रमिक भी कम कर देती है और वास्तव में राष्ट्रीय उत्पाद में योजित मूल के स्रोत स्वरूप श्रम का स्थान ले लेती है। यहां ज्ञान और सूचना ही अर्थव्यवस्था के मुख्य प्रवर्त्यों के रूप में श्रम और पूंजी के स्थान पर नज़र आते हैं। पीटर ड्रकर (1988) के अनुसार सूचना समाज पूंजीवादोत्तर समाज है जिसमें पूंजीपतियों और सर्वहारा वर्ग के स्थान पर ज्ञानकर्मी और सेवाकर्मी आ गए है। और इस समाज की आर्थिक चुनौती है ज्ञान कर्म और ज्ञान कर्मी की उत्पादनशीलता।

> **सोचिए और कीजिए 20.3**
>
> क्या आप समझते हैं कि टेलीविज़न, जनसंचार माध्यमों, टेलीफ़ोन, इण्टरनैट आदि के रूप में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के पदार्पण ने नातेदारी संबंधों के प्रतिमानों को बदल दिया है? व्याख्या करें।

ज) सेवाओं का बहिर्सूत्रण (Outsourcing of Services)

उत्तरोत्तर वैश्वीकृत होते संसार में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां व्यापार जगत की ताकत बन गयी और दुनियाभर में सूचना प्रौद्योगिकी समर्पित सेवाओं (IYRD) की तीव्र वृद्धि नज़र आने लगी। यह क्षेत्र सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग का एक प्रमुख हिस्सा बन गया। व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण (BPO) उक्त सेवाओं से जुड़े उद्योग का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। बहिर्सूत्रण की आवश्यकता विभिन्न क्षेत्रों में पड़ती है जैसे वित्त, स्वास्थ्य, लेखाकर्म कंपनियों का मानव संसाधन आदि। "बहिर्सूत्रण" (outsourcing) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक कंपनी अपने काम का कुछ हिस्सा दूसरी कंपनी को दे देती है, साथ ही उसे बहिर्सूत्रण करने वाली कंपनी की ओर से वांछनियताओं एवं विनिर्देशों के संबंध में सख्त मार्गनिदेर्शों के तहत व्यापार प्रक्रिया की अभिकल्पना एवं कार्यान्विति हेतु उत्तरदायी भी बना दिया जाता है। इस प्रकार व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण गतिविधियों की एक श्रृंखला शुरू करता है और कार्यवाही किए जाने की पूरी विधि को पुनर्नियोजित करने का दायित्व उठाता हैं यह प्रक्रिया बहिर्सूत्रण कराने वाली कंपनी और सेवादाता कंपनी दोनों के लिए लाभकारी होती है क्योंकि यह बहिर्सूत्रक को खर्चे कम करने में, व्यापार के मुख्येतर क्षेत्रों में गुणवत्ता सुधारने में तथा अपनी विशेषज्ञा एवं क्षमता को अधिक से अधिक इस्तेमाल करने में मदद करती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण सेवाओं में शामिल है :

क) ग्राहक सेवा संक्रिया, जिसमें कॉल सेण्टर आते हैं।

ख) पृष्ठ कार्यालय कार्यवाहियां/बैंकिंग/राजस्व/लेखाकर्म/डेटा कन्वर्ज़न/मानव संसाधन आदि – बैंक एवं विमानन जैसी शीर्षस्थानीय संस्थाओं को बड़े पैमाने पर डेटा प्रोसैसिंग एवं डेटाबेस आधारित निर्णय क्षमताओं की आवश्यकता होती है। अपरिष्कृत आंकड़े और/अथवा कागज़ी दस्तावेज़ सुदूर स्थानों (सूचना प्रौद्योगिकी सक्षम गंतव्यो) पर भेजे जाते हैं। जहां आकड़ों का प्रवेश (Data Entry) और आवश्यक समाधान कार्य किए जाते हैं।

ग) प्रतिलिप्यांतरण सेवाएं – चिकित्सा संबंधी प्रतिलिप्यांतरण में शामिल होता है श्रव्य आरूप अथवा डॉक्टरों या अन्य स्वास्थ्यरक्षा व्यवसायियों द्वारा श्रुति लिखित से चिकित्सीय अभिलेखो की एक हार्ड कापी अथवा इलैक्ट्रानिक आरूप में प्रतिलिपि करना।

घ) अन्तर्वस्तु विकसन/चालन (Animation), आदि

ड) डेटा अनुसंधान, बाज़ार सर्वेक्षण, परामर्शन, प्रबंधन आदि।

भारत में व्यापार – प्रक्रिया बहिर्सूत्रण अवसर (BPO)

व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण उद्योग दक्षता एवं लागत सार्थकता की नीति को केन्द्र में रखकर स्थापित है। वर्तमान काल में कंपनियां उत्तरोत्तर विशेषज्ञ साझेदारों हेतु चुनिंदा व्यापार कार्यों एवं संबद्ध सूचना प्रौद्योगिकी कार्यव्यापारों का बहिर्सूत्रण करती जा रही हैं। भारत की प्रचुर कुशल जनशक्ति ने उसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए एक लक्ष्य स्थल बना दिया है कि वे यहां अपने आर्थिक लेन देनों का पृष्ठांत यहीं करें। अंग्रेजी भाषी जनता सस्ती जनशक्ति एवं अच्छी किस्म की सेवा, आदि गुणों के सहारे ये कंपनियां उत्तरोत्तर भारत को ही अपने कार्यव्यापारों का बहिर्सूत्रण कार्य सौंप रही हैं। भारत अहर्ताओं, क्षमताओं कार्य गुणवत्ता, भाषायी क्षमताओं एवं कार्य नीतियों आदि के क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त है और तदनुसार अन्य के अतिरिक्त सिंगापुर, हांगकांग, चीन, फिलीपीन्स मैक्सिको, आयरलैण्ड आस्ट्रेलिया एवं हॉलैण्ड जैसे प्रतिस्पर्द्धियों से आगे है। भारतीय कंपनियों के पास उत्कृष्ट लक्ष्यों के निर्धारण, मापन एवं विवेचन हेतु अद्भुत क्षमताएं एवं प्रणालियां हैं।

प्रौद्योगिकी समर्थित सेवाओं (ITES) के विशिष्ट वर्गों में भारतीय केन्द्रों ने उच्चतर उत्पाक्ता स्तर प्राप्त किया है; उदाहरण के लिए , उनका अपने पश्चिमी देशों के प्रतिपक्षियों की तुलना में, पृष्ठवायलियी प्रोसेसिंग हेतु लेन देन प्रति घंटा संख्या अधिक है। साथ ही, भारत निरंतर सेवा और स्थानीय समय भेदों को मिटाकर फेटा समय कम करने का प्रस्ताव रखने में भी सक्षम है। भारत की अद्वितीय भौगोलिक दशाएं ही यह संभव बनाती हैं (http://www.indiainfoline.com)।

वर्ष 1994 में दूरसंचार क्षेत्र के खुलने से सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उदरीकृत निजी भागीदारी से प्रोत्साहन मिला। इसने भारत में व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण उद्योग को फलने फूलने में मदद की। भारत में अनेक राज्य सरकारें अब सूचना प्रौद्योगिकी समर्पित सेवाएं शुरू करने के लिए प्रोत्साहन एवं वांछित आधारभूत ढांचा प्रदान करती हैं। वर्ष 1999 की नई दूरसंचार नीति दूरसंचार उद्योग में और अधिक परिवर्तन लेकर आयी, जिसने अन्तर्राष्ट्रीय दूरभाष सेवाओं पर राज्य एकाधिकार को भी समाप्त कर दिया। इसने फलतः सूचना प्रौद्योगिकी समर्पित सेवाओं एवं व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण से जुड़े उद्योग के लिए स्वर्ण काल का उद्घोष किया और भारत में आबद्ध। अनाबद्ध कॉल सैन्टरों और आंकड़ा प्रक्रमण केन्द्रों की शानदार बढ़ोतरी की ओर अग्रसर किया। सूचना प्रौद्योगिकी समर्पित सेवा उद्योग जिसका व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण एक बहुत महत्वपूर्ण हिस्सा है।, प्रत्याशित रूप से भारत में एक 17 अरब डॉलर उद्योग है और सन् 2008 तक 11 लाख से भी अधिक नौकरियों को जन्म देगा। गत वित्त वर्ष के दौरान यह 73 प्रतिशत बढ़ा है और इसने रु.7100 करोड़ का राजस्व दिलाया है। (NASSCOM)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सोचिए और कीजिए 20.4

क्या आप समझते हैं कि भारत में व्यापार प्रक्रिया बहिर्सूत्रण अवसरों द्वारा महिलाओं का पक्षपोषण अधिक किया गया है? यदि ऐसा है तो क्यों?

झ) व्यापार संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकार(TRIPS)

एक बड़ी समस्या जो 19वीं शताब्दी के अधिकांश भाग, तीव्र प्रौद्योगिकी प्रगति काल के दौरान निवेशकों के सामने मुँह बाए खड़ी रहीं, वो थी एकस्वाधिकार सरंक्षण को नियंत्रित करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय विनियमों का अभाव। जबकि विभिन्न देश नितान्त प्रभावी एकस्वाधिकार कानून और नियम रखते थे, वे एक दूसरे से भिन्न हुआ करते थे। निवेशकों को अनेक देशों में एक साथ एकस्वाधिकारों के लिए आवेदन देना पड़ता था ताकि एक देश में एक स्वाधिकार हेतु आवेदन उसे अन्य सभी देशों में एकस्वाधिकार अनुग्रह के अयोग्य न बना दें, क्योंकि उसकी

मौलिकता नष्ट हो चुकी होती थी (अब्राहम, 2001)। पेटैन्ट अर्थात एकस्वाधिकार का अर्थ है किसी उत्पाद के आविष्कर्त्ता/निवेशक के हित की रक्षार्थ राज्य द्वारा प्रदत्त सम्मति या औपचारिक समझौता।

संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार एकस्वाधिका इस रूप में परिभाषित है : निवेशकों व अन्य लोगों को सरकार द्वारा प्रदत्त एक वैधानिक विशेषाधिकार, जो अपने अधिकार एक निर्धारित वर्षावधि के लिए आविष्कर्त्ता से प्राप्त करते हैं ताकि अन्य लोगों को एक एकस्वकृत उत्पाद के विनिर्माण प्राप्त अथवा बिक्री से या फिर किसी एकस्वकृत विधि अथवा प्रक्रिया को प्रयोग किए जाने से रोका जा सके (बक्शी 1992)। पहले से ही विद्यमान एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि – औद्योगिक संपदा संरक्षार्थ पेरिस समझौता 1883 – के माध्यम से, भूमंडलीकरण की बढ़ी रफ़्तार और उच्च रूप से प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में बहुराष्ट्रीय निगमों/परादेशीय कंपनियों ने अपने उत्पादों के लिए और सुरक्षा की मांग की। परिणामतः गैट के उरूग्वे दौर के एक भाग स्वरूप व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार (TRIPs) समझौते पर बातचीत की गई और यह उसी दिन से प्रभाव में आ गया जब विश्व व्यापार संगठन बना, यथा 1 जनवरी 1995।

विश्व व्यापार संगठन समझौते पर हस्ताक्षर करते ही भारत व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा अधिकार नियमों का पालन करने को बाध्य हो गया। तब तक वह भारतीय एकस्वाधिकार अधिकार अधिनियम 1970 के तहत ही काम करता था जो कि केवल प्रक्रिया एकस्वाधिकारों की ही अनुमति देता था। एक ही उत्पाद उदाहरण के लिए कोई औषधि, अनेक वैकल्पिक प्रक्रियाओं द्वारा तैयार की जा सकती है, प्रत्येक वाकियों से कुछ भिन्न होगी। इसमें भारतीय कंपनियों को भारतीय कानून के तहत एकस्वाधिकारों का उल्लघंन किए बगैर एक किंचित भिन्न प्रक्रिया अपनाते हुए अन्य देशों में भी एकस्वकृत, कोई भी एकस्वकृत उत्पाद बनाने की अनुमति दे दी। विश्व व्यापार संगठन नियमों के तहत यह कानून अधिक समय तक लागू रहना संभव नहीं था क्योंकि एक सदस्य के रूप में भारत को एकस्वाधिकार कानून को संशोधित करना ही था ताकि उत्पाद एवं प्रक्रिया दोनों के लिए एकस्वाधिकार की अनुमति मिल जाए। तथापि, भारत जैसे विकासशील देशों को, जिसके पास उत्पाद एकस्वाधिकार नहीं था, जनवरी 2005 तक का समय दिया गया था कि अपने एकस्वाधिकार कानून को संशोधित कर लें। यह संशोधित एकस्वाधिकार कानून भारत की संसद में 22 मार्च 2005 को पारित हो गया।

MAADHYAM IAS

20.5 भूमंडलीकरण के सामाजिक आयाम

इस बात का ज़ोरदार खण्डन किया जाता है कि भूमंडलीकरण की वर्तमान गति केवल आर्थिक मोरचे पर ही असरकारी है। भूमंडलीकरण प्रक्रिया की शाखा प्रशाखाएं मानव जीवन के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्षेत्रों में भी सीधे व्यक्त होती हैं। निष्कर्षतः, भूमंडलीकरण की दृश्यधरना संबंधी सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयामों को समझना उसके प्रति एक युक्तियुक्त एवं सुविचरित प्रतिक्रिया को जन्म देने के लिए अनिवार्य है। भूमंडलीकरण का सामाजिक आयाम लोगों के जीवन एवं कार्य पर, उनके परिवारों एवं उनके समाजों पर वैश्वीकरण के प्रभाव की ओर संकेत करता है। रोज़गार, कार्यदशाओं, आय एवं सामाजिक संरक्षण पर भूमंडलीकरण के प्रभाव विषयक चिन्तयविषय और मुद्दे प्रायः उठाये जाते हैं। कार्य जगत के अलावा, सामाजिक आयाम में आते हैं : परिवारों एवं समुदायों की सुरक्षा, संस्कृति एवं पहचान, सम्मिलित अथवा बहिष्करित तथा संबद्धता का भाव। इस पाठांश में, आइए, भूमंडलीकरण के कुछ सामाजिक आयामों को देखें।

क) सामाजिक क्षेत्र से राष्ट्रीय सरकार का प्रत्याहार

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण का परिणाम हुआ आर्थिक शासन में राज्य की भूमिका में आम गिरावट। सरकार की आर्थिक भूमिका में यह गिरावट सार्वजनिक व्यय में कमी में प्रकट हुई। सार्वजनिक व्यय में भारत का कुल सरकारी खर्च साठ के दशक में 11.0 प्रतिशत वार्षिक की दर से, सत्तर के दशक में 7.1 प्रतिशत की दर से, अस्सी के दशक में 6.46 प्रतिशत की दर से बढ़ा लेकिन नब्बे के दशक में घटकर यह मात्र 4.7 प्रतिशत वार्षिक ही रह गया। सरकार एवं सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका में गिरावट के परिणाम और उसके स्थान पर निजी क्षेत्र के आ जाने का अर्थ होता है लोगों को रोज़गार पूंजी और सामाजिक सेवाओं जैसे शिक्षा, आवास एवं स्वास्थ्य सेवाओं की सुलभता काफ़ी कम हो जाना। आर्थिक गतिविधियों को सार्वजनिक क्षेत्र से लेकर निजी क्षेत्र के हाथों में सौंप दिए जाने समेत राष्ट्रीय सरकार की संरचनात्मक समायोजन नीतियां यथा राज्य आर्थिक नियोजन से दूर होते हुए और आर्थिक निर्णय बाज़ार पर छोड़ते हुए, जनता के लिए सामाजिक सुरक्षा के प्रत्याहार में पारित होंगी। प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता बढ़ाने के लिए वेतन चिट्ठा हाशिया खर्च कम करने के लिहाज से सामाजिक लाभों को घटाया जाना "सामाजिक क्षेपण"(social dumping) की ओर प्रवृत्त करता है जिसका अर्थ है वह प्रक्रिया जो निम्न वेतनों और निकृष्ट सामाजिक दशाओं के माध्यम से उत्पादन लागत घटा देती है।

भारत में सकल घरेलू उत्पाद के एक भाग स्वरूप सामाजिक व्यय नब्बे के दशक में बंधा हुआ था और ग्रामीण विकास से एक निश्चित अवस्थान्तर गमन देखा गया था (देव एवं मूजी, 2002)। स्वास्थ्य व्यय का भाग अप्रवहमान रहा था और शिक्षा का भाग गिरता जा रहा था। हमारी सरकार पेंशनों परिदानों आदि पर व्यय कम कर वर्तमान व्यय की मात्रा को और घटाने का प्रयास कर रही है।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 20.4 : सामाजिक क्षेपण (social dumping)

औद्योगिक देश प्रायः अल्पविकसित देशों की सरकारों पर यह आरोप लगाते हैं कि वे अपने निजी उद्योगों हेतु एक प्रतिस्पर्धात्मक लागत लाभ कमाने के लिए एक अविकसित कल्याणकारी राज्य कायम करने के लिहाज से सामाजिक क्षेपण को अपनाते हैं। विशेषरूप से वे कहते हैं कि ये अल्प विकसित देश सामाजिक उपांत लाभों, क्षति/हानियों से सुरक्षा, पेंशन योजनाओं, सह निर्णयक अधिकारों इत्यादि के लिहाज से उपयुक्त सामाजिक मानकों हेतु विधान की जानबूझकर उपेक्षा करते हैं। सामाजिक क्षेपण से जन्म लेने वाली प्रतियमानतः अनुचित प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए, वे सामाजिक दशाओं के अन्तर्राष्ट्रीय सामंजस्य की मांग करते हैं और कभी-कभी वे सामंजस्य लाने के लिए प्रतिशोधात्मक व्यापार प्रतिबंधों की वकालत भी करते हैं। उदाहरण के लिए बाल श्रमिकों द्वारा बनाए जाने वाले, भारत से निर्यात होने वाले कालमों पर रोक। परन्तु कभी-कभी विकसित देश, इसे अपने उद्योगों के हितो की रक्षार्थ अल्प-विकसित देशों से निर्यात को रोकने की युक्ति स्वरूप भी करते हैं क्योंकि वहां मज़दूर अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं और इसी कारण उत्पादन लागत भी कम होती है, जो कि अल्प विकसित देशों को अपेक्षाकृत कम मूल्य वाले उत्पादों के साथ विकसित देशों में बाज़ार पर छा जाने में सक्षम करता है।

ख) श्रम सुधार और ह्रासमान श्रम कल्याण

राज्य उद्यमों का विनियमन और निजीकरण उन विकासशील देशों हेतु सहायता पैवेज़ से जुड़ी प्रतिबद्धताओं के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थाओं द्वारा लागू संरचनात्मक संमजन कार्यक्रमों के और आर्थिक उदारीकरण के तीव्रीकरण हेतु मुख्य घटक रहे हैं। श्रम बाज़ार विनियमन संरचनात्मक समंजन कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अभिलक्षण रहा है। सुव्यक्ति विनियमन देखने में आया है जिसके द्वारा औपचारिक नियमों को हटाया जा रहा है या फिर

वैधिक उपायों से उनका परित्याग किया जा रहा है, तथा अव्यक्ति विनियमन भी जिसके द्वारा शेष नियमों को अपर्याप्त कार्यान्वयन अथवा अतिक्रमण द्वारा कम प्रभावी बना दिया गया है। इस प्रकार का विनियमन इस धारणा पर आधारित रहा है कि सार्वजनिक क्षेत्र वेतन एवं रोज़गार नीतियों, न्यूनतम वेतन निर्धारण तथा रोज़गार सुरक्षा नियमों आदि उपायों के माध्यम से श्रम बाज़ार में अत्याधिक सरकारी हस्तक्षेप समंजन के मार्ग में गंभीर अवरोध है और उसको इसी वजह से हटाया जाना चाहिए अथवा उसमें ढ़ील दी जानी चाहिए। दुनियाभर की सरकारों ने बाध्य होकर श्रम मानकों को सरल बनाया है, कर नियमों में किंचित परिवर्तन किया है और व्यापक रूप से सुरक्षा मानकों में ढील दी है तथा उन्हें अनदेखा किया है ताकि अधिकाधिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित किया जा सके। इससे श्रम मानक उत्तरोत्तर गिरते चले गए। परा देशीय कंपनियों एवं बहुराष्ट्रीय निगमों जैसी बड़ी निगम कंपनियों ने अपने उत्पादन के लिए शिकमी ठेका की एक विक्रेता प्रणाली चलाई है। ये कंपनियां ठेकेदारों के माध्यम से अपना काम श्रमिकों को सौंप देती हैं जो बदले में कंपनी को उत्पादन की सुपुर्दगी करते हैं। इसका परिणाम होता है श्रमिकों की रोजगार संबंधी असुरक्षा और श्रम कल्याण का विकृत रूप, क्योंकि उनके कल्याण के लिए कोई नियंत्रण प्रणाली नहीं होती।

भूमंडलीकरण का वर्तमान दौर कार्यबल के अस्थायीकरण अथवा अनौपचारिकरण में भी पारित हो रहा है जिससे श्रमिकों के वेतन कम हो रहे हैं और रोज़गार सुरक्षा में कमी आ रही है, हॉलाकि इससे कुछ कार्यबल हेतु रोज़गार अवसर भी पैदा हुए हैं। अनौपचारिक क्षेत्र में विकास का अर्थ है कि परम्परागत रोज़गार संबंधित लाभ और संरक्षण विधितंत्र इस क्षेत्र में नियोजित लोगों को उपलब्ध नहीं होंगे। वर्धित मशीनी करण और नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग अधिक कुशल श्रमिकों की अपेक्षा रखते हैं और अकुशल श्रमिकों को हटा देते हैं। नई प्रौद्योगिकियां और तेज़ी से बदलता बाज़ार, भूमंडलीकरण के पश्चिमी अभिलक्षण – विद्यमान कौशलों को पुराना या अप्रचित कर देने की प्रवृत्ति भी रखते हैं, साथ ही उन्नत नए कौशलों एवं बहु-कौशल संपन्नता की अपेक्षा की। यह नए बाज़ार भी खोलता है जहां कर्मचारी वर्ग प्रचलित अथवा पारंपरिक कौशलों को अपनाकर पहुंच सकता है।

MAADHYAM IAS

अर्थव्यवस्था के उदारीकरण ने कुछ क्षेत्रों में नए रोज़गार को उत्पन्न किए बग़ैर ही रोज़गार समाप्त कर दिया है। बाज़ार के खुलने से और व्यापार के मुक्त प्रवाह एवं कम सीमाशुल्कों से भारतीय श्रमिकों के रोज़गार अवसर घटाते विदेशी माल को प्रोत्साहन मिला। उदाहरण के लिए, बिहार के हज़ारों रेशम कताई-बटाई वालों का रोज़गार तब पूरी तरह छिन गया जब बुनकर और उपभोक्ता चीन-कोरिया से आयात होने वाले सिल्क के सस्ता और चमकदार होने के कारण उसी का धागा पसंद करने लगे।

सोचिए और कीजिए 20.6

भारत में श्रम दशाओं पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का विश्लेषण करें।

ग) श्रम का स्त्रीकरण

उदार आर्थिक नीतियां अपनाने वाले देश में श्रमशक्ति के रूप में महिलाओं का बड़ी संख्या में पदार्पण हुआ है। भूमंडलीकरण के प्रसंग में उद्योगीकरण उतना ही नारी प्रेरित है जितना कि वह निर्यात-प्रेरित (संयुक्त राष्ट्रसंघ 1999)। वर्ष 1996 में 20-54 आयु वर्ग की महिलाओं की समग्र आर्थिक गतिविधि दर 70 प्रतिशत तक पहुंच गई। महिलाओं का सर्वाधिक समावेशन निर्यातोन्मुखी उद्योग क्षेत्र में देखा गया है। यह बात विशेषरूप से निर्यात संसाधन क्षेत्रों और विशेष आर्थिक क्षेत्रों में देखी जाती है और उन श्रम साधित उद्योगों में भी जो सस्ते श्रमिकों की तलाश में विकासशील देशों में पुनर्स्थापित हैं (हिलेरी 1999)। निवेशकों ने हल्के उद्योगों में महिलाओं के लिए वरीयता दर्शायी है, जैसे परिधान, जूता एवं खिलौना निर्माण,

आंकड़ा प्रक्रमण (Data Processing), अर्ध चालक संयोजन उद्योग जिनमें अकुशन अर्धकुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इसके बावजूद इसने किसी भी प्रकार महिलाओं के लिए कोई बेहतर स्थिति सुनिश्चित नहीं की। अनौपचारिक क्षेत्र जहां महिलाएं भूमंडलीकरण के चलते बड़ी संख्या में समावेशित कर ली गई हैं। बहुत ही खराब श्रम दशाएं प्रस्तुत करते हैं। ऐसे उद्योग जहां महिलाएं अधिकांश रूप में लगी थीं बेहद श्रम-साबित सेवोन्मुखी और अविंर्चन भुगतान वाले साबित हुए। अनेक देशों में निर्यात संसाधन क्षेत्रों में लगे श्रमिकों को संघीकरण और सामूहिक सौदेबाज़ी असंभव प्राा ही लगते हैं। भारत में कॉल सेन्टरों में कार्यरत महिलाएं कुल कार्यबल का अनुमानतः 40 प्रतिशत हैं।

घ) दरिद्रता (poverty)

अर्थव्यवस्थाओं क्रा खुलना मुख्य रूप से एक ऐसे कार्यतंत्र के रूप में देखा गया जहां व्यापार "एक विकास यंत्र" या 'ग्रोथ इंजन' के रूप में काम करेगा और विकास परिणाम गरीब तथा "टपक टपक कर" पहुंचेंगे। तथापि परिणाम मिले जुले रहे हैं जहां परंपरागत व्यापार सिद्धांत प्रदर्शनों के प्रतिकूल अनेक देश अपनी अर्थव्यवस्थाओं में बढ़ती असमानताएं देख रहे हैं (वर्धन 2003)। व्यापार के अन्तर्राष्ट्रीयकरण ने श्रम बाज़ार में गहरे परिवर्तन लाकर उत्पादन के वैश्वीकरण हेतु मार्ग प्रशस्त किया है। जैसे बढ़ती वेतन विषमता, कार्य की बढ़ती संविदात्मकता, कार्य का कुशलता आधारित विभाजन, आदि। भूमंडलीकरण और उदारीकरण नीतियां दुनियाभर में निम्न स्तर के अधिकाधिक लोगों के दरिद्रण में फलित हुई हैं। खाद्य के क्षेत्र में उद्योगीकरण और अनुवांशिक अभियांत्रिकी तथा कृषि के क्षेत्र में व्यापार के वैश्वीकरण ने संसार के कृषि आधारित देशों में गरीबी बढ़ा दी है। असामान्य औद्योगिक कृषि के वैश्वीकरण ने मुद्रा अवमूल्यन उत्पादन लागत वृद्धि और जिन्समूल्यों के पतन के मिले जुले प्रभाव से, जो कि सब अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की ही देन है। विकासशील एवं अल्पविकसित देशों के किसानों की आय पर प्रतिकूल असर पड़ा है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

भारत में प्रथम पीढ़ी सुधारों में औद्योगिक अर्थव्यवस्था पर ध्यान केंद्रित किया गया और कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र को उपेक्षित छोड़ दिया गया। शहरी क्षेत्र में बड़े महानगर ही उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण से सर्वाधिक तत्काल प्रभावित हुए हैं। जहां भू प्रयोग एवं कार्य प्रतिमानों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। सुधारों के आरंभ में किए दावे कि वे रोज़गार वृद्धि में सहायक होंगे सुधारोपरांत काल के आंकड़ों का अध्ययन करने के बाद सत्य प्रतीत नहीं होते हैं (चड्डा एवं साहू 2002; सुन्दरम 2001)।

आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण का ग्रामीण के साथ-साथ शहरी गरीबी पर भी सीधा प्रभाव पड़ा। बैंकिंग के क्षेत्र में सुधारों के चलते ग्रामीण ऋण जो कि गरीबों के लिए गरीबी से परिहार हेतु एक मुख्य कारक है के लिए संस्थागत व्यवस्था में वास्तविक परिवर्तन ग्रामीण गरीब वर्ग के हितों के खिलाफ हो रहे हैं। अमान्य विकास प्रक्रियाएं भी गरीगों की दरिद्रता की ओर अग्रसर करती है। सामाजिक क्षेत्र व्यय में गिरावट अथवा सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में सामाजिक क्षेत्र व्यय में गतिहीनता भी गरीबों के हितों के विरूद्ध गए। शहरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने के निवेश, विदेशी और भारतीय दोनों, ने शहरी भूमियों के अधिग्रहण की ओर प्रवृत्त किया जिसने परिमाणतः गरीबों को प्रभावित किया, खासतौर पर मलिन बस्तियों में रहने वालो, फेरी वालों, आश्रयहीनों, सड़कों गलियों में रहने वालों को , चूंकि उन्हें शहर की परिधियों पर धकेल दिया गया था। जिनको कि अल्प लाभ रोज़गार और निकृष्ट जीवन दशाओं वाली विकृति से पहचाना जाता था।

ड) *अमान्य विकास प्रक्रिया*

मान्य विकास को ऐसी तरक्की के रूप में परिभाषित किया जाता है जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भावी पीढ़ियों की क्षमता से समझौता किए बगैर वर्तमान पीढ़ी की

आवश्यकताओं को पूरा करें। इस परिभाषा के तहत विकास मात्र आर्थिक विकास तब ही सीमित नहीं है बल्कि उसमें पर्यावरण रक्षा तथा हर व्यक्ति के लिए जीवन के मानकों और गुणवत्ता को सुधारने व उन्नत बनाने के लिए उद्देश्य को लेकर धन एवं संसाधनों का समान विवरण का भो समावेश किया गया है। भूमंडलीकरण के दौर में दुनियाभर में अपनाई गई विकास प्रक्रियाओं को बाज़ार प्रतिस्पर्धा के एक उच्च स्तर द्वारा पहचाना जाता है जो कि प्रायः अमान्य विकास प्रक्रियाओं को अपनाती प्रतीत होती हैं।

उदाहरण के लिए, भारत में देशी बीज़ों के स्थान पर आयातीत संवर बीज़ों अथवा नकदी फसलों का परिणाम हुआ भूजल का नल कूपों के माध्यम से अधिकाधिक दोहन, क्योंकि इनको फसलों को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। भूजल के अत्याधिक दोहन का परिणाम अकालों और गरीबी की अग्रसर करते ह्रासमान भूजल स्तर के रूप में सामने आया। उच्च उत्पादन संकट बीज कीट/कृतन्वों के आक्रमण के प्रति अधिक संवेदनशील है जिसका परिणाम होता है कीटनाशियों का अधिक प्रयोग। रासायन आधारित उर्वरकों, विशेषतः रियायत प्राप्त उर्वर अंधाधुध प्रयोग ने नाइट्रोजन एवं पोटाशियम जैसे अनिवार्य खनिज तत्वों के बीच असंतुलन पैदा कर दिया है। कृषि उत्पादन के चालू प्रतिमान एवं लोगों के बीच उसकी मान्यता के कारण भूमि, जल एवं पर्यावरण के अपवय संबंधी बढ़ती कार्यान्विति दिखाई पड़ती हैं (चंद 1999) मछली पालन के क्षेत्र में भारत सरकार की निर्यातोमुखी नीति ने महाजाल से मछली पकड़ने के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों एवं परादेशीय कंपनियों को अनन्य आर्थिक क्षेत्र (Exclusive Economic Zone) के अंतर्गत समुद्र में जाने की अनुमति दे दी। इसके परिणामस्वरूप समुद्री परितंत्र और परंपरागत मछुआरा समुदाय की आजीविका का अंधाधुंध विनाश देखने में आया।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 20.5: केरल, भारत में प्लाचीमाडा, कोका-कोला कंपनी का उदाहरण

अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भारत में ठंडा पेय के 90 कारखाने हैं जिसमें कोका कोला के 52 और पेप्सी के 38। वे इन्हें बोतल भराई संमंच बताते हैं; दरअसल ये पंपिंग स्टेशन हैं जिनमें से प्रत्येक भूमि से 15 लाख लिटर जल प्रतिदिन दोहन करता है। एक लिटर कोक तैयार करने के लिए नौ लिटर स्वच्छ जल लगता है। इन मृद पेयों को बनाने में प्रयुक्त प्रक्रियाएं सहज ही हानि पहुंचा रही हैं। भूजल का दोहन गरीब लोगों को स्वच्छ जल सुलभता हेतु उनके मौलिक अधिकार से वंचित करता है। ये कारखाने विषैला अपशिष्ट उगलते हैं जो स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के प्रति खतरा उत्पन्न करता है। और, ये उत्पाद स्वयं भी हानिकारक होते हैं। भारतीय संसद ने ठंडे पेय में कीटनाशी अवशेषों की विद्यमानता का पता लगाने के लिए एक संयुक्त समिति गठित की है।

मार्च 2000 में कोका कोला ने दक्षिणी राज्य केरल के पलक्कड ज़िला स्थित गांव प्लाचीमाडा में एक संयंत्र लगाया जो कि प्रतिदिन कोका कोला, फैन्टा, स्प्राइट, लिम्का, थम्स अप, चिल्ली सोडा एवं माज़ा की 12 लाख बोतलें भरने पर अभिलक्षित था। स्थानीय पंचायत द्वारा जारी सशर्त लाइसेंस में उसे मोटरयुक्त पंप के प्रयोग की अनुमति थी, परन्तु कंपनी ने छः से भी अधिक कुंए खोद डाले और लाखों लिटर शुद्ध जल खींचने के लिए अवैध रूप से उच्च शक्ति के विद्युत चालित पंप भी लगा लिए। जल स्तर भूसतह से 45 मी. से गिर कर 150 मीटर नीचे तक चला गया।

कोका कोला ने फिर उस किंचित जल को प्रदूषित किया जो वह समुदाय से चुरा नहीं पाया था। उसने अपने परिसर से बाहर अवशिष्ट फेंकना शुरू कर दिया। बरसात के मौसम में यह धान के खेतों, नहरों और कुओं तक फेल गया, जिससे गंभीर स्वास्थ्य संकट पैदा हो गया। कंपनी ने इस प्रक्रिया को रोक दिया और गंदा पानी सूखे गड्ढों में गिराना शुरू कर दिया जो कि कार्यस्थल पर ही ठोस अपशिष्ट निपटान के लिए खोदे गए थे। इससे जल संसाधन दूषित हो गए। चूंकि जल आपूर्ति व्यवस्था बिगड़ गई थी, स्थानीय आदिवासी

महिलाओं को पेय जल लाने के लिए लगभग 5 कि.मी. चलकर जाना पड़ता था। इन महिलाओं ने भू जल रिक्तीकरण के खिलाफ़ कारखाने के गेट पर एक धरना आयोजित किया।

कोका कोला की करतूतों के कारण 260 कुंए. जो कि पेय जल एवं सिंचाई की आवश्यकतापूर्ति के लिहाज से अधिकारियों द्वारा खुदवाए गए थे – सूख गए है। केरल का यह भाग 'चावल का कटोरा' कहा जाता है। परन्तु कृषि उत्पादन अचानक गिर गया है। और बुरी खबर है कि कोका कोला अपने कारखाने से निकले विषैले अपशिष्ट को ग्रामवासियों को मुफ्त खाद के रूप में बांटता रहा है। विश्लेषण दर्शाते हैं किसी कीचड़ में कैडनियम और सीसा भरपूर मात्रा में होता है, जो कि दोनों कैंसर पैदा करते हैं।

वर्ष 2003 में ज़िला चिकित्सा अधिकारी ने प्लाचीमाडा के लोगों को बताया कि उनका पानी इतना प्रदूषित है कि वह पीने के लायक नहीं है। आदिवासी महिलाएं ही थीं जिन्होंने अपने धरने के माध्यम से सबसे पहले कोका कोला की जल डकैती की निंदा की। उनकी पहल में भाइचारे से जुड़ी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अभिव्यक्तियों की झलक दिखाई दी। फरवरी 2004 में केरल सरकार ने अन्तगोत्वा आदेश दिया कि कोका कोला संयंत्र को बंद कर दिया जाए।

स्रोत : वंदना शिवा 2005

च) प्रवसन और शहरीकरण

प्रवसन या देशान्तरण कोई नया दृश्य या घटना नहीं है। लोगों ने सदा ही बेहतर आर्थिक अवसरों की तलाश में अपने घरों को छोड़ा है, अपने गृह प्रदेश के भीतर भी, बाहर भी । परन्तु आर्थिक भूमंडलीकरण की वर्तमान गति ने विश्व प्रव्रजन में एक नयी जान फूंक दी है जिससे व्यापक निर्मूलन और एक अभूतपूर्व स्तर पर मानव उद्वासन दिखाई पड़ने लगा है। आकलित आंकड़ों के अनुसार, वर्तमान जगत में 6 में से लगभग 1 व्यक्ति, यथा एक अरब से भी अधिक लोग, प्रवासी कर्मिकों के रूप में राष्ट्रीय सीमाएं लांघते हैं (मूसा 1999)। अनेक लोगों के लिए प्रवसन न सिर्फ़ एक विकल्प है बल्कि एक आर्थिक आवश्यकता भी है, मुख्य रूप से राष्ट्रों के बीच और ग्रामीण एवं शहरी केन्द्रों के बीच असमान विकास के कारण।

शहरीकरण आवाजाही के लिए एक मुख्य प्रेरक शक्ति है क्योंकि शहरी क्षेत्र ग्रामीण लोगों के लिए अनेक आर्थिक अवसर प्रस्तुत करते हैं। शहरी श्रम बाज़ार बहुत ही कम माल मत्ते और हुनर या कला कौशलों की बुनियाद पर तत्काल रोज़गार शुरू करने/ बदलने, आय या पूंजी को विविध उद्यमों में लगाने,और आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करता है। हांलाकि दुनियाभर में शहरीकरण की दर में काफी भिन्नताएं है। शहरीकरण की दर बढ़ाने में एक निर्धारक कारक के रूप में आर्थिक दबाव का स्वरूप प्रभावी होता है, न कि आर्थिक दबाव की दर (दशिंडकर एवं ऐन्डरसन 2004)। विनिर्माण उद्योग के विस्तार पर आधारित आर्थिक विकास, जो कि वर्तमान भूमंडलीकरण की एक पहचान बन चुका है, शहरीकरण की ऊंची दरों से संबद्ध होने की प्रवृत्ति रखता है जबकि कृषि विस्तार पर आधारित आर्थिक विकास प्रतिवर्ती से। यद्यपि यह निश्चित रूप से कहना जल्दबाज़ी होगी कि विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से हुए समझौते किस प्रकार भूमंडलीकरण को प्रभावित करेंगे, ऐसा पूर्वानुमान है कि यदि आर्थिक विकास का स्वरूप विनिर्माण की ओर अग्रसर है तो शहरीकरण की दर उससे अधिक होगी जितनी कि कृषि आधारित विकास के सहारे होती (स्‍ऑीवन व अन्य 2004)। इस बात की संभावना इसीलिए है कि चीन जैसे देश जिनका तुलनात्मक लाभ मुख्यतः श्रम साधित विनिर्मित उत्पादों में ही निहित होता है। ग्रामीण शहरी प्रवजन की बढ़ोतरी देखेंगे। अस्थायी भी और दीर्घावधि भी। प्रेरक शक्ति होगी श्रम साधित निर्यातों का विस्तार, जो कि शहरी क्षेत्रों में श्रमिक वर्ग की मांग बढ़ाएगा और ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच वेतन भेद भी बढ़ाएगा। दक्षिण एशिया दूसरी ओर कृषि उत्पाद और सूचना प्रौद्योगिकी जैसी हुनर

सम्पन्न सेवाओं के निर्यात पर अधिक जोर देने की प्रवृति रखता है, जो कि दोनों शहरीकृत क्षेत्रों में श्रमिकों हेतु इतनी मांग पैदा नहीं कर सकते हैं। साथ ही, सस्ते निर्यात –उदारीकरण उपायों और निम्न आयात शुल्कों का परिणाम हैं – स्थानीय कृषि उत्पादन प्रणालियों पर खतरा उत्पन्न कर सकता है, जिसमें परिणामस्वरूप एक सीमित कौशल आधार वाले निरक्षर लोग काम की तलाश में शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन कर सकते हैं। (देखें बॉक्स 20.4)। इस बात के प्रमाण भी हैं कि भारत के लोग खेती बाड़ी क्षेत्र से परे जा रहे हैं। कारण बड़े पैमाने पर आर्थिक सुधार जहां रियायतों की कटौती और खाद्यानों के अन्तर ज़िला कारोबार की समाप्ति ने छोटे किसानों को व्यवसाय से बाहर कर दिया है। ऐसे मामलों में उनके सामने विकल्प यही बचता है कि ऐसे स्थानों पर चले जाएं जहां बेहतर आर्थिक अवसर हों।

बॉक्स 20.6: चितूर ज़िला आंध्र प्रदेश, भारत में मूंगफली उत्पादक और कोशकीट पालन

मूंगफली को कभी "अदभूत फसल" कहा जाता था जो शुष्क क्षेत्रों में रहने वाले छोटे किसानों को अपने परिवार के श्रम को उत्पादनशील रूप में प्रयोग करने व अच्छा नकद लाभ कमाने का मौका देती थी। साठ के दशक में आंध्र प्रदेश के सूखा प्रवण रायल सीमा क्षेत्र में यह युक्ति तेज़ी से प्रचारित हो गई और इसे इस क्षेत्र में बंधुआ मज़दूरी की व्यवस्था तोड़ने का श्रेय दिया जाता है। परन्तु मूंगफली की लाभदायक, अन्य कई फसलों की ही भांति, नब्बे के दशक में कम होती रही, कारण बढ़ती निवेश लागतें और सूखा। हाल में कोंपल क्षयन जैसी बीमारियों ने भी भारी नुकसान की ओर प्रवृत्त किया है। आंध्र प्रदेश के अनन्तपुर और चितूर ज़िलों के अनेक भागों में मूंगफली सामान्य मानसून वाले वर्षों में शुष्कभूमि पर खेती करने वाले किसानों की पहली पसंद हुआ करती थी। इन क्षेत्रों में शुष्कभूमि कृषकों द्वारा अपनायी जाने वाली एक आम पुरानी फसल पूर्व रणनीति थी। वर्षा न होने की उम्मीद होने पर हार्सग्रैम अथवा फ़ॉक्सटेल आदि मोटा अनाज बोना। परन्तु लाख सूखा और बीमारी का प्रकोप हो लेकिन वे मूंगफली की खेती से पीछे नहीं हटते थे क्योंकि तीन वर्षों में मात्र एक अच्छी फसल ही उनके परिसर की उदरपूर्ति के लिए पर्याप्त होती थी।

तथापि, आजीविका का यह रूप खाद्य तेल आयातों के उदारीकरण द्वारा डाले गत अतिरिक्त दबाव को नहीं झेल सका। खाद्य तेलों पर आयात शुल्क नब्बे के दशक मध्य में 65 प्रतिशत से घटकर नब्बे के दशकांत में 15 प्रतिशत ही रह गया था। खासतौर पर पाम आइल। आयातित खाद्य तेल, मुख्यतः पाम ऑइल, का अंश नब्बे के दशकांरभ में एक प्रतिशत से भी कम से बढ़कर 2001 में लगभग 45 प्रतिशत तक चला गया है। सरकार ने आयात शुल्कों को बढ़ाकर प्रत्युतर दिया परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य और गिर गए तथा अन्य देशों ने अपने निर्यातकों के अतिरिक्त रियायतें दीं ताकि लाभकारी भारतीय बाज़ार पर पकड़ बना सके। मूंगफली के दाम गिर गए और अनेक किसान जो ऋण बिक्री समझौतों से बंधे थे, अपने कर्ज़े नहीं चुका सके। रायल सीमा में सैकड़ों किसानों ने आत्महत्या कर ली क्योंकि वे अपनी लागते नहीं वसूल सकते थे और न उधार लिया धन ही चुका सकते थे। कुछ किसान जिनके पास पर्याप्त पूंजी, हुनर और अनुबंध थे आम के बगीचों में निवेश करने लगे। बहुत से तो काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन कर गए।

स्रोत : (www.dbtindia.gov.in)

छ) देशी ज्ञान का व्यवसायीकरण

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया देश के मूल निवासियों के कार्यक्षेत्रों, निवास स्थानों और संसाधनों पर हमला करती है जो कि उनकी जीवनशैली के विध्वंस की ओर प्रवृत्त कर सकती है। बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान देशी ज्ञान तक पहुंच बना लेते हैं और उसे अपनी धन वृद्धि एवं लाभ प्राप्ति के लिए एकाधिकार बना लेते हैं। इसका परिणाम यह हो सकता है कि देश के मूल निवासियों और शेष मानव जाति को उस ज्ञान को पाने के लिए पैसा चुकाना पड़ेगा जो कि तदनुसार व्यापारीकृत हो चुका होगा।

हयूमन जेनोम डाइवर्सिटी प्रोग्राम के तत्वाधान में, अमेरिका स्थित दवाई की कंपनियां स्वयं देशी लोगों का ही एकाधिकार प्राप्त कर रही हैं। वे बीज, औषिधियों एवं परंपरागत ज्ञान प्रणालियों एवं मानव जीनोमो को एकाधिकार में ला रहे हैं। यहां तक कि मानवता की जीवनधार व्यवस्थाएं जैसे भूमि, जल, वन्यजीवन, जलीय जीवन, खनिज संसाधन भी दुनियाभर में विशाल बहुजन समाज के जीवन एवं आजीविकाओं की कीमत पर वर्तमान भूमंडलीकरण प्रक्रिया में उपभोक्ता वस्तु बन गए हैं। इसका परिणाम पर्यावरण विनाश, सामाजिक उद्वासन, सांस्कृतिक एवं जैविक विविधता का विलोपन, आदि के रूप में सामने आ सकता है। साथ ही व्यापार एवं निवेश समझौतों द्वारा लागू प्राकृतिक संसाधनों के केन्द्रीभूत प्रबंधन में अंतर पीढ़ीय और अन्तरा पीढ़ीय सातव्य को कोई स्थान नहीं है।

ज) धन संकेन्द्रण में बढ़ती असमानता

भूमंडलीकरण बहुत ही असमान प्रक्रिया है जिसमें लाभ हानियों का असमान वितरण होता है। भूमंडलीकरण की चालू प्रक्रिया में निवेश संसाधन उत्तरोत्तर वृद्धि और आधुनिक प्रौद्योगिकी कुछ ही देशों में केंद्रित रहते हैं, जैसे उत्तर अमेरिका, यूरोप, जापान और पूर्व एशियाई देश जो कि विश्व के नव उद्योकीकृत देश हैं। अधिकांश विकासशील देश इस प्रक्रिया से बहिष्कृत हैं और सीमित तरीकों से भाग ले रहे हैं जो कि प्रायः उनके हितों के प्रति हानिकारक होते हैं; उदाहरण के लिए निर्यात उदारीकरण उनके घरेलू उत्पादकों को नुकसान पहुंचा सकता है और वित्तीय उदारीकरण अस्थिरता पैदा कर सकता है। (नय्यर 1997)।

भूमंडलीकरण विभिन्न श्रेणियों के देशों को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करता है। जबकि उत्तरोत्तर विकास और विस्तार पूरी तरह से भाग ले रहे देशों में दिखाई पड़ता है, काम चलाऊ और घटती बढ़ती वृद्धि नए वैश्वीकृत ढांचे में ठीक बैठने के प्रयास में लगे कुछ देशों में देखी जाती है, तथा उपेक्षा एवं गिरावट ऐसे देशों में देखा जाता है जो विकट समस्याओं से निकलने में अक्षम हैं जैसे वस्तु मूल्य एवं ऋण। वर्तमान भूमंडलीकरण प्रक्रिया का विषम और असमान स्वरूप विश्व के अमीर और गरीब लोगों के बीच, विकसित और विकासशील देशों के बीच तथा लाभ.हानियों के वितरण में देशों के बीच विशाल भिन्नताओं में व्यक्त होता है। देशों के बीच ध्रुवीकरण के साथ ही उसके भीतर वर्धमान आय असमानता का भी जन्म हुआ है। भारत में 1993 और 2000 के बीच ग्रामीण क्षेत्रों की बजाय शहरी क्षेत्रों के बीच बढ़ते भेद का पता चलता है (डैटॅन एवं द्रेज़ 2002)।

MAADHYAM IAS

सोचिए और कीजिए 20.6

शहरी प्रव्रजन कोई नई दृश्यघटना नहीं है बल्कि एक चालू प्रक्रिया है। क्या आप मानते हैं कि शहरी प्रव्रजन हाल के दशकों में बढ़ा है? उसके कारण संक्षिप्त में बताएं।

20.6 भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक आयाम

भूमंडलीकरण का हमारी सभी संस्कृतियों एवं हमारे रहने के तरीकों पर एक गहरा प्रभाव पड़ा है। हम जो खाते हैं और जिस तरीके से हम अपना खाना पकाते हैं, हम जो पहनते हैं और वह सामग्री जिससे हमारे वस्त्रादि बनते हैं, सत्रांत जो हम सुनते हैं पुस्तकें जो हम पढ़ते हैं यहां तक की भाषा जो हम दूसरो से बातचीत में प्रयोग करते हैं, सबको इसने प्रभावित किया है। भूमंडलीकरण ने कुछ भाषाओं को विलुप्त (मृत भाषा) अथवा अप्रचलित कर दिया है जैसे लैटिन। साथ ही, आज लोग पहले के मुकाबले कहीं अधिक द्विभाषी अथवा बहुभाषी हैं। अंग्रेज़ी हांलाकि विविध रूपों में (यथा ब्रिटिश इंग्लिश अमेरिकन इंग्लिश, इण्डियन इंग्लिश) लोक भाषा बन गई है और दुनिया में अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। सांस्कृतिक एकरूपता और सांस्कृतिक अनेकरूपता के बीच का तनाव आज भी विश्वव्यापी

आदान प्रदान की मुख्य समस्या है (अप्पादुरई ए. 2003)। जबकि मैक लुआन जैसे विद्वान विश्व एकीकरण और विश्व ग्राम जो कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से जन्म ले सकता है और परिणामस्वरूप सीमाएं लांघकर एकीकरण की बात करते हैं।

जबकि मैक लुआन जैसे विद्वान विश्व एकीकरण और विश्व ग्राम जो कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया से जन्म ले सकता है और फलस्वरूप सीमाएं लांघकर सांस्कृतिक एकीकरण की बात करते हैं तो सांस्कृतिक उपेक्षा अथवा सांस्कृतिक बहिष्करण संबंधी आशंकाएं भी सामने आती हैं। वस्तुओं, विचारों और लोगों व पूंजी का विश्वव्यापी प्रवाह अनेक तरीकों से राष्ट्रीय संस्कृति पर एक खतरे के रूप में देखा जा सकता है (मानव विकास रिपोर्ट 2004)। इस भाग में, आइए भूमंडलीकरण के कुछ सांस्कृतिक आयामों पर नजर डालते हैं।

क) सांस्कृतिक हस्तक्षेप की तीव्र गति

सांस्कृतिक परिवर्तन अथवा सांस्कृतिक गतिवाद सदा ही अन्य संस्कृतियों के साथ एक परस्पर क्रिया का परिणाम रहा है। हांलाकि व्यक्तिगत तौर पर संस्कृतियों में सजातीयता पर जोर रहता है परंतु संस्कृतियों की दीवार अक्सर टूटती रहती है। मिलन की प्रक्रिया से संस्कृति में विविधता आती है और इसमें लगातार परिवर्तन होता रहता है। सांस्कृतिक गतिवाद एक तालमेल की प्रक्रिया का परिणाम है साथ ही सांस्कृतिक सहजगुणों को गृहति करने और अनुकूल बनाने की प्रक्रिया का भी तथा प्रायः में सहजगुण जो गृहीत एवं अनुकूलित किए जाते हैं। उन संस्कृतियों से आते हैं जो अननुरूप, दूरस्थ एवं अन्य देशीय होती हैं।

ऐतिहासिक रूप से, सांस्कृतिक गतिवाद वहां सर्वाधिक रहा है जहां व्यापार एवं लेन देन सामान्यतया प्रचुर एवं पाक्षिक रहा है। राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संस्कृतियां निरपवाद रूप से अन्य संस्कृतियों से विभिन्न घटकों के आत्मसातीकरण का परिणाम होती है, घटकों का एक संयोजन जो कि सांस्कृतिक हस्तक्षेप का ही परिणाम होता है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बन्दरगाह एवं नदी तट ऐतिहासिक रूप से संस्कृतियों एवं सभ्यता के केन्द्र रहे है। आज उच्च प्रौद्योगिकी संचार युग में, जिसमें सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने संचार को अतीत की तुलना में अधिक सरल द्रुत और सस्ता बना दिया है, अधिकाधिक सांस्कृतिक अन्तर्वेशन हो रहा है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण के गतिवर्धन ने सांस्कृतिक परिवर्तन की गति को बढ़ा दिया है।

सांस्कृतिक हस्तक्षेप वस्तु विनिमय के माध्यम से आज इतना व्यापक है कि मौलिक और आयातित गुणों के बीच भेद करना असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। इस्तनबुल मे 'तुर्किश कॉफी' पीते एक व्यक्ति पर विचार करें। कॉफी इथोपिया में पैदा हुई चीनी भारत में या न्यूग्रिबी में, पॉर्सियन कप चीन में, रेस्तरां में मेज़ पर बिछा कपड़ा सूत से बना है जो कि मध्य अमेरिका में पालित एक पौधे से उत्पन्न होता है और रेस्तरां स्वयं एक फ्रांसीसी आविष्कार है। इसी प्रकार, बीमारियां जो विश्व के एक भाग में पैदा हुई, विश्व के अन्य भागों को भी निर्यात हो जाती हैं। उदाहरण के लिए अफ्रीका से निर्यातित एच आई वी/एड्स विश्व के शेष भाग में पहुंचा। सार्वभौमिक संगीत का अर्न्तेवशन विश्व की विभिन्न संस्कृतियों के बीच परंपरागत संगीत के उपान्तीकरण में पारित हुआ है। आज पॉप संगीत व उसके स्थानीय रूप सभी सामाजिक परिवेशों में शादियों से लेकर धार्मिक तीज त्योहारों व जन्मदिन समारोहों में सुना जा सकता है।

ख) संस्कृति का वैश्वीकरण

व्यापार समझौतों ने मानव समाज के संघबद्ध आक्रमण एवं नियंत्रण के समक्ष सभी अवरोधों एवं प्रतिरोधों को समाप्त कर दिया है। दूर संचार साधनों के उदारीकरण के सहारे समष्टि संस्कृति दुनिया भर राज करने को तैयार है। आज सारा संसार एक ही टी वी कार्यक्रमों, फिल्मों, समाचार, संगीत, जीवनशैली एवं मनोरंजन से तारबद्ध हो जुड़ गया है। सैटेलाइट केबल फोन वॉकमैन, वीसीडी, डीवीडी एवं खुदरा बिक्री महायंत्र तथा मनोरंजन प्रौद्योगिकी के चमत्कार एवं आश्चर्यजनक वस्तुएं संस्कृति के जन विपणन एवं उपभोक्ता संस्कृति के विस्तार को बढ़ावा दे रही हैं। इससे एक एकरूपता विश्व संस्कृति का जन्म हो सकता है। संचार उद्योग के उदाहरण में लाभ और प्रतिस्पर्धा की तर्कसंगति ने संचार निगमों को संचार माध्यमों एवं अंतरिक्ष बाज़ारों को विर्स्तीण करने तथा राष्ट्रीय समुदायों की प्राचीन सीमाओं एवं सीमान्तों को समाप्त करने हेतु प्रेरित किया हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति एवं बाज़ारों के सुधार के साथ ही पृथ्वी एक विश्व ग्राम में बदल गयी है। यह उपभोक्तावाद में वृद्धि के चलते विश्व जनसंस्कृति के उद्गमन में भी पारित हुआ है। यह स्थानीय सांस्कृतिक विकसित से परिहार कर दुनियाभर में प्रचलित जीवनशैलियों में बढ़ती समानताओं का रूप भी ले सकता है।

वर्तमान विश्व संचार प्रौद्योगिकियां संस्कृति के वैश्वीकरण की ओर प्रवृत करती हैं जो कि समुदाय एवं पारंपरिक संस्थानों के अर्थ एवं जीवन के मूल्यों को मुक्त रूप से क्षति पहुंचा सकता है। उदाहरण के लिए भारत में इसने कहानी सुनाने की परंपरा समाप्त कर दी है जिसके माध्यम से वृद्धजन अपने अनुभव, संस्कृति, परंपराएं मौखिक इतिहास और जीवनदृष्टि बच्चों तक पहुंचाते थे जिन्हें कि स्थान एवं अपने उद्गम का बोध होता था (मैण्डर 1996) । इसी प्रकार कंप्यूटर मानव संक्रियाओं हेतु अनुकल्प बन गए।

MAADHYAM IAS

हमारी अपनी संस्कृति योजनाबद्ध रूप से विनियोजित एवं पण्यीकृत की जा रही है। प्रसंग से उखड़े और अपनी जड़ों से कटे लोक एवं जनजातीय पर्वों का इलैक्ट्रानिक माध्यमों के सहारे संवेष्टन (packaging) एवं विपणन (marketing) किया जा रहा है। (पाणिकर 1995)।

ग) संकर संस्कृति का विकास

सिक्के के दो पहलूओं की तरह कई बार भूमंडलीकरण कभी तो सबको साथ लेकर चलता है और कभी असमानता और अलगाव पर बल देता है। यह बात सांस्कृतिक प्रभाव के विषय में भी सत्य है जिस प्रकार भूमंडलीकरण एक मात्र विश्व संस्कृति अथवा एक एकरूपता संस्कृति की ओर प्रवृत्त कर सकता है, यह नए कम परिवर्तनों, नए संयोजनों, नए विकल्पों एवं नई संस्कृतियों की ओर भी प्रवृत्त कर सकता है (ग्रिफिन, 2004)। इस प्रकार विश्वव्यापी सम्मिलन एवं संक्रियाएं आविष्कार कुशल नए सांस्कृतिक स्वरूपों को जन्म दे सकती है। इस अर्थ में एक तीसरी संस्कृति अथवा संकर संस्कृति जन्म लेती है जिसकी पहचान है सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में निरन्तरताओं एवं परम्पराओं के साथ सह-अस्तित्व में सामाजिक नवप्रवर्तन एवं परिवर्तन।

घ) सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पुनरुत्थान

भूमंडलीकरण सक्रिय सांस्कृतिक अभियान चलाए जाने को भी बढ़ावा देता है ताकि स्थानीय पहचानों की रक्षा की जा सके। राष्ट्र विश्व सांस्कृतिक एकीकरण के अस्वीकार करते हैं और लोग स्थानीय इतिहासों, पहचानों एवं परंपराओं के प्रति निष्ठावान रहते हैं। उदाहरण के लिए यूरोपीय देशों ने अमेरिकीकरण के खतरे के विरूद्ध अभियान चलाया है और यूरोपीय संस्कृतियों की विविधता भिन्नता की रक्षा की है । यह भी संभव है कि लोगों के कुछ ऐसे

वर्गों द्वारा देश के भीतर प्रयास किए जाएं जो विदेशी संस्कृति को अंगभूत अथवा अंगाधिकार करने से इंकार करते हों और साथ ही , इस प्रवृत्ति के खिलाफ़ व्यापक आन्दोलन भी चलाते हों। उदाहरण के लिए शिव सेना के कार्यकर्त्ता भारत में वैलेन्टाइन-डे समारोहों के खिलाफ़ अभियान चलाते रहे हैं।

सोचिए और कीजिए 20.7

भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक आयाम का कौन सा पहलू आप समझते हैं आपके क्षेत्र में अधिक प्रभावी है . संस्कृति का वैश्वीकरण, संस्कृति का संवरण अथवा सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पुनरुत्थान? अपने तर्क को अखबार अथवा संचार माध्यम की रिपोर्टों से पुष्ट करें।

20.7 सारांश

भूमंडलीकरण जैसा कि हमने देखा, एक दूरगामी प्रक्रिया है जिसका प्रभाव यद्यपि भिन्न भिन्न अंशों में समकालीन मानव जीवन के हर क्षेत्र में पड़ा है। इस इकाई के आरम्भिक पाठांशों में भूमंडलीकरण की परिभाषाओं एवं अभिलक्षणों पर अपनी चर्चाओं के माध्यम से हमने जाना कि भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण का मूल अर्थ है दुनियाभर के देशों के बीच व उनके भीतर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितिकीय आदि शब्दों में बढ़ी परस्पर क्रिया एवं अन्तर्सम्बद्धता। इकाई के बाद के हिस्से में भूमंडलीकरण के आर्थिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक आयामों पर हमने एक विस्तृत दृष्टि डाली। भूमंडलीकरण के आर्थिक आयामों के तहत उदारीकरण, निजीकरण, विदेशी सीधा निवेश, अधिरचना विकास, सूचना प्रौद्योगिकी विस्तार, आदि जैसे पहलुओं पर चर्चा की गई है। हमने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार – विश्व व्यापार संगठन और बौद्धिक सम्पदा अधिकारों हेतु नियामक विधितंत्र के विषय में भी पढ़ा। भूमंडलीकरण के सामाजिक आयामों के बीच हमने विभिन्न सामाजिक पहलुओं पर दृष्टिपात किया जिनका कि प्रभाव सामाजिक प्राणियों के दैनिक जीवन पर पड़ता है। अन्ततोगत्वा हमने भूमंडलीकरण के सांस्कृतिक आयामों पर भी नज़र डाली। हमने देखा कि किस प्रकार एक सदा वर्धमान प्रति से परस्पर क्रियाशील बहुविध संस्कृतियां और विभिन्न संस्कृतियां कसौटियों पर परखती दशाओं के अन्तर्गत स्थापित हो रही हैं। साथ ही विश्व के अनेक भागों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का पुनरुत्थान भी हो रहा है।

20.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

खोर, मार्टिन (2001), *रीथिकिंग ग्लोब्लाइज़ेशन : क्रीटिकल इश्यूज़ एण्ड पॉलिसी चॉइसिज़*, बुक्स फॉर चेन्ज : बंगलौर

भट्टाचार्य, पुरूषोत्तम एवं अजिताभ, राय चौधरी (सं.2000), *ग्लोब्लाइज़ेशन एण्ड इण्डिया : ए मल्टीडाइमेन्शनल पर्सपैक्टिव*, लान्सर्स बुक्स : नई दिल्ली।

हेजल, हैण्डरसन (1999), *बीयॉन्ड ग्लोब्लाइज़ेशन : शोपिंग ए सस्टेनेबल ग्लोबल इकॉनामी*, वैस्ट हार्टफोर्ड, सीटी : कुमारियन

इकाई 21
उदारीकरण और संरचनात्मक समायोजन कार्य

इकाई की रूपरेखा

21.1 प्रस्तावना
21.2 विषयान्तर्गत शब्दों की परिभाषा
21.3 आन्तरिक राजनीतिक संकट
21.4 बाह्य संकट
21.5 उदारीकरण और चालू खाता घाटा
21.6 सरकार की संकट प्रबंधन योजना
21.7 राजस्व मुद्दे
21.8 बाह्य क्षेत्र
21.9 आर्थिक सुधार – मूल्यांकन
21.10 सारांश
21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

पिछली इकाई में हमने भूमंडलीकरण के विभिन्न आयामों के विषय में पढ़ा। भूमंडलीकरण के आर्थिक आयामों की चर्चा करते समय हमने उभरते आर्थिक व्यय में संरचनात्मक समायोजक कार्यक्रम के महत्त्व पर प्रकाश डाला था। प्रस्तुत इकाई में हम इस कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे ताकि आपः

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

- उदारीकरण और संरचनात्मक समायोजन शब्दों को स्पष्ट कर सकें;
- उन संकटों पर सूक्ष्म दृष्टि डाल सकें जिन्होंने उदारीकरण की ओर प्रवृत्त किया; और
- राजस्व एवं बाहरी-क्षेत्र उदारीकरण में अन्य मुद्दों के निहितार्थों का विश्लेषण कर सकें।

21.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम पहले ही जान चुके हैं कि भूमंडलीकरण क्या है, और भूमंडलीकरण के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आयाम क्या हैं। उसमें यह उल्लेख किया गया कि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के जोर से एक नई आर्थिक नीति और संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम अपनाने से 1990 के आरंभ के दशक में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त-संस्थाओं के आदेश पर विशेष बल मिला। इसने भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण एवं निजीकरण की प्रचण्डता को बढ़ा दिया। प्रस्तुत इकाई में हम उदारीकरण और संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम संबंधी नीतियों पर भारतीय संदर्भ में चर्चा करेंगे। हम उन विभिन्न दशाओं का पता लगायेंगे जिन्होंने संरचनात्मक समायोजन नीतियों और उदारीकरण के अंगीकरण को प्रोत्साहित किया। आगामी भाग में हम उन विभिन्न अर्थों पर भी चर्चा करेंगे जो अर्थव्यवस्था के लिए एवं फलतः समाज के लिए उदारीकरण नीतियों में निहित हैं।

सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन जो 1991 से भारतीय अर्थव्यवस्था में आया है, बाज़ारों एवं राज्य की सापेक्ष भूमिकाओं से संबंध रखता है। चूंकि यह कार्यक्रम स्वयं एक दशक से भी अधिक चल चुका है और इन आर्थिक निर्णयों के मध्यावधि परिणाम अब हमें उपलब्ध हैं, इस बात का अध्ययन करना संभव है कि हमने क्या प्राप्त किया है और क्या भविष्य बनने जा रहा है। पूर्ववर्ती निश्चय ही परवर्ती को निर्धारित करेगा।

सुधार कार्यक्रम के मूल्यांकन की एक विधि परिणाम "पूछना"तथा आर्थिक सूचकों की वर्तमान स्थिति की जांच करना हो सकती है। अर्थशास्त्री सुधार प्रक्रिया को जांचने के विभिन्न मानकों पर सहमत नहीं है। इस इकाई में, बहरहाल हम स्वयं को सुधार कार्यक्रम संबंधी समष्टि अर्थशास्त्र की जांच करने तक ही सीमित रखेंगे और कुछ ऐसे परिवर्तनों पर नज़र डालेंगे जिनके ईदगिर्द आर्थिक सुधार विषयक बहस ने जन्म ले लिया है।

21.2 विषयान्तर्गत शब्दों की परिभाषा

आइए, "उदारीकरण"(Libralisation) से हम क्या समझते हैं को सही निरूपित करने से आरंभ करते हैं। आम बोलचाल में उदारीकरण उन नियंत्रणों में ढील देना है जो कि सरकार आर्थिक शक्तियों पर लगाती है। घोष (1998 : 295) के अनुसार, उदारीकरण का अर्थ है, "आर्थिक कार्यकलाप के सरकारी नियमितीकरण एवं राज्य हस्तक्षेप हेतु गुंजाइश को कम करना। सिवाय निजी संपदा अधिकारों की गारण्टी दिए जाने संबंधी पूर्णरूपेण आवश्यक विषय में। और आर्थिक प्रक्रियाओं को निर्धारित करने में बाज़ार शक्तियों के अनियंत्रित संचालन हेतु अनुमति दे देना।" इसका अर्थ अर्थव्यवस्था का माल एवं सेवाओं के बहिर्प्रवाह हेतु खुलना अथवा घरेलू नियंत्रणों में ढील हो सकता है। सिद्धांततः यह संभव है कि उदारीकरण केवल किसी एक क्षेत्र में ही किया जाए – घरेलू अथवा बाहरी – परन्तु अधिकांश उदाहरणों में, जैसा कि भारत में हैं, घरेलू ओर बाहरी मोर्चे एक साथ खोले गए हैं।

संरचनात्मक समायोजन दूसरी ओर उन परिवर्तनों में संबंध रखता है जो क्षेत्रीय निहितार्थ रखते हैं – कर दरें, घाटा एवं ऋण अनुपात, रियायत स्तर, माल एवं सेवाओं के प्रावधान में सार्वजनिक क्षेत्र का हस्तक्षेप, आदि। "संरचनात्मक समायोजन नीतियों को बाह्य आघातों के प्रति नीति प्रतिक्रियाओं के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जोकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को आघातपूर्व विकास पथ पर फिर से लाने के उद्देश्य को लेकर चलाई जाती हैं। विकास पथ पर वापस आना, फलतः बाह्य आघातों के प्रतिकूल प्रभावों के उपरांत भुगतान-शेष (BOP) में सुधार आवश्यक बना देता है, क्योंकि किसी देश की भुगतान शेष स्थिति उसके आर्थिक विकास को बलपूर्वक रोक देती है। .... एक बहत्तर परिभाषा में आन्तरिक आघातों के प्रति समायोजन भी शामिल होंगे जिनका मूल अर्थ अनुचित नीतियों में निहित हो सकता है। (बालासा 1982 तुल्य चन्द्रशेखर अन्डेरिड : 1)। क्या इसका अर्थ है बाज़ार शक्तियों के हाथों में छोड़ दी गई अर्थव्यवस्था अथवा क्या इसमें सरकार ही बाज़ार के कार्य व्यापार को नियंत्रित करती है? क्या यह सरकारी खर्च और करों में सीधे हस्तक्षेप करता है ताकि परिणामों को उस प्रकार ही सुनिश्चित किया जा सके जिस प्रकार कि एक समाज-नियोजक करना चाहेगा। वे कौन से क्षेत्र हैं जिनको सरकारी खर्च हेतु प्राथमिकता दी जाती है? घाटों और सामाजिक क्षेत्रों के प्रति उसका क्या दृष्टिकोण हैं? ब्याज दर और विनिमय दर बाज़ार निर्धारित हैं अथवा संस्थान निर्धारित? इन प्रश्नों के उत्तर अर्थव्यवस्था के प्राधार को व्यापक रूप से परिभाषित करेंगे। पुनः सिद्धांत रूप में उदारीकरण के बग़ैर संरचनात्मक समंजन लाना असंभव होगा और संरचनात्मक समंजन के बग़ैर उदारीकरण।

भारतीय अर्थव्यवस्था में तथापि 1991 से आरंभ अवधि में उदारीकरण – घरेलू एवं बाह्य – के साथ-साथ संरचनात्मक समंजन संबंधी योजना भी देखी गई है जो कि हमारी अर्थव्यवस्था द्वारा अपनाए जा रहे रास्ते में एक निश्चायक विराम का संकेत देती है।

जुलाई 1991 में रुपये का अवमूल्यन भारतीय आर्थिक विकास में एक उल्लेखनीय घटना थी क्योंकि इस प्रक्षर का प्रबल प्रभावी अवमूल्यन पहले सिर्फ एक बार 1968 में किया गया था। सामान्य तौर पर रुपया 18 प्रतिशत अवमूल्यित हो गया और इसका अर्थ था वास्तविक रूप से रुपये के मूल्य में 12.4 प्रतिशत की गिरावट (विरमानी 2001 : 31)

वर्ष 1991 से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था में एक निर्धारित सरकारी विनिमय दर होती थी, और भारतीय रिज़र्व बैंक (RBI) विदेशी मुद्राओं को स्थिर मूल्यों पर बनाए रखता था। एक

MAADHYAM IAS

निर्धारित सरकारी विनिमय दर का नुकसान यह है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में मुद्रा की क्रय शक्ति में सममूल्यता कायम नहीं रखती है। यदि भारत में मुद्रा स्फीति की दर, उदाहरण के लिए, अमेरिका में मुद्रा स्फीति की दर से अधिक है तो इसका मतलब होगा कि इससे डॉलर की तुलना में रुपये की क्रय शक्ति घट जायेगी और इसी वजह से रुपयों में डॉलर खरीदने हेतु वांछित राशि बढ़ जायेगी। ऐसा निर्धारित विनिमय दर प्रणाली में नहीं होता था।

तार्किक रूप से, सरकारी स्रोतों से डॉलर सस्ता खरीदने में और उसे मंदी में चल रहे बाज़ार में बेचने से लाभ ही होता। सरकार विदेशी मुद्रा प्रत्याहारों पर कठोर प्रतिबंधों द्वारा इस परिदृश्य में नियंत्रण लागू करती। तथापि, विदेशी विनिमय हेतु एक बहुत सक्रिय मंद बाज़ार अस्तित्व में था, जो कि विश्व बाज़ार में रुपये के सही मूल्य को प्रकट करता था।

तथापि यह घटनाचक्र की पराकाष्ठा थी जो कि वास्तविक अवमूल्यन से काफ़ी पहले जन्मी थी (मार्तिन्यूसें 2001)। आइए, उन आंतरिक एवं बाह्य कारकों पर नज़र डालते हैं जिन्होंने इस 1990-91 संकट की उत्पत्ति की ओर प्रवृत्त किया।

21.3 आन्तरिक राजनीतिक संकट

वर्ष 1989 में, आम चुनावों में राजीव गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस पार्टी की हार हुई और पूर्व कांग्रेसी विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व वाली एक गठबंधन सरकार सत्ता में आयी। तथापि, गठबंधन सरकार के भीतर अन्तर्कलह के चलते श्री सिंह ने संसद में बहुमत खो दिया और उस कांग्रेस की मदद से चन्द्रशेखर प्रधानमंत्री बन गए जो कि अब तक उनकी प्रतिद्वंद्वी थी। उनकी सरकार 1990 के अंत तक गिर गई और आम चुनावों की घोषणा कर दी गई क्योंकि सदन में कोई भी एक दल अथवा नेता अपना बहुमत सिद्ध नहीं कर सका। मई 1991 में, कांग्रेस एक चुनाव में सबसे बड़ी संसदीय पार्टी के रूप में उभरी। इसी दौरान चुनाव अभियान में राजीव गांधी की हत्या हो गयी। इस बार नरसिम्हा राव प्रधानमंत्री बने और यह उन्हीं का मंत्रिमण्डल था जो भारतीय अर्थव्यवस्था के नीतिगत ढांचे में सार्थक परिवर्तन लाया।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

21.4 बाह्य संकट

देश के भीतर राजनीतिक अनिश्चितता की तुलना अन्तर्राष्ट्रीय रणक्षेत्र में व्याप्त अशान्ति से की जाने लगी जिसके कि दो पहलू भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रति महत्वपूर्ण थे प्रथम था सोवियत संघ का उसके घटक राष्ट्रों एवं उप-राष्ट्रों में विभाजित हो जाना। सोवियत संघ और उसके पूर्वी यूरोपीय पड़ोसियों के भारत के साथ काफ़ी मज़बूत संबंध थे, जो कि रुपया मूल्य पर ही कायम थे, यानी पूर्व-सोवियत संघ के साथ व्यापार डॉलर जैसी दुर्लभ मुद्रा में नहीं होता था। इसका अर्थ था कि इन देशों और भारत के बीच व्यापार के लिए दुर्लभ मुद्राओं की ज़रूरत नहीं होती थी और वह परस्पर लाभदायक होता था। पूर्वी यूरोप को होने वाले भारतीय निर्यातों का अधिशेष अंशतः पूंजी उपकरण एवं भारत द्वारा आयातित रक्षा संभार के धन की आवश्यकता पूरी करता था। 1991-92 तक ये व्यवस्थाएं भंग हो गयीं और भारत को उपलब्ध सीमित दुर्लभ मुद्रा की हालत और खस्ता हो गई।

लगता था, इतना ही काफी नहीं था, बाह्य लाभ पर हमारे संकट उस वक्त और बढ़ गए जब अगस्त 1990 में इराक ने कुवैत पर हमला करने की ठान ली। भारत पेट्रोलियम उत्पादों संबंधी अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु अधिकांश रूप में खाड़ी से होने वाले कच्चे तेल के आयातों पर ही निर्भर करता है। अगस्त 1990 और जनवरी 1991 के बीच पांच माह की अवधि में कच्चे तेल के दाम 65 प्रतिशत तक बढ़ गए और भारत का आयात खर्च भी उसी हिसाब से बढ़ गया। भारत पर इसका प्रभाव दुगना पड़ा क्योंकि इराक़ एवं कुवैत दोनों के साथ उसके दीर्घावधि तेल आयात अनुबंध निष्फल हो गए और भारत को काफी ऊंचे दामों पर विश्व नकद तेल बाज़ार में जाकर तेल खरीदना पड़ा (विरमानी 2001 : 4)।

सोचिए और कीजिए 21.1

उन राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर चर्चा करें जिन्होंने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय वित्त-संस्थाओं द्वारा नियोजित आर्थिक संरचनात्मक कार्यक्रम अपनाने पर मज़बूर किया।

21.5 उदारीकरण एवं चालू खाता घाटा

वर्ष 1973 एवं 1979 में लगे तेल आघातों (देखें बाक्स 21.1) से ही भारत में एक निरन्तर चालू खाता घाटा देखा जा रहा था परन्तु कुछ लोगों का मानना है कि स्थिति अस्सी के दशक मध्य से बिगड़ी जब राजीव गांधी सरकार ने अनेक मदों पर आयात प्रतिबंधों पर से छूट दे दी। इस पूरे दशक में व्यापार घाटा तेजी से बढ़ा, और कुछ टीकाकारों के अनुसार व्यापार उदारीकरण जो अस्सी के दशक मध्य में शुरू हुआ था उसे रद्द किए जाने की आवश्यकता थी ताकि बढ़ते चालू खाता घाटे पर नियंत्रण पाया जा सके और विदेशी मुद्रा संकट को टाला जा सके (घोष 1991)।

तथापि, 1989-91 में राजनीतिक आर्थिक घटनाक्रम ने व्यापार घाटे को अमान्य कर दिया और भारतीय मुद्रा को समग्रतः कुछ अधिक ही आंक लिया गया। विदेशों में कार्यरत भारतीय कर्मियों द्वारा धन प्रेषण ही देश के लिए विदेशी मुद्रा का प्रमुख स्रोत था। तथापि, इन प्रेषणों में गिरावट आयी, इराक़ युद्ध पश्चात् 1991 में, हुए अंतर्राष्ट्रीय विघटनों एवं भारत में अनिश्चितताएं दोनों ही इसका कारण थे। जून 1991 में, वित्त मंत्रालय में "रेड अलर्ट" घोषित कर दिया गया क्योंकि भारतीय रिज़र्व बैंक के पास विदेशी मुद्रा भण्डार की आपूर्ति क्रमशः घटती हुई मात्र 1 अरब डॉलर रह गयी थी, जो कि मात्र 6 सप्ताह के आयातों का धन चुकाने के लिए ही पर्याप्त था। वित्तीय घाटा, जो अपने खर्चों की तुलना में सरकार के राजस्वों की न्यूनता को दर्शाता है, सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात स्वरूप लगभग 8 प्रतिशत, अब तक का सबसे अधिक रहा। अर्थव्यवस्था में स्फीति दोहरे अंकों में रही (लगभग 12 प्रतिशत)। भारत पहले के ऋणों पर अपनी ऋण सेवा प्रतिबद्धताओं से भी चूकने को था, जो कि उसने बढ़ते व्यापार घाटे हेतु वित्त प्रबंध के लिए अस्सी के दशक के लिए थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बॉक्स 21.1 : 1973 और 1979 में तेल की कमी

प्रथम विश्वव्यापी तेल की कमी 1973 में यॉग किप्पुर अथवा अरब इज़राइल युद्ध के तुरन्त बाद उस वक्त शुरू हुआ जब पैट्रोलियम निर्यातक देश संगठन (ओपेक - OPEC) ने यह घोषणा कर दी कि वे उन देशों को तदन्तर पैट्रोलियम नहीं भेजेंगे जिन्होंने इज़राइल का साथ दिया था, यानि अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में उसके मित्र राष्ट्र लगभग इसी दौरान ओपेक सदस्य देश तेल के लिए विश्वव्यापी मूल्य निर्धारण प्रणाली पर अपनी शक्ति प्रयोग करने को सहमत हो गए ताकि विश्व में तेल की कीमतों को चौगुना किया जा सके। 1974 में वास्तविक तेल मूल्य उछल कर 43 डॉलर प्रति बैरल से भी ऊपर पहुंच गए।

प्रथम तेल की कमी के लगभग पूरे पांच वर्ष बाद, दूसरा आघात शुरू हुआ। यह ईरानी क्रांति के उपरांत घटनाक्रम में हुआ। ईरान में उथल पुथल का मतलब था तेल आपूर्ति में गड़बड़ और विश्व उत्पादन में हानि जो कि पहले ही 1973 के पोताधिरोध से हुई हानि जितनी ही थी। 1978 के अंत से 1979 की समाप्ति तक कम होते गए ईरानी तेल निर्यातों के साथ ही तेल की कीमतें तीन गुनी हो गई – 13 डॉलर से 34 डॉलर प्रति बैरल बढकर। इस मूल्य छेड़छाड़ ने विश्व अर्थव्यवस्था को बेहद प्रभावित किया जिसको कि प्रथम तेल आघात से उबरे अभी मात्र तीन ही वर्ष हुए थे । दूसरे तेल आघात ने ऐसे विश्व पर प्रहार किया जो एक दुर्दम्य स्फीति चक्र में फंसा हुआ था। ये दोनों ही तेल आघात तुलनात्मक रूप से 3-5 वर्ष लेते हुए डटे रहने वाले थे जब तक कि वास्तविक मूल्य दुनिया भर के लगभग सभी देशों की अर्थव्यवस्थाओं को प्रभावित करते हुए महत्वपूर्ण रूप से गिर नहीं गए।

उपर्युक्त परिस्थितियों में भारत अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के पास जाने को बाध्य हो गया ताकि वह बाह्य लाभ समस्या पर विजय पाने में उसकी मदद करे (आचार्य 2001, पिन्टो एवं ज़हीर 2004)। विदेशी मुद्रा संकट ने ही व्यापक रूप से यह माना जाता है कि ऋण मंजूरियों पर बहुपक्षीय शर्तबंधनों (ठीक उसी प्रकार जैसे कि लैटिन अमेरिका एवं अफ़्रीका में थे) के भाग स्वरूप उदारीकरण एवं संरचनात्मक समायोजन की प्रक्रिया को शुरू किए जाने का मार्ग प्रशस्त किया। घरेलू सरकार ने नाजुक विदेशी मुद्रा भण्डार स्थिति का दृष्टांत देकर इन शर्तबद्धताओं के स्वीकरण को सही ठहराया।

भारतीय अर्थव्यवस्था में अनेक परिवर्तनों में जो कि तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के दिशा निर्देशन में किए गए थे, धारा "समेवन" के साथ औद्योगिक लाइसेंस समाप्तिकरण और व्यापार उदारीकरण ही सुधार प्रक्रिया के मुख्य ध्यानाकर्षण केन्द्र थे।

उस समय उठाए गए प्रश्न जिन पर चर्चा की गई थी : सुधारों का क्रम क्या हो और कौन से क्षेत्र को प्राथमिकता दी जाए? तत्काल निबटाई जाने वाली कुछ आन्तरिक समस्याओं को लेकर – बढ़ती मुद्रा स्फीति, वित्तीय घाटा, व्यापार घाटा और अपर्याप्त विदेशी मुद्रा भण्डार– अनेक लागों का कहना था कि उदारीकरण राजकोषिय स्थायित्व की आवश्यकताओं के प्रति अनुपूरक ही रहना चाहिए।

स्थिरीकरण से क्या अभिप्राय है? जब आर्थिक व्यवस्था में कोई आघात की स्थिति पैदा होती है तो आर्थिक कार्यकलाप एक ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित रूप से विचलित हो सकता है– वृद्धि दर धीमी पड़ सकती है, बेरोज़गारी की समस्या खड़ी हो सकती है और अस्फीतिधरो दबावों के बावजूद मुद्रा स्फीति बढ़ सकती है। इससे एक दुष्चक्र पनप सकता है, जिसमें दोनों एक दूसरे को संपोषित करते हों तथा अर्थव्यवस्था के विकास पहलू पथभ्रमित हो सकते हैं।

यह किस प्रकार उपयोगी है? हम कह सकते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में आघात (जैसे कोई युद्ध अथवा प्राकृतिक आपदा) की स्थिति होने पर तेल की कीमतें बढ़ जाती हैं, और यह उत्पादन मूल्य (लागत) में वृद्धि की ओर अग्रसर करता है जिससे मांग घट जाती है। जब मांग घट जाती है तो उत्पादकों को लगता है कि आगामी अवधि में भी मांग में गिरावट ही आयेगी और इस कारण वे अपना निवेश घटा देते हैं और अपने पास मज़दूरी पर रखे गए लोगों की संख्या भी। रोज़गार में लगे कार्मिक वर्ग की संख्या में कमी उपभोग खर्चों को घटा देती है जो कि फुल मांग में और कमी की ओर अग्रसर करती है जिसके परिणामस्वरूप एक दुष्चक्र पनपता है।

ऐसी परिस्थितियों से उबरने का किसी अर्थव्यवस्था के पास एक ही उपाय होता है – किसी स्वायत्त अभिकरण का हस्तक्षेप और अर्थव्यवस्था में मांग को प्रोत्साहन। चूंकि इस अर्थव्यवस्था में किसी भी अकेले समझदार अभिकर्त्ता को अपनी मांग बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन नहीं मिलता है, राज्य ही एक मात्र ऐसा अभिकर्त्ता होता है जो अर्थव्यवस्था के पुनरूद्धार एवं दुष्चक्र विराम को सुनिश्चित करने में रुचि और उसके लिए शासनादेश रखता है। यदि हस्तक्षेप समष्टि रूप में और सतत है तो यह अर्थव्यवस्था को स्थिरता प्रदान करता है और अनेक अर्थशास्त्रियों का कहना है कि स्थिरीकरण अवश्य ही उदारीकरण योजना से पूर्व होना चाहिए। यदि उदारीकरण किया जाता है तो यह अवश्य ही मुद्रा स्फीति, एक राजकोषीय एवं व्यापार घाटा तथा विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ाने संबंधी स्थिरीकरण लक्ष्यों की पूर्ति करता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

21.6 सरकार की संकट प्रबंधन योजना

1991 के तेल की कमी उपरांत घटनाक्रम में जिसके बाद इराक़ द्वारा कुवैत पर हमला किया गया, तत्काल किए जाने वाले कार्य थे : मुद्रा स्फीति घटाना, राजकोषीय एवं व्यापार घाटा कम करना, विदेशी मुद्रा अन्तर्वाह बढ़ाना और अर्थव्यवस्था को मंदी से उबारना खासकर औद्योगिक मंदी से। डॉ. सिंह, केवल के आर्थिक प्रबंधकों के बीच दृष्टिकोण यह प्रभावी था कि उच्च राजकोषीय घाटा अर्थव्यवस्था के अति तापन की ओर प्रवृत कर रहा है – यह अर्थव्यवस्था में कुल मांग को बढ़ा रहा है जिससे मूल्य बढ़ रहें है जो बाह्य लाभ में भी अति प्रवाह दर्शा रहा है व व्यापार घाटा बढ़ा रहा है। बढ़े राजकोषीय घाटे का अर्थ था अपने खर्चों में धन लगाकर सरकार द्वारा अधिक ऋण लिया जाना। इसने अर्थव्यवस्था में ब्याज़ दरों को बढ़ा दिया, और निजी निवेश का "जमघट" लगा दिया।

राजकोषीय घाटा दूसरी ओर एक सुनिश्चित प्रभाव डालेगा – यह ब्याज दर घटा देगा, ब्याज भार कम देगा, अस्फीतिकारी दबाव डालेगा जिससे मूल्य गिर जायेंगे और व्यापार अंतराल घटाने में मदद मिलेगी। चूंकि इन सब बातों के लिए एक परिवर्त्य (राजकोषीय घारा) को ही ज़िम्मेदार माना गया था, यह लेकिन स्पष्ट है कि समायोजन नीति का लक्ष्य राजकोषीय घाटे को कम करना ही था (आचार्य 2001 : 21)।

तीन सामान्यतया अपनाये जाने वाले उपाय हैं: राजस्व घाटा = राजस्व व्यय – राजस्व प्राप्तियां; राजकोषीय घाटा = राजस्व घाटा + शुद्ध पूंजी परिव्यय; और मुख्य धारा = राजकोषीय घाटा – विनिवेश प्राप्तियां – सकल ब्याज चुनौतियां। आर्थिक सुधारों से पूर्व, सरकार के शेष का सबसे अधिक प्रचलित पैमाना था "बजट घाटा"। तथापि, इसे सरकार के अधिव्यय का बहुत ही संकुचित पैमाना पाया गया और इसी वजह से राजकोषीय घाटे को सरकार के अधिव्यय के मानक पैमाने के रूप में अंगीकर किया गया।

यहां दो संबंद्ध प्रश्न उठते हैं – (क) क्या राजकोषीय घाटा कम करने का यह एकनिष्ठ प्रयास था – (ख) क्या इसने (वांछित) परिणाम दिए हैं?

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

ऊपर वर्णित अनुदार आर्थिक सिद्धांत विश्व बैंक द्वारा प्रतिपादित किया गया था और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) ने अर्थव्यवस्था की सभी बुराइयों को राजकोषीय घाटे में वृद्धि से जोड़ा (सरकारी स्थिति हेतु देखें, उदाहरण के लिए आचार्य 2001)। तथापि, रक्षित (1998) ने पाया कि संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के पक्ष में अनुभवजन्य प्रभाव कमज़ोर था – मुद्रा स्फीति की दर और निर्यात आयात अंतर का राजकोषीय घाटे के स्तर से कम ही वास्ता होता था जिससे संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम की नितांत न्यायसंगतता पर प्रश्न खड़ा होता था। घोष (1998) ने महसूस किया कि अर्थव्यवस्था की स्थिरता के लिए जो आवश्यक है वो अधिक व्यापार उदारीकरण नहीं है बल्कि कृषि-संबंधी परिवर्तन हैं, चुंकि भारतीय जनता का बड़ा हिस्सा इसी क्षेत्र पर निर्भर है।

सुधार कार्यक्रम के प्रथम दो वर्षों में केन्द्र ने कड़ी बजट-कटौतियां लागू कीं, जिसका लक्ष्य था रियायतों की संख्या, सामाजिक क्षेत्र व्यय एवं पूंजी खर्चों को घटाना। इसके परिणामस्वरूप, राजस्व घाटे के साथ-साथ राजकोषीय घाटा भी शीघ्र कम हो गया (देखिए तालिका 1)। परन्तु नब्बे के दशक मध्य तक में फिर सुधार पूर्व स्तर पर आ गए। वस्तुतः राजस्व घाटा 1990-91 के आंकड़े से 1998-99 तक लगातार बढ़ता ही रहा। राजकोषीय घाटे में राजस्व घाटे का अंश नीचे 50 प्रतिशत से 78 प्रतिशत तक बढ़ गया। इसका अर्थ है कि अधिशेष सरकारी खर्च परिसम्पति निर्माण के लिए नहीं था बल्कि उपभोग के उद्देश्य से था। तालिका 1 में, जैसा कि स्पष्ट है, लगता है राजकोषीय घाटा स्वयं ही घटता जा रहा है। और यह निश्चय ही प्रसन्नता का विषय है।

तालिका 21.1: केन्द्र सरकार के घाटों में रूझान (सभी मदें सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में)

वर्ष	राजस्व घाटा	मुख्यधारा	राजकोषीय राजस्व घाटा	घाटा राजकोषीय घाटे के अनुपात में
1990-91				
1991-92				
1992-93				
1993-94				
1994-95				
1995-96				
1996-97				
1997-98				
1998-99				
1999-00				
2000-01				
2001-02				
2002-03				
2003-04				

स्रोतः इकॉनामिक सर्वे 2004-05 तालिका 2.1 एवं 2.2 पृष्ठ 19-20 तथा पूर्व अंक।

MAADHYAM IAS

तथापि, आंकड़ों को ध्यानपूर्वक देखने पर एक अलग विवरण सामने आता है। केन्द्र के घाटे केन्द्र व राज्यों को मिलाकर समग्र घाटे का एक भाग मात्र होते हैं। तालिका 21.3 स्पष्ट दर्शाती है कि राजस्व घाटा निरन्तर बढ़ा है और राजकोषीय घाटा उदारीकरण पूर्व आंकड़ों के आसपास ही रहा है। अतः अर्थव्यवस्था के पूर्ण रूप से पुष्ट विकास और दिए गए व्यापक राजकोषीय परिवर्तनों के बावजूद हमें सदा ऐसी ही सरकारें मिलती आयी हैं जो निवेश बहुत अधिक करती हैं और उपभोग बहुत कम। इसके अतिरिक्त, केन्द्र बड़े चुपचाप तरीके से अपनी राजकोषीय ज़िम्मेदारियां राज्यों पर डाल देता है अतः जबकि केन्द्र अपना राजकोषीय निस्पादन सुधारता लगता है, राज्यों को ही सुधार के राजकोषीय बोझ को वहन करना पड़ता है।

किसी भी सरकार के लिए बड़ी समस्या जो वृहद ऋण एवं घाटे प्रस्तुत करते हैं, वो ऋण सेवा प्रदान किए जाने का कार्यभार। वस्तुतः केन्द्र सरकार 4.5 प्रतिशत से भी अधिक ब्याज देयताएं रखती है (सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में)। यह सरकार के सीमित राजस्वों पर एक बड़ा व्यय भार है और अन्य स्रोतों पर खर्चों को निस्पीड़ित करता है।

तालिका 21.2 : केन्द्र व राज्यों के संयुक्त घाटे

वर्ष	राजकोषीय घाटा	राजस्व घाटा
1980-81		
1981-82		
1982-83		
1983-84		

1984-85		
1985-86		
1986-87		
1987-88		
1988-90		
1990-91		
1991-92		
1992-93		
1993-94		
1994-95		
1995-96		
1996-97		
1997-98		
1998-99		
1999-00		
2000-01		
2001-02		
2002-03		
2003-04		

स्रोत : इकॉनामिक सर्वे विभिन्न वर्ष

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

21.7 राजस्व मुद्दे

सरकार इसके बावजूद राजस्वों में बढ़ोतरी कर अपना घाटा कम कर सकती थी – या तो कराधान बढ़ा कर अथवा सार्वजनिक क्षेत्र उद्यमों के ऊंचे लाभों के माध्यम से। सुधार पैकेज़ के हिस्से के रूप में अपना देय को कम करने के लिए, सरकार ने अपने न कमाने वाले उद्यमों को बेचने का निश्चय कर लिया। यथा प्रेक्षित, लेने वाले ही नहीं थे, क्योंकि यही वे कंपनियां थीं जो सरकार द्वारा उस वक़्त अधिगृहीत की गई थीं जब निजी क्षेत्र उन्हें चलाने में अक्षम था। चूंकि विनिवेश सरकार की एक निर्दिष्ट नीति थी, उसने इस बार लाभ कमाने वाली कंपनियों को बेचने का निश्चय कर लिया, जिससे राजस्व के भावी स्रोत बंद हो गए। वर्ष 1999 में, विनिवेश एवं निजीकरण हेतु एक योजनाबद्ध नीति दृष्टिकोण अपनाने और सरकार के विनिवेश कार्यक्रम को नयी प्रेरणा प्रदान करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा विनिवेश विभाग बना दिया गया।

कर यानी टैक्स सरकार के लिए राजस्व का प्रमुख स्रोत होते हैं। संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के शुरुआती दौर में सुधार उपायों की एक श्रृंखला शुरू की गई थी – प्रत्यक्ष के साथ साथ अप्रत्यक्ष कर मोरचे पर भी। कर दरें यथेष्ट रूप से इस आशा के साथ घटायी गईं कि घटी कर दरें अधिक कर पालन में फलित होंगी। इसके अतिरिक्त, गैर आय ताकि कर देयता को निर्धारित किया जा सके क्योंकि व्यापक रूप से यह माना जाता है कि मोबाइल फोन, लक्ज़री कार, आदि के स्वत्व जैसे ग़ैर आय मानदण्ड अपनाकर कर आधार बढ़ाने के प्रयास किए गए। आय का समग्रतः कम विवरण ही दिया जाता है।

तथापि इन सभी मानदण्डों के बावजूद कर राजस्वों का ह्रास और प्रगतिरोध ही देखने में आया सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में कर लिए जाने पर। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अनुपात सुधारपूर्व काल तक वापस पहुंचने में असफल रहा, जिसने सरकार की राजकोषीय स्थिति को गंभीर रूप से प्रभावित किया (देखें तालिका 21.3)। ह्रास के एक हिस्से का कारण घटी *कर/शुल्क* उग्राहियों माना जा सकता है क्योंकि उदारीकरण प्रक्रिया के लिए आवश्यक था निर्यात शुल्क एवं करों का घटाया जाना।

बहरहाल यहां एक बात हर्षित करने वाली है– प्रत्यक्ष करों का अंश सुधार अवधि की शुरुआत में 19 प्रतिशत जैसे निम्न स्तर से 2003-04 में सम्मानजनक 41 प्रतिशत तक पहुंच गया है। यहां महत्वपूर्ण यह है कि कर राजस्व राशि की उगाही प्रत्यक्ष करों से की जाये वरना कर व्यवस्था को "अपकर्षक" अर्थात् कम आय पर ज़्यादा कर वाला माना जायेगा। अप्रत्यक्ष कर लोगों द्वारा अर्जित आय पर ध्यान दिए बग़ैर उतना ही बोझ डालते हैं, जो कि भार आय के साथ बढ़ना चाहिए।

तालिका 21.3: कर राजस्व

वर्ष	कर राजस्व सकल कर राजस्व के प्रतिशत के रूप में		कर राजस्व सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में		
	प्रत्यक्ष	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष	अप्रत्यक्ष	कुल
1990-91	19.1	78.4	1.9	7.9	10.1
2003-04 (अनन्तिम)	41.4	57.9	3.8	5.3	9.2

अपने खर्चों के लिए धन जुटाने हेतु सरकार के राजस्व विकल्पों पर चर्चा करने के बाद आइए अब कर्ज़ लेने संबंधी मुद्दों पर चर्चा करते हैं – ऋण और उसकी धारणीयता। यहां हम केन्द्र की ऋण देयता स्थिति पर दृष्टि डालेंगे और यह हमें बढ़ते राजस्व और राजकोषीय घाटा विषयक चर्चा से भी जोड़ेगा। जब कर और ग़ैर कर राजस्व सरकार की व्यय अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए अपर्याप्त होता है तो घाटे के लिए धन/प्रबंध प्रचलन में मुद्रा को बढ़ा कर (अधिक मुद्रा छाप/ढाल कर) अथवा कर्ज़ लेकर – ऋण बढ़ाकर किया जा सकता है। पहले विकल्प में एक प्रकार के खतरे का सामना करना पड़ सकता है – यह अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति की ओर प्रवृत्त कर सकता है। चूंकि सुधार के लक्ष्यों में एक मुद्रा स्फीति पर नियंत्रण रखना भी था, घाटे का मौद्रीकरण, कम से कम संपूर्णतः नहीं, कोई युक्तिसंगत विकल्प नहीं था।

MAADHYAM IAS

अगला विकल्प था बाज़ार ऋणदान बढ़ाना। यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष मुद्रास्फीति प्रभाव नहीं हो सकता, दूसरा पहलू यह है कि सरकार की ऋण देयता, उसके ऋण दायित्वों एवं राजकोषीय शोधता में भी बढ़ोतरी हुई है। पटनायक (1986) ने, तथापि, दर्शाया कि केन्द्रीय बैंक से उधार लेने की प्रक्रिया के विपरीत बाज़ार में सीधे बिक्री द्वारा घाटे की क्षतिपूर्ति करना अनिवार्यतः कम (अथवा अधिक) मुद्रास्फीति नहीं होता जब ऋण बाज़ार चुकता नहीं करता और ऋण की अत्याधिक आपूर्ति होती है जिससे कि बैंक जूझते रहते हैं।

भारत में ऋण – सकल घरेलू उत्पाद (GDP) अनुपात सुधार अवधि में बढ़ा परन्तु यह मुख्य रूप से घरेलू मोरचे पर रहा (देखें तालिका 21.4)। बाह्य ऋण (जी डी पी के अनुपात में) वस्तुतः 1990-91 में 5.5 प्रतिशत से गिरकर 2003-04 में 1.7 प्रतिशत रह गया। जबकि ऋण में बढ़ोतरी वांछित नहीं होती, यह वास्तविकता है कि इसमें से अधिकंश भाग घरेलू ही हैं, एक लाभ प्रदान करती है – कम से कम ऋण सेवा तो घरेलू मुद्रा में होती है। इसका अर्थ है कि अन्तर्राष्ट्रीय साहूकारों को ऋणों के पुनर्भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा की आवश्यकता नहीं

होती और इससे भारतीय अर्थव्यवस्था की बाह्य भेधता घटती है। तथापि ऋण में चिरस्तन उछाल बेशक घरेलू ही सही अभीष्ट नहीं होता क्योंकि यह अर्थव्यवस्था को राजकोषीय संकट के प्रति भेद्य या असुरक्षित बना सकता है। (रक्षित 2004, पिन्टो एवं ज़हीर 2004, सिंह एवं श्रीनिवासन 2004)।

तलिका 21.4 : केन्द्र की देयताएं (जी डी पी की प्रतिशतता के रूप में)

वर्ष	आन्तरिक देयताएं	बह्य ऋण (अप्राप्त)*	कुल अप्राप्त देयताएं
1990-91			
			62.6

स्रोतः इकॉनामिक सर्वे 2004-05, पृष्ठ 30

1990-91 के संकट के दौरान उठने वाला चिंतन का दूसरा विषय था बाह्य खाते का प्रबंधन। व्यापार घाटे ने, जो कि अस्सी के दशक तक निरन्तर बढ़ता रहा था और जिसका अर्थ प्रबंध अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अल्पावधि ऋण द्वारा किया गया, कुवैत -इराक़ युद्ध के समय एक भुगतान संकट पैदा कर दिया, जिससे भारत अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण देने को बाध्य हो गया। ऋण शर्तबद्धताओं के भाग स्वरूप भारत को कहा गया कि वह अपने बाह्य क्षेत्र (आयात एवं निर्यात) को उदार बनाए और चालू एवं पूंजी खाते को पूरी तरह विनिमेय बनाए। पूर्व एशियाई संकट के पश्चात् जिसको कई लोगों ने महसूस किया कि एक मुक्त पूंजी खाते द्वारा उत्पन्न नहीं तो उत्तेजित ज़रूर किया गया, भारत ने अपनी गति एक पूर्णतः विनिमेय पूंजी खाते की ओर दर्शायी।

21.8 बाह्य क्षेत्र

बाह्य खाते पर उदारीकरण का अर्थ है देश के अन्दर और बाहर माल का प्रवाह और सरल बनाना। इसमें प्रक्रियाओं के साथ साथ शुल्क दरों में भी कमी अथवा कोटा भी शामिल हो सकती है। विभिन्न वस्तुओं के आयात पर पहले कोटा प्रणाली लागू थी क्योंकि सरकार एक सुनिश्चित बाज़ार में घरेलू उद्योग का प्रस्ताव रखना चाहती थी जिसमें कि वह स्थापित हो सके।

कोटा प्रणाली की समाप्ति का अर्थ था कि माल उचित सीमा शुल्क के भुगतान पर किसी भी मात्रा में आयात किया जा सकता था। सुधार अवधि में, निर्यात के क्षेत्र में काफ़ी वृद्धि हुई, परन्तु व्यापार शेष नकारात्मक ही बना रहा क्योंकि आयात संख्या निर्यात संख्या की अपेक्षा तीव्र गति से बढ़ी (देखें तालिका 5)। तथापि, इसका सकारात्मक पहलू यह है कि 2001-02 से अदृश्यों के शुद्ध अन्तवाहों ने चालू खाता शेष में गति ला दी है।

तालिका 21.5: 'चालू खाता शेष (जीडीपी की प्रतिशतता के रूप में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार शेष	अदृश्यों पर शुद्ध अन्तर्वाह	चालू खाता शेष
1	2	3	4 = 2 - 3	5	6 = 4 + 5
1980-81					

स्रोत : इकॉनामिक सर्वे 2004-05 पृष्ठ110

MAADHYAM IAS

हाल के वर्षों में चालू खाता ओर पूंजी खाता दोनों ही सकारात्मक रहे हैं, जिसका मतलब है कि विदेशी मुद्रा भण्डार तेज़ी से बढ़ते रहे हैं। तालिका 6 दर्शाती है कि गत कुछ वर्षों के पूंजी खाते पर शुद्ध अन्तर्वाह में विदेशी संस्थागत निवेशकों से शेयर बाज़ारों की ओर धन का काफी अन्र्ताह रहा है जिससे विदेशी मुद्रा भण्डार "अमान्य" स्तरों तक बढ़ गए हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का सुझाव रहा है कि भारतीय रिर्जव बैंक के खज़ाने में बढ़ाती विदेशी मुद्रा को आधारभूत ढांचे हेतु आयातों के वित्त प्रबंध में लगाया जाना चाहिए। खतरा इस बात का है कि यह अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में उधार लेने जैसा ही होगा। आरक्षित भण्डारों में वृद्धि अल्पावधि शेयर बाज़ार अन्तर्वाहों की वजह से होती है, जो कि थोड़ा सा ध्यान देने पर ही बड़ी सरलता से की जा सकती है और भारतीय रिज़र्व बैंक को आवश्यक दुर्लभ मुद्रा के साथ आना ही होगा। यदि भारत आधारभूत ढांचे में इन भण्डारों का निवेश करने का विकल्प चुनता है तो दो दोष नज़र आ सकते हैं : (अ) वह दीर्घावधि निवेश के लिए है (ब) शीघ्र समाप्त होने वाला ऋण आधारभूत ढांचा कोई विदेशी मुद्रा कमाने वाला क्षेत्र नहीं है, अतएव भविष्य में भी ये परियोजनाएं भुगतान के लिए आवश्यक विदेशी मुद्रा उत्पन्न नहीं करेंगी। (पटनायक 2004, रक्षित 2004)।

तालिका 21.6: पूंजी खाता शेष (करोड़ अमेरिकी डॉलर में)

वर्ष	पूंजी खाता शेष
1990-91	840.2
1997-98	939.3
1998-99	786.7
1999-00	1084.0
2000-01	850.8
2001-02	835.7
2002-03	1064.0
2003-04(अनन्तिम)	2086.0

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

स्रोतः इकॉनामिक सर्वे 2004-05 पृष्ठ 109

आइए, बाह्य क्षेत्रीय सुधारों पर कुछ और विस्तार से चर्चा करें। बाह्य खाते के उदारीकरण में न सिर्फ माल का अधिक सरल प्रवाह शामिल था, वरन मुद्रा का व्यापक अवमूल्यन और साथ ही निर्धारित विनिमय दरों से एक "नियंत्रित" धरती बढ़ती दरों की एक व्यवस्था की ओर रूख करना भी शामिल था।

अवमूल्यन सिद्धांत निर्यातकों के लिए एक शुभ समाचार होता है क्योंकि इससे उनका माल अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अपेक्षाकृत सस्ता हो जाता है और आयात अधिक महंगे हो जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप देश में आयातों की मांग घट जाती है। व्यापार शेष को इसीलिए बढ़ाया जाना चाहिए। तथापि, यदि घरेलू उद्योग में स्फीति चल रही हो और आयात उदारीकृत हो, तो इसके प्रतिकूल प्रभाव हो सकते हैं खासकर यदि निर्यात लोचदार हो और आयात नही। किसी वस्तु को लोचदार मांग वाला कहा जाता है यदि मूल्य में ज़रा सी गिरावट से मांग की गई मात्रा में अपेक्षाकृत बड़ा परिवर्तन दिखाई पड़ता है। अतः यदि निर्यात लोचदार है और आयात नहीं तो आयात खर्च अवमूल्यन के बाद और बढ़ेगा चूंकि हम माल की वही मात्रा आयात करेंगे। एक मुद्रा स्फीतिकारी स्थिति में, अवमूल्यन के बाद भी, यदि निर्यात लोचदार है तो निर्यातों की मात्रा में कोई समान उछाल नहीं दिखाई देगा। इसी कारण व्यापार शेष बाह्य क्षेत्रीय उदारीकरण प्रक्रिया में अवमूल्यन हो जाने के बावजूद और भी खराब हो जायेगा।

आयात उदारीकरण के घरेलू परिणामों के विषय में और भी गंभीर आशंकाएं हैं – यह अनौद्योगिकरण (de-industrialization) की ओर प्रवृत कर सकता है। यहां अनौद्योगिकरण विषय की अधिक़तर चर्चा पटनायक (2003) से उद्धृत है। उन्होंने अनौद्योगिकरण को एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया है जहां कुल मांग में गिरावट के कारण औद्योगिक क्षेत्र के कार्यबल में गिरावट आती है, जो कि लोगों को कार्यबल से बाहर कर देती है (पटनायक 2003 : 1)।

यह तीन प्रकार से हो सकता है। प्रथम और सबसे सरल है जहां आयात निर्यातों से अधिक होते हैं और चालू खाता शेष नकारात्मक होता है। इसका अर्थ है कि घरेलू माल हेतु मांग में गिरावट आती है, जिससे रोज़गार घटता है। दूसरे दृष्टांत में, अनौद्योगिकरण निर्यात अधिशेष के व्यापार शेष के होते हुए भी हो सकता है जहां घरेलू अर्थव्यवस्था में उत्पादन अथवा मांग बढ़ाने की बजाय कृषि अधिशेष को आयातित माल के उपभोग हेतु प्रयोग किया जाता है। यही है चिरसम्मत औपनिवेशिक अपवहन स्थिति जहां औपनिवैशिक शासक अधिशेष का एक भाग महानगर को भेज देता था, साथ ही न तो गैर कृषिगत माल के लिए पर्याप्त मांग उत्पन्न की जाती थी और न ही भूमि की उत्पादकता बढ़ायी जाती थी। इससे घरेलू गैर कृषिगत माल के लिए बाज़ार समाप्त हो गया, जिसने अनौद्यागीकरण की ओर प्रवत किया। तीसरे दृष्टांत में जो कि आधुनिक युगीन वैश्वीकृत अर्थव्यवस्थाओं का प्रतिनिधि है, यह मानकर चलें कि हमारे पास लोचदार विनिमय दर वाला मुक्त पूंजी खाता है। यदि किसी कारण से पूंजी अन्तर्वाह में कोई बढ़ोतरी होती है तो रुपया विदेशी मुद्रा की तुलना में अधिक मूल्यवाला हो जायेगा। इससे आयातित वस्तु गृह बाज़ार तक में घरेलू वस्तु के मुकाबले कम महंगी होगी। उपभोक्ता घरेलू वस्तुओं की बजाय आयातित वस्तुएं लेना पसंद करेंगे जिससे घरेलू उत्पादन और रोज़गार घट जायेगा।

MAADHYAM IAS

ऐसी परिस्थितियों में, राज्य अनौद्योगिकरण का मुकाबला करने के लिए व्यय बढ़ा कर स्वतः ही कार्यवाई कर सकता है। परन्तु उसमें भी बहुपक्षीय एजेन्सी दबावों द्वारा काट छांट की जा सकती है, जो कि अर्थव्यवस्था में बढ़ती बेरोज़गारी की कीमत तक पर बजट संतुलन करने के लिए "सतर्क वित्त" नीतियों में विश्वास करती है। भारत में राजकोषीय घाटों को कम करने के प्रयासों को इसी कारण ध्यानपूर्वक देखा जाना चाहिए क्योंकि अब यह भली भांति स्वीकार किया जाता है कि नब्बे के दशक "रोजगाररहित विकास" का काल था।

राजकोषीय घाटे को कम करने के दो संभावित तरीके हैं – खर्चों में कांटछांट अथवा कर एवं ग़ैर कर प्राप्तियों को बढ़ाना। राजनीतिक रूप से वहां खर्चों में कटौती अपेक्षाकृत आसान होती है जहां इसके विरोध में कोई गुट या समूह न हो, करों में बढ़ोतरी से भिन्न जो कि राजनीतिक रूप से अवांछित होता है उदाहरण के लिए, सामाजिक क्षेत्र और पूंजी व्यय कटौतियों का सबसे कम प्रत्यक्ष विरोध होता है क्योंकि गिरावट का तत्काल प्रभाव वर्तमान पीढ़ी द्वारा महसूस नहीं किया जाता है। इसी कारण इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि यही वो दो क्षेत्र हैं जहां सकल राष्ट्रीय आय के एक अनुपात स्वरूप में खर्चों में काफ़ी कटौती देखी जाती है।

सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के एक अनुपात स्वरूप सरकारी खर्च सुधार अवधि की शुरुआत में लगभग 30 प्रतिशत से गिरकर नब्बे के दशपांत में 27 प्रतिशत रह गया। पूंजी व्यय दीर्घावधि विकास पर प्रभाव डालते हैं क्योंकि ये अधिरचना या आधारभूत ढांचा निवेशों की प्रकृति में होते हैं। सामाजिक क्षेत्र व्यय खर्च स्वास्थ्य रक्षा एवं शिक्षा की नागरिकों को सुलभता सुनिश्चित कर मानव सुरक्षा को बढ़ावा देते हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में घटे खर्चों के, पूंजीकरण, भौतिक परिसम्पति संचयन के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में मानव पूंजी के विकास पर भी दीर्घ कालीन प्रभाव होते हैं (बालकृष्ण 1996)।

तालिका 21.7: जीडीपी के प्रतिशत रूप में संयुक्त (केन्द्र+राज्य) सरकारी खर्च तथा सरकारी खर्च के प्रतिशत रूप में पूंजी व्यय

वर्ष	सरकारी खर्च	कुल सरकारी खर्च (राजस्व+पूंजी) के अनुपात स्वरूप पूंजी व्यय	कुल सरकारी खर्च के अनुपात स्वरूप विकास व्यय

नोट: RE = राजस्व व्यय

स्रोत: विभिन्न मुद्दों के रूप में देव एवं मूइज (2002 : 854) में प्रस्तुत भारतीय लोक वित्त सांख्यिकी, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार में उपलब्ध आंकड़ों से परिचलित

आइए, अपना ध्यान अब कुछ सामाजिक क्षेत्र की ओर मोड़ते हैं। सामाजिक क्षेत्र में शामिल है – शिक्षा, स्वास्थ्य (एवं परिवार कल्याण) तथा ग्रामीण विकास। नव उदारवादी विचारधारा के मुख्य तर्काधारों में एक है कि राज्य का हस्तक्षेप सामाजिक विकास एवं रक्षा तक ही सीमित रहना चाहिए, जो कि उसका मौलिक कर्त्तव्य है और आर्थिक कार्यकल्प को निजी क्षेत्र के पास ही छोड़ देना चाहिए। इस तर्क के आधारपर हमें यह उम्मीद रखनी चाहिए कि अन्य क्षेत्रों में आबंटन परिवर्तनों पर ध्यान न देते हुए, सामाजिक क्षेत्र में अवश्य ही बढ़ोत्तरी होगी। तथापि, नब्बे के दशक में केन्द्र के साथ-साथ राज्यों द्वारा भी कम ही सामाजिक क्षेत्र व्यय रहा, जो कि सकल घरेलू उत्पाद के रूप संयोजित रहा, तिस पर भी, सामाजिक क्षेत्र में प्रति व्यक्ति व्यय में बढ़ोतरी दिखाई पड़ती है। (देव एवं मूइज, 2002)। इसका निहितार्थ यह है कि सामाजिक क्षेत्र व्यय में वृद्धि सुधार अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में हुई वृद्धि से मेल नहीं खाती है।

MAADHYAM IAS

तालिका 21.8 : जीडीपी के अनुपात स्वरूप केन्द्र व राज्यों द्वारा सामाजिक क्षेत्र (सामाजिक सेवाएं + ग्रामीण विकास) व्यय

वर्ष	सामाजिक क्षेत्र व्यय (राजस्व + पूंजी)	सामाजिक क्षेत्र व्यय (राजस्व)	1993-94 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति व्यय

नोट : R : संशोधित अनुमान

स्रोत: भारतीय लोक वित्त सांख्यिकी, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, 1995 एवं 2000-01 से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित अनुमान जो कि देव एवं मयू (2002 : 856) में प्रस्तुत है।

21.9 आर्थिक सुधार – एक मूल्यांकन

अन्ततोगत्वा हमें दो असम्बद्ध मानदण्डों के लिहाज से सुधार प्रक्रिया के प्रभाव को समझने की ज़रूरत है – आय की वृद्धिदर और उसका वितरण। प्रथम को प्रमाणित करना काफी सरल है क्योंकि विभिन्न सरकारी स्रोतों द्वारा हर वर्ष प्रकाशित प्रति व्यक्ति आय के साथ साथ सकल राष्ट्रीय आय हेतु भी आंकड़े हमें उपलब्ध हो जाते हैं। यह सत्य है कि सुधार

आयात उदारीकरण के घरेलू परिणामों के विषय में और भी गंभीर आशंकाएं हैं – यह अनौद्योगिकरण (de-industrialization) की ओर प्रवृत कर सकता है। यहां अनौद्योगिकरण विषय की अधिक़तर चर्चा पटनायक (2003) से उदृत है। उन्होंने अनौद्योगिकरण को एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया है जहां कुल मांग में गिरावट के कारण औद्योगिक क्षेत्र के कार्यबल में गिरावट आती है, जो कि लोगों को कार्यबल से बाहर कर देती है (पटनायक 2003 : 1)।

यह तीन प्रकार से हो सकता है। प्रथम और सबसे सरल है जहां आयात निर्यातों से अधिक होते हैं और चालू खाता शेष नकारात्मक होता है। इसका अर्थ है कि घरेलू माल हेतु मांग में गिरावट आती है, जिससे रोज़गार घटता है। दूसरे दृष्टांत में, अनौद्योगिकरण निर्यात अधिशेष के व्यापार शेष के होते हुए भी हो सकता है जहां घरेलू अर्थव्यवस्था में उत्पादन अथवा मांग बढ़ाने की बजाय कृषि अधिशेष को आयातित माल के उपभोग हेतु प्रयोग किया जाता है। यही है चिरसम्मत औपनिवेशिक अपवहन स्थिति जहां औपनिवैशिक शासक अधिशेष का एक भाग महानगर को भेज देता था, साथ ही न तो गैर कृषिगत माल के लिए पर्याप्त मांग उत्पन्न की जाती थी और न ही भूमि की उत्पादकता बढ़ायी जाती थी। इससे घरेलू गैर कृषिगत माल के लिए बाज़ार समाप्त हो गया, जिसने अनौद्यागीकरण की ओर प्रवत किया। तीसरे दृष्टांत में जो कि आधुनिक युगीन वैश्वीकृत अर्थव्यवस्थाओं का प्रतिनिधि है, यह मानकर चलें कि हमारे पास लोचदार विनिमय दर वाला मुक्त पूंजी खाता है। यदि किसी कारण से पूंजी अन्तर्वाह में कोई बढ़ोतरी होती है तो रुपया विदेशी मुद्रा की तुलना में अधिक मूल्यवाला हो जायेगा। इससे आयातित वस्तु गृह बाज़ार तक में घरेलू वस्तु के मुकाबले कम महंगी होगी। उपभोक्ता घरेलू वस्तुओं की बजाय आयातित वस्तुएं लेना पसंद करेंगे जिससे घरेलू उत्पादन और रोज़गार घट जायेगा।

MAADHYAM IAS

ऐसी परिस्थितियों में, राज्य अनौद्योगिकरण का मुकाबला करने के लिए व्यय बढ़ा कर स्वतः ही कार्यवाई कर सकता है। परन्तु उसमें भी बहुपक्षीय एजेन्सी दबावों द्वारा काट छांट की जा सकती है, जो कि अर्थव्यवस्था में बढ़ती बेरोज़गारी की कीमत तक पर बजट संतुलन करने के लिए "सतर्क वित्त" नीतियों में विश्वास करती है। भारत में राजकोषीय घाटों को कम करने के प्रयासों को इसी कारण ध्यानपूर्वक देखा जाना चाहिए क्योंकि अब यह भली भांति स्वीकार किया जाता है कि नब्बे के दशक "रोजगाररहित विकास" का काल था।

राजकोषीय घाटे को कम करने के दो संभावित तरीके हैं – खर्चों में कांटछांट अथवा कर एवं ग़ैर कर प्राप्तियों को बढ़ाना। राजनीतिक रूप से वहां खर्चों में कटौती अपेक्षाकृत आसान होती है जहां इसके विरोध में कोई गुट या समूह न हो, करों में बढ़ोतरी से भिन्न जो कि राजनीतिक रूप से अवांछित होता है उदाहरण के लिए, सामाजिक क्षेत्र और पूंजी व्यय कटौतियों का सबसे कम प्रत्यक्ष विरोध होता है क्योंकि गिरावट का तत्काल प्रभाव वर्तमान पीढ़ी द्वारा महसूस नहीं किया जाता है। इसी कारण इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि यही वो दो क्षेत्र हैं जहां सकल राष्ट्रीय आय के एक अनुपात स्वरूप में खर्चों में काफ़ी कटौती देखी जाती है।

सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के एक अनुपात स्वरूप सरकारी खर्च सुधार अवधि की शुरुआत में लगभग 30 प्रतिशत से गिरकर नब्बे के दशपांत में 27 प्रतिशत रह गया। पूंजी व्यय दीर्घावधि विकास पर प्रभाव डालते हैं क्योंकि ये अधिरचना या आधारभूत ढांचा निवेशों की प्रकृति में होते हैं। सामाजिक क्षेत्र व्यय खर्च स्वास्थ्य रक्षा एवं शिक्षा की नागरिकों को सुलभता सुनिश्चित कर मानव सुरक्षा को बढ़ावा देते हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में घटे खर्चों के, पूंजीकरण, भौतिक परिसम्पति संचयन के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में मानव पूंजी के विकास पर भी दीर्घ कालीन प्रभाव होते हैं (बालकृष्ण 1996)।

तालिका 21.7: जीडीपी के प्रतिशत रूप में संयुक्त (केन्द्र+राज्य) सरकारी खर्च तथा सरकारी खर्च के प्रतिशत रूप में पूंजी व्यय

वर्ष	सरकारी खर्च	कुल सरकारी खर्च (राजस्व+पूंजी) के अनुपात स्वरूप पूंजी व्यय	कुल सरकारी खर्च के अनुपात स्वरूप विकास व्यय

नोट: RE = राजस्व व्यय

स्रोत: विभिन्न मुद्दों के रूप में देव एवं मूइज (2002 : 854) में प्रस्तुत भारतीय लोक वित्त सांख्यिकी, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार में उपलब्ध आंकड़ों से परिचलित

आइए, अपना ध्यान अब कुछ सामाजिक क्षेत्र की ओर मोड़ते हैं। सामाजिक क्षेत्र में शामिल है – शिक्षा, स्वास्थ्य (एवं परिवार कल्याण) तथा ग्रामीण विकास। नव उदारवादी विचारधारा के मुख्य तर्काधारों में एक है कि राज्य का हस्तक्षेप सामाजिक विकास एवं रक्षा तक ही सीमित रहना चाहिए, जो कि उसका मौलिक कर्त्तव्य है और आर्थिक कार्यकल्प को निजी क्षेत्र के पास ही छोड़ देना चाहिए। इस तर्क के आधारपर हमें यह उम्मीद रखनी चाहिए कि अन्य क्षेत्रों में आबंटन परिवर्तनों पर ध्यान न देते हुए, सामाजिक क्षेत्र में अवश्य ही बढ़ोत्तरी होगी। तथापि, नब्बे के दशक में केन्द्र के साथ-साथ राज्यों द्वारा भी कम ही सामाजिक क्षेत्र व्यय रहा, जो कि सकल घरेलू उत्पाद के रूप संयोजित रहा, तिस पर भी, सामाजिक क्षेत्र में प्रति व्यक्ति व्यय में बढ़ोतरी दिखाई पड़ती है। (देव एवं मूइज, 2002)। इसका निहितार्थ यह है कि सामाजिक क्षेत्र व्यय में वृद्धि सुधार अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में हुई वृद्धि से मेल नहीं खाती है।

MAADHYAM IAS

तालिका 21.8 : जीडीपी के अनुपात स्वरूप केन्द्र व राज्यों द्वारा सामाजिक क्षेत्र (सामाजिक सेवाएं + ग्रामीण विकास) व्यय

वर्ष	सामाजिक क्षेत्र व्यय (राजस्व + पूंजी)	सामाजिक क्षेत्र व्यय (राजस्व)	1993-94 के मूल्यों पर प्रति व्यक्ति व्यय

नोट : R : संशोधित अनुमान

स्रोत: भारतीय लोक वित्त सांख्यिकी, वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, 1995 एवं 2000-01 से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित अनुमान जो कि देव एवं मयू (2002 : 856) में प्रस्तुत है।

21.9 आर्थिक सुधार – एक मूल्यांकन

अन्ततोगत्वा हमें दो असम्बद्ध मानदण्डों के लिहाज से सुधार प्रक्रिया के प्रभाव को समझने की ज़रूरत है – आय की वृद्धिदर और उसका वितरण। प्रथम को प्रमाणित करना काफी सरल है क्योकि विभिन्न सरकारी स्रोतों द्वारा हर वर्ष प्रकाशित प्रति व्यक्ति आय के साथ साथ सकल राष्ट्रीय आय हेतु भी आंकड़े हमें उपलब्ध हो जाते हैं। यह सत्य है कि सुधार

अवधि में भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि दर स्वातंत्र्योत्तर काल में अन्य किसी भी दौर में रही औसत दर की अपेक्षा ऊंची ही रही। अतः, इस लिहाज से, आर्थिक सुधारों का स्वागत होना ही चाहिए। यह एक अनुतरित प्रश्न ही बना हुआ है कि यदि पहले की नीतियों को ही अपनाया जाता तो क्या अर्थव्यवस्था में बेहतर सुधार (तीव्रतर विकास) होता, और इसको सिद्ध करना कहीं अधिक मुश्किल है। जैसा कि तालिका 21.9 इंगित करती है, सुधार अवधि में सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर और प्रति व्यक्ति विकास दर अपेक्षाकृत ऊंची ही रही है।

तालिका 21.9: सकल घरेलू आय (जीडीपी) और प्रति व्यक्ति आय वृद्धि दर

अवधि	1970-71 से 1979-80	1980-81 से 1989-90	1992-93 से 2000-01	1992-93 से 1996-97	1997-98 से 2000-01
जीडीपी	2.95	5.81	6.1	6.68	5.35
प्रति व्यक्ति	0.73	3.67	4.17	4.75	3.42

स्रोत: आरबी आई, मुद्रा एंव वित्त पर रिपोर्ट, 2000-01 ; आर बी आई हैण्डबुक, 2001; इकॉन्मिक सर्वे 2001-02 जैसा कि रक्षित (दिनांकरहित) में उद्धत हैं।

वितरण के संबंध में दूसरे मुद्दे पर सरकारी अनुमानों (व उसके मानने वालों) तथा उसके न मानने वालों के बीच व्यापक भिन्नता है। सरकारी अनुमान बताते हैं कि गरीबी 27 प्रतिशत तक कम हुई है (कुछ तो यहां तक तर्क देते हैं कि यह एक अतिमूल्यांकन है)। सुन्दरम् एवं तेन्दुलकर (2003), डैल्टन एवं द्रेज़ (2002)। तथापि सैन एवं हिंनाश (2004) इन निष्कर्षों का असली रूप दिखलाते हैं और बताते हैं कि नब्बे के दशक में पूर्व अध्ययनों द्वारा गरीबी में कमी का दावा सदोष आकलनों की वजह से युक्तिसंगत नहीं है। उनका निष्कर्ष है कि नब्बे के दशक में न सिर्फ गरीबी में कोई कमी नहीं आयी बल्कि सभी आयामों में असमानता भी तेज़ी से बढ़ी जोकि इस दशक को अनोखा बनाता है – यह स्वातंत्र्योत्तर भारत में यह ऐसा पहला दशक था जब असमानता बढ़ी (देखें इकाई 20)। तथापि, गरीबी से जुड़े ये सभी मानदण्ड गरीबी मापने के लिए एक अप्रत्यक्ष विधि का प्रयोग करते हैं – गरीबी की रेखा का एक आय मानदण्ड जिसका कि वस्तुतः अभिप्रायः एक ऊर्जा आवश्यकता मानदण्ड से जोड़े जाने से था – ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के लिए 2400 एवं 2100 कैलॉरीज़ प्रति वयस्क व्यक्ति।

MAADHYAM IAS

यू. पटनायक (2004), गरीबी मापने हेतु कैलॉरी आधारित अनुमानों का प्रयोग करते हुए, तस्वीर को और भी अधिक भयप्रद पाते हैं। गत पांच वर्षों (1998 से 2003) के दौरान प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपभोग स्तर पिछले 50 वर्षों की अवधि में सबसे कम रहा। नब्बे के दशकांरभ और वर्ष 2003 के बीच प्रति व्यक्ति खाद्यान्न का वार्षिक उपभोग 177 किलो ग्राम से गिरकर 155 किलोग्राम रह गया। यह गिरावट इस अवधि के उत्तरार्ध में तेज़ी से हुई और गिरावट का 80 प्रतिशत पांच वर्ष की अवधि – 1998-2003 में ही रहा तथा मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में संकेद्रित रहा। कैलॉरी उपभोग हेतु राष्ट्रीय निदर्श सर्वेक्षण आंकड़ों का प्रयोग करते हुए उन्होंने पाया कि 1999-2000 में सात बटा दस ग्रामीण जनसंख्या 2400 कैलॉरीज़ प्रति दिन के मानदण्ड से नीचे थी (सभी गरीबी संबंधी अध्ययनों में मूल रूप से अपनाया गया मानदण्ड) और दो बटा पांच शहरी जनसंख्या 2100 कैलॉरीज़ के निम्न शहरी मानदण्ड से नीचे थी।

निष्कर्षतः सुधारों की अवधि ऐसा काल रहा जहां संरचनात्मक रूप से अनेक परिवर्तन हुए। बाज़ार की भूमिका स्वतंत्र भारत में पहले की किसी भी अवधि की अपेक्षा अधिक रही। विकास की दर इस अवधि में ऊंची रहीं। परन्तु इसका वितरण असमान रहा है, जो कि सुधार प्रक्रिया की न्यायसंगतता पर प्रश्नचिन्ह लगाता है, विशेषतः जबकि वास्तविक वंचना वैश्विक एकीकरण प्रक्रिया की वजह से उत्कर्ष पर दिखाई देती है।

21.10 सारांश

हमने भूमंडलीकरण के दो महत्वपूर्ण आर्थिक पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की; साथ ही भारत के विशेष संदर्भ में उदारीकरण एवं संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम पर थी। उदारीकरण, जैसा कि हमने देखा नियंत्रण से बाहर होता जा रहा है, जो कि सरकार उन आर्थिक शक्तियों पर रखती है जो अर्थव्यवस्था को माल एवं सेवाओं के बाह्य प्रवाह हेतु खोलने अथवा घरेलू नियंत्रणों से राहत की ओर प्रवृत्त करती है और संरचनात्मक समायोजन का मतलब है आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक मामलों के संबंध में राष्ट्रीय सरकार द्वारा नीति बदलावों का एक सिलसिला।

यह इकाई उन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों का खाका खिंचती है जो ऐसी राष्ट्रीय नीतियों के अंगीकरण की ओर प्रवृत करती है। जिन्होंने भारत में भूमंडलीकरण और उदारीकरण की गति की उग्र रूप से बढ़ा दिया। इकाई भारत में आर्थिक विकास के मूल्यांकन हेतु विभिन्न आर्थिक मापदण्डों की भी गवेषणा करती है, खासकर आर्थिक सुधार नीतियां अपनाए जाने के समय से। सामाजिक एवं समाज के अन्य क्षेत्रों में इन सुधार नीतियों के निहितार्थों का विश्लेषण करने का भी प्रयास किया गया है। जब हम आर्थिक एवं सामाजिक मोरचों पर सुधार नीतियों के प्रभाव का मूल्यांकन करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि आर्थिक मोरचे पर विकास आश्चर्यजनक हुआ है यह प्रश्न कि क्या यह सामाजिक क्षेत्र में रूपान्तरित हुआ है, अनुतरित ही बना हुआ है।

21.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

घोष, जे. (1998), "लिब्रालाइज़ेशन डिबेट्स" इन टी. जे. बायर्स (सं.) कृत *दि इण्डियन इकॉन्मी: मेजर डिबेट्स सिन्स इन्डिपेन्डेन्स*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस : नई दिल्ली।

नैयर डी. (1996), *इकॉन्मिक लिब्रालाइज़ेशन इन इण्डिया : एनालाईटिक्स, एक्सपीरियन्स एण्ड लैसन्स*, ओरियन्ट लॉन्गमैन : हैदराबाद।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

इकाई 22
भूमंडलीकरण, निजीकरण और देशी ज्ञान

इकाई की रूपरेखा

22.1 प्रस्तावना
22.2 भूमंडलीकरण, उदारीकरण और मुक्त व्यापार
22.3 विश्व व्यापार संगठन (WTO)
22.4 व्यापार-संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार (ट्रिप्स)
22.5 विश्व व्यापार संगठन में विकसित देशों का प्रभुत्व
22.6 तीसरी दुनिया के लिए व्यापार संबंधी बौधिक सम्पदा अधिकार 'ट्रिप्स' के निहितार्थ
22.7 देशज ज्ञान और जैविक चोरी
22.8 देशज और परम्परागत ज्ञान का संरक्षण
22.9 सारांश
22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई निम्नलिखित बातों से परिचित कराती हुई आपको भूमंडलीकरण, बौद्धिक संपदा अधिकारों (IPRs) और देशी ज्ञान के विभिन्न पहलुओं के आलोचनात्मक मूल्यांकन में मदद करेगी :

- भूमंडलीकरण और मुक्त व्यापार से उसका संबंध;
- विश्व व्यापार के एक नियामक निकाय के रूप में विश्व व्यापार संगठन की भूमिका;
- एकस्व अधिकारों से संबंधित नियम एवं समझौते;
- एकस्वाधिकार व्यवस्था तथा देशी एवं पंरपरागत ज्ञान के परिणाम; तथा
- परंपरागत ज्ञान और सामुदायिक अधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

22.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भूमंडलीकरण के एक अन्य पहलू – देशी ज्ञान प्रणाली तथा देशी ज्ञान पर एकस्वाधिकारों के हित संरक्षण हेतु विश्वव्यापी मापदण्डों के प्रभाव पर चर्चा की जायेगी। विश्व व्यापार संगठन तथा विकसित देशों का कहना है कि व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारों (TRIPs) का अनिवार्यतः लागू किया जाने का उद्देश्य यह है कि रचना, विचार आदि की चोरी रोकी जा सके और नए आविष्कारों को संरक्षण दिया जा सके। परन्तु कई बार यह देशज/सामान्यजन विशेषरूप से विकासशील देशों में रहने वालों के सामान्य ज्ञान के हितों के विरूद्ध जा सकता है। आइए, देखें यह कैसे हो सकता है।

मई 1995 में अमेरिकी एकस्वाधिकार कार्यालय ने "हल्दी" (Turmeric) के लिए, उसकी घाव भरने की क्षमता का वास्ता देकर, मिसीसिपी विश्वविद्यालय चिकित्सा केन्द्र को एकस्वाधिकार प्रदान किया। इस बात का निहित अर्थ यह है कि यदि आप बिना अनुमति अथवा भुगतान के घाव भरने के लिए हल्दी का प्रयोग करते पाए गए तो आपसे जवाब तलब किया जा सकता है। यह लाखों भारतीय के लिए एक बेहूदा अर्थात तर्कविरूद्ध स्थिति है, जो कि सदियों से हल्दी का प्रयोग करते जा रहे हैं कि हल्दी के प्रयोग हेतु किसी को स्वत्वशुल्क देने का सोचें अथवा इसे एक नया आविष्कार मान लें।

उक्त एकस्वाधिकार को एक सतर्क भारतीय वैज्ञानिक डॉ. आर ए. माशेल्कर द्वारा चुनौती दी गई, जिन्होंने बौद्धिक संपदा अधिकारों (IPR) से संबंधित अनेक मुद्दे उठाए, और बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्था एवं विश्व व्यापार संगठन (WTO) के कार्यों में किंचित अनुभूत खतरों के विषय में जागरूकता पैदा की। एकस्वाधिकार का विरोध करते करते लगभग चार वर्षों बाद यह प्रमाणित हो गया कि हल्दी का इस्तेमाल भारत में भली भांति विदित था। यह एकस्वाधिकार समाप्त कर दिया गया परन्तु यही एक मात्र परंपरागत अथवा देशी ज्ञान एवं पद्धति नहीं थी, जिसको कि व्यापारिक प्रयोगनार्थ एवं लाभ के लिए प्रायः अनाधिकारपूर्वक अपना लिया गया हो। मैक्सिको की फलियां (सेम आदि), दक्षिण एशियाई बासमती, बोलिविया का डिनोआ (quinea), व अन्य कई, बौद्धिक संपदा दावों का विषय रहे हैं जो कि देशज लोगों एवं खेतीहर समुदायों के ज्ञान एवं अनुवांशिक संसाधनों के शोषणकर्त्ता हैं।

बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां और दवाई कंपनियां निरन्तर व्यापारिक एवं लाभ कमाने के उद्देश्य से ज्ञान एवं उत्पादों को प्रयोग कर लिए जाने की फ़िराक में रहती हैं। एकस्वाधिकार, जिनका तात्पर्य होता है रचनात्मक एवं नवप्रवर्तनकारी प्रयास, उत्तरोत्तर उस पर अनन्य अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयोग किए जा रहे हैं, जो कि प्रायः किसी समुदाय अथवा किसी परंपरा का एक सामान्य ज्ञान ही होता है। ब्राज़ील जहां विश्व की सबसे समृद्ध जैव विविधता है ने अनेक कंपनियों का ध्यान आकर्षित किया है, और माना जाता है कि ब्राज़ील के वर्षा वनों में आधे से भी अधिक पादप प्रजातियों को पेटण्ट करा लिया गया है, यानी वे अब एकस्वकृत हैं।

जैसा कि आप देख सकते हैं, नीम अथवा हल्दी का प्रयोग न कर पाना, क्योंकि इसको व्यापारिक उद्देश्य से किसी निजी कंपनी द्वारा एकस्वकृत करा लिया गया है। हममें से उनके लिए पूरी तरह से तर्कहीन है जो अपने दैनिक जीवन में नीम या हल्दी के प्रयोग से सुपरिचित हैं। इन दो पादप प्रजातियों के आरोग्यकारी गुणों की खोज का श्रेय किसी एक व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता है, जिससे कि वह व्यक्ति एकस्वाधिकार के लिए आवेदन करे। यह एक ऐसा ज्ञान है जो पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है और कोई भी इस ज्ञान पर अनन्य अधिकार नहीं ले सकता है। अतः क्या बदला है? सार्वजनिक संपदा और ज्ञान क्या अनन्य बन गए हैं? किस तरीके से पारंपरिक समाज और देशज जनसमूह उन एकस्व अधिकारों द्वारा प्रभावित हुए हैं, जो कि ज्ञान अथवा उत्पादों पर अनन्य अधिकारों की अनुमति देते हैं? भूमंडलीकरण अथवा विश्व व्यापार संगठन ने इसके लिए क्या कुछ किया है?

MAADHYAM IAS

आइए, देखते हैं क्या इनमें से कुछ प्रश्नों का उत्तर क्या इस इकाई में दिया गया है। इनमें से कुछ प्रश्नों व अन्य और भी को समझने के लिए हमें भूमंडलीकरण तथा उसके आर्थिक आयामों एवं निहितार्थों के परिदृश्य में एकस्वाधिकारों एवं देशज ज्ञान के मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता है। अतः हम इस इकाई का आरम्भ भूमंडलीकरण के कुछ मूल अभिलक्षणों को उसके मुक्त व्यापार एवं उदारीकरण के शब्दों में संक्षेप में फिर दोहराने के प्रयास के साथ करेंगे। तदोपरांत हम विश्व व्यापार संगठन (WTO) जैसे विश्व निकायों पर नज़र डालेंगे, जो 'टिप्स' आदि शासन प्रणालियों के माध्यम से मुक्त व्यापार की कुछ प्रकायीत्मकता को नियंत्रित करते हैं। इसके बाद हम एकस्वाधिकार शासन प्रणाली तथा उन निहितार्थों पर दृष्टि डालेंगे जो कि वह उन लोगों के लिए रखती है जो निजी स्वामित्व अथवा अनन्य अधिकारों में विश्वास नहीं रखते, जैसे देशज लोग। हम उपलब्ध विकल्पों एवं रणनीतियों के साथ-साथ एकस्वाधिकार नियमों एवं सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं के प्रति गरीब 'तीसरी दुनिया' के देशों की और देशज समुदायों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया को भी समझने का प्रयास करेंगे।

22.2 भूमंडलीकरण, उदारीकरण एवं मुक्त व्यापार

भूमंडलीकरण प्रक्रिया के अनेक पहलू हैं, जिनके विषय में इकाई 20 में चर्चा की गई है। यह इकाई जो कि भूमंडलीकरण के सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक आयामों के विषय में है, यह भी उल्लेख करती है कि जबकि विद्वत्जन भूमंडलीकरण को विभिन्न तरीकों से परिभाषित कर सकते हैं, वे सभी इस बात से अवश्य सहमत होंगे कि वर्तमान प्रक्रिया एवं दृश्य घटनाएं अन्य कई बातों के अलावा माल, लोगों, वित्त-साधनों के बीच प्रवाहों की बढ़ती प्रचण्डता की ओर भी संकेत करती हैं। परस्पर क्रिया इतनी तीव्र हो चुकी है कि एक स्थान पर होने वाली घटनाओं पर कई मील दूर चल रही प्रक्रिया का प्रभाव पड़ता है और ये एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

भूमंडलीकरण ने अस्सी के दशक में, विशेष रूप से अमेरिका एवं इंग्लैण्ड के साथ बाज़ार समन्वय में अधिक रुचि लेते हुए, आर्थिक कार्यकलापों का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया। अमेरिका एवं इंग्लैंड में क्रमशः रोनाल्ड रीगन एवं मार्गरेट थैचर की शासन व्यवस्था में निजी उद्यम पर अधिक ज़ोर दिया गया। इस अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निकायों द्वारा अनुशासित मार्ग के कारण निर्यातोन्मुखी अर्थव्यवस्थाएं अधिक नज़र आयी। तभी से विश्व व्यापार में यथेष्ट वृद्धि देखने में आयी है, जिसके परिणामस्वरूप विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय निकाय बहुत शक्तिशाली हो गए हैं जो निरन्तर कम सरकारी एवं राज्य सम्मिलन तथा आर्थिक माल एवं वित्त साधनों के मुक्त प्रवाह की सिफ़ारिश करते रहे हैं।

विश्व मुद्रा एवं व्यापार संगठनों के बढ़ते दबाव के साथ ही अनेक राज्य अपनी अर्थव्यवस्थाओं को उदारीकृत करने हेतु दबाव के आगे झुक गए। सोवियत रूस का विघटन होते ही मुक्त उद्यम हेतु किसी वैकल्पिक प्रतिमान को अव्यवहार्य पाया गया और इसीलिए अधिकाधिक देश मुक्त व्यापार के एक विश्वव्यापी ताने बाने में समेकित हो गए। अनेक सरकारों ने स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, जन-वितरण प्रणाली, ग्रामीण अधिरचना विकास, आदि जैसे पूंजी एवं सामाजिक क्षेत्र पर सरकारी खर्च कम करना शुरू कर दिया। इस अर्थ में राष्ट्रीय नीतियों एवं राष्ट्रीय सरकारों के नीति निर्माण कार्यप्रणालियों का वैश्वीकरण देखा गया है।

MAADHYAMIAS 'way to achieve your dream'

भारत ने नब्बे के दशक में एक संकट के चलते अपनी अर्थव्यवस्था को उदार बनाने के लिए कदम उठाये। भारत सरकार द्वारा अपनायी गई नव-उदारवादी नीतियों के दो प्रमुख घटक रहे हैं – भारत के निजी क्षेत्रों का उदारीकरण तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सुधार (विस्तृत जानकारी इकाई 20 में हम पहले ही प्राप्त कर चुके हैं)। इस प्रकार भारत ने उदारीकरण की शुरुआत की, जिसका अनिवार्यतः अर्थ था – अनेक ऐसे क्रियाकलाप जिन्हें राज्य निष्पादित करता था, कम कर दिए गए चाहे वह उदाहरणार्थ केन्द्रीकृत मूल्य नियंत्रण हो, अथवा अधिरचना एवं थोक सेवाओं पर एकाधिकार हो। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक ने दुनिया भर में देशों को आर्थिक सहायता अथवा ऋणों के अनुदान हेतु शर्तों के रूप में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के विनियमन एवं व्यापार व निवेश के क्षेत्र में उदारीकरण पर ज़ोर देना शुरू कर दिया। उन्होंने मुक्त व्यापार की वकालत की, जिसका आधुनिक रूप में अर्थ है – आयात शुल्कों, निर्यात अधिदानों, घरेलू उत्पादन रियायतों, व्यापार कोटा, अथवा आयात लाइसैन्सों जैसे प्रतिबंधों के बगैर चलाया जाने वाला व्यापार अथवा कारोबार। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के आदेश पर न सिर्फ़ संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों (सैप-SAP) को अपनाया बल्कि निजीकरण को भी स्वीकार किया। निजीकरण के अनिवार्यतः शामिल था– राज्य द्वारा अपनी परिसंपत्तियों को निजी स्वामित्व में बेचा जाना (इस पर हम इकाई 20 में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं)।

भूमंडलीकरण का एक अन्य पहलू रहा है – विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI), जिसका अर्थ है विदेशी पक्ष द्वारा निवेशित धन, जिसको कि उत्पादन के आंशिक स्वामित्व का पारितोषिक दिया जाता है। यह काम विभिन्न प्रकार के सहकार्यों के माध्यम से किया जाता है। नब्बे के दशक में विभिन्न देशों की कंपनियों के बीच सहकार्यों में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई और विदेशी प्रत्यक्ष निवेश विश्व भर में यथेष्ट रूप से बढ़ा।

एक आम धारणा है कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्राचुर्य अर्थव्यवस्था को अनेक तरीकों से सहायता प्रदान करता है जिनमें एक है प्रौद्योगिकी हस्तांतरण। जैसा कि आप पहले ही पढ़ चुके हैं, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रौद्योगिकियों के हस्तांतरण की दर में वृद्धि के साथ ही एकस्वाधिकार संरक्षण का प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया है। यद्यपि विभिन्न देशों के पास अपने प्रभावी नियम एवं विनियम थे, सभी देशों द्वारा मान्य कोई अन्तर्राष्ट्रीय नीति नहीं थी। भूमंडलीकरण की बढ़ी गति के दौरान बढ़े परस्पर क्रियाकलाप एवं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के साथ ही एकस्व-अधिकार संरक्षण के मुद्दे पर विश्व भर में अधिकांश देशों द्वारा स्वीकृत एक अन्तर्राष्ट्रीय नीति बनाया जाना आवश्यक हो गया। यही वो बातें है जो विश्व व्यापार संगठन ने व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारों (ट्रिप्स - TRIPS) के माध्यम से लागू करने का प्रयास किया। ट्रिप्स वर्ष 1995 में प्रभाव में आए। इन्होंने बौद्धिक संपदा के सात क्षेत्रों में न्यूनतम मानक लागू कर दिए, यथा एकस्वाधिकार प्रतिलिप्याधिकार, ट्रेडमार्क, भौगोलिक संकेत, औद्योगिक अभिकल्प तथा अनावृत सूचना (व्यापार भेद), और इनमें विविध क्षेत्र शामिल हैं जैसे कंप्यूटर प्रोग्रामिंग एवं परिपथ अभिकल्प, औषधियां एवं संकट फसलें। ट्रिप्स उत्तरी गोलार्ध के मानकों के आधार पर सोच निकाले गए, और उनका तीसरी दुनिया के देशों के हितों एवं आवश्यकताओं के साथ विवाद रहता है। उदाहरण के लिए, अधिकांश तीसरी दुनिया के देशों ने पहले ही राष्ट्रीय एकस्वाधिकार कानूनों से दवाओं, कृषि एवं अन्य उत्पादों पर छूट प्रदान कर दी थी। परन्तु ट्रिप्स के साथ ही लगभग संपूर्ण ज्ञान आधारित उत्पादन चुस्त बौद्धिक संपदा संरक्षण के अधीन आ गया है। तीसरी दुनिया देशों को वर्ष 2000 तक ट्रिप्स के अनुरूप ही अपने कानूनों को समायोजित करने का आदेश दिया गया, जबकि कम विकसित देशों के लिए यह अवधि वर्ष 2016 तक है। परवर्ती के सामने अनेक गंभीर वित्तीय एवं प्रशासनिक बाधाएं आयेंगी (अंकटैड 1996 : 2-3)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

यद्यपि दक्षिणी गोलार्ध पर ट्रिप्स के सकारात्मक प्रभावों की प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (PDI) तथा अनुसंधान एवं विकास (R & D) नवप्रवर्तन के लिहाज़ से उत्तरी गोलार्ध द्वारा दलाली की गई है, इसके अपर्याप्त परिणाम ही दिखाई दिए हैं। दरअसल, बौद्धिक संपदा अधिकारों (IPRs) का सुदृढ़ीकरण एवं विस्तार प्रौद्योगिकियों की सुलभता एवं प्रयोग तथा औद्योगिक एवं प्रौद्योगिक विकास हेतु तीसरी दुनिया की प्रत्याशा को प्रभावित करेगा; अधिक सशक्त बौद्धिक संपदा अधिकारों का अर्थ होता स्वत्वशुल्कों एवं अन्य देयताओं के लिहाज़ से अधिक परिव्यय तथा स्थानीय अनुसंधान एवं विकास हेतु उपलब्ध संसाधनों को घटाना; वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक संरक्षणवाद एक बढ़ती समस्या है क्योंकि वैज्ञानिक अनुसंधान की बढ़ती आर्थिक प्रासंगिकता अनुसंधान परिणामों के मुक्त प्रसारण को सीमित कर देती है और विश्वविद्यालयी प्रयोगशालाओं की पंरपरागत उदारता को अवरूद्ध कर देती है। जहां अधिकांश मूल अनुसंधान उत्तरी गोलार्ध में ही होता है – इससे अपनी सामाजिक एवं आर्थिक दशाएं सुधारने संबंधी तीसरी दुनिया की संभावनाएं कम हो जायेंगी (कोरिया 2000 : 33)।

अब आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि बौद्धिक संपदा अधिकार (IPRs) और व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार क्या हैं। इन व्यवस्थाओं के विभिन्न पहलुओं को समझने के लिए आइए, पहले विश्व व्यापार संगठन जैसे विश्व निकायों पर नज़र डालते हैं और देखते हैं कि गत वर्षों में किस प्रकार व्यापार की कुछ नियंत्रकारी कार्यप्रणालियां उद्भूत हुई हैं।

सोचिए और कीजिए 21.1

एक ऐसी कंपनी का पता लगायें जो विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के उदाहरण स्वरूप अर्हता प्राप्त हो। भारत देश और उसकी जनता के लिए इस कंपनी के लाभों को ज्ञात करने व उनका मूल्यांकन करने का प्रयास करें। एक कागज़ पर अपने अनुभव लिखें व साथी छात्रों एवं अपने समन्वयक को दिखाएं।

22.3 विश्व व्यापार संगठन (WTO)

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, 20वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में व्यापार का परिणाम यथेष्ट रूप से बढ़ा और यह महसूस किया गया कि एक नियंत्रण कारी निकाय होना चाहिए जो विभिन्न देशों के बीच व्यापार समझौतों की जांच पड़ताल करें। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (ITO) स्थापित करने का प्रयास किया गया, जो कभी अस्तित्व में ही नहीं आया, परन्तु 1947 में एक अन्य निकाय अस्तित्व में आया जिसका नाम था – 'गैट' (GATT) यानी सीमाशुल्कों एंव व्यापार विषयक आम सहमति (General Agreement on Tariffs and Trade)। इसने आम सहमति के लिए एक अनौपचारिक, वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को जन्म देने में अधिक समय नहीं लगाया, जिसे अनौपचारिक रूप से 'गैट' भी कहा गया। वर्ष दर वर्ष गैट बातचीतों के अनेक दौरों से गुज़रते हुए विकसित हो गया। अन्तिम और सबसे बड़ा गैट दौर था उरुग्वे दौर, जो 1986 से 1994 तक चला और उसने विश्व व्यापार संगठन (WTO) के गठन की ओर प्रवृत्त किया (विश्व व्यापार संगठन की उत्पत्ति एवं प्रकार्यात्मकता के विषय में इकाई 20 में हम पहले ही पढ़ चुके हैं और इस विषय में इकाई 23 में और भी पढ़ेंगे)। जबकि गैट का वास्ता मुख्य रूप से माल व्यापार से रहता था, विश्व व्यापार संगठन एवं उसके समझौतों में अब सेवा व्यापार, और व्यापारगत आविष्कार, सर्जनाएं एवं अभिकल्प (बौद्धिक संपदा) भी शामिल होते हैं।

MAADHYAM IAS

संगठन अपना बखान इस प्रकार करता है :

> विश्व व्यापार संगठन पर विचार करने के अनेक तरीके हैं। यह व्यापार उदारीकरण हेतु एक संगठन है। यह व्यापार समझौतों पर बातचीत हेतु सरकारों के लिए एक मंच है। यह उनके लिए व्यापार विवादों के निपटारे हेतु एक स्थान है। यह व्यापार नियमों की एक व्यवस्था चलाता है। इसके मूल में हैं विश्व व्यापार संगठन समझौते, जिनपर विश्व के अधिकांश व्यापार करने वाले देशों द्वारा लिखी पढ़ी और हस्ताक्षर किए जाते हैं। ये दस्तावेज़ अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य हेतु वैध आधार नियम प्रदान करते हैं। ये अनिवार्यतः अनुबंध होते हैं जो सरकारों को सममत सीमाओं में रहकर अपनी व्यापार नीतियों को कायम रखने हेतु बाहय करते हैं। यद्यपि इन पर सरकारों द्वारा लिखा पढ़ी और हस्ताक्षर होते हैं, उद्देश्य होता है माल व सेवाओं के उत्पादकों, निर्यातकों एवं आयातकों को अपना व्यापार चलाने में मदद करना
>
> **स्रोतः** www.wto.org

विश्व व्यापार संगठन द्वारा शामिल किए गए कुछ मूल सिद्धांत हैंः बिना भेदभाव व्यापार, व्यापार अवरोधों को कमकर मुक्त व्यापार, व्यापार एवं सेवाओं पर आम सहमति, व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार, आदि। चूंकि इस इकाई में मुख्य रूप से देशज एवं परम्परागत ज्ञान विषयक एकस्वाधिकार व्यवस्थाओं पर ही चर्चा की जानी है, आइए, 'ट्रिप्स' के अभिलक्षणों पर नज़र डालें, जो कि विश्व व्यापार संगठन व्यवस्था का एक प्रमुख क्षेत्र है (विश्व व्यापार संगठन के अन्य सिद्धांतों के विषय में हम इकाई 23 में पढ़ेंगे)।

आगामी पाठांश में हम इनमें से प्रत्येक क्षेत्र की जांच करेंगे, जो कि ट्रिप्स समझौते के अन्तर्गत आते हैं, ताकि आप समझ सकें कि इनके लिए क्या आवश्यक है।

22.4 व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार (ट्रिप्स)

विचारों एवं ज्ञान के अब व्यापार संबंधों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है। उत्पाद अथवा प्रक्रिया में अपने रचनात्मक एवं नवप्रवर्तनकारी आधार सामग्री की सरंक्षण हेतु लोगों एंव संगठन को एकस्वाधिकार, प्रतिलिपाधिकार आदि प्रदान किए जाते हैं।

> "सृजकों को यह अधिकार दिया जा सकता है कि दूसरों को अपने आविष्कारों, अभिकल्पों या अन्य रचनाओं को इस्तेमाल करने से रोक सकें तथा उस अधिकार का उन्हें इस्तेमाल करने वालों से बदले में भुगतान तय करने के लिए प्रयोग कर सकें। ये ही बौद्धिक संपदा अधिकार कहलाते हैं। वे अनेक रूपों में नज़र आते हैं। उदाहरण के लिए पुस्तकें, कलाचित्र कृतियां एवं फिल्में कापीराइट अर्थात प्रतिलिप्याधिकार वे अंतर्गत आती है; आविष्कारों को पेटेण्ट कराया जा सकता है अर्थात ऊपर उन पर एकस्वाधिकार प्राप्त किया जा सकता है; मार्का अर्थात ब्राण्ड नाम और उत्पाद लोगों (शब्द चिन्ह) को ट्रेडमार्क के रूप में पंजीकृत कराया जा सकता है; इत्यादि। सरकारों एवं संसदों ने प्रोत्साहन स्वरूप ये अधिकार या रचनाकारों को दिए हैं ताकि वे ऐसे विचार उत्पन्न कर सकें जो समस्त समाज को लाभ पहुचांए। इन अधिकारों के संरक्षण एवं क्रियान्वयन की सीमा विश्व भर में व्यापक रूप से भिन्न रही है; और चूंकि बौद्धिक संपदा अधिकार व्यापार में अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं, ये भेद अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में तनाव का स्रोत बन गए हैं।" (स्रोत : www.wto.org)।

जैसाकि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, बौद्धिक संपदा अधिकारों का प्रयोजन था – संगठनों, कंपनियों अथवा लोगों के सृजनात्मक एवं नवप्रवर्तनकारी प्रयासों की रक्षा करना और उनमें उत्पादों एवं प्रक्रिया की एक व्यापक श्रृंखला शामिल है।

व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार यानी 'ट्रिप्स' समझौतों के अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्र आते हैं:

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

- प्रतिलिप्याधिकार एवं संबद्ध अधिकार
- व्यापार चिन्ह जिनमें सेवा चिन्ह भी शामिल हैं।
- भौगोलिक संकेत
- औद्योगिक अभिकल्प
- एकस्व अधिकार
- समन्वित सर्कितों का खाका और डिजाइन

क) **प्रतिलिप्याधिकार एवं संबंद्ध अधिकार:** इस वर्ग में, पुस्तकों व अन्य लेखों जैसी साहित्यिक रचनाओं, संगीत रचनाओं, कला चित्रों, कलाकृतियों, कंप्यूटर प्रोग्रामों एवं फिल्मों के लेखकों एवं कलाकारों के अधिकारों की रक्षा प्रतिलिप्याधिकार अर्थात् कॉपीराइट (Copyright) द्वारा की जाती है, जो कि लेखक की मृत्यु उपरांत न्यूनतम 50 वर्ष की अवधि तक लागू रहता है। प्रतिलिप्याधिकार एवं संबद्ध अधिकारों के माध्यम से कलाकारों (यथा अभिनेताओं, गायकों एवं संगीतकारों), ध्वनिलेखों (फोनोग्राम) के प्रस्तुतकर्त्ताओं एवं प्रसारण संगठनों के अधिकारों की रक्षा की जाती है। ट्रिप्स समझौता सुनिश्चित करता है कि कंप्यूटर प्रोग्रामों को 'बर्ने समझौते' के तहत साहित्यिक कृति के रूप में संरक्षण प्रदान किया जाये तथा रूपरेखा प्रस्तुत करता है कि किस प्रकार 'डेटा बेसों' की रक्षा की जाये। यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिलिप्याधिकार नियमों के दायरे का विस्तार कर उनमें किराया अधिकार भी शामिल करता है। कंप्यूटर प्रोग्रामों के लेखकों एवं ध्वनि लेखों के प्रस्तुतकर्त्ताओं को यह अधिकार होना

ही चाहिए कि वे जनता हेतु अपनी कृतियों के व्यापारिक किराये पर रोक लगा सकें। एक इसी प्रकार का अनन्य अधिकार फिल्मों पर भी लागू होता है जहां व्यापारिक किराये ने व्यापक नकल की ओर प्रवृत्त किया है, जिससे प्रतिलिप्याधिकार धारकों की अपनी फिल्मों से होने वाली संभावित आय पर प्रभाव पड़ता है।

ख) **व्यापार चिन्हः** यह समझौता परिभाषित करता है कि किस प्रकार के व्यापार चिन्ह मार्का के रूप में संरक्षण पाने के हकदार होने चाहिए और उनके स्वामियों को दिए जाने वाले न्यूनतम अधिकार क्या होने चाहिए। इसके अनुसार सेवा चिन्हों को भी माल हेतु व्यापार चिन्हों के जैसे ही संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। मार्का जो किसी देश विशेष प्रसिद्ध हो जाता है उसे अतिरिक्त संरक्षण दिया जाता है।

ग) **भौगोलिक संकेतः** किसी स्थान के नाम का प्रयोग कभी कभी किसी उत्पाद को पहचानने के लिए किया जाता है। यह "भौगोलिक संकेत" यह नही दर्शाता कि उत्पाद कहां तैयार हुआ। अधिक महत्वूपर्ण रूप से यह उत्पाद के विशेष गुणों से तादात्म्य स्थापित करता है जो कि उत्पाद के उद्‌गमों के परिणाम होते हैं। सुप्रसिद्ध उदाहरणों में शामिल है "शैम्पेन", "स्कॉच", "टैकिल्प", और "रॉक़फोर्ट" पनीर। मदिरा और सुरासार बनाने वाले खासतौर पर उत्पादों को पहचानने के लिए स्थान नाम का ही प्रयोग करते हैं, और ट्रिप्स समझौते में इन उत्पादों के लिए विशेष प्रावधान हैं। परन्तु यह मुद्दा अन्य प्रकार की वस्तुओं के लिए महत्वपूर्ण है। स्थान नाम का प्रयोग करना जबकि उत्पाद अन्यंत्र बना हो, अथवा इसमें यथावत् गुण न हों, तो उपभोक्ता भ्रमित हो सकता है, और इससे अनुचित प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिल सकता है। ट्रिप्स समझौते के अनुसार सभी देशों को स्थान नामों का दुरूपयोग रोकना होगा।

घ) **औद्योगिक अभिकल्पः** ट्रिप्स समझौते के तहत, औद्योगिक अभिकल्प अर्थात डिज़ाइन को कम से कम दस वर्ष के लिए संरक्षण दिया जाना चाहिए। संरक्षित अभिकल्पों के स्वामियों को ऐसे डिज़ाइन रखने अथवा शामिल करने वाली वस्तुओं के विनिर्माण, बिक्री अथवा आयात को रोकने में सक्षम होना चाहिए, जो कि संरक्षित अभिकल्प की नकल हो।

ड.) **एकस्व अधिकारः** समझौते के अनुसार आविष्कारों हेतु एकस्वाधिकार संरक्षण कम से कम 20 वर्षो के लिए उपलब्ध होना चाहिए। एकस्वाधिकार संरक्षण उत्पादों एवं प्रक्रियाओं, दोनों के लिए उपलब्ध है। सरकारें किसी आविष्कार हेतु एकस्वाधिकार ज़ारी करने से इंकार कर सकती है यदि उसका व्यापारिक दोहन लोग व्यवस्था अथवा नैतिकता के कारणों से निषिद्ध हो। वे नैदानिक, आरोग्यकर एवं शल्यचिकित्सीय विधियों पौधों व जन्तुओं (सूक्ष्म जीवों के अरिरिक्त), तथा पौधों एवं जन्तुओं के उत्पादन (सूक्ष्म जैविक प्रक्रियाओं के अलावा) हेतु जैविक प्रक्रियाओं को भी वर्जित कर सकते हैं। पादप उपजातियां तथापि, स्वस्वाधिकारों द्वारा अथवा एक विशेष प्रणाली द्वारा संरक्षणीय होनी चाहिए (जैसे अन्तर्राष्ट्रीय नव पादप उपजाति संरक्षण संघ – यूपोव (UPOV)) सम्मेलन में प्रदान किए गए अभिजनक के अधिकार (Breeder's rights)। यदि किसी उत्पादन प्रक्रिया को एकस्वाधिकार दिया जाता है तो ये अधिकार प्रक्रिया से सीधे प्राप्त उत्पाद को भी अपने दायरें में लेंगे। कुछ खास परिस्थितियों में क़िसी न्यायालय द्वारा तथाकथित उल्लंघन करने वालों को यह प्रमाणित करने को कहा जा सकता है कि उन्होंने एकस्वकृत प्रक्रिया को प्रयोग नहीं किया है। हाल के दोहा सम्मेलन (विश्व व्यापार संगठन) में यह सहमति बनी कि ट्रिप्स समझौता सदस्यों को जन स्वास्थ्य के रक्षार्थ कदम उठाने से न तो रोकता है और न ही रोकना चाहिए। उन्होंने ट्रिप्स समझौते में सुगम्यताओं के प्रयोगार्थ विभिन्न देशों की क्षमता पर ज़ोर दिया। और वे

MAADHYAM IAS

2016 तक अल्प-विकसित देशों के लिए दवाई एकस्वाधिकार संरक्षण पर रियायतें देने पर भी सहमत हुए। एक शेष प्रश्न पर उन्होंने आगे का काम ट्रिप्स परिषद् को सौंप दिया – पता लगाए कि अतिरिक्त सुनभ्यता कैसे प्रदान की जाए, ताकि देश स्वदेश में ही औषधियां उत्पन्न करने में अक्षम देश अनिवार्य लाइसेंस के तहत बनाई गई एकस्वकृत दवाएं आयात कर सकें। इस सुनभ्यता को प्रदाय करने वाले स्वत्व त्याग पर समझौता 30 अगस्त 2003 को हुआ।

च) **समन्वित सर्किटों का खाका और डिजाइन:** समन्वित शक्ति अर्थात 'आई सी' (इंटिग्रेटिड सर्किट) नामक इस विशेष वस्तु के अभिकल्प एवं क्षेत्र को 1989 में अंगीकृत किया गया, परन्तु यह अभी लागू होना शेष है। इस पर संरक्षण 10 वर्षों के लिए उपलब्ध होता है।

छ) **व्यापार भेदों समेत गुप्त सूचना:** व्यापार भेद एवं अन्य प्रकार की "गुप्त सूचनाओं", जो व्यापारिक महत्व रखती हैं, को गोपनीयता भंग तथा निश्छल व्यापार कार्यों के विपरीत अन्य कृत्यों के विरूद्ध संरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। परन्तु सूचना को गुप्त रखने के लिए युक्तियुक्त कदम भी उठाये जाने चाहिए। नए दवाई अथवा कृषिगत रासायनों हेतु विपणन स्वीकृति प्राप्त करने के लिए सरकारों के पास जमा परीक्षण आंकड़ों को भी अनुचित व्यापारिक प्रयोग के विरूद्ध संरक्षा प्रदान की जानी चाहिए (www.wto.org)।

अपने स्वरूप में यह पूरी तरह युक्तिसंगत लगता है कि एकसमान कानून बनाए जाने चाहिए जो कि सभी व्यापार साझीदारों के लिए समान रूप से लागू किए जा सकें परन्तु ट्रिप्स समझौते की विकासशील एवं अल्प विकसित देशों की ओर से कड़ी आलोचना हुई है। उन्हें लगता है कि विनिर्माण एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित देशों की सर्वोच्चता का श्रमिक श्रय हो रहा है, जिसका कारण है प्रतिस्पर्धियों के रूप में एशियाई देशों का उदय। इसने उत्तरी गोलार्ध के उद्योगों एवं कंपनियों को प्रेरित किया है कि वे दबाव समूह बन जायें, जो कि समझौतों के समर्थन में रहे हैं। "औद्योगिक गुटों ने व्यापार को बौद्धिक संपदा अधिकारों से जोड़े जाने की आवश्यकता पर विकसित देशों की सरकारों को राज़ी कर लिया, ताकि नकल रूके और अनुसंधान एवं विकास पर आय बढ़े। बौद्धिक संपदा अधिकारों द्वारा प्रदत्त एकाधिकारों (मोनोपॉलि अधिकारों) को इस लिहाज से निर्णायक माना गया कि वे विकासशील देशों को अनुकरण एवं नकल प्रौद्योगिकियों पर आधारित उद्योगीकरण की ओर बढ़ती 'दोष पकड़ने' की प्रक्रिया में आगे बढ़ने से रोकेंगे, जैसा कि विकसित देश स्वयं करते आये थे। दूसरे शब्दों में बौद्धिक संपदा अधिकार संरक्षण उस तुलनात्मक लाभ को सुनिश्चित करने हेतु एक युक्ति था जो कि अब तक विकसित देशों की प्रौद्योगिकीय सर्वोच्चता को सुनिश्चत करता आया था" (सिसीलिया ओ, थर्ड वर्ल्ड नैटवर्क, 2000)।

सोचिए और कीजिए 22.2

सॉफ्टवेयर, संगीत एलबम, फिल्म, आदि बनाने में धन एवं रचनात्मक ऊर्जा, दोनों का भारी निवेश होता है। अतः क्या आप नहीं सोचते कि इस प्रकार की वस्तुओं की चोरी के लिए कठोर दण्ड होना चाहिए? अपने विचार व्यक्त करें।

22.5 विश्व व्यापार संगठन में विकसित देशों का प्रभुत्व

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, विश्व व्यापार संगठन समझौते अधिकांश रूप में उन मानकों पर आधारित होते हैं जो कि उत्तरी गोलार्ध के विकसित देशों द्वारा सोचे और निर्धारित किए जाते हैं। दक्षिणी गोलार्ध स्थित अनेक देशों का मानना है कि इनके इस भांति

अभिकल्पित किया गया है कि उन बड़े उद्योगों एवं कंपनियों की हितपूर्ति हो जो प्रौद्योगिकी अथवा उत्पादों पर से अपने एकाधिकार को खोना नहीं चाहते।

जब हम स्वयं विश्व व्यापार संगठन की कार्यवाही पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि ये समझौते निरपवाद रूप से देशों के अमीर समूहों के बीच ही होते हैं। जो भी निर्णय वे लेते हैं, तदोपरांत, गरीब देशों पर उनकी भागीदारी के बिना ही थोप दिए जाते हैं। संगठन के सिएटल सम्मेलन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन निश्चय ही वह 'गार्डियन' नामक अखबार में छपी इस रिपोर्ट को पढ़ें (बॉक्स 23.2 देखें), जो ग़रीब देशों की कुण्ठाओं और विकसित देशों की छल कपट युक्त चालों को दर्शाती है।

बॉक्स 22.1: विश्व व्यापार संगठन सिएटल वार्ता

तो क्या हुआ वास्तविक सिएटल में संघर्ष में? प्रथमतः अमेरिका वासियों की नैराश्यजनित निर्भीकता के चलते सौदा हथियाने के लिए ग़रीब देशों को आरम्भ में ही एक तरफ कर दिया गया। कार्यरत समूहों के, जो विभिन्न क्षेत्रों में हितबद्ध देशों के बीच सर्वसम्मति बनाने के लिए एकत्र हुए थे, ढोंगी समझा गया। पीठासीन अधिकारी सर्वसम्मति बता रहे थे जबकि वहां कोई था ही नहीं।

दूसरे 'नेप्थ्यशाला चर्चाओं' से जो कि बहस का अगला दौर था और इसबार अधिकांशतः अमीर देशों के बीच था, ग़रीबों को बाहर रखा जा रहा था। एक अफ्रीकी प्रतिनिधि को तो बलपूर्वक उसमें शामिल होने से रोका गया।

तीसरा मुद्दा अमेरिका की प्रमुख वार्ताकार चार्लीन बार्शेफ्स्की की कार्यशैली और चाल चलन से जुड़ा था, जिसके कि व्यक्तिगत तौर पर आपत्तिजनक, पक्षपाती और तिरस्कारपूर्ण ठहराया गया था। वह एक पूर्णाधिवेशन में ही छूट हो गयी। और इसके अलावा ये ग़रीब देश उस गति से जिससे कि ये बातचीत के दौर निबटाये जा रहे थे और तर्क वितर्क के अभाव से भयभीत थे। बातचीत के एक पूरी तरह नए दौर को छोड़िए, पांच वर्ष पूर्व समाप्त हुए वार्ताओं के पिछले दौर में भी, विश्व के अनेक दरिद्रतम देशों के पास क्रियान्वयन हेतु न सिर्फ़ क्षमता एवं साधनों का अभाव था बल्कि बहुत से देशों के पास महज जेनेवा में एक स्थायी प्रतिनिधि नियुक्त करने के लिए साधन थे, जहां कि बेपते की वार्ताएं की जाती थी।

तीसरी दुनिया इस बात के प्रति भी चिन्तित थी कि पर्यावरण, नौकरियों, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुद्दों पर व्यापार विषयक उदारीकरण के एक और दौर के प्रभावों के विषय में असली चिन्ताओं को शुद्ध आर्थिक हितों के प्रति निरन्तर अपरोध प्रेरित के रूप में देखा जा रहा था। समय दर समय उन समझौतों को जिन्हें करने में अन्तर्राष्ट्रीय मंचों ने वर्षों लगाए थे। अस्वीकार अथवा समाप्त कर दिया गया। विश्व व्यापार संगठन 'एहतियाती सिद्धांत' को मान्यता नहीं देता है, और अन्य सभी अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को नजायज़ ठहराता है। बड़े व्यवसाय द्वारा बातचीत की अनुभूत कार्यसूची व्यवस्था के साथ साथ यह बात ही थी जिसका अधिकांश संबद्ध पर्यावरणविद् एवं श्रमिक समूह सिएटल में विरोध कर रहे थे।

लोकतांत्रिक प्रणाली काम नहीं कर रही है। थर्ड वर्ड नेटवर्क के मार्टिन खोर ने कहा।'यह अप्रत्याशित विफलता है। इसमें विश्व व्यापार संगठन सुधार के अलावा भी बहुत कुछ लाने की आवश्यकता है।

जबकि संचार माध्यम सिएटल के दंगों, आंसू गैस व लूटपाट पर ध्यान केन्द्रित किए थे सिएटल की गलियों में मांग विश्व व्यापार समाप्त करने के लिए नहीं बल्कि एक निष्पक्ष एवं अधिक लोकतांत्रिक प्रणाली लागू किए जाने के लिए की जा रही थी। 'वे कुछ खिडकियां तोड़ दिए जाने पर चिंता कर रहे हैं' एक फिलीपीन्स के नेता ने कहा। 'वे आयें और देखें कि व्यापार के उदारीकरण के नाम पर हमारे समुदायों में हिंसा फैलाई जा रही है।'

स्रोत : गार्डियन , सितम्बर 9, 1999

जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चूके हैं, व्यापार के ऐसे अनेक पहलू हैं जो ग़रीब दक्षिणी गोलार्ध स्थित देशों के विरूद्ध खड़े हैं, उदाहरणार्थ हमने ज़िक्र किया कि किस प्रकार कुछ व्यापार संबंध अनिवार्यतः बड़े निगमों की एकाधिकारवादी प्रवृत्तियों से मेल खाती है। एक खास क्षेत्र जो दक्षिण की ओर से कड़ी आलोचना से घिरा है, वो है उरूग्वे दौर में ट्रिप्स समझौते का लाया जाना, जो कि विश्व व्यापार संगठन एवं उसके गुट वाली बड़ी कंपनियों को मौका प्रदान करता है कि एकस्वाधिकारों के नाम पर ग़रीब देशों की बाहं मरोड़ सके। ट्रिप्स उत्तर व दक्षिण के बीच आर्थिक एवं प्रौद्योगिकीय क्षमताओं में गहरे भेदों को अनेदखा करता है और श्रम के एक अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन, को मूर्त रूप देने पर अभिलक्षित प्रौद्योगिकीय संरक्षणवाद की एक युक्ति है, जहां उत्तर गोलार्ध स्थित देश आविष्कारों को जन्म देंगे और दक्षिण के देश उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले उत्पादों एवं सेनाओं के लिए बाज़ार बन जायेंगे। यह एक अमेरिकी सहबद्ध हितों को लेकर चलाया गया एक आन्दोलन है ताकि विश्व बाज़ारों में अपने ह्रासमान प्रतिस्पर्धात्मक पण्य क्षेत्र का सामना करने के लिए विश्व व्यापी नियम बनाए जा सकें। (कोरिया 2000 : 5)।

22.6 तीसरी दुनिया के लिए व्यापार संबंधी बौधिक सम्पदा अधिकार (ट्रिप्स) के निहितार्थ

व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकार यानी 'ट्रिप्स' (Trips) उन ग़रीब देशों को प्रभावित करेंगे जिनके पास ज्ञान का अभाव है, यथा भेद को बढ़ावा देकर और उन ज्ञान उत्पादकों के पक्ष में सौदाकारी शक्ति हस्तांतरित कर जिनमें से अधिकांश उद्योगीकृत उत्तरी गोलार्ध में स्थित हैं। इतना ही नहीं, राष्ट्रीय सरकारें जो औषधि, कृषि आदि जैसे कुछ क्षेत्रों एवं मदों पर एकस्वाधिकार नियमों से दूरी प्रदान किया करती थी। अब विश्व व्यापार संगठन व्यवस्थाओं का पालन करने को बाध्य हैं। इसको सर्वाधिक सशक्त रूप से महसूस किया जायेगा। एकस्वाधिकरों के क्षेत्र में एवं दवाओं के दाम पर उसके प्रभावों में। समान रूप से ही खतरे में पड़ जायेगा ज्ञान जो कभी भी एकस्वकृत न किया गया हो और जो परंपरागत एवं देशज समुदायों के जनाधिकार क्षेत्र में आता हो। इस ज्ञान को या तो चतुराई से अवशोषित किया जा रहा है या फिर चुराया जा रहा है — जिसे "जैविक चोरी" भी कहते हैं।

बैद्धिक संपदा के उत्तरी प्रभुत्व को निम्नलिखित आंकड़ों में देखा जा सकता है : दुनियाभर के सभी एकस्वाधिकांर का 97 प्रतिशत मुट्ठीभर देशों में ही संकेन्द्रित है; 1993 में, दस देशों में विश्व अनुसंधान एवं विकास (R&D) का 84 प्रतिशत रहा; गत दो दशकों में अमेरिका में 95 प्रतिशत एकस्वाधिकार उन दस देशों के आवेदन पर ही दिए गए। जिनका सीमापार स्वत्वशुल्कों एवं लाइसेंसिंग फीस के 90 प्रतिशत से भी अधिक पर कब्ज़ा था; 70 प्रतिशत विश्व स्वत्वशुल्क और लाइसेंसिंग फीस भुगतान जनक एवं पारदर्शीय निगमों से संबद्ध कंपनियों के बीच ही रहा; और तीसरी दुनिया के देशों में दिए गए 80 प्रतिशत से भी अधिक एकस्व अधिकार औद्योगिक देशों के निवासियों के पास ही हैं (यूएनडीपी 1999 : 68)।

यह तथ्य की ज्ञान को एकस्वाधिकृत कराया जा सकता है, स्वास्थ्य, कृषि कार्यो एवं संबद्ध क्षेत्रों जैसे जैव अभियांत्रिकी हेतु सुगमता के लिहाज से गंभीर निहितार्थ रखता हे। आइए, देखें कि यह उदाहरण के लिए स्वास्थ्य सुलभता को किस प्रकार प्रभावित करता है।

ट्रिप्स और स्वास्थ्यः एक दवा बनाने वाली कंपनी ट्रिप्स समझौते के तहत 20 वर्ष के लिए प्रक्रिया एवं उत्पाद दोनों के लिए एकस्वाधिकार प्राप्त कर सकती है। उत्पाद एकस्वाधिकार उत्पाद की संपूर्ण संरक्षा का भरोसा दिलाते हैं। जबकि प्रक्रिया एकस्वाधिकार प्रौद्योगिकी एवं विनिर्माण विधि के संबंध में सरंक्षण प्रदान करते हैं। प्रक्रिया एकाधिकार प्रणाली उत्पाद एकस्वाधिकारों के माध्यम से बनायी गई एकाधिकार *व्यवस्था* की तुलना में एक अधिक प्रतिस्पर्धात्मय परिवेश को बढ़ावा देती है। उत्पाद एवं प्रक्रिया दोनों के लिए ट्रिप्स शर्त के साथ यह इसकी *कारण संभव सीमा कि 20 वर्ष के लिए किसी उत्पाद पर एकस्वाधिकारों के*

लिए आवेदन दिया जा सके ओर तदोपरांत उस प्रक्रियाओं के संरक्षणार्थ आगे की अवधि के लिए आवेदन दिया जा सके जिनसे कि वह उत्पाद बनाया गया हो। पहले तीसरी दुनिया के देश कुछ दवाओं का उत्पादन स्वयं करते थे, उदाहरण के लिए भारत। चीन, ब्राज़ील एवं मिस्र दवाई प्रक्रियाओं पर एकस्वाधिकारों की अनुमति देते हैं परन्तु अन्तिम उत्पादों पर नहीं। इसका अर्थ है – वे प्रयुक्त असल से एक भिन्न प्रक्रिया प्रयोग कर कानूनी रूप से दवा बना सकते हैं। इसने पंजीकृत व्यापारिक नाम से असंरक्षित दवाओं को बनाने के लिए राष्ट्रीय घरेलू उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया, जो कि मार्का अंकित मूल आयामों के मुकाबले सस्ती होती थीं। परन्तु अब उन्हें विश्व व्यापार संगठन के सदस्यों के रूप में ट्रिप्स समझौते का पालन करना पड़ता है। अतः उन्होंने अपने एकस्वाधिकारों को संशोधित कर उपयुक्त बना लिया है।

तथापि, ट्रिप्स के तहत "सभी देश अनिवार्य दवा लाइसेंस प्रणाली के अन्तर्गत दवाओं की सुलभता प्राप्त कर सकते हैं और जन स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं। ट्रिप्स के अनुच्छेद 31 के अनुसार सदस्य राज्य जनहित में 'सरकार द्वारा प्रयोग समेत किसी अधिकार धारक के अनुमोदन के बग़ैर ही एकस्वाधिकार की विषय वस्तु का प्रयोग कर सकते हैं'। साथ ही, इसके अनुसार 'अनुमोदन अर्थात प्राधिकरण के आर्थिक मूल्य को ध्यान में रखते हुए अधिकार धारकों को उचित पारितोषिक भी दिया जायेगा'। इस प्रकार सरकारें एकस्वाधिकार धारक की स्वीकृति के बग़ैर ही एकस्वकृत दवाओं के प्रतिरूप बनाने का लाइसेंस दे देती हैं और फिर परवर्ती को स्वत्व शुल्क अर्थात् रायल्टी चुका देती हैं। 'अनिवार्य लाइसेंस प्रणाली' अनेक देशों के एकस्वाधिकार कानून का हिस्सा है। यह विकल्प अनेक देशों द्वारा जन कल्याण हेतु कंपनियों (एकस्वाधिकार धारकों) के एकाधिकार अर्थात मोनोपॉलि अधिकारों पर प्रतिबंध लगाने के लिए अपनाया जाता है" (उपलील हॉन्ग, 2000 **स्रोत**:http://www.phonovement.org.)।

अमेरिका सैंकड़ों मामलों में अपने देश में ही अनिवार्य लाइसेंस के लिए आवेदन कर चुका है। परन्तु अनेक विकासशील एवं अल्पविकसित देश अपने विरूद्ध व्यापार प्रतिबंधों की वजह से अनिवार्य लाइसेंस का विकल्प चुनने से हिचकिचाते हैं। ऐसा थाइलैण्ड के साथ देखा गया जब उसने अनिवार्य लाइसेंस प्रणाली के तहत अपने बढ़ते एड्स रोगियों के लिए पंजीकृत व्यापारिक नाम से असंरक्षित दवाएं बनाने का प्रयास किया। जब अमेरिका ने थाइलैण्ड से आने वाले काष्ठ उत्पादों एवं गहनों आदि पर सीमाशुल्क बढ़ाने की धमकी दी तो वह अपनी योजना टाल देने पर बाध्य हो गया। इसी प्रकार का भय प्रदर्शन दक्षिण अफ्रीका पर भी किया गया और इस बहाने से रोका गया कि दक्षिण अफ्रीका अपने 40 लाख एड्स रोगियों के लिए एवं पंजीकृत व्यापारिक नाम से असंरक्षित दवा बनाने का विकल्प चुन कर एकस्वाधिकार कानूनों का उल्लंघन कर रहा है। पारदेशीय निगमों एवं अमेरिकी सरकारों के समर्थन से दवाई कंपनियों ने एक याचिका दायर की। एड्स सक्रियतावादियों व अन्य द्वारा बड़े दबाव के चलते अमेरिका ने अपना दृष्टिकोण बदला और बातचीत को राज़ी हो गया।

प्रतिस्पर्धा से मुक्त, कंपनी संरक्षण अवधि के दौरान दवा का दाम ऊंचा रख सकेगी। ट्रिप्स संरक्षण की बदौलत कोई भी पंजीकृत व्यापारिक नाम से असंरक्षित समान रोगियों को अपेक्षाकृत सस्ते विकल्पों से वंचित करता हुआ, 20 वर्ष की समापन अवधि तक बाज़ार में नहीं आ सकेगा।

सप्राण जैविक वस्तुओं पर एकस्वाधिकारः ट्रिप्स का अनुच्छेद 27.3 (ख) इस अर्थ में जीव रूपों के एकस्वाधिकार धारक की अनुमति देता है कि सूक्ष्म जीव एवं सूक्ष्म जैविक प्रक्रियाओं को एकस्वाधिकारों अथवा कुछ विधिसंगत साधनों द्वारा पादप प्रजातियों को एकस्वकृत कराना होता है और उन्हें संरक्षण प्रदान करना होता है। ये जैव प्रौद्योगिकी समर्थक वर्ग और उत्तरी गोलार्ध स्थित देशों की सरकारों को सांसारिक जैविक संसाधनों पर निजी एकाधिकार संबंधी अधिकारों को प्रयोग करने में सक्षम करते हैं।

ये मानदण्ड समुदाय आधारित संसासधनों एवं ज्ञान के निजी विनियोग को विधिसम्मत बनायेंगे और देशज एवं स्थानीय समुदायों को भीतर ही भीतर नुकसान पहुंचायेंगे। इससे उत्तरी गोलार्ध स्थित देशों को अधिकार मिल गया है कि तीसरी दुनिया की जैविक विरासत पर डाका डालें। उदाहरण के लिए, इनसे परंपरागत दवाओं और फसलों पर एकस्वाधिकार संभावना बढ़ जायेगी जो कि तीसरी दुनिया के देशों में सदियों से लोकधिकार क्षेत्रों में रही है। तीसरी दुनिया विश्व के जैव संसाधन भण्डार के लगभग 90 प्रतिशत का उद्गम स्थल है। जैव पूर्वेक्षक वर्षों से लाभप्रद उपयोगों के लिए स्थानीय लोगों के वानस्पतिक ज्ञान को चुराते रहे हैं। उदाहरण के लिए, मेडागास्कर में पाये जाने वाले गुलाबी सदाबहार– रोज़ी पेरिविंकल में कैंसर रोधी गुण होते हैं, एलि लिली ने इससे एक दवा बनाई और उसकी बिक्री से 10 करोड़ डॉलर वार्षिक कमाई की पर मेडागास्कर को धेला भी न मिला। (यू एन डी पी 1999)।

औषधीय पौधों के व्यापार की कीमत वर्तमान में 43 अरब अमेरिकी डॉलर प्रतिवर्ष आंकी गई है; जबकि बीज उद्योग हेतु परंपरागत किसानों द्वारा उन्नत एवं विकसित फसल प्रजातियों/उपजातियों की कीमत मात्र 15 अरब अमेरिकी डॉलर ही होती है। इस प्रकार व्युत्पन्न अन्य उत्पाद, जैसे स्वीटनर, इत्र, जैव कीटनाशी वस्त्र एवं सौन्दर्य प्रसाधन, तीसरी दुनिया से प्राप्त होने वाले जैविक संसाधनों के अत्याधिक योगदान एवं मूल्य को दर्शाते हैं। (ग्रे 1993 एवं ब्रुश 1999)। औषध विज्ञान को योगदान के लिहाज से, नुस्खा दवाओं हेतु क्रियाशील घटक प्रदान करने वाले लगभग तीन चौथाई पौधे परंपरागत औषधियों में उनके उपयोग के कारण अनुसंधानकर्त्ताओं का ध्यान आकृष्ट करते हैं; 120 क्रियाशील यौगियों में से, वर्तमान में जो मुख्य पौधों से अलग किस्म के हैं, 75 प्रतिशत अपने आधुनिक आरोग्यकर प्रयोग एवं उस पौधे के परंपरागत प्रयोग के बीच एक सकारात्मक संबंध दर्शाते हैं (फार्न्सवर्थ व अन्य 1985)। मलेशिया, घाना एवं कोस्टा राइस से एकत्र किए गए पादप सार से अतिसंवेदनशीलता रोधी अभिकारकों – ए सी ई निवारकों के एक महत्वपूर्ण वर्ग से जुड़ी उल्लेखनीय खोजें की गई हैं (हाउसन, फाइनबर्ग एवं ब्लूम 1998 : स्रोत : http://www.phmovement.org./pubs/issuepapers)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सोचिए और कीजिए 22.3

भारत में दवाई क्षेत्र पर ट्रिप्स व्यवस्था के प्रभाव का मूल्यांकन करें।

22.7 देशज ज्ञान और जैविक चोरी

जैसा कि हमारे पूर्व पाठांश में दृष्टव्य है, आधुनिक दवाई उद्योग एवं बड़े निगमों को परंपरागत अथवा देशज ज्ञान का योगदान अपरिमित है। इन जीव रूपों एवं ज्ञान का अधिकांश, जैसा कि पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, तीसरी दुनिया के देशों में ही पाया जाता है।

बॉक्स 22.2: जैविक चोरी

जैविक चोरी का अर्थ है निगमों द्वारा जैविक संसाधनों का प्रयोग। इस शब्द के अन्तर्गत आमतौर पर निम्नांकित विशिष्ट गतिविधियां आती हैं :

- जैविक संसाधनों, जैसे पौधे, जन्तु, सूक्ष्म जीव एवं वस्तु का अनाधिकृत प्रयोग
- जैविक संसाधनों, पर परम्परागत समुदायों के ज्ञान का अनाधिकृत प्रयोग
- एक एकस्वाधिकार धारक एवं उस देशज समुदाय के बीच लाभों का असमान हिस्सा जिसका कि संसाधन अथवा ज्ञान प्रयोग किया गया है।
- एकस्वाधिकार योग्य मानदण्डों (नवीनता, अप्रत्यक्षता, उपयोगिता) का सम्मान किए बग़ैर ही जैविक संसाधन का एकस्वाधिकार प्राप्त कर लेना।

पृथ्वी की ज़ैव विविधता के 90 प्रतिशत से भी अधिक अफ्रीका, एशिया और दक्षिण अमेरिका में अवस्थित हैं ; इस प्रकार के वैविहक को विकसित एवं पोषित करने वाले देश समुदायों का आभार नहीं माना जाता है – उनसे प्राप्त किए जाने वाले सामान एवं स्थानीय ज्ञान का मुआवज़ा बहुत ही कम दिया जाता है। यह असमानता एकस्वाधिकारों के बढ़ते प्रयोग से और भी बढ़ा दी जाती है, जो कि दक्षिण गोलार्ध में उत्पन्न होने वाली सामग्री अथवा ज्ञान हेतु उत्तरी गोलार्ध के निगमों एवं अनुसंधानकर्त्ताओं को अनन्य संरक्षण प्रदान करते हैं।

और इसके अलावा, दक्षिण की आबादी का अधिकांश भाग अपने भरण पोषण के लिए देशज ज्ञान पर ही निर्भर करता है। अन्तर्राष्ट्रीय ग्रामीण प्रगति प्रतिष्ठान (RAFI) द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट के अनुसार, अनुमानत "विश्व जनसंख्या का 80 प्रतिशत आज भी अपनी चिकित्सीय आवश्यकताओं के लिए देशज ज्ञान पर निर्भर है और संभवतः दुनिया की आबादी का दो तिहाई भाग पौधों, जन्तुओं, सूक्ष्मजीवों एवं कृषि प्रणालियों संबंधी देशज ज्ञान के माध्यम से मिलने वाले खाद्य पदार्थों के बिना जीवित ही नहीं रह सकता था" (http://twm.co. nz.biopiracv.ntml)।

वंदना शिवा का कहना है कि "जैविक चोरी और देशज ज्ञान की एकस्वाधिकार प्राप्ति एक दोहरी चोरी है क्योंकि पहले इसकी मदद से रचनात्मकता और नवप्रवर्तन की चोरी की जाती है, और दूसरे चुराए गए ज्ञान पर एकस्वाधिकारियों द्वारा थोपे गए अनन्य अधिकारों के माध्यम से हमारी देशज जैव विविधता और देशज ज्ञान पर आधारित दैनिक भरण पोषण के आर्थिक विकल्प चुरा लिए जाते है। आगे चलकर, ये एकस्वाधिकार एकाधिकार कायम करने व रोज़मर्रा की वस्तुओं की कीमतें बढ़ाने में प्रयोग किए जा सकते हैं" (स्रोत : http://www.globalissues.org) एकस्वाधिकार हेतु बड़े निगमों द्वारा दी जाने वाली दलील यह है कि इस काम में ढ़ेर सा पैसा खर्च होता है जो कि वे तीसरी दुनिया की चोरी के लिए अनुसंधान एवं विकास में खर्च करते हैं। कृषि रासायनों में स्वत्वशुल्क के रूप में 20.2 करोड़ अमेरिकी डॉलर और औषधियों के लिए 254.5 करोड़ अमेरिकी डॉलर खर्च किए जाने का अनुमान है। तथापि जैसाकि कनाडा स्थित अन्तर्राष्ट्रीय ग्रामीण प्रगति प्रतिष्ठान ने दर्शाया है, यदि तीसरी दुनिया के किसानों और जनजातियों के योगदान को ध्यान संज्ञान लिया जाए तो भूमिकाएं नाटकीय रूप से बदल गयी हैं : अमेरिका तीसरी दुनिया के देशों के प्रति कृषि हेतु स्वत्वशुल्क के रूप में 30.2 करोड़ अमेरिकी डॉलर और औषधियों हेतु 509.7 करोड़ अमेरिकी डॉलर का देनदार है। इसमें शामिल धन के अलावा असमान व्यापार, जीवरूपों एवं ज्ञान की एकस्वाधिकार प्राप्ति ग़रीब ग्रामीण समुदायों एवं देशज लोगों की नितांत खाद्य सुरक्षा के प्रति एक बड़ा खतरा है।

MAADHYAM IAS

अनेक जैव प्रौद्योगिकी कंपनियों का दावा है कि अनुवांशिक रूप से अभियंत्रित खाद्य पदार्थ भूख मिटाने व खाद्य सुरक्षा बढ़ाने में मदद करेंगे, जबकि सदियों से विकसित हो रहे ज्ञान एवं खाद्य पर एकस्वाधिकार प्राप्ति स्वयं ही खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा बन सकती है।

कृषि में आनुवंशिक विविधता दक्षिणी गोलार्ध के अनेक देशज समुदायों एवं ग्रामीण समुदायों का मुख्य आधार रही है। दरअसल कारण कि दक्षिण में इतनी जैव विविधता क्यों है, अंशतः छोटे किसानों एवं समुदायों की सतत कृषि प्रथाओं को माना जा सकता है। ये समुदाय सदियों से उन पौधों, बीजों एवं प्रजातियों के विषय में ज्ञान अर्जित करते आये हैं जो कृषि जलवायु, कीटों इत्यादि के सर्वथा अनुकूल होते हैं। और इसी से जलवायकीय अवरोधों एवं परिवर्तनों के बावजूद खाद्य की सामान्य उपलब्धता में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कभी वो वक़्त भी था जब भारत वे अर्धशुष्क क्षेत्रों में रहने वाले किसान उन बोई जाने वाली फसलों की विशेष किस्म को पहचानते थे जो सूखा प्रतिरोधक होती हैं। उन्हीं क्षेत्रों में अब खराब फसल उत्पादन जैसी बढ़ती आपदा और किसानों द्वारा आत्महत्याओं का सिलसिला देखा जाता है। वंदना शिवा द्वारा प्रस्तुत कुछ सूक्ष्म भेदों को समझने के लिए बॉक्स 23.4 पढ़ें। आप जैव विविधता एवं छोटे समुदायों के अधिकारों के लिए संघर्षरत एक अग्रणी आंदोलनकर्त्ता हैं।

बॉक्स 22.3: खाद्य सुरक्षा

"गत वर्ष मैं वारंगल, आन्ध्र प्रदेश में थी जहां किसानों द्वारा आत्महत्या किए जाने के मामले भी सामने आये थे। परम्परागत रूप से दलहन व मोटे अनाज तथा धान उगाने वाले किसानों को बीज बनाने वाली कंपनियों द्वारा प्रलोभन दिया गया था कि संकट जाति के कपास के बीज खरीदें, जिसे ये बीज व्यापारी "सफ़ेद सोना" कहते थे, जो कि उन्हें मालामाल करने वाला बताते थे। जबकि वे दरिद्र हो गए"।

उनके देशी बीजों का स्थान अब नई संकट जातियों ने ले लिया है, जिनको बचाया नहीं जा सकता है और हर वर्ष ऊंची कीमत पर खरीदना पड़ता है। संकट जातियां कीट आदि के हमले के प्रति भी बेहद संवेदनशील होती है। वारंगल में कीटनाशियों पर व्यय अस्सी के दशक में 25 लाख डॉलर से 1997 में 5 करोड़ डॉलर यानि 2000 प्रतिशत बढ़ गया है। अब किसान उन्हीं कीटनाशियों को स्वयं को मारने के लिए पी लेते हैं ताकि वे न चुकाए जा सकने वाले ऋण से हमेशा हमेशा के लिए मुक्ति पा लें।

ये निगम अब आनुवांशिक रूप से अभियंत्रित बीजों को लाने का प्रयास कर रहे हैं जो कि कीमतों और पारिस्थितिकीय जोखिमों को और बढ़ा देंगे। यही कारण है कि आंध्र प्रदेश फार्मर्स, यूनियन के मल्ला रेड्डी जैसे किसानों ने वारंगल में मान्सैंटो के आनवांशिक रूप से अभियंत्रित बालॅगार्ड कपास को उखाड़ फेंका था।

खाद्य उत्पादन के विपुल वैविध्य एवं सतत व्यवस्थाओं को खाद्य उत्पादन बढ़ाने के नाम पर बर्बाद किया जा रहा है। तथापि विविधता का विध्वंस होते ही पुष्टिकर भोजन के विपुल स्रोत भी समाप्त हो जाते हैं। पुष्टिकर भोजन प्रति एकड़ के लिहाज से मापे जाने पर, और संदर्श जैवविविधता से, औद्योगिक कृषि अथवा औद्योगिक मत्स्य क्षेत्रों की तथाकथित "ऊंची पैदावार" का अर्थ खाद्य एवं पुष्टिकर भोजन का अधिक उत्पादन नहीं है। पैदावार का सामान्यतः अर्थ होता है किसी एक फसल का प्रति इकाई क्षेत्र उत्पादन। उत्पादन का अर्थ होता है विविध फसलों एवं उत्पादों का कुल उत्पादित परिमाण। एकल खेती के रूप में पूरे खेत में केवल एक ही फसल बोने से निश्चय ही अलग से पैदावार बढ़ेगी। मिला जुलाकर एकाधिक फसलें बोने से अलग अलग फसलों की कम पैदावार होगी, परन्तु खाद्य की कुल उपज अधिक होगी। पैदावार को कुछ इस तरीके से परिभाषित किया गया है कि जिससे छोटे किसानों द्वारा छोटी जोतों पर खाद्य उत्पादन नज़र ही न आये।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

चिआपा में मापन किसानों को अनुत्पादक माना जाता है क्योंकि वे मात्र 2 टन अनाज प्रति एकड़ ही पैदा करते हैं। तथापि, समग्र खाद्य उपज 20 टन प्रति एकड़ बैठती है जब सेम व लोकी जाति की पौधों, उनकी सब्जियों तथा उनके फल वृक्षों को भी हिसाब में शामिल किया जाता है।

जावा में, छोटे किसान अपने गृह उद्यानों में 607 प्रजातियां उगाते हैं। उप-सहाराई अफ्रीका में महिलाएं 120 विभिन्न प्रकार के पौधे उगाती है। थाईलेण्ड में एक अकेले गृह उद्यान में 230 प्रजातियां होती हैं। और अफ्रीकी गृह उद्यानों में वृक्षो की 60 से भी अधिक प्रजातियां। कांगों में रहने वाले ग्रामीण परिवार अपने खेत के पेड़ों से प्राप्त होने वाली 50 से भी अधिक प्रजातियों की पत्तियों का सेवन करते हैं। पूर्वी नाइजीरिया में कराए गए एक अध्ययन में पाया गया कि एक घर की कृषि भूमि के मात्र 2 प्रतिशत पर स्थित गृह उद्यानों में खेत की कुल उपज का आधा भाग होता था। इंडोनेशिया में 20 प्रतिशत घरेलू आय और 40 प्रतिशत घरेलू खाद्य आपूर्ति महिलाओं द्वारा चलाए जाने वाले गृह उद्यानों से ही होती है। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) ने सिद्ध किया है कि छोटे जैव विविध खेत बड़े, औद्योगिक एकल कृषियों के मुकाबले हज़ारों गुना पैदावार दे सकते हैं। और अधिक खाद्य उत्पन्न करने के अतिरिक्त विविधता ही सूखा और मरूस्थिलीकरण से बचाव हेतु सर्वोत्तम रणनीति है।

स्रोतः (http: // news.bbc.co.uk/hil/English/static/events/reith_2000/lectures.stm)

22.8 देशज एवं परम्परागत ज्ञान का संरक्षण

पूर्व चर्चा से यह स्पष्ट है कि तीसरी दुनिया के देशों, और इन देशों के साथ निर्वाह कृषि करने वाले समुदायों एवं देशज जन समुदायों के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों का निहितार्थ बहुत कटु है। न सिर्फ उनके ज्ञान को चुरा लिया जाता है बल्कि उनके ज्ञान अथवा उत्तरजीवन के लिए बिना कोई हर्जाना दिए उनकी नितांत उत्तर-जीविता पर भी खतरा उत्पन्न किया जाता है।

विभिन्न विरोध प्रदर्शनों, खासतौर पर सिएटल वार्ता और आमतौर पर समझौतों की बहुमुखता के विरूद्ध, ने इन समझौतों में उत्तरी एवं बड़े निगमों की तरफदारी की ओर इशारा किया है। इसके अतिरिक्त, बौद्धिक सम्पदा अधिकार व्यवस्थाएं उत्तरी गोलार्द्ध स्थित देशों द्वारा विकसित तार्किकता के अनुसार ही बनायी गई हैं। जो कि वैयक्तिक अधिकारों पर आधारित हैं और देशज एवं परम्परागत समुदायों के समुदाय स्वामित्व से मेल नहीं खाते। देशज ज्ञान के कुछ अभिलक्षण इस प्रकार है :

- समूहगत अधिकार एवं हित
- अपनी पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण से गहरा जुड़ाव, जो कि कभी-कभी धार्मिक रूप ले लेता है
- बहुधा यह ज्ञान प्रकृति में विविधता के प्रति श्रद्धालु होता है
- सदा ही दस्तावेज रूप में नहीं मिलता; बल्कि मौखिक रूप से हस्तांतरित किया जाता है।

देशज ज्ञान के ये पहलू और उनकी जीवन शैली शोषण के कारण उनके अति संवेदनशील बिन्दु रहे हैं। उदाहरण के लिए जैव विविधता विषयक सम्मति (CBD) में बतलाया गया कि जैव वैविध्य के ह्रास में एक कारक है "जैव-विविधता हेतु स्पष्ट स्वामित्व नियंत्रक सम्पदा अधिकार एवं सुलभता का अभाव"। और इसी कारण, सम्मेलन में अनुमोदन किया गया कि देशज समुदाय के नियंत्रण में संसाधनों के सतत प्रबंधन के संबंध में और अधिक स्पष्ट विनिर्देश एवं नियम होने चाहिए। वर्तमान बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्थाएं उन समूहगत अधिकारों को मान्यता नहीं देती हैं जो कि देशज लोग ज्ञान एवं व्यवहार में रखते हैं। एकस्व कानूनों के तहत संरक्षण के लिए एक नियत अवधि भी होती है, प्रायः 20 वर्ष की, जो दोबारा उस देशज ज्ञान को संभव नहीं बनाती है जो कि प्रायः हज़ारों वर्ष के नव प्रवर्तन एवं हस्तांतरण का परिणाम होता है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

विभिन्न संगठनों ने अपने अधिकारों एवं ज्ञान के संरक्षण हेतु बहुलकताएं निर्धारित करने को देशज समुदायों के अधिकारों हेतु मार्गदर्शन पाने के लिए विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं एवं सम्मेलनों पर निर्भरता दर्शायी है। आइए, संक्षेप में इनमें से कुछ अभिव्यक्तियों पर विचार करें।

देशज अधिकारों एवं ज्ञान की संरक्षार्थ अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासः देशज जनाधिकार विषयक प्रारूप घोषणा अपने अनुच्छेद 24 में "उनकी परंपरागत औषधियों एव स्वास्थ्य चर्चाओं, प्रमुख औषधीय पौधों, जन्तुओं एवं खनिजों की संरक्षार्थ अधिकार समेत" के प्रति देशज जनाधिकारों की व्यवस्था देती है। इसी का अनुच्छेद 29 व्यवस्था देता है कि देशज जन "अपनी सांस्कृतिक एवं बौद्धिक संपदा के संपूर्ण स्वामित्व, नियंत्रण एवं संरक्षण संबंधी मान्यता के हकदार" हैं। अनुच्छेद कहता है कि इन लोगों के पास :

.... मानव व अन्य आनुवंशिक संसाधनों, बीजों, दवाओं, जन्तु जगत एवं वनस्पति जगत के गुण-धर्मों का ज्ञान, मौखिक परंपराएं, साहित्य, अभिकल्पों तथा दृश्य एवं अभिनेय कलाओं समेत अपनी विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं संस्कृति संबंधी अभिव्यक्तियों के नियंत्रण, विकास, विघटन एवं संरक्षण हेतु विशेष उपाय करने का अधिकार है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सम्मेलन 169 (ILO 169) में भी देशज लोगों की संस्कृतियों, परिवेशों एवं धार्मिक व राजनीतिक व्यवस्थाओं के संरक्षण हेतु प्रासंगिक विभिन्न प्रावधान हैं (यथा अनुच्छेद 4, 5, 8, 13 एवं 23)।

एक अन्तर्राष्ट्रीय विकास परिणाम जो देशज ज्ञान को बचाने के उपायों को शुरू करने के लिए विशिष्ट अवसर प्रदान करता है, वो है उपर्युक्त जैव विविधता विषयक सम्मति। इस सम्मति अर्थात् औपचारिक समझौते के अनुच्छेद 8 (j) में इस बात को बढ़ावा दिया गया है कि देश "राष्ट्रीय विधान के अधीन हों" ताकि वे :

.... जैव विविधता के परिरक्षण एवं सतत उपयोग हेतु प्रासंगिक परंपरागत जीवनशैलियों वाले देशज एवं स्थानीय समुदायों के ज्ञान, नवप्रवर्तनों एवं प्रथाओं को सम्माद दें, बनाए रखें व संपोषित करें तथा ऐसे ज्ञान, नवप्रवर्तनों एवं प्रथाओं के धारकों की स्वीकृति एवं संलिप्तता के साथ उनके व्यापकतर अनुप्रयोग को बढ़ावा दें और ऐसे ज्ञान, नवप्रवर्तनों एवं प्रथाओं के सदुपयोग से मिलने वाले लाभों के समान बंटवारे को प्रोत्साहित करें (स्रोतः http://www.aph.gov.an)।

ये यथासंभव अन्तर्राष्ट्रीय निवेशों एवं सम्मतियों के अनुसार हैं जो विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं परन्तु जब क्रियान्वयन का समय आता है तो मार्ग में ढ़ेरों सूक्ष्म भेद उत्पन्न हो जाते हैं जो किसी भी समुदाय के ज्ञान संरक्षण को बेहद मुश्किल बना देते हैं।

MAADHYAM IAS

परंपरागत ज्ञान के संरक्षण विषयक संदर्शः जैव विविधता विषयक सम्मति, उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय कानून अथवा नीतियां बनाए जाने का आग्रह करती हैं, जो कि जैव विविधता एवं देशज समुदाय अधिकारों को संरक्षण प्रदान करें। यदि हम भारत का उदाहरण लें तो पायेंगे कि हमारी राष्ट्रीय नीतियां और कानून हमारे छोटे समुदायों अथवा देशज समुदायों, जैसे आदिवासियों को संरक्षण प्रदान करने वाले रहे हैं। भारतीय जड़ी बूटी उद्योग पर आरोप रहा है कि उसने पंरपरागत सामुदायिक ज्ञान का प्रयोग किया है और अपने द्वारा अर्जित अर्थ लाभ को सार्वजनिक हित लाभ में नहीं लगाया है।

परंपरागत ज्ञान के संरक्षण एवं लाभ आबंटन संबंधी मुद्दे पर अनेक परिप्रेक्ष्य दिखाई पड़ते हैं। जीन अभियान, इस मुद्दे पर कार्यरत एक गैर सरकारी संगठन, के उज्जवल कुमार अपने एक लेख में लिखते हैं कि इन परिप्रेक्ष्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है : (i) व्यापारित हित में सामुदायिक हित का अभाव, (ii) व्यापारिक हित में समुदायों का सम्मिलन और सामुदायिक हित जो व्यापारिक हित के अनुरूप न हो।

प्रथम परिप्रेक्ष्य के अनुसार, यह काफ़ी कुछ इस बात से जुड़ा लगता है कि घरेलू जड़ी बूटी उद्योग अथवा भेषजीय उद्योग समुदायों का भरण पोषण किए बगैर व्यापारिक हित में परंपरागत ज्ञान से लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

दूसरी ओर दूसरा परिप्रेक्ष्य बौद्धिक संपदा अधिकार व्यवस्था के लिए एक अच्छा मध्यमार्ग प्रतीत होता है। यह प्रतीयमानतः असली रूप दिखने में उत्तरोत्तर कठिन लगता है अतः न सिर्फ ज्ञान का बल्कि व्यवसायीकरण का भी संरक्षण होना चाहिए जहां संबद्ध समुदायों द्वारा

लाभों को परस्पर बांटा जाता है। राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान और कुछ हद तक जैव विविधता नियामक द्वारा किए गए प्रयासों को इस वर्ग में उदारहणों के रूप में लिया जा सकता है।

तीसरे दृष्टिकोण के पक्षपोषक यह महसूस करते हैं कि समुदाय एवं परंपराएं अवियोज्य हैं और उन्हें कानूनों एवं व्यापारिक हितों द्वारा तनुकृत नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे पर्यावरण के साथ देशज समुदायों के संबंध से जुड़े नितान्त आधार एवं सिद्धांत अस्तव्यस्त हो जायेंगे। उनका मूल उद्देश्य होता है देशज समुदायों द्वारा जैविक संसाधनों की घटती सुलभता पर फिर से नियंत्रण प्राप्त करना, न कि उन सह-उत्पादों पर ध्यान देना जो उनके ज्ञान एवं व्यवहार से बाकी रह गए है।

यदि हम ध्यापपूर्वक देखें तो पायेंगे कि इन सभी परिप्रेक्ष्यों के अपने अपने लाभ और हानियां हैं। इसी दौरान विश्व के गरीब देश, विशेष रूप से ब्राजील, भारत, वैनेजुएला, मलेशिया व अन्य का एक संयुक्त मोरचा, विभिन्न स्तरों पर विश्वव्यापी दबावों एवं समझौतों का विरोध करते रहे हैं और उत्तरी गोलार्द्ध के प्रभुत्व के खिलाफ काफी उग्र विरोध प्रदर्शित करते रहे हैं।

तथापि जैविक संसाधनों से जुड़े परंपरागत ज्ञान से संबंध रखने वाले संरक्षण, मान्यता एवं प्रतिफल आदि मुद्दे बहुत जटिल हैं। परंपरागत ज्ञान के संरक्षण हेतु बहुलकताएं अब भी उद्भूत हो क्रमविकसित हो रही हैं। लाभों में पात्रताओं एवं अंश की प्रकृति भी एक निराशाजनक क्षेत्र है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी स्पष्ट अभी तक उभर कर नहीं आयी हैं और देश इस मुद्दे को समझने के लिए संघर्ष में लगे हैं।

22.9 सारांश

इस इकाई में हमने भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया और साथ ही उसके मुख्य अभिलक्षणों को भी। हमने यह भी जानने का प्रयास किया कि इसमें निज़ीकरण और उदारीकरण बढ़ाने के लिए किस किस तरह से मार्ग प्रशस्त किए। हमने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार नियंत्रण निकाय, यथा विश्व व्यापार संगठन के अभिलक्षणों पर भी नज़र डाली, खासकर व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारों पर। यहां एक परिचर्चा भी हुई और पाया गया कि उत्तरी गोलार्द्ध के प्रभुत्व के विषय में ग़रीब देशों द्वारा अभिव्यक्त चिन्त्य विषय तार्किक रूप से जायज है। उत्तर का प्रभुत्व अनेक तरीकों से व्यक्त किया जाता है ; हमने इनमें से कुछ पहलुओं पर दृष्टिपात किया। एक विशेष पहलू, जो कि हमारी इस इकाई में महत्वपूर्ण है, व्यापार संबंधी बौद्धिक संपदा अधिकारों (ट्रिप्स) पर समझौता है, जिसके बौद्धिक संपदा अधिकार के लिए अनेक महत्व हैं। विशेष तरीके से अभिव्यक्त जैसा कि वे कानूनी भाषा में हैं, कुछ समझौते और कानून काफ़ी अविश्वसनीय साबित हुए हैं, परन्तु तीसरी दुनिया के देशों की ओर से बढ़ती संलिप्तता एवं सतर्कता के चलते चोरी काफ़ी हद तक रोकी जा सकी है। कितना ये व्यवस्थाएं क्रमविकसित होंगी, विभिन्न मुद्दों पर चल रही बहसों पर निर्भर करेगा, जो कि देशज लोगों के अधिकारों तथा उनके ज्ञान एवं जैव विविधता के संरक्षण से जुड़ी हैं।

22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

स्टिगलिज़, ई. जोसफ (2003), *ग्लोब्लाइज़ेशन एण्ड इट्स डिस्कॅन्टैन्ट्स,* नॉर्टन एण्ड कंपनी, न्यूयार्क।

कोरिया, कार्लो एम. (2000), *इन्टैलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स, द डब्ल्यू टी ओ एण्ड डिवैल्पिंग कन्ट्रीज़ : द ट्रिप्स एग्रीमैण्ट एण्ड पॉलिसी ऑप्शन्ज़,* थर्डवर्ल्ड नैटवर्क : पिनांग।

MAADHYAM IAS

इकाई 23

विश्व व्यापार संगठन, सीमा शुल्कों एवं व्यापार विषयक आम सहमतिः पूंजी और मानव प्रवाह

इकाई की रूपरेखा

23.1 प्रस्तावना

23.2 सामाजिक विकास, भूमंडलीकरण एवं व्यापार समझौते

23.3 विश्व व्यापर संगठन (WTO) : उत्पत्ति

23.4 विश्व व्यापार संगठन : प्रकार्य, सिद्धांत एवं कार्यक्षेत्र

23.5 सीमाशुल्क एवं व्यापार विषयक आम सहमति (GATT)

23.6 सेवाओं में व्यापार विषयक आम सहमति (GATS)

23.7 बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलू (TRIPs)

23.8 व्यापार उदारीकरण : विकासशील देशों के लिए उभरते विषय

23.9 स्वास्थ्य एवं शिक्षा हेतु निहितार्थ

23.10 सारांश

23.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित को स्पष्ट कर सकेंगे:

- विश्व व्यापार संगठन का उद्गम, कार्यक्षेत्र एवं प्रकार्य;
- गैट, गैट्स एवं ट्रिप्स के एकाधिक पहलू;
- व्यापार उदारीकरण पर विकासशील देशों की बढ़ती दिलचस्पी; तथा
- समाजिक विकास हेतु व्यापार उदारीकरण के निहितार्थ, विशेषकर विकासशील देशों में।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

23.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की पिछली इकाइयों में हमने भूमंडलीकरण के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आयामों संबंधी मुद्दों पर चर्चा की, साथ ही, संरचनात्मक संगठन कार्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं एवं परंपरागत व देशज ज्ञान पर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार विनियमों के प्रभाव पर भी। और हम समझ सके कि किस प्रकार भूमंडलीकरण की वर्तमान गति ने विश्व भर में विकास प्रक्रिया को प्रभावित किया है। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय, दोनों ही प्रकार का व्यापार विकास का बहुत महत्वपूर्ण पहलू बन गया है। भूमंडलीकरण के प्रारंभ में व्यापार ने एक भिन्न रूप से लिया है और मानव जीवन के सभी पहलू – माल, सेवाएं कलाएं संगीत आदि – व्यापार्थ वस्तुएं बन कर उभरे हैं। व्यापार को विश्वव्यापी रूप से सरल बनाने के लिए नए कार्य तंत्र उभरे हैं। इन व्यवस्थाओं के कुछ महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय निकाय/कार्यतंत्र विश्व व्यापार संगठन गैट एवं गैट्स संबंधी है।

इस इकाई में हम विकासशील विश्व हेतु इन सभी व्यवस्थाओं के निहितार्थ पर चर्चा करेंगे। आरंभ में चर्चा सामाजिक विकास, भूमंडलीकरण एवं व्यापार समझौतों के बीच पारस्परिक क्रिया बिंदु पर है। हमने विश्व व्यापार संगठन एवं गैट (GATT) के ऐतिहासिक उद्गम प्रकार्यों, सिद्धांतों एवं कार्यक्षेत्र पर संक्षिप्त चर्चा की है। गैट, गैट्स एवं टिप्स के अंतर्गत विषयों तथा उनके कार्यक्षेत्र एवं वचनबद्धताओं पर भी इस इकाई में चर्चा की गई है। हमने यहां व्यापार उदारीकरण हेतु बढ़ती दिलचस्पी एवं सामाजिक विकास पर उसके निहितार्थ पर

23.2 सामाजिक विकास, भूमंडलीकरण एवं व्यापार समझौते

विश्व व्यापार संगठन, सीमा शुल्कों एवं व्यापार विषयक आम सहमतिः पूंजी और मानव प्रवाह

आधुनिक विश्व में, अस्सी के दशक के अंत एवं नब्बे के दशक के आरंभ में अन्तर्सम्बद्ध सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं घटनाओं की एक श्रृखंला सी दिखाई दी। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे : अभूतपूर्व विश्व व्यापी अन्तर्सबद्धता, संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रमों की शुरुआत, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (ICTs) का आश्चर्यजनक विस्तार, बढ़ता व्यापारीकरण, विकास के उन्नयन में मनोगत परिवर्तन (आर्थिक विकास से मानव विकास तक) तथा विश्व के एक भाग से दूसरे भाग तक मानव एवं पूंजी प्रवाहों में मात्रात्मक वृद्धि, इत्यादि। इन सबमें विकास प्रक्रियाओं को प्रभावित किया है। समाजवादी अर्थव्यवस्था के विध्वंस एवं बाज़ार शक्तियों की जीत के परिदृश्य के विरूद्ध सुसंगठित प्रयास हुए हैं, ताकि सामाजिक विकास सम्मेलन 1995, विश्व व्यापार संगठन के गठन, व्यापार एवं शुल्क दर विषयक आम सहमति (गैट) तथा सेवाओं में व्यापार विषयक आम सहमति (गैटस) के माध्यम से स्थानीय एवं वैश्विक रूप से विकास की शक्तियों को अनुप्रषित किया जा सके। विश्व विकास रिपोर्ट 1997 में निवेश एवं विकास हेतु स्थिरता लाने के प्रयासों पर ध्यान केन्द्रित किया गया । सभी प्रयासों का एक मुख्य विषय रहा है बाज़ार शक्तियों के विस्तार में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करना, जिससे कि तथाकथित रूप से सीमाओं के आर पार सामाजिक एवं मानव विकास हेतु मार्ग प्रशस्त होगा। आइए, सरसरी नज़र डालें कि किस प्रकार सामाजिक विकास सम्मेलन 1995 ने मुक्त व्यापार हेतु प्रवरण को जन्म दिया।

सामाजिक विकास सम्मेलन 1995 में भूमंडलीकरण को देखते हुए व संरचनात्मक समायोज्जन कार्यक्रमों की शुरुआत एवं विशेषतः संयुक्त राष्ट्र संगठन की 50वीं वर्षगांठ की पूर्व संध्या पर कॉपनहैगन में हुआ। सभी राष्ट्राध्याक्षों ने समाज में शान्ति एवं स्थिरता को सुनिश्चित कर विकास के मानवीय पक्ष का आरम्भ करते हुए हाशिये पर के लोगों के सामाजिक विकास एवं सशक्तीकरण का वचन दिया।

इस सम्मेलन में सभी राज्य एवं सरकार प्रमुखों ने माना कि सुविस्तृत एवं सतत आर्थिक विकास, सामाजिक विकास एवं न्याय को कायम रखने के लिए आवश्यक है। इसमें घोषणा की गई कि "भूमंडलीकरण", जो कि बढ़ी मानव गतिशीलता का परिणाम है, ने संचार साधनों को बढ़ावा दिया है, व्यापार व पूंजी प्रवाहों एवं प्रौद्योगिकी विकास क्रम को तेज़ी से आगे बढ़ाया है ; और विश्व अर्थव्यवस्था, खासकर विकासशील देशों में, सतत आर्थिक वृद्धि एवं विकास हेतु नए अवसर पैदा किए हैं। इसके अतिरिक्त विश्व अर्थव्यवस्था के सार्वत्रिक रूप परिवर्तन सभी देशों में सामाजिक विकास के मानदण्डों को गहराई से बदल डाल रहे हैं। चुनौती यह है कि इन प्रक्रियाओं एवं खतरों पर कैसे नियंत्रण किया जाए ताकि उनके लाभों को बढ़ाया जा सके और लोगों पर उनके नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सके"(यूएन 1995)।

सामाजिक सिद्धांतों एवं लक्ष्यों तथा इसकी कार्यवाई के ताने बाने से तादात्म्य स्थापित करते हुए इस सम्मेलन में "आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक नीतियों को समेकित किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया ताकि वे परस्पर सहयोगकारी बनें और कार्यवाही के सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की अन्योन्याथित को स्वीकार करें"। इसमें यह स्वीकार किया गया कि नई सूचना प्रौद्योगिकी तथा गरीबी में रह रहे लोगों द्वारा प्रौद्योगिकियों की सुलभता एवं प्रयोग हेतु नए दृष्टिकोण सामाजिक विकास के लक्ष्यों को पाने में मदद कर सकते हैं; और इसी कारण यहां इस प्रकार की प्रौद्योगिकियों की सुलभता सुनिश्चित करने की आवश्यकता को महसूस किया गया।

सामाजिक विकास के लक्षय को प्राप्त करने के लिए सम्मेलन में अनेक प्रतिज्ञाएं की गई। इसकी सर्वप्रथम प्रतिज्ञा में निम्नवत् उल्लेख थाः

MAADHYAM IAS

> राष्ट्रीय स्तर पर सभी राज्य गतिशील, मुक्त, स्वतंत्र बाज़ारों को प्रोत्साहन देने का वचन देंगे, जबकि साथ ही आवश्यक सीमा तक बाज़ारों ने हस्तक्षेप की आवश्यकता को पहचानेंगे, ताकि बाज़ार की विफलता को रोका अथवा उसका सामना किया जा सके, स्थिरता एवं दीर्घावधि निवेश को बढ़ावा दिया जा सके, निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा एवं नैतिक आचरण सुनिश्चित किया जा सके तथा आर्थिक एवं सामाजिक विकास में समन्वय लाया जा सके; इनमें उचित कार्यक्रमों का विकास एवं क्रियान्वयन शामिल होगा जो कि गरीबी में रहने वाले लोगों एवं अलाभान्वितों, खासकर महिलाओं, की पात्रता एवं सामर्थ्य को सुनिश्चित करेगा, ताकि 'वे अर्थव्यवस्था एवं समाज में पूरी तरह और उत्पादन क्षम रूप से भागीदारी निभा सकें (यूएन 1995)

इसके साथ ही, इन राज्य प्रमुखों ने यह भी वचन दिया कि वे बृहद आर्थिक नीतियों के निरूपण एवं क्रियान्वयन में अन्य विषयों में सहयोग व्यापार उदारीकरण, परिवर्तनशीलता तथा/अथवा ऐसे नए व अतिरिक्त वित्तीय संसाधनों के प्रावधान जो उचित भी हों और अनुमेय भी तथा इस प्रकार सुलभ कराए गए हों कि जिससे सभी उपलब्ध वित्तीय स्रोतों एवं प्रणालियों का प्रयोग कर सतत विकास हेतु ऐसे संसाधनों की उपलब्धता बढ़ती हो। वित्तीय स्थिरता, और लेने देन में अर्थव्यवस्थाओं के साथ विभिन्न देशों की आवश्यकताओं पर यथेष्ट ध्यान देते हुए विश्व बाज़ारों, उत्पादनशील निवेशों एवं प्रौद्योगिकियों तथा समुचित ज्ञान हेतु विकासशील देशों की और समान सुलभता के माध्यम से एक सहयोग परक बाह्य आर्थिक वातावरण तैयार करने हेतु नीतियों को प्रोत्साहन देंगे व लागू करेंगे (वही)।

एक अन्य अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञा (वचन 3) में उन्होंने वायदा किया कि "वे बृहद आर्थिक नीतियों, व्यापार उदारीकरण एवं निवेश में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढ़ायेंगे ताकि सतत आर्थिक विकास एवं रोज़गार अभिजनन को बढ़ावा मिले, तथा रोज़गार बढ़ाने एवं बेरोज़गारी घटाने पर अभिलक्षित सफल नीतियों एवं कार्यक्रमों पर अनुभव परस्पर बांटेंगे"(वही)।

MAADHYAM IAS

इस सम्मेलन में यह भी प्रतिज्ञा की गई कि (वचन 7) "वे राष्ट्रीय स्तर की संरचनात्मक समायोजन नीतियां लागू करेगे, जिनमें शामिल होने – सामाजिक विकास के लक्ष्य और प्रभावी विकास रणनीतियां जो व्यापार एवं निवेश के लिए एक अधिक अनुकूल वातावरण तैयार करें, मानव संसाधन विकास को प्राथमिकता दे और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास को और प्रोत्साहित करें" (वही)।

महत्वपूर्ण बात यह है कि सामाजिक विकास एवं मानव कल्याण को इक्कीसवीं सदी की विकास चर्चा में सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। जीवन के सभी प्रमुख पक्षों के मुक्त बाज़ार उपभोक्तावाद के प्रसार और व्यापार के असीम विस्तार को सामाजिक विकास एवं मानव कल्याण हेतु का प्रमुख वाहक माना गया है। विश्व व्यापार संगठन, अपने अनेक व्यापार समझौतों एवं बातचीत के दौरों के साथ, विश्वव्यापी मुक्त व्यापार के विस्तार पर नज़र रखने हेतु प्रभावशाली विकसित देशों के तत्रवाधान में प्रमुख अभिकरण के रूप में उभरा है। क्या विश्व व्यापार संगठन गैट और गैट्स एक ओर बाज़ार की आयस्तरी आवश्यकताओं तथा विश्व के विकासशील देशों की सामाजिक वचनबद्धता के बीच संतुलन कायम करने में सफल होगा। उनकी सीमाबद्धताएं क्या हैं? आइए, अगले पाठांशों में इन्हीं मुद्दों पर नज़र डालें।

सोचिए और कीजिए 23.1

सामाजिक विकास सम्मेलन 1995 का क्या उद्देश्य था; संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम एवं मुक्त व्यापार के मुद्दे इससे किस प्रकार जुड़े हैं?

23.3 विश्व व्यापार संगठन (WTO): उत्पत्ति

विश्व व्यापार संगठन (World Trade Organisation) ने लगभग पांच दशकों तक शुल्कदरों एवं व्यापार संबंधी आम सहमति (गैट) (General Agreements in Tariffs and Trade) के सफल संचालन के बाद 1995 में मूर्त रूप ले लिया। गैट एक बार फिर से व्यापार संधि वार्ताओं पर कुछ अन्य प्रयोगों से निकलकर आया था। वस्तुतः गैट अपनी उत्पत्ति के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध पूर्व अमेरिकी प्रयास का ऋणी है जो कि द्विपक्षीय साधनों से 29 देशों की ओर से परस्पर सीमाशुल्क घटाने को सुनिश्चित करता था। एक बहुपक्षीय संस्थान की परिकल्पना ने विशेष रूप से अमेरिका और ब्रिटेन की पहल पर द्वितीय विश्वयुद्धोपरांत जन्म लिया और एक अस्थायी समझौते के रूप में 1947 में गैट के गठन का आधार तैयार किया। मूल उद्देश्य था दो ब्रेटन वुडज़ संस्थाओं – विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को मिलाकर एक तीसरी संस्था को जन्म देना, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग के व्यापार पक्ष को देखे। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक विशेषज्ञताप्राप्त अभिकरण के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन (ITO) को जन्म देने में 50 से भी अधिक देशों ने बातचीत में हिस्सा लिया। इस संगठन के प्रारूप घोषणापत्र ने विश्व व्यापार नियंत्रणों से आगे बढ़कर बात की ताकि इसमें रोज़गार विषयक नियम, जिन्स समझौते, प्रतिबंधात्मक व्यापार कार्यवाहियां अन्तर्राष्ट्रीय निवेश और सेवाएं भी शामिल किए जा सके। 1946 में बातचीत समाप्त होने से पूर्व ही 50 सहभागियों में से 23 ने तय किया कि सीमा शुल्क दरों को घटाने एवं अनिवार्य करने के लिए बात की जाये। इन 23 देशों ने समझौता वार्ताओं के माध्यम से व्यापार नियमों एवं शुल्कदर रियायतों के एक संयुक्त पैकेज़ की अभिपुष्टि की जिसको तदन्तर शुल्कदरों एवं व्यापार विषयक आम समझौतों (गैट) के रूप में जाना गया। यह जनवरी 1948 में प्रभाव में आया, जबकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन घोषणा पत्र पर अभी बातचीत चल ही रही थी। ये 23 देश गैट के संस्थापक सदस्य बन गए। भारत भी हस्ताक्षर करने वालों में एक था।

यद्यपि 1948 में व्यापार एवं रोज़गार विषयक अमेरिकी सम्मेलन में उक्त घोषणापत्र पर अंतिम सहमति बन चुकी थी, कुछ राष्ट्रीय विधानों द्वारा विरोध के कारण, सरकार अमेरिकी कांग्रेस जिसने अपनी प्रभुसत्ता में उक्त संघ के हस्तक्षेप की आशंका के चलते उसे अभिपुष्ट करने से इंकार कर दिया, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन प्रभावतः मृत हो गया। अतः गैट जनवरी 1995 तब तक अपना काम करता रहा जब तक कि 15 अप्रैल 1994 को मरकेश में उरूग्वे दौर अन्तिम अधिनियम पर हस्ताक्षर करने के बाद विश्व व्यापार संगठन अस्तित्व में नही आ गया। यह सदस्य राज्यों पर अधिनिर्णयक प्राधिकार रखने वाले देशों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, निवेश, बौद्धिक संपदा अधिकारों, आर्थिक एवं सामाजिक कार्यसूची हेतु नियम बनाने के लिए एक परम सर्वसत्ताक विश्व अभिकरण के रूप में उभरा। सभी सर्वसत्ताप राष्ट्रीय राज्य सरकारों को विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों एवं उदघोषणाओं का पालन करना होता है। भारत भी विश्व व्यापार संगठन के हस्ताक्षरकों में एक है। इस ऐतिहासिक परिदृश्य में आइए संगठन की प्रकार्यात्मकता एवं कार्यक्षेत्र पर दृष्टिपात करें।

23.4 विश्व व्यापार संगठन : प्रकार्य, सिद्धांत एवं कार्यक्षेत्र

सरल शब्दों में, विश्व व्यापार संगठन एक ऐसा संस्थान है जो एक विश्व व्यापी अथवा विश्वव्यापी प्राय स्तर पर देशों के बीच व्यापार नियमों का विवेचन करता है। यह व्यापार विषयों पर सदस्य देशों के बीच बातचीतों के परिणामस्वरूप उदभूत हुआ है। प्रस्तुतः यह एक ऐसा स्थान है जहां सदस्य राज्य व्यापार संभावनाओं को बढ़ाने एवं एक दूसरे के सामने आने वाली व्यापार समस्याओं को हल करने का प्रयास करते हैं। यह सदस्य सरकारों के बीच व्यापार समझौतों संबंधी बातचीत करवाता है। बातचीत के माध्यम से यह संगठन सदस्य देशों को व्यापार अवरोधों को हटाने व कम करने तथा व्यापार को उदारीकृत करने में मदद करता

विश्व व्यापार संगठन, सीमा शुल्कों एवं व्यापार विषयक आम सहमतिः पूंजी और मानव प्रवाह

MAADHYAM IAS

है। व्यापार अवरोधों को हटाने व कम करने तथा व्यापार को उदारीकृत करने में मदद करता हैं। आइए, विश्व व्यापार संगठन के प्रकार्य सिद्धांतों एवं कार्यक्षेत्र पर विचार करें।

क) **प्रकार्य** : विश्व व्यापार संगठन विभिन्न देशों के बीच व्यापार के नियम तय करता है। इस संगठन के समझौते जो बातचीत के अनेक दौरों से गुज़र कर मूर्तरूप लेते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए वैद्य आधार नियम प्रदान करते हैं।

ये अनिवार्यतः अनुबंध होते हैं, जो सरकारों को अपनी व्यापार नीतियों को सममत सीमाओं के भीतर ही रखने को बाध्य करते हैं। यद्यपि ये सरकारों द्वारा ही समंजित एवं हस्ताक्षरित होते हैं, लक्ष्य होता है उत्पादकों को माल एवं सेवाओं में तथा निर्यातकों एवं आयातकों को अपना कारोबार चलाने में मदद करना जबकि साथ ही सरकारों को सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति करने देना (WTO 2001)।

संगठन व्यापार से जुड़े विवादों को निपटाने में भी मदद करता है। विश्व व्यापार व्यवस्था में अधिकांश समझौतों में प्रायः व्याख्या करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी कभी समझौतों की व्याख्या पर व्यापार साझीदारों के बीच मतभेद हो जाते हैं। व्यापार हितों में भी विवाद देखने में आते हैं। "इन मतभेदों को दूर करने का सबसे सामंजस्यपूर्ण तरीका है इनको सममत वैध आधार पर निर्धारित किसी निष्पक्ष प्रक्रिया के माध्यम से निबटाया जाये।" विश्व व्यापार संगठन का लक्ष्य है निर्धारित प्रक्रिया की सहायता से ही सभी विवाद निपटाये जायें।

ख) **व्यापार पद्धति संबंधी सिद्धांतः** चूंकि विश्व व्यापार संगठन व्यापार के लिए नियम निर्धारित करता है; इसने इस उद्देश्य से सममत सिद्धांतों की श्रृंखलाएं विकसित की हैं। वस्तुतः संगठन के समझौते कुछ आधारभूत सिद्धांतों पर आधारित हैं। इनका निम्नवत् वर्णन किया जा सकता है :

MAADHYAM IAS

- बिना भेदभाव व्यापारः इस सिद्धांत के दो पहलू हैं : (i) सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त देश – विश्व व्यापार साझीदारों के बीच भेदभाव नहीं कर सकता है। जब कुछ विशेष अनुग्रह दिए जाते हैं, यथा सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त देश बरताव, यही अनुग्रह सामान्यतया अन्य सभी संगठन सदस्यों को दिए जाने होते हैं। फिर भी यह विवादास्पद लगता है, सारतः इसका निहितार्थ है कि प्रत्येक सदस्य अन्य सभी सदस्यों के साथ सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त व्यापार साझीदारों के रूप में व्यवहार करता है। (ii) राष्ट्रीय बरताव। इसमें शामिल हैं "आयातित और स्थानीय उत्पादित वस्तुओं को एक समान माना जाए – कम से कम जब विदेशी वस्तुएं बाज़ार में प्रवेश कर चुकी हों। विदेशी व घरेलू सेवाओं तथा विदेशी व स्थानीय व्यापार चिन्हों, प्रतिलिप्याधिकारों एवं एकस्वाधिकारों पर एक ही नियम लागू हो"(स्रोत : www.wfo.org.)। विश्व व्यापार संगठन के अनुसार, "बाज़ार खोलना लाभप्रद हो सकता है, परन्तु इसमें भी समायोजन की आवश्यकता होती है। संगठन समझौते सभी देशों को उत्तरोत्तर उदारीकरण के माध्यम से धीरे-धीरे परिवर्तन लाने की इजाज़त देते हैं। विकासशील देशों को प्रायः अपना दायित्व निभाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक अवसर दिया जाता है"। महत्वपूर्ण रूप से, समझौता यह भी अपेक्षा रखता है कि सदस्य सरकारें सुनिश्चत करें कि व्यापार परिवेश स्थिर और पूर्वानुमेय हो।

- मुक्त व्यापार नीति और उचित प्रतिस्पर्धाः विश्व व्यापार संगठन का मानना है कि "सभी देश, जिनमें सबसे गरीब भी शामिल हैं, परिसम्पत्तियां रखते हैं – मानव, औद्योगिक, प्राकृतिक वित्तीय – जिनको घरेलू और समुद्रपारीय दोनों बाज़ारों के

लिए माल व सेवाएं उत्पादित करने हेतु प्रयोग किया जा सकता है। इसका मानना यह भी है कि द्विपक्षीय व्यापार नीतियां जो माल व सेवाओं के अप्रतिबंधित प्रवाह की अनुमति देती हैं, प्रतिस्पर्धा को तेज़ करती हैं, नवप्रवर्तन को प्रेरित करती हैं और सफलता को जन्म देती हैं। ये उन पारितोषिकों को कई गुना बढ़ा देती है जो कि सर्वोत्तम मूल्य पर सर्वोत्तम अभिकल्प वाले सर्वोत्तम उत्पादों को बनाने से प्राप्त होते हैं" (WTO 2001)। संगठन का मानना है कि व्यापार प्रतिबंध हटाना, जैसे आयात शुल्क या सीमाशुल्क, कोटा नियंत्रण अथवा समाप्ति और चुनिंदा मदों पर से प्रतिबंध हटाना मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने में काफ़ी अहम भूमिका रखते हैं।

- आर्थिक सुधारों को बढ़ावा देना: व्यापार उदारीकरण विश्व व्यापार संगठन की कार्यसूची का एक अहम हिस्सा है। तीन चौथाई से भी अधिक संगठन सदस्य विकासशील देश अथवा बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं के संक्रमण काल में चल रहे देश हैं, यहां सभी सदस्य स्वयं ही एक निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर बाज़ार सुलभ कराने के प्रति वचनबद्ध हैं। (इस समय सीमा पर हम बाद में चर्चा करेंगे)।

- सेवाओं में व्यापार विषयक आम सहमति (गैटस) : पहले के समझौते माल की ओर विस्तीर्ण होते गए जैसे बैंकिंग, दूरसंचार, डाक सेवाएं, पर्यटन, परिवहन अपशिष्ट निपटान, तेल व गैस उत्पादन एवं बिजली। इनमें वे सेवाएं भी शामिल थी जिनको मानव स्वास्थ्य एवं विकास के लिए अनिवार्य माना जाता है। जैसे स्वास्थ्यरक्षा, शिक्षा एवं पेय जल। गैट्स की स्थापना 1994 में उरुग्वे दौर के एक हिस्से के रूप में की गई थी। इसको एक "तलशीर्ष" समझौता माना जाता है क्योंकि यह ऐसे देशों पर आधारित है जिन्होंने ऐसे क्षेत्रों की सूची बनाई है जो वे उदारीकरण के लिए खोलेंगे। गैट्स संधिवार्ताकार एवं विश्व व्यापार संगठन गैट्स को एक बहुत सुनम्य समझौते के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं जिससे कि ये देश कुछ क्षेत्रों को पूरी तरह से अपवर्जित कर सकें। "दुर्भाग्यवश वास्तव में, अपने नियमों में शामिल अथवा नहीं शामिल के लिहाज से गैट्स की विषय वस्तु बहुत अस्पष्ट हैं (अधिक जानकारी के लिए देखें इकाई 22)। उदाहरण के लिए गैट्स में सबसे पहला अनुच्छेद कहता है कि केवल ऐसी सरकारी सेवाएं जो न तो किसी व्यावसायिक आधार पर दी जाती है और न ही एक या अधिक सेवा प्रदायकों के साथ प्रतिस्पर्धा में एक सरकारी सेवा होने के आधार पर गैट्स ने शामिल नहीं की गई हैं। अधिकांश सरकारी सेवाओं (जैसे स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं ऊर्जा) में कुछ प्राय *सार्वजनिक/निजी* सेवाओं का मिला जुला रूप होता है और इसी कारण उन्हें गैट्स नियमों के तहत रखा जाना चाहिए। ऐसी सरकारी सेवाओं को संगठन नियमों का उल्लंघन करने के प्रति चुनौती दी जा सकती है" (स्रोत : www.citizen.org)।

ग) **कार्यक्षेत्र**: विश्व व्यापार संगठन समझौतों में शामिल हैं माल, सेवाएं और बौद्धिक संपदा। बहुपक्षीय व्यापार समझौते के उरुग्वे दौर में जो कि संगठन का आधार है, व्यापार समझौते के निम्नलिखित विस्तृत क्षेत्र शामिल हैं:

शुल्कदरों एवं व्यापार विषयक आम सहमति (गैट)

गैट (GATT) में निम्नलिखित से संबंधित अथवा मुद्दे शामिल हैं :

- कृषि
- कृषि उत्पादों के लिए स्वास्थ्य संबंधी नियम
- बुना कपड़ा और वस्त्रादि
- उत्पाद मानक

MAADHYAM IAS

- निवेश मानदण्ड
- निक्षेपण विरोधी उपाय
- व्यापार अतिक्रमण विधियां
- जहाज पर सामान लादने से पहले किया गया निरीक्षण
- उदगम स्थान के नियम
- आयात लाइसेंस प्रणाली
- रियायत एवं प्रत्युपाय
- रक्षा उपाय

सेवाओं में व्यापार विषयक आम सहमति (गैट्स)

गैट्स (GATS) में शामिल हैं :

- स्वाभाविक लोगों का आवागमन
- वायु परिवहन
- जहाजरानी
- वित्त-सेवाएं
- दूर संचार माध्यम

बैंकिंग सम्पदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलू (ट्रिप्स)

ट्रिप्स(TRIPS) में शामिल हैं :

- प्रतिलिप्याधिकार एवं संबंधित अधिकार
- व्यापार चिन्ह
- भौगोलिक संकेत
- औद्योगिक अभिकल्प
- एकस्वाधिकार
- प्राख्य अभिकल्प
- गुप्त सूचना, व्यापार भेद समेत

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बॉक्स 23.1: गैट का क्या हुआ?

एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में गैट का स्थान विश्व व्यापार संगठन ने ले लिया, परन्तु माल व्यापार में संगठन की छतरी के रूप में 'आम सहमति' अब भी विद्यमान है, जो कि उरूग्वे वार्ता के परिणामस्वरूप अद्यतम कर दी गई है। व्यापार विधिवक्ता गैट 1994, गैट के अद्यतन अंशों और गैट 1947 यथा मूल समझौता जो आज भी गैट 1994 का मुख्य अंग है, के बीच भेद करते हैं (WTO 2003)।

23.5 सीमाशुल्क एवं व्यापार विषयक आम सहमति (गैट)

आइए, गैट (GATT) के कुछ पहलुओं पर संक्षिप्त चर्चा करें :

क) **कृषि:** गैट में एक मद के रूप में कृषि पर व्यापक रूप से विचार विमर्श और बहस होती रही है। इस समझौते के तहत देशों को कुछ गैर शुल्क मानदंड अपनाने की अनुमति दी जाती है जैसे "आयात कोटा" और रियायत। विश्व व्यापार संगठन के अनुसार कृषि

समझौते का उद्देश्य है" इस क्षेत्र में व्यापार को बढ़ाना और अधिक बाज़ारोन्मुखी नीतियां बनाना, यह दृष्टिकोण रखते हुए कि आयातक और निर्यातक देशों के लिए एक समान रूप से पूर्वानुमेयता और सुरक्षा में सुधार लाया जायेगा। इस प्रकार, कृषि विषयक समझौता बाजार सुलभता, घरेलू समर्थन एवं निर्यात अनुदानों से संबंध रखता है। विश्व व्यापार संगठन के अनुसार "कृषि विषयक समझौता अपनी ग्रामीण अर्थव्यवस्थाओं को समर्थन देने के लिए सरकारों को अनुमति अवश्य देता है परन्तु उन नीतियों के माध्यम से जो व्यापार पर कम दुष्प्रभाव डालती हैं। यह उन प्रतिबद्धताओं के माध्यम से कुछ सुगम्यता भी प्रदान करता है, जिनको एक कालावधि विशेष में क्रियान्वित किया जाना होता है। विकासशील देशों को अपने रियायत अथवा शुल्कदरों को इतना कम नहीं करना होता जितना कि विकसित देशों को और उनको अपने दायित्व निभाने के लिए अतिरिक्त समय भी दिया जाता है। अल्प विकसित देशों को ऐसा कतई नहीं करना होता है" (वही)।

ऐसे तर्क जो प्रायः घरेलू समर्थन मूल्यों के विरूद्ध अथवा आर्थिक सहायता प्राप्त उत्पादों के पक्ष में दिए जाते हैं वे हैं : ये उत्पादन को बढ़ावा देते हैं, आयातों को निरूत्साहित करते हैं तथा निर्यात रियायतों और विश्व बाज़ारों में कम मूल्य पर माल की आपूर्ति करने की ओर प्रवृत्त करते हैं। अतएव विकसित देश 1995 से आरंभ छह वर्षों में 20 प्रतिशत तक कृषि समर्थन मूल्य घटाने को सहमत हो गए और विकासशील देश दस वर्षों में 13 प्रतिशत तक। विकसित देश पुनः 1995 से आरम्भ छह वर्षों में 36 प्रतिशत तक निर्यात परिदानों का मूल्य घटाने पर सहमत हो गए और विकासशील देश 10 वर्षों में 24 प्रतिशत तक। विकसित देश छह वर्षों में 21 प्रतिशत तक आर्थिक सहायता प्राप्त निर्यातों की मात्राएं घटाने पर सहमत हो गए और विकासशील देश 10 वर्षों में 14 प्रतिशत तक।

ख) **स्वास्थ्य मानक और सुरक्षाः** गैट का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है मानक और सुरक्षा बनाए रखना ताकि मानव, जन्तु अथवा पादप जीवन अथवा स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके, बशर्ते वे भेदभाव न करें अथवा इसे विशिष्ट संरक्षणवाद के रूप में न प्रयोग करें। यहां सदस्य सरकारों के अन्तर्राष्ट्रीय मानव अपनाने होते हैं। तथापि विश्व व्यापार संगठन ने हर एक सदस्य देश को अनुमति दी हुई है कि वह एक वैज्ञानिक रूप से न्यायोचित उच्च मानक लागू करे; तदनुसार उन्हें विभिन्न मानक प्रयोग करने की अनुमति दी हुई है।

ग) **बुना कपड़ा या वस्त्रः** यह गैट का एक विवादग्रस्त क्षेत्र है। उरूग्वे दौर के अंत तक बुने वस्त्र में व्यापार पर तयशुदा कोटे के लिहाज से द्विपक्षीय समझौतों अथवा एक तरफा कार्यवाई का ही बोलबाला रहता था। कोटा प्रणाली के तहत ये देश घरेलू बाज़ार में कपड़े के आयात पर एक सीमा निर्धारित कर सकते थे। तथापि कपड़ा एवं वस्त्रादि विषयक संगठन समझौते के तहत यह क्षेत्र जनवरी 2005 तक पूरी तरह से गैर नियमों में समेकित कर दिए जाने का तय हुआ ताकि कोटा प्रणाली समाप्त की जा सके और निर्यातकों के बीच आयातक देशों द्वारा भेदभाव भी समाप्त किया जा सकें।

सोचिए और कीजिए 23.2

गैट के तहत आने वाले व्यापार के प्रमुख पहलू क्या हैं? इस व्यापार में शामिल मार्गदर्शक सिद्धांत क्या हैं?

MAADHYAM IAS

23.6 सेवाओं में व्यापार विषयक आम सहमति (गैट्स)

दुनियाभर में सेवा अर्थव्यवस्था के आश्चर्यजनक विस्तार के परिप्रेक्ष्य में उरूग्वे दौर में गैट्स का प्रतिपादन किया गया। आइए, गैट्स के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करें, विशेष रूप से उसकी व्याप्ति, दायित्व एवं दण्ड विधान।

क) **व्याप्तिः** इस समझौते में सभी आन्तरिक रूप से आदान प्रदान की जाने वाली सेवाएं आती हैं – उदाहरण के लिए बैंकिग दूरसंचार, पर्यटन, व्यवसायिक सेवाएं आदि। इसको चार तरीकों (अथवा आदान प्रदान सेवाओं के "मोड" अर्थात विधियों के रूप में परिभाषित किया गया है।

- एक देश से दूसरे को दी जाने वाली सेवा (उदाहरण के लिए, अंतर्राष्ट्रीय टेलीफोन कॉल) औपचारिकतः "सीमा पर आपूर्ति" के नाम से प्रसिद्ध (विश्व व्यापार संगठन की विशिष्ट बोली में "मोड 1")
- उपभोक्ता अथवा व्यापारिक समन्वय जो किसी अन्य देश में सेवा का प्रयोग करते हैं (उदाहरण के लिए पर्यटन), औपचारिक रूप से "विदेश में उपयोग"(मोड 2)।
- एक विदेशी कंपनी किसी अन्य देश में सेवाएं प्रदान करने हेतु परिदान अथवा शाखाएं स्थापित करते हुए (उदाहरण के लिए विदेशी बैंक किसी देश में कार्य व्यापार शुरू करते हुए) औपचारिक रूप में "व्यावसायिक विद्यमानता" (मोड 3)
- अपने ही देश में यात्रा कर रहे लोक ताकि किसी अन्य देश में सेवाएं प्रदान कर सके (उदाहरण के लिए फैशन मॉडल अथवा सलाहाकार) औपचारिक रूप से "प्राकृतिक लोगों की विद्यमानता" (मोड 4)।

ख) **(गैट्स) के सिद्धांतः** इन सेवाओं में व्यापार अर्थात लेन देनों पर, गैटस के अनुसार, निम्नलिखित दायित्वों एवं दण्ड विधानों का नियंत्रण होना :

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

i) सर्वाधिक अनुग्रहप्रारत राष्ट्र (MFN) बरताव ही गैट्स की आधारशिला है जिसके द्वारा सभी संगठन सदस्यों की ओर से सेवा प्रदायकों को समय अवसर दिया जाना होता है। तथापि 10 वर्षों की अवधि के लिए (जनवरी 1995 से आरंभ) एक अस्थायी अपवाद के साथ मिलकर हस्ताक्षर किए।

ii) गैट्स सभी संगठन सदस्यों को बाज़ार सुगमता और राष्ट्रीय बरताव विषयक वचनबद्धता में ले आता है। संगठन के अनुसार "वचनबद्धताएं वस्तुतः व्यापार करने हेतु क्षेत्रों में सेवाओं के विदेशी निर्याताकों व-आयातकों तथा निवेशको के लिए प्रत्याभूत शर्ते हैं"।

यह आवश्यक है कि सरकारी सेवाएं चूंकि उन्हें व्यापारिक रूप से प्रयोग में नहीं लाया जाता है। गैटस वचनबद्धता के अधीन न हों।

बॉक्स 23.2 :तकनीकी रूप से निजीकरण शब्द गैट्स में है ही नही

गैट्स में ऐसी कोइ बात नहीं है जो सरकारों को सेवाएं एवं उद्योग निजीकृत करने पर बाध्य करें। वस्तुतः निजीकरण शब्द गैट्स में कहीं दिखाई नहीं पड़ता। न ही वह सरकार अथवा निजी एकाधिकारों को अवैध ठहराता है। (WTO 2001)।

iii) सरकार के लिए यह अनिवार्य है कि सेवाओं पर नियंत्रण रखने वाले सभी प्रासंगिक नियमों विनियमों को सार्वजनिक करें। सरकारों को सेवाओं में प्रयोज्य किन्हीं भी विनियमों में कोई परिवर्तन यदि हो, संगठन के संज्ञान लाना होता है।

iv) गैटस शर्त रखता है कि सदस्य सरकारें मानक मूल्य सुरक्षा उपाय, आदि तय करते समय तर्कसंगत रूप से वस्तुपरक रूप से और निष्पक्ष रूप से सेवाओं को नियमित करें।

v) अन्य देशों की अर्हताओं को मान्यता (लाइसेंस प्रणाली अथवा सेवा प्रदायकों का प्रमाणन) भेदभावपूर्ण नहीं होना चाहिए।

vi) सेवा क्षेत्र का उत्तरोत्तर उदारीकरण गैट्स का एक लक्ष्य है जिसको बातचीत के माध्यम से ही प्राप्त किया जाना है।(WTO 2001)।

बॉक्स 23.3: गैटस के तहत शिक्षा प्रदान करने के तरीके

क्र. सं.	प्रदान करने की विधि	गैटस के अनुसार व्याख्या	उच्चतर शिक्षा के उदाहरण	बाज़ार का आकार/संभावनाएं
1	सीमा पार आपूर्ति	सेवा का प्रावधान जहां सेवा सीमा लांघकर प्रदान की जाती है (इसमें उपभोक्ता के दैहिक संचलन की आवश्यक नहीं होती)	दूर शिक्षा ई-लर्निंग अप्रकट विश्वविद्यालय	- वर्तमान में एक अपेक्षाकृत छोटा बाज़ार - नई सूचना संचार प्रौद्योगिकियों और खासतौर इंटरनैट प्रयोग के माध्यम से व्यापक संभावनाएं
2.	उपभोक्ता	टापूतिकर्त्ता के देश हेतु उपभोक्ता के संचलन समेत सेवा का प्रावधान	वे छात्र जो अध्ययनार्थ दूसरे देश में जाते हैं	वर्तमान में शिक्षा सेवाओं हेतु विश्व बाज़ार के चारों ओर प्रतिनिधित्व करता है
3	व्यापारिक विद्यमानता	सेवा प्रदान करने के लिए आपूर्तिकर्त्ता किसी दूसरे देश में व्यापार सुविधाएं शुरुआत करता है अथवा रखता है।	स्थानीय शाखा अथवा अनुषंगी विश्वविद्यालय परिसर स्थानीय संस्थाओं के लाभ विशेष विक्रयाधिकार व्यवस्थाएं	भावी विकास के लिए बढ़ती रुचि और सशक्त संभावना स्वाधिक विवादास्पद जैसा कि यह विदेश निवेश पर अन्तर्राष्ट्रीय नियम लागू करता है।
4.	प्राकृतिक व्यक्तियों की विद्यमानता	सेवा प्रदान करने के लिए व्यक्ति अस्थायी आधार पर किस अन्य देश की यात्रा पर जाते हैं	विदेशों में कार्यरत प्रोफेसर अध्यापक आवेदक	संभावित रूप से एक सशक्त बाज़ार व्यवसायियों की जातकता पर जोर देता है।

स्रोत : नाइट 2002

बॉक्स 23.4: गैटस के तहत शिक्षा सेवाओं का वर्गीकरण

शिक्षा सेवा की श्रेणी	प्रत्येक श्रेणी में सम्मिलित शिक्षा गतिविधियां	टिप्पणियां
प्राथमिक शिक्षा (cpc 921)	• पूर्व विद्यालयी व अन्य प्राथमिक शिक्षा सेवाएं • इसके तहत बाल संरक्षा सेवाएं नहीं आती हैं।	

माध्यमिक शिक्षा (cpc 922)	• सामान्य उच्चतर माध्यमिक • तकनीकी एवं व्यवसायिक माध्यमिक • विकलांगों के लिए तकनीकी एवं व्यवसायिक सेवाएं भी शामिल हैं	• शिक्षा के प्रकार(यथा व्यापार, उदार शिक्षा, विज्ञान, विनिर्दिष्ट नहीं है
उच्चतर शिक्षा (cpc 923)	• उत्तर माध्यमिक तकनीकी एवं व्यवसायिक शिक्षा सेवाएं • विश्वविद्यालय उपाधि अथवा समकक्ष की ओर उन्मुख करती अन्य उच्चतर शिक्षा सेवाएं	• सभी उत्तर माध्यमिक प्रशिक्षण एवं शिक्षा योजनाओं को शामिल मानकर चलती है।
प्रौढ़ शिक्षा (cpc 924)	• नियमित शिक्षा प्रणाली से बाहर वयस्कों के लिए शामिल है।	• और अधिक निरूपण की आवश्यकता है
अन्य शिक्षा (cpc 929)	• वहीं और नहीं वर्गीकृत अन्य सभी शिक्षा सेवाएं इसमें शामिल हैं • आमोद प्रमोद से जुड़ी शिक्षा सेवाएं शामिल है।	• स्पष्टीकरण, पुनपर्याप्ति एवं अन्य श्रेणियों से विभेदन की आवश्यकता होती है • उदाहरण के लिए - क्या इसमें शिक्षा व भाषा परीक्षण सेवाएं, छात्र भर्ती सेवाएं, गुणवत्ता, मूल्यांकन आदि शामिल है।

स्रोतः नाई 2002

MAADHYAM IAS

23.7 बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलू (ट्रिप्स)

उन्नत प्रौद्योगिकी से जुड़े अनुसंधान नव प्रवर्तन, आविष्कार और अनुप्रयोग से जन्में विचार एवं जानकारी व्यापार के महत्वपूर्ण घटक होते हैं। बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलुओं (ट्रिप्स) पर संगठन समझौते का ध्येय है सर्जकों को "अपनी खोजो, अभिकल्पों अथवा अन्य सर्जनाओं को प्रयोग करने से दूसरों को रोकने का अधिकार तथा उन्हें प्रयोग करने वाले दूसरे लोगों से उसके बदले में भुगतान हेतु बातचीत करने के लिए उस अधिकार को प्रयोग करने का अधिकार" प्रदान करता है। बौद्धिक संपदा अधिकारों पर विवाद कुछ मूल सिद्धांतों पर निबटाये जाते हैं। इसमें से कुछ का नीचे उल्लेख है :

क) **राष्ट्रीय मान्यताः** 'अपने ही राष्ट्र के और विदेश के लोगो के समान रूप से लेन देन' और सर्वाधिक अनुग्रह प्राप्त राष्ट्र (सभी राष्ट्रों के लिए समान मान्यता) ट्रिप्स के मूल सिद्धांत हैं। यह एक और शर्त रखता है कि बौद्धिक संपदा संरक्षण का योगदान तकनीकी नवप्रवर्तन और प्रौद्योगिकी स्थानांतरण में हो (वही)।

ख) **बौद्धिक संपदा अधिकारः** ट्रिप्स ने बौद्धिक संपदा के संरक्षणार्थ व्यापक प्रबंध किए हैं। यह बौद्धिक संपदा के उत्पादकों के प्रतिलिप्याधिकार की रक्षा करता है। कंप्यूटर प्रोग्राम की संरक्षा साहित्यिक कृति के रूप में की जाती है। इसी प्रकार ध्वनि-लेखन, फिल्मों ओर कलाकारों को उनकी प्रस्तुति के अनाधिकृत प्रयोग से संरक्षा प्राप्त करने हेतु अधिकार दिए जाते हैं। जबकि सेवा चिन्हों की संरक्षा व्यापार चिन्हों के रूप में ही की जायेगी, सुपरिचित व्यापार चिन्हों को और अधिक संरक्षण दिया जायेगा।

ग) **एकस्वाधिकार संरक्षणः** इस व्यवस्था के अनुसार, एकस्वाधिकार संरक्षण आविष्कारों के लिए कम से कम 20 वर्षों के लिए दिया जाना चाहिए। "एकस्वाधिकार संरक्षण प्रौद्योगिकी के लगभग सभी क्षेत्रों में उत्पादों एवं प्रक्रियाओं दोनों के लिए उपलब्ध

होगा। सरकार, तथापि किसी आविष्कार के लिए एकस्वाधिकार देने से इंकार कर सकती है यदि उसका व्यापारिक दोहन सार्वजनिक व्यवस्था अथवा नैतिकता को प्रभावित करता हो। पौधे के विषय में यह कहा गया है कि पौधे की किस्में एकस्वाधिकारों द्वारा संरक्षित भी होनी चाहिए और संरक्षा योग्य भी।"

जबकि एकस्वाधिकारकों को विशिष्ट अधिकार दिए जाते हैं ताकि वे उन्हें प्रयोग कर सकें और उनके दुष्प्रयोग को रोक सकें, सदस्य सरकारें "एकस्वाधिकार धारक के विधिसंगत हितों की रक्षा कर लाइसेंस के तहत एक प्रतिस्पर्धी को उत्पाद बनाने अथवा प्रक्रिया को प्रयोग करने की अनुमति देती हुई 'अनिवार्य लाइसेंस' प्रदान करने के लिए अधिकृत होती है"।

कभी-कभी औषधि हेतु एकस्वाधिकार संरक्षण विकासशील देशों के गरीब लोगों को दवा की सुलभता प्राप्त करने से रोकता है। नवम्बर 2001 में दोहा मंत्रीय सम्मेलन में सन 2016 तक अल्पतम विकसित देशों के लिए औषधि एकस्वाधिकार संरक्षण पर रियायतें प्रदान किए जाने की सहमति बनी।

विकासशील देश प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को एक ऐसी सौदेबाज़ी का हिस्सा मानते हैं जिसमें वे बौद्धिक संपदा अधिकार की संरक्षा हेतु सहमत होते हैं। ट्रिप्स समझौते की विकसित देशों से अपेक्षा है कि अल्पतम विकसित देशों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण करने हेतु अपनी कंपनियों के लिए प्रोत्साहन प्रदान करें (वही)।

बॉक्स 23.5 : पारगमन व्यवस्थाएं : 1, 5, या 11 वर्ष या अधिक

जब 1 जनवरी 1995 को विश्व व्यापार संगठन समझौते लागू हुए तो विकसित देशों को यह सुनिश्चित करने के लिए एक वर्ष दिया गया कि उनके कानून और कार्य ट्रिप्स समझौते के अनुसार ही हों। विकासशील देशों और (कुछ शर्तों के अधीन) संक्रमणकालीन अर्थव्यवस्थाओं को पांच वर्ष दिए गए यथा सन 2000 तक। अल्पतम विकसित देशों के पास 11 वर्ष हैं यथा सन 2006 तक जो कि हाल में औषधि एकस्वाधिकरों के लिए सन 2016 तक बढ़ा दिए गए है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

यदि ट्रिप्स समझौता प्रभाव में आने (1जनवरी 1995) के बाद, कोई विकासशील देश किसी क्षेत्र विशेष में उत्पाद एकस्वाधिकार संरक्षण प्रदान नहीं कर पाया तो उसे संरक्षण लागू करने के लिए 10 वर्ष तक का समय दिया जायेगा। परन्तु भेषणीय एवं कृषिगत रासायनिक उत्पादों के लिए देश को पारगमन अवधि के आरम्भ से ही एकस्वाधिकार आवेदनों को जमा किया जाना स्वीकार करना होगा। यदि सरका पारगमन अवधि के दौरान समुचित औषधि अथवा कृषिगत रसायन विपणन किए जाने की अनुमति देती है तो यह – कुछ विशेष शर्तों के अधीन – पांच वर्षो तक, अथवा जब तक उत्पाद एकस्वाधिकार प्रदान नहीं किया जाता, जो कि कम अवधि हो उस उत्पाद के लिए कोई अनन्य विपणन अधिकार प्रदान कर देगा।(WTO 2001)।

बॉक्स 23.6: सामानों का ढेर लगाने विरोधी, रियायत एवं रक्षा उपाय

जब कोई देश किसी उत्पाद को उसके आमतौर पर घरेलू बाज़ार में वसूले जाने वाले मूल्य से भी कम दाम पर निर्यात करता है तो उसे कहा जाता है वह "उत्पाद का ढेर कर रहा है" अर्थात उत्पाद का क्षेपण किया जा रहा हे। शुल्कदरों को सीमित करना, ओर उन्हें सभी व्यापार साझीदारों में समान रूप से लागू करना, माल व्यापार के निर्बाध प्रवाह के लिए आवश्यक बातें हैं। गैट्स देशों को क्षेपण के विरूद्ध कार्यवाई करने की अनुमति देता है। क्षेपण रोधी समझौता देशों को व्यापार साझीदारों के बीच भेदभाव किए बग़ैर काम करने की अनुमति देता है। प्रतीकात्मक ढंग से क्षेपण रोधी कार्यवाई का अर्थ है किसी उत्पाद विशेष पर किसी निर्यातक देश विशेष से अतिरिक्त आयात शुल्क वसूला जाना ताकि उसका मूल्य "सामान्य मूल्य" के करीब आ जाये या फिर आयातक देश में घरेलू उद्योग को हुई क्षति दूर हो।

23.8 व्यापार उदारीकरण: विकासशील देशों के लिए उभरते विषय

इस इकाई के आगामी भागों में हम विकासशील देशों के विकास विषयों पर संगठन समझौतों के निहितार्थों पर चर्चा करेंगे। विद्वानों का एक वर्ग यह मानता है कि "सेवा में व्यापार उदारीकरण बढ़ी प्रतिस्पर्धा , कम दाम, अधिक नए उपाय, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, रोजगार जनन एवं व्यापार व निवेश प्रवाहों में अधिक पारदर्शिता व पूर्वानुमान में परिनत हो सकता है"(चन्दा 2002:2)। महत्वपूर्ण रूप से , व्यापार उदारीकरण को सामाजिक, विकासात्मक एवं समग्रवादी विषयों के कार्यान्वयन हेतु प्रेरक के रूप में भी देखा जा रहा है। जैसा कि प्रथम भाग में संकेत दिया गया, कॉपनहेनन में हुए सामाजिक विकास सम्मेलन 1995 में विशेष रूप से उल्लेख किया गया कि सामाजिक विकास को आर्थिक परिवेश से अलग न किया जाये।

विद्वानों के एक खास वर्ग का विचार है कि गैट और गैट्स बाज़ार शक्तियों और सामाजिक एवं नैतिक न्याय आदि मुद्दों से जुड़ी सरकारी नीतियों के बीच संतुलन कायम करेंगे। तथापि प्रश्न प्राय उठाए जाते हैं कि क्या स्वर्षा के उभरते परिवेश में उनके राष्ट्रीय सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नैतिक न्याय सार्वजनिक वितरण, उपेक्षित लोगों के मानव विकास एवं राज्यों की संप्रभुता के प्रति समुचित अवधान एवं व्यवहार रखा जाए। यह प्रायः कहा जाता है कि स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्रों में बाज़ार की विफलताओं को पहचान लिया गया है और राज्य अनेक क्षेत्रों में ऐसी सेवाओं को प्रदान करने वाले के रूप में ही संबद्ध हैं बाज़ार शक्तियों द्वारा सामाजिक सेवाओं में वचनबद्धताओं का अभाव केवल ऐसे विषयों के कार्यक्षेत्र को बढ़ाएगा ही (वही)। आइए, उनमें से कुछ पर थोड़ा विस्तार से चर्चा करें।

क) विश्व व्यापार संगठन ने मानकों, नियमों एवं प्रक्रियाओं की एकरूपता पर जोर दिया है जिनका कि एक निर्दिष्ट समय प्राधार के भीतर सभी सदस्य सरकारों द्वारा अनुपालन किया जाना है। विकासशील और अल्पविकसित देशों को विकसित देशों की अपेक्षा अधिक समय दिया जाता है ताकि वे विश्व एकरूपता की वांछनीयता से मेल खाते मानदण्ड, नियम एवं आर्थिक नीतियां बना सकें सत्य यह है कि यह समायोजनकारी प्रवृति अर्थव्यवस्था के विविध प्रतिमानों, स्थानीकृत आवश्यकताओं एवं मुद्दों को गुप्त रूप से क्षति पहुंचाकर ही जन्मी है। यदा कदा समायोजन की यह प्रक्रिया विकासशील एवं अल्पविकसित देशों की आर्थिक स्वायत्तता और राजनीतिक संप्रभुता पर अभिभावी रही है। गैट्स समझौता व्यापक और सरकारों के सभी स्तरों हेतु प्रयोज्य है -- केन्द्रीय, राज्यीय, प्रान्तीय, स्थानीय और नैगम। ऐसी आशंका है कि गैटस सिद्धांत राज्य की संप्रभुता को उत्कीर्ण करेगा, राष्ट्रीय हितों को यथासंभव कम करेगा और सार्वभौम सेवा दायित्वों की उपेक्षा करेगा। यह भी कहा जाता है कि व्यवसायिक सेवाओं पर संगठन के कार्यकारी दल द्वारा लेखांकन के क्षेत्र में अनुशासन विकसित करने हेतु समझौता और स्वास्थ्य जैसी अन्य सेवाओं एवं विधिसंगत क्षेत्रों तक उसका विस्तार उपभोक्ता संरक्षण, नैतिक दृष्टि से सही आचार व्यवहार एवं व्यावसायिक सत्यनिष्ठा को पाबंदियों के अनुकूल बनाने से सरकार की सत्ता को गुप्त रूप से क्षति पहुंचेगी (वही)। आरोप लगाया जाता है कि संगठन पश्चिमी देशों के दीर्घीकृत प्रभाव के अन्तर्गत बनाया गया है ताकि विकसित देशों, खासकर उत्तर अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों की रक्षा की जा सके। यह पुनः कहा जाता है कि व्यापार समझौतों में विकासशील एवं अल्प विकसित देशों के संप्रभु राज्यों की अपेक्षा इन कंपनियों की कहीं अधिक सुनी जाती है।

विकसित देशों में गुटों के दबाव की वजह से गैटस विकासशील एवं अल्प विकसित देशों को बाध्य करेगा कि अपने सेवा क्षेत्र को बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा घरेलू सेवा क्षेत्र के एक "संघबद्ध अधिग्रहण" की ओर प्रवृत्त करते व्यापार के लिए खोल दे। इस प्रकार

के अधिग्रहण से सरकार की समतावादी सार्वभौम सेवा दायित्वों एवं उपभोक्ता संरक्षण संबंधी प्रतिबद्धता की अवमानना होगी (वही)।

ख) विश्व व्यापार संगठन ने असमान साझीदारों के बीच बाजार प्रेरित प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है। विकासशील और अल्पविकसित देश, जिन्हें अभी अपने बाजार अधिसूचना निवेशार्थ घरेलू क्षमता आदि को पूरी तरह विकसित करना होना, समायोजन प्रक्रिया से दो चार होते समय परिवर्तित हानियों का सामना करेंगे। यह प्रक्रिया स्पर्धा बाजारों में इन देशों के भावी प्रवेश की संभावना को घटा देगी। पुनः श्रम एवं पर्यावरण मानकों पर बढ़ते जोर ने इन देशों पर गंभीर व्यापार प्रतिबंध लगाए हैं। बेरोज़गारी गरीबी एवं निरक्षरता संबंधी समस्याएं जो कि इन देशों में स्थानिक हैं समायोजन प्रक्रिया में भीतर ही भीतर समाप्त की जा रही है। गैट्स समझौता विकसित देशों के निर्यात हितों को सिद्ध करेगा। प्रदत्त स्थिति के तहत विकसित, विकासशील एवं अल्प विकसित देशों को जंहा तक कि सेवा में आपूर्ति क्षमता का संबंध है असमान रूप से रखा जाता है। "आलोचकों का कहना है कि पूंजी गतिशीलता की दिशा में बाज़ार सुलभता वचनबद्धता में वर्तमान विषमता और पूर्वाग्रह जो कि श्रमिक गतिशीलता के विरूद्ध है (मोड 3 जोकि मोड 4 के विरूद्ध है) विकासशील देशों की बजाय विकसित देशों के हित में काम करते हैं। यह दोनों पक्षों के बीच विनिमय विचारों ओर समर्थनकारी सत्ता में एक बुनियादी असंतुलन को प्रकट करता है।"

बताया गया है कि गैटस विकासशील देशों के निर्यात हितों खासकर सीमापार श्रमिकों की गतिशीलता (मोड 4) को ध्यान में नहीं रखेगा। मोड 4 हेतु प्रतिबद्धताएं " अधिशासियों, प्रबंधकों एवं संघबद्ध अन्तरितियों जैसे सेवा प्रदायकों के उच्चतर स्तरों की ओर उच्च रूप से अभिनत है," जिनकी गतिविध्यिां प्रायः व्यापारिक विद्यमानता से जुड़ी रहती है। विदेशी समदृष्टि भागीदारों पर किए जा रहे अधिक उदारमना वायदों के साथ पूंजी गतिशीलता पर वर्तमान वचनबद्धताओं की बजाय श्रमिक गतिशीलता पर वर्तमान प्रतिबद्धताओं में काफी विषमता दिखाई देती है। मोड व्यापी प्रतिबद्धताओं में इस प्रकार की विषमता उन कारणों में एक है कि क्यों अनेक देश गैटस को श्रम आधारित सेवाओं में अपनी निर्यात संभावना बढ़ाने में मदद करने वाले के रूप में नहीं देखते हैं और क्यों गैट्स को केवल विकसित देशों के हित में समझा गया है।"(विस्तृत विवरण के लिए देखें चन्द 2002)

ग) परिवहन, भौतिक एवं दूरसंचार पयर्टन जैसे परम्परागत साहसकार्यो के साथ-साथ सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों (ICTs) जैसे उभरते क्षेत्रों में और पर्यावरण एवं शैक्षणिक सेवाओं समेत अर्थव्यवस्था का सेवाक्षेत्र हाल के वर्षों में दुनियाभर में एक आश्चर्यजनक विस्तार की प्रक्रिया से गुज़र रहा है। इंग्लैंड और अमेरिका जैसे विकसित देशों में यह 72 प्रतिशत से भी अधिक है और भारत जैसे विकासशील देशों में यह सकल घरेलू उत्पाद का 52 प्रतिशत है (विश्व बैंक 2005)। यह क्षेत्र इन देशों के श्रमिक बल को रोज़गार का एक इसी प्रकार का अनुपात प्रदान करता है। पुनः सेवाक्षेत्र एवं निवेश प्रवाहों में यथेष्ट विस्तार देखा गया है। विश्व व्यापार संगठन वार्षिक रिपोर्ट 1999-2001 के अनुसार सेवा क्षेत्र विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) के विश्वव्यापी वार्षिक भण्डार के 40 प्रतिशत और विश्वव्यापी वार्षिक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश प्रवाहों के 40 प्रतिशत योगदान देता है (WTO 2001)। यह सत्य है कि विकसित देशों का विकासशील देशों और अल्पविकसित देशों के मुकाबले सेवा क्षेत्र में निरप्रवाह रूप से कहीं अधिक विदेशी सीधा निवेश का अंश है। सेवाओं में व्यापार उदारीकरण जैसा कि उरूग्वे दौर के माध्यम से शुरू किया गया अधिकांश रूप में विकसित देशों में सेवा क्षेत्र समर्थन गुट की ओर से पड़ते दबाव के कारण है। यह भी लगता है कि चूंकि आपूर्ति के तरीकों में एक व्यापारिक विद्यमानता भी है, "गैटस विकसित देशों में व्यापारिक हित की सिद्धि के

लिए एक साधन होगा ताकि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के माध्यम से सेवा, बैंकिंग एवं दूर संचार आदि क्षेत्रों में विकासशील देश सेवा बाज़ारों तक पहुंचा जा सके।"

उभरते विश्व परिदृश्य में , विशेषज्ञों का विचार है कि निर्माण एवं अभियांत्रिकी स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाओं जैसे सेवाक्षेत्र विकासशील देशों में कुशल एवं प्रचुर श्रमिकों की तत्कालीन उपलब्धता के कारण उल्लेखनीय निर्यात संभावनाएं हैं। उदाहरण के लिए भारत पहले ही सॉफ्टवेयर सेवाओं के अग्रणी निर्यातक और प्रशिक्षित मानव संसाधन के रूप में भी उभर चुका है।

घ) सूचना संचार प्रौद्योगिकियों में गैटस के अन्तर्गत आने वाली सेवाओं की श्रृंखला के कार्यक्षेत्र एवं व्याप्ति में कुछ अस्पंदताएं हैं। कभी कभी कहा जाता है कि सरकारी सत्ता प्रयोग में दी गई सेवाएं समझौते से बाहर रखी गयी हैं। चूंकि अनेक महत्वपूर्ण सेवाओं में निजी एवं सरकारी आपूर्तिकर्त्ताओं का सह अस्तित्व है ये विविध व्याख्याओं के प्रति उत्तरदायी है।

ङ) गैटस ने रियायत, सरकारी प्रापण आदि नीति के मुद्दों पर प्रतिबंध लगाए हैं इस प्रकार के प्रतिबंध आरोप लाया जाता है कि "सेवाओं की लागत, उपलब्धता एवं समान वितरण पर" प्रतिकूल प्रभाव डालेगी (वही)।

सोचिए और कीजिए 23.4

अपने समाज के उपान्तिक समूहों की सामाजिक आर्थिक आवश्यकता के दृष्टिकोण से गैट्स की समालोचना करें।

23.9 स्वास्थ्य एवं शिक्षा हेतु निहितार्थ

सामाजिक विकास के विभिन्न पहलुओं, विशेषकर स्वास्थ्य एवं शिक्षा क्षेत्रों में गैट्स अनेक निहितार्थ रखता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

क) **स्वास्थ्य:** विकासशील देशों में स्वास्थ्य के क्षेत्र में सरकार का सहयोग एक तात्कालिक सामाजिक सरोकार है क्योंकि वह एक तत्काल सामाजिक महत्व का क्षेत्र है। इस क्षेत्र के उत्तरोत्तर उदारीकरण के लाभ भी हैं और इसमें समस्याएं भी। उदाहरण के लिए, जब हम स्वास्थ्य सेवाओं के सीमापार निर्यात के पहलू पर नज़र डालते हैं तो पता चलता है कि दूर चिकित्सा के माध्यम से स्वास्थ्य रक्षा प्रदाता जनसंख्या के दूरस्थ एवं असेवित खण्डों की आवश्यकता को पूरा कर सकता है। तथापि यह स्वयं केवल देश के भीतर व्यज्ञपत अंकीय विभाजन के दृष्टिकोण से ही चुनिंदा संभागों की आवश्यकता पूरा कर सकता है। "देश से बाहर उपभोग मोड" के अनुसार , विकासशील देश अन्य देशों को स्वास्थ्य रक्षा सेवाएं प्रदान कर विदेशी मुद्रा उत्पन्न कर सकते हैं। तथापि यहां विरोधाभास हो सकता है। ऊंची किस्म की सेवाएं निर्यात की जा सकती है जबकि निष्कृट किस्म की स्थानीय बाज़ारों के लिए प्रस्तुत की जा सकती है। "व्यापारिक विद्यमानता" के माध्यम से विकासशील देश स्वास्थ्य रक्षा सेवा हेतु अतिरिक्त संसाधन उत्पन्न कर सकते हैं प्रतिभा पलायस रोक सकते हैं, सरकार पर बोझ कम कर सकते हैं आदि। तथापि, इस प्रकार की संभावना को स्वास्थ्य के क्षेत्र में वृहद विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की आवश्यकता होगी। ज्यों ही दोहरी प्रणाली आरंभ होगी , बेहतर अर्हताप्राप्त चिकित्सक सरकारी से नैगम की ओर रूख कर लेंगे। "प्राकृतिक जन संचालन" के अंतर्गत स्रोत देश सेवा प्रदायकों के रूप में अधिक धन प्रेषण प्राप्त कर सकते हैं, कौशलों एवं मानकों को उन्नत कर सकते हैं और स्वास्थ्य व्यवसायियों के बीच ज्ञान के आदान प्रदान को बढ़ावा दे सकते हैं। सूत्रधार देश दूसरी ओर अभाव ग्रस्त हो सकता है। प्रदार्यकों से सेवा प्राप्त कर गुणवत्ता सुधार सकता है। किसी भी देश से

लगातार चिकित्साकर्मियों के बाहर जाने से उस देश की स्वास्थ्य सेवा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। "वस्तुतः बड़ी संख्या में स्वास्थ्य रक्षा व्यवसायियों का सीमा पार प्रवाह स्थायी प्रवसन का रूप ले सकता है। वर्ष 1989 और 1997 के बीच दक्षिण अफ्रीका से अनुमानतः 10,000 स्वास्थ्य व्यवसायियों ने उत्प्रवास किया। पुनः स्रोत देशों के दृष्टिकोण से इस मानव प्रवाह का एक खराब पक्ष यह है कि यह ऊंची लागत थोपता है, प्रशिक्षित जनशक्ति के अभाव की ओर प्रवृत्त करता है। एक अध्ययन के अनुसार दक्षिण अफ्रीका ने वर्ष 1997 में स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र में मानव पूंजी निवेश में 67.8 अरब रैन्ड खर्च किए (6,00,000 रैन्ड प्रति चिकित्सक की प्रशिक्षण लागत से आबंलित), यथा इस प्रकार के बहिर्प्रवाहों से उत्पन्न प्रेषकों द्वारा केवल अंशतः सामने आया नुकसान" (चन्दा 2002: 21)।

ख) **शिक्षाः** हाल के वर्षों में उच्चतर शिक्षा एवं उसमें विदेशी सहयोग संबंधी व्यवसायिकरण की प्रक्रियाएं बढ़ी हैं। शिक्षा सेवाओं के प्रति गैटस की वचनबद्धता के सकारात्मक पहलू भी हैं और नकारात्मक भी। ये पहलू स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति न्यूनाधिक अभिन्न हैं।

एडसाल्ट (2000) के अनुसार गैट्स निगमों के लिए अधिकारों का एक घोषणापत्र है जो (क) उन्हें नियमित करने हेतु सरकारों के अधिकार को सीमाबद्ध करता है, (ख) पारदेशीय शिक्षा प्रदाताओं को सरकारी ऋण प्रयोग करने के साथ-साथ प्राप्त करने के अधिकार की भी गारण्टी देता है। (एडसाल्ट 2000)।

आलोचक यह भी कहते हैं कि संघबद्ध जगत ने विश्व व्यापार संगठन में एक मंच पा लिया है ताकि वे अपनी निगम कार्यसूचियों को बिना किसी लोकतांत्रिक जवाबदेही के अनभिज्ञ एवं अनिच्छुक देशों व जनता पर थोप सकें। इस कड़ी आलोचना में उन्होंने निगमों के उपभोक्ताओं एवं कर्मचारी वर्ग की सोच, रूझानों एवं कम विकल्प तैयार करने की संभावना तलाश ली है। (फ्रेस एवं ओ सुलिवां 2003)।

निगमों ने विनियमित शिक्षा क्षेत्र में आसार देखें हैं। वर्ष 1996 में अमेरिका ने शिक्षा एवं प्रशिक्षण सेवाओं का निर्यात किया जो कि लगभग 7 अरब डॉलर के एक व्यापार अधिशेष के साथ 8.2 अरब डॉलर पहुंच गया।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 23.7: संघबद्ध जगत हेतु लक्ष्य : एक उदाहरण

सेवा उद्योग गठबंधन (CSI) ने विश्व व्यापार संगठन के सिएटल दौर हेतु अपने प्रमुख लक्षणों की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत कीः

- इन निवेशों पर पूरी तरह अधिपत्य रखने के अधिकार समेत विदेशी बाज़ारों में कार्यव्यापार शुरू करने हेतु अमेरिकी कंपनियों का अधिकार सुनिश्चित करना
- यह सुनिश्चित करना कि अमेरिकी कंपनियां "राष्ट्रीय मान्यता" पायें ताकि किसी प्रदत्त बाज़ार में विदेशी निवेशकों के पास घरेलू कंपनियों जैसे ही अधिकार हो ;
- समुचित एवं न्यायसंगत नियमों की पर्याप्तता के साथ साथ विनियामक प्रशासन की पारदर्शिता एवं निष्पक्षता पर संकेन्द्रित प्रतिस्पर्धानुकूल नियंत्रणकारी सुधार को बढ़ावा देना ;
- वृहत्तर सीमापार व्यापार के अवरोध दूर करना; और
- लोगों एवं व्यापार सूचना के मुक्त संचालन के रास्ते में अवरोधों को दूर करना।

स्रोत : फ्रेस एवं ओ सुलिवां 2003

सूचना संचार प्रौद्योगिकियों के आश्चर्यजनक विस्तार के साथ ही शिक्षा में व्यवसायीकरण के नए प्रतिमान जुड़ गए हैं। शिक्षा मानकों के समंजन शिक्षा संस्थाओं की उत्कृष्टता में गिरावट, सांस्कृतिक महत्व विचारों एवं शिक्षा विषयों के निराकरण आदि में योगदान देती निष्ठुर प्रक्रियाओं ने जन्म ले लिया हैं निगम नियंत्रित शिक्षा के साथ ही शिक्षा संस्था की सुरक्षा गायब हो जायेगी क्योंकि यह वृहद विलय सौदों एवं उच्च साझेदारी निवेशों में खो जायेगी। वस्तुतः शिक्षा का नितांत आदर्श ही बदल जायेगा। सच्चाई की तलाश में और अधिक वक्त नहीं लगाया जायेगा, बल्कि जो भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में हो चलेगा (फ्रेस एवं ओ सुलिवां 2003)।

विशेष रूप से विकासशील देशों में शिक्षा का एक सामाजिक महत्व है। सरकारें शिक्षा पर आर्थिक रियायत देती हैं। ताकि राष्ट्रीय लक्ष्य पूरा हो। आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षा मुक्त व्यापार के प्रति एक अवरोध है, सरकारी नियंत्रणों को गैट्स के माध्यम से शिक्षा पर से कम करना होगा। "सरकार पर दबाव हो सकता है कि प्रमाणिक उपाधि पत्र (डिप्लोमा) जारी करने के लिए निजी कंपनियों को अनुमति दें, बेशक इस बात पर थोड़ा नियंत्रण होगा कि इन निजी संस्थाओं द्वारा क्या पढ़ाया जा रहा है। ..... परन्तु शायद अधिक उद्वेलित करने वाली बात यह है कि शिक्षा हेतु संभावना उत्तरोत्तर एक निगम प्रशिक्षण आधार पर ही काम करेगी, न कि आलोचनात्मक परिपृच्छा एवं अन्य लोकतांत्रिक रूप से सहमति प्राप्त लक्ष्यों को बढ़ावा देने के आधार पर" (वही)।

एक सशक्त अनुभूति है कि गैटस समझौता विकसित एवं विकासशील देशों के बीच असमान सौदाकरी शक्ति थोपकर औद्योगिक समर्थन समूह के हितों की पूर्ति करेगा। शिक्षा संस्थाओं एवं उसकी सेवाओं को राष्ट्रीय एवं सामाजिक सेवाएं माना गया है। वस्तुतः ज्ञान प्रसार , ज्ञान, सर्जन एवं समुदाय की सेवा – ये तीन कार्य हैं जो राष्ट्र निर्माण हेतु शिक्षा संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं। विदेशी संस्थाओं की विद्यमानता से इस काम में गुप्त रूप से हानि पहुंचेगी क्योंकि शिक्षा एक उपभोक्ता वस्तु में बदल जायेगी और बाज़ार आवश्यकता के लिहाज से शिक्षा की विषयवस्तु में किंचित हेर फेर भी किया जायेगा (गिल 2003)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

23.10 सारांश

इस इकाई में हमने सामाजिक विकास, भूमंडलीकरण एवं व्यापार समझौतों के बीच संबंद्ध देखा। इकाई में दी गई चर्चा से यह स्पष्ट है कि ऐसे अनेक विषय हैं जो विकासशील देशों के लिए बड़े महत्व के हैं खासकर उनकी प्रभुसत्ता एवं सांस्कृतिक विशिष्टता के दृष्टिकोण से। यह महत्व इस आशंका के चलते दूना बढ़ गया है कि विश्व व्यापार संगठन को असल में बहुराष्ट्रीय कंपनियों में अपने अधिकार में ले लिया है। विकासशील देशों में राज्यों के पास अनेक सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिबद्धताएं हैं। यह पक्के तौर पर नहीं कहा जा सकता है कि यह सभी वचनबद्धताएं एवं दायित्व विश्व व्यापार संगठन व्यवस्था के अंतर्गत पूरे किए जाएंगे या नहीं। शायद हमें अपनी संप्रभुता की रक्षा करने के लिए अतीत के मुकाबले कहीं अधिक सावधानी पूर्वक संगठन की कार्यवाही को देखना होगा।

23.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

चन्दा, आर.(2002), *गैट्स एण्ड इट्स इम्प्लिकेशन्ज़ फॉर डिवैल्पिंग कंट्रीज़ : की इश्यूज़ कन्सर्न्स,* आर्थिक एवं सामाजिक मामले विभाग, संयुक्त राष्ट्र संघ : न्यूयार्क

गिल, एस.एस.(2003), "गलोब्लाइज़ेशन : हायर एजुकेशन विल सफ़र", इन *दि ट्रिब्यून,* जुलाई 20,2003

नाइट, जेत्र (2002), *ट्रेड इन हायर एजुकेशन सर्विसिज़ : द इम्प्लिकेशन्ज़ ऑफ गैट्स,* सीमारहित उच्चतर शिक्षा पर वेधशाला : लन्दन।

खंड 7

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 24
ज्ञान समाज के आयाम : सुलभता एवं समानता के मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

24.1 प्रस्तावना

24.2 प्रौद्योगिकी रूपान्तरण एवं मानव प्रगति

24.3 सूचना एवं ज्ञान समाज का उदय

24.4 ज्ञान/सूचना समाज क्या है?

24.5 ज्ञान अर्थव्यवस्था तथा ज्ञान समाज के ज्ञानकर्मी

24.6 ज्ञान समाज में कर्मार्थ कौशल अर्जन एवं प्रशिक्षण

24.7 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की अधिसंरचना एवं ज्ञान प्रसार

24.8 ज्ञान अर्थव्यवस्था में कार्य भागीदारी के आयाम

24.9 ज्ञान समाज में महिलाएं

24.10 सारांश

24.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको निम्नलिखित बातें समझने और विश्लेषण करने में सक्षम करेंगी:

- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के युग में ज्ञान समाज का उदय;
- ज्ञान समाज, ज्ञान अर्थव्यवस्था एवं ज्ञानकर्मियों के विशिष्ट अभिलक्षण;
- ज्ञान समाज में कौशल अर्जन एवं ज्ञान प्रसार;
- ज्ञान समाज में कार्य भागीदारी के आयाम; और
- समुदाय के सशक्तीकरण में ज्ञान तथा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों की भूमिका।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

24.1 प्रस्तावना

खंड 6 की इकाइयों में हम पहले ही देश चुके हैं कि किस प्रकार वैश्वीकरण शक्तियों ने समकालीन मानव जीवन के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि कार्यक्षेत्रों को पुनर्परिभाषित किया है। सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांतिकारी घटनाक्रम जो द्वितीय विश्वयुद्ध उपरांत या अधिक निर्दिष्ट रूप से सत्तर के दशक व उसके उपरांत चला, भूमंडलीकरण या वैश्वीकरण प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा था जिसने इस काल में बढ़े गति वेग को और बढ़ा दिया। भूमंडलीकरण के ताज़ा दौर द्वारा विभिन्न समाजों के बीच व उनमें परस्पर तीव्र अन्तर्क्रिया एवं अन्तर्सम्बद्धता ने सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों को सामाजिक व्यवस्था के हर पहलू में प्रभावी बनाकर ही छोड़ा जहां सूचना संसाधन एवं संचार संबंधी प्रौद्योगिकियों उत्पादकता का केन्द्र बन गई। सूचना संचालन, संचारण, भंडारण एवं उपयोजन संबंधी प्रक्रियाओं में पहलकारी मानवीय योजनाओं एवं विकास और गुणात्मक रूप से विभिन्न जीवन शैलियों में अति महत्वपूर्ण हो गई। उभरते समाज – सूचना/ज्ञान समाज में जानकारी एवं सूचना; और जानकारी पैदा करने हेतु ज्ञान एवं सूचना का व्यवहार तथा सूचना संसाधन/संचार मानव प्रगति के मूल घटक बन गए। इसके एक विश्व जानकारी अर्थव्यवस्था के उदगमन हेतु मार्ग प्रशस्त किया– विविध प्रकार की आर्थिक एवं शैक्षणिक अपेक्षाओं तथा

समाज को संगठित करने के सिद्धांत, उसके नैतिक मूल्य एवं पहचान, आदि के साथ एक सुगढ़ ताने बाने में जुड़ा समाज। विश्व विकास रिपोर्ट 1998/99 के अनुसार, "आज की सर्वाधिक प्रौद्योगिकीय रूप से उन्नत अर्थव्यवस्थाएं रातोंरात उभरे शिक्षा विषयों के एक चक्र-व्यूह में जानकारी से जुड़ी लाखों नौकरियों को उत्पन्न कर वास्तव में जानकारी/ज्ञान आधारित सिद्ध हुई हैं"(विश्व बैंक 1999)।

विश्व रोज़गार रिपोर्ट 2001 का पुर्वानुमान है कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का भविष्य में वैश्विक रोज़गार पर एक बड़ा प्रभाव पड़ेगा। यह विश्व के सामाजिक एवं आर्थिक समीकरण को फिर से रच रहा है – आय विभाजन से ज्ञान विभाजन की ओर जाकर। विकसित देशों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों से ज्ञान समाज (knowledge society) की संचालक हैं।

जैसाकि उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है, सूचना के युग में ज्ञान पूंजी का बुनियादी रूप बन गया है, और आर्थिक विकास ज्ञान संरचना से ही प्रेरित होता है। यहां उच्च ज्ञान घटक वाला उत्पाद ही ऊंची आमदनी और एक ऊंची विकास संभावना को जन्म देता है। ज्ञान अर्थव्यवस्था (knowledge economy) में, कृषक एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था से भिन्न जहां आर्थिक धन संपदा क्रमशः मानवीय हस्तकृत श्रम एवं मशीनों के प्रयोग से उत्पन्न की जाती है। ज्ञान के जनन, प्रसार एवं संदोहन की प्रक्रिया आर्थिक समृद्धि को प्रबल रूप से उत्पन्न करती है। इस प्रकार, उभरता ज्ञान समाज एक ऐसा समाज है जिसमें उत्पादकता ज्ञान अथवा सूचना के अर्जन अथवा जनन, प्रसारण एवं प्रयोजन पर आधारित होती है। इस इकाई का मुख्य उद्देश्य ज्ञान समाज अथवा सूचना समाज के विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करना है। हम यहां इसका उदगम पता लगाने और इसके अभिलक्षणों को सूचीबद्ध करने का भी प्रयास करेंगे। ज्ञान समाज कैसे और क्यों ज्ञान का उत्पादन प्रसार एवं व्यवहार का अभिन्न हिस्सा बन गए हैं, तथा ज्ञान समाज में कार्य भागीदारी के आयामों का भी इस इकाई में विश्लेषण किया जायेगा।

MAADHYAM IAS

24.2 प्रौद्योगिकी रूपांतरण एवं मानव प्रगति

प्रौद्योगिकी रूपांतरण ने सदा ही एक अवस्था से दूसरी अवस्था में मानव समाजों के अग्रगमन में एक निर्णायक भूमिका निभाई हैं। इस कायापलट ने उत्पादन के आयोजन में कार्य भागीदारी के स्वरूप में परिवर्तन लाकर समाज की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संस्थागत व्यवस्थाओं को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। पूर्वोद्योगिक/कृषीय से औद्योगिक और फिर उत्तरोद्योगिक तक मानव समाजों के रूप परिवर्तन को व्यापकतः नई प्रौद्योगिकियों के प्रवर्तन द्वारा निरूपित किया गया है। 19वीं शताब्दी के आरम्भ में मानव मात्र के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में दूरगामी विज्ञान, अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी द्वारा उद्धारित किए गए है। उस युग के परिवर्तन दास प्रथा समाप्त करने हेतु संगठित प्रयासों तथा केन्द्रीकृत कारखाना उत्पादन के बड़े पैमाने पर विस्तार एवं औद्योगिक वर्गों श्रमिक एवं पूंजीपति के निर्माण द्वारा इंगित हुए। इसका लक्षण वर्णन विनिर्मित माल के उत्पादन एवं औद्योगिक विनिर्माण हेतु अपेक्षित नए कौशलों का अर्जन द्वारा किया जाता है। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का पदार्पण देखा गया। जिसने इतिहास में एक नए दौर का आगाज़ किया और उसके द्वारा सामाजिक एवं आर्थिक ताने बाने में लाए गए परिवर्तन प्रभावशाली रूप से अनुपम हैं। इस कालावधि में कम्प्यूटर संचार, विधुत्वात्विक प्रौद्योगिकी एवं सेवाई अर्थव्यवस्था का आश्चर्यजनक विस्तार देखा गया (बैल 1976)।

तालिका 24.1: कुछ चुनिंदा देशों के आर्थिक सूचक

देश	आय अंश (प्रतिशत में)			सकल घरेलू उत्पाद (प्रतिशत में)					
	रेखा से नीचे जनसंख्या	निम्नतम 20%	उच्चतम 20%	कृषि		उद्योग		सेवा	
				1990	2003	1990	2003	1990	2003
ऑस्ट्रेलिया	-	5.9	41.3	3	4	29	26	67	71
कनाडा	-	7.0	40.4	3	-	33	-	64	-
नीदरलैण्ड	-	7.3	40.1	4	3	29	26	67	71
अमेरिका	-	5.4	45.8	2	2	28	23	70	75
यूनाइटेड किंग्डम	-	6.1	44.0	2	1	35	26	63	73
चीन	4.6	4.7	50.0	27	15	42	53	31	32
श्रीलंका	25.0	8.0	42.8	26	20	26	26	48	54
भारत	28.6	8.9	41.6	31	23	27	26	42	52
भूटान	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं	उप.नहीं
बंगला देश	49.8	9.0	41.3	28	22	24	27	48	52
नेपाल	42.0	7.6	44.8	52	40	16	21	32	39
पाकिस्तान	32.6	8.8	42.3	26	23	25	23	49	53

स्रोत: विश्व बैंक 2005, यूएनडीपी 2004

समय के साथ-साथ, परिवर्तन कार्य भागीदारी के स्वरूप में भी देखा गया है। औद्योगिकरण एवं तीव्र शहरीकरण के आलोक में, विश्व के केवल विकसित ही नहीं अपितु विकासशील देशों में भी कार्य भागीदारी का स्वरूप कृषि से गैर कृषि अर्थव्यवस्था की दिशा में बदला है। तथापि, उद्योगोत्तर समाज के उद्गमन के चलते इस बदलाव ने भी एक नया मोड़ लिया है। जिससे सेवाई अर्थव्यवस्था में कार्य भागीदारी बढ़ी जिसमें दूरसंचार, परिवहन एवं विपणन क्षेत्र के सेवा कर्मी शामिल हैं। यह बात महत्वपूर्ण हैं कि गत शताब्दी के आरंभिक दशकों तक फ्रांस, युनाइटेड किंग्डम, अमेरिका, बेल्जियम, जापान आदि औद्योगिकृत देशों के कर्मचारी वर्ग का एक बड़ा हिस्सा कृषि में ही लगा था। वर्तमान में, यद्यपि कृषि में कार्यबल का यथेष्ट भाग लगा है, सकल घरेलू उत्पाद हेतु सेवा क्षेत्र का योगदान बढ़ता ही रहा है, विकसित देशों में भी विकासशील देशों में भी (देखें तालिका 24.1)। नीलपोश श्रमिक 19वीं शति के अन्तिम चतुर्थांश से बहुत तेज़ी से उभरे और 20वीं शती के उत्तरार्ध तक यह वृद्धि और तीव्र हो गई। दरअसल औद्योगिक श्रमिक इस शताब्दी के पूर्वार्ध में कारखाने, खदानों एवं परिवहन के क्षेत्र में आश्चर्यजनक रूप से उभरे और पचास के दशक तक वे औद्योगीकृत देशों में कामकाजी आबादी के यथार्थ अधिकांश के रूप में सामने आ गए। तथापि, गत 40 वर्षों में वे पहले तो कुल के अनुपात में उतनी ही तेज़ी से घटे और अस्सी के दशक के आरंभ से असीम संख्या में भी। रोजगार एवं आय हेतु एक संभावित मार्ग के रूप में सेवाक्षेत्र के उदय (हम इसके विषय में और अधिक इस इकाई के उत्तर भाग में पढ़ेंगे) ने विकासशील एवं विकसित दोनों देशों में ज्ञान अर्थव्यवस्था के उद्गमन का मार्ग प्रशस्त किया है। एल्विन टॉफलर के अनुसार मानवता के आर्थिक उद्भव की तीन अवस्थाएं हैं – कृषि लहर, औद्योगिक लहर और सूचना युग। आजकल मानेंव समाज तीसरी लहर के दौर में गुज़र रहा है, यथा सूचना लहर जिसकी अन्य पहचानों में विशेष पहचान है – सूचना प्रौद्योगिकियों में अचानक उद्भूत विकास परिणाम तथा सेवा क्षेत्र का प्राधान्य (टॉफलर 1980)।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 24.1: टॉफलर की प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय लहर

अपनी पुस्तक द थर्ड वेव में टॉफलर लहरों की संकल्पना पर आधारित तीन प्रकार के समाजों का वर्णन करते हैं – प्रत्येक लहर पुराने समाजों एवं संस्कृतियों को हाशिए पर धकेल देती है।

– प्रथम लहर कृषि क्रांति के बाद का समाज है और उसने पहले की आखेटक संग्रहकर्त्ता संस्कृतियों का स्थान लिया।

– द्वितीय लहर समाज के मुख्य घटक हैं – एकाकी परिवार, कारखाना शैली, शिक्षा पद्धति और निगम। टॉफलर लिखते हैं: "द्वितीय लहर समाज औद्योगिक है और व्यापक उत्पादन पर व्यापक वितरण, व्यापक उपभोग, व्यापक शिक्षा, व्यापक संचारमाध्यमों, न्यायक निर्माण, व्यापक मनोरंजन एंव व्यापक विनाश के हथियारों पर आधारित है। आप उन चीज़ों को मानवीकरण, केन्द्रीकरण, संकेन्द्रण एवं समक्रमण से जोड़कर देखें तो सामने एक प्रकार का संगठन पायेंगे जिसे दफ्तरशाही कहते हैं।"

– तृतीय लहर है. उद्योगोत्तर समान। टाफलर आगे यह भी लिखते हैं कि 'पचास के दशक के अंत से ही अधिकतर देश द्वितीय लहर समाज से परे एक समाज में जा रहे हैं जिसे तृतीय लहर समाज कहेंगे। इसके वर्णन हेतु उसने अनेकों शब्द गढ़े और अन्य लोगों द्वारा खोजे गए नामों का उल्लेख किया है, जैसे सूचना युग।

स्रोत: *द थर्ड वेव* 1980

24.3 सूचना एवं ज्ञान समाज का उदय

सूचना समाज अवधारणा की जड़ें उद्योगोत्तरवाद की अवधारणा से गहरे जुड़ी हैं। यद्यपि इलेक्ट्रोनिक्स आधारित सूचना प्रौद्योगिकियों के वैज्ञानिक एवं औद्योगिक पूर्वज़ 19वीं शति अंत एवं 20वीं शति आरम्भ में खोज जा सकते हैं, द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान व उसके उपरांत ही विद्युत्वान्विकी के क्षेत्र में प्रमुख प्रौद्योगिकीय आविष्कार हुए : प्रथम प्रोग्राम्य कम्प्यूटर, ट्रांजिस्टर, सूक्ष्मविद्युत्वान्विकी (micro electronics) का स्रोत – सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति का यथार्थ मर्म (देखें बॉक्स 24.2)(कारतल 1996)। मानुअल कासत्ल का दावा है कि नई सूचना प्रौद्योगिकियों जिनमें सूक्ष्म विधुत्वन्विकी, कम्प्यूटर एवं दूरसंचार साधन शामिल हैं। अपने सहक्रियाशील विकास को तेज़ करते हुए और एक नए प्रतिमान में संसृत होते हुए सत्तर के दशक में व्यापक रूप से प्रसृत हो गई (वही)।

MAADHYAM IAS

बॉक्स 24.2 : सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति

यद्यपि प्रौद्योगिकी आविष्कार, जैसे 1876 में बैल द्वारा टेलीफोन, 1898 में मारकोनी द्वारा रेडियों, 1906 में डी फॉरैस्ट द्वारा निर्वात नलिका आदि प्रौद्योगिकीय विकास में उल्लेखनीय आविष्कार थे, विधुत्वान्विकी आधारित प्रौद्योगिकियों पर आधारित मानव इतिहास में एक प्रौद्योगिकीय क्रांति की ओर ले जाती प्रमुख प्रौद्योगिकीय खोज के बारे में कहा जा सकता है कि वह द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उपरांत हुई। 1947 में ट्रांजिस्टर के आविष्कार ने व्यवधानन एवं प्रवर्धन की द्विआधारी विधि में एक तीव्र गति के साथ इलैक्ट्रानिक्स संवेगों के संसाधन को संभव बना दिया। जिससे यंत्रों के साथ व उनके बीच तर्कसंगति की ओर संप्रेषण की संकेत की तैयार की जा सकी। ये संसाधन उपकरण हैं. अर्धचालक, जिन्हें आमतौर पर चिप्स कहा जाता है। 1957 में सुबद्ध परिपथ (आई सी) के आविष्कार के साथ ही माइक्रोइलेक्ट्रानिक्स के क्षेत्र में एक निर्णायक मोड़ आया। इसने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अचानक वृद्धि को प्रेरित किया। यान्त्रिकी के क्षेत्र में माइक्रोइलैक्ट्रानिक्स के प्रसरण में तेज़ उछाल 1971 में तब आया जब सिलिकन वैली स्थित इन्टैल कंपनी के एक अभियन्ता टैड हॉफ द्वारा यथा एक चिप पर कंप्यूटर की खोज कर ली गई। इस प्रकार सूचना संशोधन शक्ति हर जगह संस्थापित की जा सकी।

चिप्स की शक्ति का मूल्यांकन तीन अभिलक्षणों के संयोजन द्वारा किया जाता है: उनकी सुबद्धता क्षमता, जो कि उस चिप में लघुतम रेखा विस्तार द्वारा इंगित होती है और माइक्रॉन में मापी जाती है (1 माइक्रॉन एक इंच का 10 लाखवां हिस्सा होता है)। उनकी स्मरण क्षमता, जो कि बिट में मापी जाती है : हज़ार (k) और दस लाख (मैगाबिट्स); और सूक्ष्मसंसाधित की गति जो कि मैगाहर्ट में मापी जाती है। सूक्ष्मसंसात्रित के क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय प्रवृद्धियां इतनी तेज़ी से हुई कि जहां 1971 के प्रथम सूक्ष्मसंसाधित में लगभग 6.5 माइक्रॉन की रेखाएं रखी गई थी। 1999 के सूक्ष्म संसात्रित की माप 0.25 माइक्रान मात्र थी। अधिकाधिक लघुकरण और अधिक विशिष्टीकरण तथा उत्तरोत्तर शक्तिशाली चिप्स के घटते दाम ने उन्हें हमारे दैनिक जीवन में काम आने वाले हर यंत्र में लगा देना संभव कर दिया।

एक चिप पर कंप्यूटर लगा देने की क्षमता के साथ 1971 में सूक्ष्मसंसात्रित की खोज ने इलैक्ट्रानिक्स जगत और वास्तव में पूरी दुनिया को ही पलटकर रख दिया। अस्सी के दशक मध्य में हार्वर्ड विश्वविद्यालय की पढ़ाई बीच में ही छोड़कर आए दो छात्रों – बिल गेट्स और पॉल ऐलन द्वारा पैदा किए गए उत्साह से सूक्ष्मसंसात्रित अर्थात पर्सनल कंप्यूटर सॉफ्टवेयर भी उभर कर आए। इसकी प्रवीणक्षमता का पता लगते ही उन्होंने माइक्रोसॉफ्ट की आधारशिला रख दी जो कि आज सॉफ्टवेयर (कंप्यूटर में प्रयुक्त प्रोग्राम और प्रचालन सूचना) के क्षेत्र में बहुत बड़ी कंपनी है।

वस्तुतः माइक्रो इलेक्ट्रानिक्स और सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में प्रगति के साथ संचार तंत्रीय क्षमताओं में भी तेज़ उछाल आया, जो कि सत्तर के दशक मे दूरसंचार माध्यमों के साथ साथ कंप्यूटर नेटवर्किंग प्रौद्योगिकियों में भी वृहद् विकास कार्यों से संभव हुआ। इस कालावधि में दूर संचार के क्षेत्र में भी क्रांति आयी जो कि नोड प्रौद्योगिकियों (इलैक्ट्रानिक्स स्विच और रूटर) तथा नए संयत्रों (प्रसारण प्रौद्योगिकियों) के संयोजन से संभव हुई। प्रकार इलैक्ट्रानिक्स (तंतु प्रकाशिकी एवं लेसर संचारण) तथा अंकीय पुलिन्दा प्रेषण प्रौद्योगिकी ने प्रसारण माध्यमों की क्षमता को नाटकीय रूप से बढ़ा दिया। विशिष्ट प्रौद्योगिकीय क्षेत्र में हर एक उछाल और सीमा संबद्ध सूचना प्रौद्योगिकियों के प्रभावों को प्रवर्धित ही करती है।

स्रोतः कास्तल 1996

MAADHYAM IAS

मानुअल कास्तल 1996 का कहना है कि वैश्विकीकरण प्रक्रिया के वर्तमान दौर के परिणामस्वरूप दुनियाभर में उभरी एक नयी अर्थव्यवस्था में, उत्पादकता और प्रतिस्पर्धात्मकता कुल मिलाकर ज्ञान उत्पादन और सूचना संसाधन अथवा सूचनाबद्धीकरण संबंधी प्रकार्य ही है। इस नए सूचना युग में ज्ञान ही पूंजी संचय हेतु शक्ति और साधन बन गया है। योनेजी मसूदा (1981) के अनुसार उद्योगोत्तर सूचना आधारित समाज में औद्योगिक प्रौद्योगिकियों की बजाय ज्ञान अथवा सूचना मूल्यों का उत्पादन ही समाज की प्रेरक शक्ति होगा (पृ.29)। इस प्रकार इस विकासोन्मुखी सूचना युग में ज्ञान का जनन प्रसार एवं प्रयोजन ही ज्ञान के सभी पहलुओं का आधार बन गया है और तदनुसार ही इसे ज्ञान समाज भी कहा जाता है।

सोचिए और कीजिए 24.1

क्या आप मानते हैं कि वर्तमान काल में एक प्रौद्योगिकीय कार्यान्तरण एवं एक परिणामी सामाजिक कायापलट देखा जा रहा है? क्यों?

24.4 ज्ञान/सूचना समाज क्या है?

दानियल वेल के अनुसार सूचना (एवं ज्ञान) समाज में विज्ञान उत्पादन शक्तियों में महत्वपूर्ण भूमिका निर्माण है। बीच एक भूमिका का निर्वाह करता है; व्यवसायिक, वैज्ञानिक और तकनीकी समूहों का महत्व सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक विस्तार के चलते बढ़ जाएगा, जिसमें माइक्रो इलेक्ट्रानिक्स में प्रौद्योगिकियों परिकलक (मशीनों व सॉफ्टवेयर), दूर संचार/प्रसारण और प्रकाश विधुत्वाण्विकी आदि की एक संसृत श्रृंखला शामिल है। अर्थव्यवस्था और

समाज का नया अक्षीय सिद्धांत यही होगा। बैल दूर संचार साधनों पर आधारित एक नए सामाजिक ढांचे की कल्पना करते हैं जो कि उस तरीके के लिए निर्णायक सिद्ध हो सकता है जिससे ज्ञान का सर्जन एवं पुनर्लभ किया जाता है और उन कार्यों एवं व्यवसायों की प्रकृति के लिए भी जिनमें लोग परियुक्त हों कंप्यूटर एक प्रधान भूमिका निभाएगा। सूचना समाज में ज्ञान और सूचना अर्थव्यवस्था के प्रमुख प्रवर्त्यों के रूप में श्रम और पूंजी (जैसा कि मार्क्सवादी विचारधारा में है) को उखाड़ फेकेंगे। यहां सूचना को एक उपभोक्ता वस्तु के रूप में लिया जाएगा और सूचना का स्वामित्व उसके धारक को और अधिक शक्ति प्रदान करेगा। सूचना की कृषि विनिर्माण एवं सेवाओं के ओर अधिक पारंपरिक क्षेत्रों में अधिकाधिक पैठ होगी। नई दूरसंचार साधन अधिरचना इलेक्ट्रानिक्स की स्थापना के परिणामस्वरूप बड़े सामाजिक परिवर्तन होंगे (बेल 1976)। इलैक्ट्रानिक्स संचार उपकरणों पर आधारित सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों के नए रूप अब सामाजिक संबंधों के पुराने स्वरूपों का स्थान लेते जा रहे हैं। औद्योगिकरण से जुड़ी पारिस्थितिकीय एवं पर्यावरणीय समस्याओं से बचने के लिए भी सूचना प्रौद्योगिकी का अधिकाधिक प्रयोग किया जा रहा है।

मानुअल कास्तल (1996) उभरते समाज को "सूचनात्मक " समाज कहना पसंद करते हैं जहां सूचना की उत्पादन प्रक्रिया और क्रय परिवर्तन प्रक्रिया दोनों ही निस्संदेह उत्पादकता और शक्ति के बुनियादी स्रोत बन चुके हैं। स्कॉटलैश(1999) के अनुसार सूचना समाज में शक्ति का स्रोत सूचना ही है। विनिर्माण युग में शक्ति उत्पादन के यांत्रिकी साधन के रूप में संपत्ति से जुड़ी हुई थी। सूचना युग में यह एकस्वाधिकार, स्वत्चाधिकार एवं मार्का के रूप में बौद्धिक संपदा से जुड़ी हुई है ताकि उन्हें लाभार्जन के उद्देश्य से मूल्यवर्धित किया जा सके। इस प्रकार सूचना को एक उपभोक्ता वस्तु बन गई है और सोचने विचारने का समय ही नहीं है। इस समाज में बहरहाल सूचनाकरण का प्रेरक तत्व उपभोक्ताकरण नहीं है बल्कि उलटे उपयोक्ताकरण को ही सूचनाकरण उत्प्रेरित कर रहा है। इस युग में असमानता को उत्पादन संबंधों के लिहाज से कम परिभाषित किया जाता है बल्कि बहिष्करण द्वारा अधिक।

समाज जो उभर रहा है एक ज्ञान समाज है यथा वह जिसके अभिलक्षण हैं – ज्ञान के (नए प्राधार) प्रसार की विधियां और एक तकनीक जो ज्ञान के लिए "अबाधित" सुगमता ओर उस पर नियंत्रण का अवसर प्रदान करती है और कायम रखती है। इस प्रकार मानव समाज के वर्तमान दौर में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रचुरोद्भव ने एक व्यापक समाज के उद्गमन की ओर उन्मुख किया है जो अर्थव्यवस्था की प्रेरक शक्ति के रूप में एक व्यापक स्तर पर ज्ञान और सूचना का उत्पादन करता है। (नैस्बित 1986 : 7)। परिणामतः ज्ञानकर्मियों की एक नयी श्रेणी उभरकर आयी है, जो इतिहास के परंपरागत समूहों के साथ-साथ औद्योगिक समाज के समूहों का भी तेज़ी से स्थान लेती जा रही है; यथा वह समूह जो तेज़ी से कामकाज़ी जनता का गुरुत्वकेन्द्र बनता जा रहा है। यह समूह उद्योगोत्तर समाज में कार्यबल का एकमात्र सबसे बड़ा समूह भी बनता जा रहा है (ड्रूबर 1994)।

ज्ञान समाज की सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन शक्तियों व्यापकतः उत्पादन की नई शक्तियों विश्व बाज़ार के प्रभाव ओर राज्य आदि से निरूपित हुई हैं। एडअनी गिडन (2000) के अनुसार वैश्वीकरण और ज्ञान अर्थव्यवस्था ही वैश्विक सूचना व्यवस्था के सहघटक हैं और यह अर्थव्यवस्था तारबद्ध कर्मियों वाले एक सक्रिय एवं विचारशील नागरिक वर्ग द्वारा आबाद है, जिसका ज्ञान ही उत्पादन का प्रमुख स्रोत है और वे अपने कार्य परिवेश में गैर अधिक्रमिक है अर्थात किसी श्रेणीबद्ध संगठन / समाज / समूह के संबंध नहीं रखते।

बॅब यीशू (2003) के अनुसार ज्ञान श्रम बाज़ार में प्रवेश कर लेने के बाद और एक बार अस्वाभाविक रूप से दुर्लभ बना देने के बाद उपभोक्ता वस्तु का दर्ज़ा प्राप्त कर लेता है और उसकी सुलभता किराये के भुगतान पर निर्भर करती है। ज्ञान को विभिन्न तरीकों से अवास्तविक जिन्स में तब्दील किया जा सकता है: आय उत्पादन के लिए उसे किसी सामूहिक संसाधनों बौद्धिक रसद से बौद्धिक संपदा (यथा एकस्वाधिकार, स्वत्वाधिकार आदि)

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

में बदलकर ज्ञान उत्पादन को संदोहन योग्य वर्ग संबंधों के अन्तर्गत लाकर और बाज़ार हेतु ज्ञान उत्पादन के लिए बौद्धिक श्रम को सर्वोतम श्रम में बदलकर; तथा बौद्धिक श्रम को उपयोक्ताकरण एवं एकीकरण के माध्यम से पूंजीवादी नियंत्रण में लाकर जो कि उसे एक संचारतंत्रबद्ध शंक रूपान्तरित उत्पादन एवं पूंजी नियंत्रित एक उपभोग प्रक्रिया में लाकर ही होगा। बॉब ज्ञान एवं सूचना में एकाधिकारों की संभावनाएं भी देखते हैं जो कि उन्हें प्रौद्यागिकी में अंतःस्थापित कर मानकों अथवा कानून बौद्धिक संपदा अधिकारों में संस्थापित कर प्राप्त किए जा सकेंगे।

अब यह माना जाता है कि वैश्वीकरण के वर्तमान दौर को देखते हुए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने विश्व ज्ञान समाज एवं अर्थव्यवस्था के उद्‌गमन का मार्ग प्रशस्त कर दिया है ; यथा एक संचारतंत्रबद्ध समाज, जिसमें नाना प्रकार की आर्थिक एवं शैक्षिक वांछनीयताएं हैं और समाज को संगठित करने के सिद्धांत, उसके नैतिक मूल्य एवं पहचान भी। सारतः सूचना एंव संचार प्रौद्योगिकियां स्थानीय एवं विश्वव्यापी रूप से सूचना युग की ज्ञान अथव्यवस्था से जुड़ी आर्थिक एवं सामाजिक संस्थागत व्यवस्थाओं की पुनर्गठन प्रक्रिया के सन्निकर ही रखी गई हैं। ये प्रौद्योगिकियां अब सूचना प्राप्त करने, जानने एवं प्रसार करने की परम्परागत विधियों के लिए एक चुनौती पेश करती है। इस प्रकार यह कर्तन धार प्रौद्योगिकी विकास की एक नयी चर्चा से जुड़ी रही है। इस सूचना युग में ज्ञान ही पूंजी का मूल रूप है और आर्थिक विकास ज्ञान के संचय द्वारा ही अभिप्रेरित होता है (तुल्य www.med.gov.nz)। जन जन में अभिव्यक्त रचनात्मक प्रयोगक्षमता एवं ज्ञान को निर्युक्त करने और स्थानीय वैश्विक संपर्क गुण का लाभ उठाने हेतु ज्ञान अर्थव्यवस्था एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकियों के बीच एक प्रतीकात्मक संबंध उभरा है, ताकि धन कमाया जा सके और इस अर्थव्यवस्था का बाज़ार विस्तृत किया जा सके (वही)।

MAADHYAM IAS

निम्नोक्त ज्ञान समाज के कुछ विशिष्ट अभिलक्षण हैं :

- ज्ञान समाजों में ज्ञान आधारित विकास का आधार ज्ञान का उत्पादन, प्रसारण एवं परिनियोजन है।
- ज्ञान समाज में विज्ञानपरक जानकारी को परिसंपति समझा जाता है और वैज्ञानिक एवं तकनीकी समूह उत्कर्ष पर चले जायेंगे।
- ज्ञान समाज में सामाजिक ताना बाना दूर व अन्य संचार प्रौद्योगिकियों पर निर्भर होता है।
- ज्ञान का सर्जन एवं पुनर्लाभ कार्य एवं व्यवसाय संगठन में एक निर्णायक भूमिका निभाता है। ऐसे व्यवसाय जो अधिकावधिक खोजपरक जानकारी उत्पन्न करते हैं , इस अर्थव्यवस्था में प्रमुख हो जायेंगे।
- ज्ञान / सूचना को यहां उपभोक्ता वस्तु समझा जाता है और ज्ञान का स्वामित्व उसके धारक को अधिक शक्ति प्रदान करता है।
- ज्ञान समाज में आय उत्पादन के लिए ज्ञान को सामूहिक संसाधनों बौद्धिक रसद से बौद्धिक संपदा में बदल दिया जाता है।
- ज्ञान समाज में संघर्ष अल्पसंख्यक ज्ञानकर्मियों एवं बहुसंख्यक परम्परागत कर्मियों के बीच रहता है।
- ज्ञान समाज पहले के समाजों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रतिस्पर्धात्मक होगा, क्योंकि ज्ञान ही आजीविका एवं उपार्जन अवसरों हेतु मुख्य स्वर्दय कारक होगा।
- ज्ञान समाज में ज्ञान मूल रूप से विशिष्टता प्राप्त विशेषज्ञों द्वारा किए गए विशेषीकृत प्रयास में ही निहित होता है। मुख्य कार्यबल में उच्च विशेषज्ञा प्राप्त जन ही होंगे, न कि सामान्य जन। यहाँ विशिष्टीकृत ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले लोग ही गतिशीलता का सदा वर्धमान कार्यक्षेत्र रख सकेंगे।"इतिहास में पहली बार यह मांग उठी है कि ज्ञानवान लोग यह दायित्व लें कि इस प्रकार का ज्ञार आधार न रखने वाले लोगों को अपने बारे

में समझाना है। यह अपेक्षित है कि लोग अन्य क्षेत्रों एवं शास्त्रविधाओं से विशेषीकृत ज्ञान को अपने निजी कार्य में आत्मसात् कर लेना सीखें"(वही)।

> **सोचिए और करिए 24.2**
>
> ज्ञान समाज के कुछ अभिलक्षण प्रस्तुत मूल पाठ में दिए गए हैं। क्या आप कुछ और अभिलक्षण बता सकते हैं?

24.5 ज्ञान अर्थव्यवस्था तथा ज्ञान समाज के ज्ञानकर्मी

ज्ञान अर्थव्यवस्था में आर्थिक संपदा प्रमुख रूप से ज्ञान प्रयोग करके ही उत्पन्न की जाती है। वस्तुतः यह एक उभरता समाज है जिसका आर्थिक आधार व्यापकतः ज्ञान के उत्पादन, प्रसारण एवं संदोहण की प्रक्रियाओं द्वारा ही निरूपित होता है। नवशास्त्रीय अर्थशास्त्रियों ने विकास के मुख्य कारकों के रूप में श्रम और पूंजी पर ज़ोर दिया है। पॉल रोमर (1990) के अनुसार, ज्ञान ही उत्पादन का तीसरा कारक है और दीर्घावधिक विकास में वही पूंजी का मूल रूप है तथा वह आर्थिक विकास इसके संचय से ही अभिप्रेरित होता है। (www.med.govt.nz)।

यहां हम ज्ञान अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित अभिलक्षणों को समझ सकते हैं:

- ज्ञान अर्थव्यवस्था में ज्ञान एक लोकहित है क्योंकि यह व्यापक प्रयोग की वस्तु बन जाता है।
- चुंकि अपनी समृद्धि के लिए ज्ञान अर्थव्यवस्था ज्ञानोत्पादन पर निर्भर करती है, वहां अनुभव से प्राप्त ज्ञान उतना ही महत्वपूर्ण है जितने कि औपचारिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण।
- अपनी पूरी क्षमता के उपयोग एवं अपना अनुकूलतम लाभ उठाने के लिए ज्ञान अर्थव्यवस्था को एक विधा अर्थव्यवस्था बनना होगा। "विधा विश्व ज्ञान सुलभता मात्र हेतु नई प्रौद्योगिकियों को प्रयोग किए जाने के लिए नहीं है, अपितु उन्हें नवपरिवर्तन के विषय में दूसरों के साथ संवाद के आदान प्रदान हेतु प्रयोग किए जाने के लिए भी है। विधा अर्थव्यवस्था में बहुत से व्यक्ति, व्यापार समकाय एवं देश नव परिवर्तन को जानने व उसमें भागीदार होने हेतु अपनी क्षमता के अनुपात में धन कमाने में सक्षम होंगे (फ़ोरे एवं लूंद्वाल 1996; लूंद्वाल एवं जॉनसन 1994)। औपचारिक शिक्षा के लिए भी आवश्यक है कि वह जानकारी देने पर कम और कैसे सीखें की ओर लोगों को उन्मुख करने पर अधिक ध्यान दे (वही)। विधा या शिक्षाप्राप्ति इस प्रकार ज्ञान समाज में एक जीवनपर्यनत प्रक्रिया बन जाती है।"
- आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) के अनुसार, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां ही ज्ञान सर्जन में सहायक सिद्ध होती हैं। ज्ञान अर्थव्यवस्था में ये प्रौद्योगिकियां ही जन जन में अभिव्यक्त रचनात्मक प्रयोगक्षमता एवं ज्ञान को निर्मुक्त करने के साधन हैं। धन अर्जित करना सूचना संचार प्रौद्योगिकी उत्पादों एवं सेवाओं का प्रयोग कर मूल्य वर्धन करने की क्षमता के साथ उत्तरोत्तर गहरे जुड़ता जा रहा है। मण्डल (1997) एक अध्ययन रिपोर्ट में लिखते हैं कि माइक्रोसॉफ्ट में हर नौकरी ने वॉशिंगटन राज्य में 67 लाख नई नौकरियों को जन्म दिया, जबकि बोइंग स्थित नौकरियों ने 38 लाख नौकरियां पैदा कीं (वही)।

सूचना युग में व्यक्तियों को ज्ञान व कौशल आधारित समाज के केन्द्र में रखा जाता है। पहले से कहीं अधिक अब लोग अपने जीवन पर अधिकार प्राप्त करनाा चाहते हैं और अर्थव्यवस्था एवं समाज हेतु योगदान की अपेक्षा रखते हैं। समाज के सक्रिय नागरिकों के रूप में लोगों के विकास को ज्ञान, शिक्षा एवं प्रशिक्षण उद्देश्यों से जुड़े वक्तव्यों में उत्तरोत्तर प्रमुख स्थान दिया जा रहा है।

व्यक्ति जीवनपर्यनत शिक्षा प्राप्ति में सार्वजनिक एवं उधम निवेश के सहारे अपने निजी कौशलों को विकसित करने के लिए ज़िम्मेदार वास्तुकार एवं निर्माता बनता जा रहा है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां व्यक्ति को ज्ञानार्जन हेतु निष्क्रिय शिक्षक दृष्टिकोण के प्रति

सशक्त बना रहीं हैं ; व्यक्ति के इर्दगिर्द केन्द्रित जीवन एवं कार्य हेतु शिक्षा प्राप्ति की दिशा में एक बदलाव आया है। सूचना कैसे सुलभ करें कैसे उसका विशेषण एवं संदोहन करें और कैसे उसे नयी जानकारी में बदलें, आदि सीखने की आवश्यकता बढ़ती जा रही और विशेष रूप से इंटरनैट आधारित प्रौद्योगिकियां अधिक अवसर प्रस्तुत करती हैं। सशक्त जन अथवा ज्ञानवर्ती समाज के सभी क्षेत्रों का कार्यभार संभाल लेते हैं।

ज्ञान समाज के ज्ञानकर्मी कृषि एवं औद्योगिक समाज कर्मियों से सुस्पष्ट रूप से भिन्न है। उन्हें "संकेत विश्लेषकों" के रूप में परिभाषित किया जाता है जो मशीनों की बजाय संकेतों को चलाते हैं। इनमें वास्तुकार एवं बैंककर्मी, फैशन डिज़ाइनर एवं औषधवैज्ञानिक अध्यापक एवं नीति विश्लेषक आदि शामिल हैं। वे मुख्य रूप से सेवाक्षेत्र में सहबद्ध होते हैं, जैसे दूरसंचार, परिवहन एवं वित्तीय सेवाएं (www.med.gov.nz)। ज्ञानकर्मी क्रमबद्ध रूप से ज्ञान संचय करते हैं। इसे दूसरों में बांटते हं और उद्देश्यपूर्ण रूप से काम में लाते हैं। ज्ञान भण्डार में निरन्तर वृद्धि उनकी सफलता के लिए अतिमहत्वपूर्ण होगी। ज्ञान समाज में ज्ञानकर्मियों को बहुत अधिक महत्व दिया जाता है। उदाहरण के लिए, अनेक अमेरिकी विनिर्माण कंपनियों में अब अमूर्त परिस्थितियों का मूल्य मूर्त परिसंपतियों की बजाय अधिक है। ये अमूर्त या बौद्धिक परिसंपतियों मुख्य रूप से उनके तथाकथित ज्ञानकर्मियों के कौशलों एवं क्षमताओं पर निर्भर होती हैं।

ज्ञानकर्मियों के सुदयष्ट अभिलक्षण निम्नलिखित हैं।

- ज्ञानकर्मी वर्ग ही ज्ञान समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वर्ग है और अनिवार्यतः प्रभावी वर्ग भी। यह वर्ग इतिहास में उल्लिखित अन्य वर्गों से बुनियादी रूप से भिन्न है जोकि तत्कालीन मूल्यों अपेक्षाओं एवं सामाजिक स्थिति में सर्वाधिक प्रबल स्थान रखते थे।
- वे औपचारिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण के माध्यम से ही ज्ञान समाज में कार्य सुलभता एवं सामाजिक स्थिति प्राप्त करते हैं।
- किसी कार्य विशेष के लिए वांछित औपचारिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण के परिमाण एवं स्वरूप पर निर्भर करते हुए ज्ञान कर्म की मात्रा एवं गुणवत्ता यथेष्ट रूप से भिन्न भिन्न होगी।
- चूंकि औपचारिक शिक्षा ज्ञान समाज के विकास काल की मध्य अवस्था है औपचारिक विद्यालयी शिक्षा प्रमुख संस्था के रूप में सामने आती है। यहां ज्ञान के घटक (विविध जानकारी) ज्ञान की गुणवत्ता एवं शिक्षण न केवल ज्ञान समाज के मुख्य चिन्त्य विषय बन जाते हैं अपितु प्रमुख राजनीतिक मुद्दे भी बन जाते हैं। "वस्तुतः यह आशा करना महज कल्पना करना नहीं हो सकता कि विधिवत् ज्ञान का अर्जन एवं वितरण ज्ञान समाज की राजनीति में वह स्थान रखने लगेगा जो कि पूंजीवाद के युग में संपत्ति एवं आय का अर्जन एवं वितरण रखा करता था"(वही)।
- यह बात काफी अर्थ रखती है कि निवार्यतः विद्यालयी शिक्षा की परम्परागत प्रणाली नही बल्कि रोज़गार के स्थान पर दी जाने वाली योजनाबद्ध अनवरत शिक्षा को महत्व दिया जाने लगेगा। यहां एक शिक्षित व्यक्ति वह व्यक्ति होगा जो ज्ञान प्राप्ति का तरीका सीख चुका हो और अपने पूरे जीवन भर ज्ञान प्राप्ति कर्म जारी रखता हो, विशेषतः औपचारिक शिक्षा के समस्त विषय। इस प्रकार ज्ञानार्जन युग निर्दिष्ट नहीं अपितु जीवनपर्यनत प्रक्रिया है।
- ज्ञानकर्मी किसी संगठन में शर्तों पर और एक कर्मचारी की हैसियत से कार्य करते हैं। उन्हें विभिन्न प्रयोजनों के लिए, भिन्न भिन्न प्रकार की शर्तें जाननी होती हैं. उनकी कार्य-निष्पादन क्षमताएं, शक्तियां, सीमाएं एवं विभिन्न प्रकार की शर्तों के बीच समन्वय। इन्हें यह भी सीखना होता है कि एक कार्यदल को दूसरे कार्यदल में किस प्रकार बदलें और किसी व्यक्ति को कार्य दल में किस प्रकार संघटित करें।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

- संगठन आमतौर पर अपने विशेषीकृत ज्ञान को कार्य निष्पादन में बदलने के लिए ज्ञानकर्मियों को मंच प्रदान करते हैं। इस संगठन में ज्ञानकर्मी कभी तो कर्मचारी की भूमिका में होते हैं तो कभी कर्मचारियों को आदेश देने वाले अधिकारियों के रूप में।
- ज्ञानकर्मियों के पास उत्पादन के साधन भी होते हैं। पूंजीवादी समाज से भिन्न, ज्ञान समाज में सच्चा निवेश ज्ञान कर्मियों का ज्ञान ही है, ज्ञान के बिना संपूर्ण उत्पादन प्रक्रिया अनुत्पादक होती है। यह ज्ञान निवेश ही है जो यह तय करता है कि अमुक कर्मचारी उत्पादनशील है अथवा नहीं, न कि यंत्र उपकरण मशीने व पूंजी जिनसे कि संगठन बैस होता है (वही)।

सोचिए और कीजिए 24.3

ज्ञानकर्मियों से आप क्या समझते हैं? पर्यटन के क्षेत्र में कार्यरत लोग ज्ञानकर्मी होते हैं। क्या आप इस कथन से सहमत हैं? क्यों?

ज्ञान आधारित विकास के तीन स्तर

जैसाकि हमने पूर्ववर्ती चर्चाओं में देखा, सूचना युग में ज्ञान का अर्थ व्यापक हो गया है। अतीत में भी चतुर और रचनाशील लोग नव परिवर्तन उत्पादों एवं सेवाओं के अभिकल्पन के लिए सदा ही ज्ञान का उपयोग करते थे। परन्तु सूचना युग में ज्ञान एक या दो सर्जनशील व्यक्तियों में विहित होने के बजाय सिस्टम कंप्यूटर प्रणालियों एवं डेटाबेसों (कंप्यूर में निहित आधार सामग्री) में निहित होगा और सभी को उपलब्ध कराया जायेगा। यहां अधिक से अधिक प्रभावकारिता उत्पन्न करने के लिए ज्ञान को निश्चय ही क्रमबद्ध रूप से संचित किया जाना चाहिए, आपस में बांटा जाना चाहिए और उद्देश्यपूर्ण रूप से ही काम में लाना चाहिए।

इसका मतलब है कि ज्ञान आधारित समाज तीन प्रक्रियाओं पर केन्द्रित है : ज्ञान संचयन, संचित ज्ञान का प्रसारण एवं समाज की उत्पादनशीलता हेतु उन ज्ञान का अभियोजन। ज्ञानोत्पादन के संबंध में कौशलों, आधारित संरचना एवं अनुभव के लिहाज से ज्ञान संचय, प्रसार एवं प्रयोग की इस प्रक्रिया का विश्लेषण ही ज्ञान समाज एवं अर्थव्यवस्था के आयामों तक पहुंचने में सक्षम होगा। आवश्यकता इस बात की है कि साक्षरता एवं उच्च शिक्षा स्तरों का पर्यावलोकन किया जाये ताकि ज्ञान संचय हेतु कौशलों का विश्लेषण किया जा सके। दूर व अन्य संचार तंत्रों का विस्तार एवं विकास ज्ञान प्रसार हेतु वांछित आधारभूत ढांचे को बतलायेंगे और आर्थिक संरचना ज्ञान आधारित समाज में ज्ञान के प्रयोग स्तर को दर्शायेगी।

MAADHYAM IAS
"way to achieve your dream"

अब बताइए, अगले पाठांशों में इनमें से हर एक का अलग-अलग विश्लेषण करते हैं।

24.6 ज्ञान समाज में कर्मार्थ कौशल अर्जन एवं प्रशिक्षण

इस इकाई के पूर्व पाठांशों से हम पहले ही जान चुके हैं कि ज्ञान अर्थव्यवस्था का मुख्य अभिलक्षण इस विश्वास में निहित है कि धन संपदा (अथवा उत्पादनशीलात) उत्तरोत्तर विशेषज्ञता प्राप्त ज्ञानकर्मियों द्वारा नई जानकारी के विकसन एवं प्रयोजन पर निर्भर करती है। यह मान्यता तेज़ी से बढ़ती जा रही है कि ज्ञान समाज में कुशलताओं एवं क्षमताओं संबंधी लोगों की प्रतिभा तथा शिक्षा एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में निवेश ही आर्थिक एवं सामाजिक विकास की कुंजी हैं। आर्थिक विकास का निर्धारित करने वाला कारक भौतिक पूंजी, अथवा मानव क्षमताएं (मानव पूंजी) अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। अपितु आर्थिक विकास हेतु अनिवार्य है ज्ञान के स्वयं ज्ञानार्थ ही प्रयोग कर लेने हेतु राष्ट्र की क्षमता। अर्थव्यवस्थाएं उत्तरोत्तर सूचना ज्ञान एवं अनुकूलन की बुनियाद पर खड़ी होती जा रही है। यहां ज्ञान की मात्रा भी बढ़ती है और ज्ञान की उत्पादन भी गतिशील बनता है (स्कॉट 1997)।

अतः ज्ञान समाज के उद्गमन का एक महत्वपूर्ण पहलू एक कौशलों को अर्जित करने हेतु तत्परता हैं। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग मानवीय कौशलों एवं क्षमताओं के

संवर्धन का ही द्योतक है। कौशलों के विश्लेषण में यह ज़रूरी है कि ऐसे मापदण्ड विकसित किए जाएं कि जो ज्ञान के विकास हेतु सूचना के प्रयोग को विस्तार प्रदान करने के लिए तत्परता की अवस्था को इंगित करें। इस प्रकार की तत्परता का एक मुख्य सूचक साक्षरता स्तर है। साक्षरता की सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी – सूचना युग के एक अत्यावश्यक तत्व, के उत्पादनकारी प्रयोग हेतु आवश्यक कौशल स्तर तक पहुंचने का सर्वप्रथम सूचक है। यहां साक्षरता का अर्थ पढ़ना-लिखना अथवा गणना करना सीखने से कहां अधिक है। इसमें उन ज्ञान आधारित समाजों में प्रभावी ढंग से काम करने हेतु अपेक्षित सूचना को समझना एवं प्रयोक्षम होना शामिल है जो इक्कीसवीं सदी में प्रधान भूमिका निभाएंगे।

ज्ञान समाजों में भागीदारी हेतु निरक्षता एक बुनियादी रूकावट है। निरक्षर जनसंख्या का काफी बड़ा भाग उभरते ज्ञान समाजों से बहिष्कृत हो जायेगा। कौशल अर्जन क्रम परस्पराबद्ध होता है। यह क्रम-परम्परा मौलिक शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही शुरू हो जाती है। वे सभी कार्य प्रक्रियाएं जिनमें सूचना एवं सचार प्रौद्योगिकियां आर्थिक विकास हेतु योगदान दे सकता है, मौलिक शिक्षा अपेक्षित होता है।

ज्ञान समाजों में सरकारें और संगठन यह स्वीकार करते हैं कि ज्ञान वैयक्तिक कल्याण के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भी योगदान देता है। जब जीवनपर्यनत सीखते रहने के नए प्रतिमानों को बढ़ावा दिया जाता है तो यही स्वीकरण कार्य व्यापार में बदल जाता है। अपने मानव संसाधनों में निवेश कर उद्यम अपनी उत्पादकता बढ़ा सकते हैं और उत्तरोत्तर संघटित होते विश्व बाज़ारों में सफलतापूर्वक स्पर्धा कर सकते है। उदाहरण के लिए, डेनमार्क में अभिलक्षित प्रशिक्षण के साथ जुड़े प्रक्रम एवं उत्पाद नवीकरण को प्रवृत्त करने वाले उद्यम उत्पादन वृद्धि दर्ज़ कराने की अधिक संभावना रखते थे। सबसे अधिक आय वाले देश भी वे हैं जहां कर्मचारी सबसे अधिक शिक्षित हैं। उच्च आय देशों में दिए गए अध्ययन दर्शातें हैं कि प्राथमिक शिक्षा सार्वत्रिक है, माध्यमिक शिक्षा सार्वत्रिक प्राय है और तृतीयक शिक्षा उपयुक्त आयु वर्ग के 50 प्रतिशत तक पहुंचती है। तुलनात्मक रूप से गरीब देशों (अल्पतम विकसित) में प्राथमिक शिक्षा लगभग 71.5 प्रतिशत है, माध्यमिक शिक्षा लगभग 16.4 प्रतिशत है और तृतीयक शिक्षा में उपयुक्त आयु वर्ग के मात्र 3.2 प्रतिशत ही नाम दर्ज़ हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

तथापि उच्च शिक्षा को सदा औपचारिकतः उन्नत ज्ञान उत्पादन एवं संगठन अर्थव्यवस्था का उदय और वैश्वीकरण एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी का महत्त्व उच्च शिक्षा विषयक नई मांगें पेश करते हैं। विश्व अर्थव्यवस्था में स्पर्धा करने की इच्छा रखने वाले व्यापार संगठनों को ऐसी संगठनात्मक योग्यताएं/जानकारी रखनी पड़ेगी जो उन्हें एक अस्त व्यस्त बाज़ार परिवेश में अपने स्पर्धात्मक लाभ को बनाए रखने अथवा बढ़ाने में सक्षम बनायेंगी। इसका अर्थ है कि व्यापार संगठनों के लिए आवश्यक है कि एक सुनम्य एवं सर्वतोमुखी श्रमिक बल रखें और/अथवा उसे प्रशिक्षित करें। व्यापार संगठन इसी कारण उन पाठयक्रमों की निरन्तर मांग करते रहेंगे जिनमें उनके कर्मचारियों को नियंत्रण में रखा जाता हो। छात्रों की शिक्षा के लिए ज्ञान प्रेरित अर्थव्यवस्था के निहितार्थों में एक यह है कि विद्यार्थियों को एक ऐसे श्रम बाज़ार के लिए तैयार करना होगा जिसमें वे अपने कार्यकाल के दौरान अनेक बार नौकरियां बदल सके। इसका अर्थ है कि छात्रों को इसके लिए उपयुक्त कौशल अर्जित करने होंगे और इस बात को उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में व्यक्त करना होगा – अपनी विषय सूची प्रचार विस्तार एवं प्रदाय विधि में। इस प्रकार ज्ञान समान में उच्च शिक्षा स्वयं ही एक व्यापारार्थ उत्पाद बन गई है।

सूचना एंव संचार प्रौद्योगिकियों तक विकसित देशों की पहुंच विकासशील देशों के मुकाबले कहीं अधिक है। विकासशील देशों में इन प्रौद्योगिकियों का तीव्र प्रचुरोदभव व्यापक रूप से शिक्षा अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों में सतत निवेश की वजह से है। देश अनुसंधान एवं विकास में अपने सकल घरेलू उत्पाद का औसतन 2 प्रतिशत निवेश करते हैं (उदाहरणार्थ अमेरिका 2.8 प्रतिशत, यूनाइटेड किंग्डम एवं आस्ट्रेलिया 1.9 प्रतिशत प्रत्येक) जबकि भारत

जैसे देश इसी काम के लिए अपने सकल घरेलू उत्पाद का 0.1 प्रतिशत भी नहीं खर्चते (देखें तालिका 24.2)। इसी प्रकार, विकसित देश अपने सार्वजनिक व्यय का एक बड़ा भाग उच्च शिक्षा में ही निरन्तर खर्च करते रहे हैं। उन्नत देश निम्न विभागीय लिपिकों की बजाय शिक्षा एवं प्रशिक्षण में प्रति छात्र कम से कम 30 गुना अधिक खर्च करते हैं। तथापि, विकासशील देशों ने अब शिक्षा पर पहले से कहीं अधिक खर्च करना शुरू कर दिया है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि मानव संसाधन विकास एवं प्रशिक्षण अर्थव्यवस्था में उत्पादकता वृद्धि हेतु योगदान देता है, श्रम बाज़ार में कौशल बेमेलों की संख्या घटाता है और देश की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धात्मकता को प्रोत्साहित करता है।

वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय प्रगति की रफ़्तार बढ़ने का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम भी देखने में आया है – असंख्य तथ्यों एवं मूल आंकड़ों को याद रखने पर ज़ोर दिए जाने में कमी और कार्यप्रणालीगत ज्ञान एवं विश्लेषणात्मक कौशलों का बढता महत्व यथा सूचना को स्वतंत्र रूप से समझना एवं विश्लेषण करना सीखने हेतु आवश्यक कौशल। आज अध्ययन के प्रथम वर्ष में पढ़ाए गए अनेकों वैज्ञानिक शिक्षा विषय यथार्थ ज्ञान के तत्व आदि हो सकता है। आपके स्नातक होने तक पुराने पड़ चुके हों। शिक्षा प्राप्ति प्रक्रिया को अब उत्तरोत्तर आवश्यकता है कि ज्ञान को खोजने व सुलभ बनाने तथा उसे सदस्य समाधान में लगाने हेतु क्षमता पर आधारित किया जाए। ज्ञान प्राप्त करना, सीखना, सूचना को नई जानकारी में बदलना सीखना, और नई जानकारी को प्रयोजनों में बदलना, सीखना आदि विशिष्ट सूचना को याद रखने की बजाय अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। इस नए प्रतिमान में प्राथमिकता विश्लेषणात्मक कौशलों को दी जाती है; तथा सूचना को खोजने व पाने, मुद्दों को स्पष्ट एवं नियत आकार देने, परीक्षणीय प्राक्कथनों को सूत्रबद्ध करने, प्रमाण का विन्यास एवं मूल्यांकन करने और समस्याएं हल करने हेतु क्षमता। नई क्षमताएं जिनको नियोक्तावर्ग ज्ञान समाज में महत्व देता है। इनसे संबद्ध होती हैं – मौखिक एवं लिखित संचार व्यवस्था टीमवर्क (टोली या दल के रूप में कार्य) समकक्ष अध्यापन रचनात्मकता कौशल परिकल्पना संसाधन संपन्नता और परिवर्तन से समजन हेतु क्षमता।

MAADHYAM IAS

जीवन भर ज्ञान प्राप्ति : शिक्षा एवं प्रशिक्षण संबंधी आवश्यकताओं में परिवर्तन का दूसरा आयाम ज्ञान कौशल एवं व्यवसायों का अल्प "आलमारी जीवन" है और परिणामस्वरूप शिक्षा प्राप्ति जारी रखने तथा वैयक्तिक क्षमताओं एवं योग्यताओं के नियमित अघतनीकरण का बढ़ता महत्व भी (वॉग्नर 1999)। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (आई.सी.डी) के सदस्य देशों में एक जीवनपर्यनत शिक्षा प्रतिमान उत्तरोत्तर अध्ययन के पारम्परिक दृष्टिकोण का स्थान लेता जा रहा है, जो कि माध्यमिक विद्यालय पश्चात एक प्रथमश्रेणी की डिग्री हासिल करने अथवा व्यावसायिक जीवन में प्रवेश करने से पूर्व स्नातक शिक्षा पूरी कर लेने हेतु एक असतत और निश्चित समयावधि के लिए किया जाता था। स्नातकों से उत्तरोत्तर यह आशा होगी कि अपने संपूर्ण व्यवसायिक जीवन में आवश्यक ज्ञान एवं कौशलों को अर्जित करने, उनका प्रयोग सीखने और पुनः सीखने हेतु आवधिक रूप से तृतीयक शिक्षा संस्थानों की ओर लौटें। यह दृश्यघटना उन विद्यालयों से दूर युवाओं के लिए एक "द्वितीय अवसर" संबंधी संकीर्ण विचार से परे जाती है जिन्हें पर्याप्त औपचारिक अध्ययन पूरा करने का अवसर न मिला हो। इस बात का ज्यादा संबंध ज्ञान के अयतनीकरण एवं उन्नयन से कहीं अधिक है जो कि वैयक्तिक योग्याताओं को पुनरुत्साहित एवं प्रोत्साहित करने तथा उत्पादों एवं सेवाओं में नवपरिवर्तनों के साथ-साथ चलने के लिए अपेक्षित होगा। आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन के शिक्षामंत्रियों द्वारा 1996 में अंगीकृत "सभी के लिए जीवन भर ज्ञान प्राप्ति"की अवधारणा समर्थनकारी ज्ञान आधारित विकास के रूप में शिक्षा एवं प्रशिक्षण नीतियों की एक नई अभिद्रगी से जन्मी है। जीवनपर्यनत शिक्षा प्राप्ति अपेक्षाएं प्रारंभिक एवं आगे की पढ़ाई के बीच एक प्रभावी धुंधलेपन की ओर प्रवृत्त कर सकती है।

सोचिए और कीजिए 24.4

ज्ञान समाजों में जीवनपर्यनत शिक्षा प्राप्ति का क्या महत्व है?

तालिका 24.2: कुछ चुनिंदा देशों में साक्षरता, सकल घरेलू उत्पाद एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकियों हेतु सुलभता

देश	प्रौढ़ साक्षरता %	सकलघरेलू उत्पाद प्रति मूलधन यू.एस. $	शहरी जनसंख्या	टेलिफोन प्रति 1000		सैलूलर प्रति 1000		इंटरनैट प्रति 1000		शिक्षा सार्वजनिक व्यय		सभी स्तरों के कुल योग का उच्च शिक्षा में सार्वजनिक व्यय	स्कल घरेलू उत्पाद के % रूप में अनुसंधान एवं विकास व्यय
				1990	2002	1990	2002	1990	2002	सकल घरेलू उत्पाद% में	सरकारी व्यय% में		
ऑस्ट्रेलिया	100	28260	91.6	456	.539	11	640	5.9	481.7	13.8	4.6	22.9	1.5
कनाडा	100	29480	80.1	656	635	22	377	3.7	512.8	14.2 (1990)	5.2	35.7	1.9
नीदरलैण्ड	100	29100	65.4	464	618	5	745	3.3	506.3	10.4	5.0	26.5	1.9
अमेरिका	100	35750	79.8	547	646	21	488	8.0	551.4	15.4	5.6	26.3	2.8
यू. के.	100	26150	89.0	441	591	19	841	0.9	423.1	एन.ए.	4.6	17.2	1.9
चीन	91.0	4580	37.7	6	167	0	161	0	46.0	12.8 (1990)	2.3	एन.ए.	1.1
श्रीलंका	92.1	3580	21.1	7	47	0	49	0	10.6	8.1 (1990)	1.3	13.4 (1990)	0.2
भारत	61.3	2670	28.1	6	40	0	12	0	15.9	12.7	4.1	20.3	एन.ए.
भूटान	47.0	1969	8.2	4	28	0	0	0	14.5	12.9	5.3	एन.ए.	एन.ए.
बंगलादेश	41.1	1700	23.9	2	5	0	8	0	1.5	15.8	2.3	11.1	एन.ए.
नेपाल	44.1	1370	14.6	3	14	0	1	0	3.5	13.9	3.4	12.1	एन.ए.
पाकिस्तान	41.5	1970	33.7	8	25	0	8	0.33	10.3	7.8	1.8	एन.ए.	एन.ए.

स्रोत: यू एन डी पी 2005

MAADHYAM IAS

24.7 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की अधिसंरचना एवं ज्ञान प्रसार

ज्ञान समाजों में ज्ञान का सर्जन ही महत्वपूर्ण नहीं, उसका प्रसार एवं आसपास की दुनिया से परस्पर आदान प्रदान भी समान रूप से ही महत्वपूर्ण है। सूचना युग में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां ही ज्ञान प्रसार हेतु मुख्य माध्यम हैं। इस युग में सूचना प्रौद्योगिकीय क्रांति विश्व सामाजिक आर्थिक समीरकणों को पुनर्संचरति कर रही है – आय विभाजन से ज्ञान विभाजन की ओर जाती हुई। एक नए युग के उषाकाल में खड़े हैं जो कि अपने साथ आंकड़ों के प्रवाह को बढ़ाती और समय व राष्ट्रीय सीमाओं को घटाती व्यापक अन्तर्संबद्धता के संसार का अग्रगामी है। विश्व व्यापी जाल (www) हेतु सुगमता दुनिया को एक विश्व ग्राम में बदल रही है। अनुमान यह है कि अब तक लगभग एक अरब लोग "ऑनलाइन" हो चुके हैं। सूचना के संसाधन एवं प्रसारण की घटी लागत तथा सूचना, कम्प्यूटर एवं सचांर प्रौद्योगिकियों का बढ़ता संरक्षण ज्ञान समाज का आधार बन चुके हैं।

ज्ञान का आदान प्रदान गए सुबोध ढंग से सही समय पर लोगों को सही सूचना उपलब्ध कराने की पारस्परिक क्रिया है ताकि उन्हें संपूर्ण कार्यप्रणाली में ज्ञान आधार को समृद्ध करते हुए विवेकपूर्ण रूप से काम करने में सक्षम किया जा सके। यह आदान प्रदान सभी स्तरों पर हो सकता है – देशों के बीच, किसी देश के अन्दर अन्दर समुदायों के बीच और लोगों के बीच। यह स्थानीय से वैश्विक, गरीब से अमीर और इसके विपरीत भी हो सकता है। ज्ञान का प्रसार एवं आदान प्रदान हमारे दैनिक जीवन में अपरिहार्य हो जाता है, जैसे उत्तम प्रशासन, लोगों के विकास में उनकी भागीदार, आदि के लिए। नीति निर्माताओं सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों तथा जनसमितियों के बीच वैश्विक एवं स्थानीय जानकारी का बेरोकटोक और निरन्तर आदान प्रदान एक सशक्त ज्ञान समाज का मार्ग प्रशस्त करता है, जो कि विकास परिवर्तन प्रक्रिया पर कुशलतापूर्वक नियन्त्रण कर सकता है।

MAADHYAM IAS

द्वितीय विश्व युद्ध से ही सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आई सी टी) नाम दूरसंचार एवं कंप्यूटर प्रौद्योगिकी के संरक्षण के कारण तीव्र प्रौद्यागिकीय उन्नति आरभ हो गई। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां ही ज्ञान समाज की संचालक रही हैं। वे सूचना पहुंचाने व उस तक पहुंचने के नए तीव्रतर तरीके, सही समय संचार हेतु नवपरिवर्तनकारी तरीके और व्यापार करने व आजीविका अवसर जुटाने के नए तरीके मुहैया करा रही है। युगों से ज्ञान लिखित मूल पाठ, लोक साहित्य, धार्मिक उक्तियों एवं रीति-रिवाजों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाया जाता रहा है। ज्ञान, बाहरहाल, भौगोलिक एवं क्रम परम्परागत रूप से परिरक्षित ही रहा। दूसरी ओर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने ज्ञान के आदान प्रदान हेतु सभी प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं क्रम परम्परागत बंधनों को तोड़ दिया है। इसमें लोगों की सहायतार्थ ऐसी प्रयोगक्षमता है कि वे अनेक तरीकों से ज्ञान का प्रयोग कर कुछ परम्परागत बंधनों को तोड़कर आगे जा सकते हैं, जैसे सूचना सुलभता को सुधारकर, अपने बाज़ार आधार को विस्तृत कर रोज़गार अवसर बढ़ा कर सरकारी सेवाओं का बेहतर लाभ उठाकर आदि।

समकालीन विश्व परिप्रेक्ष्य में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का प्रयोग तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। इस प्रौद्योगिकियों में आंकड़ों व सूचना के सर्जन, प्रसारण, भंडारण एवं नियंत्रण हेतु प्रौद्योगिकीय साधनों एवं संसाधनों की एक विविध श्रृंखला है। परम्परागत सूचना संचार प्रौद्योगिकी साधनों जैसे टेलीविज़न, रेडियों व टेलीफोन ने विकास प्रोत्साहन में अपनी प्रभावशीलता का प्रमाण दिया है। मूल पाठ श्रव्य एवं दृश्य सामग्री को विधुत्वाणिक माध्यमों में संसाधित एवं सभाकलित करने के लिए सशक्त सॉफ्टवेयर के साथ कंप्यूटर इंटरनेट एवं बेतार संचार प्रौद्योगिकी, आदि आधुनिक सुचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का ही हिस्सा है। गत

दो दशकों से कंप्यूटरों के विश्वव्यापी इलैक्ट्रानिक्स नेटवर्क, जिसे आमतौर पर इंटरनेट कहा जाता है के विस्तार और बेतार दूरभाषा विधा ने सूचना, उत्पादों, जनसमूह, पूंजी एवं विचार के एक अभूतपूर्व विश्व प्रवाह को जन्म दिया है। इंटरनैट आधारित इलैक्ट्रानिक्स, डाक ईमेल, समाचार समूह, परिचर्चा समूह एवं परस्पर सक्रिय वैबसाइट, आदि में विशिष्ट सूचना प्राप्ति हेतु इंटरनैट से जुड़े हर व्यक्ति तक पहुंचने हेतु अनन्त प्रयोगक्षमता होती है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का सबसे बड़ा लाभ है – प्रौद्योगिकी एवं आंकड़ा संप्रेषण की सुगमता एवं कम लागत। तकनीकी रूप से हर व्यक्ति एक आंकड़ा अवस्थान तक पहुंचने की कोई न कोई निजी अथवा सार्वजनिक व्यवस्था रखता है, जो उसे दुनिया के हर एक व्यक्ति से जोड़ देती है। ज्ञान समाजों में ज्ञान प्रसारण एवं ज्ञान आदान प्रदान, सूचना एवं प्रौद्योगिकी अधिरचना पर निर्भर करते हैं, जिनमें मुख्य रूप से शामिल हैं – दूर संचार माध्यम, कंप्यूटर माध्यम संचार यथा इंटरनैट तथा जन संचार माध्यम।

दूर संचार नेटवर्क

दूर संचार नेटवर्क ज्ञान समाज का एक मुख्य परिसहायक है। दूर संचार प्रणाली मानव निर्मित अब तक की सर्वाधिक जटिल प्रणालियों में एक है। इसकी मानव जीवन के हर पहलू में पैठ है। 19वीं शताब्दी में तार प्रेषण एवं दूरभाष के आविष्कार ने विश्व में संदेश प्रेषण विधियों को हमेशा के लिए बदल कर रख दिया।

दूरभाष विधा ने उपयुक्त तार एवं सिवच उपकरणों द्वारा जुड़े पूरे ग्रह के किन्हीं भी दो स्थानों के बीच कार्यतः तत्कालिक द्विमार्गी संचार को संभव बना दिया। आरम्भ में अधिकतर दूरभाष नेटवर्क सरकारी एकाधिकारों के रूप में विकसित किए गए थे, अमेरिका हांलाकि एक अपवाद था। सर्वमान्य नैटवर्क मानकों के माध्यम से अन्तर्संपक सुनिश्चित करने के लिए व्यापक अंतर्राष्ट्रीय संगठनात्मक व्यवस्थाएं लागू की गई थी। अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार संघ (आई टी यू) एंव संबद्ध संधि प्रबंध अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण के प्रभाव रूपों को विकसित करने के कुछ शुरुआती कदमों को ही प्रस्तुत करते हैं (वीज़मैप 1998)। अस्सी के दशक से सभी देशों की सरकारें अपने दूर संचार उद्योगों को व्यवसायीकृत करने, निजीकृत करने एवं वित अस्थायी बनाने के बढ़ते दबाव में आ गई और नब्बे के अंत तक कार्यतः सभी राष्ट्रीय दूरभाष नैटवर्क कम से कम अंशतः निजीकृत किए जा चुके हैं और राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा के लिए खोल जा चुके हैं। इससे अंतर्राष्ट्रीय संचार सेवाओं के दाम में अत्यधिक गिरावट आयी है और उसके द्वारा तीव्रतर एवं अपेक्षाकृत सस्ते ज्ञान प्रसार को प्रोत्साहन मिला है।

दूर संचार अब भी सूचना संसाधन का एक रूप है; प्रसारण एवं संपर्क प्रौद्योगिकियों उत्तरोत्तर कंप्यूटर संचालित नैटवर्कों में विविधीकृत एवं एकीकृत होती जा रही हैं।

दूर संचार प्रौद्योगिकी में नवीनतम उन्नति – सैल्युलर या मोबाइल फ़ोन – विभिन्न संचार प्रौद्योगिकियों के संसरण को दर्शाती है। यद्यपि सैल फ़ोल अथवा कम से कम उनके पीछे जो प्रौद्योगिकी थी, साठ के दशक के आस पास ही आ गए थे, सैलफ़ोन यंत्रों में भारी प्रौद्योगिकीय सुधार गत डेढ़ दशक से ही होने शुरू हुए। चित्र, पाठय संदेश और निसंदेह श्रव्य संदेश को भेजना; हर माह लगता है , एक नया सैलफ़ोन आ जाता है जो कि बढ़ती आंकड़ों की मात्रा : आवाज़, तस्वीरें, समाचार व और अधिक को एकत्र करने व भेजने की अपनी क्षमता में पहले वाले से "अधिक तेज़" होता है। हाल में छायाचित्रण, प्रसारण, श्रव्य प्रणाली व इंटरनैट संबंधी सभी प्रौद्योगिकियों सैल्यूलर फ़ोन नामक एक छोटे से यंत्र में सिमटकर आ गई है।

कंप्यूटर माध्यम संचार नेटवर्क – इंटरनैट

इंटरनैट नैटवर्क अमेरिका में साठ के दशक से शुरू हुआ (देखें बॉक्स 24.3) और शीघ्र ही जनसामान्य तक पहुंच गया। नब्बे के दशक में इंटरनैट नेटवर्क कंप्यूटर मध्यस्थ संचार की रीढ़ बन गया क्योंकि यह धीरे-धीरे अधिकांश नैटवर्कों से जुड़ गया। नब्बे के दशक मध्य में यह 44000 कंप्यूटर नैटवर्कों और अनुतानतः 2.5 करोड़ प्रयोगकर्त्ताओं के साथ दुनियाभर में लगभग 3.2 लाख परपोषी कंप्यूटरों से जुड़ गया और तेज़ी से फैलता ही जा रहा है (कास्तल 1998)। वर्ष 2005 में इंटरनैट नेटवर्क 60 लाख कंप्यूटर नैटवर्कों की संख्या पार कर चुका था (देखें तालिका 24.3)।

बॉक्स 24.3: इंटरनैट का आरंभ

इंटरनैट का जन्म आण्विक युद्ध की स्थिति में अमेरिकी संचार के किसी सोवियत अधिग्रहण अथवा विध्वंस से बचने के लिए अमेरिकी रक्षा विभाग उन्नत अनुसंधान परियोजना अभिकरण (डी ए आर पी ए) के प्रौद्योगिकीय योद्धाओं द्वारा साठ के दशक में अभिकल्पित एक साहसपूर्ण योजना के तहत हुआ। कुछ हद तक यह भूभाग की बहुभिज्ञता एवं जानकारी के साथ किसी भी शत्रु बल का सामना करने हेतु एक सुविस्तृत राज्य क्षेत्र के इर्दगिर्द छापामार बलों के विर्सजन वाली माओवादी व्यूह रचना का इलैक्ट्रानिक्स समविस्तार ही था। इसका परिणाम एक नैटवर्क वास्तुकला के रूप में सामने आया जो कि जैसा कि इसके आविष्कर्त्ता चाहते थे, किसी भी केन्द्र से अवरूद्ध नहीं किया जा सकता है, और हज़ारों स्वतंत्र कंप्यूटर नैटवर्कों से मिलकर बना है जिसमें ईदगिर्द चल रहे इलैक्ट्रानिक्स अवरोधों से ज़ड़े के असंख्य तरीके हैं। अन्तोगत्वा 'आरपानैट' – अमेरिकी रक्षा विभाग द्वारा स्थापित नेटवर्क भूमंडलीय क्षैतिज संचार नैटवर्कों का आधार बन गया।

स्रोतः कास्तल 1998

MAADHYAM IAS

सूक्ष्म संसाधित प्रौद्योगिकी का तीव्र उद्भव अपनी खोज के साथ-साथ तन्तु प्रकाशिकीय नैटवर्क प्रौद्योगिकियों में द्रुत विकासकार्यों के होते ही दुनिया भर में लोगों की परिकलन शक्ति संप्रेषण शक्ति के विकास में परिणत हुआ। प्रौद्योगिकी में इस उन्नति ने अंकी स्वरूप में प्रयुक्त होने वाली नई प्रकार की सेवाओं के विकास में योगदान दिया। प्रौद्योगिकीय विकासकार्यों ने सूचना एवं संचार की लागतों को भी घटा दिया है। इलैक्ट्रानिक्स डाक (ईमेल) जैसी सेवाएं निःशुल्क हो गई हैं। इन्टरनैट दूरभाष विधा परम्परागत दूरभाष की अपेक्षा कहीं अधिक सस्ता दूरवर्ती संचार मुहैया कराती है। विश्व में कहीं भी अंकीय सूचना भेजने की लागत अचानक ही कम हो गई है। अस्सी के दशकारंभ तक संचार आमतौर पर सदृश संकेतन तक ही सीमित था, जिसका अर्थ है प्रत्येक दूरसंचार नैटवर्क भिन्न भिन्न प्रकार की सूचनाएं अलग-अलग पहुँचाने के हिसाब से बनाया गया था। श्रव्य लेन देन दूरभाष प्रणाली से होता था, पाठ्य सामग्री के लिए एक पृथक टेलैक्स नैटवर्क प्रयोग दिया जाता था और उच्च आवृति प्रसारण नैटवर्क दृश्य श्रव्य संकेतों को भेजे जाने के लिए ही समर्पित था। अंकीय संचार के साथ ही ये पृथक नैटवर्क कम फ़र्क दर्शाने लगे। इंटरनैट अब तस्वीरों, रेखाचित्रों, चलचित्रों, आवाज़ और लिखित सामग्री आदि एक साथ ले जाता है। दूरभाष व दूरदर्शन, रेडियो व कैमरा, फैक्स व शब्द संसाधित, डेटाबेस व स्प्रैडशीट संबंधी सभी प्रौद्योगिकियां एक ही प्रणाली – इंटरनैट से अभिन्न रूप से जुड़ गई हें। जिससे इंटरनैट द्विमार्गी अन्तक्रियाओं को प्रोत्साहन देने की अपनी क्षमता में अद्वितीय बन गया है। नब्बे के दशकारम्भ से विश्वव्यापी जाल (www) अंकीय सूचना के सर्जन एवं प्रसारण हेतु मुख्य धारा परिवेश बन गया हैं

पहले इंटरनैट सुलभता स्व्यंकृत कंप्यूटरों से अन्नय प्राय थी। यह बात गत कुछ वर्षों से बदल रही है। जैसा कि पहले भी कहा गया, अब इंटरनैट मोबाइल फोन यंत्रों (आंकड़ा बेतार

टेलिफोन) के माध्यम से उपलब्ध है। इन तरक्की ने निश्चय ही किसी मूल सूचना संचार, प्रौद्योगिकी आपरचना के बगैर दूरवर्ती क्षेत्रों तक इंटरनैट व उससे जुड़ी सेवाओं की सुगमता को उसके प्रयोगकत्ताओं हेतु संभव किया है।

तालिका 24.3: वर्ष 2005 में विश्व इंटरनैट प्रयोग एवं जनसंख्या आंकड़े

विश्व भू माग	जनसंख्या (2005 अनु)	विश्व की जन-संख्या%	इंटरनैट प्रयोग, नवीनतम आंकड़े	प्रयोग वृद्धि 2000-2005	प्रतिशत जनसंख्या (प्रवेश)	विश्व प्रयोगकर्त्ता %
अफ्रीका	896,721,874	14.0 %	**23,867,500**	428.7 %	2.7 %	2.5 %
एशिया	3,622,994,130	56.4 %	**327,066,713**	186.1 %	9.0 %	34.2 %
यूरोप	731,018,523	11.4 %	**273,262,955**	165.1 %	37.4 %	28.5 %
मध्य पूर्व	260,814,179	4.1 %	**21,422,500**	305.4 %	8.2 %	2.2 %
उत्तर अमेरिका	328,387,059	5.1 %	**223,779,183**	107.0 %	68.1 %	23.4 %
लैटिन अमेरिका कैरिबियन	546,723,509	8.5 %	**70,699,084**	291.31 %	12.9 %	7.4%
ओशिनिया / ऑस्ट्रेलिया	33,443,448	0.5 %	**17,655,737**	131.7 %	52.8 %	1.8 %
विश्व कुल योग	**6,420,102,722**	**100.0 %**	**957,753,672**	**165.3 %**	**14.9 %**	100%

स्रोत : http://www.internetworldstats.com/stats.htm

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बॉक्स 24.4 : भारत में पी सी व नैट प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या में वृद्धि

वित्तीय, सूचना प्रौद्योगिकी एवं दूर संचार क्षेत्रों से भारी मांग को देखते हुए स्वयंकृत कंप्यूटरों (पी सी) की बिक्री 2004-05 में 20 प्रतिशत वृद्धि होकर संख्या 36.3 लाख इकाइयां पहुंच गई। वर्तमान वित्त वर्ष के दौरान यह संख्या 17 प्रतिशत बढ़कर 42.5 लाख पीसी पहुंच जाने की उम्मीद है। इन्टरनैट ग्राहकों की संख्या भी 2004-05 में 23 प्रतिशत बढ़कर गत वर्ष 2903 लाख हो गई।

स्वयंकृत कंप्यूटरों की बिक्री में वृद्धि का श्रेय घरेलू क्षेत्र को दिया जा सकता है, जिसने दूर संचार द्वारा 48 प्रतिशत की महत्वपूर्ण उपभोग वृद्धि दर्ज़ कराई और बैंकिंग, विनिर्माण के साथ-साथ बी पी ओ और आई टी सेवा क्षेत्रों ने भी पी सी की बिक्री वृद्धि में योगदान दिया। अपेक्षाकृत छोटे शहरों व नगरों में आई टी उपभोग को उद्दीप्त किया जहां सी वर्ग शहरों में कुल पी सी बिक्री 50 प्रतिशत से भी अधिक हुई। सूचना प्रौद्योगिकी विनिर्माता संघ (मेट . उंपज) ने ये तथ्य 22 भारतीय शहरों में कराए गए एक अध्ययन के आधार पर रखे। इस सर्वेक्षण ने दर्शाया कि 2004-05 में छोटे क्षेत्रीय मार्कों व निजी मार्कों वाली कंप्यूटर प्रणालियों की बिक्री गिरकर 41 प्रतिशत रह गई जो कि पिछले वर्ष 53 प्रतिशत थी। भारतीय मार्कों की बिक्री कुल बिक्री की 24 प्रतिशत रही जो कि 2003-04 में 21 प्रतिशत थी और बहुराष्ट्रीय कंपनी मार्कों की बिक्री एक पूर्व 26 प्रतिशत से बढ़कर 2004-05 में 35 प्रतिशत हो गई।

पीसी उद्योग ने एक व्यापक आधार के कारण गत चार वर्षों में गिरती वृद्धि दरें दर्ज़ की हैं। हमारी संस्था इस समय 17 प्रतिशत की एक बहुत ही परिमित अनुमानित वृद्धि बता रही है, और आगामी चार वर्षों में यह वृद्धि दर लगभग 25 प्रतिशत हो सकती है। विनी मेहता, कार्यकारी निदेशक, मेट का कहना है ब्रॉडबैंड का बढ़ता प्रयोग और छोटे नगरों में अधिक पैठ वृद्धि दर को 25 प्रतिशत तक ले जा सकती है।

स्रोत : हिन्दुस्तान टाइम्स, जुलाई 6, 2005

जन संचार माध्यम

बेतार प्रसारण 20वीं में मौखिक संचार माध्यमों के विकास हेतु प्रमुख योगकारकों में एक है। यह सूचना युग में ज्ञान प्रसार हेतु एक महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है। दूरसंचार जहां संदेश (सूचना) एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को संप्रेषित किया जाता है से भिन्न यहाँ ज्ञान (जानकारी) एक व्यक्ति से अनेक लोगों को संप्रेषित किया जाता है। जनसंचार माध्यम संप्रेषण या संचरण के ही साधन हैं यथा – समाचार पत्र, पत्रिकाएं, टेलीविज़न, रेडियो, चलचित्र, वीडियो, सीडी, व अन्य रूप – जो जनसामान्य पाठक/श्रोता/दर्शकवर्ग तक पहुंचते हैं। इनमें से दृश्य संचार माध्यम इस सूचना युग में विशेष रूप से प्रमुख संचार साधन बन चुके हैं। टेलीविज़न के नेतृत्व में गत तीन दशकों में एक संचार विस्फोट देखने में आया है। मार्शल मैक्लूहन का कहना है कि संचार माध्यम 'क्या संप्रेषित करते हैं' की बजाय 'वे कैसे संप्रेषित करते हैं' के लिहाज से समाज को अधिक प्रभावित करते हैं।

सोचिए और कीजिए 24.5

क्या आप मानते हैं कि भारत एक ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है? क्यों?

24.8 ज्ञान अर्थव्यवस्था में कार्य भागीदारी के आयाम

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि उद्योगोत्तर सूचना समाज में ज्ञान एवं सूचना ही उत्पादकता एवं विकास के प्रमुख स्रोत हैं। एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग (अपैक) की आर्थिक समिति ने यह विचार प्रस्तुत करने के लिए कहा कि एक ज्ञान आधारित समाज में " ज्ञान का उत्पादन, वितरण एवं प्रयोजन ही सभी उद्योगों में विकास, धन-सर्जन एवं रोज़गार का मुख्य प्रेरक तत्व है" (अपैक 2000)। गत कुछ दशकों में यह विश्वास बढता रहा है कि ज्ञान उत्तरोत्तर आर्थिक वृद्धि की अपेक्षा कुछ बेहतर कर सकता है; यह किसी अर्थव्यवस्था और फिर उससे समाज में संरचनात्मक परिवर्तन की ओर भी प्रवृत्त कर सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन उन लाभकारी परिवर्तनों से भिन्न होता है जिनके अधीन सभी अर्थव्यवस्थाएं निरन्तर रहती हैं। नीफ (1998) बताते हैं कि प्रौद्योगिकी से जन्में नए उत्पाद व सेवाएं उस तरीके में गूढ़ परिवर्तन ला सकते हैं जिसमें हम रहते और काम करते हैं। उनका तर्क है कि इस आर्थिक अवस्थान्तर गमन का अभिलक्षण है – निम्न कौशल से उच्च कौशल में कार्य प्रकृति का बदलाव। यह साठ के दशक से सेवा क्षेत्र में तीव्र वृद्धि में और उच्च कौशल प्राप्त कर्मचारियों की ओर माल उत्पादन क्षेत्र में हुए अभी हाल के परिवर्तनों में प्रकट होता है।

यहां यह बात ध्यात्व है कि उद्योगोन्तरवाद के शास्त्रीय सिद्धांत में तीन कथन परस्पर संबद्ध हैं जो परिवर्तनकारी रोज़गार में प्रवृत्ति को दर्शाते हैं (बैल 1976) :

क) उत्पादकता एवं विकास का स्रोत ज्ञानोत्पादन में निहित है जो सूचना संसाधन के माध्यम से आर्थिक कार्यकलाप से सभी कार्यक्षेत्रों में विस्तीर्ण है।

ख) आर्थिक कार्यकलाप माल उत्पादन से सेवा प्रदान की ओर चला जाता है। कृषि रोज़गार सभारत हो जाने के बाद सेवा कार्यों के लाभार्थ विनिर्माण कार्यों का अनिवर्त्य ह्रास होता है जो कि अन्ततोगत्वा रोज़गार का काफ़ी बड़ा भाग होगा। जितनी अधिक उन्नत कोई अर्थव्यवस्था होती, उतना ही अधिक उसका रोज़गार और उसका उत्पादन सेवाओं पर केन्द्रित होगा।

ग) नई अर्थव्यवस्था अपने कार्यकलाप मे उच्च सूचना एवं ज्ञान विषय वस्तु वाले व्यवसायों को अधिक महत्व दिया करेगा। प्रबंधकीय, व्यावसायिक एवं तकनीकी व्यवसाय किसी भी अन्य व्यावसायिक वस्तुस्थिति की अपेक्षा तेज़ी से तरक्की करेंगे और उनमें नई सामाजिक संरचना का सारभाग होगा।

MAADHYAM IAS

टॉफ्लर के अनुसार, "द्वितीय लहर" ने एक बिल्कुल नयी अवधारणा को जन्म दिया – "व्यापकीकरण" जिसमें हम पाते हैं – व्यापक (बड़े पैमाने पर) उत्पादन, व्यापक बाज़ार , व्यापक उपभोग, व्यापक धर्म, व्यापक राजनीतिक दल, व्यापक विनाश के हथियार आदि। उनका तर्क है कि तृतीय लहर एक विपरीत प्रवृत्ति दर्शाएगी जहां अल्पसंख्यक हित सामने आयेंगे। अर्थव्यवस्था ज्ञान कार्य एवं ज्ञान कर्मी की उत्पादकता पर निर्भर होगी। जबकि द्वितीय लहर में संगठन भूमि, श्रमिक व धन की उपलब्धता को देखते हुए बनाए जाते थे, तृतीय लहर कंपनी पूरी तरह से ज्ञान के विकास एवं प्रौद्योगिकी के कल्पनाप्रसूत प्रयोग पर आधारित होंगी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सूचनायुग में आर्थिक प्रधार में एक परिवर्तन आयेगा जिसमें ज्ञान आधारित आर्थिक क्षेत्र यथा सेवा क्षेत्र में अधिक अवसरों की ओर झुकाव होगा। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था हेतु उच्च मूल्य योजित विनिर्माण एवं सेवाओं के योगदान को किसी ज्ञान अर्थव्यवस्था के मुख्य संकेतकों में एक के रूप में लिया जाता है। ऐसा इसलिए है कि वे ज्ञान साधित अधिक और श्रम साधित कम होती हैं।

हम पहले ही देख चुके हैं कि सूचना, कंप्यूटर एवं दूर संचार प्रौद्योगिकियों में क्रांतिकारी घटनाक्रम और उसकी कम लागत एवं उच्च सुलभता ने विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं, दोनों के रोज़गार प्राधार में एक सुस्पष्ट परिवर्तन ला दिया। ज्ञान समाजों में ज्ञान आधारित सेवा उद्योग सकल घरेलू उत्पाद के एक महत्वपूर्ण हिस्से का निर्माण करते हैं और व्यापार स्पर्धेयता आर्थिक एवं रोज़गार वृद्धि आदि को बढ़ावा देने हेतु ज्ञान प्रौद्योगिकियों पर भरोसा बढ़ा है। और यही बात सिद्ध होती है जब हम विभिन्न देशों के आर्थिक प्राधार का विश्लेषण करते हैं। आंकड़े दर्शाते हैं कि कृषि कर्मी जो 20वीं शतिआरंभ तक कार्यबल का अधिकांश भाग थे, और उद्योग कर्मी जिनकी संख्या विकसित देशों में उक्त शताब्दी के उत्तरार्ध में बड़ी तेज़ी से बढ़ी अब कार्यबल का अल्पांश ही रह गए हैं। अब विभिन्न क्रमों से विश्व भर में कर्मचारियों के उक्त वर्गों का स्थान तेज़ी से सेवाक्षेत्र के कर्मी लेते जा रहे हैं (देखें तालिका 24.1)। उदाहरण के लिए वर्ष 2001 में ऑस्ट्रेलिया के कुल कार्यबल में 50 प्रतिशत कृषि श्रमिक, 21 प्रतिशत उद्योग श्रमिक और 74 प्रतिशत सेवाकर्मी थे और भारत के कुल कार्यबल में इसका कम 52.43 प्रतिशत, 10.87 प्रतिशत और 36.7 प्रतिशत था। इन देशों के कुल सकल घरेलू उत्पाद हेतु सेवाक्षेत्र का अंश बढ़ता जा रहा है और कृषि एवं उद्योग का अंश तदनुरूप घटता जा रहा है।

MAADHYAM IAS

मानुअल कास्टल (1998) ने सेवा अर्थव्यवस्था को मूलतः विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। इसमें शामिल हैं – उत्पादक सेवाएं (बैंकिग, बीमा, स्थावर संपदा, अभियांत्रिकी, लेखाकर्म, विविध व्यापार सेवाएं एवं कानूनी सेवाएं), सामाजिक सेवाएं (चिकित्सा, स्वास्थ्य सेवाएं, अस्पताल, शिक्षा, कल्याण एवं धार्मिक सेवाए, गैर लाभग्राही संगठन, डाक सेवा तथा विविध सामाजिक सेवाएं), वितरणकारी सेवाएं (परिवहन, संचार एवं थोक व खुदर सेवाएं) तथा व्यक्तिगत सेवाएं (घरेलू सेवाएं, होटल, खान पान स्थल, मरम्मत सेवाएं, लांड्री, सुन्दरता एवं केशसज्जा दुकाने, मनोरंजन एवं विविध व्यक्तिगत सेवाएं)। उनका कहना है कि कुछ दशकों में समूह 7 देशों में इन सेवाओं में कार्य भागीदारी की एक महत्वूपर्ण वृद्धि देखी गई है। उनके अनुसार उद्योगोत्तर काल (सूचना युग) में रोज़गार का उद्‌भव, साथ ही दर्शाता है यथा विनिर्माण कार्यों से दूर जाने का एक आम प्रचलन और विनिर्माण गतिविधि के संबंध में दो भिन्न मार्ग : प्रथम , उत्पादक सेवाओं (दर में) और सामाजिक सेवाओं (आकार में) एक सशक्त विस्तार से जुड़े विनिर्माण के तेज़ी से समाप्त होने से संबंधित है जबकि अन्य सेवा गतिविधियों को अब भी रोज़गार का स्रोत माना जाता है। दूसरा भिन्न मार्ग जो विनिर्माण एवं उत्पादन सेवाओं से गहरे जुड़ा है, सामाजिक सेवा रोज़गार को सावधानी से बढ़ाता है और वितरणकारी सेवाओं को कायम रखता है (पृ. 215)।

24.9 ज्ञान समाज में महिलाएं

उभरते ज्ञान समाज, जो विश्व प्रतिस्पर्धा पर आधारित हैं, प्रौद्योगिकियों में प्रगति और ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की ओर झुकाव सभी महिलाओं के लिए अनेक अवसर एवं चुनौतियां प्रस्तुत करते हैं।

महिलाओं के लिए नए रोज़गार अवसर

नयी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने काम को घर ले आना संभव कर दिया है और काम एवं पारिवारिक कार्यसूचियों के बेहतर समायोजन का अवसर दिया है, जिससे नए प्रकार के कार्य/ नौकरियों का जन्म हुआ है जो महिलाओं के अनुकूल हैं। महिलाएं सूचना संचार प्रौद्योगिकी समर्थित सेवाओं में अधिकांश नौकरियां पाने में भी सफल रही हैं। महिलाओं के लिए सर्वाधिक आशाप्रद प्रयोज्य क्षमता कॉल सेंटरों पर और डेटा प्रोसैसिंग वाले कार्यों में नई नौकरियां पैदा करने में निहित है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, "गत चार वर्षों में ही भारत में टेलीसेंटरों व फैक्स बूथों ने कई लाख नौकरियां पैदा कर दी हैं, जिसमें कि एक वृहद भाग महिलाओं को गया है"।

नब्बे के दशक के अंत तक, कैरिबियाई देशों में लगभग 5000 महिलाएं डेटा प्रोसेसिंग कार्यकलापों में नौकरियां पा चुकी थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट में आगे लिखा है, "नियुक्त लोगों की संख्या के लिहाज से, अंकीय अर्थशास्त्र में महिलाओं की भूमिका दूरसंचरण की बजाय ऑन लाइन, निर्यातोन्मुखी सूचना संसाधन कार्य में अधिक स्पष्ट रूप से नज़र आया है"।

MAADIYAM IAS

अंतर्राष्ट्रीय रूप से अधिसूचित कार्य जैसे चिकित्सा प्रतिलिपिकरण कार्य अथवा सॉफ्वेयर सेवाएं, विकासशील देशों में महिलाओं के जीवन एवं आजीविका मार्गों में काफी परिवर्तन लाते हैं। सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में, महिलाओं को इतने बड़े पैमाने पर वरीयता मिलती है कि उतनी उन्हें अभियांत्रिकी एवं विज्ञान के किसी भी क्षेत्र में कभी नहीं मिली। भारत में, सॉफ्टवेयर उद्योग में व्यावसाकिय कार्यों में 27 प्रतिशत महिलाए लगी हैं जोकि चार अरब अमेरिकी डालर वार्षिक के बराबर है। वर्ष 2001 में इसउद्योग में कुल रोज़गार में महिलाओं का योगदान बढ़कर 30 प्रतिशत हो गया।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने महिलाओं को अपने उत्पादों हेतु विश्व बाज़ार तलाशने और अपनी आय बढ़ाने में मदद की है। नई प्रौद्योगिकियां और नेटवर्किंग ऐसे नए साधन हैं जिनकी सहायता से महिलाएं अपने आर्थिक एवं सामाजिक स्तर को ऊंचा करने में सक्षम बनती है। आइए, कुछ उदाहरण देखते हैं।

सैफाइअर वीमन कम्पाला, यूगांडा में एक महिला द्वारा बना गया संगठन है जो उन महिलाओं की मदद करता है जिनके परिजन 'एडस' से मरे हों, साथ ही 'एडस' महामारी से अनाथ अुए बच्चों की भी मदद करता है। सैफाइअर के सदस्य परम्परागत यूगांडाई टोकरियां बुनते हैं जो फिर हस्तशिल्पों की ऑन लाइन बिक्री में व्यापक अनुभव प्राप्त एक अमेरिक स्थित गैर सरकारी संगठन पीपलिंक की मदद से इंटरनैट पर बेची जाती है।

ग्रामीण बैंक विलिज फोन परियोजना, जो बंगलादेश में अपने अधिकांश महिला सदस्यों को मोबाइल सैल फोन प्रदान करती है, मोबाइल फोन प्रयोग करने के लिए शुल्क इकट्ठा करने वाली महिलाओं के न सिर्फ रोज़गार जनन प्रभाव दर्शाती है बल्कि अन्य सकारात्मक अधिरलव प्रभाव भी दर्शाती है। मोबाइल फोन और इंटरनैट की सुलभता ने ग्रामीण बंगलादेशी महिलाओं को अवसर प्रदान किया है कि वे शिक्षा प्राप्त कर सकें, स्वायित्तत्ता हेतु नए अवसर पैदा किए हैं और सामुदायिक एवं सार्वजनिक जीवन में उनकी स्थिति को सुधारा है।

उक्त उदाहरण दर्शाते हैं कि किस प्रकार प्रौद्योगिकी उन अवसरों को खोलकर जो पहले उनके लिए बंद थे गरीब महिलाओं के जीवन को सुधार सकती है । महिलाओं के बीच इलैक्ट्रानिक नैटवर्किंग ने नयी सामाजिक एवं आर्थिक दृश्यघटनाओं की ओर प्रवृत्त किया है, जैसे ई-कैम्पेन, ई-कॉमर्स और ई-कॅन्सल्टैशन। इस प्रकार प्रौद्योगिकी के माध्यम से महिलाओं का सशक्तीकरण उन्हें भेदभाव को चुनौती देने व लैंगिक भेदभाव अवरोधों को दूर करने में सक्षम करता है (अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन)।

तथापि, ये सभी नए अवसर वैश्वीकरण के वर्तमान विकास प्रतिमान के आसपास ही पैदा हुए हैं। यह महिलाओं के लिए कुछ नए अवसर पैदा करते समय नकारात्मक छाप भी छोड़ता है। जबकि प्राप्त स्पर्धा बढ़ती है, श्रमिक कल्याण पर दिये जाने वाले ध्यान में स्पष्ट रूप से कमी आती है। इसके अलावा, अधिकांश नए जन्में रोजगार अवसर अनौपचारिक क्षेत्र में हैं, जो नौकरी की सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं देते। ये सभी बातें महिलाओं को एक शोषणकारी कार्य वातावरण में काम करने को मज़बूर करती है।

सोचिए और कीजिए 24.6

वृहद स्तरीय प्रौद्योगिकीय विकास द्वारा रूपांतरति वर्तमान आर्थिक परिदृश्य में महिलाओं के समक्ष अवसरों और चुनौतियों का विश्लेषण करें।

24.10 सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सूचना के भण्डारण एवं संचारण में एक बड़ी क्रांति शुरू हुई। औद्योगिकरण के पश्चात् समाज एक उद्योगोत्तर सूचना युग की ओर उन्मुख हुआ जहां ज्ञान का उत्पाद, प्रसारण और प्रयोजन उत्पादकता और सामाजिक उन्नति का आधार बन गए। ये उदयिमान सूचना/ज्ञान समाज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में तीव्र उन्नति, सूचना के संसरण, कंप्यूटर एवं संचार प्रौद्योगिकियों और सूचना संसाधन एवं प्रसारण की घटी लागत और राष्ट्रों के बढ़ते सम्पर्क द्वारा पहचाने गए। इन क्रांतिकारी परिवर्तनों ने कहा जाता है समाजों को द्रुत समुदायों में बदल दिया है, जो कि अधिकांश रूप में नए सूचना के संसरण कंप्यूटर और दूर संचार प्रौद्योगिकियों आदि के प्रभाव से ही हुआ है।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

यह इकाई सूचना क्रांति की पृष्ठभूमि और उभरते समाज के विशिष्ट अभिलक्षणों का विश्लेषण करती है। यह इस बात का भी विश्लेषण प्रस्तुत करती है कि क्यों और कैसे ज्ञान इस समाज का एक मूल घटक बन जाता है।

24.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कास्टल, एम. (1998), *दि इन्फॉर्मेशन ऐज : इक्नॉमी,* सोसाइटि एण्ड कल्चर, खण्ड I, *द राइज़ ऑफ नैटवर्क सोसाइटि,* ब्लैकवैल पब्लिशर्ज़ : लन्दन

बैल, दानियल (1976), *द कमिंग ऑफ पोस्ट-इण्डिस्ट्रियल सोसाइटी, ए वैन्चर इन सोशल साइन्स फोरकास्टिंग,* बेसिक बुक्स : न्यूयार्क

जीसप बी, (2000), "द स्टेट एण्ड द कॉन्ट्राडिक्शन्स ऑफ द नॉलेज़ ड्राइवन इकॉनमी", ब्राइसन, जे, आर व अन्य (सं.) कृत *नॉलेज, स्पेस, इकॉनमी* में , रूटलिज : लन्दन

इकाई 25
ज्ञान समाज की आलोचना

इकाई की रूपरेखा

25.1 प्रस्तावना

25.2 ज्ञान समाज की आलोचना

25.3 वेब-आधारित ज्ञान प्रसार विषयक विमर्शों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

25.4 ज्ञान समाज में अंकीय (डिजिटल डिवाइड) विभाजन

25.5 विभिन्न देशों में अंकीय (डिजिटल डिवाइड) विभाजन

25.6 ज्ञान समाज में साक्षरता का प्रश्न

25.7 ज्ञान समाज में सूचना संचार प्रौद्योगिकी अधिसंरचना की सुलभता – इंटरनैट

25.8 रोज़गार सुलभता में विभाजन

25.9 सारांश

25.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको निम्नलिखित के आलोचनात्मक विश्लेषण में सक्षम बनायेगी:

- ज्ञान समाज को परिभाषित करने में संकल्पनात्मक धर्म संकट;
- सैद्धांतिक वार्तालाप जो प्रौद्योगिकी एवं मानव प्रगति पर सूक्ष्म दृष्टि डालते हैं;
- ज्ञान समाज को एक सार्वभौम दृश्य घटना के रूप में स्वीकार किए जाने में अनुभवजन्य बाधाएं; और
- वर्तमान सूचना युग में ज्ञान/ अंकीय (डिजिटल डिवाइड)की सीमा।

MAADHYAM IAS

25.1 प्रस्तावना

ज्ञान समाज संबंधी विचार एवं संकल्पना को बीसवीं शति के अंत तक आते आते व्यापक लोकप्रियता हासिल हो गई थी। यह संकल्पना काफ़ी विवादित भी रही है और विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से इस पर सवाल भी किए गए हैं। समाज वैज्ञानिकों ने इसकी विषयवस्तु इसके स्वरूप और इसकी दिशा की आलोचना की है। आइए, इस इकाई में यहां अधिक विस्तार से इनमें से कुछ समालोचनाओं पर दृष्टि डालें। प्रौद्योगिकी एवं मानंव प्रगति पर सूक्ष्म दृष्टि डालने वाले सैद्धांतिक संलापों और ज्ञान समाज में ज्ञान एवं अंकीय विभाजन के आवामों पर भी यहां चर्चा की गई है।

25.2 ज्ञान समाज की आलोचना

- सभी समाज ज्ञान समाज हैं और इस प्रकार यह तर्क कि वर्तमान समाज एक उभरता ज्ञान समाज है, संदेह योग्य है।
- ज्ञान समाज को परिभाषित करने में एक अर्थ विषयक अस्पष्टता अब तब है, जो कि ज्ञान एवं सूचना समाज के साथ-साथ ज्ञान अर्थव्यवस्था के भी एकान्तरित प्रयोग में प्रमाणित होती है।
- उक्त अस्पष्टता न सिर्फ़ ज्ञान समाज को परिभाषित करने में बल्कि ज्ञान समाज के संबंध में ज्ञान की नितांत अवधारणा को परिभाषित करने में भी दिखाई देती है।

- ज्ञान और ज्ञान समाज को परिभाषित करने में नितांत अस्पष्टता ज्ञान समाज आनुभाविक मूल्यांकन किया जाना मुश्किल बना देती है।
- ज्ञान समाज के मूल्यांकन में कठिनाई समाज के सभी क्षेत्रों में ज्ञान समाज की पैठ सीमा का अंदाजा करना मुश्किल बना देती है।
- ज्ञान समाज का प्रायः जीवनपर्यन्त ज्ञान या शिक्षा प्राप्ति समाज के रूप में उल्लेख किया जाता है। परन्तु जीवनपर्यनत ज्ञान विकसित करने हेतु लोगों, समूहों व संस्थाओं द्वारा बनाई गई परियोजनाएं व योजनाएं स्वयं ज्ञान समाज की निरपेक्ष वांछनीयता की बजाय ज्ञान समाज में राज्य की वांछनीयता हेतु एक प्रतिक्रिया स्वरूप अधिक विश्वसनीय रूप से सम्मान पाती हैं।
- ज्ञान समाज में, विकास के मूल्यांकन में उच्च शिक्षा में वृद्धि को ध्यान में रखा जाता है। प्रश्न यह है कि क्या उच्च शिक्षा एवं समतावादी समाज के उद्‌गम को सुनिश्चित करती है? या फिर, क्या ज्ञान समाज जन समाज के सभी वर्गों हेतु समान उच्च शिक्षा सुनिश्चित करता है? क्या ज्ञान समाज उच्च शिक्षा हेतु कोई समान मानव निर्धारित करता है?
- ज्ञान समाज पर अध्ययन समुदायों के भीतर व उनके बीच एक वर्धमान "अंकीय विभाजन" (इसके विषय में हम इस इकाई के परवर्ती भाग में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे) का संकेत देते हैं। लगता है कि जैसे समाज में पूर्व-विद्यमान असमानताएं ही ज्ञान समाज में उभरकर सामने आ गई हैं। अक्सर यह दावा किया जाता है कि ज्ञान समाज इस समाज में उत्तरोत्तर परिवर्तन लायेंगे। तथापि, प्रणाली ध्वंश, अपदक्षता, सदा अपर्याप्त उद्‌दक्षता, यंत्रसामग्री (Hardware) का अनावश्यक अम्बार, निरन्तर नव परिवर्तन, बलात् रचनात्मकता, कार्यस्थल एवं जीवनशैली तनाव, आदि के असंख्य उदाहरण भी "ज्ञान अभाव" "व्यवस्थापरक अपव्यय" संबंधी एक सारयुक्त विषयवस्तु को प्रस्तुत करते हैं। हमें ज्ञान समाज की वास्तविकताओं को दर किनार नहीं कर देना चाहिए।
- इंटरनैट आधारित ज्ञान प्रसार से जुड़े विभिन्न सैद्धांतिक सूत्र ज्ञान समाज के विषय में अपना आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं (आगामी भाग में इसके विषय में हम और अधिक पढ़ेंगे)।
- कुछ ज्ञान समाज अनिवार्यताएं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, पूर्ण आधुनिकीकृत राज्य काम का भविष्य और सर्वजन कल्याण, आदि लोगों पर थोपे गए लगते हैं जहां लोगों के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई है कि वे मर्ज़ी से व्यवस्था को अपनाएं या ठुकराएं।
- यह भी कहा जाता है कि सामाजिक भाग्यवाद इतनी ऊंचाई पर जा पहुंचा है कि नवीनतम प्रौद्योगिकीय निर्यातवाद लोगों की सामूहिक एवं वैयक्तिक दूरदर्शिता एवं ज्ञान को उसके सर्वाधिक मूल्यवान अभिलक्षण, नामतः अपरिहार्यरूप से क्या होना चाहिए पर आलोचनात्मक प्रश्न करने एवं विकल्प सोचने की क्षमता से वंचित करता है।

अब आगामी पाठांश में, आइए, ज्ञान समाज में ज्ञान संचारण विषयक सैद्धांतिक संलापों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते है।

सोचिए और करिए 25.1

आप अपने वैयक्तिक एवं सामूहिक सामाजिक परिवेश में ज्ञान समाज के विभिन्न घटकों के विस्तृत विकास का अनुभव कर रहें होंगे। अपने यथार्थ अनुभव के आधार पर ज्ञान समाज पर एक समालोचनात्मक निबन्ध लिखें।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

25.3 वेब-आधारित ज्ञान प्रसार विषयक विमर्शों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

ऐसे तमाम संलाप या संभाषण देखने में आते हैं जो किसी ज्ञान आधारित समाज में ज्ञान व शक्ति सं संबद्ध होते हैं। फूकौल्ट (1977), जो दर्शाते हैं कि किस प्रकार ज्ञान व शक्ति संवंधित हैं, का कहना है कि जब कभी कोई व्यक्ति ज्ञान संप्रेषित करता है उसमें शक्ति सम्मिलित होती है। जब कभी शक्ति का प्रयोग किया जाता है, उसमें ज्ञान शामिल होता है। इंटरनेट आधारित ज्ञान संचारण से जुड़े चार संलाप जो ज्ञान आधारित समाज के महत्वपूर्ण आधार का निर्माण करते हैं वे हैं : प्रौद्योगिकी आदर्शवाद, प्रौद्योगिकी आलोचनात्मक दृष्टि, प्रौद्योगिकी कट्टरता और प्रौद्योगिकी संरचनावाद (http://code.icaap.org)। इस भाग में हम इन सैद्धांतिक संलापों के परिहारों पर सरसरी नज़र डालेंगे। इंटरनेट और विश्वव्यापी वेब के माध्यम से ज्ञान का संकेन्द्रण अथवा प्रसारण ही इन चारों संलापों में मुख्य प्रश्न है।

प्रौद्योगिकी आदर्शवाद

प्रौद्योगिकी आदर्शवाद आशावादी हैं जो यह मानते हैं कि वेब शिक्षा की सुलभता और उसके द्वारा ज्ञान के वृहत्तर प्रसार की ओर प्रवृत्त करती है। इससे ज्ञान की सार्वत्रिक सुलभता में मदद मिलती है और यह जनसमाज के वृहत्तर भाग के सशक्तीकरण की ओर ले जा सकता है क्योंकि ज्ञान आधारित समाज में ज्ञान का अर्जन ही लोगों को सशक्त बनाता है। इस संलाप में, उनका कहना है कि वेब (i) उन बाधाओं को कम करती है जो सम्मुख प्रतिवेश में शिक्षा की सुलभता में अड़ंगा डालती है, (ii) अन्ततोगत्वा समदृष्टि में परिणत होगी, (iii) दुर्गम तक पहुंचती है, (iv) सांस्कृतिक सीमाओं को भेद जाती है, (v) ज्ञान प्राप्ति एवं शिक्षा में एक "प्रतिमान परिवर्तन" को अंगभूत करती है, (vi) उच्च कोटि की परस्पर सक्रियता को बढ़ावा देती है, (vii) ह्रासमान स्थानीय प्रजातंत्रों के पुनर्स्थापन की ओर प्रवृत्त करती है, (viii) शिक्षार्थी सहभागिता को आमंत्रित करती है, और (ix) सहयोगकारी (न कि वैयक्तिक) शिक्षाप्राप्ति, टीमवर्क और सहयोग के वांछित स्तर को बढ़ावा देती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

प्रौद्योगिकी आदर्शवादी जन प्रायः स्थानीय विशेषताओं पर ध्यान दिए बगैर सूचना संचार प्रौद्योगिकी की अधिसंरचना और पैठ के विषय में एक विश्व-दृष्टिकोण रखते हैं। वे इस तथ्य को ध्यान में न रखते हुए कि विश्व की जनसंख्या का एक बड़ा भाग विकासशील देशों में रहता है जहां इस 21वीं शताब्दी में भी लोगों की सर्वोच्च प्राथमिकता जीवन की बुनियादी सुख सुविधाएं हैं न कि सूचना संचार प्रौद्योगिकी अधिसरंचना, इंटरनेट और विश्वव्यापी वेब के माध्यम से ज्ञान के सर्वव्यापी प्रसार की बात करते हैं। उदाहरण के लिए, विकासशील एंशिया में प्रतिमान परिवर्तन संबंधी प्रौद्योगिकी आदर्शवादी संलाप के बावजूद आर्नलाइन' लोगों की संख्या सूलितः मात्र 98 लाख ही है, यानी आबादी का महज 0.3 प्रतिशत(एरिक्सन 1998)। "सूचना जनपथ" का प्रौद्योगिकी आदर्शवादी रूपान्तर – एक आदर्शवादी व्याख्या जो प्रौद्योगिकी एवं परिवहन के माध्यम से प्रगति और मुक्ति का दावा करती है – आज भी विश्व के अधिकांश भाग में कम ही अथ रखता है। यदि प्रौद्योगिकी आदर्शवादी जन असमानता, निरक्षता, गरीबी, खराब स्वास्थ्य व सामाजिक पिछड़ेपन के अन्य रूप जो विश्व के अनेक भागों में विद्यमान हैं, के सामाजिक संदर्भो में प्रौद्योगिकीय उन्नतियों को देखने में विफल रहते हैं तो यह प्रतिमान परिवर्तन जिसका वे दावा करते हैं कि प्रौद्योगिकीय विकासकार्य लेकर आयेंगे, उल्टे "प्रतिमान निष्फल" की ओर ले जा सकता है। (सिंहरॉय 2002)।

प्रौद्योगिकी आलोचनात्मक दृष्टि

प्रौद्योगिकी आलोचक ज्ञान के प्रकार में इंटरनेट और वेब की भूमिका के विषय में एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। वे यह नहीं मानते कि वेब ज्ञान प्राप्ति और शिक्षा हेतु

कोई तार से बंधा आदर्शवाद है। बल्कि उनका कहना है कि यह सत्ता या शक्ति के संकेन्द्रण की ओर प्रवृत्त करेगा। प्रौद्योगिकी आलोचक यथार्थवादी हैं, कारपोरेट संस्कृति और शिक्षा के उपभोक्ताकरण में अविश्वास करते हैं और भूमंडलीकरण को अमेरिकीकरण का पर्याय मानते हैं। उनका तर्क है कि वेब (i) शिक्षा सुलभता को सार्थक रूप से नहीं बढ़ाएगी, (ii) न्यायपरकता को जन्म नहीं देगी, (iii) सम्पन्नों और विपन्नों के बीच दरार को चौड़ा करेगी (iv) अमेरिका परंपरानिष्ठा के इर्दगिर्द ही संसृत रहेगी (बशीर, विल्सन एवं कयूम 1999) (v) विश्व पर मुक्त व्यापार थोपे जाने के मदद करेगी व तदनुसार व्यावसायिक स्वास्थ्य संबंधी एवं पर्यावरणीय व्यवस्थाओं को समायोजन दुर्बल करेगी, और (vi) बाज़ारों पर नज़र रखने व माउस दबाते ही तात्कालिक कर लेने और तदनुसार शोषण कारी उपनिवेशवाद को फिर से स्थापित करने में विश्व उद्यमों को सक्षम बनाएगी। प्रौद्योगिकी आलोचक जन प्रौद्योगिकी आलोचक विचारों के अधिकांश रूप से आलोचक थे। उनका कहना है कि प्रौद्योगिकी स्वयं अपकारी नहीं है। समस्या उस तरीके में है जिससे वह संबंध बनाती है। उनका मानना है कि बहुत अधिक जुड़े रहना (ऑनलाइन) लोगों को मानवतारहित बना सकता है। नेट के माध्यम से परस्पर क्रियाएं लोगों को ऐसे संबंधों के मानवीय पहलू को अनदेखा करने का अवसर देती हैं प्रौद्योगिकी आलोचक विचार का एक क्षुब्धकारी अंश मैण्डर (1996) द्वारा स्पष्टतया व्यक्त किया गया है जिनका कहना है कि आर्थिक वेवीकरण में औद्योगिक क्रांति से ही समाज राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं का सबसे "बुनियादी पुनः अभिकल्प" शामिल है। नयी व्यवस्था (मुक्त व्यापार, अपनियमन, पुनर्गठन) के पक्षधर और लाभग्राही जन कंप्यूटर प्रयोग करते हैं -- समुदायों को सशक्त करने के लिए नहीं, जैसा कि प्रौद्योगिकी आलोचक जन दावा करते हैं, बल्कि वित्तीय शोषण के एक हथियार के रूप में। "कंप्यूटर प्रौद्योगिकी दरअसल अब तक आविष्कृतों में सर्वाधिक केन्द्रीकारी हो सकती है, कम से कम आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति के लिहाज से। इतना तय है कि वर्तमान विश्व सहयोग कंप्यूटरों के बिना नहीं संभव हो सकता था। प्रौद्योगिकी पहले कभी भी देखी गई किसी चीज़ से आगे बढ़कर नियंत्रण की एक अवस्था प्रदान कर वैश्वीकरण को संभव बना देती है (पृ. 12)"। पुराने ज़माने में इस प्रकार के वैश्वीकरण को ही उपनिवेशीकरण कहा जाता था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

प्रौद्योगिकी आलोचक प्रौद्योगिकी आदर्शवादियों से अनेक आधारों पर असहमत हैं। उनका कहना है कि कल्पित विश्वविद्यालय -- आदर्शवादियों के अनुसार ज्ञान समाजों में ज्ञान के प्रसार हेतु एक प्रमुख तरीका -- प्रभावतः एक अंकीय 'डिप्लोमा मिलों' के रूप में काम करेंगे। नोबल (1997) जो प्रविधि अनिष्ठावाद के एक अग्रणी उत्तर अमेरिका प्रतिनिधि हैं, का कहना है कि ऑन लाइन पाठ्यक्रम उच्च शिक्षा के वाणिज्यकरण, संकाल स्वतंत्रता अभाव एक निकृष्ट "असत् संतंत्र शिक्षा" (shadow cyber education) और संभवतः किसी भी प्रकार के कोई शिक्षकवर्ग के बिना कल्पित विश्वविद्यालयों की ओर प्रवृत्त करेंगे।

दूसरा तर्क वे प्रजातीय विभाजन के आधार पर देते हैं । अमेरिका में वेब सुलभता प्रजाति-आधारित लगती है। 1996-97 में हौफमैन एवं नोवॅक (1998) द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार, 44.3 प्रतिशत श्वेत और केवल 29 प्रतिशत अश्वेत अमेरिकियों के पास ही कोई अपना कंप्यूटर है। इस सर्वेक्षण के एक सप्ताह पहले, 40000 डॉलर या उससे कम आय वाले घरों में वैब प्रयोग करने वाले श्वेत लोग अश्वेत लोगों की अपेक्षा कोई छह गुना थे।

प्रौद्योगिकी आलोचनात्मक दृष्टि की एक अन्य अभिव्यक्ति शिक्षा के एक रूढ़िवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा देने के प्रति वेब के झुकाव से मिलती है। उनका कहना है कि शिक्षा का मतलब महज खाली बर्तन भरने अथवा "दंभी व मिथ्याभिमानी व्यक्ति" पैदा करने से कहीं अधिक है। वेब विध के साथ समस्या, उनके अनुसार, इस तथ्य को देखते हुए है कि वेब व अन्य बहुत सी प्रौद्योगिकियां सूचना-प्रदान कार्य उचित प्रश्न उठाए बगैर अथवा हस्तांतरित सूचना का कोई आलोचनात्मक मूल्यांकन किए बगैर ही करती है। वेब लोगों के इस बात के लिए प्रेरित

करती है कि वे शिक्षा को एक सूचना हस्तांतरण प्रक्रिया के रूप में ही लें। "हम इस धारणा को लेकर एक शिक्षा प्रणाली तैयार कर रहे हैं कि हमारे दिमाग में ढेरों हार्ड ड्राइव लगी हैं जिन्हें आंकड़ों से सहज ही लबरेज किया जा सकता है" (ऑत 1998)।

प्रौद्योगिकी कट्टरता

प्रौद्योगिकी कट्टरवादियों के अनुसार प्रौद्योगिकी एवं ज्ञान के शक्ति संबंध अप्रासंगीक हैं क्योंकि इस बात पर ध्यान दिए बगैर कि उसे कैसे प्रयोग किया जाता है, प्रौद्योगिकी में उसका मूल्य अन्तर्निहित होता है। सार्थक तरीकों से प्रौद्योगिकी पक्षपात शून्य होती है। प्रौद्योगिकी कट्टरवादी जन आदर्श रूप में परामर्शदाता अथवा शिक्षाविद् हैं जिनकी कुछ सिद्धांतगत अभिलाषाएं हैं ओर समष्टिगत हितों का पोषण करने में निहित स्वार्थ भी या फिर दूसरे जो अनुसंधान एवं विकास अनुदायों पर नियंत्रण रखते हैं। प्रौद्योगिकी कट्टरवादी जन विशिष्ट रूप से एक 'पावरपॉइंट' प्रस्तुति (जो समलोचना की संभावना को काफी हद तक कम कर देती है) का प्रयोग करते हैं ताकि "संसरणों" "प्रतिमान परिवर्तन"एवं दूर संचार साधनों व कंप्यूटरों के चौराहे पर विद्यमान आश्चर्यों की आकाश गंगा के विषय में जोश दिखाया जा सके (http:cade.icaap.org)।

प्रौद्योगिकी कट्टरता संलाप में : (i) वेब को काम में लेना एक "युक्तियुक्त तकनीकी" प्रक्रिया है जो कोई सीमाएं नहीं मानती। यह महज एक "तकनीकी" समस्या है। (ii) वैब के लाभ विषयक कथनों को बड़े ही महत्पूर्ण सामान्य निष्कर्षों के रूप में व्यक्त किया जाता है जो अमीर व गरीब, विकसित व विकासशील देशों के बीच विसंगतियों अथवा विभिन्न लोगों के ज्ञान प्राप्ति रूझानों से कम ही वास्ता रखते हैं। (iii) प्रौद्योगिकी और वैब स्वयं अपनी ही खातिर परस्पर अनुशीलन योग्य हैं – इस बात पर ध्यान किए बगैर कि प्रसंग क्या है अथवा मानव दशा के लिए उनका क्या मतलब हो सकता है। (iv) वेब एक लाभार्थ संभावता वाली रोमांचक प्रौद्योगिकी है। प्रौद्योगिकी कट्टरवादियों के विचार ग्रामीण परिदृश्यों समेत भौतिक वास्तविकताओं से महत्वपूर्ण रूप से विलग हैं, जहां सूचना प्रौद्योगिकी कहीं नज़र नहीं आती। उनका कहना है कि सूचना प्रौद्योगिकी "सांस्कृतिक अवरोधों, आर्थिक असमानताओं को पराजित कर सकती है और बौद्धिक विषमताओं का प्रतिकरण कर सकती है। उच्च प्रौद्योगिकी असमान मनुष्यों को एक समान दृढ़ स्थिति में रख सकती है और यह बात उसे अब तक आविष्कृत साधनों में सर्वाधिक कार्यकर लोकतंत्रकारी साधन बनाती है" (पित्रोढा 1993)। परन्तु आलोचकों का कहना है कि ऐसी स्थिति में जहां फोन रहित लोगों की संख्या फोन धारकों की अपेक्षा तेज़ी से बढ़ रही है, दल विस्तार साधित वेब प्रयोजन पूरे के पूरे अपराधिक नज़र आते हैं (लियोर्नाद 1998)।

प्रौद्योगिकी संरचनावाद

प्रौद्योगिकी संरचनावादी इस बात में रुचि नहीं रखते कि प्रौद्योगिकी अच्छी है, बुरी है या फिर निरपेक्ष । वे अधिकतर संस्थागत बलों अथवा उस सामाजिक संदर्भ में दिलचस्पी रखते हैं जहां वेब प्रयोग की जाती है। प्रविधि संरचनावादी संलाप में इन विषयों पर प्रश्न होते हैं : (i) वेब कौन प्रयोग कर रहा है, कौन किसके लिए क्या कर रहा है और किस कारण से? (ii) वह सीमा जहां तक वेब "विश्व व्यापी" है यह फिर अधिकांश रूप में कोई अमेरिका संदेश ला रही है। (iii) वह सीमा जहां तक वेब लोकतांत्रिक प्राधारों एवं प्रक्रियाओं को अनुप्राणित अथवा अशक्त करेगी (iv) वह संहाबद्ध, राजनीतिक एवं सामाजिक अभिजात वर्गों को दृढ़ता प्रदान करेगी या फिर चुनौती? (v) क्या यह "सूचना जनपथ" (एक आदर्शवादी संकल्पना) के प्रसार की आंर प्रवृत्त करेगी? (vi) वेब विद्या एवं शिक्षा में निहित शक्ति संबंधों की प्रवृति? (vii) वेब किस प्रकार विभिन्न समूहों (जैसे देशज जन, महिलाएं, ग्रामीण वर्ग) की कार्यप्रणाली अथवा ज्ञान रूझानों से मेल खाती है।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

इस संलाप का आकर्षण बिंदु है वह तरीका जिसमें प्रौद्योगिकी प्रयोग की जाती है। जैसा कि गलतुंग (1979) ने लिखा है, " प्रौद्योगिकी का एक सहज दृष्टिकोण इसे महज एक साधन हार्डवेयर – कौशल व ज्ञान तथा सॉफ्टवेयर संबंधी प्रश्न के रूप में देखता है। घटक निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं, बल्कि वे ही प्रौद्योगिकी का बाह्य रूप हैं, जैसे हिमखंड का दिखाई देनेवाला शिखर। प्रौद्योगिकी में एक संबद्ध प्राधार भी शामिल है, यहां तक कि एक गहरी रचना, एक मानसिक ढांचा, एक सामाजिक ब्रह्मांतु जो एक उर्वर मृदा के रूप में काम करती है जिसमें एक विशेष की प्रौद्योगिकी के बीज बोए जा सकते हैं और वे विकसित होकर नयी जानकारी पैदा कर सकते हैं। साधन किसी निर्वात में संचालित नहीं होते; वे मानव निर्मित एवं मानव प्रयुक्त होते हैं और कुछ विशेष सामाजिक व्यवस्थाओं की अपेक्षा रखते है।"

प्रौद्योगिकी संरचनावादियों के अनुसार यद्यपि वेब ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज संचार प्रदान कर सकती है, अधिक ज्ञान अपने आप वांछित दिशा की ओर प्रवृत्त नहीं करता है। यह प्रश्न कौन, क्या किसके लिए और क्यों कर रहा है? से संबंधित हैं। एक प्रौद्योगिकी संरचनावादी संलाप द्वारा सूचित किया अन्य प्रश्न वेब कौन प्रयोग करता है से तालुक रखते हैं।

ज्ञान समाजों के सैद्धांतिक समालोचन पर दृष्टिपात कर आइए अब ज्ञान समाज के अनुभवजन्य समालोचन के प्रायः चर्चित पहलुओं में से एक अंकीय / ज्ञान विभाजन की ओर रूख करते हैं।

सोचिए और कीजिए 25.2

वे कौन से भेद हैं जो आप प्रौद्योगिकी आदर्शवादियों और प्रौद्योगिकी संरचनावादियों के बीच पाते हैं?

25.4 ज्ञान समाज में अंकीय (डिजिटल डिवाइड) विभाजन

MAADHYAM IAS

पिछली इकाई में हम पहले ही देख चुके हैं कि सूचना एवं विचारों के मुक्त प्रवाह ने सूचना युग में ज्ञान और उसके असंख्य नए प्रयोगों की एक आकल्पिक वृद्धि को जन्म दिया है। हमने यह भी देखा कि सूचना उसकी सुलभता, प्रसार एवं नियंत्रण – ही मानव विकास के क्रांतिकारी दौर के केन्द्र में है और परिणामतः आर्थिक एवं सामाजिक प्राधार एवं संबंध मानव विकास के इस वर्तमान दौर में कार्यान्तरित हो रहे हैं। इसके बावजूद विश्व वे अधिकांश लोग सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों में इस क्रांतिकारी विकास कार्यों तथा ज्ञान में आकस्मिक वृद्धि से अछूते रहते हैं। यद्यपि सूचना युग और ज्ञान समाज विकासशील एवं अवस्थान्तर देशों के लिए अनेक संभावित लाभों की पेशकश करते हैं (डिजिटल) सूचना एवं उन्नत संचार प्रौद्योगिकियों पर बढ़ता भरोसा, साथ ही राष्ट्रों के बीच व उसके भीतर एक बढ़ते अंकीय विभाजन/ दरार का असली खतरा भी लेकर आता है।

अंकीय अथवा ज्ञान विभाजन का अर्थ है दुनियाभर में प्रौद्योगिकी समर्थ तथा प्रौद्योगिक बहिष्कृत समुदायों के बीच दरार, साथ ही इन समुदायों के भीतर व उनके बीच सूचना हस्तांतरणों का अभाव भी। विकासशील दुनिया एवं अवस्थांतर अर्थव्यवस्थाएं अंकीय एंव ज्ञान विभाजनों का वृहन्तम भाग रखती है। जबकि भूमंडलीय दूर घनत्व सुधार के संकेत देता है, इंटरनेट सुलभ और इंटरनेट दुर्लभ लोगों के बीच दरार दुनिया भर में बढ़ती ही जा रही है। अंकीय विभाजन ने सूचना संपन्न और सूचना विपन्न लोगों के बीच एक ज्ञान भेद पैदा कर दिया है, जिसमें निरक्षता के एक नए रूप को बढ़ावा देने की संभावना है। अंकीय विभाजन सूचना एवं ज्ञान दारिदर्य को बढ़ावा देता है और आर्थिक विकास एवं धन संपत्ति विवरण हेतु अवसर सीमित करता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां व्यक्तियों और समुदायों के आर्थिक एवं सामाजिक तानेबानों को बुने जाने को प्रोत्साहन देती हैं, इन तानेबानों अर्थात नेटवर्कों की

शक्ति उन्हें सूचना एवं ज्ञान की सुलभता एवं विनिमय प्रदान कर विविध समूहों को जोड़ने की क्षमता ही है जो कि उनके सामाजिक आर्थिक विकास के लिए अत्यावश्यक होती है। व्यापारी एवं उद्यमी जन अपने व्यापार को राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं वैश्विक रूप से प्रोत्साहित कर पैदा किए अवसरों के माध्यम से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का लाभ उठाते हैं। साथ ही सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी बुनियादी स्वास्थ्य एवं शिक्षा सेवाएं अधिक कुशलतापूर्वक प्रदान करने की संभावनाएं प्रदान करती है क्योंकि लोग उन तक अपने स्वयं के समुदायों से पहुंच सकते हैं। दुर्भाग्यवश वृहत्तर जनसमूह तक सूचना एवं प्रौद्योगिकी की सुलभता बहुत सीमित है और इस प्रकार इन प्रौद्योगिकीय विकासकार्यों का लाभ उठाने संबंधी उनके अवसर लोगों के बीच एक विभाजन को जन्म देते हुए बहुत सीमित है।

सूचना एवं ज्ञान के संचारण एवं परस्पर आदान प्रदान हेतु हमारी बढ़ी क्षमता विश्व के सभी निवासियों के लिए एक अधिक शान्तिमय एवं समृद्ध भविष्य हेतु संभावना बढ़ा देती है। तथापि, विश्व के अधिकांश जन तब तक इससूचना क्रांति से लाभ उठाने में सक्षम नहीं होंगे जब तक वे उभरते ज्ञान आधारित समाज में पूरी तरह भागीदारी निभाने योग्य नहीं होंगे। एक सार्वभिक ज्ञान समाज में जानकारी और सूचना सभी के लिए सुलभ होनी चाहिए, जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले और अपंग जन भी शामिल हैं। अपान्तिक, बेरोजगार, अल्प लाभान्वित मताधिकार वंचित जन, बच्चे, बुजुर्ग, अपंग, देशज जन व विशेष ज़रूरतों वाले लोगों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। समानता एवं न्याय, लोकतंत्र भाईचारा, परस्पर सहिष्णुता, मानव गरिमा, आर्थिक प्रगति, पर्यावरण रक्षा और विविधता का सम्मान आदि सार्वभौमिक मानव मूल्य ही सच्चे अन्तर्भूत विश्व सूचना समाज के आधार हैं। आइए आगामी भागों में ज्ञान समाज में ज्ञान उत्पादन एवं प्रसार तथा रोज़गार प्राधार हेतु कौशल एवं अधिरचना के संबंध में अंकीय अथवा ज्ञान विभाजन पर सूक्ष्म दृष्टि डालें।

25.5 विभिन्न देशों में अंकीय विभाजन (डिजिटल डिवाइड)

MAADHYAM IAS

अंकीय विभाजन तमाम देशों में व उनके भीतर अमीर और गरीब के बीच पहले से ही विद्यमान दरार को और चौड़ा करने का खतरा उत्पन्न करता है। विश्व के अधिकांश लोग तब तक इस क्रांति से लाभान्वित होने में सक्षम नहीं होंगे जब तक वे उभरते ज्ञान आधारित सूचना समाज में पूरी तरह भागीदारी निभाने में समर्थ नहीं होंगे। आन्तरिक विभाजन अंकीय रूप से सशक्त अमीर व अशक्त गरीब लोगों के बीच; भाषायी सांस्कृतिक विभाजन आंग्ल सैक्सन व अन्य विश्व संस्कृतियों के बीच; प्रौद्योगिकी सुलभता विभाजन अमीर व गरीब देशों के बीच; तथा एक अन्य विभाजन सूचना संचार प्रौद्योगिकी प्रेरित सुसंपन्न अभिजात वर्ग के मूल्यों और परम्परागत अधिकार एवं क्रय परम्पराओं के बीच है। (कैनिस्टन 2003)। प्रति व्यक्ति आय और जीवन स्तरों में असमानता पूरे के पूरे समाजों अथवा समाज के हिस्सों के उपान्तीकरण में तबदील हो सकती है। साथ ही देशों के भीतर प्रौद्योगिकीय परिवर्तन का प्रायः अर्थ होता है कि वे समूह जो पहले से ही अलाभान्वित एवं बहिष्कृत थे यथा – निम्न आय परिवार, ग्रामीण जनता, महिलाएं अल्पसंख्यक एवं व्योवृद्ध जन और पीछे छूट जाते हैं। इंग्लैंड में, उदाहरण के लिए दरिद्रतम आय पंचमाश में केवल 4 प्रतिशत घर ही इंटरनेट से जुड़े हैं जबकि शीर्ष पंचमांश में 43 प्रतिशत और यह भेद हर वर्ष बढ़ता ही जा रहा है। अमेरिका में इंटरनेट से जुड़े अफ्रीकी-अमेरिकन परिवारों के अनुपात श्वेत परिवारों के मुकाबले आधा है। (आर्थिक सहयोग विकास संगठन 2001 : 149)। सन 2001 की अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन रिपोर्ट आर्थिक सहयोग विकास संगठन देशों समेत विश्व के अनेक भागों में एक "अंकीय लिंगभेद दरार" दर्शाती है। यद्यपि कुछ अर्थव्यवस्थाएं इंटरनेट प्रयोग में प्रायः समानता रखती है (उदाहरण है – ताइवान, चीन जहां 45 प्रतिशत महिला प्रयोगकर्त्ता हैं और कोरिया जहां यह 43 प्रतिशत है। स्थिति प्रायः ही संतुलन अवस्था से परे होती है)

विश्व-स्तर पर यह ज्ञान के प्रयोजन, अनुकूलन, उत्पादन एवं प्रसारण हेतु अपनी अपनी क्षमता के अनुसार औद्योगिक एवं विकासशील देशों के बीच विभाजन पैदा करती है। कोरिया में वर्ष 2000 में इंटरनैट से जुड़े घरों की संख्या कुछ 30 लाख तक बढ़कर दोगुनी हो गई, जबकि जापान में केवल 4,50,000 घर ही इंटरनैट से जुड़े हैं। उच्च आय एवं निम्न आय देशों के बीच प्रौद्योगिकीय भेद प्रति 1000 निवासियों के पास निजी कंप्यूटरों की संख्या में दर्शाया जाता है – बुर्किना फासो में एक से भी कम, जो कि दक्षिण अफ्रीका में 27, चिली में 38, सिंगापुर में 172 और स्विटरलैंड में 348 से तुलनीय हैं। उप-सहाराई अफ्रीकाई देशों में कुल मिलाकर प्रति 5000 जनसंख्या 1 इंटरनैट प्रयोगकर्त्ता ही है; यूरोप और उत्तर अमेरिका में यह अनुपात प्रति 6 निवासी 1 प्रयोगकर्त्ता है (अन्तर्राष्ट्रीय संचार संघ आंकड़े) । विकासशील देशों में अंकीय विभाजन प्रौद्योगिकीय रूप से अधिक उन्नत देशों को कम उन्नत देशों से अलग करता है। जबकि छोटी छोटी जनसंख्या वाले कुछ देशों में अब तक एक भी इंटरनैट आश्रित नहीं दिखाई दिया, सिंगापुर में 98 प्रतिशत घरों में इंटरनैट प्रयोग होता है। किसी किसी भूभाग विशेष में कुछ देशों के पास दूसरों के मुकाबले अधिक सशक्त सूचना एवं संचार संबंधी आधारभूत ढांचा होता है। उपसहाराई अफ्रीका में प्रति 1000 जनसंख्या इंटरनैट आश्रितों की संख्या बुर्किनाफासों में 0.001 से लेकर दक्षिण अफ्रीका में 3.82 तक है (अन्तर्राष्ट्रीय संचार संघ आंकड़े)। विभिन्न देशों के बीच सूचना संचार प्रौद्योगिकी सुलभता से साम्य विषयक अधिकांश रिपोर्ट इस समस्या को समाज आर्थिक मानदंडो के अनुसार देखती है, यथा प्रजाति आय, भौगोलिक अवस्थिति, शिक्षा, आयु, लिंग एवं अशक्तता।

इस विभाजन के बावजूद अनेक विशेषज्ञों का मत है कि वे देश जो वर्तमान प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों को न तो अपनाते हैं और न ही उनके प्रति अनुकूलित होते समय देशों के भीतर व उनके बीच अंकीय विभाजन को और बढ़ाते हुए हाशिए पर धकेल दिए जाएंगे।

सोचिए और कीजिए 25.3

अंकीय विभाजन से आप क्या समझते हैं? हमारे देश में विद्यमान अंकीय विभाजन के आयामों का विश्लेषण करें।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

25.6 ज्ञान समाज में साक्षरता का प्रश्न

सूचना समाजों में ज्ञान ही शक्ति होती है। परन्तु यह ज्ञान शक्ति तभी वास्तविकता बन सकती है जब व्यक्ति को ज्ञान की सुलभता हो।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के उदय और तीव्र उद्भव ने शिक्षा के लिए कम से कम दो बड़ी चुनौतियां पेश की हैं : समस्त शिक्षा प्रणालियों एवं संस्थाओं में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का उचित समाकलन करवाना और यह सुनिश्चित करना कि नई प्रौद्योगिकियां विस्तारित सुगमता एवं समानता की सहायक बनें और सभी के लिए शिक्षा अवसर बढ़ाएं, न सिर्फ धनवान अथवा प्रौद्योगिकीय रूप से लाभान्वितों के लिए ही। वस्तुतः अमेरिका – नई सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी को सबसे पहले अपनाने वालों में एक – में शुरुआती नीति अनुसंधान में इस बात का पुख्ता सबूत मिले कि प्रौद्योगिकियों हेतु असमान सुगमता शिक्षा में वर्तमान समदृष्टि भेदों को और बढ़ा रही है। समदृष्टि विचारों को स्पष्ट रूप से ध्यानार्थ लिए जाने की आवश्यकता है ताकि नई प्रौद्योगिकियां जो "भौगोलिक बाधाओं को छिन्न भिन्न करती हैं, नई बाधाएं उत्पन्न किए और अंकीय विभाजन को बढ़ाएं बगैर ऐसा कर सकती हैं" (ग्लैद्यू एवं स्वेल 1999 : 171)।

ज्ञान समाजों में शिक्षा के लिए एक और संभावित खतरा है । अब यह सिद्ध हो चुका है कि ज्ञान अर्थव्यवस्था की आवश्यकताएं हैं : एक शिक्षा व्यवस्था ताकि सूचना एवं संचार

प्रौद्योगिकियों के व्यापक प्रयोग को बढ़ावा दिया जा सके, शिक्षा कार्यक्रम जिनका वस्तु के रूप में सीमापार व्यापार किया जा सके, और कार्यबल हेतु जीवनपर्यनत शिक्षा प्राप्ति। दूर शिक्षा पर अनेक विख्यात विशेषज्ञों ने, बहरहाल सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों को विश्वव्यापी रूप से शिक्षा के वाणिज्यकरण हेतु एक साधन के रूप में लिया है। डेविड एफ. नोबल (1997) के अनुंसार, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के असाधरण विस्तार के परिदृश्य विरूद्ध शिक्षा परिसर अब बौद्धिक कार्यकलाप को बौद्धिक पूंजी में तब्दील कर पूंजी संचय के एक महत्वपूर्ण स्थल के रूप में पहचाना जा रहा है उनके अनुसार, यह प्रक्रिया विश्वविद्यालय के अनुसंधान कार्य के साथ-साथ शिक्षा कार्य के भी उपभोक्ताकरण की प्रक्रिया, पाठ्यक्रमों के पाठ्यवस्तु में बदल जाने, शिक्षा निर्देश के स्वयं वाणिज्यिक रूप से व्यवहार्य उत्पादों में प्रविष्ट हुई है जिन्हें अपने पास रखा जा सकता है, खरीदा जा सकता है और बाज़ार में बेचा जा सकता है। ज्ञान अर्थव्यवस्था के तीव्र से तीव्रतर उद्‌गमन के परिदृश्य के विरूद्ध उन्होंने ज़ोर देकर कहा है कि अपनी आर्थिक सर्वोच्चता को कायम रखने के लिए प्रमुख औद्योगीकृत देशों के सहकारी एवं राजनीतिक पुरोध अब "ज्ञान आधारित" उद्योगों की ओर रूख कर रहे हैं।

नेबल के अनुसार विश्वविद्यालयी कार्य के उपभोक्ताकरण के प्रभावों के चलते, श्रमिकों के रूप में अध्यापकों को ऊपर से द्रुत प्रौद्योगिकीय परिवर्तन के तहत सभी दबावों के अधीन किया जाता है। उन्होनें कार्य पर अपनी स्वायत्तता, स्वतंत्रता एवं नियंत्रण को भी खो दिया है। अब विश्वविद्यालय उत्पादित की जा रही वस्तुओं के लिए बाजार में बदलते जा रहे हैं, जहां संकाय जो शिक्षकों एवं विद्वानों की भूमिका में अनुसंधान करता था, अब उसकी बजाय अपने नियोक्ता के लिए वस्तु उत्पादक बन गया है। काफी कुछ वाणिज्य हित को साधने के लिए विश्वविद्यालयों एवं उद्योगों के बीच गहरी साझेदारी उभरी है ताकि अनुदेशन प्रक्रिया को पाठ्य उत्पादनों में बदला जा सके, जैसे सी डी रोम (C D ROM), वेबसाइट अथवा पाठ्य वस्तु जो कि वे स्वयं प्रदान करते हो सकते हैं अथवा नहीं (नोबल 1997)।

लैचम सी और हना डी ई (2002) के अनुसार, आमतौर पर अब उच्च शिक्षा आपूर्ति के स्थान पर मांग प्रेरित दबावों को झेल रही है, कारण भूमंडलीकरण एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव, नए प्रदायकों की ओर से प्रतिस्पर्धा और आत्मनिर्भर बनने की आवश्यकता। विश्वविद्यालय मुक्त एवं सुलभ्य तथा सूचना संचार प्रौद्योगिकी आधारित ऑनलाइन अथवा आभासी शिक्षा में इन चुनौतियों के हल खोजने के उत्तरोत्तर प्रयास कर रहे हैं, तथा ओ डी एल प्रणाली भी गुणवत्ता प्रेरित एवं उपान्तिक से वाणिज्योन्मुखी एवं मुख्यधारा में तबदील होती जा रही है।

MAADHYAM IAS

25.7 ज्ञान समाज में सूचना संचार प्रौद्योगिकी अधिसंरचना की सुलभता–इंटरनैट

ज्ञान समाज पर पिछली इकाई में हमने देखा कि दूर एवं इंटरनैट आधारित सूचना प्रसार प्रौद्योगिकियों की सूचना संचार प्रौद्योगिकी अधिरचना किस प्रकार ज्ञान समाजों की रीढ़ का काम करती है। इस सूचना युग में इंटरनैट ही सबसे बड़ा स्वशासी संगठन है जो कि सर्वव्यापी भी है। यहां तक कि वैश्वीकरण के विरोधी भी विचार विनिमय एवं समर्थन जुटाने के लिए इसी पर निर्भर करते हैं। जबकि इंटरनैट विचारों के आदान प्रदान, ज्ञान सुलभता, विभिन्न लोगों के बीच संचार आदि की सुविधा प्रदान करता है। वह ज्ञान प्रधार को भी बदल डालता है और उनके लिए लाभकारी सिद्ध होता है जो उस तक बेहतर पहुंच रखते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति विश्व के सामाजिक आर्थिक समीकरणों को फिर से बना रही है – आय विभाजन से ज्ञान विभाजन की ओर अभिमुख होकर। परन्तु शिक्षा एवं सूचना हेतु सर्वव्यापी सुलभता के बिना इंटरनैट एवं उपसाध्य प्रौद्योगिकियां ज्ञान समाजों के निर्माण में किस प्रकार योगदान दे सकती है? लोग इंटरनैट से कैसे लाभान्वित होंगे यदि उनके लिए सुगमता का अभाव होगा या फिर यदि उत्पीड़न से निरन्तर डरते ही रहेंगे?

तथाकथित ज्ञान समाजों में, विकासशील देशों में रहने वाले 85 करोड़ से भी अधिक लोगों को सूचना एवं ज्ञान की वृहद् श्रृंखला से बाहर कर दिया गया है। विकासशील देशों में गरीब लोग कला, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मुकुलित होती सूचना एवं प्रगति से आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से काफी अलग थलग पड़ गए हैं । सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के प्रयोग में उन्नति के बावजूद विकासशील देशों में ज्ञान समाज के उद्भव एवं विकास के मार्ग में बाधाओं के विषय में जानकारी कम ही मिलती है।

देशों के बीच ("अन्तर्राष्ट्रीय अंकीय विभाजन") और देशों के भीतर समूहों के बीच ("घरेलू अंकीय विभाजन") सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की सुलभता एवं प्रयोजन में यथार्थ विषमताएं विद्यमान हैं। इस कथन के समर्थन में तमाम सच्चे झूठे प्रभाग दिए जाते हैं। आंकड़ों का सिलसिला प्रभावकारी और विश्वासोत्पादक है : "पूरे अफ्रीका महाद्वीप में मात्र 1.4 करोड़ फोन लाइनें हैं – मनारन अथवा टोकियों से भी कम। सम्पन्न देशों में विश्व जनसंख्या का कोई 16 प्रतिशत भाग रहता है, परन्तु उनके पास 90 प्रतिशत इंटरनैट आश्रित कंप्यूटर हैं। विश्वभर में कुल इंटरनैट प्रयोगकर्त्ताओं में 60 प्रतिशत उत्तर अमेरिका में रहते हैं, जहां विश्व जनसंख्या का मात्र पांच प्रतिशत भाग ही रहता है।"(क्रूमा) "दो अमेरिकियों के बीच एक ऑनलाइन है, जबकि 250 अफ्रीकियों के बीच मात्र एक। बंगलादेश में एक कंप्यूटर एक की कीमत आठ साल के औसत वेतन के बराबर होता है" (द इक्नॉमिस्ट)। मूल प्रवृत्तियां प्रायः इस समस्या की परिभाषा कैसे करें संबंधी गर्मागरम बहस में ही खो जाती है, परन्तु आंकड़ों के भीतर से एक प्रतिमान अवश्य उभरता है।

देशों के बीच व उनके भीतर बढ़ती सूचना संचार प्रौद्योगिकी विषमताओं की एक समग्र प्रवृत्ति दिखाई देती है :

- सभी देश, यहां तक कि सबसे गरीब भी, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी संबंधी अपनी सुलभता और प्रयोग में वृद्धि कर रहे हैं। परन्तु "सूचना सम्पन्न" देश अपनी सुलभता और प्रयोग को इस कदर तेज़ दर से बढ़ा रहे हैं कि प्रभावतः देशों के बीच वस्तुतः विभाजन बढ़ रहा है।

- देशों के भीतर , सभी समूह, यहां तक कि सबसे गरीब भी सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी संबंधी सुलभता एवं प्रयोग में वृद्धि कर रहे हैं। परन्तु देशों के भीतर "सूचना संपन्न" समूह ऐसी विस्फोटक दर से बढ़ रहे हैं कि प्रभावतः देशों के भीतर वास्तव में विभाजन ही बढ़ रहा है।

- विषमताओं का यह मूल प्रतिमान अन्य प्रौद्योगिकियों, जैसे टेलिफोन के साथ बारंबार दोहराया जाता है। दूरभाष सुलभता में व्यापक वैषम्य देखा जाता है। 1998 में, विश्व में 146 टेलिफोन प्रति एक हजार व्यक्ति थे, परन्तु दक्षिण एशिया में मात्र 19 प्रति 1000 और यूगांडा जैसे देशों में मात्र 3 प्रति 1000 (विश्व बैंक 2001)। मोबाइल फोन भी इसी प्रकार का वैषम्य दर्शाते हैं – विश्व में प्रति 1000 व्यक्ति , 1998 में मात्र 55 और दक्षिण एशिया अथवा यूगांडा में मात्र 1 प्रति 1000।

अब यदि हम घरेलू परिदृश्य पर नज़र डालें तो पायेंगे कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां इसके बावजूद सामाजिक संदर्भ में कार्यरत हैं। देशों के भीतर सूचना संचार प्रौद्योगिकी सुलभता में विषमता विषयक अधिकांश रिपोर्ट इस समस्या को समाज आर्थिक मानदण्डों के अनुसार ही देखती है, जैसे प्रजाति, आय, भौगोलिक अवस्थिति, शिक्षा, आयु, लिंग आदि। यदि हम भारत का उदाहरण लें तो पायेंगे कि वैश्वीकरण और सूचना युग ने समाजों के भीतर व उनके बीच यहां एक भिन्न सामाजिक प्राधार की ओर प्रवभक्त किया है। एक बृहद् भाग मन ही मन में अन्यंत्र भाव रखता आया है, जिसे वैश्वीकरण एवं ज्ञान अर्थव्यवस्था की प्रभावी

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

प्रक्रिया से निम्नपदस्थ और बहिष्कृत ही समझा गया है। भारतीय सामाजिक संदर्भ असमान संसाधन वितरण, तथा जाति वर्ग नृजाति व लिंग पर आधारित विभाजनों के वशीभूत है। निरक्षरता, निम्न आय और व्यापक अलगाव पूर्व विद्यमान सामाजिक बहिष्करण को कायम रखने में काफी हद तक योगदान देते हैं। समय के साथ विभिन्न प्रकार के अंकीय विभाजनों संबंधी आयाम भी दिखाई देते हैं। ये विभाजन अमीर और गरीब के बीच, शहरी व ग्रामीण के बीच, अंग्रेजी भाषी उपरिमुखी गतिशील पढ़े लिखे वर्ग और गैर अंग्रेजी भाषी शेष लोगों के बीच हैं। ये अंकीय विभाजन भारत के विभिन्न राज्यों में बिजली, टेलीफोन व कंप्यूटर की भिन्न भिन्न सुलभता सीमाओं के साथ देखी जाती है। (देखें तालिक 7)। वैश्वीकृत जगत में जबकि सम्मिलन के क्षेत्र उभरे हैं; भीतर से बहिष्कृत के रूप में भी एक वृहद भाग विद्यमान है। जबकि अधिकांश शहरी क्षेत्र वैश्वीकरण शक्तियों एवं सूचना संचार प्रौद्योगिकी नेटवर्कों से जुड़े रहे हैं और अभिजात्यों की एक विशिष्ट श्रेणी उनके बीच सूचना संचार प्रौद्योगिकी प्रेरित अंक प्रवीण लोगों के रूप में उभरी है, उसी शहरी परिवेश में कार्यबल का एक बड़ा हिस्सा जो अधिकतर असंगठित क्षेत्र में काम करता है और एक दोयम दर्जे का जीवन व्यतीत करता है, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों की पहुंच से दूर ही रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में दूसरी ओर जबकि इससे जुड़े आरंभिक स्वरूपों ने केवल उपरिमुखी गतिशील भद्रजनों को ही सम्मिलित किया है; कृषि श्रमिक, काश्तकार, गरीब किसान व शिल्पकार जो भारत के उपान्तिक लोगों के विशाल भाग का प्रतिनिधित्व करते हैं भी बहिष्कृत कर रहे हैं। उनकी शैक्षिक एवं आर्थिक स्थिति ही प्रायः उन्हें सूचना युग के साथ एकीकृत होने से रोकती है।

तालिका 25.1: भारत में अंकीय विभाजन

प्रदेश	बिजली की सुलभता घरों का	टेलिफोन कनैक्शन प्रति 100 व्यक्ति (2004)	इंटरनैट कनैक्शन प्रति 1000 व्यक्ति
महाराष्ट्र	59.7	5.34	8.21
पंजाब	83.5	10.86	1.24
केरल	61.1	9.79	0.87
कर्नाटक	63.0	5.58	2.73
पश्चिम बंगाल	18.8	1.96	2.51
उड़ीसा	20.1	2.45	0.12
उत्तर प्रदेश	-	4.66	0.12
आन्ध्र प्रदेश	-	4.76	-

स्रोत : बालकृष्णन 2001 तथा ऑब्ज़र्वर स्टैटिस्टिकल हैण्डबुक 2005

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

भाषाई विविधता एवं सांस्कृतिक पहचान

यहां हम सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास पर सूचना समाज की कुछ घटनाओं के प्रभाव का विश्लेषण कर सकते हैं। संस्कृति ही पहचान सामाजिक सौहार्द और एक ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्थाका विकास समकालीन बहसों के केन्द्र में होती है। विश्व सूचना नेटवर्कों पर भाषाई विविधता को प्रोत्साहन, इंटरनैट पर स्थानीय एवं देशज विषयवस्तु का उत्पादन और साइबरस्पेस हेतु सार्वत्रिक सुलभता, आदि मुख्य मुद्दे हैं । विकासशील देशों में परिपूर्ण ज्ञान समाजों के निर्माण में भाषा एक प्रमुख बाधा है। प्रतिदिन 20 लाख से भी अधिक पृष्ठ इंटरनैट पर जोड़े जाते हैं परन्तु दक्षिणी देशों की बोलीगत भाषाओं में नैट पर बहुत ही थोड़ी विषयवस्तु नज़र आती है। आंकड़े बताते हैं कि नेट पर 85 प्रतिशत से भी अधिक विषयवस्तु अंग्रेजी में ही है; जबकि विश्व भर में दस में से एक से भी कम व्यक्ति उस भाषा को बोलते

हैं। इसके अतिरिक्त, विकासशील देशों में निरक्षरता की ऊंची दरों के चलते वे लोग जो स्थानीय भाषाओं तक में विषय वस्तु पढ़ने में अक्षम है, ज्ञान आदान प्रदान नेटवर्क से स्वत: ही बाहर हो जायेंगे। इस प्रकार अक्षरश: भली भांति जुड़े लोग निरक्षर गरीबों के मुकाबले अधिक लाभान्वित होंगे और परवर्तियों का स्वर और महत्व विश्व वार्तालाप में बाहर ही रह जायेंगे।

> **सोचिए और करिए 25.4**
>
> क्या आप मानते हैं कि भारत में एकाधिक भाषाओं का अस्तित्व यहां ज्ञान आधारित समाज के विकास को दुष्प्रभावित करेगा? इस स्थिति से बचने के कुछ उपाय सुझाये।

25.8 रोज़गार सुलभता में विभाजन

प्रौद्योगिकीय घटनाक्रम में द्रुत वैश्वीकरण एवं क्रांतिकारी परिवर्तनों के वर्तमान दौर में, विश्व अर्थव्यवस्था में देश की भागीदारी और इस भागीदारी से देशों, उद्यमों एवं व्यक्तियों को मिलने वाले लाभों के बीच एक गहराती दरार दिखाई पड़ती है। साथ ही, अनेक देशों के भीतर उपयुक्त कार्य सुलभता तथा आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में भागीदारी के लिहाज से भी भेद विभिन्न आय समूहों के बीच बढ़ रहा है। अपर्याप्त रूप से शिक्षित एवं प्रशिक्षित ही आमतौर पर आर्थिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में घाटे में रहते हैं, जहां पूरा का पूरा समाज विकास की उच्चतर समुचित अवस्था की ओर गमन करता प्रतीत होता है। ज्ञान व सम्बद्ध प्रौद्योगिकियों हेतु सुलभता प्राप्त जन ही उभरती अर्थव्यवस्था व तदनुसार आर्थिक उत्कर्ष का लाभ उठा सकते हैं। यह बात व्यक्ति एंव राष्ट्र दोनों पर लागू होती है।

भूमंडलीकरण, गिरती संचार एवं परिवहन लागतें, और राजनीतिक सीमाओं का खुलना सभी मिलकर कुशल लोगों (ज्ञान कर्मी) की वर्धमान गतिविधियों में सहायक होते हैं। यह गतिशील बल ही वस्तुत: उन्नत मानव पूंजी हेतु एक विश्व बाज़ार की ओर अग्रसर कर रहा है, जिसमें उच्च शिक्षा वाले व्यक्ति ही भागीदारी की सर्वाधिक संभावना रखते हैं (कैटिगंटन एवं दित्रागियाशे 1999)। यह वास्तविकता योग्यताप्राप्त व्यक्तियों की कम विकसित से विकसित देशों में आर्थिक तुरंत सुलभता की ओर प्रवृत कर सकती है, जिससे विकासशील देश अपनी प्रतिभाओं से वंचित हो जायेंगे।

MAADHYAM IAS

इस 21वीं सदी के बाज़ार स्थल में अपेक्षाकृत धनी देश अनेक तरीकों से विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रशिक्षित प्रतिभाओं को लुभाने व अपने यहां रखने के लिए प्रयासरत रहते हैं। काफी सशक्त "आकर्षण" कारकों में वे प्रभावकारी नीतियां हैं जो अनुसंधान एवं विकास गतिविधियों को उत्प्रेरित करती हैं और सीधा निवेश बढ़ाती हैं, आकर्षक स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान अवसर प्रदान करती हैं, और नव स्नातकों एवं व्यवसायियों को भर्ती करती हैं (ग्लांझ 2001)। आर्थिक सहयोग विकास संगठन के सदस्य देश न सिर्फ़ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बल्कि अन्य ज्ञान आधारित क्षेत्रों में भी अनुसंधान एवं विकास में अपने निवेश बढ़ा रहे हैं और इस प्रकार सुप्रशिक्षित लोगों के लिए रोज़गार अवसर पैदा कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, वर्ष 2001 के आरंभ में ऑस्ट्रेलियाई सरकार ने ऑस्ट्रेलियाई अनुसंधान परिषद के वित्त प्रबंध में 100 प्रतिशत की वृद्धि और व्यवसाय गृहों द्वारा अनुसंधान एवं विकास की लागत के 175 प्रतिशत के बराबर कर छूट की भी घोषणा की।

मौटे तौर पर, अमेरिका के स्नातक विद्यालयों में 25 प्रतिशत विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के अन्य देशों से आते हैं। इसका मतलब हैं कि लगभग 50000 और 1,00,000 के बीच संख्या में छात्र विदेशों से अमेरिका में उन्नत मानव पूंजी हेतु अमेरिकी बाज़ार में लाए जाते हैं। इनमें से अधिकांश छात्र अपनी बुनियादी शिक्षा एवं आरंभिक डिग्रियां अपने मूल देशों में ही प्राप्त करते हैं – अर्थात उनके प्रारंभिक प्रशिक्षण की लागत संभवत: उनके रोज़गार देश की बजाय मूल

देश द्वारा ही वहन की गई होती है (एन एस एफ 2000 : परिशिष्ट तालिका 4-22)। उन्नत देश उन देश में भर्ती दफ़्तर खोल रहे हैं जहां अक्सर अभाव एवं राजनीतिक अस्थिरता के कारण, स्नातक उपलब्ध हैं। ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यूरोपीय संघ सदस्य व अन्य सभी विश्व बाज़ार में सुप्रशिक्षित लोगों की ही तलाश में ही प्रतिस्पर्धा करते रहते हैं। फ्रांस एवं जर्मनी ने प्रौद्योगिकी से जुड़े क्षेत्रों में विदेशी व्यवसायियों की आकर्षित करने के लिए वीज़ा जारी किया जाना निःशुल्क कर दिया है और अक्तूबर 2000 में अमेरिका ने अपने आप्रवासन कानूनों में एक संशोधन किया जिसके अनुसार वैज्ञानिकों एवं अभियंताओं के लिए 6,00,000 नए वीजा उपलब्ध कराए जायेंगे।

विकसित मानव पूंजी हेतु विश्व श्रम बाज़ार एक विस्तृत होती वास्तविकता है जो कौशल प्रसार एवं "प्रतिभा पलायन" की संबद्ध समस्या को राष्ट्र के सामने, खासकर विकासशील देशों में लाती है। चाहे यह आकर्षण कारक से हो या फिर विकर्षण कारक से, प्रतिभा पलायन राष्ट्रीय सरकरी ढांचों, प्रबंधन क्षमताओं उत्पादक क्षेत्रों और तृतीयक संस्थाओं पर एक दुर्बलकारी प्रभाव डालता है। अनुमान है उदाहरण के लिए, कि उच्च सम्मान प्राप्त भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थाओं के 40 प्रतिशत स्नातक बाहर ही रोज़गार तलाश करते हैं। उप-सहराई अफ्रीका के देशों में औसत तृतीयक नामांकन मात्र 40 प्रतिशत है, जबकि अमेरिका में यह 81 प्रतिशत है, फिर भी अनुमान है कि लगभग 30,000 अफ्रीकी पी.एच.डी. उपाधिधारक अफ्रीका से बाहर ही रहते हैं, और यह भी कि 1,30,000 अफ्रीकी वर्तमान में समुद्रपारीय देशों में पढ़ रहे है। यद्यपि प्रतिभा पलायन की यह दृश्य घटना यथा कुशल मानव संसाधनों की अन्तर्राष्ट्रीय चलायमानता, अतीत में भी देखी जाती थी, प्र।द्य।।गकीय विकास के वर्तमान दौर में इसे व्यापक गतिवर्धन मिला । जब ज्ञान और ज्ञान कर्मी उच्च मूल्य वाली उपभोक्ता वस्तु बन गए। प्रतिभा पलायन की वर्धमानता विकास के सभी स्तरों पर देश को सकारात्मक अथवा नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती हैं। विकासशील देश, बहरहाल बहुत हद तक प्रतिकूल परिणामों से गुज़रने की आशंका रखते हैं, क्योंकि वे उन सर्वथा तकनीकी एवं व्यावसायिक विशेषज्ञों को खो देंगे जो स्थानीय जनसंख्या की जीवनदशाओं में गरीबी कम करने हेतु सुधारों में अपना योगदान देने में सक्षम हैं।

25.9 सारांश

यह इकाई ज्ञान समाज की परिघटना का तीनों स्तरों – संकल्पनात्मक, आनुभाविक एवं सैद्धांतिक – पर एक सामाजिक समालोचना प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। संकल्पनात्मक आलोचन में ज्ञार आधारित समाज की नितांत संकल्पना पर प्रश्न उठाया गया है, क्योंकि सभी मानव समाज ज्ञान समाज ही हैं। साथ ही, ज्ञान की संकल्पना को परिभाषित करने में अस्पष्टता की व्यापक रूप से आलोचना की गई है। सैद्धांतिक आधार पर विभिन्न वैचारिक सूत्र दिखाई पड़ते हैं जो प्रौद्योगिकी और मानव प्रगति से संबंध रखते हैं। जबकि प्रविधि 'आदर्शवादी जन मानते हैं कि प्रौद्योगिक सर्वव्यापी हैं और यह सर्वाधिक मानव प्रगति की ओर प्रवृत्त करती है, प्रविधि अनिष्ठावादी जन प्रौद्योगिकी को वर्तमान सामाजिक विभाजनों एवं असमानताओं में योगकारी मानते हैं। जबकि प्रौद्योगिकी संरचनावादी जन प्रौद्योगिकी के गुणों से नहीं बल्कि प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के तरीके से वास्ता रखते हैं। उनका मानना है कि यदि प्रौद्योगिकी को विकास में वर्तमान विषमताओं को कम करने के एक सुविचरित दृढ़ निश्चय के साथ प्रयोग किया जाये तो वह समस्त मानव जाति के लिए लाभकारी होगा। आनुभाविक समालोचन में यह इकाई अंकीय/ ज्ञान विभाजन पर अधिक ध्यान केंद्रित करती है। इसमें एक ज्ञान आधारित समाज में ज्ञान के उत्पादन, प्रसारण एवं प्रयोजन की प्रक्रिया में निहित जनभागीदारी में व्यापक भेद पर ज़ोर दिया गया है। हमने सकल घरेलू उत्पाद दरों के आधार पद देशों के बीच तथा सामाजिक आर्थिक मानदण्डों जैसे भौगोलिक

अवस्थिति, प्रगति, आय, शिक्षा आदि पर आधारित देशों के भीतर विद्यमान सूचना संचार प्रौद्योगिकी सुलभता में व्यापक विषमताएं देखीं।

उपर्युक्त चर्चाओं से हमने जाना कि ज्ञान आधारित समाज के सामने चुनौती यह है कि क्या ऐसा समाज, जिसका आधार है – ज्ञान व उसके उत्पादन प्रसारण एवं प्रयोजक संबंधी सर्वव्यापी दृश्यघटना, वास्तव में सभी के लिए समदृष्टि एवं समानता की सार्वभौमिक संकल्पनाओं को पूरा करने में सक्षम होना।

25.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

कास्तल, मैनुअल (1996-8,) - *दि इन्फॉर्मेशन ऐज : इकॉनमी, सोसाइटी एण्ड कल्चर,* खण्ड 1 : *द राईज ऑफ़ द नेटवर्क सोसाइटी* ; खण्ड 2 : *द पॉवर ऑफ आइडैन्टिटी* ; खण्ड 3: *ऐण्ड ऑफ मिलेनियम,* ब्लैकवैल : ऑक्सफोर्ड

गिडन, एन्थनी (2000), *द थर्ड वे एण्ड इट्स क्रीटिक्स,* पॉलिटि प्रैस : कैम्ब्रिज

जीसप, बॉब (2003), "द स्टेट एण्ड द कॉन्ट्राडिक्शन्ज़ ऑफ द नॉलिज - ड्राइवन इकॉन्मी", ब्राइसम जे. आर. व अन्य (सं.) कृत *नॉलिज, स्पेस इकॉनामी* में, रूटलेज : लन्दन

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 26
रोज़गार में संचार माध्यमों और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों की बदलती भूमिका

इकाई की रूपरेखा

26.1 प्रस्तावना

26.2 जनसंचार माध्यमों का विकास

26.3 जनसंचार माध्यम और भूमंडलीकरण

26.4 जनसंचार माध्यमों के रूप में इंटरनैट

26.5 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी – दो प्रौद्योगिकियों का संगम

26.6 सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी मज़बूत सेवा अर्थव्यवस्था

26.7 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ और रोज़गार अवसर

26.8 सेवा अर्थव्यवस्था में बेहतर प्रयोजन हेतु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के समक्ष चुनौतियाँ

26.9 सारांश

26.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

MAADHYAM IAS

प्रस्तुत इकाई आपको निम्नलिखित बातें समझने में मदद करेगी:

- जनसंचार माध्यमों की कम या धीमी विकास प्रक्रिया;
- भूमंडलीकरण के युग में जनसंचार माध्यमों के दृष्टिकोणें एवं कार्यप्रणाली में बदलाव और समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक पहलुओं पर उसका प्रभाव;
- इंटरनैट एवं जनसंचार माध्यमों के बीच परस्पर क्रिया बिंदु और वर्तमान काल में अन्य सूचना प्रौद्योगिकियों के साथ जनसंचार माध्यमों का संसरण;
- रोज़गार पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के संसरण का प्रभाव; और
- बेहतर आर्थिक विकास और रोज़गार उत्पादन के नए स्वरूप हेतु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के समक्ष चुनौतियाँ।

26.1 प्रस्तावना

'जनसंचार माध्यमों' से अभिप्राय है – संवाद संप्रेषण का कोई भी माध्यम, जैसे समाचार पत्र, रेडियो, चलचित्र, टेलीविज़न, आदि जो जनसाधारण तक पहुँचने हेतु अभिकल्पित हो, और जो जनसाधारण के मानकों, आदर्शों व उद्देश्यों को तय करने के अभिवृत्ति रखता हो। किसी भी जनसंचार-माध्यम उद्यम का विशिष्ट अभिलक्षण होता है – जनसामान्य, अथवा उसके किसी हिस्से, तक सूचना एवं विचारों का प्रसार करना। कहा जा सकता है कि जनसंचार माध्यमों में आते हैं: मुद्रित संचार-माध्यम (Print media), यथा समाचार पत्र, पत्रिकाएं एवं पुस्तकें, प्रसारण संचार माध्यम (Broadcase media), यथा रेडियो, टेलीविज़न एवं चलचित्र; तथा तुलनात्मक रूप से संचार माध्यम का नया रूप, यथा इंटरनैट। तथापि, इंटरनैट जैसे नवीनतम संचार माध्यमों ने अभी, खासकर विकासशील देशों में, सार्थक जन प्रभाव उत्पन्न करने हेतु प्रमुख नगरों व शहरों से विलग किसी व्यापक बड़े क्षेत्र हेतु सुगमता नहीं हासिल की है। परम्परागत संचार माध्यम अपेक्षाकृत अधिक व्यापक प्रसार और पाठक/ श्रोता वर्ग

रखते हैं। इन माध्यमों की अच्छी पहुंच है और ये मनोरंजन अथवा शिक्षा के लिए प्रयोग किए जा सकते हैं। जनसंचार माध्यम बड़ी संख्या में लोगों से संवाद आदान-प्रदान करने एवं विशिष्ट जन समूहों को लक्ष्य बनाने का अवसर प्रदान करते हैं। जन संचार माध्यमों से संप्रेषण इस बात में संचार थे अन्य साधनों से सार्थक रूप में भिन्न है कि इसमें 'एक ही समय में' उन हज़ारों लोगों तक पहुँचने की क्षमता है जो प्रेषक से कोई संबंध नहीं रखते।

आज संचार माध्यम एक बहुमुखी सत्ता में विकसित हो गए हैं, जो कि हमारे जीवन का एक अभिन्न भाग बन गयी है। उपलब्ध का प्रयोग कर, जैसे इंटरनैट, हम तत्काल ही पृथ्वी पर कहीं भी एक दूसरे से संवाद का आदान-प्रदान कर सकते हैं। अतः कुछ दशकों का प्रौद्योगिकीय घटनाक्रम सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के संसरण में परिणत हुआ है जिसने मानव जीवन के सभी पहलुओं, खासकर आर्थिक मोर्चे पर, को प्रभावित किया है। इस इकाई में हम पढ़ें – संचार माध्यमों का कम-विकास, भूमंडलीकरण के दौर में इसके बदले आयाम और इंटरनैट संबंधी संचार प्रौद्योगिकी के नवीनतम घटनाक्रम के साथ उसका सहयोग। इसमें हम अर्थव्यवस्था एवं रोज़गार के मोर्चे पर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के संरण का प्रभाव भी देख सकेंगे।

26.2 जनसंचार माध्यमों का विकास

यदि हम मानव संचार के इतिहास पर नज़र डालें तो पायेंगे कि वाक्शक्ति के विकास को मानव सभ्यता के संक्रमण में एक ठीक-ठीक अर्थ निर्धारित करते अभिलक्षण के रूप में देखा जा सकता है। चित्र प्रयोग एवं लेखन ने प्रत्यक्ष वाणी वाली सम्मुख वांछनीयताओं से परे संवाद संप्रेषण संभव बनाया और विशाल दूरियों को लांघ कर व्यापार एवं मुद्रा विनिमय के विकास में मदद की। पांचवीं शताब्दी में मुद्रण का अविष्कार और मुद्रण कला के द्रुत प्रसार ने विश्व भर में संचार के इस माध्यम में गहन, साथ ही क्रांतिकारी भी, परिवर्तन काल का संकेत दिया। मुद्रण प्रौद्योगिकी वर्णमालीय पद्धतियों के पुनरुत्पादन हेतु अभिकल्पित थी। सर्वप्रथम मुद्रित पृष्ठ 500 से भी अधिक वर्ष पहले दृष्टिगत हुए तब से ही यह संचार साधन सूचना, मनोरंजन, शिक्षाप्रद सामग्री आदि हम तक पहुंचाता आ रहा है।

MAADHYAM IAS

सदियों से मानव सभ्यताएँ जनसामान्य तक समाचार एवं सूचना पहुँचाने के लिए मुद्रित संचार मुद्रण माध्यमों का प्रयोग करती आ रही हैं। इस काल में मुद्रण ही प्रमुख सूचना हस्तांतरण माध्यम रहा और इसमें से काफ़ी समय तक इसका कोई साक्षी नहीं रहा और यह भी सत्य है कि इस प्रौद्योगिकी का और आगे विकास धीमा ही रहा। मुद्रणालय अर्थात् छापाखाने में यांत्रिक शक्ति का प्रयोग 19वीं शताब्दी में किया गया और यांत्रिक प्रणालियों ने हस्तगत रूप से टाइप बैठाये जाने (typesetting) को पूरी तरह समाप्त प्राय ही कर दिया। यांत्रिक प्रणाली के स्थान पर आयी इलैक्ट्रानिक टाइपसैटिंग और वर्तमान काल में सबसे उन्नत अंकीय अर्थात् डिजिटल टाइपसैटिंग।

19वीं शती के मध्य में, समाचारपत्र सूचना प्रसारित करने एवं प्राप्त करने के मुख्य साधन बन गए। 1844 में तार-प्रेषण अर्थात् टेलीग्राफ के आविष्कार ने मुद्रित संचार माध्यमों का स्वरूप ही बदल दिया। नई प्रौद्योगिकी ने मिनटों में ही सूचना रूपान्तरण संभव कर दिया, जिससे अधिक समयबद्ध, प्रासंगिक रिपोर्ट भेजना– प्राप्त करना आसान हो गया। इस काल में समाचारपत्र दुनियाभर में नज़र आने लगे।

प्रसारण रेडियो संचार माध्यमों के परिदृश्य पर बीस के दशक में स्फुरित हुआ। ध्वनिलेख, छायाचित्रण और चलचित्रण जैसी "यांत्रिक पुनरुत्पादन" प्रौद्योगिकियों के प्रवेश ने वर्धित शक्ति एवं तात्कालिकता के साथ अधिक व्यापक श्रोतावर्ग तक छवि-चित्र, रेडियो एवं टेलीविज़न, आदि आविष्कार अधिक व्यापक रूप से जनसामान्य तक सूचना संप्रेषित करने में

लगने वाले समय और दूरी को घटाने में और भी सार्थक रहे हैं। ध्वनि-आलेखन अर्थात् रिकॉर्डिंग के आविष्कार तथा तार-संचार एवं बेतार के विकास ने मौखिक संचारण को बहुत अधिक सार्थक बना दिया। टेलीफ़ोन का आविष्कार तार-संचार में काफ़ी बड़ी प्रगति थी, जिससे प्रत्यक्ष वाणी संचार संभव हो गया। बेतार प्रसारण ने एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक मौखिक संचार-माध्यमों के और अधिक विकास में भारी योगदान दिया। टेलीफ़ोन से भिन्न, जिसे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति तक संचार हेतु ही प्रयोग किया जा सकता है, इसे एक व्यक्ति से अनेक व्यक्तियों तक संचारण हेतु प्रयोग किया जा सकता है, बशर्ते संकेत के सभी संभावित प्राप्तकर्ताओं के पास उचित उपकरण हो जिस पर वे उस संकेत को प्राप्त करें। वाणी और संगीत दोनों का बेतार प्रसारण विश्व के अनेक भागों में 20वीं शती पूर्वार्ध में ही शुरू हो चुका था और यह तेज़ी से दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बनता जा रहा था। इसने मुद्रित संचार माध्यम को अनेक मोर्चों पर चुनौती दी। प्रसारणकर्ता अपनी व्याप्ति की तत्कालिकता में मुद्रित समाचारपत्रों को मात दे सकते थे और साथ ही फ़ुरसत के समय पर भी कब्ज़ा कर सकते थे जो कि अन्यथा पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत होता था। जन संचार माध्यम अर्थात् 'मास मीडिया' शब्द बीस के दशक में राष्ट्रव्यापी रेडियों नेटवर्क और समाचारपत्रों व पत्रिकाओं के जन-प्रसार के आरंभ हो जाने के साथ प्रयोग में आया गया। जनसंचार-माध्यमों के पाठक/ श्रोता वर्ग को विशेष अभिलक्षणों वाले एक जन समाज के निर्माणकर्ता के रूप में देखा गया है, विशेष रूप से उन सामाजिक संबंधों का कणीकरण अथवा अभाव जो उसे आधुनिक जन संचार माध्यम तक नीवों, जैसे विज्ञापन एवं प्रचार के प्रभाव के प्रति खासतौर पर ग्रहणशील बना देते हैं।

इस काल में जनसंचार का दूसरा बड़ा लोकप्रिय माध्यम था – चलचित्रण अर्थात् सिनेमा। दुनियाभर में 'तीस के दशक में' और द्वितीय विश्व युद्ध के आसपास प्रचार के लिए फ़िल्म सर्वाधिक सशक्त यंत्र क्रियाविधियों में एक थी (फ़ैयर 1998)। प्रसारण (यह 'साठ के दशक' तक आते-आते आम बोलचाल में "रेडियो" हो गया) और चलचित्रण दोनों ही ये नए संचार माध्यम 'तीस के दशक' तक आते-आते मुद्रित संचार माध्यमों के आधिपत्य की अंदर ही अंदर जड़ें काटने लगे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

प्रभावशाली होने के बावजूद श्रव्य प्रसारण एवं चलचित्रण की अपनी सीमाएं थीं। पूर्ववर्ती ने अपना प्रभाव तात्कालिकता के सहारे बनाया, जबकि परवर्ती ने ऐसा शक्तिशाली दृश्य छवियों के प्रयोग, भावोत्तेजक संगीत तथा अपने विशाल श्रोतावर्ग की पहुँच से परे जीवन शैली के आह्वान द्वारा किया। जनसंचार माध्यमों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण, टेलीविज़न ने दोनों काम किए (वही)।

सन् 1936 में अपनी आजमाइशी शुरुआतों के साथ टेलीविज़न, 30 से कुछ ही अधिक वर्षों के भीतर, अब तक आविष्कृत संचार एवं सूचना के सबसे सार्वत्रिक एवं सबसे सशक्त माध्यम के रूप में सामने आया। यह फौरन ही घरेलू, सार्वभौमिक, तात्कालिक और सर्वव्यापी हो गया। रेडियो व सिनेमा की भाँति टेलीविज़न प्रसारण को भी एक जटिल और महँगी आधारिक ढांचा चाहिए था, यद्यपि सही मायनों में अस्सी के दशक में उस वक़्त गिरनी शुरू हो गई जब नई लघुकृत एवं अंकीय प्रौद्योगिकियाँ व्यापक रूप से उपलब्ध हो गई। संचार साधन के रूप में तीव्रता और विश्वासोत्पादकता के कारण ऐतिहासिक परिदृश्य में अपने पदार्पण के साथ जल्द ही यह जनसंचार माध्यमों का पर्याप हो गया।

आज की प्रौद्योगिक क्रांति परंपरागत संचार माध्यमों के लिए नई चुनौतियाँ और अवसर पैदा कर रही है। पहले कभी भी इतनी सारी सूचना इतने सारे लोगों के लिए इतनी सुलभ नहीं रही। नवीनतम जनसंचार माध्यमों में सूचना की मात्रा और तात्कालिकता अनुपम है। परंतु इसने परंपरागत माध्यमों की समाप्ति का कोई संकेत नहीं दिया है। छपाई के क्षेत्र में

समाचारपत्र उन घटनाओं के विवरण एवं विश्लेषण हेतु एक लोकप्रिय और शक्तिशाली माध्यम बने हुए हैं जो हमारे जीवन को रूपादित करती हैं। कुल मिलाकर, 20वीं शदी के जनसंचार माध्यमों ने दुनियाभर में हजारों लाखों लोगों के जीवन को समृद्धि एवं प्रोत्साहन प्रदान किया है। नीतिज्ञों व सरकारों की आशंकाओं तथा अंशतः विस्थापित सांस्कृतिक आभिजात्यों की शिकायतों के बावजूद, रेडियो, सिनेमा व सर्वोपरि टेलीविज़न जैसे जनसंचार माध्यमों ने इतिहास में किसी भी काल के मुकाबले अधिक लोगों को अधिक सूचना अधिक सुलभ कराई है।

भूमंडलीकरण की वर्तमान प्रक्रिया जिसने सत्तर के दशक में व तदोपरांत प्रौद्योगिकीय एवं अन्य विकास परिणामों में तीव्र परिवर्तनों के साथ एक त्वरित गति प्राप्त कर ली, अपना प्रभाव जनसंचार माध्यमों पर भी डाला। एक नेटवर्क से जुड़े संचार माध्यम के रूप में इंटरनैट के उद्गमन और अन्य प्रौद्योगिकीय उन्नतियों ने जनसंचार माध्यमों को एक नया प्रतिमान प्रदान किया।

आइए, जनसंचार माध्यमों पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का अध्ययन करते हैं।

सोचिए और कीजिए 26.1

क्या आप मानते हैं कि छपाई एवं रेडियो जैसे परंपरागत जनसंचार माध्यम प्रौद्योगिकीय विकास के वर्तमान दौर में कम महत्वपूर्ण हो गए हैं? अपने उत्तर का आधार बतलाएं।

26.3 जनसंचार माध्यम और भूमंडलीकरण

'अस्सी के दशक' में नई प्रौद्योगिकियों ने संचार जगत का स्वरूप ही बदल दिया। समाचारपत्रों का लेखन, सम्पादन एवं मुद्रण दूरस्थ स्थानों पर होने लगा जिससे विश्व के विभिन्न भागों से एक ही समाचारपत्र के एक साथ कई संस्करणों का प्रकाशन संभव हो गया। रेडियो संगीत विषयक और उप-संगीत विषयक प्रसारण केन्द्रों के साथ उत्तरोत्तर विशेष अभिप्राय के लिए प्रयुक्त होने लगा। वी सी आर अर्थात् वीडियो कैसेट रिकॉर्डर दुनियाभर में स्फुरित हो गए और अनेक विकासशील देशों में औपचारिक टी वी प्रसारण का एक प्रमुख विकल्प बन गए। साथ ही, उसने दृश्य संचार माध्यमों के प्रयोग में व्यापक लचीलापन ला दिया। टी वी चैनलों के प्रवर्धन के साथ ही जनसंचार माध्यमों के स्वरूप में एक निर्णायक परिवर्तन आया। इस प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों के विनियमन एवं निजीकरण की ओर विश्वव्यापी झुकाव से मदद मिली है, जो कि तब तक अधिकांश रूप में राज्य नियंत्रण में ही होता था। 'नब्बे के दशक' में 'फ़ाइबर ऑप्टिक्स' और 'डिजिटाइज़ेशन' द्वारा पोषित केबल टी वी प्रौद्योगिकियों तथा 'डाइरेक्ट सैटेलाइट ब्रॉडकास्टिंग' के विकास ने प्रसारण के वर्णक्रम (Spectrum) को विस्तारित कर दिया और अधिकारी वर्ग पर दबाव डाला कि वे सामान्य संचार और विशेष रूप से टेलीविज़न नियमों में ढील दें (केसेल्स 1998)।

वैश्वीकरण प्रवृत्तियों के चलते 'अस्सी के दशक' में सीमापार टीवी स्टेशनों का विकास बहुत तेज़ी से हुआ जो कि दुनियाभर में नज़र आया। सैटेलाइटों की धूम, विश्व के विस्तृत भूभागों पर डिश ऐन्टीनों के स्थापन-आधारों का विस्तृत विकास, टीवी के लघुकरण नियंत्रण कक्षों, कैमरों व छोटे पैमाने के प्रसारण केंद्रों में प्रगति जिसने संचार संप्रेषण में दूरी व समय को बेहद कम कर दिया, व्यापक रूप से सीमा पार टीवी प्रसारण की सफलता के द्वार खोल दिए। सीमा पार टीवी नेटवर्क केबल नेटवर्क अथवा सैटेलाइट संकेतों के सामूहिक अथवा वैयक्तिक रूप से सीधे सेटेलाइट से दुनियाभर में लाखों घरों तक पहुँचते हैं। सी एन एन एक ऐसा चैनल है जो टेलीविज़न की तत्काल, भूमंडलीय विश्वव्यापी स्थिति को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करता है। यह चैनल आज पूरे पृथ्वी ग्रह को समाविष्ट करता हुआ एक सेटेलाइट नेटवर्क के माध्यम से दुनियाभर के हर एक क्षेत्र में पहुँच सकता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

विश्व जनसंचार माध्यमों वाले व्यापार-संस्थानों की वृद्धि को जनसंचार संगठनों के विनियमन एवं निजीकरण की दिशा में एक समान्तर गति द्वारा उद्धीप्त किया गया है। यह बात अधिक स्पष्ट रूप से प्रसारण के क्षेत्र में देखी जा सकती है, जोकि विश्व के अनेक देशों में लाभेत्तर, जन सेवा, राज्य-समर्थित सत्ता स्वरूप स्थापित किए गए हैं। चूंकि पूंजीवाद और उद्यमी शक्तियाँ आर्थिक संगठन के प्रमुख आदर्श स्वरूप उभरी हैं इसलिए राज्य बाज़ार का नियंत्रक मात्र रह गया है। इस घटनाचक्र के विश्व-जनसंचार महाशक्तियों का दुनिया भर के दर्ज़नों राष्ट्रीय जनसंचार-माध्यम फ़र्मों के साथ साझीदारी करना संभव कर दिया है ताकि वे घरेलू बाज़ारों के लिए समाचार एवं मनोरंजन का उत्पादन, आदान-प्रदान एवं प्रसारण कर सकें। सेटेलाइट प्रसारण में हुई प्रगति ने विश्व के हर क्षेत्र के सांस्कृतिक एवं सूचना व्यापार में बड़े जनसंचार प्रतिष्ठानों की मौजूदगी सुनिश्चित कर दी है।

गत दो दशकों में अंतर्राष्ट्रीय संचार का संभवतः सर्वाधिक सार्थक विकास परिणाम राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर व पार जनसंचार-माध्यम स्वामित्व का बढ़ता संकेंद्रण ही रहा है। जनसंचार माध्यम स्वामित्व के संकेंद्रण के विश्व भर में समाचार (व अन्य सांस्कृतिक उत्पाद) एकत्रण एवं प्रसारण के तरीकों हेतु दो महत्वपूर्ण निहितार्थ रहेः प्रथम, जन संचार माध्यमों के स्वामित्व एवं निजीकरण के साथ ही समाचारों व अन्य सांस्कृतिक उत्पादों का व्यवसायीकरण भी हो गया, यथा एक ऐसा रुझान जो विश्व-स्तर पर सौन्दर्यपरक, तकनीकी एवं व्यावसायिक मानकीकरण द्वारा अभिलक्षित हुआ। और दूसरे, रुपर्ट मर्डोक जैसे अंतर्राष्ट्रीय "मीडिया मुग़लों" और राजनीतिक रूढ़िवाद के बीच मैत्री-संबंधों ने उत्तरोत्तर "नरम" जनसंचार विषयवस्तु की ओर प्रवृत्त किया है। ये दृश्यघटनाएं भूमंडलीकरण प्रक्रिया का ही हिस्सा हैं।

वर्तमान में अंतर्राष्ट्रीय जनसंचार के क्षेत्र में पाँच प्रमुख संघबद्ध खिलाड़ी हैं। ये महाशक्तियाँ हैं: न्यूज़ कॉर्प, डिज़्नी/ कैप सिटीज़, टाइम वॉर्नर, वायाकॉम, और टी सी आई। इनके अतिरिक्त, दो अन्य "लघु-महाशक्तियाँ– जेनरल इलैक्ट्रिक एवं वैस्टिंग्हाउस विश्व-अभीप्सा रखते हैं। इन सात व्यापार-समवायों में वायाकॉम और टी सी आई को छोड़कर सभी के पास प्रमुख समाचार घटक हैं। न्यूज़ कॉर्प ही विश्व भर में समाचारपत्रों, टेलीविज़न स्टेशनों, व सेटेलाइट प्रसारण प्रणालियों (स्टार टी वी व स्काई टीवी समेत) का स्वामी अथवा महत्वपूर्ण साझीदार है। डिज़्नी/ कैप सिटीज़ के पास ए बी सी का स्वामित्व है। टाइम वॉर्नर द्वारा अभी हाल में टर्नर बोर्डकास्टिंग का परिग्रहण जो सी एन एन का सर्जन और स्वामी है, उसे समाचार प्रापण एवं प्रसारण में एक बड़ी अंतर्राष्ट्रीय विद्यमानता प्रदान करता है। जेनरल इलैक्ट्रिक के पास एन बी सी है और वैस्टिंगहाउस के पास सी बी एस। एक को छोड़कर ये सभी महा-निगम अमेरिका में अवस्थित हैं; न्यूज़ कॉर्प. आस्ट्रेलिया में संस्थापित है (http://www.idsnet.org)।

टेलीविज़न नेटवर्कों में विविध चैनलों एवं कार्यक्रमों के प्रचुरोद्भव के साथ ही विशेषज्ञों का मत बना है कि विकास जन समाज से विखंडित समाज की ओर हुआ है क्योंकि नई संचार प्रौद्योगिकियाँ वैविध्यपूर्ण, विशिष्टीकृत सूचना पर ध्यान देती हैं और इसी कारण श्रोतावर्ग उत्तरोत्तर विचारधाराओं, अभिरुचियों एवं जीवनशैलियों द्वारा विखंडित हो जाता है (टॉफ़्लर 1980, आइटो 1991)।

लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर जनसंचार माध्यमों का प्रभाव

टेलीविज़न व जनसंचार के अन्य माध्यम प्रौद्योगिकी, संस्कृति, वाणिज्य एवं राजनीति का एक संघटन है। श्रव्य-दृश्य कूटों को प्रयोग करने वाले एक सांस्कृतिक उत्पाद स्वरूप यह अपने उत्पादनकर्ताओं एवं उस सामाजिक यथार्थ जिसमें वे तैयार किए जाते हैं, के सांस्कृतिक मूल्यों को प्रस्तुत करता है। कहा जाता है कि टेलीविज़न देखना महज एक उपभोग की क्रिया नहीं है "बल्कि सांस्कृतिक अभिप्रायों के कूटानुवाद (Decoding) की जटिल प्रक्रिया" है (वैंग

व अन्य 2000: 4)। संचार माध्यमों के इस बढ़ते अंतर्राष्ट्रीयकरण ने समाज के आर्थिक, सामाजिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों पर अपना प्रभाव छोड़ा, जिसने "कल्पित समाजों" को जन्म दिया (एंडरसन 1983)। नब्बे के दशक तक भूमंडलीकरण के अनेक छात्र संचार माध्यम अध्ययन के लिए प्रमुख विषयों एवं केन्द्रस्थ विषयवस्तु के रूप में उपभोग और पारदर्शीय उपभोग समुदायों के गठन को लेना शुरू कर दिया (ग्रिफ़िन 2002)। नब्बे के दशकोपरांत ट्रान्सनेशनल अर्थात् पारदेशीय टेलीविज़न का भीषण आक्रमण देखा गया, जिसे "अंतर्राष्ट्रीय उपग्रह प्रसारण", "सीमारहित", "सेटेलाइट टेलीविज़न", आदि नामों से भी जाना गया। इसने संचार के अनूठे तरीके की ओर प्रवृत्त किया जहाँ यद्यपि अधिकांश श्रोतावर्ग एक देश के सीमाप्रांत में ही रहता था, संचार माध्यम पारदेशीय श्रोतावर्ग को जन्म देते हुए देशान्तर हो गए। अनेक प्रकार की संकल्पनाएं जैसे सांस्कृतिक पराधीनता, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद; मीडिया साम्राज्यवाद (शिलर 1976, बॉय-बैरे 1998, ली 1980), संचार साम्राज्यवाद, इलैक्ट्रॉनिक उपनिवेशवाद, आदि अस्तित्व में आ गईं। इन सभी संकल्पनाओं में मुख्य रूप से पश्चिम से विश्व के अन्य भागों की ओर देशान्तर टेलीविज़न कार्यक्रमों का प्रवाह था।

"विश्व-ग्राम" या "ग्लोबल विलिज" संबंधी मैक लुआन (1964) का मानसदर्शन भी जनसंचार माध्यमों की इसी अंतर्राष्ट्रीयकरण प्रक्रिया द्वारा संपर्कसूत्र बनी स्थानीय/क्षेत्रीय संस्कृति में विदेशी संस्कृति के प्रवेश द्वारा ही प्रेरित था। एक विश्व-ग्राम संबंधी उनकी परिकल्पना ही उन विभिन्न प्रकीर्ण समाजों पर सांस्कृतिक तकनीकों के अंतर्राष्ट्रीयकरण के गहरे प्रभाव का विश्लेषण करने हेतु सर्वप्रथम ठोस प्रयास था जो एक ही प्रकार के संकेतों एवं संदेशों के प्रभाव में छोड़े जाते हैं। उनके दृष्टिकोण ने संस्कृतियों एवं समाजों के एक अज्ञात रूपान्तरण "विश्व-ग्राम" की परिकल्पना की ओर प्रेरित किया जोकि 'समरूपता' और 'एकरूपता' का एक नया सांस्कृतिक स्थल था। हाल के दशकों में प्रौद्योगिकीय विकास परिणामों ने भूमंडलीकरण की एक नयी जटिलता एवं विविधता को प्रवर्तित किया है, न सिर्फ़ किसी 'विश्व-संस्कृति' की, जो कि आज भी समाजशास्त्रीय भूमंडलीकरण बहस का मुख्य विषय है (टॉम्लिन्सन 1999), बल्कि राजनीतिक संचार की।

MAADHYAM IAS

भूमंडलीकरण प्रक्रिया के एक नए आयाम – विश्व 'जन' क्षेत्र संबंधी धारणाओं ने 11 सितम्बर 2002 से एक नया बोध कराया है (वोक्मर 2003)। इन जनक्षेत्रों में भी निजी एवं व्यक्तिगत क्षेत्रों का जन्म हुआ। इंटरनैट ने, मानुअल कास्तल (1996) के तर्कानुसार, राजनीतिक भूमंडलीकरण प्रक्रिया की गतिकता एवं जटिलता को बढ़ा दिया है और एक नए विश्व "नेटवर्क समाज" या जिसे वह "नेटवर्कबद्ध व्यक्तिवाद" कहते है, को जन्म दिया है (कास्तल 2001)। उनके अनुसार, यद्यपि संचार माध्यम वास्तव में वैश्विक रूप से अंतर्सम्बद्ध हो गए हैं, और कार्यक्रम व संदेश विश्व-नेटवर्क में संचरित होते हैं, हम किसी विश्व-ग्राम में नहीं रह रहे हैं, अपितु रीतिबद्ध कुटीरों में रह रहे हैं जो विश्व-स्तर पर उत्पादित होती हैं और स्थानीय स्तर पर वितरित (वही)। अप्पादुरई का भी कहना है कि भूमंडलीकरण की मुख्य समस्या है –सांस्कृतिक सजातीयता और विजातीयता के बीच "भाषायी तनाव", एक ऐसी मीडिया द्वारा कायम की गयी जो मुख्यतः आज की भाषायी तनाव निरपवाद रूप से जीवन-जगत को प्रभावित करता है।

एक विश्वास यह भी ज़ोर पकड़ रहा है कि जनसंचार माध्यमों के मार्फ़त संस्कृति का प्रसार असंतुलित है और तदनुसार उसने समाज में "सांस्कृतिक साम्राज्यवाद" शब्द प्रयोग किए जाने की ओर प्रवृत्त किया है। टॉम्लिन्सन (पौ 2004 द्वारा उद्धृत) सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को इस रूप में परिभाषित करते हैं: 'एक देशी संस्कृति की कीमत पर किसी विदेशी संस्कृति के मूल्यों एवं आदतों के उन्नयन एवं प्रसार हेतु राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति का प्रयोग। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद सिद्धांत के अनुसार, एक संस्कृति (प्रायः विकसित देश) एक अन्य समाज (प्रायः विकासशील देश) को सांस्कृतिक उत्पाद (इलैक्ट्रॉनिक/जनसंचार माध्यम

प्रस्तुतियाँ) नियति करता है, जिसका लक्ष्य होता हैः (क) देशी सांस्कृतिक प्रतिमानों का निराकरण करना और (ख) उनके स्थान पर "विदेशी" प्रतिमान लाना जिनसे बदले में आशा की जाती है कि वे (ग) संस्कृति का रूप परिवर्तन कर दें ताकि वह अपनी स्वायत्तता खो दे और भूमंडलीय पूंजीवादी विश्व व्यवस्था में 'आत्मसात' हो जाए। अनेक तरीकों से यह हर्बर्ट मार्क्यूज़ जैसे लोगों की ओर से संचार माध्यमों की समालोचना और विचारधारा के परिणामस्वरूप जन्म लेता है। मार्क्यूज़ व अन्य के अनुसार, संचार माध्यमों को शासक वर्गों की विचारधारा को प्रोत्साहन देने की एक युक्ति स्वरूप और जनसाधारण की "मिथ्या चेतना" को क़ायम रखने के लिए प्रयोग किया जाता है। जबकि उनका कहना है कि इलैक्ट्रॉनिक संचार माध्यम देशज जनसमाज पर एक ख़तरा स्वरूप हैं, उन्हें नई प्रौद्योगिकी के समर्थन में अपने परंपरागत रीति-रिवाज़ एवं प्रथाएं छोड़ने पर बाध्य कर वे देशी समाजों के दृढ़ "मौखिक" अभिलक्षण का तलोच्छेदन कर रहे हैं। कुछ विद्वानों (मैण्डर 1991) का कहना है कि टेलीविज़न, रेडियो, व अन्य इलैक्ट्रॉनिक संचार माध्यम मौक़ा दे रहे हैं कि देशी लोग विश्व-मंच पर अपने आपको साबित करें और अपनी आवाज़ सब तक पहुँचायें।

सोचिए और कीजिए 26.2

भूमंडलीकरण प्रक्रिया को गति बढ़ाने में जनसंचार माध्यमों की भूमिका पर चर्चा करें।

26.4 जनसंचार माध्यमों के रूप में इंटरनैट

गत डेढ़ शताब्दी के अधिकांश भाग में संचार प्रौद्योगिकियों के विकास का सबसे प्रभावशाली अभिलक्षण रहा – एक ऐसी गति के साथ श्रोतावर्ग की एक सदा वर्धमान श्रृंखला तक सूचना पहुँचाने की क्षमता जो संचार को तत्काल क्रियान्वित करे। प्रसारण एवं परस्पर संचार दोनों प्रौद्योगिकियों की गति ने समय और दूरी, दोनों से परे सभी प्रकार के संबंधों को नाटकीय रूप से संकुचित करने में मदद की है। अपने सभी रूपों में संचार माध्यम उद्योगोत्तर समाजों में वैयक्तिक, सामुदायिक एवं राष्ट्रीय पहचानें कायम करने में एक प्रमुख प्रवर्तक शक्ति बन गए। कई सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों की उद्धारक प्रयोज्यक्षमता को 'इंटरनैट' के उद्गमन से और अधिक मज़बूती मिली है, यथा एक विकेन्द्रीकृत, परस्पर क्रियाशील, अपेक्षाकृत अधिक लोकतांत्रिक नेटवर्क जिसने वास्तविक समुदायों एवं एकाधिक वास्तविकताओं को जन्म दिया।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

बिंब-विज्ञापन के लिए प्रौद्योगिकी एवं उसकी व्यावसायिक संभावनाओं हेतु एक प्रदर्शन-पेटिका के रूप में अपनी संतुलित शुरूआत के साथ इंटरनैट ने संचार माध्यम परिवेश को विस्तार प्रदान करने में अपनी महती भूमिका निभाई है। इंटरनैट मूल रूप से दूरसंचार साधनों की क्षमता पर निर्भर करता है। ऐसा माना जाता है कि कम्प्यूटर टेले संचार और प्रसारण एक ही डिजिटल रूप में समा जाते हैं और एक ही नेटवर्क के ज़रिए प्रसारित किए जाते हैं। इस रूपांतरण में देशी भाषाओं का इस्तेमाल किया जाता है और परस्पर संवाद स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। जिस चैनल में यह प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है उसे 'स्वाभाविक' चैनल माना जाता है। इंटरनैट एक ऐसा ही जनसंचार माध्यम है जिसका प्रभाव और प्रसार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

कुछ विद्वानों का दावा है कि इंटरनैट एक ऐसा जनसंचार माध्यम बन गया है जिसे अधिकतर अपेक्षाकृत सुस्त उपभोक्ताओं द्वारा प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार वृहद विषयवस्तु प्रस्तुत करने वाले इस पर हावी रहेंगे (मार्गोली आर.)। एक अन्य दृष्टिकोण भी है, जो कहता है कि इंटरनैट कोई जनसंचार माध्यम नहीं है। उनके अनुसार, चूंकि इंटरनैट महा-नेटवर्क है जो असंख्य संबद्ध कम्प्यूटर नेटवर्कों के छोटे-छोटे समूहों को आपस में जोड़ता है और इंटरनैट के तीन प्रकार्यों पर विचार करते हुए, नामतः (i) इलैक्ट्रॉनिक डाक या ई-मेल (प्रेषिती

अथवा एकाधिक प्रेषितों को संदेशों का संप्रेषण), (ii) विज्ञप्ति पर (साधारण बुलेटिन बोर्ड की भांति) और (iii) विश्वव्यापी वैब (विविध्र सूचना वाहित कर इंटरनैट में भंडारित दस्तावेज), यह स्पष्ट होता है कि यह केवल एक ऐसे कम्प्यूटर धारक के लिए उपलब्ध होता है जो कम्प्यूटरों के नेटवर्क से जुड़ा हो; तदनुसार इसे जनसंचार माध्यम नहीं माना जा सकता। उनका विचार है कि इंटरनैट कम्प्यूटरधारक को संदेश भेजने के लिए ही है और वह आम जनता को संदेश या सूचना नहीं पहुँचाता है जैसा कि जनसंचार माध्यम करते हैं।

श्रोतावर्ग के लिहाज से इंटरनैट व अन्य जनसंचार माध्यमों की तुलना के प्रयास होते रहे हैं। बरान एवं डैविस जनसंचार को एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जिसमें शामिल होते हैं: (i) एक अंगविशिष्ट प्रेषक, (ii) संदेशों के वितरण में संलग्न और (iii) एक वृहद् श्रोतावर्ग की ओर दिशानिर्देशित। उनका कहना है कि प्रसारण इस प्रतिमान में सही बैठता है। इंटरनैट, जिसे एक ऐसी परस्पर सक्रिय पाइपलाइन माना जाता है जो प्रसारण की संभावना को अपवर्जित करती है, इसके पास परंपरागत तरीके से श्रोतावर्ग नहीं हो सकता। परंपरागत प्रसारण से भिन्न, इंटरनैट समुदायों में वस्तुतः परस्पर क्रियाशील एवं जीवनोपयोगी समुदायों की संभावना सम्मिलित नहीं है। इस अर्थ में इंटरनैट का तथाकथित श्रोतावर्ग सीमित और वर्ग-विशेष ही है।

मोरिस एवं ओगन इंटरनैट को एक जनसंचार माध्यम के रूप में परिभाषित करते हैं क्योंकि यह प्रौद्योगिकी के माध्यम से मध्यस्थ एक जन-श्रोतावर्ग को सम्बोधित करता है (मोरिस एवं ओगन 1996)। वे उत्पादकों और इंटरनैट पर श्रोतावर्गों को चार समूहों में बाँटते हैं:

- अलग-अलग समयों पर एक व्यक्ति द्वारा दूसरे को भेजा गया संचार (ई-मेल)
- अलग-अलग समयों पर कई व्यक्तियों द्वारा कई व्यक्तियों को भेजा गया संचार (यूजनेट और समाचार समूह)
- एक ही समय पर एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को एक व्यक्ति द्वारा कुछ व्यक्तियों से किया गया संचार (विषय समूह, किसी वस्तु का निर्माण, भूमिका निर्धारण खेल, वार्तालाप कक्ष)
- अलग-अलग समयों पर किया गया संचार (खोज, कई से एक, एक से एक, एक से कई, स्रोत-प्राप्तकर्ता संबंध) (मोरिस एवं ओगन 1996)

इस प्रकार, उनके अनुसार इंटरनैट जनसंचार माध्यम के रूप में कुछ तो योग्यता रखता है, कुछ नहीं; अतः इस माध्यम के श्रोतावर्ग को परिभाषित करना बेहद मुश्किल है।

चूँकि वर्ल्डवाइड वैब (www) पूर्व निर्धारित विषयवस्तु को ही प्रतिमान बनाती है, इंटरनैट उत्तरोत्तर एक परंपरागत जनसंचार माध्यम के सदृश है (रोस्की)। टिमॉथी रोस्की का कहना है कि विश्वव्यापी वैब का मुख्य उद्देश्य विषयवस्तु (और, इस प्रकार, इंटरनैट के घरेलू प्रयोज्य संसाधन की पूर्ति) का उत्पादन नहीं वरन् पहले से ही उत्पादित सामग्री को प्रस्तुत करना होता है। वैब से जुड़ी प्रमुख संक्रिया अपनी स्वयंकृत विषयवस्तु उत्पादित करना नहीं बल्कि विषयवस्तु के लिए सर्फिंग (surfing) करना है (वही)। उनका निष्कर्ष है कि यदि सामग्री देखने पर ही ज़ोर दिया जायेगा तो इंटरनैट टेलीविज़न के सदृश ही एक संचार माध्यम बन जायेगा।

कुछ विद्वान, नए संचार साधन की चर्चा करते समय, अब भी श्रोतावर्ग का संदर्भ देते हैं। वे प्रयोगकर्ताओं अथवा उपभोक्ताओं की बात करते हैं (पब्लिक एवं डेनिस 1998)। विपणन प्रतिमान की तर्कसंगति संचार माध्यम उद्योग हेतु बदलते आय आधार में निहित है। विज्ञापन समर्थित संचार माध्यम आयें 'नब्बे के दशक' बारम्भ से गिरती जा रही हैं जबकि प्रयोगकर्ता समर्थित संचार माध्यम जैसे केबल, सेटेलाइट, ऑनलाइन सेवाएं, और प्रति-अवलोकन-

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

भुगतान (Pay-per-view) निरंतर उन्नति कर रहे हैं (वही)। इंटरनैट आधारित संचार माध्यम परिदृश्य में, श्रोतावर्ग एक आय-प्रवाह और उपभोक्ता सूचना का स्रोत है और इस अर्थ में इंटरनैट एक जनसंचार माध्यम है।

इंटरनैट ही ऐसा पहला माध्यम है जो एक श्रोता को असम्पादित सामग्री अथवा प्रस्तुत किए जाने वाले परिणामों के विषय में जानकारी सुलभ कराता है, जिसमें न तो प्रसारण माध्यमों के समय-अवरोध होते हैं और न ही परंपरागत प्रैस की स्थान सीमाबद्धताएँ। इसको प्रायः उन अभिलक्षणों में से एक माना जाता है जो इंटरनैट को अन्य संचार माध्यमों से अलग करते हैं। यह इंटरनैट श्रोताओं की एक सहभागितापूर्ण, लोकतांत्रिक जनता के रूप में धारणा को पोषित करता हैं उदाहरण के लिए, प्रायः यह दावा किया जाता है कि इंटरनैट मतदाताओं को प्रत्याशियों एवं मुद्दों के विषय में निर्बाध सूचना प्रदान कर लोकतांत्रिक भागीदारी को उत्साहित करता है (सैल्नो)।

26.5 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी–दो प्रौद्योगिकियों का संगम

संचार प्रौद्योगिकियों में संसरण अथवा अभिसरण का मतलब है विभिन्न प्रकार की संचार प्रौद्योगिकियों का परस्पर मिलन। तीव्र प्रौद्योगिकीय उन्नतियों के गत कुछ दशकों के दौरान दूरसंचार माध्यमों, इंटरनैट एवं जनसंचार माध्यमों के बीच सीमाएं घटी हैं। संचार प्रौद्योगिकियों के संसरण का अर्थ है एक अन्तस्थ अर्थात् सिरे पर स्थित यंत्र; उदाहरण के लिए, एक मोबाइल टेलीफ़ोन अथवा एक डिजीटल टेलीविज़न को अनेक अलग-अलग सेवाओं के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

अंकीय युग (digital age) में अपना वजूद कायम रखने के लिए अधिकांश जनसंचार स्रोत नई प्रौद्योगिकी यानी इंटरनैट के साथ जुड़ जाने के तरीके खोजते हैं। इंटरनैट नामक नए संचार माध्यम हेतु ऊँची मांग होने के कारण, जनसंचार के अलग स्रोत जैसे समाचारपत्रों व अनेक टीवी चैनलों ने इस स्रोत का लाभ उठाना शुरू कर दिया और इंटरनैट साइट्स पर अपने होमपेज बनाने लगे। इंटरनैट व अन्य संचार स्रोतों के बीच अंतर यह है कि इंटरनैट सूचना प्रौद्योगिकी, जैसे अंकीय ध्वनिलेखन प्रणाली, श्रव्य, दृश्य व प्रसारण माध्यम, आदि सभी कुछ एक ही माध्यम में उपलब्ध करा देता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

उदीयमान सूचना समाज की विशेषता यह भी है कि दोनों, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियां, जैसे टेलीफ़ोन, क्म्प्यूटर, केबल टीवी व अन्य संचार प्रौद्योगिकियां, परस्पर पूरी तरह विलय हो रही हैं ताकि समय व दूरी को घटाकर शून्य प्राय कर सूचना के प्रभावशाली संचारण हेतु कारगर एक सत्ता कायम की जा सके। अंकीयकरण, प्रौद्योगिकी-संसरण, एवं नेटवर्किंग (उत्तर-आधुनिक प्रौद्योगिकियों की सभी विशेषताएं) जनसंचार माध्यमों की प्रवृत्ति एवं प्रत्याक्षाओं में एक रूप-परिवर्तन की ओर प्रवृत्त करते हैं (कनिंगघम एवं टर्नर 2002)। इन प्रौद्योगिकीय उन्नतियों ने जनसंचार माध्यमों को अधिक संक्रियाशील बना दिया है। उदाहरण के लिए, एस एम एस (SMS) बोटिंग मुद्रण (जैसे समाचार पत्र) एवं प्रसारण माध्यम (जैसे टेलीविज़न व रेडियो), दोनों ही दृष्टांतों में आजकल लोकप्रिय हो गया है और श्रोतावर्गीय संक्रिया में वृद्धि की है। संचार प्रौद्योगिकियों का संसरण और सुलभता एवं सुपुर्दगी के अंकीय स्वरूप संचार माध्यमों से जुड़ने हेतु और भी तरीके सुझाते हैं। संचार के बेतार स्वरूप का संसरण श्रोतावर्ग को एक और भी ऊँचे अंतर्क्रियाशील मंच पर पहुँचा देता है। उदाहरण के लिए, इग्नू अध्ययन केंद्र में बैठा एक छात्र विश्वविद्यालय में बैठे विषय-विशेषज्ञ को अपने यहाँ टी वी स्क्रीन पर देखकर भी उनसे विचार-विमर्श कर सकता है। एक अन्य उदाहरण है – कुछ औपचारिक वेबसाइटें श्रोतावर्ग का आहवान करती हैं कि वे मत दें और निर्धारित करें कि क्या प्रसारित किया जाये अथवा एक दर्शक/ श्रोता अपने टीवी अथवा रेडियो में प्रसारण के दौरान ही कार्यक्रम के प्रस्तुतकर्ता से कोई सवाल पूछ सकता है।

यह कथन महत्वपूर्ण होगा कि संसरण सभी समकालिक या समकालीन संचार माध्यमों एवं संचार प्रौद्योगिकियों की एक शर्त प्रतीत होता है; सभी वर्तमान संचार माध्यमों को अन्य संचार-माध्यम स्वरूपों से जोड़ा जा सकता है और उनके बीच सीमाबद्धता बाज़ार में नए प्रौद्योगिकी विकास-परिणामों के आते ही धुंधली पड़ती जा रही है। टेलीविज़नों व कम्प्यूटरों के बीच संसरण की सुविधा वाली नई प्रौद्योगिकियां विकसित कर ली गई हैं। विशेषज्ञों का पूर्वानुमान यह भी है कि टेलीविज़न और इंटरनैट का पूरी तरह अभिसरण हो जायेगा जहाँ इंटरनैट टी वी सैट्स के माध्यम से ही उपलब्ध हो जायेगी (डीरी 2003)।

26.6 सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी मज़बूत सेवा अर्थव्यवस्था

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के संसरण और परिणामी प्रौद्योगिक क्रांति का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है सार्थक निहितार्थों के साथ आर्थिक कार्यकलापों के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहार हेतु इन प्रौद्योगिकियों का उदय और प्रयोग। इन नई सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के अनेक लाभ हैं: (i) ये आवृतिमूलक एवं ख़तरनाक कार्यों से छुटकारा दिलाकर जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाती हैं, और (ii) ये बेहतर निर्णयन एवं लागत-सार्थक प्रक्रियाओं के माध्यम से कुशलता एवं उत्पादकता में वृद्धि करती हैं (एब्रोल एवं जैन 1990)। तीव्र प्रौद्योगिकीय विकास के गत कुछ दशकों में कृषि व उद्योग जैसी अन्य आर्थिक गतिविधियों के मुकाबले सेवा अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई। इसका मुख्य कारण था कि सेवा अर्थव्यवस्था से जुड़ी गतिविधियाँ नई सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों की मदद से उपभोक्ताओं के लिए कम खर्चीली और अधिक सुविधाजनक हो गईं। यद्यपि सेवा क्षेत्र ही इन नई सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के प्रभाव को महसूस करने वाला सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र था, अंतर्राष्ट्रीय अनुभवज्ञान के सर्वेक्षण स्वरूप दर्शाते हैं कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का प्रभाव देश-देश और क्षेत्र-क्षेत्र में भिन्न-भिन्न है तथा यह प्रभाव काफ़ी हद तक उस तरीके द्वारा निर्धारित होता है जिससे देश उसे प्रयोग करता है। यह भी साक्ष्य सामने आया है कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के प्रवेश को कार्य-सूची में एक बुनियादी परिवर्तन की अपेक्षा होती है। यह कार्य जिसमें पहले अवधारणाओं के संयोजन एवं संज्ञानात्मक प्रक्रिया के साथ अर्थ-प्रयोग की आवश्यकता होती थी, अब काफ़ी हद तक कार्य-प्रक्रिया के अन्य घटकों पर नियंत्रण कर स्वचलन के साथ संज्ञानात्मक प्रक्रिया पर निर्भर करता है (वही)।

MAADHYAM IAS

आइए, अब देखते हैं कि किस कारण सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के उद्‌गमन ने सेवा अर्थव्यक्स्था के विकास में योगदान दिया। इकाई 22 में हम पहले ही देख चुके हैं कि सेवा अर्थव्यवस्था क्या है और उसकी विभिन्न श्रेणियाँ क्या हैं। यहाँ भी हम सेवा अर्थव्यवस्था के अभिलक्षणों पर सरसरी दृष्टि डालेंगे।

भारत में वितरणात्मक व्यापार आँकड़ों के अनुसार, सेवा क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों की एक व्यापक श्रृंखला शामिल है। इसमें थोक व खुदरा बिक्री से जुड़ी सेवाएं आती हैं, जैसे होटल व रेस्तराँ, स्थावर संपदा, मशीनरी किराए व पट्‌टे पर लेना-देना, डेटा प्रोसैसिंग, विज्ञापन, चलचित्र, प्रसारण, छायांकन, मरम्मत कार्य एवं कुछ व्यक्तिगत सेवाएं। होटल व रेस्तराँ, परिवहन, भंडारण, संचार, स्थावर संपदा व बसेरों का स्वामित्व, बैंकिंग एवं जन प्रशासन के अतिरिक्त, इसमें व्यापार सेवाओं एवं 'अन्य सेवाओं' संबंधी क्षेत्र भी शामिल हैं। व्यापार सेवाओं में आते हैं – व्यापार लेखावर्ग, सॉफ़्टवेयर डेवेल्पमेंट और डेटा प्रोसेसिंग, व्यापार एवं प्रबंधन परामर्श, विज्ञापन एवं अन्य व्यापार सेवाएं। 'अन्य सेवा' क्षेत्र में आते हैं – शिक्षा, अनुसंधान एवं विज्ञान संबंधी सेवाएं, शालिहोत्री सेवाओं समेत चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, स्वच्छता सेवाएं, धार्मिक एवं अन्य सामुदायिक सेवाएं, आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन सेवाएं तथा व्यक्तिपरक सेवाएं जैसे घरेलू, धुलाई, रंगाई एवं शुष्क धुलाई तथा हज्जाम एवं सौन्दर्य-प्रसाधन दुकानें। यदि हम इसे सेवा अर्थव्यवस्था के कार्यनिष्पादन के आधार पर देखें तो पायेंगे कि गत दशक में अनेक आर्थिक सहयोग विकास संगठन के सदस्य देशों के सेवा क्षेत्र में तीव्र रोज़गार वृद्धि

कुछ खास बाज़ार सेवाओं के सशक्त कार्यनिष्पादन से ही हुई है, उल्लेखनीय रूप से दूरसंचार, परिवहन, थोक एवं खुदरा व्यापार, वित्त, बीमा एवं व्यापार सेवाएं। पिछले दशक में इन सेवाओं ने आर्थिक सहयोग विकास संगठन के क्षेत्र में पैदा किए गए समस्त रोज़गार के लगभग 60 प्रतिशत का श्रेय लिया। इसके अतिरिक्त इनका अभिलक्षण रहा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों जैसी उत्पादकतावर्धक प्रौद्योगिकियों का बढ़ता प्रयोग (आर्थिक सहयोग विकास संगठन 2005)। सेवाओं के क्षेत्र में, जबकि दूरसंचार एवं व्यापार सेवाओं का अंश 60 प्रतिशत है, शेष 40 प्रतिशत सामुदायिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत सेवाओं, स्वास्थ्य एवं शिक्षा समेत, की ओर से ही है (वही)। केंद्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार, भारत में वर्ष 2005-2006 के पूर्वार्ध में सेवा क्षेत्र में अकस्मात् तेज़ी आई। सेवाओं में, सबसे ऊँची वृद्धि दर व्यापार में देखी गई, होटल, परिवहन एवं संचार में 12 प्रतिशत, जबकि वित्त प्रबंध, बीमा, स्थावर संपदा एवं व्यापार सेवाओं में 9.9 प्रतिशत वृद्धि हुई (हिन्दुस्तान टाइम्स 1 दिसम्बर, 2005)।

प्रौद्योगिकीय नवपरिवर्तन, खासकर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के क्षेत्र में, जिन्होंने सूचना समाज के पदार्पण को आधार प्रदान किया, आर्थिक सहयोग विकास संगठन के सदस्य-देशों में तेज़ी से दिखाई दिए। इन देशों के आर्थिक विकास का विश्लेषण दर्शाता है कि अन्य कारकों में, सेवा क्षेत्र के रूपान्तरण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह देखा गया है कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ सेवाई फ़र्मों को पूरी मूल्य श्रृंखला में नए व्यापार प्रतिमान लागू करने, नए प्रयोग विकसित करने, व्यापार प्रक्रिया को सुधारने व पुनर्कल्पित करने, ग्राहक सेवाएं प्रोत्साहित करने और कुशलता बढ़ाने में मदद कर सकती हैं। यह इन प्रौद्योगिकियों का काफ़ी प्रयोग सेवा क्षेत्र में भी दर्शाता है। सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी क्रांति के सहारे लोग अपना बैंक खाता शेष रैक्टर संदेश द्वारा प्राप्त कर सकते हैं, उनके बैंक खाते में सीधे चुकाए गए पेन्शन एवं अन्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं और कर ऑनलाइन चुका सकते हैं। इन प्रौद्योगिकियों से जुड़े ऐसे नव-प्रवर्तन अपनी वर्तमान कार्यप्रणाली को बदल डालने के लिए एक विधि स्वरूप सभी सेवा क्षेत्रों में संगठनों द्वारा व्यापक रूप से अपनाए गए हैं। किस वजह से सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ ऐसे संगठनों का महत्व बढ़ा सकती हैं, इसके चार मुख्य कारण हैं: (क) ये कार्यविधान बदल देती हैं; (ख) ये परस्पर क्रियाएं बदल देती हैं; (ग) ये सीमापार सूचना की साझीदारी में सक्षम बनाती हैं; और (घ) ये दूरी संबंधी अवरोधों को दूर करती हैं। व्यवहार में लाए जाने पर ये चारों कारक सभी आर्थिक क्षेत्रों, खासकर सेवा क्षेत्र को उन्नत बनाने में योगदान देते हैं। इन प्रौद्योगिकियों को पारदेशीय सेवाओं की कुशलता, पृष्ठ कार्यालय और कर्मचारी वर्ग को 'उत्पादक समय' सुधारने हेतु भी अति महत्वपूर्ण माना जाता है। इनको हस्तांतरण प्रणाली के 'विकल्प' – सम्मुख, फ़ोन या ऑनलाइन प्रस्तुत करने हेतु महत्वपूर्ण और दीर्घ-स्थापित कार्यप्रणालियों को बदल डालने में भी सक्षम माना जाता है; उदाहरण के लिए, समाज-सेवा कर्मियों को इलैक्ट्रॉनिक सूचना हेतु दूरस्थ सुगमता प्रदान कर, जिससे वे अधिक समय तक 'चलने-फिरने लायक' रहने और अधिक लोगों को देख पाने में सक्षम बनते हैं। ये प्रौद्योगिकियाँ प्रयोगकर्ताओं को अपेक्षाकृत अधिक तीव्र, वृहत्तर और अधिक परस्पर क्रियाशील तानेबानों में काम करने में सक्षम कर उनका महत्व बढ़ाती हैं। ये व्यापार लागतों को घटाती हैं और नव-परिवर्तनों को तीव्र करती हैं क्योंकि लोग और बाज़ार परस्पर बेहतर जुड़ जाते हैं – ज्ञान आदान-प्रदान में भी और माल व्यापार में भी। निष्कर्षतः, व्यापार-समवाय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का प्रयोग कुशलता बढ़ाने और लागतें कम करने में करते हैं।

सोचिए और कीजिए 26.3

कारकों का विश्लेषण करें कि क्यों सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के युग में सेवा क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक विकास हुआ है।

ऑस्ट्रेलिया सरकार के 'संचार, सूचना प्रौद्योगिकी एवं कला विभाग' द्वारा कराये गए एक तथ्याध्ययन में पाया गया कि कार्यदक्षता एवं क्षमता बढ़ाने, सेवाएं एवं समर्थन प्रदान करने; और गोष्ठियाँ, नेटवर्क एवं संबंध बनाने में लाभेत्तर संगठनों एवं समुदायों द्वारा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ अपनाया जाना लाभकारी रहता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने निम्नलिखित तरीकों से कार्यदक्षता एवं क्षमता बढ़ाने में मदद की:

- प्रशासनिक एवं वित्तीय कार्यव्यापार में परिपाटियों का सुधार। इसके परिणाम होते हैं: घटा प्रक्रिया समय, कम अपव्यय और घटी लागतें अथवा संसाधनों का पुनराबंटन।
- व्यापार संचार प्रबंधन में सुधार। इसके परिणाम होते हैं: बढ़ी क्षमता तथा सेवा प्रदान कार्य एवं निर्णयन में निरंतर सुधार।
- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के प्रयोग प्रतिवेश में संगठनात्मक संस्कृति में सुधार और सूचना का बेहतर इस्तेमाल। इससे कर्मचारी वर्ग को नव-परिवर्तन में मदद मिलती है।
- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के क्रियान्वयन एवं प्रबंधन हेतु एक नियोजित एवं वास्तुशिल्पीय दृष्टिकोण, जैसे उक्त प्रौद्योगिकियों के कार्यकलापों का केंद्रीकरण अथवा उन्मुक्त या अंतर्परिचालनीय प्रणालियाँ, जो निम्नलिखित में मददगार होता है:
- समग्र रणनीतिक एवं संगठनात्मक उद्देश्यों के साथ उक्त प्रौद्योगिकियों का वृहत्तर गठजोड़; अधिक सवाल, लचीला एवं सुकट सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी प्रयोग; और ब्राह्य अभिकरणों के साथ बेहतर संबंध एवं समझौता।
- सहयोग, जो प्रत्यक्ष अथवा किसी मध्यस्थ के माध्यम से उक्त प्रौद्योगिकी संसाधनों के बेहतर आदान-प्रदान, प्रशिक्षण एवं ज्ञान व लागत साझेदारी में सक्षम बनाता है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सेवाएं एवं समर्थन प्रदान करने में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने इन तरीकों से मदद की:

- नए अवसर पैदा करना, जैसे सदस्यों एवं ग्राहकों के साथ बेहतर संबंध। इससे ऑनलाइन आबन्ध हेतु संस्थान की क्षमता एवं एक अधिक व्यापक श्रोतावर्ग हेतु सुगमता तथा अंतर एजेन्सी समन्वय सहयोग एवं तारतम्यता में सुधार आता है।
- व्यापकतर सामुदायिक लाभ प्रदान करना; उदाहरण के लिए, ये स्वेच्छापूर्वक कौशल हस्तांतरण करती हैं और समुदाय में विश्वस्त मध्यस्थों के रूप में लाभेत्तर संगठनों की भूमिका निभाती हैं।
- सामाजिक एवं भौगोलिक तटस्थता एवं बहिष्करण से निराकरण, अतः ग्राहकों एवं सदस्यों के लिए सूचना, सेवाओं एवं समर्थन की बेहतर सुलभता एवं उपलब्धता होती है।
- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों की सुविधाओं, प्रशिक्षण एवं समर्थन की बेहतर सुलभता ग्राहकों को सशक्त बनाती है।
- सदस्यों के लिए बेहतर परिणाम, जैसे ऑनलाइन समुदाय नेटवर्किंग के माध्यम से अन्य सदस्यों के साथ संदर्भ रखने तथा ज्ञान व कौशल परस्पर आदान-प्रदान करने में सहूलियत।
- स्वैच्छिक सदस्य-प्रेरित संगठन सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं जो कि उनके ग्राहक वर्ग के लिए उचित एवं प्रासंगिक हो।
- इनके सहारे वे समुदाय संगठन जो पहले इन प्रौद्योगिकियों से जुड़े मुद्दों से अभिभूत रहते थे, आत्मविश्वास पैदा कर रहे हैं ताकि वे नियंत्रण खोए बग़ैर आगे बढ़ सकें।

- ऑनलाइन दान जैसी नई सेवाएं अथवा प्रासंगिकताएं संयुक्त रूप से विकसित कर, उदाहरण के लिए, सहयोग करने एवं अधिक मात्रा में प्रयोग कर आनुपातिक लाभ प्राप्त करने हेतु छोटे संगठनों की क्षमता में सुधार आता हैं।
- सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों हेतु क्षमता न केवल संगठनों को सीधे लाभ दिला सकती है बल्कि अधिक व्यापक नेटवर्कों एवं समुदायों को लाभ पहुँचा कर एक प्रर्वधक प्रभाव उत्पन्न करने में भी मदद कर सकती है।

समुदायों, नेटवर्कों एवं संपर्कों के निर्माण में (जैसे सामाजिक पूंजी का अनुबंधन, सेतुकरण एवं संबंधन) सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने इस प्रकार मदद की:

- इन प्रौद्योगिकियों की मदद से न्यायपरक रणनीतियाँ बनाई जा सकती हैं जो विशिष्ट समूहों की आवश्यकताओं एवं हितों पर अभिलक्षित हों।
- आमने-सामने एवं ऑनलाइन परस्पर क्रिया को जोड़ने वाले विभिन्न गुणात्मक मॉडल निचले स्तर के सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी कौशल एवं प्रयोग वाले समुदायों में एक अवस्थान्तर गमन रणनीति के रूप में काम कर सकते हैं।
- इन प्रौद्योगिकियों को एक युक्ति स्वरूप लोगों को तारबद्ध और आभासी दोनों प्रकार की समुदाय श्रृंखलाओं से जोड़ने के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जो कि मुख्य रूप से संबद्धता, सम्मिलन एवं समुदाय का भाव जगाती सामाजिक पूंजी की अनुबद्धता बढ़ाने हेतु अभिकल्पित थीं।
- इन प्रौद्योगिकियों को सहयोग कर्म एवं बोध हेतु एक आधार तैयार करते भौगोलिक अथवा सामाजिक रूप से भिन्न लोगों के बीच सेतुकारी सामाजिक पूंजी निर्माण हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

साथ ही, उन्होंने कुछ सामान्य अवरोधों एवं चुनौतियों का भी सामना किया। इन अवरोधों व चुनौतियों जिनका मुकाबला किया गया, में सबसे प्रमुख हैं:

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

- लागतें और संसाधनों का अभाव
- कर्मचारी वर्ग, प्रबंधन एवं बोर्ड सदस्यों के पास सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी कौशलों, ज्ञान एवं चेतना का स्तर
- सातत्य सुनिश्चित करना
- विशिष्ट क्षेत्रों एवं लघुत्तर संगठनों के भीतर उक्त प्रौद्योगिकियों (अथवा उक्त प्रौद्योगिकी तत्परता) के अनुभव का अभाव; और
- विशिष्ट कौशलों जैसे किसी संविदा का मोलतोल, प्रणाली क्रियान्वयन एवं परिवर्तन प्रबंधन, हेतु आवश्यकता अनेक संगठनों के समक्ष एक अर्थपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करती है। (http://www.dcita.gov.au/ie/community)।

यद्यपि वे तथ्य सामाजिक क्षेत्र की सेवाओं से सम्बद्ध हैं, ये अन्य सेवा क्षेत्रों में भी प्रयोज्य हैं।

26.7 सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ और रोज़गार अवसर

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ रोज़गार एवं आय पैदा करने और ग़रीबी घटाने में योगदान दे सकती हैं। ये प्रक्रिया दक्षता बढ़ाकर विस्तृत आर्थिक तानेबानों में भागीदारी को प्रोत्साहित कर और रोज़गार अवसर पैदा कर आर्थिक अवसरों पर नियंत्रण करने के लिए लोगों व उद्यमों को सक्षम बनाती हैं।

ये प्रौद्योगिकियाँ क्षेत्र एवं भौगोलिक स्थिति में रहकर आर्थिक उत्पादकता बढ़ाती हैं। उदाहरण के लिए, ये ग्रामीण उत्पादनशीलता बढ़ा सकती हैं। ये प्रौद्योगिकियाँ स्थानीय लोगों और समुदायों के बीच समस्या-समाधान का लाभ परस्पर बांटने में मदद करती हैं; उदाहरण के लिए, मौसम के रूख का विवरण एवं खेती के सर्वोत्त्म तरीके विषयक व्यावहारिक जानकारी की सुलभता प्रदान करना। संचार नेटवर्कों के माध्यम से बाज़ार सूचना की समयबद्ध सुलभता भी किसानों का उचित निर्णय लेने में मदद करती है, जैसे कौन सी फसलें बोएं और अपनी उपज कहाँ बेचें व आगतें खरीदें। चिली में, उदाहरण के लिए, कृषक संगठनों के बीच एक इंटरनैट नेटवर्क ने फसल स्थिति, मौसम, विश्व-बाज़ार कीमतें एवं प्रशिक्षण विषयक जानकारी प्रदान कर किसानों की आय नाटकीय रूप से बढ़ा दी है। यह प्रौद्योगिकियाँ ग्रामीण वित्त सेवा हेतु अभूतपूर्व सुगमता प्रदान करती हैं। प्राइड अफ्रीका द्वारा उपलब्ध कराया गया वित्त एवं सूचना सेवा नेटवर्क उन स्थानीय लोगों व छोटे उद्यमों के लिए लघु-वित्त अवसर प्रस्तुत करता है जिन्हें पहले सरकार एवं वृहद् व्यवसायों के कठोर बैंकिंग नियमों एवं सूचना एकाधिकारों के चलते सुनभ्य वित्त प्रबंध सुलभ नहीं था (http://www.opt-init.org)।

सूचना एवं संचार प्रौद्यांगिकियों ने व्यापार-प्रक्रिया दक्षता एवं उत्पादकता सुधारने में सक्षम किया। ये व्यवसाय सामग्री, प्रापण एवं लेन-देन लागतें घटाकर कार्यगत लागतें कम कर सकते हैं, जिससे मध्यवर्ती एवं तैयार माल के दाम घट जायेंगे, और वे अपने उत्पादन के मूल्य को बढ़ाने के लिए भी अधिक एवं बेहतर सूचना का प्रयोग कर सकते हैं। ये प्रौद्योगिकियाँ, उदाहरण के लिए, जनोपयोगी-सेवा कंपनियों को एक ई-ट्रेडिंग मंच प्रदान करती हैं, जो क्रेताओं एवं विक्रेताओं दोनों की अपनी प्रापण प्रक्रियाओं को सरल कर व तदनुसार लागतें घटाकर मदद कर सकते हैं। एक अन्य उदाहरण में, विकासशील देशों में अनेक कंपनियाँ विश्व-प्रौद्योगिकी नेटवर्क (GTN) का प्रयोग कर रही हैं, जो कि अपनी वर्तमान प्रौद्योगिकीय आवश्यकताओं को पूरा करने वाले व्यापार समाधानों का परस्पर लाभ उठाने हेतु अपेक्षाकृत छोटी व मझौली अमेरिकी कंपनियों को खोजने के लिए अमेरिकी अंतर्राष्ट्रीय विकास अभिकरण (USAID) द्वारा उपलब्ध कराया गया है (वही)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ भूमंडलीय संपर्क सूत्र सम्बद्धता प्रदान करती हैं, जिससे एक विश्वव्यापी स्तर पर उत्पाद एवं सेवाएं उत्पन्न करने व प्रदान करने के नए तरीके सामने आते हैं। सूचना संचार प्रौद्योगिकियों ने व्यवसाय और बाज़ार के नए प्रतिमान स्थापित किए, जिससे व्यवसाय में बाहर ठीके पर काम देने, मूल्य श्रृंखला निर्धारित करने आदि से विकासशील देशों को नए बाज़ार में प्रवेश करने का मौका मिला। इसके अलावा नई प्रतियोगिता का भी सामना करना पड़ा, जिससे उनकी आमदनी में वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए पीइओपीलिंक (PEOPLINK) के विश्व-शिल्पी व्यापार विनिमय के माध्यम से, उदाहरण के लिए, विकासशील देशों में स्थानीय शिल्पकार न सिर्फ़ नए बाज़ारों तक पहुँचकर ही अपनी आय बढ़ा रहे हैं, बल्कि ऐसे इस कारण भी है कि उनके माल हेतु थोकविक्रेता मध्यस्थ प्रभावी रूप से हटा दिए गए हैं। स्थानीय शिल्पकार अब अपने माल के लिए विक्रय-मूल्य का 95 प्रतिशत तक प्राप्त कर सकते हैं जहाँ पहले उन्हें मात्र 10 प्रतिशत ही मिलता था (वही)।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने कुछ आर्थिक सहयोग विकास संगठन के सहस्थ देशों में व्यापार रोज़गार सृजन की ओर प्रवृत्त किया है। उदाहरण के लिए, वर्ष 1990-99 के दौरान जापान में सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा 20 लाख से भी अधिक नौकरियाँ पैदा की गईं (बाम्बर व अन्य 2004)। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ विकासशील देशों में भी बेहतर रोज़गार अवसर पैदा कर सकती हैं, उन्नत श्रमबाज़ार सुसाध्यीकरण एवं प्रत्यक्ष रोज़गार दोनों के माध्यम से। इलैक्ट्रॉनिक जॉब चौकों का प्रयोग कर नियोक्ता और कर्मचारी अपनी अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु श्रम कौशल एवं उपलब्धता का मिलान कर सकते हैं। अभिकल्पित एक पॉर्टल

(Portal), स्थानीय भाषाओं में स्थानीय वैब साइटों पर रोज़गार अवसर सूचना प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, बंगलादेश, भारत व सेनेगल जैसे देशों में स्थानीय दूरकेन्द्रों की स्थापना ने हज़ारों स्थानीय महिलाओं एवं पुरुषों के लिए प्रत्यक्ष रोज़गार को जन्म दिया है।

सोचिए और कीजिए 26.4

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के विस्तार से कौन से नए रोज़गार अवसर पैदा हुए हैं?

महिलाओं के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी समर्थित रोज़गार अवसर

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने नए प्रकार के कामों को जन्म दिया है जो महिलाओं के पक्ष में हैं क्योंकि ये उन्हें काम घर पर ले जाने और काम व परिवार कार्यसूचियों को बेहतर तालमेल बिठाने में सक्षम बनाती हैं। इस क्षेत्र में कार्य हेतु आवश्यक कौशलों की विश्वव्यापी कमी होने के कारण सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी सबलित सेवाओं में रोज़गार का एक बड़ा हिस्सा प्राप्त कर पाने में भी महिलाएं सफल रही हैं।

इस प्रकार, अब तक महिलाओं के लिए सर्वाधिक आशाजनक प्रयोज्य संसाधन कॉल सैण्टरों में व आंकड़ा प्रक्रमण वाले कार्यों में नई नौकरियों का सर्जन ही रहा है (स्वस्ति मित्तर 2001)। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार, "टैलीसैन्टरों व फ़ैक्स-बूथों ने गत चार वर्षों में ही भारत में कोई 2.5 लाख नौकरियाँ पैदा कर दी हैं, जिसका एक बड़ा हिस्सा महिलाओं को गया है" (www.ilo.org)।

अंतर्राष्ट्रीय रूप से बर्हिसूत्रित (outsourced) नौकरियाँ, जैसे चिकित्सा लिप्यांतरण कार्य अथवा सॉफ़्टवेयर सेवाएं, विकासशील देशों में महिलाओं के जीवन एवं जीवनयात्रा मार्गों को निश्चय ही एक उल्लेखनीय भिन्नता प्रदान करती हैं। सॉफ़्टवेयर के क्षेत्र में, महिलाओं को इस कदर वरीयता दी जाती है कि जो उन्होंने अभियांत्रिकी एवं विज्ञान के किसी भी अन्य क्षेत्र में कभी भी अनुभव नहीं की। भारत में महिलाएं सॉफ़्टवेयर उद्योग के 27 प्रतिशत व्यावसायिक कार्यों में लगी हैं, जो कि 4 अरब अमेरिकी डॉलर वार्षिक के बराबर है। वर्ष 2001 में इस उद्योग के तहत कुल रोज़गार में महिलाओं की भागीदारी 30 प्रतिशत बढ़ जाने की उम्मीद की गई।

MAADHYAM IAS

प्रभावशाली होते हुए भी, महिलाओं के लिए भविष्य का अवसर, जैसा कि नवीन अनुसंधन एवं प्रकल्पनाएं इंगित करती हैं, सॉफ़्टवेयर सेवाओं की अपेक्षा सूचना प्रौद्योगिकी सबलित सेवाओं (आई टी ई एस) में अधिक छिपा है। इन सेवाओं हेतु विश्वव्यापी मांग आगामी दशक में एक आधारिक दर से बढ़ने की उम्मीद है, यथा वर्ष 2005 तक 671 अरब अमेरिकी डॉलर (http://www.usaid.gov/wid/pubs)। वर्ष 2000-01 में इस सेवाओं से (जिन्हें दूरवर्ती सेवाएं या रिमोट सर्विसिज़ भी कहते हैं) 87 करोड़ अमेरिकी डॉलर के राजस्व और 66 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के सहारे भारत में आज बाज़ार के बड़े भाग को लक्ष्य बनाने की प्रयोग क्षमता है। वर्ष 1999 में नैसकॉम (NASSCOM) का कहना था कि सभी 2005 तक भारत में इन सेवाओं में रोज़गार आंकड़े 11 लाख तक पहुंच सकते हैं। यद्यपि कोई लिंग-वियोजित आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं, भारतीय उद्योग महासंघ (सी आई आई) के अनुसार, इन नवसर्जित नौकरियों में से कम से कम 40 प्रतिशत महिलाओं द्वारा ही ली गई हैं (hppt://www.indiainfaline.com)।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट अनेक उदाहरण देती है जहाँ सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों ने महिलाओं को अपने उत्पादों के लिए विश्व-बाज़ारों का दोहन करने व आय बढ़ाने में सक्षम किया। नई प्रौद्योगिकियाँ और नेटवर्किंग ऐसे नए साधन हैं जिनके द्वारा महिलाएं अपनी

आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुधारने में सबल होती हैं। इसके उदाहरणों में निम्नोक्त शामिल हैं:

ग्रामीण बैंक व़िलिज फ़ोन परियोजना, जो बंगलादेश में अपने अधिकांश महिला सदस्यों को मोबाइल सैल फ़ोन प्रदान करती है, न सिर्फ़ अपने मोबाइल फ़ोनों के प्रयोग हेतु शुल्क वसूलती महिलाओं के रोज़गार-जनन प्रभाव दर्शाती है, बल्कि अन्य सकारात्मक विस्तीर्ण प्रभाव भी दर्शाती है। मोबाइल फ़ोन व इंटरनैट सुलभता ने ग्रामीण बंगलादेशी महिलाओं को शिक्षाप्राप्ति की सुगमता प्रदान की है, स्वायत्तता हेतु नए अवसर पैदा किए हैं और सामुदायिक एवं सार्वजनिक जीवन में उनकी दशा सुधारी है।

सेवा (SEWA), भारत का स्वनियोजित महिला संगठन जो 1972 से औपचारिक क्षेत्र में महिलाओं को संगठित करता रहा है और जिसकी सदस्य-संख्या 2,15,000 से भी अधिक है, भारत में एक पहला संगठन था जिसने अनौपचारिक क्षेत्र की उत्पादक वृद्धि हेतु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों को प्रयोग किए जाने की संभावना का पता लगाया। कम्प्यूटर चेतना कार्यनाम आयोजित कर और अपने दल-नेताओं एवं संघ-सदस्यों को बुनियादी कम्प्यूटर कौशल सिखा कर, सेवा ने अपने अनेक सदस्यों को इस योग्य बनाया है कि अपनी स्वयं की वैबसाइटें शुरू कर सकें और विश्व-आभासी चौक में अपने उत्पादों को बेच सकें।

उक्त उदाहरण दर्शाते हैं कि किस प्रकार प्रौद्योगिकी उन अवसरों को खोल कर ग़रीब महिलाओं के जीवन को सुधार सकती है जो पहले उनके लिए बंद थे। महिलाओं के बीच इलैक्ट्रॉनिक नेटवर्किंग ने नई सामाजिक एवं आर्थिक दृश्य घटनाओं की ओर प्रवृत्त किया है, जैसे ई-इन्क्लूज़न, ई-कैम्पेन, ई-कॉमर्स एवं ई-कन्सल्टेशन। इस प्रकार प्रौद्योगिकी के माध्यम से महिलाओं के सशक्तीकरण ने उन्हें भेदभाव का सामना करने और लिंग-अवरोधों से बाहर निकलने में सक्षम किया है।

MAADHYAM IAS

तथापि, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के युग में भी, जिसमें महिलाओं के लिए ऊँचे रोज़गार अवसर हैं, अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रतिष्ठा क्षेत्र एवं वेतन/ आय के लिहाज से रोज़गार में काफ़ी हद तक लिंग वैषम्य विद्यमान है (आई एल ओ 2005)। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अध्ययन दर्शाते हैं कि एक ही प्रकार के कार्य के लिए महिलाएं संभवतः पुरुषों के मुकाबले कम भी कमाती हैं। अधिकांश नए रोज़गार अवसंर अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में ही दिखाई पड़ते हैं जहाँ सामाजिक सुरक्षा बहुत कम है और काफ़ी अस्थिरता।

26.8 सेवा अर्थव्यवस्था में बेहतर प्रयोजन हेतु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के समक्ष चुनौतियाँ

यह बात बड़ी स्पष्ट है कि अपने सभी स्वरूपों एवं प्रयोजनों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का चालू घटनाचक्र हमारे जीवन में आमूलचूल परिवर्तन ला रहा है, यथा नए उत्पादों एवं सेवाओं के तत्काल सर्जन, व्यापार चलाने के नए तरीकों, नए बाज़ारों एवं निवेश अवसरों, नई सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों तथा परस्पर क्रियार्थ नागरिकों एवं सरकार के लिए नए माध्यमों के साथ। आर्थिक विकास, खासकर सेवा अर्थव्यवस्था हेतु सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के संभावित लाभों को बढ़ाने के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना ज़रूरी है।

आइए, देखते हैं सेवा अर्थव्यवस्था की सफलता के लिए क्या अनिवार्यताएं हैं। कुछ अंतर्राष्ट्रीय सेवाई फ़र्मों संबंधी आर्थिक सहयोग विकास संगठन के तथ्याध्ययन दर्शाते हैं कि उनकी सफलता हेतु बहुत से सर्व सामान्य कारक हैं। ये कारक हैं: (i) मुक्त बाज़ार, (ii) नवीन परिवर्तन एवं सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ (प्रक्रियाओं अथवा उत्पादों के लिहाज से नवपरिवर्तन तथा इन प्रौद्योगिकियों का समावेश करना एवं प्रयोजनों को बढ़ावा देना) तथा

(iii) कार्य संगठन एवं मानव संसाधन (कर्मचारियों के कार्य, प्रेरणा एवं कौशलों का संगठन और कंपनी संवर्धन)। सुचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ विशेष रूप से सेवा क्षेत्रीय नवपरिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये ही फ़र्मों को सक्षम करती हैं कि वे पूरी मूल्य-श्रृंखला में विभिन्न सेवाई उद्योगों को प्रक्रिया नव परिवर्तन के लगाए, नए प्रयोजन विकसित करें और उत्पादकता बढ़ायें। जबकि सेवा क्षेत्र को इन प्रौद्योगिकियों द्वारा व्यापक रूप से कायान्तरित कर दिया गया है, कुछ चुनौतियाँ हैं जिनका सफलतापूर्वक सामना किया जाना है।

सुदक्ष, कम-लागत और व्यापक रूप से प्रसारित नेटवर्कों का विकास सेवा क्षेत्र में व्यापक रूप से फैले सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी प्रयोजनों के लिए सदा ही एक उच्च प्राथमिकता रही है। इसमें दूरसंचार सेवाओं हेतु स्पर्धात्मक दशाएं सुधारने के लिए सतत प्रयासों की आवश्यकता है। वृहद पर अर्थात् ब्रॉडबैंड नेटवर्क विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वे स्वास्थ्य, शिक्षा एवं शासन समेत अनेक सेवाओं के लिए नए अवसर प्रस्तुत करेंगे। देखा गया है कि गोपनीयता एवं सुरक्षा विषय इन प्रौद्योगिकियों के प्रयोग में मुख्य अवरोध बने हुए हैं। अतः ऐसे नियामक आधार एवं प्रौद्योगिकीय समाधान निकाले जाने की आवश्यकता है जो इलैक्ट्रॉनिक व्यापार तथा स्वास्थ्य, वित्त सेवाओं, पर्यटन, वितरण अथवा सैन्य संभार-तंत्र जैसी सेवाओं की अंकीय सुपुर्दगी संभव बना सकें जो कि सुरक्षा की संस्कृति को पोषित करती हैं।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियाँ विकास के लिए एक युक्ति मात्र हैं और इन युक्तियों को विकास की गति बढ़ाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए सॉफ़्टवेयर विकास समेत अनिवार्य सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी कौशलों का विकास आवश्यक है। ऐसे कौशलों के अभाव में इन प्रौद्योगिकियों को न तो क़ायम रखा जा सकता है और न ही उन स्थानीय प्रयोगों के लिए अनुकूलित किया जा सकता है जिनसे वृहत्तर आर्थिक लाभ प्राप्त किए जाते हैं। उभरते अंकीय/ सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी युग के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए साक्षरता एवं शिक्षा आवश्यक हैं। आमतौर पर शिक्षा एवं साक्षरता को और ख़ासतौर पर अंकीय साक्षरता को प्रोत्साहन सभी देशों के समक्ष एक चुनौती है। शैक्षिक भिन्नताएं विभिन्न समाजों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के प्रवेश के भिन्न भिन्न दरों के मूल में हैं।

उद्यमों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का अपनाया जाना दो प्रकार की कौशल आवश्यकताओं को जन्म देता है। प्रथम अनेक प्रकार के बुनियादी कौशलों से संबद्ध है, जैसे सीखने, संवाद का आदान-प्रदान करने, एवं समस्याओं का विश्लेषण करने व सुलझाने की क्षमता, जिनमें सभी उन कार्य परिवेशों हेतु आवश्यक हैं जो तीव्र नव परिवर्तन और ज्ञान के अंतर्वैयक्तिक विनिमय एवं सर्जन पर निर्भर करते हैं। साथ ही, उन तकनीकी कौशलों की आवश्यकता होती है जो स्वयं सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों से संबद्ध होते हैं और जिनकी आवश्यकता समस्त अर्थव्यवस्था हेतु सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी क्षेत्र से परे सुविस्तीर्ण होती है।

26.9 सारांश

यह इकाई जनसंचार माध्यमों के कम-विकास की एक संक्षिप्त भूमिका से शुरू होती है। बीसवीं शती-मध्य तक जनसंचार का मुख्य साधन मुद्रण अर्थात् छपाई ही था। प्रसारण एवं बेतार संप्रेषण के आविष्कार के साथ ही जनसंचार के अन्य माध्यमों ने उसके समक्ष चुनौती रख दी। नई प्रौद्योगिकियों के आविष्कार एवं टेलीविज़न के पदार्पण के साथ ही जनसंचार के क्षेत्र में चीजें नाटकीय रूप से बदलने लगीं। भूमंडलीकरण के गति पकड़ने तथा जनसंचार संधानों के अधिकाधिक निजीकरण एवं उदारीकरण के साथ ही यह रूप परिवर्तन विशाल हो गया। सूचना एवं जनसंचार-माध्यम प्रौद्योगिकियों एवं इंटरनैट की नेटवर्क संचार प्रौद्योगिकी

MAADHYAM IAS

के संसरण ने समाजों के बीच सूचना के संचार के लिहाज से समय व दूरी संबंधी युग्म-संकल्पना को नाटकीय रूप से संकुचित कर दिया। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों का संसरण मानव जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आदि सभी पहलुओं में नज़र आया। इन सभी पहलुओं पर इस इकाई में विस्तृत चर्चा की गई है। यह इकाई संक्षिप्त में उन तरीकों पर प्रकाश डालती है जिनसे ये प्रौद्योगिकियाँ सेवा क्षेत्र को वृद्धि प्रदान करती हैं, और उन तरीकों पर भी जिनसे ये सेवा क्षेत्र के और अधिक विस्तार हेतु उन्नत प्रौद्योगिकियों को प्रयोग किए जाने में चुनौती पेश करती हैं।

26.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

फ़िदर, जॉन (1998). *दि इन्फ़ॉर्मेशन सोसाइटीः ए स्टडी ऑफ़ कैन्टीन्यूटी एंड चेन्ज,* लाइब्रेरी एसोसिएशन पब्लिशिंगः लंदन

जोर्जियो, आई. व अन्य (2004). *सोशल एंड इकॉनॉमिक ट्रान्स्फ़ॉर्मेशन इन डिजिटल* ईरा, आइडिया ग्रुपः यू. के.

क्रेडे, आन्द्रे एवं मॉन्सेल, रोबिन (1998), *नॉलिज सोसाइटीज़ इन ए नटशैलः इन्फ़ॉर्मेशन टैक्नॉलॉजी फ़ॉर सस्टेनेबल डेवेल्पमेंट,* आई डी आर सीः कनाडा

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

खंड 8

विकास, विस्थापन और सामाजिक आंदोलन

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 27
बांध और विस्थापन

इकाई की रूपरेखा

27.1 प्रस्तावना

27.2 बांध और विकास : पृष्ठभूमि

27.3 बड़े बांधों के विरुद्ध तर्क

27.4 बड़े बांधों के पक्ष में तर्क

27.5 बांध और विस्थापन : मानव और मूल्य

27.6 बड़े बांधों के विकल्पों की खोज़

27.7 सारांश

27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको इन विषयों पर जानकारी प्राप्त करने और आलोचनात्मक रूप से मूल्यांकन करने में सक्षम करेगी:

- जल प्रबंधन का इतिहास और, सामान्य एवं भारतीय सन्दर्भ में जल प्रबंधन में राज्य और समुदाय की भूमिका;
- बांध एवं विस्थापन संबंधी मुद्दे, जिनमें शामिल होंगे – मानवीय परिस्थितिकीय, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पहलू;
- बांधों से जुड़े भारत के अनुभव;
- बड़े बांधों के निर्माण के पक्ष में एवं विरोध में तर्क; तथा
- जल प्रबंधन के स्वरूप में बड़े बांधों के निमार्ण के विकल्प।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

27.1 प्रस्तावना

विगत शताब्दी में सर्वाधिक चर्चित और विवादित मुद्दों में एक देश में बड़े बांधों के निर्माण में निहित मानवीय एवं पारिस्थितिकीय लागत रहा है। बड़े बांधों ने लाखों लोगों को असाधारण रूप से उनके आवासों से विस्थापित कर दिया है और वनों के विशाल भूभागों को जलमग्न कर दिया है। बांधों के संदर्भ में नियमित रूप से उठाया जाने वाला प्रश्न यह रहा है कि क्या बांधों से होने वाले लाभ उससे होने वाली हानियों से बढ़कर हैं? क्या बांधों का निर्माण लाखों लोगों से उनका घर छिनने की कीमत पर उचित हैं? क्या हम विपुल प्राकृतिक वनस्पति वाले विशाल भूखण्डों को खोना सह सकते हैं, जो कि न सिर्फ़ विविध प्राणियों के आश्रयस्थल हैं बल्कि उन पर निर्भर लोगों की जीवन रेखा थी? यद्यपि वह बहस कुछ आन्दोलनों के इर्द गिर्द ही केन्द्रित रही है जिन्होंने बड़े बांधों के निर्माण के विरूद्ध अभियान छेड़ा है, जैसे भारत में नर्मदा बचाओं आन्दोलन, इसने भारतवासियों का ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण मंडलों का ध्यान भी अपनी ओर खींचा है। ये आन्दोलन विकास की राजनीति को प्रकाश में लाए हैं, यथा अकारणों को कि क्यों इस प्रकार का विकास विरोध और उसके प्रत्यक्ष भयंकर अनर्थकारी परिणामों के बावजूद होता है। उन्होंने आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और पारिस्थितिकीय पुनरूद्धार संबंधी बड़े निर्याणक मुद्दों को उठाने के लिए निर्धारित स्थलों की भूमिका निभाई है।

इस इकाई में हम मानवीय परिस्थितिकीय, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आदि मुद्दों के विभिन्न एक दूसरे से जुड़े आयामों को विस्तार से बांध एवं विस्थापन विषयक इन मुख्य मुद्दों में से कुछ पर चर्चा करने का प्रयास करेंगे। इकाई के पहले भाग में हम बांधों के संक्षिप्त इतिहास तथा भारत के साथ-साथ विश्व में भी 19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान इसकी लोकप्रियता से जुड़ी तर्कसंगति का अन्वेषण एवं प्रतिपादन प्रस्तुत करेंगे। दूसरे भाग में हम विशेषरूप से बांधों के साथ भारत के अनुभव पर ध्यान केन्द्रित करेंगे, और भारत में बांधों के पक्ष में और विरोध में छिड़ी बहस को प्रस्तुत करेंगे। तीसरे भाग में हम मानवजाति और मूल्य, दोनों से जुड़े 'विस्थापन' शब्द का विश्लेषण करेंगे, और उसके माध्यम से आधुनिक विकास एवं प्रगति, तथा पारिस्थितिकीय पुनरूद्धार से जुड़े कुछ आर्थिक यथार्थपरक मुद्दों पर आगे बढ़ेंगे। अन्तिम भाग में हम जल प्रबंधन स्वरूप बड़े बांधों के कुछ विकल्पों संबंधी उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। अंत में बांधों और विस्थापन विषयक इस चर्चा क्रम में उठे कुछ मुख्य मुद्दों को सारांश में फिर से संक्षेप में बताया जायेगा।

27.2 बांध और विकास : पृष्ठभूमि

'जल ही जीवन है' एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है। मानव सभ्यता नदियों के किनारे ही विकसित हुई। बांध उतने ही पुराने हैं जितनी कि मानव सभ्यता और उन्हें जल भंडारण एवं संचालन की प्राचीन तकनीकों में एक माना गया है। पैट्रिक मैक्यूली (1998) बांधों का एक सारगर्भित इतिहास प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, विश्व में सबसे पहला बांध लगभग 3000 ईसा पूर्व जावा नगर, वर्तमान में जोर्डन स्थित में बनाया गया। यह पाषाणखण्ड और मिट्टी से बनी एक दस कुंडीय प्रणाली भी जिसमें एक जल प्रपात से पापी एकक किया जाता था, जो कि एक नहर से आगे पहुंचाया जाता था। सबसे बड़ा बांध 4 मीटर से भी ऊंचा था। कैटो के निकट एक मौसमी जलधारा पर बना मिस्र का 'यागन का बांध' 14 मीटर ऊंचा और 113 मीटर लम्बा बताया जाता है, परन्तु यह अपने निर्माण के एक दशक बाद ही बह गया। स्पेन अब तक टिके एक रोमन बांध का साक्षी है, जो कि प्रथम सहस्राब्दि ईसापूर्व के अन्तिम वर्षों में बतलाया गया था। इस अवधि में दुनिया भर में तमाम बांध बनवाए गए यथा मध्य एशिया, चीन और मध्य अमेरिका में और भूमध्यसागर के आसपास। श्रीलंका का राजा पराक्रम बाबू जो अपने निरंकुश शासन के लिए भी मशहूर था, ने एक 14 किमी. लम्बा बांध बनवाया था। इस भूभाग में कोई भी अन्य बांध इसके आयतन की बराबरी नहीं करता था। माना जाता है कि इस राजा ने 4000 से भी अधिक बांधों का जीर्णोद्धार और निर्माण करवाया था। मैक्यूली (1998) श्रीलंका में बड़े बांधों के विषय में प्रसिद्ध मानव विज्ञानी एडवर्ड लीच का उद्धरण देते हैं, जिसके अनुसार ये बांध, कीर्ति स्तंभ थे न कि लाभाकांक्षी प्राधार' (वही : 15)। श्रीलंका के ग्रामवासी सिंचाई के लिए बांधों की बजाय टेंक नामक कृत्रिम तालाबों पर अधिक निर्भर रहते थे।

वस्तुतः, यह बात अधिकांश दक्षिण एशिया के लिए सत्य है। भारत में सिंचाई काफी हद तक स्थानीय रूप से निर्मित और सम्पोषित की जाने वाली पारम्परिक अधिरचनाओं पर ही निर्भर थी, जिनमें कुएं, खाइयां और कुंड शामिल थे। स्थानीय जाति आधारित सामाजिक व्यवस्था के चलते राज्य के लिए स्थानीय प्रथाओं में दखल देना मुश्किल होता था। इसके बावजूद राज्य ने जल संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए कर रियायतें प्रदान कीं। उदाहरण के लिए, गुजरात में स्थानीय राजकर्मियों को अधिकार था कि करों को संशोधित करें और कर छूट प्रदान करें। ऐसे उदाहरण भी हैं जब एक हाल ही में बने कुएं से सिंचाई करके उगाई गई फसलों पर कर कुआं बनवाने की लागत वसूल कर लिए जाने तक घटा दिया गया (हार्डीमैन 1998 : 1537)। मुगल और मराठा दोनों ही कर निर्धारण क्षेत्र की पारिस्थितिकीय दशाओं और जलवायकीय उतार चढ़ावों के आधार पर करते थे। स्थानीय परम्परागत अभिजात वर्ग

जल जैसे जन संसाधनों में नियमित निवेश करने हेतु प्रथागत रूप से बाध्य था। इस वर्ग के लोगों से आशा की जाती थी कि समय समय पर तालाब बनवाएं, कुओं की मरम्मत करवाएं आदि। भारत से भिन्न चीन सिंचाई के लिए एक समेकित जल प्रणाली पर निर्भर करता था। उत्तरी चीन में ग्राम स्तरीय कृषि स्थानीय स्तर के अपवहन तंत्र पर निर्भर थी, जो कि आगे कुल्पाओं, घाटों व मुख्य नहरों के क्षेत्रीय तंत्र से जुड़ा रहता था। यह व्यवस्था व्यापक केन्द्रीय सार्वजनिक कार्य परियोजनाओं से गहरे जुड़ी थी। बाढ़ नियंत्रण, नहर प्रबंधन और स्थानीय सिंचाई एक समेकित समुदाय का हिस्सा थे और किसी एक की विफलता पूरी व्यवस्था की विफलता की ओर उन्मुख करती थी। स्थानीय सिंचाई इसी कारण राज्य प्रायोजित होती थी, जिसमें राजकर्मियों के पर्यवेक्षण के अंतर्गत अनेक कुएं ओर कुल्पाएं होती थी।

स्पष्टतः राज्य की भूमिका, हालांकि न्यूनतम थी (जैसा कि भारत के उदाहरण में था), किसी भी जल प्रणाली को स्थापित करने व संपोषित में निर्णायक होती थी। पानी एक महत्वपूर्ण संसाधन था और इसका इंतज़ाम महज दैवभोग और किसी अच्छे मानसून पर नहीं छोड़ा जाता था। उपनिवेशवाद ने बहरहाल जल प्रबंधन की स्थानीय व्यवस्था को अस्त व्यस्त कर दिया। उपनिवेशवाद अपने साथ राजस्व निर्धारण की एक कठोर व्यवस्था लेकर आया, जो कि स्थानीय सामाजिक एवं राजनीतिक गतिकता के प्रति और जलवायकीय उतार चढ़ावों के प्रति सहानुभूतिहीन थी। इसी प्रकार, औपनिवेशिक सरकार की प्राथमिकताएं पूर्व शासकों से स्पष्टतः भिन्न थीं। भारत में सार्वजनिक कार्यों पर व्यय को उपेक्षित रखा गया क्योंकि 1857 के रक्तपातपूर्ण विद्रोह के बाद अंग्रेज़ अपनी स्थिति मज़बूत करने में लग गए थे। विद्रोह पश्चात् अवधि की विशेषता सैन्य प्रतिष्ठानों एवं रेलमार्गों में अधिकाधिक धन लगाना ही रही। सिंचाई के लिए निर्धारित व्यय में से 90 प्रतिशत पंजाब में स्थित प्रमुख सिंचाई परियोजनाओं पर खर्च किया जाता था। अंग्रेज कपास, अफ़ीम, गन्ना और गेहूं जैसी वाणिज्यिक फसलों को बढ़ावा देने को ही उत्सुक रहते थे। वाणिज्यिक कृषि में यह हित निर्वहन आधारित कृषि की कीमत पर ही साधा जाता था और छोटे किसान कुओं, कुंडों, छोटी नहरों और बांधों की व्यवस्था से ही सिंचाई का इंतजाम करते थे।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

मुग़लों से भिन्न, अंग्रेज़ कुओं और कुण्डों के निर्माण हेतु आर्थिक सहायता नहीं देते थे। इसके अलावा लगान का बोझ ज्यादा होने के कारण सिंचाई में निवेश करने के लिए भी कुछ नहीं बचता था। अंग्रेजों की नई राजस्व प्रणाली ने भूस्वत्वाधिकारों के साथ जलाधिकार भी प्रदान किए जिससे जल संसाधनों के निजी विनियोग को कानूनी वैधता मिल गयी। जल संसाधन रहित भूमियों के धारकों को लगातार जलाभाव का सामना करना पड़ता था, खासकर खराब मानसून के दौरान। जल और भूमि के निजीकरण ने सिंचाई प्रणालियों के सम्पोषण की स्थानीय व्यवस्था को प्रभावित किया। चीन में स्थिति और खराब थी जहां राज्य केन्द्रीकृत जल प्रणाली के रखरखाव में अपनी भूमिका से पीछे हट रहा था। सिंचाई अधीन क्षेत्र सहसा घट गया, इस हद तक कि 1932 में उत्तरी चीन में कृषि अधीन क्षेत्रफल का मात्र 6.8 प्रतिशत ही सिंचित था (द कॉर्नर हाउस 2002)। 1876-79 के दौरान एशिया (भारत, चीन, जावा, फिलीपीन्स और कोरिया), दक्षिण अफ्रीका, ब्राज़ील, अल्जीरिया और मोरक्को से आवर्ती अनावृष्टि और भुखमरी फैलने की खबरें प्राप्त हुई। विश्व के इतिहास में कभी भी इतने सारे देशों में एक साथ अकाल और सूखे की घटनाएं नहीं हुई थीं। लाखों लोग कुपोषण और भूख से मर गए। स्पष्ट रूप से, "जलवायवीय ख़तरा... प्रकृति प्रदत्त नहीं होता बल्कि वह 'करबद्ध समझौते' से होता है। क्योंकि खतरे से निबटने के लिए हर समान में संस्थागत, सामाजिक और तकनीकी साधन होते हैं .... दुर्भिक्ष इस प्रकार सामाजिक संकट हैं जो कि विशिष्ट आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं की विफलताओं को दर्शाते हैं" (वॉट तुल्य द कॉर्नर हाउस, 2002 : 19 ; बलघात चिन्ह संयोजित)। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में एक अकाल का पड़ना मात्र इस बात में उपनिवेशवाद के प्रभावों का सबूत नहीं है कि इसने

ग़रीबी, भूख और खराब स्वास्थ्य वाली चिरन्तन दशाओं को जन्म दिया, बल्कि उसने उन स्थानीय संस्थागत प्रणालियों की विफलता से भी विदित कराया जो प्रायः लोगों को संकट की स्थितियों से बचा लिया करती थी।

बांधों और विशेष रूप से बड़े बांधों ने 19वीं और 20वीं शताब्दी में लोकप्रियता हासिल कर ली। ऐसे बांध दो महत्वपूर्ण कार्य करते हैं जो उन्हें आधुनिक संसार में तथाकथित रूप से 'अपरिहार्य' बना देते हैं। एक, वे नद्य अथवा सतही जल का भण्डारण करते हैं ताकि जल हेतु मांग और उसकी उपलब्धता में असामंजस्य को दूर किया जा सके। दो, बांध में उठान पर संग्रहित जल और ढाल पर नदी के बीच अन्तरीय ऊंचाई जलशक्ति पैदा करते हैं और बिजली उत्पन्न करते हैं। बांध इस प्रकार न सिर्फ़ औद्योगिक इकाइयों व करों को बिजली प्रदान करता है, अपितु कृषि, उद्योगों और व्यापक उपभोग के लिए जल की आपूर्ति भी करता है। नदियां ही विद्युत ऊर्जा उत्पादन हेतु अब तक अप्रयुक्त संसाधन थी। 19वीं शताब्दी में अपने विस्तीर्ण होते शहरों के लिए ब्रिटेन ने अपने यहां लगभग 200 बांध बनवाये। 1900 के प्रथम दशक में बने बांध मिट्टी के तटबंधन होते थें और 'सफल होने तक बांटकर प्रयोग' के आधार पर बनाये जाते थे। विश्व में इस काल में बने अनेक बांध ध्वस्त हो गए। 1889 में जोन्सराउन पेन्सिल्वानिया बांध, 1900 के प्रथम दशक में लॉस एंजिल्स के सेन्ट फ्रांसिस बांध, और 1864 में यॉर्कशाइर के जलापूर्ति बांध के एकाएक दूर जाने से हज़ारों लोगों की जानें गईं और नगर के नगर तबाह हो गए।

स्थानीय सिंचाई पद्धतियों से भिन्न बांध विशाल संस्पनाएं होते हैं और एक केन्द्रीकृत आयोजना का परिणाम होते हैं। यही कारण है कि लगभग सभी बड़े बांध राजकीय साहसकार्य होते हैं, जिनमें मानवीय एवं भौतिक, दोनों काफ़ी मात्रा में निवेशों और संसाधनों की आवश्यकता होती है। आर्थिक उन्नति एवं विकास के लिए जल संसाधनों से बिजली उत्पन्न करने के उद्देश्य से वे वृहतर कार्यसूची का अभिन्न हिस्सा होते हैं। अमेरिका में बांधों के प्रति मोह का संबंध पश्चिमी देशों में अर्धशुष्क क्षेत्रों की सिंचाई हेतु अनुसंधान से जोड़ा जा सकता है। 1902 में, प्रसिद्ध राष्ट्रीय भूउद्धार अथवा 'न्यूलैण्डस' अधिनियम घटित किया गया ताकि पश्चिमी अमेरिका में भूमि सुधार किया जा सके। सिंचाई परियोजनाओं को शुष्क भूमियों को उर्वर मैदानों में बदल देने के माध्यम स्वरूप लिया गया, जिससे पूर्व के भूमिहीन लोग पश्चिम में प्रवास कर बसने के लिए आकर्षित हों। पश्चिमी देशों में, बहरहाल बड़े ज़मीदारों का उदय देखा गया जो राजकीय परिदानों की संरक्षकता का लाभ उठाते थे। अमेरिका के इतिहास में ज्ञात सबसे बड़ी विपत्ति 1931 में हूवर बांध का यकायक टूट जाता है, फिर भी उसने पानी और बिजली की समस्या हल करने में बड़े बांधों के प्रति आस्था नहीं खोई।

MAADHYAM IAS

पूर्व सोवियत संघ भी इस संबंध में अपवाद नहीं था। एक सशक्त समाजवादी देश के निर्माण हेतु पूर्ण विश्वास से अभिप्रेत बांधों को केन्द्रीकृत संसाधन संघटन के महत्वपूर्ण प्राधारों के रूप में देखा गया। अमेरिका की ही भांति, यह भी एक भव्य राज्य परियोजना थी जिसमें अनेक अभियंतागण, राजकर्मीगण, कनिष्ठ कर्मचारी वर्ग एवं श्रमिक गण नियोजित किए गए थे। नदियों के तटबंधन में विस्तृत उर्वर भूमि, सामुद्रिक जीवन के साथ साथ सैंकड़ों मछुआरों की रोज़ी रोटी भी प्रभावित होती थीं। (मैक्यूली 1996)। क्रांति के बाद, बांध निर्माण माओ जियोंग की परियोजना 'ग्रेट लीप फारवर्ड' एक अभिन्न हिस्सा बन गया। बाढ़ का पानी रोकने के लिए बड़े बांधों के प्रयोग ने यह काम घाटों और नहरों से किए जाने की परम्परागत प्रणाली को निरर्थक कर दिया। जल वैज्ञानिक आर्थिक योजनाकारों द्वारा दिखाए गए उत्साह के प्रति आशंकित थे और उनकी यह शंका निर्मूल सिद्ध नहीं हुई। हज़ारों बांध टूट गए और अस्तव्यस्तता की स्थिति पैदा हो गई, जिसने विश्व में ज्ञात भीषणतम अकालों में से एक की ओर प्रवृत्त किया। 1996 में चीन ने त्रिघाटी बांध (थ्री-गॉर्जिज डैम) बनाने का एक नया

अभियान शुरू किया। भूकंप वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में बांध बनाए जाने के अनर्थकारी भूकंप संबंधी परिणामों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

भारत ने भी अपने निवेश का हिस्सा बांधों के लिए रखा था। भाखड़ा नांगल बांध की सराहना करते हुए जवाहरलाल नेहरू के शब्द प्रायः ही उद्धत किए जाते हैं, जिन्होंने बड़े बांधों को 'आधुनिक युग के मंदिर' कहा था। परन्तु नेहरू का भी तदन्तर में बांधों के प्रति मोह भंग हो गया था, जैसा कि इस कथन में प्रकट होता है : "मुझे लगने लगा है कि हम एक ऐसी बीमारी से पीड़ित हैं जिसे हम भीमकायता का रोग कह सकते हैं" (वही : 23)। नए नए स्वतंत्र हुए भारत में बड़े बांध, विद्युत केन्द्र, कारखाने और औद्योगिक इकाइयां आदि राज्य की विशाल हृदय विद्यमानता और एक समृद्ध और आधुनिक भारत के निर्माण हेतु उसकी इच्छा के प्रतीक बन गए। उद्योगों सिंचाई एवं विद्युत ऊर्जा जनन आदि के लिए जल संसाधन उत्पन्न करने हेतु बांध ही विधिकृत समाधान थे। कृषि उत्पादन बढ़ाने और औद्योगिक उत्पादन की ईंधन आपूर्ति के लिए जलविद्युत पैदा करने पर ज़ोर दिया गया था। दिलचस्प रूप से, बड़े बांधों के निर्माण पर करोड़ों रुपया खर्च किए जाने के बावजूद अधिकांश भाग भारत भूजल दोहन से ही निर्वहन करता है। सतही जल अथवा नदियां देश में जल संबंधी आवश्यकताओं के 10 प्रतिशत से भी कम की पूर्ति करती हैं। अगले पाठांश में हम भारत के विकास पर बांधों के प्रभाव का विश्लेषण करेंगे - क्या बड़े बांध विकास में सहायक होते हैं, और यदि वे होते भी हैं तो किस कीमत पर (मानवीय एवं पारिस्थितिकीय), और अन्ततः यह विकास सभी वर्गों, जातियां एवं क्षेत्रों में एक समान रहा अथवा असमान?

सोचिए और कीजिए 27.1

सिंचाई और कृषि पर बांधों और उनके प्रभावों की पृष्ठभूमि पर एक समाजशास्त्रीय टिप्पणी लिखें।

27.3 बड़े बांधों के विरुद्ध तर्क

MAADHYAM IAS

अर्थव्यवस्था, समाज, पारिस्थितिकी और पर्यावरण पर बांधों के प्रभाव विषयक अनेक तर्क वितर्क किए जाते हैं। ये वाद विवाद बड़े बांधों के पक्ष में और उनके विरुद्ध अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं। चलिए, इनमें से कुछ तर्कों पर सूक्ष्म दृष्टि डालें।

क) प्रतिरोध और विस्थापन

बड़े बांधों ने समर्थन के स्थान पर विरोध को अधिक उत्पन्न किया है। 1946 में, हीराकुंड बांध के निर्माण की पहचान रही – तीस हजार लोग, जिनमें शामिल थे स्थानीय राजनेतागण, अधिकारी वर्ग और वे लोग जो बांध स्थल के निष्काषित हो सड़क पर आ जाने वाले थे। हीरकुंड इस अर्थ में देश के अन्य भागों में बांधों के विरूद्ध विरोध प्रदर्शनों के अग्रदूत के रूप में सामने आया। जबकि यह विरोध प्रदर्शन विशिष्ठ परियोजनाओं पर ही केन्द्रित होते थे, फिर भी बांधों के पक्ष में और विशेष रूप से विरोध में उठाए जाने वाले तर्क सर्वसामान्य ही रहे हैं। नव गठित झारखण्ड जनजातीय राज्य में, अब तक तेरह बड़े सिंचाई परियोजनाएं , 108 मध्यम सिंचाई परियोजनाएं और 6820 लघु जल परियोजनाएं शुरू की जा चुकी हैं। इनमें से अधिकांश विफल ही रही हैं। कुछ अधूरी ही छोड़ दी गई हैं। इन परियोजनाओं में से अधिकतर ऊंचे स्तर पर भ्रष्टाचार और लालफीताशाही के लिए कुख्यात रही है। बड़े बांध परियोजनाओं, विशेष रूप से सुवर्णरेखा परियोजना और कोयलकारो परियोजना ने स्थानीय जनजातीय जनसमूह से भारी प्रतिरोध झेला।

कोयलकारों परियोजना यह जानते हुए भी शुरू कर दी गई कि इससे 200 जनजातीय गांव तबाह हो जाएंगे और 45000 हेक्टेयर कृषय भूमि डूब जायेगी। सुवणरेखा परियोजना पुलिस

के अत्याचारों का स्थल रहा है और इस परियोजना में राज्य ऋणों का ऊंचे स्तर पर अवैध लेन देन हुआ है, ऐसा कहा जाता है। झारखण्ड स्थित में कार्यरत एक मानवाधिकार संगठन 'जोहर' को प्रदेश के पश्चिमी सिंहभूम ज़िले में 1960-90 के भीतर राज्य द्वारा शुरू की गई नौ लघु सिंचाई परियोजनाओं के विषय में कुछ बहुत भयावह जानकारियां मिली हैं। इन परियोजनाओं की समस्त पूंजी लागत 14 करोड़ थी। सरकार का दावा था कि अपने समापन पर ये परियोजनाएं 47,764 एकड़ भूमि को सिंचाई सुविधाएं प्रदान कर सकेंगी। 'जोहर' के अन्वेषणानुसार, नौ परियोजनाएं 'कहीं हैं ही नहीं' और इन परियोजनाओं पर व्यय सरकारी धन का कोई हिसाब किताब नहीं रखा गया है। 1997 तक 22.5 लाख एकड़ भूमि छोटी बड़ी सिंचाई परियोजनाओं के नाम पर स्थानीय जनजातीय लोगों को फुसलाकर उनसे ले ली गई थी। लाखों को उनकी जमीन से विस्थापित कर दिया गया है और वे रोजगार के लिए आसपास के क्षेत्रों में स्थित खानों और कारखानों में दिहाड़ी मजदूरी हेतु चले गए हैं।

वह अभियान जिसने विश्व का ध्यान बड़े बांध निर्माण की राजनीति और पर्यावरण पर उसके हानिकारक प्रभाव की ओर खींचा, वो था 'नर्मदा बचाओं आन्दोलन' अर्थात् नर्मदा नदी की रक्षा हेतु आन्दोलन। नर्मदा भारत के तीन राज्यों से होकर बहती है, यथा मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात। एक पावन नदी के रूप में पूजी जाने वाली नर्मदा हज़ारों ग्रामवासियों की जीवनरेखा है और उसका महत्व इस भूभाग की लोक परम्पराओं में परिलक्षित होता है। 1985 में विश्व बैंक ने नर्मदा पर विचाराधीन सरदार सरोवर बहूद्देशीय बांध परियोजना को 45 करोड़ डॉलर की मंजूरी दी। विश्व बैंक के अनुभवों के अनुसार, इस परियोजना का उद्देश्य था – नागरिक एवं औद्योगिक प्रयोजनों हेतु प्रति 130 करोड़ घन मीटर जल उत्पन्न करना, 1450 मैगावाट बिजली की यथाविधि अधिकृत क्षमता और 19 लाख हेक्टेयर भूमि को सिंचाई सुविधा प्रदान करना। इस परियोजना में 13,744 हेक्टेयर वन भूमि, 11,318 हेक्टेयर उर्वर कृषि जलमग्न हो जानी थी और एक लाख भी अधिक लोग विस्थापित हो जाने थे, जिनमें अधिकतर अनुसूचित जनजातियों से संबद्ध व्यक्ति एवं परिवार तथा गरीब लोग थे। परियोजना के लम्बे रूप विस्तार एवं आकार ने संबद्ध नागरिकों और विशेषज्ञों के बीच चिंता पैदा कर दी। योजनाकारों ने नर्मदा बचाओं आन्दोलन के अनुसार, इस परियोजना को हाथ में लिए जाने के पारिस्थितिकीय, मानवीय एवं वित्तीय महत्वों परिणामों का आलोचनात्मक और यथार्थपरक मूल्यांकन नहीं किया था। चलिए, बड़े बांधों के विरूद्ध तर्कों के रूप में आन्दोलन द्वारा पहचाने गए इन तीनों प्रमुख क्षेत्रों का विश्लेषण करते हैं।

MAADHYAM IAS

ख) पारिस्थितिकीय प्रभाव

बड़े बांधों का सर्वाधिक प्रत्यक्ष पारिस्थितिकीय प्रभाव वनों के विशाल विस्तार दलदली भूमियों और वन्य जीवन का स्थायी विनाश है। बांध से समृद्ध वनावरण के विशाल भूभाग जलमग्न हो जाते है। बल्कि अपेक्षाकृत कम ज्ञात परिणाम भी समान रूप से विध्नकारी हैं। ये वन अनेक पशुओं के प्रवास गमनपथ हैं, दलदली भूमि विभिन्न प्रवासी पक्षियों को आकर्षित करती है, जबकि नदी प्रवासी मछलियों हेतु एक माध्यम है। पशुओं पक्षियों एवं मछलियों के प्रवास मार्गों का विध्वंस न सिर्फ परितंत्र को प्रभावित करता है बल्कि स्थानीय लोगों के जीवन को भी प्रभावित करता है। मछली स्थानीय लोगों के प्रमुख आहार का एक अभिन्न हिस्सा है; तटबंधन जल के ढाल पर उनकी गति को अवरूद्ध कर देता है, साथ ही उनके प्रजनन चक्र में भी बाधा डालता है। झारखण्ड और छत्तीसगढ़ जैसे स्थानों पर वन कटाई ने जंगली जानवरों को भोजन की तलाश में गांवों में घूमने पर मज़बूर कर दिया है, जो कि प्रायः स्थानीय लोगों पर हमलाकर उन्हें मार डाला डालते हैं। बांध नदियों को जलाशयों में परिवर्तित कर देते हैं जिसके समस्त जल निकास क्षेत्र पर पर्यावरणीय प्रभाव पड़ते हैं –

ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जल प्रवाह तथा जलाशय का स्रोत क्षेत्र। बांध बनने से नदी की स्वाभाविक धारा टूट जाती है। इस प्रक्रिया में ऊर्ध्वप्रवाह गाद एकत्र कर देता है, जो जल स्तर को बढ़ा देती है जिससे बाढ़ आ सकती है और उस क्षेत्र के जानोमाल को डुकवर तबाही मचा सकती है। नदी का अनुप्रवाही जल, अपनी नियमित जल परिमाण और गाद से वंचित किए जाने पर, मैक्यूली (1998) के अनुसार, 'भूखा' होता है और अपने मार्ग में आने वाले मैदानों को खा जाता है। ये मैदान नदी की उर्वर जवौढ़ मिट्टी से भी वंचित कर दिए जाते हैं, जो कि मृदा की उर्वरता, गुणवत्ता और उत्पादकता को प्रभावित करता है। अनुप्रवाही नदी में आकस्मिक उतार चढ़ाव भी आते हैं, ज़ब जल का दबाव कम करने के लिए नियोगाधीन क्षेत्र से पानी समय समय पर बाहर फेंका जाता रहता है। प्रायः इससे उसके मार्ग में आने वाली वनस्पति और बस्तियां तबाह हो जाती हैं जो कि बांध बनने के बाद नदी द्वारा छोड़ दी गई भूमि पर बनी होती हैं। विशाल जलराशि को धारणकर जलाशय जल वाष्पीकरण की ऊंची दर को बढ़ावा देता है। यह जल की लवणता में वृद्धि की ओर प्रवृत करता है, जिसका जल की गुणवता पर दीर्घकालीन प्रभाव पड़ता है।

ग) मनुष्य पर पड़ने वाला प्रभाव

बांध परियोजनाओं के सबसे स्पष्ट और प्रत्यक्ष अकारण परिणामों में एक अपने वासस्थानों से लोगों का विस्थापन है। इसका अर्थ है कि न सिर्फ बांध स्थलों में और उनके आसपास रहने वाले लोगों को अपने खाली करने व अन्यत्र कहीं बस जाने को कहा जाता है, अपितु उनसे यह भी उम्मीद की जाती है कि वे अपनी ज़मीन छोड़ दें, अपने घर छोड़ दें जहां अपना सारा ज़ीवन बिताया हो, और उस परिवेश को भी छोड़ दे जिससे परिचित रहे हों, ताकि बेनाम लाभग्राहियों के लिए यह बांध बनाया जा सके। विस्थापित लोगों के लिए बड़ा मुश्किल होता है कि बांधों के लाभों को समझ सकें, जैसे वह समृद्धिदायक और कल्याणकारी कैसे संभव हो सकता है। बड़ी संख्या में लोग काम की तलाश में पहले ही जनाधिक्य और अधिकार से ग्रस्त नगरों व शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं और निकृष्ट शहरी दशाओं में रहते हैं। अनेक लोग बांध स्थल पर काम करके ही गुज़र बसर करते हैं। वे कठोर कार्यदशाओं में रहकर काम करते हैं। निर्माण -स्थल विशेष रूप से संक्रामक रोगों के प्रति प्रभावग्रहणशील होता है, जैसे मलेरिया, तपेदिक और सर्दी-जुकाम। बांध का काम समाप्त हो जाने पर, अक्सर ही स्थानीय लोगों को उक्त स्थल छोड़ने के लिए शारीरिक बल प्रयोग से मज़बूर किया जाता है। 'पचास के अन्तिम वर्षों में, जब मैक्सिको के मैज़टैक भारतीयों ने मिगुअल अलेमां बांध के स्थल से अपने घर खाली करने से इंकार कर दिया तो उनके घरों को आग लगा दी गई और उपद्रव शान्त करने के लिए सेना बुला ली गई। इसी प्रकार, तत्कालीन सोवियत संघ में, विस्थापित जनसमूह को प्रायः अपने घरों, गिरजाघरों एवं बागानों को नष्ट करने और अपने मृत संबंधियों के लिए ताबूत तैयार करने के लिए मज़बूर किया जाता था (मैक्यूली 1998)।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

लोगों की संख्या जिन्हें बांध परियोजनाएं विस्थापित कर देती हैं, के अलावा यह भी ध्यान देने योग्य है कि विस्थापित लोगों में अधिकांश जनजातियों से संबंध रखते हैं या फिर उस ग्रामीण ग़रीब वर्ग का हिस्सा होते हैं जिसे पास नाममात्र को या फिर बिल्कुल भूमि नहीं होती है। 1996 में भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा प्रकाशित एक दस्तावेज़ के अनुसार, खनन, बांधों व नहरों, उद्योगों, अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय उद्यानों, आदि के कारण एक करोड़ साठ लाख से भी अधिक लोग विस्थापित किए जा चुके हैं। इनमें से लगभग 39 लाख लोगों को पुनर्वासित कर दिया गया है। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग रिपोर्ट (1990) के अनुसार, लगभग 40 प्रतिशत विस्थापित जनसंख्या अनुसूचित जनजाति श्रेणी से संबंध रखती है। गुजरात में सरदार सरोवर बांध परियोजना, झारखण्ड में कोयलकारों बांध परियोजना, सुवर्णरेखा एवं कुजू बांध परियोजना, और उड़ीसा में बालीमेला परियोजना

एवं मचुकुंडा बांध कुछ काफ़ी प्रसिद्ध उदाहरण है। जहां राजा एवं आम जनता के वृहतर हितों को साधनो के लिए भूमि एवं वन हेतू जनजातीय अधिकारों की अवहेलना की गई।

घ) वित्तीय प्रभाव

बांधों के लिए विपुल वित्तीय निवेश आवश्यक होते हैं, जो कि इसके आलोचकों के अनुसार अब तक के सबसे अधिक अलाभकर निवेश रहे हैं। अधिकारिक अनुमानों (1987-88) के अनुसार सरदार सरोवर बांध की कुल अन्तिम लागत रु.11,154/- करोड़ है और इस अनुमान में अन्य बातों के अलावा उन आठ वर्षों के दौरान जिनमें यह परियोजना पूरी होनी है, आवाह क्षेत्र (वह स्थान जहां से पानी बहकर नदी में जाता है) के उपचार पर आने वाले अन्य खर्चे एवं आवर्ती लागतें, परियोजना के समापन में हुए विलम्बन, अनुपूरक वनीकरण, आदि शामिल हैं। यहां तक कि यह 'नातिशय' अनुमान समस्त सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में केन्द्र व राज्य के योजना व्यय के मुकाबले भी अधिक था। प्रधानमंत्री हेतु भारत सरकार, पर्यावरण एवं वन की टिप्पणी के अनुसार, इस परियोजना की वजह से कुल पर्यावरण क्षति वृहद्काय 40,000 करोड़ थी (अल्वेयर एवं बिलोरी 1988 : 46-7)। विश्वभर में लगभग सभी बड़ी बांध परियोजनाओं को विश्व बैंक द्वारा 10.75 प्रतिशत प्रति वर्ष की ब्याजदर से वित्त प्रदान किया जाता है। बैंक रु. 700 करोड़ का एक अधिकतम ऋण देने को सहमत हो गया था। शेष वित्त राशि जापान से जुटाए जाने के प्रयास किए जा रहे थे; तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग 14.5 प्रतिशत प्रति वर्ष की ब्याज दर से एक रू.200 करोड़ का ऋण देने को तैयार था। गुजरात सरकार ने अपेक्षित राशि की वसूली हेतु कर मुक्त ऋण पत्र भी ज़ारी किए और जनता से एक तुच्छ राशि उगाहने का प्रबंध कर लिया (आम्टे, बाबा 1990)। मुख्य प्रश्न है कि गुजरात सरकार यह धन कैसे उगाहेगी और इन ऋणों पर ब्याज चुकाने के विषय में वह क्या करने का सोच रही है। अन्य विकास प्रतिबद्धताओं के साथ साथ स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं रोज़गार प्रदान करने संबंधी कल्याणकारी उत्तरदायित्वों के विषय में उसका क्या कहना है?

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सोचिए और कीजिए 27.2

आपने समाचार पत्र व अन्य स्रोतों में बांधों एवं उनके प्रभावों सं संबंधित मुद्दों पर काफ़ी कुछ पढ़ा होगा। अपने अध्ययन के आधार पर समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं परिस्थितिकीय पहलुओं पर वृहद् बांधों के प्रभावों पर एक टिप्पणी लिखें।

27.4 बड़े बांधों के पक्ष में तर्क

अब तक की व्याख्या में केवल वृहद् बांधों के विरूद्ध तक प्रस्तुत किए गए तथापि भारत में वृहद बांधों के लिए सशक्त समर्थन भी देखा गया है। अनेक विशेषज्ञों, जैसे अर्थशास्त्रियों, अभियन्ताओं, विकास योजनाकारों और कृषि-वैज्ञानिकों ने वृहद बांधों के निर्माण का पक्ष लिया है। बड़े बांधों के पक्षधरों ने इन बांधों की प्रभावकारिता विषयक संशयों को दूर करने का प्रयास किया है और इनकी विनाशकारी संभाव्यता के विषय में पर्यावरणविदों एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा की गई गुहार से असंतुष्ट ही रहे हैं। बड़े बांधों का इस आधार पर समर्थन किया गया है कि सिंचाई पेयजल और बिजली के संकट से निबटने के लिए वर्तमान विकल्पों में वे ही सर्वोत्तम हैं। अपुनर्नव्य संसाधनों को प्रयोग करने के लिए विकिरण और ताप ऊर्जा के संबंध में अपनी सुरक्षा हेतु चुंकि आण्विक ऊर्जा को संदेह की दृष्टि से देखा जाता है, पुनर्नव्य ऊर्जा का एकमात्र व्यवहार्य स्रोत जल संसाधन ही हैं। सौर ऊर्जा के क्षेत्र में उचित प्रौद्योगिकी के अभाव में जल विद्युत को काम में लाने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं बचता है। यदि इस विकल्प का भी विरोध किया जायेगा, पक्षपोषकों का कहना है, तो देश की ऊर्जा अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए कोई व्यवहार्य विकल्प नहीं बचेगा।

साठ के दशक में भारत एक संकटपूर्ण खाद्य अभाव के दौर से गुज़रा और सरकार ने असाधारण रूप से खाद्य उत्पादन बढ़ाने पर ध्यान देना शुरू कर दिया। ऐसा तब हुआ जब उत्पादन बढ़ाने के तरीके लागू करने का एक संगठित प्रयास किया गया। यह दावा किया जाता है कि खाद्यान्न के उत्पादन में भारत सरकार द्वारा लब्ध आत्मनिर्भरता मुख्य रूप से सिंचाई सुविधाए सुधारने, कृषि अधीन क्षेत्र को बढ़ाने और उसका उत्पादन उन्नत उर्वरकों एवं बीजों के प्रयोग द्वारा सुधारने पर ध्यान दिए जाने के कारण आयी है। आधुनिक तकनीकों को लागू किए बग़ैर, जिसके मृदा पर एवं आम लोगों के स्वास्थ्य पर क्षयकारी एवं विषैले प्रभाव के लिए पर्यावरणीविदों द्वारा कड़ी आलोचना की गई है, यह साहसिक कार्य पूरा नहीं हो सकता। तदनुसार, बड़े बांधों के पक्षधारों द्वारा प्रस्तुत प्रथम आलोचना यह है कि पूर्वाक्त को देश में सिंचाई और बिजली के नितांत मापक्रम एवं अपेक्षा द्वारा आवश्यक बना दिया गया है। विश्व बैंक के कृषि प्रभाग ने बड़े बांधों के समर्थन में अनेक तर्क सूचीबद्ध किए हैं। ये तर्क बड़े बांधों के समर्थन में अनेक विकास योजनाकारों एवं अभियंताओं के विचार का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत करते हैं। उनके तर्कों का एक अपवाद नीचे दर्शाया गया है। इसका प्रसंग था – सरदार सरोवर बांध पर उनका बचाव पक्ष।

जबकि छोटे बांधों की सार्थक भूमिका है और वे वस्तुतः नर्मदा नदी घाटी हेतु समस्त विकास प्रस्तावों का एक महत्वपूर्ण भाग है, वे बड़े बांधों के लाभ स्तर तक न तो पहुंचते हैं न ही पहुंच सकते हैं। प्रथमतः वे इतनी कम लागत के नहीं होते जिसका कि प्रायः दावा किया जाता है : एक अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान द्वारा भारत में छोटे "पोखरों" (जैसा कि उन्हें पुकारा जाता है) संबंधी एक अध्ययन में उन्हें अधिकांशतः अलाभकर पाया गया (अंशतः उस भूमि क्षेत्र की वजह से जिसे वे संग्रहित जल क्षेत्र के मुकाबले अधिक जल प्लावित कर देते हैं)। दूसरे, जबकि कुछ एक अच्छे छोटे बांध पीछे छूटर जाते हैं जिन्हें संतुलित लागत पर बनाया जा सकता था, लागत बहुत तेज़ी से बढ़ जाती है क्योंकि सार्थक जलराशि एकत्र करने हेतु आवश्यक बड़ी संख्या में छोटे बांधों की तलाश में उत्तरोत्तर कम उपयुक्त स्थलों को अपनाने पर बाध्य हो जाते हैं। तीसरे, नितांत वर्ष, शुल्क वर्ष में वे भर पाने में विफल रहते हैं जबकि उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। ये बड़े बांध ही थे जो पिछले सूखे के दौरान गुजरात के लिए पर्याप्त रूप से कारगर सिद्ध हुए। चौथे, वे भूमि के अपेक्षाकृत अधिक व्यापक क्षेत्रों को जलप्लावित कर देते हैं; नदी की घाटियों के निचले भागों में बहुत उपजाऊ कृषि भूमि हुआ करती है, और ऊंचे भागों में वन। विशिष्ट रूप से लगभग 40 से 100 हैक्टेयर आकार के छोटे कुंड लगभग उतनी ही भूमि जलप्लावित कर देतें हैं जितनी कि वे सिंचित करते हैं, लगभग 0.9 हैक्टेयर प्रति 1.0 हैक्टेयर (प्रायः एक ही फसल की सिंचाई हो पाती है जबकि बड़े बांध एक से अधिक की सिंचाई करते हैं, बिजली की आपूर्ति भी करने के अलावा)। सरदार सरोवर सिंचित क्षेत्र का मात्र लगभग 1.6 प्रतिशत ही जलप्लावित करेगा। इस प्रकार, एक ही समान जलराशि के भण्डारण हेतु पर्याप्त छोटे बांध स्थल पाना तकनीकी रूप से यदि संभव भी हो तो सरदार सरोवर जलाशय हेतु लगभग 37,000 हैक्टेयर की तुलना में 10 लाख हैक्टेयर से भी अधिक भूमि जलप्लावन में चली जायेगी।

बड़े बांधों के तर्कों द्वारा उठाया गया एक महत्वपूर्ण मुद्दा सिंचाई उद्देश्यों हेतु भूजल का अति दोहन है। छोटे बांध उनके अनुसार घटिया अनुकल्प सिद्ध हुए हैं, क्योंकि लोग आज भी अपनी सबसे अनिवार्य एवं नियमित आवश्यकताओं के लिए भूजल पर भी भरोसा करते है। बड़े बांधों के प्रतिकूल परिणामों के चलते, बड़े बांधों के तर्क यह स्वीकार करते हैं कि निश्चय ही बड़े बांध वनों के बड़े क्षेत्र जलमग्न कर देते हैं, परन्तु इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृषट करते हैं कि नर्मदा नदी घाटी में उपयुक्त बड़े बांध अथवा किसी अन्य महा विकास परियोजना के बिना ही वन ह्रास लगभग 20,000 हैक्टेयर प्रति वर्ष की दर से होता रहा है। यह एक महत्वपूर्ण अवलोकन है – न सिर्फ समस्त देश में वन प्रबंधन के स्थिति के विषय

MAADHYAM IAS

में, जहां अतिक्रामकों एवं व्यावसायिक हितसाधकों द्वारा वन उत्पादों का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है, अपितु लोगों की निर्वहन आवश्यकताओं का पूरा करने हेतु बढ़ते दबाव के विषय में भी। यह बड़े बांधों के होने अथवा न होने की स्थिति में भी भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार, कदाचार एवं अक्षमता के स्तरों को उजागर करता है। विकास पहले उनके कारण बदनाम होती है क्योंकि क्रियान्वयन प्रक्रिया में विसंगति आगे चलकर योजना पर ही असर दिखाती है। साथ ही, उनका मत यह भी है कि सिंचाई क्षेत्रों में वृक्षारोपण, जो कि लकड़ी की भी 'कहीं अधिक' आपूर्ति कर सकता है, इस क्षति की भरपाई आसानी से कर सकता है। बड़े बांधों से जल की नियमित आपूर्ति लोगों की सामान्य स्वास्थ्य दशाओं को सुधार सकती है, जबकि बांध स्थल से जलजनित रोगों से ग्रस्त होने की संभावनाएं उचित रक्षात्मक उपायों से नियंत्रित की जा सकती हैं।

दोनों ओर से एक तथ्य सामने आया है कि बड़े बांधों की लागत, अथवा उसके लिए कोई भी विकास परियोजना समय के साथ बढ़ जाती है। भारतीय विकास परियोजनाओं में सदा ही एक विलम्ब से अभिशप्त रहा है जो कि न सिर्फ़ व्यय बढ़ा देता है, बल्कि उस परियोजना द्वारा प्रभावित लोगों की कंगाली को भी बढ़ा देता है जो एक अनिश्चय की स्थिति में छोड़ दिए जाते हैं, न तो ऐसी स्थिति में जिसमें वे अब तक गुज़र बसर और संमजन करते रहे (तथापि दयनीय), न ही उस "प्रत्याशित आनंदभूमि" में बसाया जाता है जहां उन्हें एक बेहतर जीवन की सुविधा मिलती थी। प्रत्यक्षतः बहस अधूरी ही है। तथापि यह बहस विकास के मामलों में लोकरुचि को बढ़ावा देने में सफल रही है और इसने योजना प्रक्रिया में पार्दर्शिता को भी बढ़ाया है। आशा है कि यह बहस देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के मार्गदर्शन में संबद्ध नागरिकों के साथ साथ बड़े विकास परियोजनाओं के प्रभावित लोगों की अधिकाधिक भागीदारी एवं सम्मिलन को भी प्रोत्साहित करेगी।

27.5 बांध और विस्थापन : मानव और मूल्य

MAADHYAM IAS

भारत सरकार ने अपने पुनर्वास पैकेज द्वारा उक्त स्थिति से उबारने का प्रयास किया है, हांलाकि सन् 2004 तक पुनर्वास एवं पुनःस्थापन हेतु कोई भी राष्ट्रीय स्तर की नीति नहीं थी। फरवरी 2004 में केन्द्र सरकार ने 'परियोजना विस्थापित जन' हेतु 'राष्ट्रीय पुनर्वास नीति' की घोषणा की। उससे पहले भी कुछ राज्य जैसे कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब और मध्य प्रदेश पुनर्वास एवं पुनःस्थापन विषयक राज्य स्तरीय नीतियां तैयार कर चुके थे। अधिकतर पुनर्वास प्रयास निष्काषित लोगों को वैकल्पिक भूस्वत्वाधिकार दिलाने अथवा उनकी नकद में क्षतिपूर्ति करने हेतु रहे। चूंकि मौद्रिक क्षतिपूर्ति हेतु, निष्काषित जनों को अपने साधिकार देय को प्राप्त करने के लिए दुष्कर अधिकारीतंत्रीय प्रक्रियाओं से गुज़रने को मज़बूर किया जाता है। सरदार सरोवर परियोजना के उदाहरण में भूमि का मूल्य निर्धारण पुराने भू-अभिलेखों के अनुसार किया गया था, जो कि उसके वर्तमान मूल्य से कम ही बैठता है। प्रायः, सरकार द्वारा मुहैया कराई गई ज़मीन घटिया किस्म की होती है। निष्काषितों से भू-दस्तावेज़ प्रस्तुत करने की अपेक्षा की जाती है, जो कि कई लोगों के पास होते ही नहीं हैं। नकद मुआवज़ा भी कोई उचित क्षतिपूर्ति विधि नहीं रही है क्योंकि यह देखा गया है कि लाभग्राही जन प्रायः लघुआवधिक आवश्यकताओं पर पैसा खर्च कर देते हैं और पुर्नवास के कुछ ही महीनों के भीतर वे निर्धन के साथ-साथ निराश्रय भी हो जाते हैं।

वैकल्पिक भू-स्वात्वाधिकारों के माध्यम से पुनर्वास के मामलों में सरकार के सामने विस्थापितों को बसाने के लिए ज़मीन तलाशने की समस्या रही है। उन्हें ज़मीन बांटे जाने के लिए अन्य क्षेत्रों के बड़े वन भाग भी साफ किए गए है, जैसा कि महाराष्ट्र के नन्दूरबाड़ जिले में देखा गया। नन्दूरबाड़ में पुनर्वासित लोगों को अभी तक उस भूमि से संबंधित यथानियम पंजीकृत प्रतिलिपियां नहीं मिली हैं जिन पर उन्हें बसाया गया है। पुनर्वासित लोगों द्वारा वनों का

अतिक्रमण किया गया है, जिससे वे स्थानीय जनजातियां काफी नाखुश हैं जो अपने भरण पोषण का अधिकांश भाग इन वनों से ही प्राप्त करते हैं। वन विनाश और निष्काषितों के आशु प्रबंध में एक सीधा संबंध है। प्रथमतः इसलिए कि दोनों ही बांध परियोजनाओं के शिकार होते हैं। दूसरे और सबसे महत्वपूर्ण रूप से, वन ही ग्रामीण गरीबों की वैकल्पिक जीवनरेखाएं हैं। काफी कुछ भरण पोषण वन उत्पादों से किया जाता है। वन उन्हें मौसमी मंदी के दिनों में भी गुज़ारा करने में मदद करते हैं, क्योंकि तब उन्हें वनो में उपलब्ध फलों, जड़ी बूटियों, हरी पत्तियों और शिकार आदि से ही काम चलाना पड़ता है। पुनर्वासित जन और स्थानीय जनजातियों के बीच बढ़ते तनाव एक चिंता का विषय बन चुके हैं। नन्दूबाड़ में 40 प्रतिशत वन को विकृत घोषित कर दिया गया है। 'भूमि हेतु भूमि' नीति इस आधारवाक्य पर टिकी है कि निष्काषितों के बीच वितरण के लिए अतिरेक सार्वजनिक भूमि उपलब्ध है जो कि संदेह योग्य है। उपलब्ध भूमि न केवल घटिया किस्म की होती है बल्कि उस पर खेती भी नहीं की जा सकती। यह आधार वाक्य आजीविका विकल्पों की रेखिक अवधारणा को भी प्रकट करता है। जैसा कि ऊपर दर्शाया गया , आजीविका में आर्थिक कार्यकलापों का एक हुजूम शामिल होता है (जैसा कि प्रायः होता है, जोतें छोटी ही होती हैं) और कोई एक ऐसा कार्यकलाप नहीं होता जिसे आजीविका चलाई जा सके। तब ज़मीन का मुआवजा निष्काषितों द्वारा सही गई हानियों का मात्र आंशिक ही हर्जाना होता है। आदर्श रूप से केवल खोई आजीविका को दोबारा दिलाया जाना ही विस्थापित लोगों को किसी प्रकार की राहत दे सकता है। इसके लिए न तो राष्ट्रीय नीति में और न ही राजकीय नीतियों/कानूनों में कोई प्रावधान है।

बड़े बांध विषयक बहस में विस्थापन और उसके पारिस्थितिकी एवं मानव जाति पर प्रभाव पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। बड़े बांध तथापि समाज का एक वृहत्तर उद्देश्य अथवा अवलोकन प्रस्तुत करते हैं। उन्हें एक आधुनिक, प्रगतिशील संसार के प्रतीक रूपों में देखा जाता है। वे मानव की बौद्धिक क्षमता और युक्ति पटुता को दर्शाते हैं और मानवोन्नति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते है। वे मानवमात्र के लाभार्थ प्रकृति के अवरोधों को दूर करने के लिए आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की क्षमता का ही समर्थन करते हैं। यह मुद्दा जो समान रूप से महत्वपूर्ण है और प्रायः अनदेखा किया जाता है, यह है कि समाज का वह कौन सा रूप था और है जिसे प्रगति एवं विकास के इस आधुनिक दृष्टिकोण द्वारा 'विस्थापित करने का प्रयास किया जाता है। साथ ही, इस विस्थापन द्वारा सर्वाधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित कौन लोग हैं? जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया वे लोग एवं समुदाय जिन्हें विकास योजनाओं द्वारा विस्थापित किया जाता है, समाज के हाशिए पर रहने वाले होते हैं। जैसे जनजातियां, पशुपालक एवं निर्वाह कृषक। ये समूह सदियों से वनों में स्थायी रूप से रहते और मुख्यधारा सभ्यता के हाशियों में रहकर गुजर बसर करते आए हैं। विकास योजनाओं के लाभ उन्हें विरले ही मिलते हैं । हांलाकि उन्हें मौद्रिक हर्जाना दिया जाता है (नुकसान का मूल्यांकन फिर भी अभी एक विवादाग्रस्त मुद्दा है), उन्हें पुनर्वासित करते समय उनके रीति रिवाज़ों एवं परम्पराओं पर मुश्किल से ही पर्याप्त ध्यान दिया जाता है। पुनर्वास नीतियां सांस्कृतिक एवं सामाजिक मुद्दों के प्रति अनुदारता दर्शाती है। पुनर्वासित किए जाने वाले वृहद जनसमूह में ये विस्थापित बहुत से होते हैं।

विस्थापित लोगों के पुनर्वास के मुद्दे पर हावी रहने वाला कारण काफी हद तक आर्थिक है। आर्थिक मुद्दे को जीवन रक्षा का विषय माना जाता है। जबकि संस्कृति विध्वंस को गौण समझा जाता है। आर्थिक एवं सांस्कृतिक पुनर्वास को एक दूसरे से भिन्न के रूप में देखा जाता है। अधिकांश परंपरागत, कृषिक समाजों में इन दोनों को अलग करना मुश्किल होता है। आर्थिक कौशलों का प्रसार सांस्कृतिक प्रथाओं एवं समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है, जबकि समाज में संस्कृति का पुनर्नवीकरण और पुनःस्थापन आर्थिक उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान किया जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि परंपरागत समाजों में लगभग सभी पर्व एवं आनुष्ठानिक कार्य वर्ष में विभिन्न मौसमों में विभिन्न कार्य

MAADHYAM IAS

अवस्थाओं को ही प्रकट करते हैं। इस प्रकार के परिदृश्य में, जीवन के सांस्कृतिक पहलू के मुकाबले आर्थिक पहलू को प्राथमिकता दिया जाना आधुनिक औद्योगिक समाज में प्रत्यक्ष जीवन के लौकिकीकरण एवं आधुनिकीकरण को ही दर्शाता है। वृहद् बांधों के माध्यम से विस्थापन का तब मतलब लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेज देना मात्र ही नहीं हुआ, अपितु इसने पीढ़ीयों में तैयार समस्त जीवनशैली और प्रायः कठोरतम पर्यावरणीय दशाओं में जीवनरक्षा हेतु युगों से संचित आर्थिक एवं सांस्कृतिक कौशलों के विध्वंस को भी थोप दिया है।

गरीबी की समस्या हेतु हल तलाशने के अथक प्रयास में विकास योजनाकारों ने अकल्पनीय व्यय वाली परियोजनाएं प्रस्तुत की हैं, और कृषिक एवं औद्योगिक उत्पादन में निवेशों को बढ़ावा दिया है, जिसने देश के अनेक भागों में सूखा सदृश परिस्थितियों को जन्म दिया है, साथ ही आर्थिक असमानता को भी बढ़ाया है। इस प्रकार गरीबी दूर करने के प्रयास में विस्थापित कर दिए जाते हैं और बेघर छोड़ दिए जाते हैं। सूखा सदृश दशाओं तथा पेयजल एवं सिंचाई के संकट से निबटने के प्रयास में उन्होंने नए संसाधन तैयार करने के एवज में विद्यमान प्राकृतिक संसाधनों को ध्वस्त किया जाना चुपचाप स्वीकार कर लिया है। विकास अथवा आधुनिक विकास के अनुपालन पर इस चक्करदार प्रयास ने, जोकि विद्यमान संसाधनों के और अधिक दोहन द्वारा इस समस्या को उठाने के साथ ही संसाधन संकट की अधिक गंभीर बना देता है, लाभ की बजाय हानि ही अधिक पहुंचाई है। यह अमान्य साबित हुई है, पर्यावरणीय परिणामों के लिहाज से भी और गरीबी कम करने के एक आदर्श रूप में भी। बल्कि, यह एक विकास की राजनीति का प्रतीक बन गया है, जो कि उच्च रूप से भौतिकवादी और आक्रामक है और चुनिंदा लोगों की आवश्यकताओं को ही पूरा करता है।

27.6 बड़े बांधों के विकल्पों की खोज

तब विकल्प क्या है? क्या बड़े बांधों के कोई अन्य विकल्प नहीं हैं? क्या जल संकट से निबटने और फिर भी बड़े बांधों के निर्माण में निहित मानवीय एवं परिस्थिकीय लागतों को कम करने का कोई अन्य तरीका नहीं है? क्या 'लघु' प्रौद्योगिकियां अथवा समुदाय स्तरीय पहलकारियां मान्य हैं, और क्या वे सदा ही पर्यावरणीय एवं सामाजिक रूप से सराही गई हैं? भारत में, आमतौर पर सब जानते हैं कि निम्न जातियों, जैसे अछूतों को देश के कुछ भागों में समुदाय आधारित जल संसाधनों से पानी नहीं लेने दिया जाता था और आज भी यह प्रथा विद्यमान है। बांधों एवं विस्थापन विषयक बहस इन प्रश्नों और मुद्दों को सामने लेकर आयी है। अतः, 'लघु सुन्दरम् अस्ति' के शब्दाडम्बर अथवा परम्परा बनाम आधुनिकता पर अनन्त बहस से आगे निकलने, और जल संकट से निपटने के लिए शुरू किए गए कुछ प्रयोगों जिनमें बड़ी छोटी, परम्परागत व आधुनिक सभी तकनीकों को गृहीत किया गया है पर दत्तचित्त होने की आवश्यकता है। बड़े बांधों के ऐसे चालू विकल्प हैं जिन पर देश के साथ-साथ विश्व के भी अनेक भागों में जनसाधारण संगठनों द्वारा प्रयोग किया जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन अनुसंधान के अनुसार, 50 लाख हैक्टेयर वाली लगभग आधी विंचित ज़मीन पर लघु स्तरीय एवं परम्परागत प्रणालियों से ही पानी मिलता है। इसी प्रकार, भारत में अधिकाधिक स्रोतों के अनुसार, विंचित क्षेत्र का तीन बटे पांच भाग परंपरागत कुंओं और छोटे जलाशयों से ही पानी लेता है जिन्हें स्थानीय भाषा में 'कुण्ड' कहा जाता है (विश्व बैंक के आंकड़े जो मैक्यूली 1998 : 184 द्वारा उद्धृत हैं)।

सोचिए और कीजिए 27.3

अब तक आपने बड़े बांधों हेतु कुछ संभावित विकल्पों के विषय में पढ़ा। आपने बड़े बांधों के संभावित खतरों को भी जाना। अपने अनुभव के आधार पर कुछ उपाय सुझायें, जिनको आपने क्षेत्र में बड़े बांधों के विकल्प स्वरूप क्रियान्वित किया जा सकता हो।

MAADHYAM IAS 'way to achieve your dream'

बॉक्स 27.1: विकल्पों से संबंधित सुझाव

उत्तरी गुजरात में जल संकट दूर करने हेतु उपायो के रूप में इन सुझावों के संबंध में आपकी क्या राय है? क्या वे व्यवहार्य हैं और क्या ये सुझाव समस्त भारत के लिए अपनाये जा सकते हैं? देश के मौजूदा सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक वातावरण में ये सुझाव कितने प्रभावी हो सकते हैं?

जल संकट से निबटने के लिए अर्थशास्त्रियों, ग़ैर सरकारी संगठन कार्यकर्त्ताओं, जल वैज्ञानिकों, एवं ग्राम स्तरीय कार्यकत्ताओं वाले एक समूह द्वारा रखे गए सुझाव :

- परम्परागत जल स्रोतों को मान्यता, जैसे तालाब (झीलें), विर्दा (उथले गड्ढे जिनमें भूजल धीरे धीरे रिसता है और पेयजल के रूप में एकत्र हो जाता है) ताकि वाव (सीढ़ीदार कुएं)। इससे, साथ ही नियंत्रण बांध एवं भण्डारण बांध जैसे ग्राम स्तरीय जल संग्राहक उपायों को अपनाकर, अज अल्पता की दशाओं को काबू किया जा सकता है।
- भूजल पर सम्पत्ति अधिकारों की वर्तमान व्यवस्था को सुधारा जाए। वर्तमान में भूजल कोई आम संसाधन नहीं है ; यह उसका होता है जो अपनी ज़मीन में नलकूप खुदवाता है। इसके परिणामस्वरूप भूस्वामी अपनी आवश्यकता की मात्रा पर ध्यान दिए बग़ैर यथा संभव अधिक से अधिक भूजल दोहने का प्रयास करते हैं।
- नलकूपों की गहराई को सीमाबद्ध किया जाए। 1970 में बंबई सिंचाई अधिनियम का संशोधन करने का प्रयास किया गया था ताकि नलकूपों को 45 मीटर से अधिक खोदे जाने पर रोक लगाई जा सके। परन्तु इसको एक वास्तविकता बनाने के लिए साधारण अध्यादेश जो जारी किए जाने थे उन्हें छोड़ ही दिया गया।
- राज्य भूजल स्तरों पर नज़र रखे, इस दृष्टिकोण से कि यदि वह एक निर्धारित स्तर से नीचे चला जाता है तो उस कुएं विशेष का प्रयोग रोक दिया जाए। यह विधि तभी अपनाई जा सकती है जब क्षेत्र में वैकल्पिक जल स्रोत उपलब्ध हों।
- वर्तमान समानदर के स्थान पर बिजली की फिर से यथानुपात दरें लागू की जाएं। गुजरात ने एक समानदर लागू की थी, परन्तु कृषक समर्थकवर्ग ने इस बदलवा दिया।
- यदि कृषि इन क्षेत्रों का मुख्य आधार बना ही रहना है तो रिसकन सिंचाई जैसी विधियों का प्रयोग कर सिंचाई हेतु एक विस्तार उपागम अपनाया जाए। यदि ऐसा किया जाता है तो जलसंसाधनों को विकृत रूप देने की दोषी कुछ नकदी फसलें स्वतः ही हट जायेंगी, क्योंकि विस्तार सिंचाई सभी फसलों के लिए उपयुक्त नहीं होती।
- व्यापक रूप से शुष्क खेती विधियां और फसल चक्र प्रतिमानों को अपनाया जाए।
- मूल्य-नीति में फेर-बदल करें ताकि लोग अन्य फसलों की ओर आकर्षित हों। सौराष्ट्र विश्व में मूंगफली की फसल का सबसे बड़ा आपूर्तिकर्त्ता है। संभव है कि इसमें हेर फेर के किसी भी प्रयास का क्षेत्र के धनी किसानों द्वारा विरोध किया जाए।

स्रोत : फ्रन्टलाइन 9 जून 2000

बड़े बांधों हेतु विकल्पों ने जल प्रबंधन के दो व्यापक पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया है: भूजल पुनःभरण तथा जल परिरक्षण। जल परिरक्षण हेतु सबसे बड़ी बाधाओं में एक रही है– शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ सिंचाई के लिए भी पानी का अंधाधुंध प्रयोग और अपवहन। अनेक आधुनिक तकनीकें जैसे रिसकन सिंचाई, जिसमें छिद्रयुक्त पाइपों की मदद से पानी सीधे पौधे की जड़ों में दिया जाता है, और संचक आमतौर पर सिंचाई की विवेकशील विधियों के रूप में जानी जाती हैं। इसी प्रकार, जल का शहरी घरेलू उपभोग भी उन्नत समाजों में एक चिंता का विषय रहा है। एरिज़ोना में किए गए उपायों की एक श्रृंखला ने जल के घरेलू उपभोग को प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 760 लिटर से 510 लिटर लाने में मदद की। इन उपायों

में एक परंपरागत स्वचालन प्रणाली द्वारा 16 लिटर की बजाय मात्र 6 लिटर जल ही प्रयोग करने वाले स्वक्षलिन शौचघरों जैसे जल दक्ष प्रौद्योगिकियों के वितरणार्थ आर्थिक सहायता प्रदान करना, जल परिक्षण विषयक अभिमान शुरू करना और हर घर में जल उपभोग पर नज़र रखने के लिए मीटर लगवाना, आदि शामिल है। एक अन्य विधि जो इज़रायल में सफल रही है, वो है – सिंचाई के लिए उपचारित मलजल अथवा नगर अपजल का सदुपयोग (मैक्यूली 1998)।

नब्बे के दशक के आरंभ में, भारत में जलाशय विकास की धूम मच गई। इसे बड़े बांधों के एक विकल्प के रूप में लिया गया, यानी प्रवाही नद्य जल एवं वर्षा जल को उसे खाई गड्ढों आदि के माध्यम से कुण्डों और कुंओं में बदलकर काम में लाना व एकत्र करना। सरकारी अंचल, अन्तर्राष्ट्रीय वित्त प्रदाय अभिकरण और गैर-सरकारी संगठन, आदि इस विधि से प्रभावित हुए और देश भर में समुदाय स्तर पर कदम उठाए गए। इसका सिद्धांत क्षेत्र की स्थलाकृति के अनुसार काम करना था। नदियों की जल के अनेक स्रोतों द्वारा आपूर्ति की जाती है जो वर्षा जल को नदियों तक पहुंचाते हैं। वे स्रोत जहां से नदियां अपना नल स्रवण करती हैं स्रवण क्षेत्र या आवाह क्षेत्र कहलाते हैं। लक्ष्य होता है – अप्राकृतिक ढलानों पर झाड़ियां व पौधे लगारकर स्रवण क्षेत्रों से पानी को काम में लाना जहां उसके प्रवाह की गति कम हो जाती है, मृदा अपरदन कम हो जाता है और स्थानीय प्रयोग हेतु वहां पानी भी एकत्र कर लिया जाता है। इस प्रकार अधोमुखी जल फिर खाइयों, होदियों आदि के रास्ते कुंडों, बांधों अथवा कुओं तक पहुचाया जाता है। जल संभर विकास को अनेक गांवों में सफलता मिली है परन्तु यह वस्तुतः जल एकत्रण हेतु एक विकल्प स्वरूप एक बड़े स्तर पर नहीं शुरू हो पाया है।

जलाशय प्रबंधन में प्रयोगों के कुछ सामान्य अभिलक्षण हैं, इस लिहाज से कि उनमें ग्राम स्तर पर लघु स्तरीय प्रवासों की अपेक्षा होती है, जहां हर गांव जल दोहन हेतु अपनी प्रणालियां विकसित करता है, परन्तु सभी वैयक्तिक प्रयास एक वृहत्तर योजना के हिस्से के रूप में एक साथ गिने जाते हैं। इस योजना में इसी कारण एक समानरूप से सुदक्ष प्रबंधन, जनसहयोग और तकनीकी मार्गनिर्देशन की आवश्यकता होती है, क्योंकि हर क्षेत्र की एक भिन्न स्थलाकृतिक एवं जल विभाजन रूपरेखा होती है। इसमें तकनीकी एवं प्रबंधन विशेषज्ञों की जरूरत होती है ताकि योजना पर मौन स्वीकृति मिल सके क्योंकि इसमें अभिकल्प की प्रभावोत्पादकता पर समुदाय के साथ ध्यानपूर्वक विचार विमर्श की आवश्यकता होती है। भूभाग और जलवायु वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए ज़रूरी होते हैं। जैसा कि देश भर में अधिकांश मामलों में देखा गया है। जलाशय विकास की सफलता प्रायः इस बात पर निर्भर रही है कि योजना का समुदाय द्वारा किस प्रकार स्वागत किया गया है और क्या वे इसके अवधारण एवं क्रियान्वयन में सक्रिय रूप से योगदान दे रहे हैं? समुदाय स्तर पर, सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित समूहों के जलाधिकार संबंधी मुद्दे निर्णायक रहे हैं। संसाधनों पर विवाद बहुत स्फूर्त होते हैं, जहां धनी एवं सामाजिक रूप से सशक्त लोग तदोपरांत सर्वसामान्य संसाधनों के लाभों पर एकाधिकार जमाने की फ़िराक में रहते हैं, और इस प्रकार वंचितों एवं गरीबी की दशाओं को और ही सुदृढ़ करते हैं।

अतः बड़े बांधों या वृहद सिंचाई परियोजनाओं के अपने ही सामाजिक, तक्नीकी और प्रबंधन अवरोध हैं। लघु सिंचाई प्रयासों को उनके सीमित क्षेत्र व पैमाने के लिए खारिज कर दिया गया है। यद्यपि उनकी मूल्य प्रभावी तकनीको की विविधताओं के प्रयोग और बड़े बाध जैसी जल परियोजनाओं के उच्च स्तरीय प्रबंधन के स्थान पर समुदाय आधारित कार्यक्रमों को शुरू करने के लिए और इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों के प्रबधन रखरखाव में पारदर्शिता रखने व लोगों की भागेदारी के लिए, प्रशंसा की जाती है।

सोचिए और कीजिए 27.4

यहां कुछ बाहरमासी सूखा क्षेत्रों में चल रहे और सफल जलाशय विकास संबंधी कार्यों की सूची दी गई है,यथा 'समाज प्रगति सहयोग' बगली तहसील देवास ज़िला, मध्य प्रदेश ; अहमद नगर ज़िला महाराष्ट्र में हिवड़े बाज़ार एवं इलेगनसिद्धि ; अलवर, राजस्थान में 'तरूण भारत संघ। आपके पास ऐसी अन्य पहलकारियों के विषय में भी जानकारी हो सकती है। अपने सर्वोत्तम अनुभव अथवा द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त सूचना पर आधारित जलाशय विकास पहलकारियों की कार्यात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता पर एक विस्तृत टिप्पणी लिखें।

27.7 सारांश

यह इकाई युगों से जल संसाधन प्रबंधन में राज्य एवं समुदाय की भूमिका को साथ लेकर बांधों पर, अंक ऐतिहासिक महत्व को स्पष्टता व्यक्त करते हुए, एक टिप्पणी के साथ शुरू हुई। स्पष्टतया अकाल और सूखा सदा ही मानव सभ्यता का ध्यान अपनी ओर खींचते रहे हैं, परन्तु इस समस्या ने आधुनिक युग में विकराल रूप धारण कर लिया है। इस सहस्राब्दि का लक्षण वर्णन एक जल संकट द्वारा किया जाता है, जो कि दिन ब दिन बढ़ता ही जा रहा है। जबकि मानव सभ्यता आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ मानव जाति के लाभार्थ प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में सफल रही है, परवर्ती ने प्रकृति की लय को भी बिगाड़ा है जो वर्तमान पारिस्थितिकीय संकट की ओर ले जा रहा है। बांध एवं विस्थापन विषयक बहस ने न सिर्फ यह दर्शाया कि किस प्रकार बड़े बांधों ने लोगों को विस्थापित किया, बल्कि यह भी कि विस्थापित जन समाज के अधान्तिक वर्गों से संबंध रखते हैं, जैसे जनजातियां, गरीब किसान एवं भूमिहीन लोग। विकल्पों विषयक आग ने दर्शाया कि किस प्रकार बड़े बांधों के विकल्पों ने दुनियाभर के बड़े बांधों के अनुभव से संकेत पाकर जल संग्रहण एवं जल प्रयोग के पर्यावरणीय रूप से मित्रवत् और व्यहार्य तकनीकों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास किया है, साथ ही अधिकाधिक जन भागीदार को शामिल करने पर भी, ताकि सामाजिक एवं आर्थिक विभाजनों के बीच जल संसाधनों की समान सुलभता सुनिश्चित हो सके। यद्यपि इन विकल्पों की प्रभावकारिता एवं सातत्य को लेकर आलोचनाएं भी हुई हैं, परन्तु वे फिर भी विश्व के सर्वाधिक आलोच्य विषयों में एक जल पर प्रयोग करने व हल खोजने हेतु एक अथक प्रयास की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।

MAADHYAM IAS

27.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लोकायन बुलेटिन, सम्पादकीय (1991), *डैम्स ऑन द रिवर नर्मदा : ए कॉल टु कॉन्साइन्स,*

मई - अगस्त, खण्ड 9, नं. 3 व 4, पृष्ठ 1-10

माथुर, हरि मोहन एवं डेविड मार्सडन (सं.)(1998), *डिवैल्पमैन्ट प्रोजैक्ट्स एण्ड इम्पॉवरिशमॅन्ट रिस्क्स,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटि प्रैस : दिल्ली

मैक्यूली, पैट्रिक (1998), *साइलैंस्ड रिवर्स : द इकॉल्जि एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ़ लार्ज डैम्स,* औरियन्ट लॉन्गमैन लि. : दिल्ली।

इकाई 28
हरित शान्ति आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

28.1 प्रस्तावना

28.2 संगठन का उदय और विकास

28.3 हरित शान्ति आंदोलन: उद्देश्य

28.4 हरित शान्ति आंदोलन: कार्यविधि के वैश्विक दृष्टिकोण

28.5 हरित शान्ति आंदोलन: एक मूल्यांकन

28.6 हरित कार्य

28.7 पर्यावरण क्षेत्र एवं रोज़गार के अवसर

28.8 सारांश

28.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको एक नई परिघटना से अवगत कराती है जिसका नाम है हरित शान्ति आंदोलन, जिसके विकास प्रक्रिया पर दूरगामी प्रभाव पड़े हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इन विषयों पर चर्चा करने में सक्षम होंगे:

- इस आंदोलन के उद्देश्य;
- इस आंदोलन का उदय एवं विकास;
- इस आंदोलन की उपलब्धियाँ; तथा
- इस आंदोलन के सामाजिक.राजनीतिक निहितार्थ।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

28.1 प्रस्तावना

बीसवीं सदी के आरंभ में, उत्पादन एवं उपभोग के पूंजीवादी तरीके में विद्यमान पारंपरिक विकास प्रतिमान को चुनौती देने विश्व में नए सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों ने जन्म लिया। ये आंदोलन उन समस्याओं एवं मुद्दों के प्रत्युत्तर स्वरूप जन्मे जो विश्व के विभिन्न भागों में और विभिन्न समुदायों एवं वर्गों में उदित हुए जोकि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय रूप से हुए विकास की वर्तमान प्रक्रिया और उसकी राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक शाखा-प्रशाखाओं का परिणाम थे। ये आंदोलन, संघर्ष और संगठन विभिन्न रूप ले चुके हैं और विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न महत्व रखते हैं। हरित शान्ति एक ऐसा ही स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण संगठन है जिसकी स्थापना 1971 में वैनकुवर ब्रिटिश कौलम्बिया कनाडा में हुई। यह संगठन स्वतंत्रता एवं अंतर्राष्ट्रीयवाद के सिद्धांतों के प्रति वचनबद्ध है। हरित शान्ति का औपचारिक दौत्य कथन इस संगठन एवं उसके उद्देश्यों का वर्णन इस प्रकार करता है: हरित शान्ति एक स्वतंत्र अभिमान-कार्यरत संगठन है, जो भूमंडलीय पर्यावरण समस्याओं को उजागर करने और एक ऐसे हरे-भरे और शान्तिपूर्ण भविष्य हेतु समाधान लागू करने के लिए अहिंसात्मक, रचनात्मक साम्य का प्रयोग करता है जोकि सतत विकास कार्यों को लक्ष्य बनाता है। हरित शान्ति का लक्ष्य है – अपनी समग्र विविधता में जीवन को पोषित करने हेतु पृथ्वी की क्षमता को सुनिश्चित करना (http://www. greenpeace.org)।

पर्यावरण साठ के दशक से ही हर एक राजनीतिक एवं सामाजिक कार्यसूची का प्रमुख हिस्सा रहा है। उत्तर अमेरिका एवं यूरोप में द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत उपभोक्ता समाज के विस्तार ने पर्यावरण पर दबाव बढ़ा दिया है जिससे पर्यावरण के ह्रास/अधोगति को बल मिला है। पर्यावरण आंदोलन जो इन सरोकारों को लेकर ही जन्मा, नितान्त ऐतिहासिक रूप से इतिहासन्नोमुखी नहीं है। समकालिक समस्याओं को अपूर्व और 20वीं सदी के पूंजीवाद एवं औद्योगिक विकास का परिणाम माना जाता है।

इस प्रसंग में हम विश्व में पर्यावरण सक्रियतावादी आंदोलन के अग्रणियों में से एक हरित शान्ति ओदोलन – के प्रयासों पर दृष्टिपात करेंगे। हरित शान्ति आंदोलन प्राकृतिक जगत पर ख़तरा उत्पन्न करतीं सरकारी एवं औद्योगिक नीतियों को बदल डालने के लिए काम करता है। समुद्र में तेल के लिए कुआं खोदना, परमाणु परीक्षण तथा महासागरों में रेडियोधर्मी उपशिष्टों को डालना जैसे कार्यों से पर्यावरण पर बढ़ने वाले ख़तरों के प्रति ध्यान आकृष्ट करता है। यह ह्वेल शिकार, अणु-अस्त्रों के प्रसार तथा आखेट, प्रदूषण एवं प्राकृतिक-वास लोप आदि से वन्य जीवन को खतरे का भी प्रतिरोध करता है।

प्रस्तुत इकाई हरित शान्ति आंदोलन के उदय और तीन से भी अधिक दर्शकों से अपनी गतिविधियों के माध्यम से उसकी उन्नति की ओर अग्रसर करने वाली परिस्थितियों का अवलोकन करेगी। हरित शान्ति आंदोलन पर्यावरण और परिस्थितिकी को बचाने के लिए एक जन-पहलवारी के रूप में उभरा, जोकि दुनिया भर में तथाकथित विकास गतिविधियों द्वारा काफ़ी हद तक प्रभावित हुआ। यह आंदोलन कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को लेकर उभरा, जिनको यहाँ विस्तार से समझाया जाएगा। यह इकाई हरित शान्ति आंदोलन की मुख्य गतिविधियों एवं प्रमुख उपलब्धियों पर भी नज़र डालेगी। चलिए, इस पर्यावरण आंदोलन के उद्‌गमन से प्रारम्भ करते हैं।

28.2 संगठन का उदय और विकास

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

हरित शान्ति की स्थापना 1971 में अमेरिका स्थित यूनिरेरियन चर्च के तलघर में एक छोटे-से जन-समूह द्वारा की गई जोकि एक हरे-भरे और शान्तिमय विश्व की कल्पना से अभिप्रेत था। ये सक्रिय प्रतिभागी जन, हरित शान्ति के संस्थापक मानते थे कि व्यक्तिजन कुछ भिन्न अर्थात् लीक से हटकर कर सकते हैं। इन प्रवर्तकों ने शान्ति, पारिस्थिति की एवं जन-संचार माध्यमों से संप्रेषण हेतु अपनी प्रतिभा को एक साथ जोड़ दिया और विश्व के सबसे बड़े पर्यावरण सक्रियतावादी संगठन के निर्माण में जुट गए।

1969 में अमेरिका के आविक परीक्षण के विरुद्ध विरोध-प्रदर्शनों के दौरान प्रयोग किए गए एक आदर्शवाक्य से अपना नाम लेकर यह समिति अलास्का के पश्चिमी तट के छोटे-से द्वीप-अन्चिट्का, जो विश्व के सर्वाधिक भूकंप-संभावित क्षेत्रों में एक है, के टापू तले अमेरिकी सेना द्वारा 'कैनीकिन' कूटनामांकित एक द्वितीय भूमिगम आण्विक बम परीक्षण को रोकने के उद्देश्य को लेकर सामने आयी। सक्रिय प्रतिभागियों के छोटे से दल ने एक पुरानी मछुवाही नाव में बैठकर बैनकूबर, कनाडा से जलयात्रा प्रारंभ की। उनका लक्ष्य था – अम्चिट्का में अमेरिकी भूमिगत आण्विक परीक्षण का "गवाह बनना"। अम्चिट्का 3000 संकरापन्न समुद्री ऊदबिलावों का अंतिम आश्रयस्थल था और गंजा गरुड़ शिकारी बाज़ व अन्य कई वन्य जीवों का वासस्थल था। अम्चिट्का पहुंचने से पहले ही जब उनकी पुरानी नाव – फिलिस कॉर्मेक – को रोक दिया गया तो इस यात्रा ने लोगों की दिलचस्पी में हलचल मचा दी। परीक्षण तो नहीं रोका गया परंतु इस आशय के स्वर को सुना गया और उक्त समिति की संगठित संस्था ने हरित शान्ति के तदन्तर कार्यकलापों के लिए आधार तैयार कर दिया। अम्च्टि्का में आण्विक परीक्षण उसी वर्ष समाप्त कर दिए गए और द्वीप को एक पक्षी अभयवन घोषित कर दिया गया।

यद्यपि इस आंदोलन ने अपनी गतिविधियां आण्विक परीक्षणों के विरोध-प्रदर्शन से आरंभ की थीं, आने वाले वर्षों में इस संगठन का ध्यान अन्य पर्यावरणीय मुद्दों पर भी गया, जिनमें शामिल थे – तल महाजाल से मत्स्य-ग्रहण, भूमण्डलीय तापन एवं आनुवंशिक अभियांत्रिकी। हरित शान्ति ने व्हेल मछलियों को बचाने हेतु अपने प्रयासों के लिए और कनाडा स्थित न्यूफाउण्लैंड से लगे तट पर शिशु सील मछलियों को मारे जाने के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए दुनिया भर के देशों का ध्यान अपनी और खींचा। सन् 1985 में हरित शान्ति के सदस्यों ने अपने जहाज़ 'रेनबो योद्धा' का प्रयोग दक्षिणी प्रशान्त महासागर में फ़्रांसीसी आण्विक परीक्षणों के विरुद्ध विरोध-प्रदर्शन हेतु किया। परंतु एक विस्फोट के कारण यह जहाज़ ऑकलैण्ड, न्यूज़ीलैण्ड स्थिति बंदरगाह में डूब गया और एक हरित-शान्ति छविवार मारा गया। फ़्रांसीसी सरकार के अधिकारियों ने इस दुर्घटना की ज़िम्मेदारी ली और रक्षामंत्री ने इस्तीफ़ा दे दिया।

सन् 1986 तक हरित शान्ति 26 देशों में अपने पैर जमा चुका था और इसकी आय 10 करोड़ डॉलर प्रति वर्ष से भी अधिक हो गई थी। इसी वर्ष पश्चिमी समाज की मुख्य धारा ने इस यथार्थ पर्यावरणीय कार्यसूची को अंशविशिष्ट करना शुरू कर दिया जोकि मात्र पंद्रह वर्ष पहले तक आबादी मानी जाती थी। 1989 तक आते-आते चेर्नोबिल, एक्सों वाल्दे, भूमंडलीय तापन का खतरा और जोज़ोन छिद्र, आदि के संयुक्त प्रभाव भी बहस का मुद्दा बन गया। मुट्ठीभर प्रतिगामियों को छोड़कर शेष सभी सतत विकास एवं पर्यावरण रक्षा हेतु आह्वान में शामिल हो गए।

जहाँ पहले पर्यावरण आंदोलन के नेताओं ने स्वयं को सत्ता के गलियारों से बाहर पाया था, अब उन्हें दुनियाभर के परिषद्-कक्षों की मेज़ और राजनीतिक दलों की बैठकों में आमन्त्रित किया जाने लगा। आमने-सामने की राजनीति के अभ्यस्त पर्यावरणविदों के लिए स्वीकरण के इस नए युग ने इतनी बड़ी चुनौती प्रस्तुत की है कि मानो उनका अभियान इस ग्रह को बचाने के लिए ही है।

MAADHYAM IAS

वर्तमान में हरित शान्ति एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो विश्व पर्यावरण अभियानों को प्राथमिकता देता है। गत वर्ष (2005 में) हरित शान्ति के दुनियाभर में 28 लाख समर्थक थे और 41 देशों में इसके राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय कार्यालय थे, जो सभी एम्स्टर्डम, नीदरलैंड स्थित 'ग्रीनपीस इन्टरनेशनल' से सम्बद्ध थे (www.greenpeace.org)।

सोचिए और कीजिए 28.1

अभी आपने पढ़ा कि किन परिस्थितियों में हरित शान्ति आंदोलन का जन्म हुआ। क्या आप हरित शान्ति आंदोलन के महत्व को बता सकते हैं जोकि राष्ट्र की सीमाओं को लांघकर अपना काम करता है?

28.3 हरित शान्ति आंदोलनः उद्देश्य

हरित शान्ति के सदस्य विरोध-प्रदर्शन के प्रत्यक्ष एवं जैसा कि पहले कहा गया, अहिंसात्मक तरीके प्रयोग करते हैं। हरित शान्ति 1971 से ही पर्यावरण ह्रास के खिलाफ़ अभियान चलाता रहा है, जहाँ अमेरिकी सरकार भूमिगत आण्विक परीक्षण करना चाह रही थी। 'गवाह बनने' की यह परम्परा एक अहिंसात्मक तरीके से आज भी चल रही है।

हरित शांति सक्रियतावादियों के विरोध-प्रदर्शन का तरीका बड़ा ही अनोखा है। वे उन स्थान पर जाते हैं जहाँ कोई ऐसी गतिविधि चल रही हो जिसे यह समूह हानिकारक मानता है। बल प्रयोग किए बिना वे उस गतिविधि को रोक देते हैं। उदाहरण के लिए, व्हेल के शिकार के विरुद्ध, हरित शान्ति सदस्य नावों में बैठकर स्वयं को व्हेल मछलियों और उनके शिकारी बेड़ों के बीच कर लेते हैं।

हरित शान्ति एक अभियानकारी संगठन है और निम्नलिखित उद्देश्यों से जन-अभियान आयोजित करता है:

- महासागरों एवं प्राचीन वनों का संरक्षण
- जलवायु परिवर्तन रोकने के लिए जीवाश्म ईंधनों को प्रयोग से हटाना और पुनर्नत्य ऊर्जा स्रोतों को बढ़ावा देना
- विषैले रासायनों का बहिष्कार
- प्रकृति में निर्मुक्त किए जा रहे आनुवंशिक रूप से परिवर्तित जीवों पर रोकथाम
- आण्विक खतरे और आण्विक संदूषण की समाप्ति
- सुरक्षित और सतत व्यापार

यहाँ आज के विकास कार्यों के संदर्भ में हरित शान्ति आंदोलन के उद्देश्यों को सूक्ष्मता से देखें।

हरित शान्ति सरकारों से धन संसाधन हेतु याचना नहीं करता, न ही स्वीकार करता है, ताकि अपनी स्वतंत्रता, लक्ष्यों, उद्देश्यों अथवा सत्यनिष्ठा से समझौता न करना पड़े। वह वैयक्तिक समर्थकों के स्वैच्छिक दानकरण, एवं प्रतिष्ठानों से अनुदान सहायता पर आश्रित रहता है।

अन्य बातों के रूप में, हरित शान्ति इन बातों में एक निर्णायक भूमिका अदा करता है:

- अल्प विकसित देशों को विषाक्त अवशिष्ट भेजे जाने पर पाबंदी
- व्हेल मछली के वानिज्यिक शिकार पर मोहलत
- विश्व मत्स्य उद्योगों के बेहतर प्रबंधन हेतु संयुक्त राष्ट्र समझौता प्रस्तुत करना
- दक्षिणी महासागर व्हेल अभ्यारण्य
- एन्टार्कटिका में खनिज दोहन पर एक 50 वर्षीय मोहलत
- समुद्र में रेडियोधर्मी एवं औद्योगिक कचरा और अप्रयुक्त तेल यंत्रादि फेंके जाने पर प्रतिबंध
- उन्मुक्त समुद्र में वृहद्-स्तरीय प्रवाही जाल से मछली पकड़ने पर रोक
- सभी प्रकार के आन्विक अस्त्र परीक्षणों पर प्रतिबंध, जो कि उनका सबसे पहला अभियान था।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

बॉक्स 28.1: भारत में पर्यावरण पर ई-अपशिष्ट (वेस्ट्स) के पुनर्चक्रण का प्रभाव

विश्व भर में प्रतिवर्ष 2.5 करोड़ टन विद्युत और इलेक्ट्रोनिक अपशिष्ट (ई-वेस्ट) का उत्पादन होता है, जोकि मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के लिए गंभीर खतरे उत्पन्न कर सकता है। यह तेज़ी से बढ़ता ई-वेस्ट समूह अतिरिक्त परेशानियाँ पैदा करता है क्योंकि खतरनाक रासायनों की एक व्यापक श्रृखंला विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक उपकरणों में प्रयुक्त है, अथवा असीत में प्रयोग की गई है और ये तदन्तर इस्तेमाल, पुनर्चक्रण एवं अप्रयुक्त उत्पादों के निपटान के संबंध में भारी समस्याएं पैदा करते हैं। यूरोपीय संघ ने सुरक्षित पुनर्चक्रण का सुसाध्य बनाने के लिए जुलाई 2006 से वैद्युत एवं विद्युत्वान्विक उत्पादों में कुछ खतरनाक पदार्थों के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है। एशिया के अनेक भागों में ई-वेस्ट पुनर्चक्रण क्षेत्र बहुत अनियमित रहा है। हरित शान्ति भारत में ई-वेस्ट पुनर्चक्रण के पर्यावरण पर, एवं पुनर्चक्रण कर्मियों व आसपास के समुदायों के स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करता है1 वह जिन नमूनों की जांच करता है उनमें शामिल हैं – औद्योगिक अपशिष्ट, घर की गर्द, मृदाएं, नदी से प्रयुक्त सभी प्रमुख अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते विशिष्ट स्थलों से भूजल। इस

अध्ययन के परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि ई-वेस्ट के संसाधन के दौरान सभी अवस्थाओं में कार्यस्थल पर्यावरण के साथ-साथ आसपास की मृदा एवं जल-स्रोतों में विषाक्त गुरु धात्विक एवं कार्बनिक यौगिकों की भारी मात्रा को निर्मुक्त करने की संभावना होती है। यह अध्ययन विद्युत उत्पादों के निर्माताओं हेतु इस बात की तत्काल आवश्यकता पर प्रकाश डालता है कि उनके उत्पादन स्वरूप जन्में इन उत्पादों की वे उनके पूरे जीवनकाल तक की ज़िम्मेदारी लें। यह निर्माताओं से यह भी आग्रह करता है कि लंबे जीवनकाल वाले स्वच्छ उत्पाद विकसित एवं अभिकल्पित करें जो कि मरम्मत, सुधार एवं पुनर्चक्रण हेतु सुरक्षित एवं सरल हों और कर्मचारियों एवं पर्यावरण के लिए खतरनाक रासायनों का जोखिम न पैदा करें।

स्रोतः www-greenpeace.org

28.4 हरित शान्ति आंदोलनः कार्यविधि के वैश्विक दृष्टिकोण

जलवायु परिवर्तन हरित शान्ति हेतु प्राथमिक मुद्दा है। उनका मानना है कि परिस्थितिकी के नुकसान से व्हेल से लेकर समुद्री वनस्पतियों तथा पोलर वीयर सबको हानि होगी। विश्व में वन घट जाएगा और प्रचंड मौसम परिवर्तन से सैकड़ों-हज़ारों प्रजातियाँ लुप्त हो जायेंगी। जलवायु परिवर्तन लोगों व समुदायों के लिए ख़ासकर विश्व में कुछ दरिद्रतम लोगों के लिए भारी तबाही लेकर आयेगा। वे यह काम जलवायु स्थिरता बनाए रखने की आवश्यकता के विषय में लोगों को संवेदनशील बनाकर और राष्ट्रीय सरकारों के उन नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करके करते हैं जो जलवायु पर प्रभाव डाल सकते हैं। चलिए, कुछ राष्ट्रीय पहलकारियों के ख़िलाफ़ हरित शान्ति की कुछ कार्रवाइयों पर नज़र डालते हैं जो अन्यथा प्रतिकूल पर्यावरण परिवर्तन उत्पन्न कर देतीं।

हरित शान्ति आंदोलनों की कुछ प्रमुख कार्यविधियाँ, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया, जलवायु परिवर्तन के क्षेत्रों में हैं, जैसे – समुद्र एवं सागर सम्पदा को बचाना, प्राचीन वनों का संरक्षण आनुवंशिक अभियांत्रिकी के खिलाफ़ विरोध-प्रदर्शन करना, विषाक्त रासायनों का बहिष्करण, अन्मूलन। इस उपखंड में, चलिए, इमें से प्रत्येक दृष्टिकोण से हरित शान्ति के कुछ उपक्रमणों को देखते हैं।

मानवजनित जलवायु परिवर्तन को रोकेंः हरित शान्ति सक्रियतावादी उन ऊर्जा एवं विद्युत संयंत्रों के विरोध प्रदर्शन में बहुत तत्पर रहते हैं जो पर्यावरणीय अपकर्ष और जलवायु परिवर्तनों को जन्म दे सकते हैं। उनका दावा है कि कोयला दहन भूमंडलीय ताप दृष्टि का एक प्रमुख कारण है और यथार्थतः यही काम विश्व भर के विशाल विद्युत संयंत्र विश्व बैंक, सहकारी अंतर्राष्ट्रीय सहयोग हेतु जापानी अंतर्राष्ट्रीय बैंक, निर्यात अभिकरण आदि जिन सबकी उद्घोषित कार्यसूची अल्पविकसित का विकास विषयक है, वस्तुतः उन विशाल विद्युत परियोजनाओं को पैसा देकर विकासशील एवं विकसित दोनों ही राष्ट्रों के लोगों को एक स्वस्थ जीवन-निवर्हन से वंचित कर रहे हैं जो प्रतिकूल पर्यावरणीय प्रभाव उत्पन्न कर सकती हैं।

हरित शान्ति आंदोलन के अनुसार, 1966 से 2004 तक एशियाई विकास बैंक के समग्र ऊर्जा निवेश वित्त-प्रबंध का मात्र 1.82 प्रतिशत ही पुनर्नव्य ऊर्जा और ऊर्जा साधकता हेतु वित्त प्रदान में गया। वित्त-प्रबंध की अत्यधिक प्रमुखता का रुझान जीवाश्म ईंधन विद्युत परियोजनाओं की ओर ही रहा है। जैसे फिलीपीन्स स्थित मैसिन्लॉक कोयला संयंत्र एवं मी मोह, थाइलैंड स्थित दक्षिण-पूर्व एशिया का सबसे बड़ा कोयला संयंत्र तथा आजकल थाइलैंड में ही स्थित मैप ता फुत जैसे नए-नए संयंत्रों के लिए उद्दीष्ट किया जा रहा है। 1955 में जब से मी मोह ने काम करना शुरू किया है, 30,000 लोगों को विस्थापित किया जा चुका है, लगभग 200

मर चुके हैं और हज़ारों श्वास-संबंधी रोगों से पीड़ित हैं, जोकि खदान एवं बिजलीघर से उत्सर्जित सल्फ़र डाइऑक्साइड को साँस के साथ लेने और उसी के प्रभाव में रहने के कारण ही उत्पन्न परिणाम हैं।

एशिया में जीवाश्व ईंधन विद्युत के विकल्प व्यापक रूप से उपलब्ध हैं। फिलीपीन्स में देश की वर्तमान ऊर्जा मांग से भी 7 गुना अधिक उत्पादन वाले पर्याप्त पवन-शक्ति प्रयोज्य संसाधन मौजूद हैं। गुआगडोंग के चीनी प्रांत में हांगबांग हेतु वर्तमान ऊर्जा आपूर्ति के बराबर बिजली उत्पादन करने के लिए पर्याप्त पवन-शक्ति प्रयोज्य संसाधन विद्यमान हैं।

आवश्यक है कि विश्व बैंक के साथ मिलकर एशियाई विकास बैंक जैसे अंतर्राष्ट्रीय वित्त प्रदाय संस्था जलवायवीय परिवर्तन की समस्या को बढ़ावा दिए जाने को रोकें और स्वच्छ, सुरक्षित समाधानों का वित्त-पोषण करें। हरित शान्ति उनका आह्वान करता है कि सालाना विद्युत परियोजना ऋण प्रदान हेतु एक 20 प्रतिशत पुनर्नव्य ऊर्जा लक्ष्य के प्रति वचनबद्ध हों। अस्वच्छ ऊर्जा के विषय में उन्हें साफ़ नीति अपनाने की आवश्यकता है। हरित शान्ति सक्रियतावादी इन परियोजनाओं के खिलाफ़ शांतिपूर्ण प्रदर्शन करते हैं। उन्होंने मनीला में मैसिन्लॉक कोयला विद्युत संयंत्र के विस्तार का विरोध किया था। हरित शांति सक्रियतावादी संयंत्र में मौजूद थे ताकि वे एशिया में जलवायु परिवर्तनकारी कोयला पराश्रित देश के इस विस्तार को समर्थन दे रहे ऑस्ट्रेलियाई और जापानियों का ध्यान आकृष्ट कर सकें। ऑस्ट्रेलिया और जापान एक ऐसे वक़्त जलवायु परिवर्तन का सौदा कर रहे हैं जब फिलीपीन्स और एशिया जलवायु परिवर्तन से संभावित विध्वंसकारी सामाजिक एवं आर्थिक अस्थिरता का सामना कर रहे हैं, यथार्थतः उक्त देश और शेष एशिया इसके प्रभावों से निबटने में किंचित ही सक्षम हैं।

एक अन्य उदाहरण ब्राज़ील के एक प्रकरण से जुड़ा है। अमेज़न को वर्तमान में प्रभावित कर रहा विनाशकारी सूखा भूमंडलीय तापन एवं वनोन्मूलन के मिश्रित प्रभावों द्वारा जन्में एक दुश्चक्र का हिस्सा है और वैज्ञानिकों के अनुसार, बरसाती वन समाप्त हो जाने का कारण बन सकता है। ब्राज़ील अपनी अभेध जैस-विविधता के कारण विश्व में जलवायु परिवर्तन हेतु सर्वाधिक असुरक्षित देशों में एक है। ब्राज़ील के राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान (आई एन पी ई) के अनुसार, गत 30 वर्षों में सत्रह प्रतिशत अमेज़न पूरी तरह से मिटा दिया गया है और इससे भी कहीं अधिक बर्बादी हुई है विध्वंसकारी और ग़ैर-क़ानूनी वन-कटाई व अन्य मानव गतिविधियों से। पृथ्वी पर जीवन स्वयं के क़ायम रखने के लिए प्राचीन वनों पर निर्भर करता है। वे ही सर्वाधिक सम्पन्न विविध प्राकृतिक वास-स्थल हैं और जलवायु स्थिर करने व मौसम नियमित करने में सहायक होते हैं। अमेज़न का वनोन्मूलन एवं दावानल ब्राज़ील के 75 प्रतिशत से भी अधिक हरितगृह गैस उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं और उसे भूमंडलीय जलवायु परिवर्तन के शीर्ष चार योगदाताओं में स्थान दिलाते हैं। हरित शान्ति ने सरकारों का आह्वान किया है कि वे निर्वनीकरण को रोकने के लिए तत्काल कदम उठाएं और व्यापक कार्बनडाइऑक्साइड अपचयन हेतु प्रतिबद्ध हों, जोकि पृथ्वी की जैव-विविधता एवं उन लाखों को बचाने के लिए आवश्यक है जो जलवायु परिवर्तन एवं प्राचीन वन विनाश के प्रभावों का ज़ोखिम झेलने के कगार पर है।

MAADHYAM IAS

चीन में जलवायु परिवर्तन की गंभीरता पहले ही विश्व की दो सबसे बड़ी नदियों को आकार ह्रास के कगार पर ला रही है। चीनी विज्ञान अकादमी के वैज्ञानिकों का कहना है कि जलवायु परिवर्तन से जुड़ा पर्यावरण विनाश पीली नदी स्रोत को एक पारिस्थितिकीय संकुचन की ओर धकेल रहा है, जिससे उन 12 करोड़ लोगों की प्राणशक्ति पर खतरा मंडरा रहा है जो अपने घरेलू के साथ-साथ कृषि एवं औद्योगिक प्रयोगों हेतु भी उसी पर आश्रित हैं। अमेज़न नदी क्षेत्र में, अब दर्ज़ सबसे भयंकर सूखों में एक विश्व के सबसे बड़े बरसाती वन

को बर्वाद कर रहा है, जिसके कारण हैं – दावानलों का शुरू होना, ताज़ा पेय जल लगातार कम और प्रदूषित होना तथा जल धाराओं के सूख जाने से लाखों की तादाद में मछलियों की मौत।

> **सोचिए और कीजिए 28.2**
>
> आपने समाचार पत्रों, टी.वी., इंटरनेट आदि में अवश्य ही हरित शान्ति गतिविधियों के विषय में पढ़ा या सुना होगा। अपने संगठनात्मक उद्देश्य हेतु संघटन अभियान के लिए हरित शान्ति सक्रियतावादियों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न तरीके कौन-कौन से है?

सागर को विनाश से बचाएं

हमारे महासागर इस ग्रह के दो-तिहाई भाग को घेरे हैं और अतिसूक्ष्म प्लवक जीव से लेकर वृहत्तम महाव्हेल तक, समस्त जीवन के 80 प्रतिशत के सूत्रधार हैं। महासागर इस ग्रह पर अपेक्षित ऑक्सीज़न का आधा भाग भी प्रदान करते हैं। कुछ ही शताब्दियों पूर्व तक महासागरों की रक्षा असीम दूरियों, अथाह गहराई और कठिनाईपूर्ण परिस्थितियों द्वारा की जाती थी, जो इन्हें मनुष्य के लिए अगम्य और दुर्गम बना देती थीं। जीवाश्व ईंधनों के दहन से ही जुड़े समुद्री जीवन के दोहन हेतु प्रयुक्त आधुनिकतम जलयान एवं उपस्कर तथा महासागरों में रासायनों का विकसन एवं क्षेपण उन्हें स्वयं को साफ़ करने और एक प्राकृतिक संतुलन क़ायम रखने में अक्षम बनाता है। महासागरों का अन्धाधुन्ध दोहन समुद्र में प्राणहीनता की "मृत मेखलाएं", मत्स्य भंडारों के संहार, व्हेल मछलियों के विलोपन, आदि को जन्म देता है। हरित शान्ति आंदोलन इसके खिलाफ़ एक आवाज़ उठाता है ताकि हमारे समुद्र और समुद्री जीवन को और अधिक विनाश से बचाया जा सके।

समुद्र तल में महाजाल से मछली पकड़ने के अलावा समुद्री जीवन के प्रति कुछ अन्य मुख्य खतरे हैं – औद्योगिक मत्स्यग्रहण, सांधातिक मत्स्य ग्रहण, अनुचित मत्स्य उद्योग एवं मत्स्य पालन। औद्योगिक मछुवाही जहाज़ी बेड़े, जो अति सूक्ष्म रूप से विशुद्ध सोनार (प्रतिध्वनि ग्राहक यंत्र) का प्रयोग करते हैं, अपनी भयावह गति और सुनिश्चितता के साथ मछलियों के दल के दल घेर सकते हैं। अनेक स्थानों में मछली हेतु आधुनिक 'स्वर्णिम मांग' महासागर की स्वयंपूर्ति करने की क्षमता से कहीं अधिक है। घातक मत्स्य ग्रहण समुद्री जीवन को उजाड़ देता है। कभी-कभी जब मछलियों की विशेष किस्मों के लिए मत्स्य-ग्रहण किया जाता है तो जाल में फँसी 90 प्रतिशत मछलियाँ वापस फैंक दी जाती है जिनमें से अधिकांश आवांछित मछलियों की जीवनलीला समाप्त ही हो जाती है। वह सांयोगिक ग्रहण अथवा गौण-ग्रहण जैसा कि इसे शब्दाडंबरपूर्ण शैली में कहा जाता है, अवांछित मछलियों तक ही सीमित नहीं है। हर वर्ष कम-से-कम 3,00,000 व्हेल, डॉल्फिन और सूंस आदि समुद्री जीव जालों में फँसकर मर जाते हैं और 1,00,000 सामुद्रिक हंस अंकुशाकार मछुवाही तारों व रस्सों में फंस जाते है। कछुए, सील मछलियां व शार्क मछलियां भी अंधाधुंध मत्स्य कर्म की शिकार हैं। अनुचित मत्स्य उद्योगों में वे जलदस्यु जहाज़ आते हैं जो समुद्री पर्यावरण को ध्वस्त कर भारी मात्रा में मछलियां चुराते हैं। साथ ही, अपने "मत्स्य ग्रहण" का अपयोजन कर जलपोतों के विशाल जहाज़ी बेड़े अपने देश को धोखा देते हैं। मत्स्य पालन, जिसे 'मीन संवर्धन' भी कहते हैं, को अत्यधिक मत्स्य ग्रहण के समाधान स्वरूप भी बढ़ावा दिया जाता है। परंतु यह इसके सही हल से काफ़ी परे है। झींगा संवर्धन उद्योग संभवतः सर्वाधित विध्वंसकारी, अमान्य और अनुचित मत्स्य उद्योग है। गयन वृक्षों की कटाई, मत्स्य क्षेत्र विनाश, मत्स्य पालन के लिए रास्ता साफ़ करने के लिए हत्या और समुदाय भूमि को साफ़ करवामा, आदि तमाम विश्व के कोई दर्ज़न भर देशों में मानवाधिकार एवं पर्यावरण समूहों द्वारा दर्ज़ रिपोर्टें हैं।

कुछ देशों ने अपनी राष्ट्रीय जलराशि के बीचोंबीच संरक्षित क्षेत्र बना दिए हैं, यथा एक 12-मील अनन्य आर्थिक क्षेत्र, ताकि समुद्र को विनाशकारी मानवीय कार्यकलापों से बचाया जा

सके। हरित शान्ति का मानना है कि यदि संरक्षण को वाकई प्रभावकारी बनाया जाना है तो यह पर्याप्त नहीं है। वे समुद्र में आरक्षित क्षेत्र बनाना चाहते है। सामुद्रिक आरक्षित क्षेत्र समुद्र के वे क्षेत्र हैं जो मनुष्य के कार्यकलापों से पूरी तरह संरक्षित है। यानि वे समुद्रों के राष्ट्रीय उद्यान हैं। वह सामुद्रिक आरक्षिक जल क्षेत्रों को इस रूप में परिभाषित करता है – वे क्षेत्र जो सभी निष्कर्षणकारी प्रयोगों के लिए निषिद्ध हों, जैसे मछली मारना एवं खनन, और साथ ही मलबा डालना, के लिए भी। इन क्षेत्रों के भीतर ऐसे क्षेत्र हो सकते हैं जहाँ किसी भी मानव गतिविधि की अनुमति न हो, उदाहरण के लिए, ऐसे क्षेत्र जो वैज्ञानिक संदर्भ के रूप में काम करें अथवा ऐसे क्षेत्र जहाँ विशेषरूप से संवेदनशील आवास अथवा प्रजातियाँ हों। तटीय क्षेत्र में कुछ क्षेत्र लघु-स्तरीय, अविनाशकारी मत्स्य क्षेत्रों के लिए खोले जा सकते हैं, बशर्ते वे मान्य हों, पारिस्थितिकीय सीमाओं में हों, और प्रभावित स्थानीय समुदायों की पूर्ण-भागीदारी पर तय किए गए हों। सामुद्रिक आरक्षित जलक्षेत्रों के स्थापन से समुद्रीय आबादियों, उनकी विविधता एवं उत्पादकता में दीर्घकालीन और प्रायः तीव्र वृद्धियों के रूप में परिणाम सामने आए हैं।

प्राचीन वनों को बचाएं

विश्व के प्राचीन वन कई प्रकार के हैं। इनमें शामिल हैं – उत्तरी, समशीतोषण एवं ऊष्ण कटिबंधी वन, शंकुधारी एवं वृहद्पत्ती वन, बरसाती वन एवं वनस्पति (मैनवेव) वन। ये सब मिलकर ही पर्यावरण तंत्रों को क़ायम रखते हैं जो कि पृथ्वी पर जीवन के लिए अनिवार्य हैं। वे वर्षा एवं मिट्टी से जल के वाष्पीकरण को नियंत्रित कर मौसम को प्रभावित करते हैं। वे बड़ी मात्रा में कार्बन को संचित कर विश्व की जलवायु को स्थिर रखते हैं, जो कि अन्यथा जलवायु परिवर्तन में योगकारी साबित होगी।

ये प्राचीन वन उन लाखों वनवासियों का आवास हैं जो अपने जीवन-निवर्हन के लिए उन्हीं पर निर्भर करते हैं – शारीरिक रूप से भी और आत्मिक रूप से भी। ये वन विश्व की भू-आधारित पादप एवं जान्तविक प्रजातियों में से लगभग दो-तिहाई का वास-स्थान भी हैं। यथा सैकड़ों हज़ारों विभिन्न पौधे व जंतु और यथातथ्य रूप से लाखों कीट – उनके भावी जीवन भी प्राचीन वनों पर ही निर्भर हैं। इन भव्य प्राचीन वनों पर खतरा मंडरा रहा है। 87 से भी अधिक मानव सभ्यताएं अकेले ब्राज़ील में लुप्त हो चुकी हैं; आगामी 10 से 20 वर्षों में, प्रतीयमानतः हमारा संसार हज़ारों पादप एवं जान्तविक प्रजातियों को विलुप्त कर देने के कगार पर है।

ग़ैर-क़ानूनी और विध्वंसकारी वृक्ष-कटाई कार्य विश्व के वृहत्तम वनों में गहरे से गहरे अतिगमन करते जा रहें हैं यथा अमेज़न के बरसाती वन, अफ्रीका के कैमरून बरसाती वन, आदि। इन वन विनाश के पीछे प्रेरक कारकों में एक है – अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार क्षेत्र की ओर से सस्ती इमारती लकड़ी के लिए मांग। हरित शान्ति ने इसका विरोध किया है और इस भूमंडलीय खतरे के प्रति संबद्ध राष्ट्रीय सरकारों के साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय समुदायों को भी आगाह किया है। वन्यवरण को रिक्तीकरण से बचाने के लिए उसकी ओर से कुछ रचनात्मक सुझाव आए हैं। उनके तर्क निम्नलिखित हेतु हैं:

क) यूरोप में अवैध रूप से काटी गई इमारती लकड़ी के निर्यात एवं विपणन रोकने के लिए क़ानून अपनाना और विश्वभर में यर्थावरणीय एवं सामाजिक रूप से उत्तरदायी वन प्रबंधन को बढ़ावा देना। इस प्रकार के क़ानून से इमारती लकड़ी व उसके उत्पादों के अवैध व्यापार में लगे व्यक्तियों एवं कंपनियों पर मुक़दमा चलाने की अनुमति मिलनी चाहिए। अंततोगत्वा इस प्रकार के क़ानून को यूरोपीय उपभोक्ताओं को भरोसा दिलाना चाहिए कि इमारती लकड़ी के उत्पाद जो वे खरीदते हैं वैध और सुप्रबंधित वनों से ही आए हों और ऐसे व्यापारी जो वैध व्यापार में लगे हों उन्हें क्षति न पहुंचे।

MAADHYAM IAS

ख) उत्पादक देशों और यूरोपीय संघ के बीच सशक्त स्वैच्छिक भागीदारी समझौतों (वी पी ए) को कार्यरूप देना जो कि उत्पादक देशों के वन प्रशासन और उन देशों के स्वेच्छा से आये सांसदों, ग़ैर-सरकारी संगठनों एवं देशज जनसंगठनों में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं कमज़ोरियों को दूर करेंगे, जो उत्तरदायी वन प्रबंधन कार्यों की ओर प्रवृत करेगा, जैसा कि वन प्रबंधन पद परिषद (ए एस सी) के सिद्धांतों एवं मानदंडों के तहत निर्दिष्ट हैं।

ग) वैध ओर मान्य कार्य मानदंडों को लागू कर उनके इमारती लकड़ी प्रापण क्षेत्र को फिर से 'हराभरा करना' तथा सार्वजनिक धन का प्रयोग कर अवैध एवं विनाशकारी कटाई गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाना रोकना।

घ) रिश्वतख़ोरी और काले धन को वैध कार्यों में लगाए जाने पर वर्तमान राष्ट्रीय एवं यूरोपीय क़ानून को क्रियान्वित एवं लागू करना, जो कि अवैध रूप से काटी गई इमारती लकड़ी में व्यापार से नैमित्तिक रूप से जुड़े रहे हैं।

ङ) इमारती लकड़ी उत्पादक देशों में वन संरक्षक एवं सतत वन प्रबंधन हेतु पर्याप्त वित्त प्रदान करना और सुनिश्चित करना कि यूरोपीय संघ के परिदान कार्यक्रम वन विनाश को वित्त प्रदान न करें और न ही प्रोत्साहन दें।

अनुवंशिक अभियंत्रिकी के विरुद्ध अभियान (जेनेटिक इंजीनियरिंग) जबकि आणविक जीवविज्ञान विषयक वैज्ञानिक प्रगति में प्रवृत्ति संबंधी हमारी समझ बढ़ाने और नए-नए चिकित्सीय साधन प्रदान करने की काफ़ी संभावना छिपी है। इसे वाणिज्यिक हितों द्वारा पर्यावरण को एक वृहद आनुवंशिक प्रयोग में बदल डालने के लिए भी प्रयोग किया जाता है। जैव विविधता और विश्व की खाद्य-आपूर्ति संबंधी पर्यावरणीय अखंडता जोखिम में पड़ जाने वाली उत्तरजीविता का साहसपूर्ण सामना करने के लिए अत्यावश्यक है।

MAADHYAM IAS

आनुवंशिक अभियांत्रिकी वैज्ञानियों को इस तरीके से जीवों में इच्छानुकूल परिवर्तन कर पादप, जन्तुओं एवं सूक्ष्मजीवों को जन्म देने में सक्षम बनाती हैं जोकि प्राकृतिक रूप से नहीं होता है। ये आनुवंशिक रूप से परिवर्तित जीव प्रकृति में फैलकर प्राकृतिक जीवों के साथ संकरण कर सकते हैं, जिससे एक अप्रत्याशित और अनियंत्रित तरीके से ग़ैर-आनुवंशिक रूप से अनियंत्रित पर्यावरण और भावी पीढ़ियां संदूषित हो जायेंगी। उनका विमोचन 'आनुवंशिक प्रदूषण' है और एक बहुत बड़ा खतरा है क्योंकि इन आनुवंशिक रूप से परिवर्तित जीव एक बार पर्यावरण में निर्मुक्त कर दिए जाने के बाद पुनर्जीवित नहीं किए जा सकते हैं। वाणिज्यिक हितों के चलते आम आदमी को खाद्य-श्रृखला में आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित घटकों के विषय में जानने के अधिकार से वंचित रखा गया है और इसी कारण कुछ देशों में अंकितकरण (लेबल लगाना) क़ानूनों के होते हुए भी उनसे बचने का अधिकार आम आदमी खोता जा रहा है। जैव विविधता का संरक्षण एवं सम्मान मानवजाति की भूमंडलीय विरासत के रूप में किया जाना चाहिए, और उत्तरजीविता हेतु इस संसार के एक मूलाधार तत्व के रूप में भी अंतर्राष्ट्रीय आदि अनेक नियमों के सहारे सरकारें आनुवंशिक अभियंत्रिकी के खतरे से निबटने का प्रयास कर रही हैं, जैसे जैव सुरक्षा उपसंधि।

वैज्ञानिकों ने एक आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित कीट-प्रतिरोधी बीटी (Bt) चावल की किस्म विकसित की है। आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित इस कीट-प्रतिरोधी बीटी चावल को अभी तक विश्व में कहीं भी उगाए जाने की अनुमति नहीं मिली है। आनुवंशिक-अभियंत्रित किसी भी बीटी चावल के लिए न तो कोई पर्यावरणीय मूल्यांकन उपलब्ध है और न हीं मानव खाद्य-सुरक्षा मूल्यांकन। तथापि, अन्य आनुवंशिक-अभियंत्रित बीटी फसलों, जैसे मक्का और कपास पर किए गए अध्ययन इस बात के बड़े संकेत देते हैं कि बीटी चावन के गंभीर पर्यावरणीय परिणाम होंगे और मानव खाद्य-सुरक्षा संबंधी चिंताएं बढ़ेंगी।

आनुवंशिक-अभियंत्रित कीट-प्रतिरोधी बीटी चावल किस्में कुछ विशेष पीड़क जन्तुओं, जैसे पत्रमोड़वा और पीला वृन्त-बेधक, हेतु प्रतिरोधक के रूप में विकसित की गई हैं। बीटी फसलें तैयार करने के लिए प्राकृतिक रूप से विद्यमान मृदा जीवाणु अर्थात दंडाणुओं बैकिलस थुरिंगीन्सिस (Bt) से प्राप्त एक जीन के कृत्रिम रूप को पौधे ने अपने डी एन ए (डी ऑक्सीराइबो-यूक्लिक अम्ल) में निविष्ट कर दिया जाता है, ताकि वह पौधा पीड़क जन्तुओं के विनहटन हेतु अपना स्वयं का जीवविष (टॉक्सिन) तैयार कर ले। हरित शान्ति ने आनुवंशिक-अभयंत्रित बीटी चावल की इस नई किस्म का विभिन्न आधारों पर विरोध किया है।

सोचिए और कीजिए 28.3

मानव स्वास्थ्य पर आनुवंशिक अभियांत्रिकी के क्या संभावित खतरे हैं?

विषाक्त रसायन निरावरण

हमारे पर्यावरण में विद्यमान विषैले रासायन हमारी नदियों व झीलों, हमारी वायु, भूमि, उवं महासागरों, आदि पद और अंततागत्वा हम और हमारे भविष्य पर ख़तरा उत्पन्न करते हैं। अनेक कृत्रिम रासायनों के उत्पादन, व्यापार, प्रयोग एवं विमोचन को अब व्यापक रूप से मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के प्रति एक भूमंडलीय खतरे के रूप में देखा जाता है। फिर भी, विश्व के रासायन उद्योग हर वर्ष हज़ारों की संख्या में रासायनिक योगिकों का उत्पादन एवं विमोचन कर ही रहे हैं, अधिकांश उदाहरणों में लोगों और पर्यावरण पर उनके प्रभावों संबंधी कतई नहीं अथवा किंचित ही परीक्षण एवं जानकारी के साथ।

सरकारें और उद्योग भूमंडल के आसपास खतरनाक रासायनों का फैलाव रोकने में विफल रहे हैं। हमारे वातावरण में, हमारे घरों में और हमारे प्रतिदिन प्रयोग में आने वाले उत्पादों में मानव-निर्मित खतरनाक रासायन इतने व्यापक हैं कि हम निरंतर प्रदूषणकारी पदार्थों के जोखिम को झेलते रहते हैं। परिणामतः हमारी अपनी कायाएं तक संदूषित हो गई हैं।

MAADHYAM IAS

विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक उत्पादों हेतु विश्व बाज़ार का विस्तार उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है, जबकि उत्पादों का जीवनकाल घटता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप विद्युत्वान्विक कूड़ा-करकट में एक विस्फोटक स्थिति पैदा हो गई है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण रक्षा (यू एन ई पी), 2005 की रिपोर्ट के अनुसार, हर वर्ष दुनिया भर में 2 से 5 करोड़ टन विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक उपस्कर अपशिष्ट (ई-वेस्ट) उत्पन्न होता है, जो मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर गंभीर ख़तरे पैदा करता है कि ख़तरानाक रासायनों की एक व्यापक श्रृंखला विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक उपकरणों के अवयवों में प्रयोग की जाती है, या फिर पहले ही प्रयुक्त होती है और ये तदन्तर इस्तेमाल, पुनर्चक्रण एवं प्रयुक्त उत्पादों के निपटान, आदि संबंधी काफ़ी समस्याएं उत्पन्न करते हैं।

उपभोक्ता-वस्तुओं, घरेलू गर्द, वर्षाजल और रक्त में मानव-निर्मित ख़तरनाक रसायनों संबंधी हरित शान्ति के विश्लेषण विकासमान प्रलेखन में आगे कहते हैं कि मानव-निर्मित रसायन नियंत्रण से बाहर हैं, जिनसे हमारे स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को ख़तरा है। यह अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से आग्रह करता है कि ख़तरनाक रसायन के स्थान पर सुरक्षित पदार्थों का प्रयोग करें। यूरोपीय संघ, जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान, व अमेरिका के अनेक राज्यों ने ऐसा क़ानून बनाया है जिसके फलस्वरूप उत्पादकों को उनके उत्पादों के समस्त जीवनकाल तक उत्तरदायी बनाया जायेगा। यूरोपीय समुदाय ने जुलाई 2006 से विद्युत एवं इलेक्ट्रोनिक उत्पादों में कुछ विशेष ख़तरनाक पदाथों मे इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी है, ताकि सुरक्षित पुनर्चक्रण में मदद मिलें। फिलहाल, बहरहाल, एशिया के अनेक भागों में 'ई-वेस्ट' पुनर्चक्रण क्षेत्र काफ़ी हद तक अभी अनियंत्रित ही है।

परमाणु खतरा दूर करें

परमाणु युग जुलाई 1945 में तब शुरू हुआ जब अमेरिका ने अलमोगॉर्दो, न्यू मैक्सिको के निकट अपना प्रथम आन्विक-बम परीक्षण किया। कुछ ही वर्ष पश्चात, 1953 में, राष्ट्रपति आइसनहोवर ने एक अनियंत्रित आण्विक आशावाद की लहर में अमेरिका में अपने "शान्ति हेतु परमाणु" कार्यक्रम ही शुरुआत कर दी। तथापि, आन्विक शान्ति का प्रयोग कभी भी "शान्तिपूर्ण" नहीं रहा है। आइसनहोवर के भाषण के लगभग एक शताब्दी बाद इस ग्रह को आण्विक अपशिष्ट की विरासत मिली है, जो कि दसियों अथवा सैकड़ों-हज़ारों वर्षों तक विकिरणशील रहेगा। परमाणु प्रतिष्ठानों, चाहे वे समरिक हों अथवा नागरिक, का इतिहास दुखद घटनाओं एवं प्रसंगों वाला हो रहा है, जो कि छद्मावरणों, मिथ्या तथ्यों एवं भ्रांत सूचनाओं की ओट लिए है। पर्यावरण में निर्मुक्त विकिरण ने मृदा, वायु, सरिताओं एवं महासागरों के संदूषण की ओर प्रवृन्त किया है, जिससे लोगों में कैंसर व अन्य बीमारियां जन्म लेती हैं। हरित शान्ति आण्विक शक्ति के अंत पुर्नसाधन एवं अपशिष्ट क्षेपण आदि हेतु अभियान चला रहा है।

हरित शान्ति ने उस वक्त जन्म लिया जब शान्ति सक्रियतावादियों के समूह ने 1971 में अभिचट्का, अलास्का के निकट अमेरिकी आणिवक शस्त्र परीक्षण क्षेत्र तक की यात्रा की। यद्यपि हरितशान्ति उस आणिवक परीक्षण को नहीं रोक सका, उसने आणिवक परीक्षण के विरुद्ध एक वैश्विक राय ज़रूर पैदा और कायम कर दी।

सतत व्यापार को प्रोत्साहन

हरित शान्ति भूमंडलीकरण के वर्तमान स्वरूप का विरोध करता है जो कि नैगामिक शक्ति बढ़ा रहा है। उसके अनुसार, विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यु टी ओ) हमारे स्वास्थ्य एवं पर्यावरण से पहले और ऊपर, निजी हित-पूर्ति हेतु मुक्त व्यापार को बढ़ावा देता है। यह कार्य घातक रूप से दोषपूर्ण है और विश्व को गलत दिशा में ले जा रहा है – यानी शान्ति, सुरक्षा और सातत्य से दूर। ऐसे मुद्दों में टाँग अड़ा के, जो गरीब देशों के लिए निर्णायक हैं, विश्व व्यापक संगठन एक वैधानिक संकट में पड़ा है। हरित शान्ति की मांग है कि यह संगठन एक ऐसी व्यापार नीति अपनाए जो सभी के लिए कारगर हो ओर पर्यावरण का संरक्षक एवं पुनरुद्धार करे। वह विश्व-पर्यावरण मानकों का समर्थन करता है और कहता है कि सरकारों को अवश्य ही सतत विकास लाने के लिए काम करना चाहिए जिसका अर्थ है तीन बातों को अंगभूत करना: पर्यावरनणीय, सामाजिक एवं आर्थिक प्राथमिकताएं।

आण्विक शस्त्र उन्मूलन

शीत युद्ध समाप्त हो चुका है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि आण्विक हथियार भी लुप्त हो चुके हैं। बल्कि सच्चाई यह है कि विश्व में आज 30,000 से भी अधिक आन्विक अस्त्रों की संख्या है, उनमें से एक हज़ार से भी अधिक दिन के चौबीसों घंटे, सप्ताह के सातों दिन पलक झपकते ही चलने को तैयार रहते हैं।

400 से भी अधिक प्रतिघातकों से लैस जंगी बेड़े और पनडुब्बियाँ आज भी भूमंडल का चक्कर लगा रही हैं। कुछ महासागर के तल में अथवा रूस के किसी दूरवर्ती पत्तन में सड़ रहे हैं। रूसी पनडुब्बी-कुर्स्क – के बेरैन्त्स सागर में दुखद रूप से डूब जाने जैसी दुर्घटनाएं किसी भी रोज़ कहीं भी घट सकती हैं।

2000 से भी अधिक आन्विक-शस्त्र परीक्षणें ने भूमंडलीय एवं क्षेत्रीय संदूषण विरासत में दिया है। परीक्षण-स्थलों के निकट रहने वाले लोगों ने कैंसर, मृत प्रसव, गर्भपात व अल्प स्वास्थ्य संबंधल दुष्प्रभाव झेले हैं और आज भी झेल रहे हैं। अनेक लोगों को अपना गृह नगर अथवा

द्वीप ही छोड़ना पड़ा क्योंकि वहाँ की जगह इतनी संदूषित हो गई थी कि रहा नहीं जा सकता था।

सोचिए और कीजिए 28.4

आण्विक परीक्षणों से पैदा होने वाले मानवता और भूमंडलीय पर्यावरण पर संभावित ख़तरे क्या-क्या हैं।

28.5 हरित शान्ति आंदोलनः एक मूल्यांकन

हरित शान्ति एक ऐसा संगठन है जिसने पृथ्वी के पारिस्थितिकी के विनाश के प्रति ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से अपने अधिकतर रूढ़िविरुद्ध दृष्टिकोणों और तकनीकों के माध्यम से विश्व का ध्यान और नए सदस्यों को एकत्र किया है। दूसरे शब्दों में, हरित शान्ति का अभिप्राय है – एक पारिस्थितिकीय ख़तरे की घंटी बजाना, हमारी भूमंडलीय दुर्दशा के यथार्थ आयामों के प्रति जन-चेतना जगाना, समस्याएं बताना और उनके स्वरूप को परिभाषित करना। हरित शान्ति की गतिविधियां ही पर्यावरण एवं सतत विकास संबंधी मुद्दों को सामने ला सकीं। दुनियाभर में तमाम विकसित देश पर्यावरण रक्षा को उत्तरोत्तर अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक कूटनीति संबंधी मुख्यधारा में शामिल करते जा रहे हैं। सरकारें व अधिकारी तंत्र, उद्योग एवं व्यावसायिक संस्थाएं, संघ एवं कार्यस्थल, आदि पारिस्थितिक रूप से मान्य विकास को कार्य रूप देने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रहे हैं (ऑस्ट्रलियाई परिरक्षण प्रतिष्ठान, 1994)।

हरित शान्ति के पास ज़रूरी नहीं कि इन समस्याओं के समाधान हों ही और निश्चय ही उन्हें कार्यरूप देने के लिए उसके पास साधन ही हैं। इसके लिए सरकारों, निगमों, जन-संस्थानों एवं पर्यावरणविदों के संयुक्त प्रयास अपेक्षित हैं और काफ़ी मात्रा में सहयोग और सहकारिता की आवश्यकता होगी। अनेक विकासशील देश इन समस्याओं को हल करना पहले से शुरू कर चुके हैं, जो कि रोज़गार और पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। उन्होंने हरित कार्यों को बढ़ावा देना शुरू किया जिससे पर्यावरण खराब नहीं होगा। चलिए, जानते हैं कि हरित कार्यों से क्या तात्पर्य है और रोज़गार पैदा करने के अन्य तरीके क्या हैं जो पर्यावरण के पुनरुद्धार में मदद करें।

MAADHYAM IAS

28.6 हरित कार्य

'नब्बे के दशक में उत्तरोत्तर अधिकाधित विकसित देश पर्यावरण के तेज़ी से ह्रास और दुनियाभर में अपना लिए गए अमान्य विकास कार्यों के विषय में गहरी दिलचस्पी लेने लगे। उनमें से कुछ ने तो इसके निग्रह हेतु नीतिगत पहले भी थीं। नार्वे, नीदरलैंड, यूरोपियन आयोग एवं जापान ऐसी रणनीतिक योजनाओं को क्रियान्वित करने वाले कुछ ऐसे ही देश हैं, जिन्होंने पर्यावरण को नीतिगत मुख्यधारा में रखा। उन्होंने नया विकास प्रतिमान अपनाये जाने की वक़ालत की ताकि आर्थिक-पारिस्थितिक संबंध नकारात्मक बनने की बजाए एक सकारात्मक संबंध के रूप में क़ायम हो। यह किए जाने के लिए समाधान एक नई स्वच्छ प्रौद्योगिक आधार बनाए जाने में निहित है। उदाहरण के लिए, पश्चिम जर्मनी में अम्लीय वर्षा से अपने वनों को विनाश से बचाने के लिए 10 वर्ष की अवधि में बिजलीघर से होने वाले उत्सर्जनों को 90 प्रतिशत तक कम करने के लिए उग्र प्रभाग वाले कदम उठाये गए। आर्थिक विकास हेतु किसी अड़ंगे के रूप में काम करने की बजाय, ऊर्जा उद्योग को यह हराभरा करने का काम एक असाधारण उत्तेजक प्रभाव वाला सिद्ध हुआ है।

अनेक विकसित देशों में यह देखा गया है कि एक ओर आर्थिक विकास हो जाने के बावजूद बेरोज़गारी बढ़ना बंद नहीं होती है। इसके अलावा, यद्यपि कार्यक्रमों की एक श्रृंखला निर्धारित

की गई है और क़ानूनी उपाय भी किए जा रहे हैं, पर्यावरण स्थिति का अपकार्य ही देखा गया। ऐसे तरीकों का पता लगाने हेतु प्रयास किए गए जो पर्यावरण पुनरुद्धार के साथ-साथ और अधिक रोज़गार उत्पन्न कर सकें। यह पाया गया है कि एक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थिति वैज्ञानिक नीति अपनाए जाने से कुछ क्षेत्रों में रोज़गार अवसर घट सकते हैं परंतु कुछ अन्य क्षेत्रों में ये पर्याप्त अवसर पैदा कर सकता, जितने अवसर खोए हैं उनसे कहीं अधिक। उदाहरण के लिए अधिक शक्ति के संबंध में पुनर्तव्य ऊर्जा वृहद् जल संयंत्रों की बजाय जल की मांग पर नियंत्रण, मरम्मत उपाय और युक्तिपरक सिंचाई, स्वचालित वाहनों की बजाय जन परिवहन एवं रेल मार्गों का विकास, अपशिष्ट क्षेपण की बजाय कूड़ा-करकट का पुनर्चक्रण आदि। हरित कार्य परियोजना (1998) कई अन्य उपाय भी हैं जैसे आग लगने के जोखिम को कम करने के लिए अभिकालीत वानिकी कार्यकलाप, प्राकृतिक एवं राष्ट्रीय पार्कों की निगरानी, पर्यावरण अध्ययन एवं निरीक्षण, अपशिष्ट जल उपचार, उद्योग में प्रदूषण-रोधी नियंत्रण एवं मापदंड, कंपनियों में पारिस्थितिकी अंकेक्षक और पर्यावरण प्रबंधन प्रणालियों, आदि जिनका महज एक सकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव ही नहीं, ये रोज़गार भी उत्पन्न करते है।

यदि किसी रोज़गार अथवा उद्योग को आगे चलकर मान्य करार दिया जाना है तो उसके पास पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव कम करने हेतु व्यापक सम्पत्ति होनी चाहिए। सारा ब्लूस्तें (1992) के अनुसार, 'पर्यावरण क्षेत्र' एक ऐसा शब्द है जो नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभावों को कम करने हेतु व्यापार अभिकल्पों में शामिल कंपनियों का सामूहिक रूप से वर्णन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने पर्यावरण उद्योगों के नौ विस्तृत गौण क्षेत्रों की पहचान की है।

बॉक्स 28.2: स्पेन में ऊर्जा के अन्य अधिक संदूषणकारी स्रोतों के स्थान पर पवन शक्ति का प्रयोग

MAADHYAM IAS

नब्बे के दशक में स्पेन में पवन-शक्ति के प्रयोग में एक शानदार वृद्धि देखी गई। यह 1991 में 8 मैगावाट अथवा 1994 में 75 मैगावाट की स्थापना से 1998 में लगभग 400 मैगावाट तक पहुँच गया। सन् 2000 के अंत तक 1400 मैगावाट हो गया था। स्पेन का उद्योग एवं विद्युत विभाग मोटे तौर पर 2,00,000 नौकरियाँ उत्पन्न कर सका।

अक्षय ऊर्जा स्वरूपों से उत्पन्न रोज़गार का मूल्यांकन करने वाले सभी अध्ययन यह दर्शाते हैं कि प्रति इकाई उत्पादित बिजली हेतु उनकी सृजन क्षमता परंपरागत एवं प्रदूषणकारी ऊर्जा स्रोतों हेतु इसके तुल्य परिमाण से काफ़ी अधिक है। यह अंतर घट जाएगा यदि वायु जेनरेटर बड़े पैमाने पर बनाए जायेंगे। एक विश्वव्यापी स्तर पर बिजली के इस स्रोत हेतु संभावना काफ़ी अधिक है।

28.7 पर्यावरण क्षेत्र एवं रोज़गार अवसर

विश्वभर में कराए गए वृहद् आर्थिक अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकला है कि ऊर्जा कौशल और अक्षय ऊर्जा स्रोतों का श्रम-साधित स्वरूप उन नौकरियों में एक विशुद्ध वृद्धि की ओर प्रवृत्त करेगा जहाँ वे परंपरागत ऊर्जा वितरण का स्थान लेंगी। ऊर्जा कौशल एवं अक्षय ऊर्जा स्रोत विनिर्माण एवं सेवा क्षेत्र में और अत्यंत कुशल से लेकर अकुशल कर्मियों हेतु पेशों तक व्यावसायिक कौशलों के एक व्यापक क्षेत्र में रोज़गार अवसर उत्पन्न करते हैं। इस श्रेणी में विभिन्न प्रकार के रोज़गार आते हैं, जैसे ऊर्जा अंकेक्षण एवं ऊर्जा आवश्यकताओं का मूल्यांकन, अनुसंधान एवं विकास, उत्पाद एवं प्रणाली अभिकल्प, विनिर्माण, विपणन, विक्रय, परिवहन, स्थापन, रखरखाव शिक्षण एवं प्रशिक्षण। नए रोज़गार अवसर पैदा कर सकने वाले अन्य अक्षय ऊर्जा विकल्प हैं – पवन, सौर ताप विद्युत एवं संसाधन ताप, बायोगैस, काष्ठ, एल्कोहन, सौर भवन, एवं दिवा प्रकाशन। अपशिष्ट प्रबंधन एवं स्वच्छ उत्पादन अन्य तेज़ी से

सोचिए और कीजिए 28.5

हरित कार्यों से आपने क्या अभिप्राय लिया? किसी एक क्षेत्र में रोज़गार अवसरों का अन्वेषण करें जो कि पर्यावरण पुनरुद्धार में मदद कर सकें।

28.8 सारांश

हरित शान्ति हेतु प्राथमिक मुद्दा जलवायकीय परिवर्तन है। इस आंदोलन के सक्रिय प्रतिभागियों का मानना है कि पारिस्थितिकी से छेड़छाड़ व्हेल मछलियों व प्रवाल भित्तियों से लेकर ध्रुवीय भलुओं तक हर चीज़ को नुक्सान पहुँचाने वाली है। समस्त वन लुप्त हो जायेंगे और सैकड़ों-हज़ारों प्रजातियां विलुप्त हो जायेंगी। जलवायु परिवर्तन जन समाज और समुदायों का भी विनाश लेकर आयेगा, खासकर विश्व के कुछ बेहद ग़रीब लोगों के लिए। वे यह काम लोगों को जलवायकीय स्थिरता क़ायम रखने की आवश्यकता के विषय में सुग्राही बनाकर और राष्ट्रीय सरकारों के उन नीतिगत निर्णयों को प्रभावित करके करते हैं जो जलवायु को दुष्प्रभावित कर सकते हैं।

इस इकाई में हमने उन परिस्थितियों को देखा जो हरित शान्ति आंदोलन के उदय और कार्रवाई संबंधी उनके मुख्य दृष्टिकोणों की ओर प्रवृत्त करती हैं। हमने कई दृष्टांत भी देखें जहाँ हरित शान्ति आंदोलन सतत विकास हेतु निर्देशन करता है। साथ ही, इस इकाई में हरित कार्यों का भी विश्लेषण किया गया, यथा ऐसे क्षेत्रों में रोज़गार अवसर जो सतत पर्यावरण विकास एवं पर्यावरण पुनरुद्धार को बढ़ावा देते है।

28.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यह इकाई काफ़ी हद तक हरित शान्ति आंदोलन की अधिकृत बैवसाइट http://www.greenpeace.org में दी गई जानकारी के आधार पर त्यार की गई।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

दोअर्ती, ब्रिआँ. 2002. *आइडियाज़ एंड ऐक्शन्स़ इन ग्रीन मूवमैंट.* रूटलेजः लंदन

शैबेकॉफ़, फिलिप. 2003. "ए फ़िअर्स ग्रीन फ़ायर", *दि अमैटिकन इन्वॉयरन्मैंटल मूवमैंट में,* आइलैंड प्रैसः वाशिन्गटन

इकाई 29
जन विज्ञान आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

29.1 प्रस्तावना
29.2 उत्पत्ति और उद्देश्य
29.3 संक्षिप्त इतिहास
29.4 कुछ बुनियादी मुद्दे
29.5 जन विज्ञान आन्दोलनों के कार्यकलाप
29.6 भारत में कुछ प्रमुख जन विज्ञान आन्दोलन
29.7 सारांश
29.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको ये बातें समझने में मदद करेगी :

- जन विज्ञान आन्दोलन का उदय और उसका उद्देश्य;
- जन विज्ञान आन्दोलन के समक्ष बुनियादी मुद्दे और चुनौतियां ; तथा
- जन विज्ञान आन्दोलन के कार्यकलापों पर एक विहंगम दृष्टि।

MAADHYAM IAS

29.1 प्रस्तावना

आन्दोलन विचार विषयक होते हैं – विचार जो समाज को आकार देते हैं और हमारे रहने व सोचने के तरीके को बदल देते हैं। इस विरासत पर आधारित विज्ञान आन्दोलन इन प्रगतिशील विचारों को एक नया आयाम प्रदान करता है – विज्ञान की एक आलोचनात्मक समझ। जन साधारण का विज्ञान आन्दोलन विकास के मामलों में जन भागीदारी को प्रोत्साहित करते एवं सनसनीदार राष्ट्रव्यापी आन्दोलन के रूप में उभरा है, जिसमें विज्ञान संबंधी नीति निर्माण में हस्तक्षेप भी शामिल है।

यह इकाई जन विज्ञान आन्दोलन के उदय और उसके व्यापाक उद्देश्यों संबंधी एक चर्चा से आरंभ होती है। केरल में हुई जन विज्ञान आन्दोलन की एक सभा ने भारत में पहली बार व्यापक रुचि दर्शायी और देश के अनेक हिस्सों में जन विज्ञान आन्दोलनों की शुरुआत को सूचित किया। इसी का एक संक्षिप्त विवरण इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। जन विज्ञान आन्दोलनों के कार्यकलाप विविध हैं और यहा उनका विस्तृत वर्णन किया गया है। इस इकाई के अन्तिम भाग में आप पायेंगे – हमारे देश में कार्यरत कुछ महत्वपूर्ण जन विज्ञान आन्दोलनों पर एक विहंगम दृष्टि ।

29.2 उत्पत्ति और उद्देश्य

बीसवीं सदी में समाज की कार्यप्रणाली के प्रति विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई। न केवल उत्पादन, अर्थव्यवस्था एवं युद्ध में अपितु जनमत में शामिल होने, संस्कृति को परिभाषित करने, राजनीति, संगीत, सरकार आदि सभी में विज्ञान आज एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विज्ञान आधारित सामाजिक सक्रियतावाद हेतु प्रेरणा और प्रोत्साहन महज प्राकृतिक विज्ञानों से संबंधित जानकारी को फेलाने की अभिलाषा से नहीं मिला बल्कि काफ़ी हद तक व्यापक गरीबी और बेरोज़गारी को कम करने एवं मानवीय दशा की सहगामी अवनति में औपचारिक विवेचन और कार्यवाही के साथ संबंध रखने वाले बुद्धिजीवियों के मोहभंग से मिला, जिनमें अधिकांश कनिष्ठ आयु वर्ग के थे। विज्ञान शिक्षा एवं प्रसार कार्य में लगे गुट नई चुनौतियों के प्रति सचेत हो गए। समाज को बलद डालने के दृष्टिकोण से इसे लागू करने हेतु जानकारी हासिल करने व फैलाने से अभिप्राय था बुद्धिजीवी वर्ग के लिए अब तक समझे जाने से कहीं एक अधिक सक्रिय भूमिका की तर्कसंगत व्याख्या।

जन विज्ञान आन्दोलन विज्ञान की एक आलोचनात्मक समझ पर अभिलक्षित है। यह आम आदमी को इस बात की जानकारी देता है कि विज्ञान का क्या हो रहा है, कैसे हो रहा है और क्यों हो रहा है, यानी नीतियों का विश्लेषण करना, जनता को शिक्षित करना और मुद्दों पर जनमत तैयार करना। इसके अलावा यह विज्ञान का प्रयोग और असंगत विश्वासों एवं अंधविश्वासों का प्रतिकार करते हुए प्राकृतिक दृश्यघटनाओं की व्याख्या कर एक विवेकशील समाज के निर्माण की दिशा में काम करता है। नव परिवर्तनकारी अध्यापन विधियों के प्रयोगार्थ अध्यापकों को प्रशिक्षित करने, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के प्रयोगार्थ ग्रामीण महिलाओं को प्रशिक्षित करने मृदा आदि की गुणवत्ता सुधारने हेतु विज्ञान के परीक्षण एवं प्रयोगार्थ किसानों को प्रशिक्षित करने, दरिद्रतम लोगों को संघटित करने तथा विज्ञान की प्रत्याशा को व्यवहार में लाने जैसे कार्यक्रमों को शुरू करने से जीवन दशाएं सुधर रही हैं।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषयक जानकारियों के माध्यम से सामाजिक समूहों, जो कि प्रायः अलाभान्वित होते हैं, की दशाएं सुधारने के क्षेत्र में जन विज्ञान आन्दोलनों का श्रेयकर हस्तक्षेपों वाला इतिहास रहा है। ये आन्दोलन संघटन एवं संगठनात्मक स्वरूप में, तथा अपने कार्यकलापों के स्वरूप में नानाविध हैं। कुछ स्वास्थ्य जैसे बुनियादी मुद्दों की दिशा में अवैज्ञानिक विचारों एवं नीतियों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो कुछ पर्यावरण के क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के अपर्याप्त/गलत प्रयोग के परिणामस्वरूप विकास गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभाव को उजागर करने में लगे हैं। अन्य कुछ ऐसे भी हैं जो अध्यापन विज्ञान, स्वास्थ्य के क्षेत्र में वैज्ञानिक जानकारी के प्रयोग, ग़ैर-रीतिक शिक्षा, समुचित प्रौद्योगिकी, आवास, आदि के नव परिवर्तनकारी रास्ते सुझाते हैं। जन विज्ञान आन्दोलन का मूल सिद्धांत यह है कि एक समतुल्य और सतत समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषयक जानकारियां अनिवार्य हैं, हालांकि ये जानकारियां अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं। जन विज्ञान आन्दोलन समूहों का मानना है कि जनसाधारण में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास एवं पाठांश में, खासकर विभिन्न परिप्रेक्षकों में प्रौद्योगिकियों के चयन में भागीदार बनने के लिए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की एक आलोचनात्मक समझ विकसित किए जाने की आवश्यकता है।

MAADHYAM IAS

सोचिए और कीजिए 29.1

मोटे तौर पर, जन विज्ञान आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

29.3 संक्षिप्त इतिहास

भारत में जन विज्ञान आन्दोलन की उत्पत्ति का संबंद्ध 1950 के दशक के आरंभ से जोड़ा जा सकता है जब अनेक संगठन आम जनता में वैज्ञानिक चेतना जगाने के उद्देश्य को लेकर चल रहे कार्यकलापों में लग गए। केरल शास्त्र साहित्य परिषद (के एस एस पी), मराठी विज्ञान परिषद, असम साइन्स सोसाइटी तथा बंग विज्ञान परिषद इमें कुछ अधिक प्रमुख हैं। उन्होंने विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विषयक जानकारी के प्रसार का काम विभिन्न भारतीय भाषाओं में

साहित्य प्रकााशित करके किया। इनमें से केरल शास्त्र साहित्य परिषद 1960 एवं 1970 के दशकों में एक जन संगठन में बदल गया।

जन विज्ञान आन्दोलन की एक सभा, नवम्बर 1978 में, भारत में पहली बार केरल शास्त्र साहित्य परिषद के तत्त्वावधान में त्रिवेन्द्रम में हुई। तभी से देश के अनेक भागों में एक जन विज्ञान आन्दोलन आरंभ करने में रुचि बढ़ती दिखाई पड़ी है। तदोपरांत एक दूसरी सभा के आयोजन की आवश्यकता भी महसूस हुई, जो कि केरल में उक्त परिषद द्वारा ही आयोजित की गई। इस सभा का चिन्त्य विषय एक जन विज्ञान आन्दोलन को परिभाषित किए जाने की आवश्यकता पर ध्यान आकृष्ट किया जाता था, जो कि एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य का आधार निर्माण करे ताकि आंरभ किए गए कार्यक्रमों एवं कार्यकलापों के समक्ष एक स्पष्ट दिशा एवं लक्ष्य हो।

देश में किसी जन विज्ञान आन्दोलन को शुरू करने हेतु आधार स्वरूप कार्यवाही के एक भावी कार्यक्रम के लिए चार क्षेत्रों की पहचान की गई है : (i) स्वास्थ्य, (ii) शिक्षा, (iii) पर्यावरण तथा (iv) लोगों के साथ एक संचार माध्यम के रूप में कलाओं का प्रयोग।

व्यापक विचार विमर्श के बाद इन विषयों में से हर एक के बारे में कुछ सार्वजनिक कार्यक्रम बनाए गए ताकि देश भर में संयुक्त कार्यवाही शुरू की जा सके।

स्वास्थ्य: वर्तमान स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की प्रासंगिक एवं पर्याप्तता पर सवाल उठाए गए और इसी कारण एक जन स्वास्थ्य आन्दोलन भी जन विज्ञान आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण घटक होना चाहिए। स्वास्थ्य सेवाओं में विस्तार के बावजूद यथार्थ वितरण एक शहरी और आरोग्यकर पूर्वाग्रह से ग्रसित है।

अखिल भारतीय स्तर पर संयुक्त कार्यवाही की यथार्थ आवश्यकता, इस प्रकार की कार्य योजनाओं में गैर-व्यवसायियों के सम्मिलन की संभावना, कार्यान्वयन हेतु संसाधनों एवं जनशक्ति की उपलब्धता, आदि पर विचार किया गया। सभा ने ग़ौर किया कि एक संभावित विकल्पस्वरूप देशी दवाओं की भूमिकाओं का वैज्ञानिक रूप से जांचा जाना चाहिए। दस्तरोधी दवा संमिश्रणों की अयुक्तता पर ज़ोर दिया जाना चाहिए और दस्त रोकने के लिए मौखिक पुनर्जलीकरण चिकित्सा (ओ आर टी) जैसे सरल उपायों के विषय में लोगों को बताया जाना चाहिए और बताया भी जा सकता है। इन अभियामों में अतिसार और अस्वास्थ्यकर जीवन दशाओं के परस्पर संबंध, मलजल निपटान हेतु सुविधाओं के प्रभाव और सर्वोपरि कुपोषण एवं दरिद्रता पर ज़ोर दिया जाना चाहिए।

महिलाओं की विशिष्ट स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं पर संयुक्त कार्यवाही की जानी चाहिए, जिसे आमतौर पर अत्यन्त आवश्यक समझा गया। महिलाओं में एक खून की कमी (अनीमिया) विषयक अभियान मुख्य मुद्दा है। बेकार और फिजूल की अनीमिया दूर करने वाली दवाओं के विरूद्ध प्रचार, गर्भावस्था के दौरान बेहतर चिकित्सा सुविधाओं हेतु मांग, में गरीबी और खराब सामाजिक आर्थिक दशा पर ज़ोर डाला गया।

शिक्षा: शिक्षा के क्षेत्र में सबसे ज्वलंत प्रश्न था – नयी शिक्षा नीति के कार्यान्वयन में सरकार की विफलता, जोकि प्रौढ़ शिक्षा की आवश्यकता से गहरे जुड़ा था। विज्ञान को लोकप्रिय बनाने के साथ साथ आम जनता में शिक्षा संबंधी समस्याओं पर चर्चा करने में अध्यापकों की भूमिका बढ़ाने पर अभिलक्षित कार्यकलापों हेतु आवश्यकता पर ज़ोर दिए जाने का निर्णय लिया गया। आगे के काम में निम्नलिखित कार्यकलापों के उपयोगी बतलाया गया।

क) विज्ञान एवं साहित्य को लोकप्रिय बनाने के लिए बाल पत्रिकाओं का प्रकाशन करना, जैसा कि केरल शास्त्र साहित्य परिषद जैसे समूहों द्वारा किया जाता है।

ख) पुस्तकालय, कार्यशाला, श्रव्य दृश्य सुविधाओं एवं चल प्रदर्शनियों वाले सामुदायिक विज्ञान केन्द्रों का आयोजन करना।

ग) जन विज्ञान आन्दोलन के विचारों के प्रसार हेतु उत्प्रेरणात्मक संचार माध्यमों के रूप में कला और रंगमंच विधाओं का प्रयोग करना।

घ) पहलकारी और बोध शक्ति को और अधिक मज़बूत आधार प्रदान करने के लिए शिक्षा की समस्याओं का क्षेत्रीय अध्ययन एवं सर्वेक्षण करना।

पर्यावरण: पर्यावरणीय समस्याओं को केवल वृहत्तर यथार्थ के एक पहलू के रूप में समझा जा सकता है। प्रतीयमान रूप से असंबद्ध मुद्दों के बीच अन्तर्सम्बन्धों की समग्रता का एक वैज्ञानिक विश्लेषण ही प्रभावी कार्यवाही हेतु एकमात्र व्यहार्य आधार है। वन विधेयक जो वन अधिकारियों को व्यापक अधिकार प्रदान करता है, जन जातीय जन सरीखे लोगों के अधिकारों का हनन करता है जो कि वनों पर ही निर्भर करते हैं, और व्यावसायिक निहित स्वार्थों द्वारा वन का नाश की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। वन विधेयक का मुद्दा जन विज्ञान आन्दोलनों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह न केवल उन्हें जन संघर्षों में सहायता करने में सक्षम बना सकता है अपितु यह मुद्दों की एक समग्र श्रृंखला – सामाजिक वानिकी, बाढ़, वन्य जीवन, सूखा आदि – के विषय में जनमत तैयार करने में भी मदद कर सकता है।

विकास परियोजनाएं पर्यावरण पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास किए बगैर ही शुरू कर दी जाती है। पर्यावरण पर चर्चा से एक व्यापक सर्वसम्मति बनी है:

क) पर्यावरण अधोगति से पोषित होने वाली निहित स्वार्थों को राज्य द्वारा सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया जाता है।

ख) विज्ञान मूल्य शून्य नहीं है परन्तु निहित स्वार्थ को बढ़ावा देने का आदी है। उदाहरण के लिए, वन विज्ञान को वन विभाग द्वारा वनोन्मूलन को सही ठहराने के लिए प्रयोग किया जाता है।

MAADHYAM IAS

ग) जन विज्ञान आन्दोलनों के प्रयोजनों को निश्चय ही समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण एवं विज्ञान में निहित स्वार्थों पर आधारित करना चाहिए।

घ) पर्यावरण संरक्षण तब तक संभव नहीं है जब तक कि जन संघर्षों को राज्य की नीतियों एवं निहित स्वार्थों की शक्ति का सामना करने हेतु संयोजित नहीं किया जाता।

उपर्युक्त के आधार पर यह तर्क दिया गया कि इन विषयों पर राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त कार्यवाही शुरू की जाए:

क) जन विज्ञान आन्दोलनों के बीच संचार अभाव दूर किया जाए, जिससे एक दूसरे के सामने खड़ी समस्याओं, प्रयुक्त रणनीतियों एवं झेली गई समस्याओं का पता चल सके;

ख) व्यापक प्रसार के लिए वन विधेयक की समालोचना एवं व्यवसायिक सुरक्षा विषयक जांचों जैसे नीति अध्ययनों को जन जन तक पहुंचाना;

ग) भेंट यात्राओं का आदान प्रदान

घ) विनिमय एवं प्रसार हेतु ऐसी ही अन्य सामग्रियां तैयार करना ; तथा

ड) वन विधेयक के विरूद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाना।

कला: लोगों के साथ संचार माध्यम स्वरूप कला को प्रयोग किए जाने के विषय में काफ़ी बहस हुई। उत्तराखण्ड संघर्ष वाहिनी अपने विभिन्न संघर्षों में कला का प्रयोग करती रही थी – पहले वनो मूलन के खिलाफ व इसी प्रकार के अन्य मुद्दों को लेकर परन्तु अब जन

संघर्षों के सभी पहलुओं को अंगीकार करती हुई । इस प्रकार के संघर्षों में गीतों, कविताओं और नाटकों ने इन भावनाओं को व्यक्त किया।

यह महसूस किया गया कि न सिर्फ अनुभवों को बल्कि जन चेतना जगाने में एक अस्त्र के रूप में कला का प्रयोग करते विभिन्न समूहों के कार्य प्रदर्शनों को भी परस्पर बांटने के प्रयास किए जाने चाहिए। इससे न सिर्फ़ एक दूसरे के प्रयास समृद्ध करने में मदद मिलेगी बल्कि लोगों के बीच एक भाव भी उत्पन्न होगा। इस प्रकार के आदान प्रदान से या विनिमय से वे अपनी लघु एवं वृहद दशाओं को भी देख समझ सकेंगे। परस्पर भेंट यात्राएं विभिन्न समूहों द्वारा प्रयुक्त सामग्री का भावान्तरण एवं अंगीकरण आदि को एक उपयोगी कृत्य के रूप में देखा गया।

सोचिए और कीजिए 29.2

जन विज्ञान आन्दोलन सभा में अभिन्न समझी गई कार्ययोजना पर चर्चा करे।

29.4 कुछ बुनियादी मुद्दे

संयुक्त कार्यवाही के लिए सामान्य क्षेत्रों को पहचानने के अलावा, सभा में कुछ बुनियादी मुद्दे भी उठाए गए जो कि भारत में जन विज्ञान आन्दोलनों की संकल्पना एवं प्रसांगिकता हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों के संबंध में थे। एक दृष्टिकोण के अनुसार जन विज्ञान आन्दोलन को इस मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो विज्ञान और समाज के बीच पारस्परिक क्रियाविधि में मिलता है। इस प्रकार, जन विज्ञान आन्दोलन का चिन्तय विषय इस प्रकार के मुद्दों की प्राकृतिक विज्ञान विषयवस्तु पर आधारित होना चाहिए। जन विज्ञान आन्दोलन को जन संगठनों द्वारा किए जाने वाले जन संघर्षों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने के लिए "वैज्ञानिक सूचना" उपलब्ध करानी चाहिए। इस प्रकार के संकल्पनात्मक ढांचे में, जब कभी भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी कोई सशक्त विषयवस्तु दिखाई देती है तो सूचना के प्रसार, वैज्ञानिक समुदाय को प्रर्भावग्रहणशील बनने, समाजिक समस्याओं हेतु समाधान सुझाने और सर्वोपरि लोगों व उनके संगठनों में एक वैज्ञानिक भाव जगाने आदि के लिहाज से जन विज्ञान आन्दोलनों के पास काफी स्वायत्तता होती है।

यह तर्क दिया गया कि यह दृष्टिकोण अपर्याप्त और परिसीमित है। "विज्ञान" को सामाजिक मुद्दों को समझने एवं विश्लेषित करने के लिए एक वैकल्पिक विधि की आवश्यकता पर जोर देना चाहिए। इस दृष्टिकोण ने निश्चयपूर्वक कहा कि प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों के बीच संबंध सम्भावगत है और वे भिन्न नहीं हैं। हर सामाजिक विषय में प्राकृतिक विज्ञान की विषयवस्तु सन्निहित होती है और हर प्राकृतिक विषय में सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु आविर्भावी सामाजिक विषयवस्तु को एक जन विज्ञान आन्दोलन की अपेक्षा होती है जो, अन्य जन संगठनों की मदद करने के अतिरिक्त लोगों के पास सीधे जाकर अपनी निजी कार्यक्षेत्र भी स्थापित करता है क्योंकि कुछ मुद्दों एवं स्थितियों विशेष को जन विज्ञान आन्दोलनों के स्वतंत्र हस्तक्षेप की अपेक्षा होती है।

कुछ अन्य लोगों के दृष्टिकोण से यह तर्क सामने आया कि इस प्रकार प्रयुक्त विज्ञान की संकल्पना और अभिप्राय पश्चिमी परम्परा से व्युत्पन्न हुए हैं जो कि हमारे संदर्भ में अधिक प्रासंगिक नहीं है। जन विज्ञान की एक देशी अवधारणा की ओर रूख करने का प्रयास किया जाना चाहिए, और उस आधार पर देश में सामाजिक सक्रियतावाद पर आधारित विज्ञान हेतु एक मनोगत दृश्य बनाने का भी। तथापि, विज्ञान की देशी संकल्पना पर गंभीर सवाल उठाए गए।

MAADHYAM IAS

ख) पुस्तकालय, कार्यशाला, श्रव्य दृश्य सुविधाओं एवं चल प्रदर्शनियों वाले सामुदायिक विज्ञान केन्द्रों का आयोजन करना।

ग) जन विज्ञान आन्दोलन के विचारों के प्रसार हेतु उत्प्रेरणात्मक संचार माध्यमों के रूप में कला और रंगमंच विधाओं का प्रयोग करना।

घ) पहलकारी और बोध शक्ति को और अधिक मज़बूत आधार प्रदान करने के लिए शिक्षा की समस्याओं का क्षेत्रीय अध्ययन एवं सर्वेक्षण करना।

पर्यावरण: पर्यावरणीय समस्याओं को केवल वृहत्तर यथार्थ के एक पहलू के रूप में समझा जा सकता है। प्रतीयमान रूप से असंबद्ध मुद्दों के बीच अन्तर्सम्बन्धों की समग्रता का एक वैज्ञानिक विश्लेषण ही प्रभावी कार्यवाही हेतु एकमात्र व्यहार्य आधार है। वन विधेयक जो वन अधिकारियों को व्यापक अधिकार प्रदान करता है, जन जातीय जन सरीखे लोगों के अधिकारों का हनन करता है जो कि वनों पर ही निर्भर करते हैं, और व्यावसायिक निहित स्वार्थों द्वारा वन का नाश की प्रक्रिया को बढ़ावा देता है। वन विधेयक का मुद्दा जन विज्ञान आन्दोलनों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह न केवल उन्हें जन संघर्षों में सहायता करने में सक्षम बना सकता है अपितु यह मुद्दों की एक समग्र श्रृंखला – सामाजिक वानिकी, बाढ़, वन्य जीवन, सूखा आदि – के विषय में जनमत तैयार करने में भी मदद कर सकता है।

विकास परियोजनाएं पर्यावरण पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास किए बगैर ही शुरू कर दी जाती है। पर्यावरण पर चर्चा से एक व्यापक सर्वसम्मति बनी है:

क) पर्यावरण अधोगति से पोषित होने वाली निहित स्वार्थों को राज्य द्वारा सक्रिय रूप से बढ़ावा दिया जाता है।

ख) विज्ञान मूल्य शून्य नहीं है परन्तु निहित स्वार्थ को बढ़ावा देने का आदी है। उदाहरण के लिए, वन विज्ञान को वन विभाग द्वारा वनोन्मूलन को सही ठहराने के लिए प्रयोग किया जाता है।

ग) जन विज्ञान आन्दोलनों के प्रयोजनों को निश्चय ही समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण एवं विज्ञान में निहित स्वार्थों पर आधारित करना चाहिए।

घ) पर्यावरण संरक्षण तब तक संभव नहीं है जब तक कि जन संघर्षों को राज्य की नीतियों एवं निहित स्वार्थों की शक्ति का सामना करने हेतु संयोजित नहीं किया जाता।

उपर्युक्त के आधार पर यह तर्क दिया गया कि इन विषयों पर राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त कार्यवाही शुरू की जाए:

क) जन विज्ञान आन्दोलनों के बीच संचार अभाव दूर किया जाए, जिससे एक दूसरे के सामने खड़ी समस्याओं, प्रयुक्त रणनीतियों एवं झेली गई समस्याओं का पता चल सके;

ख) व्यापक प्रसार के लिए वन विधेयक की समालोचना एवं व्यवसायिक सुरक्षा विषयक जांचों जैसे नीति अध्ययनों को जन जन तक पहुंचाना;

ग) भेंट यात्राओं का आदान प्रदान

घ) विनिमय एवं प्रसार हेतु ऐसी ही अन्य सामग्रियां तैयार करना ; तथा

ङ) वन विधेयक के विरूद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाना।

कला: लोगों के साथ संचार माध्यम स्वरूप कला को प्रयोग किए जाने के विषय में काफ़ी बहस हुई। उत्तराखण्ड संघर्ष वाहिनी अपने विभिन्न संघर्षों में कला का प्रयोग करती रही थी – पहले वनो मूलन के खिलाफ व इसी प्रकार के अन्य मुद्दों को लेकर परन्तु अब जन

MAADHYAM IAS

संघर्षों के सभी पहलुओं को अंगीकार करती हुई । इस प्रकार के संघर्षों में गीतों, कविताओं और नाटकों ने इन भावनाओं को व्यक्त किया।

यह महसूस किया गया कि न सिर्फ अनुभवों को बल्कि जन चेतना जगाने में एक अस्त्र के रूप में कला का प्रयोग करते विभिन्न समूहों के कार्य प्रदर्शनों को भी परस्पर बांटने के प्रयास किए जाने चाहिए। इससे न सिर्फ़ एक दूसरे के प्रयास समृद्ध करने में मदद मिलेगी बल्कि लोगों के बीच एक भाव भी उत्पन्न होगा। इस प्रकार के आदान प्रदान से या विनिमय से वे अपनी लघु एवं वृहद दशाओं को भी देख समझ सकेंगे। परस्पर भेंट यात्राएं विभिन्न समूहों द्वारा प्रयुक्त सामग्री का भावान्तरण एवं अंगीकरण आदि को एक उपयोगी कृत्य के रूप में देखा गया।

सोचिए और कीजिए 29.2

जन विज्ञान आन्दोलन सभा में अभिन्न समझी गई कार्ययोजना पर चर्चा करे।

29.4 कुछ बुनियादी मुद्दे

संयुक्त कार्यवाही के लिए सामान्य क्षेत्रों को पहचानने के अलावा, सभा में कुछ बुनियादी मुद्दे भी उठाए गए जो कि भारत में जन विज्ञान आन्दोलनों की संकल्पना एवं प्रसांगिकता हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों के संबंध में थे। एक दृष्टिकोण के अनुसार जन विज्ञान आन्दोलन को इस मुद्दे पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए जो विज्ञान और समाज के बीच पारस्परिक क्रियाविधि में मिलता है। इस प्रकार, जन विज्ञान आन्दोलन का चिन्तय विषय इस प्रकार के मुद्दों की प्राकृतिक विज्ञान विषयवस्तु पर आधारित होना चाहिए। जन विज्ञान आन्दोलन को जन संगठनों द्वारा किए जाने वाले जन संघर्षों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करने के लिए "वैज्ञानिक सूचना" उपलब्ध करानी चाहिए। इस प्रकार के संकल्पनात्मक ढांचे में, जब कभी भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी कोई सशक्त विषयवस्तु दिखाई देती है तो सूचना के प्रसार, वैज्ञानिक समुदाय को प्रभावग्रहणशील बनने, समाजिक समस्याओं हेतु समाधान सुझाने और सर्वोपरि लोगों व उनके संगठनों में एक वैज्ञानिक भाव जगाने आदि के लिहाज से जन विज्ञान आन्दोलनों के पास काफी स्वायत्तता होती है।

यह तर्क दिया गया कि यह दृष्टिकोण अपर्याप्त और परिसीमित है। "विज्ञान" को सामाजिक मुद्दों को समझने एवं विश्लेषित करने के लिए एक वैकल्पिक विधि की आवश्यकता पर जोर देना चाहिए। इस दृष्टिकोण ने निश्चयपूर्वक कहा कि प्राकृतिक एवं सामाजिक विज्ञानों के बीच संबंध सम्भावगत है और वे भिन्न नहीं हैं। हर सामाजिक विषय में प्राकृतिक विज्ञान की विषयवस्तु सन्निहित होती है और हर प्राकृतिक विषय में सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु आविर्भावी सामाजिक विषयवस्तु को एक जन विज्ञान आन्दोलन की अपेक्षा होती है जो, अन्य जन संगठनों की मदद करने के अतिरिक्त लोगों के पास सीधे जाकर अपनी निजी कार्यक्षेत्र भी स्थापित करता है क्योंकि कुछ मुद्दों एवं स्थितियों विशेष को जन विज्ञान आन्दोलनों के स्वतंत्र हस्तक्षेप की अपेक्षा होती है।

कुछ अन्य लोगों के दृष्टिकोण से यह तर्क सामने आया कि इस प्रकार प्रयुक्त विज्ञान की संकल्पना और अभिप्राय पश्चिमी परम्परा से व्युत्पन्न हुए हैं जो कि हमारे संदर्भ में अधिक प्रासंगिक नहीं है। जन विज्ञान की एक देशी अवधारणा की ओर रूख करने का प्रयास किया जाना चाहिए, और उस आधार पर देश में सामाजिक सक्रियतावाद पर आधारित विज्ञान हेतु एक मनोगत दृश्य बनाने का भी। तथापि, विज्ञान की देशी संकल्पना पर गंभीर सवाल उठाए गए।

29.5 जन विज्ञान आन्दोलनों के कार्यकलाप

जन विज्ञान आन्दोलन संबंधी कार्यकलापों को मुख्य रूप से चार श्रेण्यिों में बांटा जा सकता है।

क) **विज्ञान एवं संचार:** विज्ञान संचार ही अनेक राज्यों में आन्दोलन का आधार है। इसमें विज्ञान के अध्यापक, श्रमजीवी वैज्ञानिक तथा विज्ञान–शिक्षित मध्यवर्ग एवं छात्रगण शामिल है। कार्यकलापों में शामिल हैं – विज्ञान संबंधी प्रकाशन, जनप्रिय विज्ञान व्याख्यान, नुक्कड़ नाटक एवं विद्यालयी विज्ञान गतिविधियां। संचार के सांस्कृतिक रूप कला जातकों में व्यापक रूप से प्रयोग किए गए हैं। 'हरियाणा विज्ञान मंच' की निर्बाध गतिविधियों में एक रही – अंधविश्वासों एवं मिथकों के विरूद्ध उसका अभियान। बच्चों के लिए, विशेषरूप से, जनविज्ञान आन्दोलन संगठनों द्वारा विज्ञान की लोक व्याप्ति बाल विज्ञान उत्सवों, बाल विज्ञान परियोजनाओं तथा प्रश्नावली प्रतियोगियों, विज्ञान पर्यटनों एवं बाल विज्ञान पुस्तकों के प्रकाशन के माध्यम से की जाती रही है। एक वार्षिक बाल विज्ञान कांग्रेस वार्षिक भारतीय विज्ञान कांग्रेस से कुछ ही पूर्व आयोजित की जाती है और पूर्ववर्ती कांग्रेस में विजेता रहे बच्चे परवर्ती कांग्रेस के कुछ विशेष मंचों पर भाग लेते हैं। इसके अलावा, मध्य विज्ञान अध्ययन विधियों का भी कुछ जन विज्ञान आन्दोलन समूहों द्वारा प्रचार प्रसार किया जाता है।

उक्त समूहों के कुछ प्रसिद्ध प्रकाशन हैं – 'चकमक' (बच्चों के लिए), एकलव्य द्वारा प्रकाशित स्त्रोत और संदर्भ। (अध्यापकों के लिए) तथा तमिलनाडु विज्ञान मंच (टी एन. एल एफ) द्वारा प्रकाशित 'यूलिट' (तमिल में) एवं 'जैन्तर मन्तर' (अंग्रेजी में)।

अनेक जन विज्ञान आन्दोलन समूहों ने विज्ञान संचार में उत्कृष्टता के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार जीते हैं। इनमें शामिल हैं – हरियाणा विज्ञान मंच, पांडिचेरी विज्ञान मंच, तमिलनाडु विज्ञान मंच, कर्नाटक राज्य विज्ञान परिषद, मध्य प्रदेश विज्ञान सभा, सृजनिका, असम विज्ञान समिति, पश्चिम बंग विज्ञान मंच तथा केरल शास्त्र साहित्य परिषद।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

ख) **नीति आलोचक:** जन विज्ञान आन्दोलन मंच वैज्ञानिकों एवं व्यवसायियों को मात्र विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा अनुसंधान एवं विकास नीतियों की ही नहीं वरन राजकीय नीतियों के आलोचनात्मक मूल्यांकन का भी अवसर प्रदान करता है। उन्हें इस प्रकार की नीतियों की कमियों को सामने लाना चाहिए और विकल्प सुझाने चाहिए। इसके पीछे धारणा अविकासात्मक नीतियों की एक आलोचनात्मक समझ पैदा करना है जो निर्णयन में हस्तक्षेप करने हेतु जन संगठनों को सशक्त करती हों। यदि जनोन्मुखी विज्ञान संबंधों को जन्म देना हो तो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निर्बाध हस्तक्षेपों की अपेक्षा की जाती है। जन विज्ञान आन्दोलन समूह समय समय पर समर्थन और अभियानों के माध्यम से इस दिशा में हस्तक्षेप करते रहे हैं । जन विज्ञान आंदोलन संबंधी अध्ययनों एवं सुस्पष्ट विचारों ने राष्ट्रीय रूप से बहस में घिरे मुद्दों में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जैसे परमाणु निरस्त्रीकरण, एकस्वाधिकार (पेटेण्ट) कानूनों एवं बौद्धिक सम्पदा अधिकारों (आई. पी. आर.), स्वास्थ्य एवं औषधि नीतियां, ऊर्जा एवं पर्यावरण नीतियां, दूर संचार एवं यांत्रिकी ऊर्जा क्षेत्रों में सुधार, पंचायत एवं अन्य विकेन्द्रीकरण नीतियां।

ग) **विकास हस्तक्षेप:** जन अभियानों एवं चर्चाओं के माध्यम से जन विज्ञान आन्दोलनों की पहलकारियों का यह एक प्रमुख घटक रहा है। साक्षरता, स्वास्थ्य, कृषि ऋण सहकारियों, जलाशय विकास, स्थानीय। पंचायत स्तरीय योजना कार्यक्रमों, लघु उद्यमों

व उनके कार्यप्रणाली को प्रोत्साहन में पथप्रदर्शक आदर्श स्थापित करके ये जन विज्ञान आन्दोलन समूह अनेक अवसरों पर निर्णयन प्रक्रिया में प्रभावशाली ढंग से मध्यस्थता करने में सफल रहे हैं। ये अभियान अनुचित नीतियों के प्रति जन प्रतिरोध के उद्देश्य को पूरा करते हैं और उचित विकल्पों हेतु अपनी मांग पर ज़ोर डालते हैं।

विशेष रूप से, उदाहरणतः स्वास्थ्य के क्षेत्र में, जन विज्ञान आन्दोलनों की हस्तक्षेप बाजार से बहुत सी खतरनाक दवाओं को हटाने और बहुत से अन्य मादक द्रव्यों पर कानूनी कार्यवाही शुरू किए जाने में परिणत हुई हैं। ये समूह स्वास्थ्य शिक्षा और हाल ही में, विकेन्द्रीकृत स्वास्थ्य नियोजन के क्षेत्र में भी सक्रिय रहे हैं। अनेक चालू योजनाएं सामुदायिक पहलकारियों को प्रोत्साहित करने एवं प्रभावी प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा सुनिश्चित करने पर ध्यान दे रही हैं (इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं को सशक्त बनाना और एक ग्रामीण महिलाओं का नेटवर्क तैयार करना भी है। स्वास्थ्य में एक प्रमुख पहल तमिलनाडु विज्ञान मंच की रही है, जिसका नाम है "आरोग्य इन्कवाम" — एक ऐसी योजना जिसके तहत पूरे तमिलनाडु के 17 खण्डों में लगभग 1000 गांव हैं, जहां एक स्थानीय स्वास्थ्य स्वयं सेवकों को बाल पोषण विज्ञान, मातृत्व एवं शिशु रक्षा, प्राथमिक चिकित्सा तथा रक्षात्मक एवं प्रतिकारक स्वास्थ्य आवश्यकताओं संबंधी बुनियादी बातों में प्रशिक्षित किया जाता है।

पर्यावरण के क्षेत्र में, जन विज्ञान आन्दोलनों की गतिविधियां मुख्य रूप से पर्यावरणीय शिक्षा के स्वरूप में रही हैं। अध्यापन साधनों को विकसित करने में जन विज्ञान आन्दोलन ने मापदण्डों के एक निर्णायक घटक एवं उसके द्वारा विकसित संसाधन सामग्री के रूप में पर्यावरण को व्यापक रूप से समाकलित किया है। अनेक मुद्दों पर समर्थन एवं अभियानों ने व्यापक प्रभाव डाला है, जैसे केरल में मूक घाटी परियोजना, भोपाल में गैस त्रासदी तथा चालू नर्मदा बांध परियोजना। रिओ सम्मेलन, जैव विविधता सम्मेलन एवं विश्व सतत् विकास सम्मेलन, आदि के दौरान पर्यावरणीय मुद्दों से जुड़ी नीति स्तरीय समीक्षाओं के रूप में सामने आयी हैं। तमिलनाडु विज्ञान मंच की एक पहलकारी, उदाहरण के लिए, टी एन एस एफ ने पूरे राज्य में पानी उपलब्ध कराने के लिए बेकार पड़े बड़े जलाशयों की मरम्मत का काम शुरू किया तमिलनाडु में मछली पालन की अनियंत्रित प्रथा में पांडिचेरी विज्ञान मंच ने प्रभावशाली रूप से हस्तक्षेप किया, जो कि तरीय पारितंत्र को गंभीर रूप से हानि पहुंचा रहा था। यह नियामक प्राधार के अधिवियमन में परिणत हुआ। हिमाचल ज्ञान विज्ञान समिति ने राज्य में आकस्मिक बाढ़ों की प्राथिक घटना के अध्ययनार्थ एक परियोजना शुरू की है।

घ) **प्रौद्योगिकी विकासः** जन विज्ञान आन्दोलन समूह जन केन्द्रित प्रौद्योगिकियों को विकसित एवं प्रोत्साहित करने में लगे रहे हैं जो कि कम पूंजी वृद्धिकर हैं और बड़ी संख्या में लोगों, श्रमजीवियों, शिल्पकारों एवं दस्तकारों का सशक्तीकरण करती है। इस प्रकार की पहलकारियों के कुछ उदाहरण हैं : दूरसंचार साधनों के लिए स्थानीय दायरे में वायरलैस, कंप्यूटर एवं ग्राम सूचना सॉफ्टवेयर, गृह निर्माण कार्यों में सीमंट / कंकरीट के स्थान पर जैव पुंज, पवनचक्कियां एवं जैव-पुंज आधारित ऊर्जा तंत्र, कृषि उत्पादकता बढ़ाने हेतु इतर रासायनिक निवेश, छोटे पैमाने की उन्नत यंत्रचालित खड़्डियां, छोटे पैमाने के ही कोल्हू एवं अन्य खाद्य संसाधन इकाईयां तथा यांत्रिक लौहकर्म।

मौटे तौर पर, दो वर्षों में एक बार, ये जन विज्ञान आन्दोलन समूह अपने अपने कार्यकलापों की समालोचना करने, विशेषज्ञों से बातचीत करने, अपने अनुभवों से सीखने एवं आगे की योजना बनाने अखिल भारतीय जन विज्ञान कांग्रेस (ए आई पी एस सी) में एकत्र होते हैं। दसवीं अखिल भारतीय जन विज्ञान कांग्रेस अक्तूबर 2003 में शिमला, हिमाचल प्रदेश में आयोजित की गई थी। यह जन विज्ञान आन्दोलन महज वैज्ञानिक सूचना के प्रचार प्रसार

से लेकर विज्ञान संबंधी नीति एवं विकासात्मक मुद्दों में समर्थन, चर्चाओं एवं मध्यस्थताओं में लोगों को शामिल करने तक एक लम्बा रास्ता तय कर चुका है। यह आन्दोलन व्यवहारतः एक सक्रिय जन विज्ञान समूह वाले प्रत्येक राज्य के साथ एक ज़ोरदार जन आन्दोलन का रूप लेने के लिए संख्या दर संख्या बढ़ता ही गया है। जन विज्ञान आन्दोलन के प्रयास आजकल काफी प्रासंगिक होते जा रहे हैं क्योंकि जन साधारण द्वारा उदारीकरण एवं भूमण्डलीकरण के प्रतिकूल प्रभावों को उत्तरोत्तर महसूस किया जा रहा है और राज्य शिक्षा, रोज़गार, स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण आदि क्षेत्रों में अपनी ज़िम्मेदारी से धीरे धीरे किनारा करता जा रहा है।

सोचिए और कीजिए 29.3

इस इकाई में कुछ जन विज्ञान आन्दोलनों पर चर्चा की गई है। कुछ और के विषय में पता करें और उनकी गतिविधियों एवं उपलब्धियों को जाने। आप किसी खण्ड गांव में भी जा सकते हैं और वहां जन विज्ञान आन्दोलन द्वारा शुरू की गई योजनाओं के विषय में एक रिपोर्ट तैयार करें।

29.6 भारत में कुछ प्रमुख जन विज्ञान आन्दोलन

आइए अब भारत में कार्यरत कुछ जन विज्ञान आन्दोलनों की समीक्षा करते है :

केरल शास्त्र साहित्य परिषद् (के एस एस पी) : आन्दोलनकारी भाव में विज्ञान को प्रयोग करने वाला एक पुरगामी समूह केरल शास्त्र साहित्य परिषद् था। "सामाजिक क्रांति के लिए विज्ञान" नारा इस परिषद् द्वारा जन जीवन को रूपायित करने में विज्ञान एवं समाज के बीच संबंध पर ज़ोर देने के लिए दिया गया था। इस आधार वाक्य पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को प्रायः बहुसंख्यक वर्ग का शोषण करने के लिए एक अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा प्रयोग किया जाता है, यह परिषद् विज्ञान शिक्षा को लोगों के लिए सामाजिक मुद्दों को वैज्ञानिक रूप से विश्लेषित करने और इस प्रकार अपने सामाजिक कार्य को सूचित करने हेतु शक्ति के साथ निहित करती है।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

जब एक जल विद्युत परियोजना बनकर सामने लाई गई और अवैज्ञानिक एवं अति व्यापी विद्युत एंव सिंचाई नीतियां शुरू हो गई तो अद्वितीय मूक घाटी को बचाने के लिए अपने संघर्ष के दौरान इस आन्दोलन पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया गया। यह परिषद असंगत औषधि नुस्खों, घातक दवाओं एवं उनके ऊंचें मूल्यों के विरूद्ध लड़ाई में भी भाग लेती है। यह परिषद मवूर कालिकट स्थित बिरलाओं के लुगदी कारखाने के खिलाफ़ लड़ाई का नेतृत्व कर रही है जो कि आसपास की वायु एवं जल को अपराधिक रूप से प्रदूषित कर रहा है।

प्रतिवर्ष 2 अक्तूबर से 7 नवम्बर तक चलने वाले बेहद सफल शास्त्रकला जत्थे की वजह से पूरे भारतवर्ष में केरल शास्त्र साहित्य परिषद व्यापक रूप से प्रसिद्ध है। जत्था एक व्यापक प्रयास होता है, जो सभी जगह से हज़ारां लोगो को आकर्षित करता है। विज्ञान, अपने विस्तृत अर्थ में इन माध्यमों से लोगों तक पहुंचाया जाता है : (i) मुद्रित शब्द पुस्तकों, चौपालों एवं पोस्टरों के माध्यम से; और (ii) कलाओं – गीत, नुक्कड़ नाटकों, प्रहसनों एवं लोक कला, आदि के माध्यम से।

केरल शास्त्र साहित्य परिषद की गतिविधियां मानव उद्यम के विविध क्षेत्रों में फेली हुई हैं। परिषद में हज़ारों व्यवसायिक, छात्रगण, आन्दोलनकर्त्ता आदि शामिल हैं। परिषद के लोगों को उनके अपने भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण को व उसमें विद्यमान विभिन्न बलों एवं प्रतिबलों को समझने में मदद करने तथा इस प्रकार उन्हें अपने लिए स्वयं स्थिति का विश्लेषण करने में सक्षम बनाने में निरन्तर कार्यरत हैं।

बॉक्स 29.1

केरल शास्त्र साहित्य परिषद केरल में 100 प्रतिशत साक्षरता हेतु साक्षरता अभियान की सफलताओं में सहायक रही। वह अखिल भारतीय जन विज्ञान नेटवर्क (ए आई पी एन एन) की भी सदस्य है। उसने 1996 उपयुक्त आजीविका पुरस्कार समेत अनेक पुरस्कार जीते हैं जो कि "सामाजिक न्याय एवं जन भागीदारी में प्रशासित एक विकास आदर्श के प्रति उसके प्रमूख योगदान के लिए" किए गए है।

तमिलनाडु विज्ञान मंच (टी एन एस एफ)

तमिलनाडु विज्ञान मंच एक जन आन्दोलन है जो 1980 से ही अल्पलाभावितों को स्वयं को संघटित एवं सशक्त करने में मदद करता आ रहा है। यह मंच भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान एवं भारतीय विज्ञान संस्थान के शोध वैज्ञानिकों द्वारा शुरू किया गया जिन्होंने शीघ्र ही महसूस किया कि विज्ञान नीति की समीक्षा करना और लोगों को संघटित भर करना ही काफी नहीं है। उन्हें वे समाधान भी सामने रखने पड़े जो आम आदमी अपना सकता था। उन्होंने साक्षरता, शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्यमों एवं कृषि वैकल्पिक आदर्श भी विकसित किए। इन आदर्शों के माध्यम से विज्ञान ज्ञान तकनीकों को पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया।

इसके उपरांत नई नई अध्यापन विधियों को प्रयोग करने हेतु अध्यापकों को स्वाास्थ्य संबंधी जानकारी के प्रयोगार्थ ग्रामीण महिलाओं को तथा मृदा की गुणवत्ता सुधारने हेतु विज्ञान के प्रयोगार्थ किसानों को प्रशिक्षण दिए जाने की प्रक्रिया आरंभ हुई। हर ज़िले ने सामाजिक विकास पर अपना निजी अनुभव अपनाया, जैसे स्वावलम्बी बचत योजना (कन्याकुमारी, विरूधनगर), स्वास्थ्य प्रशिक्षण कार्यक्रम (शमनाद), बच्चों एवं महिलाओं की आवश्यकताओं पर वैयक्तिक परामर्श देने हेतु स्वयंसेवकों को प्रशिक्षण देना, महिलाओं के लिए उद्यम (मदुरै), महिला वर्ग के लिए सदान अनुबंध (पुदुबोटी), स्कूल बीच में ही छोड़ देने विषयक समस्या समाधान (बिल्लुपुरम एवं गुड्डालोर), तथा हिंसा की शिकार महिलाओं के लिए सहारा आश्रय (शमनाद)। इन क्षेत्रों में अनेकों प्रयोग किए गए और जो कारगर सिद्ध हुएं फैलते चले गए।

तमिलनाडु विज्ञान मंच का ध्यान अब उन विचारों को एकीकृत एवं विस्तृत करने पर है जिन पर उन्होंने काम किया है। शिक्षा के क्षेत्र में अनेक नए नए अध्यापन विधि केन्द्र स्थापित किए गए हैं। इन विचारों को पोषित किया जा रहा है और नए खण्डों में फेलाया जा रहा है। ये कार्यक्रम वहाँ पहुँच कर हज़ारों बच्चों को कुपोषण से बचाते हैं, और स्कूल बीच में ही छोड़ देने से भी , जबकि ऋण उधम एवं स्वास्थ्य कौशलों से लाखों महिलाओं की मदद करने के अलावा किसानों को मृदा एवं उपज को सुधारने में भी मदद करते हैं।

तमिलनाडु विज्ञान मंच की शक्ति बृहत्तरविषयों पर अभियान हेतु उसकी क्षमता में निहित है जबकि साथ ही, यह प्रदर्शित करने में भी कि ये विचार वस्तुतः किस प्रकार गरीबों की ज़िंदगी सुधारते है

चिकित्सा मित्र मण्डल (एमएफसी)

चिकित्सा मित्र मण्डल हमारी आम जनता की स्वास्थ्य समस्याओं में रुचि रखने वाले सामाजिक रूप से सचेत व्यक्तियों का एक समूह है। यह विशाल जनसंख्या के अधिकांश भाग की आवश्यकताओं के अनुरुप ही चिकित्सा संबंधी देखभाल की एक व्याख्या विकासित करने हेतु एक उचित दृष्टिकोण को सामने रखने की दिशा में प्रयासरत है।

चिकित्सा मित्र मण्डल चिकित्सा विज्ञान के प्रसिद्धिकरण एवं सुबोधीकरण हेतु कार्यरत हैं क्योंकि चिकित्सा व्यवसाय की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिहाज से चिकित्सीय जानकारी को समझ

में न आने वाली शब्दावली और दुर्बोधता का जामा पहना दिया गया है। चुंकि चिकित्सीय मध्यदक्षता एक प्रकार का प्रतिकारक पूर्वाग्रह रखती है, यह मण्डल इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करता है कि सामाजिक पैमाने पर स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को समुदाय की सक्रिय भागीदारी के साथ ओर जब भी संभव हो, उत्तरदायित्वों के विकेन्द्रीकरण के लिए किए जाने वाले निवारक एवं सामाजिक उपायों द्वारा ही मूल रूप से हल किया जा सकता है।

सोचिए और कीजिए 29.4

विज्ञान हम सभी को प्रभावित करता है। अपने जीवन स्तर को सुधारने एवं ऊपर उठाने के लिए हमें उनमें अपने दैनिक जीवन में विज्ञान का उपयोग करने हेतु एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शिक्षा एवं चेतना की आवश्यकता के योगदान के योजगादन पर चित्र व्यक्त करें।

29.7 सारांश

तर्कसंगत, वैज्ञानिक आधार पर अपने समाज को अन्ततोगत्वा पुनर्व्यवस्थित करने पर अभिलक्षित किसी भी जन आन्दोलन को लोगों के बीच वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने की अपेक्षा होती है। एक प्रमुख चुनौती अन्धविश्वास मनगढ़न्त बातों गूढ़वाद, सम्प्रदायवाद, भाग्यवाद आदि से लड़ने की है, क्योंकि वे सामाजिक ताने बाने में गहरे जड़े जमाए हुए हैं। साथ ही, सामाजिक, आर्थिक बाध्यताओं को समझे बगैर इन ताकतों का महज अस्वीकरण तो अनुचित ही होगा। भारतीय संदर्भ में, इस प्रकार की द्विविधा का सामना करते हुए जन विज्ञान आन्दोलन को निरन्तर सामाजिक परिवर्तन के लिए एक वैकल्पिक रास्ते की ओर रूख मोड़ना पड़ता है। उसे किसी व्यक्ति विशेष की परम्परा में विद्यमान सर्वोत्तम घटकों को दुनिया भर में मानवीय ज्ञान की संचित निधि के साथ जोड़ना पड़ता है। जिसे अस्वीकार किया जाना है न तो "परम्परा" है और न ही "आधुनिकता" बल्कि वे सभी घटक हैं जो सामाजिक जीवन के एक काफी सुसभ्य रूप को ग्रहण करने के दिशा में मानव प्रगति की राह में खड़े हैं। इस प्रकार का संक्रामणकाल लोगों की भागीदारी के बग़ैर पूरा नहीं होगा। यदि इस प्रकार की सहभागिता प्रक्रिया को शुरू किया जाना है तो वैज्ञानिक कार्य विधि के अभाव एवं मानवीय ज्ञान प्रक्रिया है जिसमें जन विज्ञान आन्दोलन अपनी भूमिका निभाता है। इस प्रक्रिया का गतिवाद इस प्रकार का है कि "ज्ञान" कर्म की ओर प्रवृत्त करता है जो कि बदले में बोध प्रक्रिया को उन्नत एवं समृद्ध करने की ओर प्रवृत्त करता है। आसपास के सामाजिक परिवेश के मद्देनज़र ही इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहिए। किसी समूह की ताकत और जन आन्दोलन की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए निरपेक्ष स्टीक पर्यवेक्षण और प्रयोग जरूरी है। इसमें प्रश्न पूछने वाली मानसिकता बननी चाहिए जो प्रति संस्कृति का निर्माण कर सकें। जब तक लोग अपनी वर्तमान स्थिति पर सवाल उठाना शुरू नहीं करते, अपनी समस्या के 'क्यों' और 'कैसे' को समझने का प्रयास नहीं करते; कोई भी जन आन्दोलन अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। जन विज्ञान आन्दोलनों का योगदान एक नई दुनिया हेतु आन्दोलन की दिशा में लोगों के बीच एक जीवन्तता की शक्ति उत्पन्न करने में उपयोगी सिद्ध होगा।

इस इकाई में यह स्पष्ट किया गया है कि विश्व विज्ञान आन्दोलन क्या है, उसके लक्ष्य एवं प्रयोजन क्या हैं। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार यह आन्दोलन देश के कुछ भागों में उभरा और उसके अन्य भागों में फेला। यह आन्दोलन लोगों की दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापों को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयास करता है और उसके द्वारा जनविकास हेतु वैज्ञानिक जानकारी का प्रयोग करता है। इस आन्दोलन का विस्तार अपनी लोकप्रसिद्धि एवं जन स्वीकृति को स्पष्ट दर्शाता है। अन्ततः यह इकाई कुछ प्रमुख संगठनों की गतिविधियों पर भी नज़र डालती है, जो कि अपनी विविध गतिविधियों से जन विज्ञान आन्दोलनों को मज़बूती प्रदान करते है।

MAADHYAM IAS

29.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बंदोपाध्याय, डी. (1997) "पीपल्स पार्टिसिपेशन इन प्लानिंग : केरल एक्सपैरिमेन्ट" *इकॉन्मिक एक पॅलिटिकल वीकली* में, 32(39) : 2450-54

बॉड्मर, डब्ल्यू. (1985) *दि पब्लिक अण्डरस्टैंडिंग ऑफ साइन्स,* रॉयल सोसाइटि : लन्दन

डेर्क एम. एवं वों ग्रोत, सी. (2000) *बिटवीन अण्डरस्टैंडिंग एण्ड ट्रस्ट : द पब्लिक, साइन्स एण्ड टैक्नॉलाजी,* हार्वुड एकैडमिक पब्लिशर्ज़ : एम्अरडम

ल्युइन्सते, बी (1992) "द मीनिंग ऑफ पब्लिक अण्डरस्टैंडिंग ऑफ साइन्स इन दि युनाइटेड स्टेट्स आफटर वर्ल्ड वॉर II" इन *पब्लिक अण्डरस्टैंडिंग आफ साइन्स* में 1, 45-68

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

इकाई 30
सभ्य समाज आन्दोलन और ज़मीन से जुड़े लोग

इकाई की रूपरेखा

30.1 प्रस्तावना
30.2 सभ्य समाजः अर्थ एवं आयाम
30.3 सभ्य समाजः सामाजिक आन्दोलनों के रूप में
30.4 ग़ैर-सरकारी संगठनः सभ्य समाज अभिकर्त्ताओं के रूप में
30.5 ग़ैर-सरकारी संगठनों एवं सरकार के बीच संबंध
30.6 उपान्तिकरण और उपेक्षित लोग
30.7 सभ्य समाज और उपेक्षितों का सशक्तीकरण
30.8 सभ्य समाज आन्दोलन : समालोचना
30.9 सारांश
30.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई आपको इन बातों के आलोचनात्मक विश्लेषण में मदद करेगीः

- सभ्य समाज के अर्थ एवं आयाम;
- सामाजिक आन्दोलनों के रूप में सभ्य समाज;
- सभ्य समाज अभिकर्त्ताओं के रूप में ग़ैर-सरकारी संगठन (एन जी ओ);
- ग़ैर-सरकारी संगठनों एवं सरकारी संगठनों के बीच संबंध; तथा
- हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तीकरण हेतु सभ्य समाज की भूमिका।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

30.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ्यक्रम की पुस्तक 1 की इकाई 1 में हमने समकालीन विकास कार्यों में सभ्य समाज की उभरती भूमिका के विषय में बात की थी। इस इकाई में हम सभ्य समाज के मायनों और आयामों ; विकास प्रक्रियाओं में उसकी बदलती भूमिका एवं पदस्थिति पर विस्तार से चर्चा करेंगे। सभ्य समाज स्वयं ही हाल के वर्षों में एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में उभरी है, जबकि यह सदा ही समाज में वृहत्तर सामाजिक आन्दोलनों का हिस्सा रही है। सभ्य समाज एवं सामाजिक आन्दोलन के बीच पारस्परिक क्रिया-बिंदु समाज़शास्त्रियों के लिए एक जिज्ञासा का विषय रहा है। हम इस इकाई में सभ्य समाज के इसी पहलू पर चर्चा करेंगे। राज्य और प्रजा के साथ-साथ सभ्य समाज भी विकास के एक भागीदार के रूप में उभरी है।

विश्व विकास सम्मेलन 1995 ने अर्थात हाशिए पर के लोगों के सशक्तीकरण में सभ्य समाज की भूमिका पर ज़ोर दिया। यहां एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में सभ्य समाज पर चर्चा किए जाने के अलावा, यह इकाई समाज के हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तीकरण में सभ्य समाज की भूमिका का भी विश्लेषण करती है। जबकि हम हाशिए पर खड़े लोगों पर चर्चा कर रहे हैं, उपेक्षित की प्रक्रिया पर चर्चा करना अनिवार्य है। उपेक्षित और हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तिकरण पर एक छोटी सी परिचर्चा भी इस इकाई का हिस्सा है। इस इकाई विकास में सभ्य समाज की भूमिका का एक आलोचनात्मक पर्यवलोकन भी प्रस्तुत करती है।

30.2 सभ्य समाज : अर्थ एवं आयाम

सभ्य समाज शब्द लैटिन शब्द सिविलीज़ सोसाइताज़ से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है वे संघ अथवा समुदाय जो राज्य से ऊपर और उससे परे काम करते हों। सभ्य समाज में तदनुसार संस्थाओं का एक जमघट होता है जो उन कार्यों को देखता है जो राज्य द्वारा निष्पादित नहीं किए जाते हैं। ये विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं समाज की अन्य गतिविधियों से संबंध हो सकते हैं।

यूरोप का मध्यकालीन चर्च, हिन्दू मठ, सिख गुरूद्वारों, मुस्लिम मस्ज़िदों एवं भारत में अन्य धार्मिक न्यास, जाति एवं नातेदारी संस्थाएं, व्यापार, खेल, सांस्कृतिक संघ आदि सभ्य समाज का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

यह बात महत्वपूर्ण है कि सभ्य समाज का उल्लेख उसके नैतिक मूल्य एवं प्राधिकार के लिए भी किया जाता है ; कारण राज्य एक प्रशासनिक इकाई के अधिक सदृश होता है। सभ्य समाज राज्य के उलट, समाज की नैतिक आधारशिला रखती है (एन एस आई 1996)। इस अर्थ में ही सभ्य समाज को व्यापक रूप से एक निचोड़ के रूप में देखा गया है, न सिर्फ नैतिक प्राधिकरण के रूप में बल्कि राज्य, कानून और पूंजीवाद के खिलाफ़ संस्कृति के एक बुर्ज के रूप में भी । हांलाकि, सभ्य समाज में राज्य के बरक्श प्रतिपक्ष की स्थिति हमेशा बदलती रहती है। क्योंकि राज्य, बाज़ार एवं पूंजीवाद के साथ उसका संबंध हर जगह और हर वक्त एक सा नहीं रहा है। फिर भी, आज हम सभ्य समाज को संस्कृति, स्वतंत्रता, स्वाधीनता सभी अच्छी बातों के आश्रय के रूप में देखते हैं; जो कि हमें राज्य (जो कि अनुमति दिए जाने पर हमें नुकसान पहुंचा सकता है) में शासन करने में सक्षम करता है (वही 1996)।

महत्वपूर्ण रूप से, सभ्य समाज समाज-कल्याण विषयक राज्य की नीति को प्रभावित करने, सामाजिक मुद्दों पर विचार व्यक्त करने, नए विचारों एवं सूचना के आदान प्रदान हेतु एक मंच प्रदान करने, नए मानदण्डों, पहचानों, संस्थाओं आदि को जन्म देकर सामाजिक आन्दोलनों का सूत्रपात करने आदि में काफ़ी लम्बे समय से एक महती भूमिका निभाता रहा है (कोहन एवं आरतो 1994)। सभ्य समाज राज्य और बाज़ार को साथ मिलाकर उन तीन सामाजिक वर्गों में से एक है जो लोकतांत्रिक समाजों के निर्माण में पारस्परिक क्रिया करते हैं।

सभ्य समाज वह सामाजिक वर्ग है जिसमें सामाजिक आन्दोलन संगठित होते हैं। सभ्य समाज का संगठन, जो अनेक भिन्न और कभी-कभी परस्पर विरोधी सामाजिक हितों का प्रतिनिधित्व करता है, सामाजिक आधार, निर्वाचन क्षेत्र, विषयक अवस्थितियों (यथा पर्यावरण, लैंगिग भेदभाव, मानवाधिकार) एवं विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के अनुकूल होने के लिहाज़ से गठित होता है। इनमें आते हैं – चर्च संबद्ध समूह, श्रमिक संघ, सहकारियां, सेवा संगठन, समुदाय समूह एवं युवा संगठनों के साथ-साथ शिक्षा संस्थाएं भी (यूएनडीपी 1993 : 1)। नागरिक सम्मिलन सदा ही मानव समाज की विकास प्रक्रिया का एक अविभाज्य अंग रहा है। पुटनम के अनुसार नागरिक सम्मिलन के उच्च स्तर " सामाजिक पूंजी" को जन्म देता है जिसके परिणामस्वरूप और अधिक नागरिकों सम्मिलत अर्थात शामिल होना संभव हो जाता है (पुटनम 1993)।

ग्रामशी (1998) के अनुसार सभ्य समाज वह क्षेत्र है जहां राज्य, प्रजा एवं बाज़ार परस्पर क्रिया करते हैं और जहां प्रजाजन बाज़ार और राज्य के अधिपत्य के खिलाफ़ संघर्ष छेड़ देते हैं। जन समिति संगठनों की पदस्थिति को राज्य और बाज़ार से उनके संबंध के लिहाज से व्यापक रूप से स्पष्ट किया गया है। टार्कविले की नज़र में सभ्य समाज राजनीति और लोकतंत्र का एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है जो कि ग़ैर राज्य केन्द्रित होती है और जिसने समकालीन समाजिक आन्दोलनों एवं गैर-सरकारी संगठनों (एन जी ओ) में अपनी जड़ें जमा

MAADHYAM IAS

ली हैं (स्मिथ 2001) तथापि उदारवादियों एवं नव उदारवादियों के अनुसार, सभ्य समाज जनकल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, स्वच्छ जल इत्यादि सरीखी सेवाओं हेतु एक गैर-राजनीतिक निजीकृत प्रढ़ाव व्यवस्था के रूप में बाज़ार अर्थव्यवस्था के इर्द-गिर्द ही संगठित होते है (टेलर 1990)। हाल के वर्षों में, विश्व भर में सभ्य समाज का असाधारण बृहद फैलाव देखने में आया है। समाज वैज्ञानिकों ने इस दृश्य घटना का श्रेय एक ओर राज्यों में संकटकाल की स्थितियों तथा दूसरी ओर बाज़ार की जीत को दिया है। कभी-कभी राज्य वैधता की कमी से ग्रस्त हो जाता है जिससे उसकी अपनी स्थिरता वाली परिस्थितियां बिगड़ जाती हैं और सभ्य समाज के लिए मार्ग प्रशंस्त हो जाता है (चन्धोक 1995)।

सभ्य समाज के राज्यानुकूल अथवा राज्य-विरूद्ध विचार अथवा वैधता संकटों संबंधी राज्यीय विफलता के विचार विषयक इस प्रकार की बहस के बावजूद, सभ्य समाज को लोकतंत्रीकरण हेतु एक शक्ति, राज्य एवं आर्थिक शक्ति के प्रतिभारों के रूप में देखा गया है और वे शासन के राष्ट्रीय एवं पराराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर नागरिक भागीदारी के वैकल्पिक माध्यमों के रूप में उभरे हैं। उनकी सक्रियता और पहलकारियों को क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक राजनीति एवं अर्थव्यवस्था के कायांतरण हेतु एक आन्दोलन के रूप में देखा जाता है (एडवर्ड 2000)। अनेक विद्वान, बहरहाल, सभ्य समाज को राज्य एवं बाज़ार से ऊपर देखते हैं, क्योंकि राज्य और बाज़ार कुछ तो योगदान देते हैं परन्तु सर्वस्व नहीं (बेटे 2000)।

वस्तुतः सभ्य समाज को एक प्राधार (संगठन, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थान एवं संबंधः संबंधी) के साथ-साथ एक प्रक्रिया (माध्यम जिनसे प्राधार के घटक अस्तित्व में आते हैं, और अन्तर्संबंध रखते हैं) के रूप में भी देखे जाने की आवश्यकता है (ब्लेनी और पाशा 1992)। भूमंडलीकरण संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के प्रवर्तन एवं सामाजिक विकास रणनीति में प्रतिमान परिवर्तन के चलते राज्य ओर सभ्य समाज की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। उभरते परिदृश्य में इन दो बातों पर ज़ोर दिया गया है : (क) सभ्य समाज की बढ़ती भूमिका "ताकि सामूहिक भलाई कार्यों में नागरिकों एवं समुदायों को शामिल कर राज्य का बोझ अपने कंधों पर ले लें"(विश्व बैंक 1997 : 3) ; और (ख) समाज में हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तीकरण प्रक्रिया के सुनिश्चित करने के लिए "सभ्य समाज एवं स्थानीय समुदायों की क्षमताओं एवं अवसरों को बढ़ाना (यू एन 1995)।" तथापि, समसामाजिक विकास परिचर्चा में, विकास पहलों के प्रतिपादन एवं क्रियान्वयन में राज्य के साथ-साथ सभ्य समाज संगठनों के सम्मिलन की भी प्रक्रिया शामिल रही है। एक ओर प्रजाजन और दूसरी ओर राज्य के साथ सभ्य समाज का क्या संबंध रहा है? इस विषय पर हम इस इकाई के आगामी उपखंडों में चर्चा करेंगे। चलिए, सभ्य समाज़ और सामाजिक आन्दोलनों के परस्पर संबंध से आरंभ करते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

सोचिए और कीजिए 30.1

सभ्य समाज से आप क्या अर्थ लगाते हैं? क्या किसी सभ्य समाज का राज्य के अस्तित्व से स्वतंत्र के रूप में वर्णन किया जा सकता है?

30.3 सभ्य समाजः सामाजिक आन्दोलनों के रूप में

एम एस ओ-004 के अन्तिम खण्ड में हम सामाजिक आन्दोलनों एवं उनके रूपान्तरण संबंधी विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे। इस खंड में,चलिए बड़े संक्षिप्त में जानते हैं कि सामाजिक आन्दोलनों से हमारा क्या अभिप्राय है और सामाजिक आन्दोलनों एवं सभ्य समाज, पहलकारियों अथवा सक्रियताओं, के बीच क्या संबंध है? परम्परागत रूप से, सामाजिक आन्दोलनों को मोटे तौर पर समाज में विचार, मान्यताओं, मूल्यों प्रवृतियों, संबंधों एवं प्रमुख संस्थाओं में परिवर्तन लाने, अथवा समाज के उपर्युक्स प्राधारीय घटकों में से किसी

में भी परिवर्तनों को रोकने में संगठित प्रयासों के रूप में लिया गया है (एच. ब्लूमर 1976; एच. टॉक 1956; हैबरली 1972; जे. आर. गस्फील्ड 1972; जे विल्सन 1972)। सामाजिन आन्दोलनों को कुछ निश्चित उद्देश्यों, सामूहिक संघटन हेतु कार्यप्रणाली विशिष्ट विचारधारा, पहचान प्राप्त नेतृत्व एवं संगठन पर आधारित अभीष्ट एवं संगठित सामूहिक कार्यवाहियों के रूप में देखा जाता है। तथापि, साठ के दशक से ही, विशेषरूप से सामूहिक विरोध प्रदर्शन, प्रतिरोध एवं लाभबंदी के नए रूपों के बृहद फैलाव के चलते, जैसे अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में छात्रों के पर्यावरणीय अश्वेत नागरिक अधिकार संबंधी, महिलाओं के आन्दोलन, आदि सामाजिक आन्दोलनों में नए घटकों की पहचान हेतु प्रयास किए गए हैं। यह व्यापक रूप से माना गया है कि सामाजिक आन्दोलन एक सामूहिक पहचान का भाव एवं नए विचार उत्पन्न करने में मदद करते हैं जो यथार्थ को स्वयं ही मान्यता प्रदान कर देते हैं। साथ ही सामूहिक अस्तित्व के तरीकों को पुनर्परिभाषित भी कर देते हैं। मलकी (1996) ने सामूहिक पहचान पर ज़ोर दिया है। उनके अनुसार सामाजिक आन्दोलन नई सामाजिक पहचान वाले संबंधों के इर्द गिर्द ही जन्म लेते हैं जिनको स्वैच्छिक रूप से माना जाता है कि इस पहचान के बचाव में सदस्यों को "शक्ति प्रदान" करते हैं (मलूवी 1996)। आयरमैन और जैमिसन (1991) लिखते हैं :

> चेतना को व्यक्त कर सामाजिक आन्दोलन नए विचारों को जन्म देने, एक अभिकर्त्ताओं को सक्रिय करने, नए मतों को जन्म देने आदि के लिए सार्वजनिक स्थान प्राप्त करते हैं। तदनुसार, नई जानकारी को पैदा कर, अपनी निजी ज्ञानपरक पहचान पर विचार व्यक्त कर, अपने मंतव्य को प्रकटकर और सामाजिक व्यवस्था के प्रबल धारणाओं को चुनौती पेश कर, सामाजिक आन्दोल न नए विचारों को जन्म देते हैं जो कि मानव रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति आधारभूत होते हैं। इस प्रकार, सामाजिक आन्दोलन उन विश्वदृष्टिकोणों को जन्म देते हैं जो अवधारणा को पुनर्गठित करते हैं और वे स्वयं यथार्थ को पहचान लेते हैं। सामाजिक आन्दोलनों की अवधारणा प्रथा नई सामाजिक छवियों तथा सामाजिक पहचानों के कार्यान्तरण का एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है (आयरमैन एवं जैमिसन 1991 : 161.66)।

MAADHYAM IAS

सामाजिक आन्दोलन विभिन्न समूहों की एक सामूहिक पहचान पर आधारित रहकर गठित किए जाते हैं, नामतः महिला वर्ग, पर्यावरणविद्, छात्रवर्ग कृषक वर्ग, श्रमिक वर्ग आदि जिनको सामान्य पहचान एवं हितों के आधार पवर संगठित किया जाता है। ऐलन स्कॉट (1990) के अनुसार, सामाजिक आन्दोलन में अभिकर्त्ता की सामूहिक पहचान उसकी सामाजिक स्थिति संबंधी समझ से जुड़ी होती है। वह आगे कहते हैं"सामाजिक आन्दोलन उन व्यक्तियों द्वारा संगठित सामूहिक अभिकर्त्ता होता है जो समझते हैं कि वे एक सर्वसामान्य हित रखते हैं, ओर अपने सामाजिक अस्तित्व, एक सर्वस्वमान्य पहचान की कम से कम कुछ महत्वपूर्ण भूमिका भी " (ऐलन स्कॉट 1990 : 6)।

तथापि, सामाजिक आन्दोलनों में भागीदारी हमेशा ही किसी पहचान की तलाश में नहीं हो सकती; अपितु वह राजनीतिक एवं भौतिक हितों की परिपुष्टि के लिए भी हो सकती है। टिली (1978), मैकऐडम (1982), टैरो (1994) व कई अन्य विद्वानों का मत है कि सामाजिक आन्दोलन संभावित राजनीतिक अवसरों में वृद्धि और चुनौती देते समूहों के क्रियाकलापों के प्रति राज्य की बढ़ती ग्राह्यता के प्रत्युत्तर में प्रकट होते हैं। आमतौर पर ये विद्वान सामाजिक आन्दोलनों के कार्यान्वयन संचालन में शामिल विभिन्न संसाधनों पर ज़ोर देते हैं। यह दृष्टिकोण, जिसे संसाधन संघटन कहते हैं, यह मानकर चलता है कि सामूहिक कार्यवाइयां विशिष्ट अवसर प्राधारों से संबद्ध होते हैं। यहां महत्व मानवीय कार्यवाई की तर्कसंगति को दिया जाता है, जिससे सामाजिक आन्दोलन में सहभागी जन सामूहिक लाभबंदी में अपनी सहभागितापूर्ण कार्यवाही की लागत एवं लाभों की गणना करते हैं। इस दृष्टिकोण में सामाजिक आन्दोलनों को या तो सामाजिक संसाधनों के इच्छानुकूल अथवा संघटन में कुशल उद्यमियों के सृजन या फिर सामाजिक तनावों एवं विवादों को दूर किए जाने के रूप में देखा

ली हैं (स्मिथ 2001) तथापि उदारवादियों एवं नव उदारवादियों के अनुसार, सभ्य समाज जनकल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, स्वच्छ जल इत्यादि सरीखी सेवाओं हेतु एक गैर-राजनीतिक निजीकृत प्रढ़ाव व्यवस्था के रूप में बाज़ार अर्थव्यवस्था के इर्द-गिर्द ही संगठित होते है (टेलर 1990)। हाल के वर्षों में, विश्व भर में सभ्य समाज का असाधारण बृहद फैलाव देखने में आया है। समाज वैज्ञानिकों ने इस दृश्य घटना का श्रेय एक ओर राज्यों में संकटकाल की स्थितियों तथा दूसरी ओर बाज़ार की जीत को दिया है। कभी-कभी राज्य वैधता की कमी से ग्रस्त हो जाता है जिससे उसकी अपनी स्थिरता वाली परिस्थितियां बिगड़ जाती हैं और सभ्य समाज के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है (चन्धोक 1995)।

सभ्य समाज के राज्यानुकूल अथवा राज्य-विरूद्ध विचार अथवा वैधता संकटों संबंधी राज्यीय विफलता के विचार विषयक इस प्रकार की बहस के बावजूद, सभ्य समाज को लोकतंत्रीकरण हेतु एक शक्ति, राज्य एवं आर्थिक शक्ति के प्रतिभारों के रूप में देखा गया है और वे शासन के राष्ट्रीय एवं पराराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर नागरिक भागीदारी के वैकल्पिक माध्यमों के रूप में उभरे हैं। उनकी सक्रियता और पहलकारियों को क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक राजनीति एवं अर्थव्यवस्था के कायांतरण हेतु एक आन्दोलन के रूप में देखा जाता है (एडवर्ड 2000)। अनेक विद्वान, बहरहाल, सभ्य समाज को राज्य एवं बाज़ार से ऊपर देखते हैं, क्योंकि राज्य और बाज़ार कुछ तो योगदान देते हैं परन्तु सर्वस्व नहीं (बेटे 2000)।

वस्तुतः सभ्य समाज को एक प्राधार (संगठन, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थान एवं संबंधः संबंधी) के साथ-साथ एक प्रक्रिया (माध्यम जिनसे प्राधार के घटक अस्तित्व में आते हैं, और अन्तर्सबंध रखते हैं) के रूप में भी देखे जाने की आवश्यकता है (ब्लेनी और पाशा 1992)। भूमंडलीकरण संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के प्रवर्तन एवं सामाजिक विकास रणनीति में प्रतिमान परिवर्तन के चलते राज्य ओर सभ्य समाज की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। उभरते परिदृश्य में इन दो बातों पर ज़ोर दिया गया है : (क) सभ्य समाज की बढ़ती भूमिका "ताकि सामूहिक भलाई कार्यों में नागरिकों एवं समुदायों को शामिल कर राज्य का बोझ अपने कंधों पर ले लें"(विश्व बैंक 1997 : 3) ; और (ख) समाज में हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तीकरण प्रक्रिया के सुनिश्चित करने के लिए "सभ्य समाज एवं स्थानीय समुदायों की क्षमताओं एवं अवसरों को बढ़ाना (यू एन 1995)।" तथापि, समसामाजिक विकास परिचर्चा में, विकास पहलों के प्रतिपादन एवं क्रियान्वयन में राज्य के साथ-साथ सभ्य समाज संगठनों के सम्मिलन की भी प्रक्रिया शामिल रही है। एक ओर प्रजाजन और दूसरी ओर राज्य के साथ सभ्य समाज का क्या संबंध रहा है? इस विषय पर हम इस इकाई के आगामी उपखंडों में चर्चा करेंगे। चलिए, सभ्य समाज़ और सामाजिक आन्दोलनों के परस्पर संबंध से आरंभ करते हैं।

MAADHYAM IAS
Way to achieve your dream

सोचिए और कीजिए 30.1

सभ्य समाज से आप क्या अर्थ लगाते हैं? क्या किसी सभ्य समाज का राज्य के अस्तित्व से स्वतंत्र के रूप में वर्णन किया जा सकता है?

30.3 सभ्य समाजः सामाजिक आन्दोलनों के रूप में

एम एस ओ-004 के अन्तिम खण्ड में हम सामाजिक आन्दोलनों एवं उनके रूपान्तरण संबंधी विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे। इस खंड में,चलिए बड़े संक्षिप्त में जानते हैं कि सामाजिक आन्दोलनों से हमारा क्या अभिप्राय है और सामाजिक आन्दोलनों एवं सभ्य समाज, पहलकारियों अथवा सक्रियताओं, के बीच क्या संबंध है? परम्परागत रूप से, सामाजिक आन्दोलनों को मोटे तौर पर समाज में विचार, मान्यताओं, मूल्यों प्रवृतियों, संबंधों एवं प्रमुख संस्थाओं में परिवर्तन लाने, अथवा समाज के उपर्युक्स प्राधारीय घटकों में से किसी

में भी परिवर्तनों को रोकने में संगठित प्रयासों के रूप में लिया गया है (एच. ब्लूमर 1976; एच. टॉक 1956; हैबरली 1972; जे. आर. गस्फील्ड 1972; जे विल्सन 1972)। सामाजिन आन्दोलनों को कुछ निश्चित उद्देश्यों, सामूहिक संघटन हेतु कार्यप्रणाली विशिष्ट विचारधारा, पहचान प्राप्त नेतृत्व एवं संगठन पर आधारित अभीष्ट एवं संगठित सामूहिक कार्यवाहियों के रूप में देखा जाता है। तथापि, साठ के दशक से ही, विशेषरूप से सामूहिक विरोध प्रदर्शन, प्रतिरोध एवं लाभबंदी के नए रूपों के बृहद फैलाव के चलते, जैसे अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में छात्रों के पर्यावरणीय अश्वेत नागरिक अधिकार संबंधी, महिलाओं के आन्दोलन, आदि सामाजिक आन्दोलनों में नए घटकों की पहचान हेतु प्रयास किए गए हैं। यह व्यापक रूप से माना गया है कि सामाजिक आन्दोलन एक सामूहिक पहचान का भाव एवं नए विचार उत्पन्न करने में मदद करते हैं जो यथार्थ को स्वयं ही मान्यता प्रदान कर देते हैं। साथ ही सामूहिक अस्तित्व के तरीकों को पुनर्परिभाषित भी कर देते हैं। मलकी (1996) ने सामूहिक पहचान पर ज़ोर दिया है। उनके अनुसार सामाजिक आन्दोलन नई सामाजिक पहचान वाले संबंधों के इर्द गिर्द ही जन्म लेते हैं जिनको स्वैच्छिक रूप से माना जाता है कि इस पहचान के बचाव में सदस्यों को "शक्ति प्रदान" करते हैं (मलूवी 1996)। आय़रमैन और जैमिसन (1991) लिखते हैं :

> चेतना को व्यक्त कर सामाजिक आन्दोलन नए विचारों को जन्म देने, एक अभिकर्त्ताओं को सक्रिय करने, नए मतों को जन्म देने आदि के लिए सार्वजनिक स्थान प्राप्त करते हैं। तदनुसार, नई जानकारी को पैदा कर, अपनी निजी ज्ञानपरक पहचान पर विचार व्यक्त कर, अपने मंतव्य को प्रकटकर और सामाजिक व्यवस्था के प्रबल धारणाओं को चुनौती पेश कर, सामाजिक आन्दोल न नए विचारों को जन्म देते हैं जो कि मानव रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति आधारभूत होते हैं। इस प्रकार, सामाजिक आन्दोलन उन विश्वदृष्टिकोणों को जन्म देते हैं जो अवधारणा को पुनर्गठित करते हैं और वे स्वयं यथार्थ को पहंचान लेते हैं। सामाजिक आन्दोलनों की अवधारणा प्रथा नई सामाजिक छवियों तथा सामाजिक पहचानों के कार्यान्तरण का एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है (आयरमैन एवं जैमिसन 1991 : 161.66)।

MAADHYAM IAS

सामाजिक आन्दोलन विभिन्न समूहों की एक सामूहिक पहचान पर आधारित रहकर गठित किए जाते हैं, नामतः महिला वर्ग, पर्यावरणविद्, छात्रवर्ग कृषक वर्ग, श्रमिक वर्ग आदि जिनको सामान्य पहचान एवं हितों के आधार पवर संगठित किया जाता है। ऐलन स्कॉट (1990) के अनुसार, सामाजिक आन्दोलन में अभिकर्त्ता की सामूहिक पहचान उसकी सामाजिक स्थिति संबंधी समझ से जुड़ी होती है। वह आगे कहते हैं"सामाजिक आन्दोलन उन व्यक्तियों द्वारा संगठित सामूहिक अभिकर्त्ता होता है जो समझते हैं कि वे एक सर्वसामान्य हित रखते हैं, ओर अपने सामाजिक अस्तित्व, एक सर्वस्वमान्य पहचान की कम से कम कुछ महत्वपूर्ण भूमिका भी " (ऐलन स्कॉट 1990 : 6)।

तथापि, सामाजिक आन्दोलनों में भागीदारी हमेशा ही किसी पहचान की तलाश में नहीं हो सकती; अपितु वह राजनीतिक एवं भौतिक हितों की परिपुष्टि के लिए भी हो सकती है। टिली (1978), मैकऐडम (1982), टैरो (1994) व कई अन्य विद्वानों का मत है कि सामाजिक आन्दोलन संभावित राजनीतिक अवसरों में वृद्धि और चुनौती देते समूहों के क्रियाकलापों के प्रति राज्य की बढ़ती ग्राह्यता के प्रत्युत्तर में प्रकट होते हैं। आमतौर पर ये विद्वान सामाजिक आन्दोलनों के कार्यान्वयन संचालन में शामिल विभिन्न संसाधनों पर ज़ोर देते हैं। यह दृष्टिकोण, जिसे संसाधन संघटन कहते हैं, यह मानकर चलता है कि सामूहिक कार्यवाइयां विशिष्ट अवसर प्राधारों से संबद्ध होते हैं। यहां महत्व मानवीय कार्यवाई की तर्कसंगति को दिया जाता है, जिससे सामाजिक आन्दोलन में सहभागी जन सामूहिक लाभबंदी में अपनी सहभागितापूर्ण कार्यवाही की लागत एवं लाभों की गणना करते हैं। इस दृष्टिकोण में सामाजिक आन्दोलनों को या तो सामाजिक संसाधनों के इच्छानुकूल अथवा संघटन में कुशल उद्यमियों के सृजन या फिर सामाजिक तनावों एवं विवादों को दूर किए जाने के रूप में देखा

ली हैं (स्मिथ 2001) तथापि उदारवादियों एवं नव उदारवादियों के अनुसार, सभ्य समाज जनकल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा, स्वच्छ जल इत्यादि सरीखी सेवाओं हेतु एक गैर-राजनीतिक निजीकृत प्रढ़ाव व्यवस्था के रूप में बाज़ार अर्थव्यवस्था के इर्द-गिर्द ही संगठित होते है (टेलर 1990)। हाल के वर्षों में, विश्व भर में सभ्य समाज का असाधारण बृहद फैलाव देखने में आया है। समाज वैज्ञानिकों ने इस दृश्य घटना का श्रेय एक ओर राज्यों में संकटकाल की स्थितियों तथा दूसरी ओर बाज़ार की जीत को दिया है। कभी-कभी राज्य वैधता की कमी से ग्रस्त हो जाता है जिससे उसकी अपनी स्थिरता वाली परिस्थितियां बिगड़ जाती हैं और सभ्य समाज के लिए मार्ग प्रशंस्त हो जाता है (चन्धोक 1995)।

सभ्य समाज के राज्यानुकूल अथवा राज्य-विरूद्ध विचार अथवा वैधता संकटों संबंधी राज्यीय विफलता के विचार विषयक इस प्रकार की बहस के बावजूद, सभ्य समाज को लोकतंत्रीकरण हेतु एक शक्ति, राज्य एवं आर्थिक शक्ति के प्रतिभारों के रूप में देखा गया है और वे शासन के राष्ट्रीय एवं पराराष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर नागरिक भागीदारी के वैकल्पिक माध्यमों के रूप में उभरे हैं। उनकी सक्रियता और पहलकारियों को क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं वैश्विक राजनीति एवं अर्थव्यवस्था के कायांतरण हेतु एक आन्दोलन के रूप में देखा जाता है (एडवर्ड 2000)। अनेक विद्वान, बहरहाल, सभ्य समाज को राज्य एवं बाज़ार से ऊपर देखते हैं, क्योंकि राज्य और बाज़ार कुछ तो योगदान देते हैं परन्तु सर्वस्व नहीं (बेटे 2000)।

वस्तुतः सभ्य समाज को एक प्राधार (संगठन, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थान एवं संबंधः संबंधी) के साथ-साथ एक प्रक्रिया (माध्यम जिनसे प्राधार के घटक अस्तित्व में आते हैं, और अन्तर्सबंध रखते हैं) के रूप में भी देखे जाने की आवश्यकता है (ब्लेनी और पाशा 1992)। भूमंडलीकरण संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम के प्रवर्तन एवं सामाजिक विकास रणनीति में प्रतिमान परिवर्तन के चलते राज्य ओर सभ्य समाज की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। उभरते परिदृश्य में इन दो बातों पर ज़ोर दिया गया है : (क) सभ्य समाज की बढ़ती भूमिका "ताकि सामूहिक भलाई कार्यों में नागरिकों एवं समुदायों को शामिल कर राज्य का बोझ अपने कंधों पर ले लें"(विश्व बैंक 1997 : 3) ; और (ख) समाज में हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तीकरण प्रक्रिया के सुनिश्चित करने के लिए "सभ्य समाज एवं स्थानीय समुदायों की क्षमताओं एवं अवसरों को बढ़ाना (यू एन 1995)।" तथापि, समसामाजिक विकास परिचर्चा में, विकास पहलों के प्रतिपादन एवं क्रियान्वयन में राज्य के साथ-साथ सभ्य समाज संगठनों के सम्मिलन की भी प्रक्रिया शामिल रही है। एक ओर प्रजाजन और दूसरी ओर राज्य के साथ सभ्य समाज का क्या संबंध रहा है? इस विषय पर हम इस इकाई के आगामी उपखंडों में चर्चा करेंगे। चलिए, सभ्य समाज़ और सामाजिक आन्दोलनों के परस्पर संबंध से आरंभ करते हैं।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

सोचिए और कीजिए 30.1

सभ्य समाज से आप क्या अर्थ लगाते हैं? क्या किसी सभ्य समाज का राज्य के अस्तित्व से स्वतंत्र के रूप में वर्णन किया जा सकता है?

30.3 सभ्य समाजः सामाजिक आन्दोलनों के रूप में

एम एस ओ-004 के अन्तिम खण्ड में हम सामाजिक आन्दोलनों एवं उनके रूपान्तरण संबंधी विभिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा करेंगे। इस खंड में,चलिए बड़े संक्षिप्त में जानते हैं कि सामाजिक आन्दोलनों से हमारा क्या अभिप्राय है और सामाजिक आन्दोलनों एवं सभ्य समाज, पहलकारियों अथवा सक्रियताओं, के बीच क्या संबंध है? परम्परागत रूप से, सामाजिक आन्दोलनों को मोटे तौर पर समाज में विचार, मान्यताओं, मूल्यों प्रवृतियों, संबंधों एवं प्रमुख संस्थाओं में परिवर्तन लाने, अथवा समाज के उपर्युक्त प्राधारीय घटकों में से किसी

में भी परिवर्तनों को रोकने में संगठित प्रयासों के रूप में लिया गया है (एच. ब्लूमर 1976; एच. टॉक 1956; हैबरली 1972; जे. आर. गस्फील्ड 1972; जे विल्सन 1972)। सामाजिन आन्दोलनों को कुछ निश्चित उद्देश्यों, सामूहिक संघटन हेतु कार्यप्रणाली विशिष्ट विचारधारा, पहचान प्राप्त नेतृत्व एवं संगठन पर आधारित अभीष्ट एवं संगठित सामूहिक कार्यवाहियों के रूप में देखा जाता है। तथापि, साठ के दशक से ही, विशेषरूप से सामूहिक विरोध प्रदर्शन, प्रतिरोध एवं लाभबंदी के नए रूपों के बृहद फैलाव के चलते, जैसे अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में छात्रों के पर्यावरणीय अश्वेत नागरिक अधिकार संबंधी, महिलाओं के आन्दोलन, आदि सामाजिक आन्दोलनों में नए घटकों की पहचान हेतु प्रयास किए गए हैं। यह व्यापक रूप से माना गया है कि सामाजिक आन्दोलन एक सामूहिक पहचान का भाव एवं नए विचार उत्पन्न करने में मदद करते हैं जो यथार्थ को स्वयं ही मान्यता प्रदान कर देते हैं। साथ ही सामूहिक अस्तित्व के तरीकों को पुनर्परिभाषित भी कर देते हैं। मलकी (1996) ने सामूहिक पहचान पर ज़ोर दिया है। उनके अनुसार सामाजिक आन्दोलन नई सामाजिक पहचान वाले संबंधों के इर्द गिर्द ही जन्म लेते हैं जिनको स्वैच्छिक रूप से माना जाता है कि इस पहचान के बचाव में सदस्यों को "शक्ति प्रदान" करते हैं (मलूवी 1996)। आयरमैन और जैमिसन (1991) लिखते हैं :

> चेतना को व्यक्त कर सामाजिक आन्दोलन नए विचारों को जन्म देने, एक अभिकर्त्ताओं को सक्रिय करने, नए मतों को जन्म देने आदि के लिए सार्वजनिक स्थान प्राप्त करते हैं। तदनुसार, नई जानकारी को पैदा कर, अपनी निजी ज्ञानपरक पहचान पर विचार व्यक्त कर, अपने मंतव्य को प्रकटकर और सामाजिक व्यवस्था के प्रबल धारणाओं को चुनौती पेश कर, सामाजिक आन्दोल न नए विचारों को जन्म देते हैं जो कि मानव रचनात्मक प्रक्रिया के प्रति आधारभूत होते हैं। इस प्रकार, सामाजिक आन्दोलन उन विश्वदृष्टिकोणों को जन्म देते हैं जो अवधारणा को पुनर्गठित करते हैं और वे स्वयं यथार्थ को पहचान लेते हैं। सामाजिक आन्दोलनों की अवधारणा प्रथा नई सामाजिक छवियों तथा सामाजिक पहचानों के कार्यान्तरण का एक महत्वपूर्ण स्रोत होती है (आयरमैन एवं जैमिसन 1991 : 161.66)।

MAADHYAM IAS

सामाजिक आन्दोलन विभिन्न समूहों की एक सामूहिक पहचान पर आधारित रहकर गठित किए जाते हैं, नामतः महिला वर्ग, पर्यावरणविद्, छात्रवर्ग कृषक वर्ग, श्रमिक वर्ग आदि जिनको सामान्य पहचान एवं हितों के आधार पवर संगठित किया जाता है। ऐलन स्कॉट (1990) के अनुसार, सामाजिक आन्दोलन में अभिकर्त्ता की सामूहिक पहचान उसकी सामाजिक स्थिति संबंधी समझ से जुड़ी होती है। वह आगे कहते हैं"सामाजिक आन्दोलन उन व्यक्तियों द्वारा संगठित सामूहिक अभिकर्त्ता होता है जो समझते हैं कि वे एक सर्वसामान्य हित रखते हैं, ओर अपने सामाजिक अस्तित्व, एक सर्वस्वमान्य पहचान की कम से कम कुछ महत्वपूर्ण भूमिका भी " (ऐलन स्कॉट 1990 : 6)।

तथापि, सामाजिक आन्दोलनों में भागीदारी हमेशा ही किसी पहचान की तलाश में नहीं हो सकती; अपितु वह राजनीतिक एवं भौतिक हितों की परिपुष्टि के लिए भी हो सकती है। टिली (1978), मैकऐडम (1982), टैरो (1994) व कई अन्य विद्वानों का मत है कि सामाजिक आन्दोलन संभावित राजनीतिक अवसरों में वृद्धि और चुनौती देते समूहों के क्रियाकलापों के प्रति राज्य की बढ़ती ग्राह्यता के प्रत्युत्तर में प्रकट होते हैं। आमतौर पर ये विद्वान सामाजिक आन्दोलनों के कार्यान्वयन संचालन में शामिल विभिन्न संसाधनों पर ज़ोर देते हैं। यह दृष्टिकोण, जिसे संसाधन संघटन कहते हैं, यह मानकर चलता है कि सामूहिक कार्यवाइयां विशिष्ट अवसर प्राधारों से संबंद्ध होते हैं। यहां महत्व मानवीय कार्यवाई की तर्कसंगति को दिया जाता है, जिससे सामाजिक आन्दोलन में सहभागी जन सामूहिक लाभबंदी में अपनी सहभागितापूर्ण कार्यवाही की लागत एवं लाभों की गणना करते हैं। इस दृष्टिकोण में सामाजिक आन्दोलनों को या तो सामाजिक संसाधनों के इच्छानुकूल अथवा संघटन में कुशल उद्यमियों के सृजन या फिर सामाजिक तनावों एवं विवादों को दूर किए जाने के रूप में देखा

जाता है। इस प्रकार, अभिकर्त्ताओं के प्रयोजन को युक्तिपरक आर्थिक कार्यवाही के रूप में देखा जाता है। संसाधन संघटन सिद्धांत, वस्तुतः उन सामाजिक आन्दोलनों की श्रृंखला के रूप में व्याख्या किए जाने पर अभिलक्षित होता है जो प्रबन्धन का भाषा में अमेरिकी सामाजिक यथार्थ के दृश्य भाग हैं। यह अवरोधन के नीति प्रश्न से जुड़ा होता है (टिली 1978 : 47)।

सभ्य समाज और सामाजिक आन्दोलनः पारस्परिक क्रिया बिन्दु

भूमंडलीकरण के संदर्भ में अथवा अन्यथा सभ्य समाजों की सार्वभौमिकता के दावे किए जाते रहे हैं। एक तर्क इस बात को लेकर किया जाता है कि सभ्य समाजों के विकास एवं कार्यसंचालन पर विशिष्ट आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दशाएं प्रभाव डालती हैं, अतः वह सार्वभौमिक नहीं हो सकती है। दूसरी ओर यह तर्क दिया जाता है कि चूंकि आधुनिकीकरण सर्वधर्म समभाव, लोकतंत्रीकरण, भूमंडलीकरण इत्यादि जैसे अनेक सार्वभौमिक प्रक्रियाएं विद्यमान है, सभ्य समाज की सार्वभौमिकता का दावा एक यथार्थ के रूप में उभरा है। विश्वव्यापी सामाजिक आन्दोलनों, यथा मानवाधिकार, प्राणी अधिकार, पारितंत्रीय एवं पर्यावरणीय, आदि के उद्भव के दृष्टिकोण से विश्वव्यापी सभ्य समाज एक सच्चाई रही है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आई सी टी) के आश्चर्यजनक प्रसार ने एक सामाजिक आन्दोलन बतौर सभ्य समाजों के भूमंडलीय उद्भव एवं ताने बाने को सरल बना दिया है। इस संदर्भ में, चलिए सभ्य समाज और सामाजिक आन्दोलनों के बीच परस्पर क्रिया का विश्लेषण करते हैं। सामाजिक आन्दोलनों और सभ्य समाज की पहल के बीच महत्वपूर्ण समानान्तरताएं हैं। बल्कि कभी-कभी यह भी उल्लेख किया जाता है कि सभ्य समाज की पहलशक्ति एक प्रकार का सामाजिक आन्दोलन ही है। यहां इस (इन) रूपान्तर(रों) को पहचाने का प्रयास करने से पूर्व हमें उपर्युक्त समानान्तर बिन्दुओं को भी जानना चाहिए।

- सामाजिक आन्दोलनों एवं सभ्य समाजों, दोनों के प्राधार होते हैं, जैसे संगठन, एक सुपरिचित नेतृत्व एवं विचारधारा।
- सभ्य समाज उपक्रमण और सामाजिक आन्दोलन सामाजिक प्रक्रियाएं हैं जो लामबंदी से लेकर गहन सामूहिक कार्यवाई तक अग्रगमन की अनेक अवस्थाओं से गुज़रते हैं।
- प्राधार और प्रक्रियाएं दोनों ही समर्थन आधार अथवा अनुयायी दल रखते हैं जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति करवाने के लिए विविध साधनों के माध्यम से संघटित होते हैं।
- सामान्यतः सामाजिक आन्दोलन व सभ्य समाज, दोनों ही समाज की स्थापित व्यवस्था में परिवर्तनार्थ वचनबद्ध होते हैं। तथापि, अनेक सभ्य समाज अथवा सामाजिक आन्दोलन समाज में परिवर्तन का प्रतिरोध करने के लिए भी काफी काम करते हैं। उदाहरण के लिए, अनेक धार्मिक संगठन समाज में रूढ़िवादी स्थिति हेतु वचनबद्ध होते हैं।
- सभ्य समाज और सामाजिक आन्दोलन दोनों ही समाज में एक नागरिक कला स्थान रखते हैं।
- नई सामूहिक पहचान बनाना सामाजिक आन्दोलनों और सभ्य समाजों दोनों का एक अनिवार्य हिस्सा है। सामूहिक पहचानें या तो कुछ निश्चित मुद्दों पर आधारित होती हैं या फिर वैज्ञानिक विकल्पों पर हालांकि लगातार चलने वाली लामबंदी के द्वारा पहचान बदलती रहती है।
- यद्यपि नैतिक प्राधिकार और आदर्शवाद काफी कुछ सभ्य समाज सक्रियता और सामाजिक आन्दोलनों से जुड़े होते हैं, कभी-कभी ये दोनों प्रक्रियाएं विशिष्ट हितों को अधिकतम सीमा तक बढ़ाये जाने हेतु उद्यमशील लोगों द्वारा शुरू की जाती हैं। यहां दोनों ही प्रक्रियाएं राज्य द्वारा नुक्ताचीनी किए जाने के अधीन होती हैं।

MAADHYAM IAS

तथापि, इस समानान्तरों के बावजूद, सामाजिक आन्दोलन काफी विस्तृत श्रेणियां या अभिकरण हैं। कभी-कभी सामाजिक आन्दोलन समाज के पूर्व विद्यमान सत्ता प्राधार की कड़ी आलोचना कर एक आमूलचूल परिवर्तन का प्रयास करते हैं, जैसे नक्सलवादी आन्दोलन। सभ्य समाज, दूसरी ओर, वर्तमान व्यवस्था में कर्मिक परिवर्तन का इंतज़ार करती है। यद्यपि सभ्य समाज के उपक्रमण (initiatives) अराजनैतिक हुआ करती हैं, प्रायः वे विकास-गतिविधियों के माध्यम से राजनीतिक प्रश्नों एवं राजनीतिक समाधानों को रखती है। वस्तुतः सशक्तीकरण के साथ विकास संबंधी समकालीन विकास संलाप में, सभ्य समाज संभाग जन साधारण के स्तर पर राजनीतिक मुद्दों में बहुत अधिक संलिप्त हैं।

सोचिए और कीजिए 30.2

सामाजिक आन्दोलनों के विशेषतासूचक लक्षणों का विश्लेषण करें। सामाजिक आन्दोलनों और सभ्य समाजों के बीच क्या संबंध है?

30.4 ग़ैर-सरकारी संगठनः सभ्य समाज अभिकर्त्ताओं के रूप में

इस इकाई के प्रथम उपखंड में यह बतलाया गया कि सभ्य समाज की अनेक अभिव्यक्तियां दिखाई पड़ती हैं। जहां तक कि विकास गतिविधियों का प्रश्न है, गैर-सरकारी संगठन (एन जी ओ) जनसाधारण के स्तर पर महत्वपूर्ण सभ्य समाज अभिकर्त्ताओं के रूप में उभरे हैं। चलिए, इसके कुछ अभिलक्षणों का विश्लेषण करते हैं।

ग़ैर-सरकारी संगठन अथवा निजी स्वैच्छिक संगठन मूलतः लाभ निरपेक्ष निकाय होते हैं जिनका मूल उद्देश्य मानव-पीड़ाओं में ह्रास और गरीबों व उपान्तिक समूहों के विकास में योगदान देना होता है। वे राष्ट्रीय एवं वैश्विक, दोनों प्रकार की सभ्य समाजों का अभिन्न हिस्सा होते हैं क्योंकि उनमें स्थानीय समुदाय, सहकारियां चर्च समूह, श्रमिक संघ, पर्यावरण समूह व उपभोक्ता संघ, महिला समूह, कृषक संघ आदि के साथ-साथ एम्नेस्टी इण्टरनेशनल, ऑक्सफैम, फ्रैण्डस ऑफ दि अर्थ, आदि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी होते हैं। ये संगठन अपनी राहत, शिक्षा, समर्थन याचना मानवाधिकार, स्वास्थ्य रोज़गार जनन एवं गरीबी हटाओं आदि गतिविधियों के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। ये बढ़ते मोहभंग विशेष रूप से सरकार के साथ गरीबों के – के कारण विश्व के विकासशील भागों में बहुत तेजी से बढ़ रहे हैं। बाज़ार भी आबादी के इन असुरक्षित वर्गों के हितों को साधने में असफल रहा है। परिणामस्वरूप गैर सरकारी संगठनों पर उम्मीदें टिकी हैं जिन्हें "तृतीय क्षेत्र" की संज्ञा भी दी जाती हैं।

गैर-सरकारी संगठनों को लाभ निरपेक्ष और गैर-सरकारी संगठन माना जाता है। एन्हीयर ओर सैलमन (1999) ने गैर-सरकारी संगठनों के कुछ सर्वमान्य अभिलक्षणों पर प्रकाश डाला हैं। उनके अनुसार गैर-सरकारी संगठनों का निम्नलिखित रूपों में उल्लेख किया जा सकता है :

- संगठन, यथा उनका एक संस्थात्मक अस्तित्व और प्राधार होता है;
- निजी, यथा वे संस्थागत रूप से राज्य से पृथक होते हैं ;
- गैर लाभ वितरणकारी, यथा वे अपने प्रबंधकों अथवा किसी स्वामी समूह हेतु लाभ प्रत्यागमन नहीं करते हैं;
- स्वशासी, यथा वे आधारभूत रूप से अपने ही कार्य नियंत्रण में रहते हैं ; और
- स्वैच्छिक, यथा उनमें सदस्यता कानूनन अपेक्षित नहीं होती और वे उन्हें समय एवं धन के कुछ स्वैच्छिक योगदान का ही प्रलोभन होता है।

यह बात महत्वपूर्ण है कि निजी अर्थात असार्वजनिक तत्व को एक वस्तु ही सीमित अर्थ में समझा जाना है । इसका मतलब यह है कि गैर-सरकारी संगठन न तो सरकारी तंत्र एवं लोक प्रशासन का हिस्सा हैं और न ही उन पर राजकर्मियों का शासन है। (एन्औयर एवं सैलमन तुल्य सिम्पी एवं स्मिथ 2003)। न ही वे ऐसे निज उद्यम हैं जो लाभ कमाते हैं। वस्तुतः उनका उद्देश्य लाखों को निःस्वार्थ सेवा प्रदान करना होता है, खासकर कार्य के उन क्षेत्रों में जहां राज्य स्थानीय आवश्यकतानुसार सेवा प्रदान करने में न तो सक्षम रहा होता है, न ही प्रभावी और पीछे कदम भी खींच चुका होता है। कभी-कभी राज्य ने गैर-सरकारी संगठनों के साथ सहयोगकारी व्यवस्था भी बनाई है ताकि लोगों को, खासकर समाज के उपान्तिक वर्ग को अत्यावश्यक सेवा भी प्रदान की जा सके।

पॉल स्ट्रीटन (1998), विकासशील समाजों में गैर-सरकारी संगठनों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने के बाद, बताते हैं कि इन संगठनों के जनसाधारण के स्तर पर विकास को बढ़ावा देने में निश्चित लाभ हैं। यह अधिकांशतः इस तथ्य के कारण है कि :

- ग़ैर-सरकारी संगठन गरीब और दूरवर्ती समुदायों तक पहुंचने और उन्हें संघटित करने के लिए उत्तम हैं।
- ग़ैर-सरकारी संगठन अपने दृष्टिकोण में सहभागितापूर्ण हैं और जनसाधारण के स्तर पर परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु एक जमीनी स्तर पर काम करते हैं।
- वे सरकारी एजेन्सियों के मुकाबले अधिक नव्य, सुनम्य एवं प्रयोगमूलक होते हैं।
- ग़ैर-सरकारी संगठनों की परियोजनाएं लागत-सार्थक एवं फलोत्पादक होती है।
- ग़ैर-सरकारी संगठन सतत् विकास को बढ़ावा देते हैं।
- वे सभ्य समाजों के संगठनात्मक प्रतिनिधिक निकाय होते है।।

तथापि, ग़ैर-सरकारी संगठनों की आदर्श छवि एवं जनसाधारण के स्तर पर कार्यरत रहकर उनके तरीकों के बीच व्यापक अन्तर रहा है। वस्तुतः गैर-सरकारी संगठनों की आदर्श विशिष्ट छवि पर से अनेक अन्वेषकों द्वारा व्यापक रूप से रहस्य का परदा हटा दिया गया है। यह बतलाया गया है कि बेशक ग़ैर-सरकारी संगठन गरीबों के नाम पर काम करते हैं, सही मायनों में वे सत्ता अभिजात्यों के शासन को मज़बूती प्रदान करते हैं, ऊंची प्रशासन लागत उठाते हैं, विकास हेतु एक स्वेच्छाचारी, अद्योमुखी और गैर भागीदारीपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हैं। पुनः गैर-सरकारी संगठन वित्तीय रूप से स्वतंत्र नहीं हैं। चूंकि अधिकांश गैर सरकारी संगठन किसी करिश्माई नेता की छत्रछाया में पलते हैं अथवा समर्पित कार्यकर्त्ताओं का निकाय होता है, अनेकों योजनाएं ऐसे नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के गायब होते ही धूल चाटने लगती है। यह भी बतलाया गया है कि गैर-सरकारी संगठनों के कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं होते वे सातत्य एवं गैर पुनरावृत्य संबंधी समस्याओं से ग्रसित रहते हैं और चूंकि वे छोटे होते हैं इसलिए विकासशील देशों में केवल कुछ ही लोगों तक पहुंच पाते हैं। वे भीषण गरीबी में रहने वाले अनुमानित 1.3 अरब के 80 प्रतिशत लोगों तक पहुंचने में विफल रहे हैं। यहां तक कि एक आदर्श गैर-सरकारी संगठन के रूप में प्रायः उल्लिखित, सुप्रचारित बंगलादेश ग्रामीण बैंक भी राष्ट्रीय ऋण के मात्र 0.15 प्रतिशत का विवरण देता है और बंगलादेश में सभी गैर-सरकारी संगठन मिलकर कुल ऋण का मात्र 0.6 प्रतिशत ही प्रदान करते हैं (स्ट्रीटन 1998 : 112-113)।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि गैर-सरकारी संगठनों को एक प्रसंग विशेष में काम करना होता है और विभिन्न शक्तियों से दो चार होना पड़ता है। वे धन संसाधन के लिए अधिकांश रूप में सरकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों पर ही निर्भर करते हैं। वे स्थानीय स्तर के राजनेताओं से भी वास्ता रखते हैं। कभी कभी उनकी योजनाएं एवं कार्यक्रम इन राजनेताओं

के प्रभावाधीन ही गढ़े, बदले और अमल में लाए जाते हैं। गैर-सरकारी संगठनों की गतिविधियां हाशिए पर खड़े लोगों की स्थानीकृत संस्कृति एवं मूल्यों द्वारा भी अनुकूलित होती हैं जिसके बीच वे काम कर रहे होते हैं। इस इकाई के आगामी उपखंड में हम गैर-सरकारी संगठनों के हाशिए पर खड़े लोगों की बजाय सरकार के साथ संबंध पर चर्चा करेंगे।

सोचिए और कीजिए 30.3

गैर-सरकारी संगठनों के प्रमुख अभिलक्षणों एवं पददालितों के पक्ष को प्रस्तुत करने में उनके लाभों एवं हानियों पर चर्चा करें।

30.5 ग़ैर-सरकारी संगठनों एवं सरकार के बीच संबंध

ग़ैर-सरकारी संगठनों और सरकार के बीच संबंध हाल के वर्षों में निस्संदेह बहुत पेचीदा रहा था। जबकि एक ओर सरकार द्वारा ग़ैर-सरकारी संगठनों की सक्रियता हेतु अधिकाधिक मान्यता एवं प्रोत्साहन देखने में आया है, अपने कठोर अधिकारीतंत्रीय एवं परम्परागत दृष्टिकोण के लिए ग़ैर-सरकारी संगठनों द्वारा सरकारी अभिकरणों की कड़ी आलोचनाएं भी देखने में आयी हैं। सरकार गैर-सरकारी संगठनों को अपने देश, और देश के कानून के प्रति उत्तरदायी बनाने का भी प्रयास कर रही है ताकि वित्तीय लेन देनों, आदि में पारदर्शिता सुनिश्चित हो सके। गैर सरकारी संगठन भी सरकारी अफ़सरान को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाने का प्रयास कर रहे हैं ताकि जनसाधारण के स्तर पर राज्यीय घटकों की निष्पक्ष कार्यशीलता सुनिश्चित हो सके। तथापि, परस्पर विरोधी स्थिति के बावजूद सरकार एवं ग़ैर-सरकारी संगठनों के बीच सहयोग के तमाम क्षेत्र हैं ।

ग़ैर-सरकारी संगठन अधिकतर कानूनसंगत मुद्दों पर और एक छोटे स्तर पर काम कर रहे हैं। क्षेत्रीय विकास, मरूस्थलीय विकास, जनजातीय विकास, महिला विकास, आदि विषयक राज्यीय नीतियों, जिन्हें स्थानीय स्तर पर बताये जाने की ज़रूरत है, को स्थानीय निवेशों और संसाधनों के एक विशाल प्राधार की आवश्यकता है। स्थानीकृत ग़ैर-सरकारी संगठनों का अनुभव और विशेषज्ञता इन नीतियों के सफल निष्पादन हेतु एक वृहद मार्ग प्रशस्त करने में सहायतार्थ प्रस्तुत होते हैं। पुनः ग़ैर-सरकारी संगठन भी सरकारी एजेन्सियों से विशेषज्ञ सहयोग प्राप्तकर इन मुद्दों पर नव प्रवर्तनकारी योजनाओं का सूत्रपात करते हैं (स्ट्रीटन 1998)। एक अनुमान के अनुसार, भारत में 30,000 से भी अधिक ग़ैर-सरकारी संगठन हैं। भारत सरकार ग़ैर-सरकारी संगठनों की सक्रियता के प्रति शुरू-शुरू में यदि शत्रुता पूर्ण नहीं तो उदासीन अवश्य रहती है। यह स्थिति आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-1997) से बदल चुकी है, और अब सरकार विकास के क्षेत्र में ग़ैर-सरकारी संगठनों की भागीदारी को खुलकर बढ़ावा देती है (बावस्कर 2004)।

तथापि, सरकार के साथ ग़ैर सरकारी संगठनों का संबंध अपने स्वरूप में व्यापक रूप से दुविधापूर्ण रहा है। यद्यपि उनमें से अनेक सरकारी योजनाओं एवं कार्य[मों की अनुपूर्ति करते हैं, वे साथ ही सरकारी नीतियों की आलोचना भी करते हैं। पुनः जबकि एक ओर उन्हें सरकार के प्रतिवाद के शब्दों में परिभाषित किया गया है, दूसरी ओर वे वित्तीय संसाधन हेतु सरकार पर ही व्यापकतः निर्भर रहे हैं। ग़ैर-सरकारी संगठनों की नीतियां भी कभी-कभी सरकारी नीतियों द्वारा ही दिशा निर्देशित और रचित होती है।

हाल के दशकों में गैर-सरकारी संगठनों के सक्रियतावाद संबंधी अन्तर्राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया देखने में आयी है। स्थानीय एवं राष्ट्रीय मुद्दों पर काम करने वाले गैर सरकारी संगठनों पर अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों का ध्यान जाने लगा है और उनकी पहचान बनने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, अनेक ग़ैर-सरकारी संगठनों ने भी विभिन्न सामाजिक बुराइयों जैसे मादक पदार्थ व्यसन, गरीबी, निरक्षरता, एचआईवी/एडस, बाल शोषण, नारी अधिकार, पर्यावरण रक्षा,

MAADHYAM IAS

निःशस्त्रीकरण, मानवाधिकार हनन, आदि के विरुद्ध पारदेशीय अभियान में भाग लेना शुरू कर दिया है। ग़ैर-सरकारी संगठन लोगों को अनेक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर सरकारी नीतियों को प्रभावित करने में भी शिक्षित करते है। इन सभी पहलों को अंजाम देने की प्रक्रिया में ग़ैर-सरकारी संगठन वैश्विक ताने बाने का हिस्सा रहे हैं।

गत वर्षों में वृहत्तर मुद्दों को लेकर विश्व स्तर पर पर्याप्त काम करते हुए ग़ैर सरकारी संगठन के कार्य संपादन में आश्चर्यजनक वृद्धि देखने में आयी है। इस प्रकार की वृद्धि हेतु एक कारण सरकार में संकटकाल की स्थिति रही है जो कि व्यापक सरकारी घाटों वित्तीय संकट एवं आर्थिक पुनर्गठन की वजह से पैदा हुई थी। चूंकि सरकारी कार्यप्रणाली सहकारी बाज़ार प्रतिमान के अनुरूप पुनर्गठित होने जा रही है, और वह सामाजिक क्षेत्र से भी क़दम वापस खींच रही है, ग़ैर-सरकारी संगठन ही महत्वपूर्ण पगधारियों तथा हाशिए पर खड़े लोगों हेतु सेवा प्रदायकों के रूप में उभर रहे हैं।

विकासशील देशों में अनेक ग़ैर-सरकारी संगठन विदेशी एजेन्सियों से वित्तीय मदद लेकर कार्य करते हैं। इन ग़ैर-सरकारी संगठनों द्वारा देश के कानून की उपेक्षा किये जाने की प्रवृत्ति भी देखी गई है। यहां न केवल शिक्षाविदों और नीति निर्माताओं द्वारा अपितु आम आदमी द्वारा भी उनकी जवाबदेही और खर्च करने के तरीके पर गंभीर प्रश्न उठाये जाते हैं।

30.6 उपान्तिकरण और उपेक्षित लोग

भारत जैसे विकासशील देशों में ग़ैर-सरकारी संगठनों जैसी जन समितियां हाशिए पर खड़े लोगों के सामाजिक विकास हेतु एक निर्णायक भूमिका निभाती हैं। पुनः, ये जन समूह भी ग़ैर सरकारी संगठनों से उम्मीदो का एक भाव विकसित कर चुके हैं क्योंकि सरकार प्रायोजित विकास पहलकारियों समाज में उनकी पदस्थिति को ऊंचा उठाने में बुरी तरह से विफल रही हैं। जैसा कि एक विगत उपखंड में चर्चा की गई, समकालीन विकास चर्चा में उपेक्षित लोगों के सशक्तीकरण की संकल्पना ने अपनी ओर विशेष ध्यान आकृष्ट किया है और सभ्य समाज उपक्रमण पर ज़ोर दिया गया है। चूंकि सभ्य समाज की भूमिका ने हाशिए पर खड़े लोगों के सामाजिक विकास एवं सशक्तीकरण हेतु विशेष महत्व अर्जित कर लिया है, और उसने उनके साथ एक स्थायी संबंध बना लिया है, चलिए पहले इस बात पर चर्चा करते हैं कि हाशिए पर खड़े लोग कौन हैं और समाज में उनकी उपेक्षा में विकास प्रक्रियाओं ने किस प्रकार योगदान दिया है।

परम्परागत भाषा में उपेक्षित समाज के निम्न अथवा हाशिए पर के विशिष्ट जन समूहों को हीनावस्था में डाल देने की एक जटिल प्रक्रिया है। यह इन जन समूहों को प्रभावकारी ढंग से समाज के हाशिए पर धकेल देती है, जो कि बहिष्करण और सम्मिलन के मानदंडों को अपनाते हुए आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से किया जाता है। समाजशास्त्रीय रूप से उपेक्षित के अनेक महत्वपूर्ण आयाम हैं और हमें इसे वृहत्तर संदर्भ में समझना होता है।

इन्कारों और वंचनाओं के आयाम

उपेक्षित की प्रक्रिया उत्पादनकारी संसाधनों तक समान पहुंच, अपने उत्पादनकारी मानवीय प्रयोज्य संसाधन की उपलब्धि हेतु मार्गों, तथा अपनी सम्पूर्ण क्षमता सदुपयोग के अवसरों को प्रदान से समाज के एक बड़े हिस्से को आर्थिक रूप से इन्कार कर देती है। ये इन्कार अन्ततोगत्वा इन जन समूहों को व्यापक गरीबी मानवीय दुर्दशा, उनके काम के अवमूल्यन, कम वेतन एवं वेतन विभेद, कार्यबल में नैमित्तीकरण, तथा आजीविका असुरक्षा के कगार पर ला पटकते हैं। इस प्रकार उन्हें ऊर्ध्वमुखी व्यावसायिक एवं सामाजिक गतिशीलता हेतु बहुत

ही सीमित स्थान मिलता है, और आर्थिक अवसरों एवं विकल्पों की श्रृंखला से निर्वासित कर दिया जाता है। राजनीतिक रूप से निर्वासन की यह प्रक्रिया इन लोगों को यथानियम सत्ता प्राधार हेतु समान पहुंच एवं निर्णयन, प्रक्रियाओं में भागीदारी देने से इन्कार कर देती है, जो फिर उन्हें समाज के आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से प्रबल समूहों के अधीन और निर्भर हो जाने की ओर प्रवृत्त करती है। राजनीतिक रूप से वे अभागे या तंगहाल व्यक्तियों, अ. /अल्प-प्रतिनिधित्व प्राप्त और अशक्त हो जाने के रूप में उभर कर आते हैं। इस निर्वासन की सतत प्रक्रिया में, वे "आंशिक संस्कृति वाला आंशिक समाज", "भीतर के लिए बाहरी", "पृथक्त और विघटित" होकर समाज की मुख्यधारा से सांस्कृतिक रूप से निर्वासित होकर उभरते हैं। वे अन्ततोगत्वा एक कलंकित सांस्कृतिक अस्तित्व ग्रहण कर लेते हैं, जिसे निम्न सामाजिक पदस्थिति का माना जाता है, और सांस्कृतिक पृथक्करण के शिकार हो जाते हैं। आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक वंचन के परिणामस्वरूप, देश की आबादी का एक विशाल हिस्सा सामाजिक रूप से अज्ञानी, निरक्षर, अशिक्षित और पराधीन के रूप में उभरा है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से विहीन ये लोग एक अमानवीय अस्तित्व के साथ समाज के हाशियों पर रहने के लिए निर्वासित हैं।

पदानुक्रम का कृत्रिम प्राधार

वस्तुतः उपेक्षा एक मानव निर्मित और सामाजिक रूप से बनाई गई प्रक्रिया है जो कि पराधीनता और प्रभुत्व स्थापन के एक असमान संबंध के आधार पर क्रमपरिवर्तित और निरन्तर प्रस्तुत की जाती रहती है। इस प्रसंग में, पुरुषों व स्त्रियों के बीच प्राकृतिक विभेदन, भाषाई अथवा नृजातीय समूहों, इत्यादि तक को प्रभुत्व स्थापन एवं अधीनीकरण के पथप्रदर्शक सिद्धांत के साथ एक पदानुक्रम की व्यवस्था में रखा जाता है। पदानुक्रम तैयार करने की इस प्रक्रिया ने सामाजिक समूहों को समाज, राज्य व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा निर्धारित करते सामाजिक एवं आर्थिक नियंत्रण में एक इनेगिने शक्तिसम्पन्नों के साथ, लोगों के बेतुके क्रम में व्यवस्थित किया है। दूसरी ओर, इसी व्यवस्था के भीतर विशाल जनाधिक्य शक्तिहीन रहा है, जो कि सामाजिक आर्थिक पदानुक्रम के तल में स्थान प्राप्त हैं और सामाजिक व्यवस्था की परिधि पर जीवन यापन कर रहे हैं।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

वैधता और संख्या वृद्धि के आधार

उपेक्षितों की प्रक्रिया ऐतिहासिक रूप से भी एक सामाजिक सांस्कृतिक प्रसंग में निहित रही है। महत्वपूर्ण रूप से, उपान्तीकरण की प्रक्रिया को वैधता प्रदान करने के लिए जाति, नृजाति, प्रजाति, लिंग, पितृतंत्र, धर्म इत्यादि संबंधी संस्थागत एवं नियामक व्यवस्थाओं की आदिकालीन व्याख्या से निकल कर आये संस्थागत, नियामक एवं वैचारिक आधार देखने में आते हैं। पुनः, समाजीकरण, शिक्षा, राजनीतिकरण, संस्कृतिकरण आदि की वर्तमान प्रक्रियाएं समाज में उनकी संख्या वृद्धि में योगदान देती है। इस प्रकार, एक कालावधि पश्चात् ये सामाजिक रूप से जन्में उपेक्षित वर्ग अनुभवजन्य वर्गों के रूप में नज़र आने लगते हैं, नामतः निम्न जातियां, जनजातीय महिलाएं अश्वेत इत्यादि।

विकास रणनीति और उपेक्षित

विकास रणनीतियां, जो समाज के पूर्व विद्यमान प्राधारिक व्यवस्थाओं के भीतर क्रियान्वित की गई, उपेक्षित समूहों की वंचना को समाप्त करने में सक्षम नहीं रही हैं, बल्कि उन्होंने उपेक्षित के सामाजिक पुनरूत्पादन में बहुतायत से योगदान ही दिया है।

मानव विकास रिपोर्ट 1990 ने विकास के निष्ठुर, मूक, रोज़गाररहित, भविष्यरहित, आदि तथ्यों को उजागर किया। वस्तुतः हाशिए पर खड़े जन ही विकास की इन प्रक्रियाओं के

प्रमुख शिकार के रूप में उभरे हैं। प्रत्येक मानव समाज में हाशिए पर खड़े आबादी के असुरक्षित वर्ग मौजूद हैं जो अपने न्यूनतम भरण पोषण के लिए भी सामाजिक आर्थिक अवसरों एवं विकल्पों से वंचित हैं और पदानुक्रम के कृत्रिम प्राधार तथा सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक निर्वासन के शिकार हैं। भारत के प्रसंग में, उपान्तिक लोगों में आते हैं – ग्रामीण गरीब, शहर की गंदी बस्तियों में रहने वाले, असंगठित क्षेत्रों में दस्ती मजदूर अनुसूचित जातियां जनजातियां महिलाएं व ऐसे ही अन्य वर्ग।

ऐतिहासिक तथ्यों का एक विश्लेषण दर्शाता है कि सत्ता वितरण की पूर्व विद्यमान व्यवस्था अपने स्वरूप में क्रम परम्परा की इस प्रक्रिया ने समाज, राज्य व्यवस्था एवं अर्थव्यवस्था को मुख्यधारा को निर्धारित करते हुए सामाजिक एवं आर्थिक नियंत्रण वाले "चन्द" सत्ता संपन्न लोगों को लेकर सामाजिक समूहों को एक बेतुकी व्यवस्था में ढाल दिया है। दूसरी ओर, इसी व्यवस्था में, विशाल जनाधिक्य सामाजिक आर्थिक पदानुक्रम के तल में पड़े रहकर और इस सामाजिक व्यवस्था की परिधि अथवा हाशिए पर गुज़र बसर करता हुआ सत्ताविहीन ही रहा है। यहां एक शक्तिदायी विधान स्वरूप सत्ता ने सत्ताविहीनों को स्वयं अपने जीवन के मार्ग को तय करने के अवसर से वंचित कर दिया है।

चूंकि परम्परागत रूप से विकास पहलों को समाज की पूर्व विद्यमान संस्थागत व्यवस्थाओं के माध्यम से क्रियान्वित किया गया, हाशिए पर खड़े लोगों को उन विकास संक्रियाओं में बहुत ही कम अथवा बिल्कुल नहीं भागीदारी प्राप्त थी। पुनः ये पहलकारियां पूर्व विद्यमान सत्ता प्राधार के माध्यम से ही अंजाम तक पहुंचती थीं। इन व्यवस्थापरक श्रेणी-विभाजनों ने न सिर्फ अनेक माध्यमों से समाज में उनकी अधीनीकरण एवं वंचन प्रक्रिया को वैधता प्रदान की है, बल्कि इस असमानता की पुनरूत्पादन प्रक्रिया एवं उपेक्षित की सामाजिक व्याख्या में भी योगदान दिया है। इस प्रकार, उपेक्षित की प्रक्रिया उपेक्षित समूहों के ऊर्ध्वमुखी गतिशीलता हेतु क्रियान्वित सरकार प्रायोजित उपक्रमणों के बावजूद ऐतिहासिक रूप से अन्तः स्थापित ही रही है। इस पश्चगमन के विरोध स्वरूप विकास में हाशिए पर खड़े लोगों की भागीदारी हेतु गहन पुनर्विचार होते देखा गया है। चूंकि सरकार का कल्याण अथवा उद्धारीवादी दृष्टिकोण विकास प्रक्रिया में हाशिए पर खड़े लोगों को एकीकृत करने में विफल रहा है, लोगों के सशक्तीकरण हेतु रणनीति तैयार करने के उद्देश्य से एक विकल्प निकलकर आया है। आइए अगले उपखण्ड में स्पष्ट करते हैं कि सशक्तीकरण से क्या अभिप्राय है।

MAADHYAM IAS

30.7 सभ्य समाज और उपेक्षितों का सशक्तीकरण

सशक्तीकरण एक राजनीतिक प्रक्रिया है। सशक्तीकरण की परिकल्पना करने से पूर्व, इस प्रक्रिया के निम्नलिखित अन्तर्संबद्ध आयामों की समझ पैदा करना आवश्यक होगा।

सत्ता की वैधता संबंधी आयाम: सशक्तीकरण के अभिप्राय की केन्द्रिकता सत्ता की भागीदारी, वितरण एवं पुनर्वितरण की गतिशीलता में अवस्थित है जिसके पास एक वैधता का आधार होता है। मैक्स वेबर के समाजशास्त्रीय अर्थ में, सत्ता दूसरों पर नियंत्रण रखने हेतु व्यक्ति की क्षमता है; और इस प्रकार जब नियंत्रण की यह क्षमता वैधता प्राप्त हो जाती है तो वह प्राधिकार बन जाती है (जूलिएं 1968)। दरअसल सशक्तीकरण की तर्कसंगति में प्राधिकार की गत्यात्मकता शामिल है। जब हम प्राधिकार अथवा उस अर्थ में वैधताप्राप्त सत्ता की वितरण/पुनर्वितरण प्रक्रिया की बात करते हैं तो स्वाभाविक रूप से न केवल उस प्राधिकार हेतु वैधता के आधार पर, बल्कि उन सामाजिक श्रेणी-विभाजनों पर भी सवाल करते हैं जिनके माध्यम से सत्ता संबंध कार्यरूप में व्यवहृत होते हैं। इसी तर्क के आधार पर सत्ताहीनता को भी प्रदत्त सामाजिक व्यवस्था में वैधता प्रदान कर दी गई है। अतः सशक्तीकरण का अर्थ होगा – वैधता प्राप्त साधनों से सत्ता-वितरण की प्रक्रिया।

उपभोगाधिकार प्रकरण: सशक्तीकरण के संलग्नक के रूप में प्राधिकार (वैधताप्राप्त सत्ता) की बात करते हुए जेम्स हैरिक (1995) लिखते हैं कि प्राधिकार आमतौर पर निम्नलिखित प्रसंगों में प्रयोग किया जाता है : (क) नियामक, व्यक्ति की दूसरों के साथ संबंध में विधिवत् स्थिति एवं पदास्थिति पर आधारित; (ख) विशेषज्ञ जानकारी, जहां विशेषज्ञ के पास जन साधारण को सही निरूपित करने अथवा उन लोगों को जानकारी देने से इन्कार करने का अधिकार हो जिनका कल्याण उससे प्रभावित होता हो ; तथा (ग) संबंध क्षमता अथवा अन्तर्वैयक्तिक कौशल, जहां सत्ता लोगों के साथ काम करने हेतु क्षमताओं पर आधारित अन्नवैयक्तिक प्रभाव से प्राप्त होती है। मानव समाज में, तथापि, हर किसी के पास समान प्राधिकार नहीं है क्योंकि लोगों के पास उन संसाधनों तक असमान पहुंच है जो सत्ता निर्धारित करते हैं। वस्तुतः वे जिनके पास सत्ता है, वे लोग हैं जिनका भौतिक संसाधनों ज्ञान एवं विचारधारा पर नियंत्रण है। अतः स्वयं, विचारधारा, भौतिक एवं ज्ञान संसाधनों जो कि सत्ता निर्धारित करते हैं , पर नियंत्रण प्राप्त करने की प्रक्रिया को सशक्तीकरण कहा जा सकता है (बाटलीवाला 1993) । इस प्रकार संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करने की प्रक्रिया को युक्तियुक्त वंचना, पदानुमान प्राधार तथा विधिकरण एवं पुनरूत्पादन प्रक्रिया के प्रदत्त प्रसंग में ही देखना होगा। वस्तुतः सशक्तीकरण की प्रक्रिया उन संसाधनों तक समान पहुँच हेतु एक वैकल्पिक संदर्भ प्रस्तुत करने का प्रयास करती है जो सत्ता निर्धारण करते हैं।

सत्ता संबंधों की गत्यात्मकता: सशक्तीकरण कार्य में सत्ता के अर्थ को सत्ता संबंधों के लिहाज से देखे जाने की आवश्यकता होती है। प्रथम, एक प्रदत्त प्रसंग में सत्ता प्रयोग की क्षमता होनी चाहिए क्योंकि सत्ता सम्पन्न होना सत्ता प्रयोग करने के सदृश नहीं हैं। दूसरे, सत्ता प्रयोग में सशक्तीकरण की वस्तुगत सच्चाई अन्तःर्निहित है– प्राधारिक परिस्थितियां जो सत्ता आबंटन को प्रभावित करती हैं ; परिवेश, बदलती प्राधारिक परिस्थितियों में अवसरों से लाभ उठाना अथवा उन्हें उत्पन्न करना। तीसरे, सत्ता संबंध प्रतिसन अथवा विषम हो सकते हैं। प्रतिसभ्य वाले संबंध वे होते हैं जहां सत्ता एवं प्राधिकार के अपेक्षाकृत समान परिणामों एवं प्रकारों का प्रयोग होता है और वे पारस्परिकता पर आधारित होते हैं। विषमता वाले संबंध वे होते हैं जिनमें प्राधिकार के असमान परिमाण एवं प्रकार शामिल होते हैं और वे निम्नपदस्थता एवं उच्चपदस्थता पर आधारित होते हैं। दूसरा उदाहरण - विषमता वाले सत्ता संबंध ही हमारे अनुसार सशक्तीकरण कार्य हेतु प्रमुख अवस्था है (हैरिक तुल्य हैरिक 1995)।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

परिवर्तन एवं रूप परिवर्तन सिद्धांत: सशक्तीकरण प्रक्रिया अधीनीकरण के सत्ता प्राधारों को चुनौती देती है। सेन एवं क्राउन (1988) के शब्दों में, सशक्तीकरण अधीनीकरण प्राधार के रूप में परिवर्तन से तालुक रखती है। इसका अर्थ है कि एक परिवारों/समाजों (अथवा तंत्रों) के भीतर एवं उनके बीच सत्ता के पुनर्वितरण की प्रक्रिया और एक सामाजिक समानता पर अभिलक्षित प्रक्रिया जो कि केवल कुछ प्राधारों, तंत्रों एवं संस्थाओं का निःशक्तीकरण करके ही लाई जा सकती है। शर्मा के अनुसार इसमें अलाभांवित वर्गों के लिए एक विशिष्ट आकर्षण केन्द्र होता है (शर्मा 1992 :29)। अधीनीकरण एवं सत्ता पुनर्वितरण के पूर्व-विद्यमान प्राधार के विध्वंस वाली प्रक्रियाएं बहरहाल अपने आप होने वाली नहीं हैं। इनमें ये भी शामिल है – सहभागितापूर्ण दृष्टिकोण जो लोगों को स्वयं का उद्धार करने में सक्षम करते हैं (कॉननबर्डा 1986 : 229) , एक नए ज्ञान सृजन की प्रक्रिया (कोलिन 1990), एक अन्तःप्रेरण की प्रक्रिया (फ्रेअर 1972) और वैकल्पिक प्रभावहीनता वाला नया पहचान प्राधार। वस्तुतः , सशक्तीकरण की प्रक्रिया एक सामाजिक आन्दोलन है जो समाज के व्यवस्थापरक श्रेणी विभाजनों में एक आमूलचूल परिवर्तन लाना चाहता है (सिंहरॉय 1995)। अतएव, सशक्तीकरण को अपने आप में एक साहस के रूप में नहीं, बल्कि साध्य हेतु एक साधन के रूप में देखा जाता है या एक रणनीति हेतु जिससे हर तरह के शासन से मुक्ति मिलेगी। हर तरह के शासन से मुक्ति ही फ्रेअर के अनुसार, इस युग का मूल विषय है। यह मुक्ति कोई यांत्रिक

प्रक्रिया नहीं है बल्कि जीवन की सामाजिक ऐतिहासिक वास्तविकता संबंधी आलोचनात्मक चिंतन है; एक वचनबद्धता के साथ वास्तविकता में हस्तक्षेप की क्षमता ही मुक्ति का अग्रदूत है। फ्रेअर के उदाहरणानुसार :

> लोग अपनी जलमग्नावस्था से उभरते हैं और वास्तविकता में हस्तक्षेप की क्षमता अर्जित कर लेते हैं, जैसा कि वह अनावृत होती है। हस्तक्षेप उद्गमन से एक कदम आगे प्रस्तुत होता है और स्थिति के अन्तःप्रेरण से उत्पन्न होता है। अन्तःप्रेरण ही सभी उद्गमनों की चेतनागुण मनोवृति का गहराना है। चेतना लाकर ने वास्तविक का भिन्न तरीके से अनुभव करने लगते हैं (फ्रेअर 1972 : 81.85)।

भारत जैसे विकासशील देशों में विकास कार्यो को "स्थिरता के साथ विकास" की दिशा में मोड़ा गया था। पचास और शुरुआती साठ के दशकों में बुनियादी दबाव औद्योगीकरण, कृषि आधुनिकीकरण तथा आधारभूत ढांचा, शिक्षा एवं दूर संचार आदि के विस्तार पर रहा। तथापि, विकास चर्चा में "सामाजिक न्याय" के सिद्धांत को शामिल करने हेतु गरीबी के बड़े स्तरों, निरक्षरता एवं खराब स्वास्थ्य आदि के साथ-साथ असंतुलित आर्थिक विकास बढ़ी वर्ग असमानता, लिंग भेद एवं आबादी के एक बड़े हिस्से की तीव्र अधोमुखी गतिशीलता के पश्चगमन में सत्तर के दशकारंभ में भारत में विकास नीति को एक नई दिशा प्रदान की गई। "न्याय के साथ विकास" वाली इस नई दिशा ने अब तक उपेक्षित "अल्पलाभांवित", "कमज़ोर तबके", "वंचित एवं हाशिए पर खड़े वर्ग", आदि को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए उन्हें विभिन्न सरकार प्रायोजित आर्थिक (रोज़गार, उत्पादन संसाधनों तक पहुँच आदि) एवं सामाजिक (शिक्षा, प्रशिक्षण, स्वास्थ्य रक्षा, जल, आवास आदि) प्रदान कर अभियान संचालन नीतियों का सूत्रपात किया।

भारत में विकास कार्य को अस्सी के दशक मध्य में एक बार फिर से नई दिशा प्रदान की गई ताकि सशक्तीकरण की अवधारणा को "विकास" के साथ जोड़ा जा सके। वह दिक्‌परिवर्तन लोगों के संस्थागत साधनों, यथा कानूनों, कानूनी प्रक्रियाओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व, के माध्यम से उनके साथ "सत्ता में भागीदारी निभाते हुए" जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को सुनिश्चित करने पर अभिलक्षित है। यहां प्रस्थान का महत्वपूर्ण बिन्दु यह है कि जहां पहले की चर्चाओं में गरीब लोगों को "लाभग्राहियों" के रूप लिया गया था, उभरती चर्चा में उन्हें "विकास के साझीदारों" के रूप में पहचाना गया। तदनुसार, इस मान्यता के साथ कि "मानव जन ही विकास का मुख्य विषय है" (संयुक्त राष्ट्रसंघ 1985), अस्सी के दशक मध्य से एक नया शब्द निर्माण देखने में आया है "सामाजिक/मानव विकास"। इस दिक् परिवर्तन का प्रसंग, तथापि भूमंडलीकरण एवं संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम ही रहा है जो कि सामाजिक क्षेत्र - स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य सुरक्षा एवं अन्य मौलिक आवश्यकताओं में सरकारी खर्च को घटाने और निजीकरण को बढ़ावा देने हेतु व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से प्रयास कर रहा है। इस प्रकार राज्य अर्थात् शासन "आर्थिक एवं सामाजिक विकास के प्रति विकास के एक प्रत्यक्ष प्रदायक के रूप में नहीं, बल्कि एक साझीदार , उत्प्रेरक एवं मददगार के रूप में" उभरा है (विश्व बैंक 1997)।

इस संदर्भ में, विश्व विकास सम्मेलन, 1995 की सिफारिश पर सूक्ष्म दृष्टि डालना आवश्यक होगा, जिसमें "जन पहलकारियों", "जन सशक्तीकरण" एवं "लोगों की क्षमताओं को सबल करने" की बात की गई है। विकास लक्ष्यों के संबंध में इसमें विशेष रूप से उल्लेख किया गया कि :

> लोगों की क्षमताओं को अधिक सबल बनाने के लिए उन्हें, खासकर महिलाओं को सशक्त बनाना ही विकास और उसके प्रमुख संसाधन का मुख्य उद्देश्य है। सशक्तीकरण में हमारे समाजों की क्रियाशीलता एवं कल्याण को निर्धारित करते निर्णयों के

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

प्रतिपादन, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन में लोगों की प्रचुरता से भागीदारी की अपेक्षा होती है। लोगों की प्रचुर भागीदारी सुनिश्चत करने के लिए, यह बताया गया है कि सरकार को अंतर्राष्ट्रीय कानून एवं दायित्व के सुसंगत संविधानों, कानूनों एवं प्रक्रियाओं के अनुसार "एक स्थिर कानूनी तानाबाना" प्रस्तुत कना चाहिए; जो कि अन्य बातों के साथ.साथ, "अपने निजी संगठन, संसाधन एवं गतिविधियां विकसित करने के लिए सभ्य समाज एवं स्थानीय समुदायों की क्षमताओं एवं अवसरों की संख्या वृद्धि करते हुए, सभ्य समाज के स्वतंत्र एवं प्रतिनिधि संगठनों के साथ भागीदारी" को भी प्रोत्साहन दिए जाने को बढ़ावा दे (संयुक्त राष्ट्रसंघ 1995)।

उपर्युक्त के संबंध में ही विश्व विकास रिपोर्ट 1997 ने सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु सरकार की प्रभावी भूमिका, परन्तु एक नए रूप में, की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। इसमें लिखा है :

> राज्य अर्थात सरकार आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए एक प्रत्यक्ष विकास प्रबंधक के रूप में नहीं, वरन एक साझेदार, उत्प्रेरक और एक मददगार के रूप में प्रमुख स्थान रखती है ... दुनिया बदल रही है और उसके साथ-साथ आर्थिक एवं सामाजिक विकास में सरकार की भूमिका विषयक हमारी धारणाएं भी (विश्व बैंक 1977 : 1)।

एक ओर, अधिकार व नियंत्रण अर्थव्यवस्थाओं के विध्वंस, कल्याणकारी राज्यों के वित्तीय घाटों, विश्व के अनेक हिस्सों में लोकोपकारी आपात स्थितियों में विस्फोटन, उपान्तिक समूहों के बीच शासन में विश्वास का बढ़ता अभाव, तंत्र व्यवस्था के भीतर स्थानीय भ्रष्टाचार, गरीबी में बढोत्तरी तथा विभिन्न नाटकीय घटनाओं, खासकर विश्व अर्थव्यवस्था में प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और दूसरी ओर सभ्य समाज के बढ़ते दबाव के परिदृश्य में, राज्य के दायित्वों की एक पुनर्परिभाषा इनमें से कुछ समस्याओं के समाधान वाली एक समिति के रूप में निकलकर आयी है। विश्व बैंक के अनुसार :

> इसमें उन सामूहिक कार्यवाहियों का एक रणनीतिक चयन शामिल होगा जिनको कि राज्य बढ़ावा देने का प्रयास करेगा, और यह सामूहिक भलाई कार्यों में नागरिकों एवं समुदायों को शामिल कर, राज्य के कंधों से भार अपने ऊपर लेने के बृहतर प्रयास से जुड़ा होगा .... ताकि मानव कल्याण का कार्य आगे बढ़े, राज्य की क्षमता – सामुहिक कार्यवाहियों को प्रभावशाली ढंग से हाथ में लेने अथवा आगे बढ़ाने हेतु सामर्थ्य के रूप में परिभाषित, को बढ़ाया जाना चाहिए (वही : 3)।

स्पष्ट है कि "स्थिर कानूनी ताने बाने", राज्य द्वारा "सामूहिक कार्यवाई के रणनीतिक चयन" (यथा, जनसाधारण संघटन का सहयोजन), सभ्य समाज के साथ राज्य की संभावित भागीदारी तथा अपना निजी संगठन रखने हेतु सभ्य समाज की राज्य प्रायोजित पहलकारियों के प्रदत्त पहलुओं के भीतर रहकर, निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण आयाम बड़े ही साफ़तौर पर सामने आते हैं : (क) हाशिए पर खड़े समूहों के सशक्तीकरण हेतु सभी पहलकारियां देश के निर्धारित कानून के अनुसार ही होनी चाहिए ; (ख) राज्य या शासन जैसे भी, जब भी अपेक्षित होगा जन पहलकारियों को चयनात्मक ढंग से सहयोजित करेगा; और (ग) हाशिए पर खड़े जन के सशक्तीकरण हेतु राज्य का बोझ हल्का करने के लिए ग़ैर-सरकारी संगठनों (एन जी ओ) की एक महत्वपूर्ण भूमिका अपेक्षित होगी।

सोचिए ओर कीजिऐ 30.4

हमारे समाज में हाशिए पर खड़े लोगों के सशक्तीकरण में सभ्य समाज की भूमिका का विश्लेषण करें

गैर-सरकारी संगठनों के बारे में कहा जाता है कि वे अधिकांश विकासशील देशों में सरकार के साथ ही विकास में समान भागीदारों के रूप में उभर कर सामने आए। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि गैर-सरकारी संगठनों के एक छोटे से वर्ग ने विकास के विभिन्न परिवर्तनकारी वैकल्पिक मार्गों को चुनकर, हाशिए पर खड़े समूहों के सामाजिक विकास एवं सशक्तीकरण हेतु यथेष्ट कार्य किया है। स्वरोज़गार महिला संघ (सेवा sewa), अहमदाबाद, तथा महिला विकास अध्ययन केन्द्र (सी डब्ल्यू डी एस) की बांकुरा परियोजना, नई दिल्ली के प्रयासों को यहां उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। तथापि मात्र सेवा, महिला विकास अध्ययन केन्द्र व कुछ ऐसी ही अन्य संस्थाओं के अनुभव ही भारत में गैर-सरकारी संगठनों के क्रियाशीलता की संपूर्ण गाथा नहीं कहते हैं। भारत में गैर-सरकारी संगठनों का एक खासा वर्ग देश के अनेक भागों में "छद्मवेश में सरकार" के रूप में उभरा है जिसके मुख्य रूपेण कारण हैं – उनके क्रम-परम्पराबद्ध और अधिकारी तंत्रीय प्राधार एवं कार्यशैली, परम्परागत दृष्टिकोण, गतिकत का अभाव तथा हाशिए पर खड़े जन के बीच से ही एक "परिवर्तन अभिकर्त्ता" समुदाय उत्पन्न कर देने की अक्षमता। ज़्यादातर रूढिबद्ध व्यक्तियों को ही जन्म देते हैं और वर्तमान सत्ता प्राधार में योगदान देते हैं। यद्यपि अधिकांश गैर-सरकारी संगठन अधीनीकरण एवं उपेक्षित के सदियों पुराने प्राधार को तोड़ देने हेतु अपने हस्तक्षेपों के माध्यम से "परिवर्तन अभिकर्त्ताओं की संस्कृति" को मन में बैठा देने के वायदे के साथ ही शुरुआत करते हैं, यथार्थ व्यवहार में वे उन "लक्ष्य समूह" लाभग्राहियों की संस्कृति को मन में बैठाने का कार्य सम्पन्न करते हैं जो विभिन्न विकास योजनाओं के लाभों के निष्क्रिय प्राप्तकर्त्ता होते हैं। वित्त एवं अन्य संसाधनों हेतु सरकार पर अपनी निर्भरता के कारण, वे राज्य प्राधार को और बदले में हाशिए पर खड़े समूहों के दमन वाले विभिन्न प्राधारों को मज़बूती प्रदान करते हैं। श्री आशीष कुमार , एक प्रमुख गैर-सरकारी संगठन के कार्यकर्त्ता, अपनी निराशा इन शब्दों में व्यक्त करते हैं:

> हमारे समाज की प्रदत्त जटिलताओं के भीतर एक परिवर्तन अभिकर्ता के रूप में काम करना और एक "परिवर्तन अभिकर्त्ता समुदाय" को जन्म देना असंभव है। दाता अभिकर्त्ताओं की अपनी विशिष्ट अपेक्षाएं होती हैं, आपको अपना धन सरकार एवं अधिकारीतंत्र के माध्यम से प्राप्त करना होता है। आपको हर पड़ाव पर मोल तोल करना होता है। स्थानीय स्तर पर सत्ता परिवर्तनकारी शक्तियां होती हैं – आपको उनका हित समायोजन करना होता है। जन-साधारण स्तर पर आपको लोगों की तत्काल आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। एक संगठन के रूप में हमें व्यवस्था के भीतर ही अपना अस्तित्व बनाए रखना होता है ... वस्तुतः इस अस्तित्व को बनाए रखने की रणनीति के रूप में हर पड़ाव पर समझौता करना होता है। एक बात, बहरहाल, हम निश्चय ही बहुत स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि यदि हम इन प्रक्रियाओं के भीतर अपने अस्तित्व को कायम रख सकते हैं तो हम विकल्प तलाश कर नहीं बल्कि चल रही प्रक्रियाओं को स्वीकार करके ही जन सशक्तीकरण में योगदान दे सकते हैं (तुल्य सिंहरॉय 2001)।

MADHYAM IAS
way to achieve your dream

30.8 सभ्य समाज आन्दोलन : समालोचना

यद्यपि गैर-सरकारी संगठन सरकारी पहलकारियों के प्रतिवाद का सिद्धांत लेकर ही काम शुरू करते हैं, वे दिशानिर्देशित सरकार की आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों से ही होते हैं। राज्य पर प्राधारिक निर्भरता की एक व्यवस्था में, बिना किसी प्रतिबद्ध जनशक्ति के ये गैर सरकारी संगठन विकल्प सृजन हेतु केवल एक सीमित स्थान ही मुहैया करा सकेंगे। अनेक गैर-सरकारी संगठनों ने तो राज्य के प्रति अपनी वचनबद्धता को पूरा करने में असमर्थता ही ज़ाहिर कर दी है। 1996 की बात है कि जन कार्यवाई एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद् केन्द्र (कैपार्ड – CAPARD) ने अपनी प्रतिबद्धता न पूरी करने के लिए लगभग 150

गैर-सरकारी संगठनों को काली सूची में डाल दिया। यद्यपि गैर-सरकारी संगठनों ने प्रचुरोद्भव की प्रक्रिया हाल के वर्षों में काफ़ी तीव्र रही है, सार्वजनिक परिदृश्य से उनके लोप का भी ध्यानकर्षक रूप से उल्लेख किया गया है। किनके प्रति वे उत्तरदायी हैं? राज्य के प्रति? जनसाधारण के प्रति? एक ऐसे परिदृश्य में जहां गैर-सरकारी संगठन या तो "परिवर्तन अभिकर्त्ता" की संस्कृति को मन में बैठाने में अथवा एक यथेष्ट स्तर पर हाशिए पर खड़े समूहों की एक नई सामूहिक पहचान बनाने में अक्षम रहे हैं, बड़ा ही संदेहास्पद है कि क्या गैर सरकारी संगठन की क्रियाशीलता अकेले ही हाशिए पर खड़े समूहों के सशक्तीकरण हेतु मार्ग प्रशस्त कर पाएगी। तथापि, सभी आलोचनाओं एंव सीमाबद्धताओं के बावजूद, इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि सभ्य समाज जनसाधारण स्तर पर एक संघटन प्रक्रिया शुरू करने में समर्थ रही हैं। ऐतिहासिक साक्ष्य दर्शाते हैं कि पूर्व विद्यमान सत्ता प्राधार में इस प्रकार के परिवर्तन केवल अनवरंत जन संघटनों, सामाजिक आन्दोलनों, सभ्य समाजों (गैर-सरकारी संगठन, जन सहकारियां एवं प्रगतिशील संस्थाएं) के निःस्वार्थ हस्तक्षेपों एवं सुव्यक्ति वैकल्पिक नीति प्रतिपादनों तथा जन साधारण स्तर पर सत्ता असंतुलनों के प्रतिकार हेतु एक राजनीतिक वचनबद्धता के साथ उनके निष्पादन के माध्यम से ही संभव होते हैं। कुल मिलाकर, हाशिए पर खड़े लोग राज्य के साथ तुलना में एक असमान आधार पर पार्थक्य में खड़े नहीं रह सकते हैं। (सिंहराय 2001)। एक दीर्घकालीन राजनीतिक निवेश के रूप में सामूहिक संघटन ही उपेक्षित हाशिए लोगों के सशक्तीकरण हेतु मार्ग प्रशस्त करेगा। अतएव, सभ्य समाज क्रियाशीलता को किसी प्रतिकार के मत नहीं, बल्कि रचनात्मक आलोचनात्मकता के साथ देखे जाने की आवश्यकता है।

30.9 सारांश

इस इकाई में हमने समाज में विद्यमान हाशिए पर खड़े लोगों के विकास एवं सशक्तीकरण में सभ्य समाज की भूमिका पर चर्चा की। इस इकाई के आरम्भिक भाग में हमने सभ्य समाजों एवं सामाजिक आन्दोलनों के साथ उनके संबंध के अर्थ एवं आयामों पर चर्चा की। सभ्य समाज अभिकर्त्ताओं के रूप गैर-सरकारी संगठनों के महत्व, राज्य एवं हाशिए पर खड़े लोगों के साथ उनके संबंध, आदि पर विस्तार से चर्चा की गई। "सशक्तीकरण के साथ विकास" पर उभरते संलाप के संदर्भ में सभ्य समाजों के महत्व का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है। इस इकाई के निष्कर्षानुसार, चूंकि सभ्य समाज राज्य एवं जनता के साथ मिलकर विकास के एक महत्वपूर्ण साझेदार के रूप में उभरी हैं, उनकी भूमिकाओं को बहुत ही विवेचनात्मक रूप से देखा जाना है।

MAADHYAM IAS

30.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंहरॉय, डी. के. (2003) (पुनःमुद्रित), *सोशल डिवैलेपमेंट एण्ड दि इम्पॉवरमैण्ट ऑफ़ दि मार्जिनालाइज़्ड : पर्स्पेक्टिवस एण्ड स्ट्रेटजिज़,* सेज पब्लिकेशन्ज़ : नई दिल्ली

स्ट्रीटन, पी. (1998), "द कांट्रिब्यूशन ऑफ़ नॉन-गवर्नमेंण्टल आर्गेनाइज़ेशन्स टु डिवैल्पमैण्ट", इन *पॉलिटिकॅल इकॉन्मी जॅर्नल ऑफ़ इण्डिया,* खण्ड 6, नं. 2 : 111-21

शब्दावली

प्रौढ शिक्षा (Adult Education): प्रौढ़ शिक्षा वयस्कों को पढ़ाने और शिक्षित करने की प्रक्रिया है। इसमें नियमित पूर्णकालिक एवं ग्रीष्मकालीन प्राथमिक एवं माध्यमिक दिवाविद्यालय के अतिरिक्त संगठित जन-शिक्षा कार्यक्रम शामिल होते हैं, जो उन वयस्कों एवं स्कूल से दूर युवाओं को अवसर प्रदान करते हैं जो अपनी शिक्षा बढ़ाने के लिए अर्हता प्राप्त न कर पाए हों। यह शिक्षा प्रायः काम की जगहों में ही प्रदान की जाती है, या फिर माध्यमिक विद्यालयों में या फिर किसी महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय में अथवा सांध्य कक्षाओं के रूप में 'विस्तार' अथवा 'सतत शिक्षा' पाठ्यक्रमों के माध्यम से।

कृषि विद् (Agronomists): कृषिविद् या कृषि शास्त्री मृदा विशेषज्ञ होते हैं जो मृदा एवं जल प्रबंध और भूमि प्रयोग संबंधी बिल्कुल बुनियादी से लेकर व्यवहारिक परिणामों तक हर चीज़ में अनुसंधान करवाते हैं ताकि फसलों की गुणवत्ता एवं उपज को सुधारा जा सके। वे पौधों, मिट्टियों और पर्यावरण के बीच परस्पर क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। वे फसलों की नई संकर जातियों एवं किस्मों को विकसित करने के लिए जटिल अनुसंधान उपकरणों एवं तकनीकों का प्रयोग करते हैं, जो कि अधिक प्रभावशाली ढंग से बढ़ती हैं और समाज के लिए अधिक लाभदायक होती हैं। कृषिविद् फसलें उगाने व तृणभूमि तैयार करने के तरीके, और सर्वाधिक पर्यावरण मित्रेवत् तरीके से मृदा प्रबंधन की विधियां खोजते हैं।

बैण्डविड्थ(Bandwidth): किसी दूर संचार माध्यम चैनल की डेटा ट्रांसफर अर्थात आंकड़ों के हस्तांतरित करने की क्षमता, जो कि प्रायः प्रेष्य बिट संख्या प्रति सेकेण्ड के रूप में व्यक्त की जाती है। (बिट सूचना की एक इकाई होती है)। नैरो (अर्थात संकीर्ण) बैण्डविड्थ एक 2400 से 56000 बिट प्रति सैकेण्ड वाले डायल-अप मॉडम के अनुरूप होता है जबकि ब्रॉड (अर्थात चौड़ा) बैण्ड इस दर के 10,000 गुना से भी अधिक तक विस्तीर्ण हो सकता हैं।

जैव विविधता(Biodiversity): जीव अनेक स्तरों पर संगठित होते हैं, सम्पूर्ण परितंत्रों को लेकर उन जैव रासायनिक संरचनाओं तक जो आनुवंशिकता के आण्विक आधार होते हैं। जैव विविधता का अर्थ है उन पारिस्थितिकीय समूहों में विभिन्न जीवों की संख्या एवं विविधता जिनमें वे प्राकृतिक रूप से होते हैं। बड़ी संख्या में एक ही रूप रंग के जीवों का होना एक स्वस्थ वातावरण का द्योतक होता है और एकाधिक शिकारी शिकार संबंधों को प्रकट करती खाद्य श्रृंखला की विशेषता बतलाती है।

जैव अपहरण (Biopiracy): जैव अपहरण या जैव डकैती का अर्थ है किसी पूर्व प्रचलित ज्ञान सम्पन्न देश से बाहर निगमों आदि समेत सत्ताओं द्वारा जैविक संसाधनों का निजीकरण एवं अनधिकृत प्रयोग। इसका अर्थ वनस्पति जगत और जन्तुजगत के विविध रूपों की तस्करी, तथा परम्परागत लोगों के ज्ञान एवं जैविक संसाधनों का स्वीकरण एवं एकाधिकारीकरण भी है। जैव अपहरण से परम्परागत जनसमूहों का अपने संसाधनों पर से नियंत्रण समाप्त हो जाता है। इस शब्द के तहत आने वाली विशिष्ट गतिविधियां हैं : (क) पौधों, पशुओं, अंगों, सूक्ष्मजीवों एवं जीवों हेतु अनन्य व्यवसायिक अधिकार ; (ख) जैविक संसाधनों विषयक परम्परागत समुदायों की जानकारी का व्यवसायीकरण ; और (ग) जैविक संसाधनों पर एकस्वाधिकार प्राप्त कर लेना।

ब्रॉड बैण्ड नैटवर्क (Broadband Network): ब्रॉडबैण्ड एक उच्च गति डेटा प्रेषण क्षमता है। इसमें प्रेषण गति दोनों दिशाओं में 256,000 बिट प्रति सेकेण्ड से भी अधिक होती है। यह शब्द केवल मॉडम के माध्यम से इण्टरनैट सुलभता, डी एस एल (जैटस्ट्रीम, उदाहरणार्थ) एवं उत्तरोत्तर, बेतार प्रौद्योगिकियों (WiFi) के संदर्भ हेतु सर्वसामान्य रूप से प्रयोग होता है।

MAADHYAM IAS

श्रमिक नैमित्तीकरण (Casualisation of Labour): इसका अर्थ है नैमित्तिक अनौपचारिक रोज़गार, अर्थात् अंशकालीन अथवा अस्थायी अथवा अनुबंध रोज़गार का विस्तार। श्रमिकों को बिना किसी सुरक्षा आवरण तथा अपने कार्यसंबद्ध मुद्दों को उठाने के लिए श्रमिक संघवाद के न्यूनतम वेतन पर काम करना पड़ सकता है। अस्थायी कर्मचारी या नैमित्तिक श्रमिक उन अनेक लाभों से वंचित होते हैं जो नियंत्रित एवं निर्धारित अवधि कर्मचारियों को सुलभ होते हैं, जैसे अनुचित पदच्युति के विरूद्ध विधायी सरंक्षण रोज़गार सुरक्षा, आदि।

प्रति संस्कृति (counter-cutture): समाजशास्त्र में, प्रतिसंस्कृति शब्द एक ऐसे सांस्कृतिक समूह को इंगित करता है जिसके मूल्य एवं प्रतिमान सामाजिक मुख्यधारा किसी राजनीतिक प्रतिपक्ष के सांस्कृतिक पर्याय के मूल्यों एवं प्रतिमानों से मेल नहीं खाते।

सांस्कृतिक अवरोध (cultural barriers): संस्कृति पर आधारित महत्वपूर्ण घटनाएं अथवा घटनाक्रम जो विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आये व्यक्तियों के बीच संचार संबंधी समस्याएं पैदा करता है।

साइबर स्पेस (cyberspace): इसका अर्थ है परस्पर जुड़े कंप्यूटरों की दुनिया, और वह समाज जो उनके इर्दगिर्द ही सिमटा हो। यह शब्द 1984 में लेखक विलियम गिब्सन द्वारा अपने उपन्यास न्यूरोमैन्सर में पढ़ा गया। साइबर स्पेस शब्द अब कंप्यूटर नैटवर्कों के माध्यम से उपलब्ध संपूर्ण सूचना के वर्णन हेतु प्रयोग किया जाता है और आमतौर पर 'इंटरनैट' के नाम से जाना जाता है।

अनौद्योगीकरण (De-industrialisation): इसका सामान्य अर्थ है औद्योगिक उत्पादन सामग्री अथवा रोज़गार में नितांत गिरावट, न कि साधारणतया अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के सापेक्ष कोई गिरावट।

MAADHYAM IAS

अपसीमान्तीकरण (De-territorialisation): कुछ विद्वान भूमंडलीकरण अर्थात् वैश्वीकरण को अपसीमान्तीकरण के रूप में परिभाषित करते हैं। उनके अनुसार, यह ऐसी प्रक्रिया है जो भूगोल के पुनर्विन्यास के लिए आवश्यक होती है, ताकि सामाजिक विस्तार तदन्तर सीमान्तर्गत स्थानों, सीमान्तर्गत दूरियों अथवा क्षेत्रीय सीमाओं के रूप में न मापा जाए (शोल्टे 2000)। विश्व संबंध दूरी सहित सीमा पार विनिमय अर्थात अदला बदली का रूप ले लेते हैं। इस प्रकार के संबंध अधिक महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं क्योंकि संचार एवं उत्पादन अब भौगोलिक अवरोधों पर ध्यान न देते हुए उत्तरोत्तर बढ़ते जा रहे हैं। अनेक प्रकार के सीमा पार संगठन प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हो रहे हैं, और अधिकधिक लोग समग्र रूप में विश्व के प्रति जागरूक हो रहे हैं।

मुद्रा का अवमूल्यन (Devaluation of currency): अवमूल्यन का अर्थ है किसी देश की मुद्रा के मूल्य को सुविचारित सरकारी कार्यवाई के फलस्वरूप एक या अधिक विदेशी मुद्राओं के लिहाज से औपचारिकतः कम किया जाना। इसका अर्थ किसी देश की उस अधिकारिक दर में कमी किया जाना भी होता है जिस पर एक मुद्रा का लेन देन दूसरी मुद्रा से किया जाता है। अवमूल्यन किसी देश के निर्मातों को विदेशी मुद्राओं के लिहाज से अपने मूल्य घटाकर अन्य देशों में सस्ता बना देता है और घरेलू मुद्रा के लिहाज से अपने मूल्यों को बढ़ाकर आयातों को अधिक महंगा बना देता है। अवमूल्यन अपनी मूल्य प्रतिस्पर्धात्मकता में परिवर्तन लाकर भुगतान शेष का सामना कर के अपनी अर्थव्यवस्था में एक अल्पावधि वृद्धि ला सकता है, परन्तु आमतौर पर इसके स्फीतिकारी परिणाम होते हैं।

विकास प्रेरित विस्थापन (Development Induced Displacement): विकास प्रेरित विस्थापन आर्थिक विकास परियोजनाओं के उद्देश्यों से समुदायों एवं व्यक्तियों को बलपूर्वक

अपने घरों से बेघर करना है, जो कि प्रायः उनके गृहभूमियों से भी होता है। यह बलतः प्रवसन का ही एक रूप है। यह ऐतिहासिक रूप से जल विद्युत शक्ति एवं सिंचाई प्रयोजनों हेतु बांधों के निर्माण से जुड़ा रहा है, परन्तु प्रतीयमानतः अन्य विकास गतिविधियों की वजह से भी होता है, जैसे खनन, आधारभूत ढांचा विकास आदि।

अंकीय विभाजन (Digital Divide): डिजीटल डिवाइड (या अंकी विभाजन) शब्द 90 के दशक में गढ़ा गया जो दो वर्गों के बीच बढ़ते अंतर को दर्शाने के लिए था। एक, जो सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की सुलभता और उसके प्रयोगार्थ कौशल को रखते थे और दूसरे, जो सामाजिक आर्थिक एवं /अथवा भौगोलिक अवस्थिति, आयु, लिंग, संस्कृति आदि के कारण सीमित अथवा शून्य सुलभता रखते थे। एक विशेष चिन्ता का विषय यह था कि सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी वर्तमान असमानताओं को बढ़ा देगी।

अंक रूप परिवर्तन (Digitisation): डिजीटाइज़ेशन अर्थात अंक रूप परिवर्तन आमतौर कंप्यूटर भंडारण एवं परिचालन के उद्देश्य हेतु पर कागज़, ऐनलॉग साउण्ट ट्रैक, ग्राफिक्स, आदि में दिए गए आंकड़ों और सूचना को द्विआधारी (बाइनरि) कूटबद्ध फ़ाइलों में बदलने की प्रक्रिया की ओर संकेत करता है।

विनिवेशीकरण (Disinvestment): निवेश प्रापण या वसूली अर्थात विनिवेशीकरण शब्द सर्वप्रथम 80 के दशक में सर्वाधिक सामान्य रूप से अमेरिका में प्रयोग किया गया जिस का अभिप्राय था जातीय भेदभाव वाली अपनी नीति को समाप्त करने के लिए दक्षिण अफ्रीका की सरकार पर दबाव डालने हेतु अभिकल्पित एक संगठित आर्थिक बहिष्कार का प्रयोग करना, जो कि उस वक्त वहां लागू थी। भारत में, 1991 से यह शब्द इक्विटियां बेचकर राज्याधिकृत परिसम्पत्तियों का निजीकरण किए जाने के संदर्भ में प्रयोग किया जाने लगा है।

बूंद बूंद सिंचाई (Drip Irrigation): यह एक जल परिरक्षण सिंचाई प्रणाली है जिसमें छोटे छोटे छिद्रों वाला एक नाली तंत्र पौधों की जड़ों तक जल को रिसकर पहुंचने देता है। इस विधि में बहुत ही कम वाष्पीकरण अथवा चू कर बह जाना होता है जिससे कॉफी पानी की बचत होती है क्योंकि पानी सीधे दिया जाता है, साथ ही रोगकारकों एवं खरपतवारों का संचरण भी नहीं हो पाता है।

MAADHYAM IAS

विद्युत्वाण्विक डाक (Electric mail): अधिकतर 'ई-मेल' के नाम से प्रचलित। यह एक ऐसा संचार है जिसमें भंडारण एवं/अथवा संचारण के लिए एक विद्युत्वाण्विक उपकरण की ज़रूरत पड़ती है। ई-मेल नेटवर्क से जुड़े कंप्यूटरों एवं इंटरनैट सुलभ कंप्यूटरों पर व्यक्तियों अथवा समूहों के साथ संवाद के आदान प्रदान का एक द्रुत, सरल और सस्ता तरीका है। मूल पत्राचार के अलावा कुछ कंप्यूटर प्रणालियों की मदद से आप दस्तावेज़ व अन्य फाइलें भी संलग्न कर भेज सकते हैं।

राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit): राजकोषीय घाटा सरकार के कुल खर्च और उसकी राजस्व प्राप्तियों एवं गैर ऋण पूंजी प्राप्तियों के कुल योग के बीच अंतर है। यह सरकार द्वारा अपने व्यय की पूरी तरह से प्रतिपूर्ति हेतु अपेक्षित गृहीत कोष की कुल राशि को प्रस्तुत करता है।

विदेशी भंडार अथवा 'फ़ॉरैक्स' भंडार (Foreign Exchange Reserve or Forex Reserve): फॉरैक्स एक बाज़ार है जहां एक मुद्रा की अदला बदली दूसरी मुद्रा से की जाती है। यह विश्व के वृहत्तम बाज़ारों में एक है। विदेशी मुद्रा विनिमय की गणना अमेरिकी डॉलर में की जाती है। भारत के "फ़ॉरैक्स भण्डारों" में अभी हाल में 100 अरब अमेरिकी डॉलर का लक्ष्य पार कर लिया है। भारत ने यह भण्डार नब्बे के दशक में एक अप्रिय घटना के तदन्तर तैयार किया, जब देश का स्वर्णभण्डार एक भुगतान शेष संकट के चलते गिरवी रखना पड़ा था।

जीवाश्म ईंधन शक्ति (Fossil Fuel Power): कोयला, तेल अथवा प्राकृतिक गैस से उत्पन्न शक्ति जो कि प्राचीन पौधों एवं जीव जन्तुओं के शिलीभूत हो जाने के परिणामस्वरूप बनते हैं। ये शिलीभूत का जीवशम ईंधन पौधों व जीव-जन्तुओं के अवशेष ही हैं जो कि दहन किए जाने पर ऊर्जा प्रदान करते हैं जो प्राचीन (शिलाभूत) पौधों व जीव जन्तुओं के अपघटन से उत्पन्न की जाती है। इन ईंधनों के बनने में लाखों वर्ष लगे हैं।

आनुवंशिक विविधता (Genetic Diversity): आनुवंशिक विविधता प्रजाति समूहों के भीतर व बीच वंशानुक्रम भिन्नता है। यह किसी प्रजाति विशेष के किसी एक जीव समुदाय का विशेषगुण होता है, जिसमें समुदाय के सदस्यों में बड़ी संख्या में थोड़े थोड़े भिन्न पूर्वज़ों के कारण उनके गुणसूत्रों में भिन्नता पायी जाती है; यह विशेषगुण ही उस समुदाय विशेष को आमतौर पर रोगों अथवा परिवर्तनशील परिस्थितिक दशाओं के प्रति अधिक प्रतिरोधी बनाता है।

आनुवंशिक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering): यह किसी डी एन ए अणु में जीवों को हटाने, किंचित परिवर्तित करने, अथवा जीन जोड़ने की तकनीक है ताकि उसकी पूर्वसंचित सूचना को बदला जा सके। इस सूचना को बदलकर आनुवंशिक अभियांत्रिकी किसी जीव को यथा क्षमता उत्पन्न प्रोटीनों की किस्म अथवा मात्रा को बदल देती है, तदनुसार उसे नए तत्व बनाने अथवा नए कार्य निष्पादित करने में सक्षम बना देती है।

आनुवंशिक प्रदूषण (Genetic Pollution): ऐसे पर्यावरण में जीवों के जीनोम्स में आनुवंशिक सूचना की अनियंत्रित उन्मुक्ति जहां वे जीन्स पहले कभी नहीं रहीं। इसका अर्थ किसी आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित जीव से एक ऐसे जीव को, जो आनुवंशिक रूप से अभियंत्रित नहीं है, आनुवंशिक सामग्री का अनाभिप्रेत हस्तांतरण भी है।

मानव पूंजी (Human Capital): शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुभव के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति में संचित ज्ञान व कौशल का भंडार, जो उन्हें अधिक उत्पादनशील बनाते हैं, उन्हें उनसे आर्थिक लाभ उठाने में भी सक्षम बनाता है। यह किसी अर्थव्यवस्था की जनसंख्या में मूर्त रूप ज्ञान एवं कौशल का भंडार ही है। मानव पूंजी औपचारिक रूप से अर्जित की जा सकती है।, उदाहरण के लिए, विद्यालयी शिक्षा; अथवा अनौपचारिक रूप से उदाहरण के लिए 'आन द जॉब' शिक्षा प्राप्ति के माध्यम से।

MAADHYAM IAS

चलजलीय प्रणाली (Hydraulic System): द्रव माध्यम से शक्ति संचारित करने के लिए अभिकल्पित एक प्रणाली, जिससे पास्कल के नियम के अनुसार, बल कई गुना बढ़ जाता है। यह नियम है – "किसी परिरूद्ध द्रव पर लगाया गया बल सभी दिशाओं में कम हुए बग़ैर ही संचारित हो जाता है और सभी समान क्षेत्रों पर समान बल के साथ काम करता है।" यह ऐसी यंत्रक्रियाविधि जो किसी छोटे से छिद्र अथवा नलिका के माध्यम से लगाए गए प्रतिबल अथवा संघटित दबाव द्वारा परिचालित होती है।

देशज ज्ञान (Indigenous Knowledge): देशज ज्ञान का अर्थ है किसी निर्दिष्ट नृजातीय समूह से संबंद्ध ज्ञान, जो कि एक प्रदत्त संस्कृति अथवा समाज के लिए अद्वितीय या बेजोड़ होता है। कृषि, स्वास्थ्य रक्षा, भोजन तैयार करने, शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, और ग्रामीण समुदायों में अन्य कार्यकलापों की श्रृंखला में स्थानीय स्तर पर निर्णयन का आधार यही होता है। देशज सूचना या देशी जानकारी प्रणालियां परिवर्तनशील होती है और निरन्तर आंतरिक रचनात्मकता एवं प्रयोग के साथ साथ बाह्य प्रणालियों के साथ संपर्क द्वारा भी प्रभावित होती हैं। ज्ञान ही किसी प्रदत्त समुदाय में समये के साथ विकसित होता है, और लगातार विकसित होता रहता है। यह अनुभव पर आधारित होता है, प्रायः सदियों तक प्रयोग करते करते परखा हुआ, और स्थानीय संस्कृति एवं परिवेश के प्रति अनुकूलित।

मुद्रास्फीति (Inflation): माल एवं सेवाओं के दाम, अथवा उपभोक्ता मूल्य सूचकांकर (सी पी आई) में उछाल, जब बहुत अधिक धन के बदले बाज़ार में बहुत कम चीज़े आती हैं। संतुलित मुद्रास्फीति आर्थिक विकास का परिणाम होती हैं। अति मुद्रास्फीति (100 प्रतिशत अथवा अधिक की वार्षिक दर से बढ़ोतरी) से लोगों का अपनी अर्थव्यवस्था से विश्वास टूट जाता है और वे अपना पैसा रोकड़ परिसम्पतियों में लगाने लगते हैं जैसे सोना एवं स्थावर संपदा।

सूचना संसाधन (Information Processing): संगठनों को सूचना की तेज़ी से बढ़ती राशि को संसाधित करने आवश्यकता पड़ती है। सूचना संसाधन वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से आंकड़े को संभालकर भण्डारित किया जाता है ताकि सूचना का निर्वाध और कुशलतापूर्वक आदान प्रदान हो सके। मूलपाठ को टाइप करना, कंप्यूटर में डेटा भरना, विभिन्न प्रकार की कार्यालय स्थित मशीनों को परिचालित करना आदि सभी सूचना संसाधन में ही आते हैं। सूचना संसाधन कार्यों में लगे लोगों को प्राय वर्ड प्रोसैसर, टाइपिस्ट एवं डेटा एंट्रीबीयर, इलैक्ट्रॉनिक डेटा प्रोसैसर, की पंच टैक्नीशियन अथवा ट्रांसक्राइबर कहा जाता है।

बौद्धिक पूंजी (Intellectual Capital): ज्ञान, अनुप्रयुक्त अनुभव, एवं व्यावसायिक कौशलों का स्वत्व, जो कि उचित रूप से प्रेरित किए जाने पर और कार्यरूप में पारित किए जाने पर संगठन को पण्यस्थल में प्रतिस्पर्धा के शीर्ष पर ले जा सकता है।

बौद्धिक संपदा (Intellectual Property): बौद्धिक संपदाएं उस बुद्धि की सर्जना होती है जिसका व्यवसायिक महत्व होता है। इनमें शामिल हैं प्रतिलिप्याधिकार प्राप्त संपदा जैसे साहित्यिक अथवा कलात्मक कृतियां और उद्भावना संपदा जैसे एकस्वाधिकार, स्रोत संबंधी पदवियां, व्यापार पद्धतियां एवं औद्योगिक प्रक्रियाएं। यह शब्द प्रायः किसी सृजक के बौद्धिक एवं/अथवा खोजपरक प्रयासों के माध्यम से सृजित संपत्ति अधिकारों हेतु व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है जो कि आमतौर पर पेटेन्ट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट, व्यापार भेद या ट्रेड सीक्रिट, व्यापार वेश या ट्रेड ड्रैस व अन्य कानूनों के तहत संरक्ष्य होते हैं।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

स्टॉकहोम में 14 जुलाई 1967 को क्रियान्वित विश्व बौद्धिक संपदा संगठन संस्थापना सभा के अनुच्छेद 2, खंड (viii) के अनुसार, "बौद्धिक संपदा" में इनसे संबंधित अधिकार आयेंगे: साहित्य, कलात्मक एवं वैज्ञानिक कृतियां, अभिनय कलाकारों के प्रदर्शन, ध्वनिलेख एवं प्रसारण, मानव प्रयास के सभी क्षेत्रों में आविष्कार, वैज्ञानिक खोजें, औद्योगिक अभिकल्प, ट्रेडमार्क, सर्विस मार्क, व्यावसायिक नाम एवं पद, अनुचित प्रतिस्पर्धा से बचाव, तथा औद्योगिक, वैज्ञानिक साहित्यिक अथवा कलात्मक क्षेत्रों में बौद्धिक कार्यकलाप से उत्पन्न अन्य सभी अधिकार।

उदारीकरण (Liberalisation): अन्तर्राष्ट्रीय भाषा में उदारीकरण का अर्थ है विभिन्न देशों के बीच बिना रक्षा सीमा शुल्कदरों के व्यापार अर्थात् मुक्त व्यापार। दूसरे शब्दों में, आयातकर, निर्यात अधिदान, घरेलू उत्पादन रियायत व्यापार, कोटा अथवा आयात लाइसेंस आदि प्रतिबंधों के बग़ैर किया जाने वाला व्यापार अथवा वाणिज्य। आन्तरिक व्यापार उदारीकरण का अर्थ है व्यापार से जुड़े पहलुओं में सरकारी प्रतिबंधों में ढील।

जीवनपर्यन्त शिक्षा प्राप्ति (Life long learning): ज्ञानार्जन प्रक्रिया का सातत्य जो सभी स्तरों पर होता है – औपचारिक, गैर औपचारिक एवं अनौपचारिक – जिनमें विभिन्न निहित क्रियापद्धतियों का प्रयोग होता है, जैसे दूर शिक्षा और परंपरागत शिक्षा। यह एक विस्तृत संकल्पना है जिसमें शिक्षा जो कि लोचदार, नानाविध और विभिन्न समयों एवं स्थानों पर उपलब्ध होती है, पूरे जीवन भर जारी रखी जाती है।

आजीविका के अवसर (Livlihood Opportunities): आजीविका अर्थात् जीवनवृत्ति में जीविका के साधनों हेतु अपेक्षित क्षमताएं, परिसम्पतियां (भंडार, संसाधन, दावे और सुलभता) एवं क्रियाकलाप शामिल होते हैं। आजीविका में शामिल पांच प्रकार की पूंजी परिसंपत्तियां हैं: वित्तीय, भौतिक, प्राकृतिक, सामाजिक एवं मानवीय।

आधुनिकीकरण (Modernisation): आधुनिकीकरण का अर्थ है एक ऐसा दृष्टिकोण जो पश्चिमी समाज की संस्थाओं, प्राधारों एवं मूल्यों की ओर उन्मुख हो। ऐतिहासिक रूप से आधुनिकीकरण उन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था स्वरूपों की ओर उन्मुख परिवर्तन प्रक्रिया है जो सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक पश्चिमी यूरोप और उत्तर अमेरिका में विकसित होते रहे और फिर अन्य यूरोपीय देशों में तथा उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दी में दक्षिण अमेरिकी, एशियाई एवं अफ्रीका महाद्वीपों में फैल गए (ईसेन्सता, एस.एम. 1966)। आमतौर पर पुरातन या पारंपरिक आधुनिकीकरण का अर्थ होता है 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति से आरंभ हो परम्परागत कृषिगत से आधुनिक औद्योगिक समाज में रूपान्तरण संबंधी महापरिवर्तनों की ऐतिहासिक प्रक्रिया।

आण्विक जीव विज्ञान (Molecular Biology): यह जीव विज्ञान का ही एक क्षेत्र है जिसमें संगठन के आणविक स्तर का अध्ययन किया जाता है, जिसका मतलब है जीव वैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण अणुओं की संरचना, प्रकार्य एवं गठन या बनावट का अध्ययन। इसमें अणुओं के जीव रसायन समेत जीवन के आण्विक आधार का अध्ययन शामिल है , जैसे डी एन ए/ आर एन ए एवं प्रोटीन तथा जीवित कोशिकाओं के विभिन्न भागों की आणिविक रचना एवं प्रकार्य।

एकाधिकार (Monopoly): एकाधिकार का अर्थ है किसी चीज़ पर अनन्य अधिकार अथवा स्वत्व। अर्थशास्त्र में, एकाधिकार को इस रूप में परिभाषित किया जाता है : 'एक स्थायी बाज़ार अवस्था जिसमें उत्पाद अथवा सेवा के एक स्वरूप का मात्र एक ही प्रदायक होता है।' एकाधिकारों का अभिलक्षण है उस वस्तु अथवा सेवा के लिए आर्थिक प्रतिस्पर्धा का अभाव जो कि वे प्रदान करते हैं और व्यवहार्य एवजी वस्तुओं का अभाव।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र (Neo-classical Economics): नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र आपूर्ति और मांग पर आधारित अर्थशास्त्र के प्रति एक आम दृष्टिकोण का संकेत देता है, जो कि युक्तियुक्त रूप से कार्यरत व्यक्तियों (अथवा कोई आर्थिक अभिकर्त्ता) पर निर्भर करता है, प्रत्येक उपलब्ध जानकारी पर आधारित विकल्प चुनकर अपनी व्यक्तिगत उपयोगिता अथवा लाभ को अधिकाधिक बढ़ाने का प्रयास करता है। मुख्यधारा अर्थशास्त्र अपनी अवधारणाओं में बहुत हद तक नवशास्त्रीय ही है। नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र की अनेक आलोचनाएं सामने आयी हैं, रूढ़िवादी अर्थशास्त्र के भीतर से भी और उसके बाहर से भी, और प्रायः वे आलोचनाएं नवशास्त्रीय सिद्धांत के नए स्वरूपों में समाविष्ट की गई हैं।

नैटवर्क समाज (Network Society): नेटवर्क समाज शब्द मानुअल कास्तल द्वारा आधुनिक समाज सूचना समाज संबंधी उनके व्यायाम विश्लेषण के भाग के रूप में सामने आया। नैटवर्क समाज सूचना समाज से कहीं आगे निकल गया है जो कि प्रायः प्रमाणित किया जाता है। कास्तल का तर्क है कि आधुनिक समाजों को परिभाषित करने वालों में महज प्रौद्योगिकी ही नहीं अपितु सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारक भी हैं जो नैटवर्क समाज का निर्माण करते हैं।

प्रतिमान परिवर्तन (Paradigm Shift): विचारणा और विश्वास पद्धतियों में संपूर्ण परिवर्तन जिससे एक ऐसी दशा उभर कर आती है जिसको कि पहले असंभव अथवा अस्वीकार्य माना जाता था। यह आकस्मिक ही नहीं हो जाता बल्कि अनेक परिवर्तनों द्वारा प्रेरित होता है।

प्रतिमान परिवर्तन शब्द पहली बार थॉमस कून द्वारा 1962 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***द स्ट्रक्चर ऑफ़ साइन्टिफिक रिव्लूशनस*** में विज्ञान के प्रचलित सिद्धांत के भीतर मूल अवधारणाओं में एक परिवर्तन की प्रक्रिया एवं परिणाम का वर्णन करने के लिए प्रयोग किया गया। यह तब से मानव अनुभव के कई अन्य कार्यक्षेत्रों में भी प्रयोग किया जाने लगा है। वर्तमान में परिवर्तन के अभिकारक एक नए प्रतिमान परिवर्तन की ओर प्रेरित कर रहे हैं। संकेत हमारे चारों ओर दिखाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए, पर्सनल कंप्यूटर और इंटरनैट के पदार्पण ने वैयक्तिक के साथ-साथ व्यापार परिवेशों हेतु उत्प्रेरक सिद्ध हुआ है। हम एक यंत्रवत्, उत्पादनकारी एवं औद्योगिक समाज से एक समन्वित, सेवा-आधारित सूचना केनद्रित समाज की ओर जा रहा है और प्रौद्योगिकी में सुधार विश्वव्यापी रूप से निरन्तर प्रभाव डालते ही रहेंगे। परिवर्तन अपरिहार्य है। यही एक सच्चा स्थिरांक है।

एकस्वाधिकार (Patent): एकस्वाधिकार अर्थात, पेटन्ट किसी व्यक्ति को सरकार द्वारा प्रदत्त अनन्य अधिकारों की एक श्रृंखला है, जो कि किसी आविष्कार के कुछ विवरणों के विनियमित, सार्वजनिक उद्‌घाटन हेतु बदले में एक नियत समयावधि के लिए उसे बनाने, प्रयोग करने व बेचने का अनन्य अधिकार प्रदान करती है। एकस्वाधिकार के लिए आवेदन करने वाला व्यक्ति आवश्यक नहीं कि वह आविष्कर्त्ता ही हो जिसने आविष्कार की रचना अथवा सर्जना की हो। अनेक श्रव्य एवं दृश्य प्रौद्योगिकियां एकस्वाधिकारों के अन्तर्गत आती हैं।

निजीकरण (Privatisation): निजीकरण स्वामित्व हस्तांतरण की एक प्रक्रिया है, जिसमें यह हस्तांतरण सरकारी स्वामित्व से निजी स्वामित्व को होता है। सरकारी से निजी क्षेत्र को किसी सेवा अथवा कार्यकलाप के प्रबंधन की हस्तांतरण प्रक्रिया भी निजीकरण ही कहलाती है।

रेडियोधर्मी अपशिष्ट (Radioactive Wastes): किसी नाभिकीय रिऐक्टर के संचालन से अथवा निःशेष आण्विक अपशिष्ट वे पुनर्संसाधन से उत्पन्न रेडियोधर्मी सह-उत्पाद।

MAADHYAM IAS
way to achieve your dream

पुनर्नव्य ऊर्जा संसाधन (Renewable Energy Resources): वे संसाधन जो लगातार अपनी मूल स्थिति में आते रहते हैं और फिर से भरते रहते हैं, साथ ही उनके समाप्त होने की संभावना भी नहीं होती। इनमें शामिल हैं : सौर ऊर्जा, जलशक्ति, वायु तरंगे एंव ज्वार भाटे। पुनर्नव्य ऊर्जा और ऊर्जा कौशल प्रौद्योगिकियां एक स्वच्छ ऊर्जा भविष्य निर्माण हेतु महत्वपूर्ण हैं। अधिकांश पुनर्नव्य ऊर्जा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सूर्य से ही प्राप्त होती है। सूर्यप्रकाश, अथवा सौर ऊर्जा को सीधे घरों व अन्य भवनों की ताप एवं प्रकाश आपूर्ति के लिए, बिजली पैदा करने के लिए, और गर्मजल तापन, सौर शीतलम, व नाना प्रकार के व्यापारिक एवं औद्योगिक प्रयोजनों में प्रयोग किया जा सकता है।

वैज्ञानिक सूचना (Scientific Information): इसमें शामिल है : तथ्यपरक आधार सामग्री यानी इनपुट, डेटा अर्थात आंकड़े, मॉडल, विश्लेषण, तकनीकी जानकारी अथवा वैज्ञानिक आंकड़ों पर आधारित वैज्ञानिक विचार। इसमें कोई भी संचार अथवा ज्ञान की प्रस्तुति भी शामिल होती है। जैसे पाठ्य आंकिक, रेखीय, मानारेखीय वर्णनात्मक अथवा श्रव्य दृश्य रूपों समेत किसी भी माध्यम अथवा रूप में तथ्य अथवा आंकड़े।

सेवा अर्थव्यवस्था (Service Economy): सेवा अर्थव्यवस्था में वे सभी आर्थिक कार्यकलाप आते हैं जो वस्तुओं और ऊर्जा के उत्पादन एवं संसाधन में शामिल नहीं होते। सेवा अर्थव्यवस्था दो नवीन आर्थिक घटनाओं में से एक, अथवा दोनों ही, की ओर भी संकेत कर सकती है। एक है औद्योगिकृत अर्थव्यवस्थाओं में सेवा क्षेत्र का बढ़ा महत्व। सेवाएं अब मात्र 20 वर्ष पूर्व के मुकाबले सकल घरेलू उत्पाद का एक काफी ऊंचा प्रतिशत प्रस्तुत करती हैं।

सामाजिक बहिष्करण (Social Exclusion): यह शब्द रोज़गार, आय, सामाजिक तानेबाने जैसे परिवार, पड़ोस व समुदाय, निर्णयन से एवं जीवन की एक पर्याप्त उत्कृष्टता से अमहत्वपूर्ण समझ हाशिए पर धकेल दिए जाने की ओर इंगित करता है, यानी वे विभिन्न तरीके जिनसे लोगों को समाज के भीतर स्वीकृत प्रतिमानों से (आर्थिक रूप से, राजनीतिक रूप से, सामाजिक रूप से व सांस्कृतिक रूप से) बहिष्कृत कर दिया जाता है।

सामाजिक क्षेत्र (Social Sector): किसी अर्थव्यवस्था के सामाजिक क्षेत्र में वे सभी क्षेत्र आते हैं जिनमें किसी भी निवेश से बदले में वित्तीय लाभप्राप्त नहीं होता। सामाजिक क्षेत्र निवेश किसी समाज में मानवीय एवं सामाजिक पूंजी के संचय की ओर प्रवृत करते हैं। सामाजिक क्षेत्र में मुख्य रूप से आते हैं। गरीबी उन्मूलन, रोज़गार जनन, शिक्षा, स्वास्थ्य , जलापूर्ति, स्वास्थ्य रक्षा, आवास, गन्दी बस्ती विकास, समाज कल्याण एवं पालन पोषण ग्रामीण विकास तथा न्यूनतम बुनियादी सेवाएं।

मुख्य आहार (Staple Food): मुख्य आहार का अर्थ है बुनियादी लेकिन पौष्टिक आहार जो किसी परंपरागत आहार खासकर ग़रीबों के, का आधार हो। पौष्टिक होते हुए भी मुख्य आहार आमतौर पर अपने आप में पोषक तत्वों की पूरी श्रृंखला प्रस्तुत नहीं करते हैं। अतः कुपोषण से बचने के लिए अन्य खाद्य पदार्थ भी नियमित आहार में जोड़ने पड़ते हैं। मुख्य आहार स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न होते हैं, परन्तु प्रायः शाकाहार मूल के ही होते हैं, जैसे अनाज, दालें, मक्की, चावल, मोटे अनाज, एवं स्टार्च युक्त जड़ें उत्पन्न करने वाले पौधे।

प्रतीक विश्लेषण (Symbolic Anelysts): प्रतीक विश्लेषक प्रतीकों अर्थात् संकेत चिन्हों को इच्छानुकूलित कर समस्याओं को हल करते हैं, पहचानते हैं और दूर करते हैं। वे दुर्बोध कल्पनाओं को यथार्थ में सरलीकृत कर देते हैं जिन्हें फिर से व्यवस्थापित किया जा सकता है। हाथ की सफाई दिखाने में प्रयोग किया जा सकता है। उन पर प्रयोग किया जा सकता है। अन्य विशेषज्ञों को बतलाया जा सकता है। और फिर अन्तोगत्वा वापस यथार्थ में लाया जा सकता है। ये हस्तकौशल विश्लेषणात्मक साधनों की मदद से किए जा सकते हैं जो कि अनुभव की कसौटी पर तराशे गए होते है। ये साधन हैं : गणितीय कलम विधि, कानूनी तर्क वितर्क वित्तीय उपाय, वैज्ञानिक सिद्धांत मनोवैज्ञानिक समझ जैसे कैसे समझाएं या कैसे बहलाएं, अनुमान निगमन की प्रणालियां अथवा संकल्पनात्मक पहेलियों को हल करने के लिए कोई भी दूसरी तकनीक श्रृंखला (रॉबर्ट बी. रीक 1991)।

MAADHYAM IAS

व्यापार घाटा (Trade Deficit): व्यापार घाटे का अर्थ है निर्यातों के मुकाबले आयातों की अधिकता। व्यापार अधिशेष आयातों के मुकाबले निर्यातों की अधिकता होती है। व्यापार शेष का अर्थ है दोनों – अधिशेष अथवा घाटा। व्यापार शेष माल व अन्य चल वस्तुओं में लेन देन से बनता है। व्यापार शेष आंकड़े किसी प्रदत्त अर्थव्यवस्था द्वारा अर्जित धन की राशि होती है, जो विक्रय निर्यातों में से क्रय आयातों की लागत को घटाकर ज्ञात की जाती है।

व्यापार भेद (Trade Secrets): व्यापार भेद, अर्थात ट्रेड सीक्रिट एक गुप्त कार्य, विधि, प्रक्रिया अभिकल्पना अथवा अन्य सूचना होती है। जिसे अन्य व्यापार समकायों के साथ प्रतिस्पर्धा हेतु किसी कंपनी द्वारा प्रयोग किया जाता है। इसका उल्लेख गुप्त सूचना के रूप में कुछ न्यायअधिकारों में भी किया जाता है।

दुश्चक्र (Vicious Cycle): दुश्चक्र या कुचक्र एक ऐसा घटनाचक्र होता है जिसमें एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती जाती है, जो कि बदले में पहली समस्या को और बढ़ा देती है। उदाहरण के लिए ग़रीबी। एक ग़रीब आदमी अपने बच्चों की शिक्षा में धन लगाने में सक्षम नहीं हो सकता अथवा पर्याप्त आर्थिक सहायता नहीं दे सकता, इससे फ़लतः आगे की पीढ़ी भी गरीबी झेलने की ओर अग्रसर होती है।

जल परिरक्षण (Water Conservation): जल परिरक्षण का अर्थ है विभिन्न विधियों की मदद से जल की देखभाल परिरक्षण सुरक्षा एवं विवेकपूर्ण प्रयोग, जो खेतो, घरों व उद्योगों में अधिक कुशलतापूर्ण व्यवहार से लेकर जल भण्डारण अथवा परिरक्षण योजनाओं आदि के माध्यम से प्रयोगार्थ जल को संग्रहित करके रखने तक विस्तीर्ण है।

विश्वव्यापी वैब (World Wide Web - www): यह एक इन्टरनैट साइटों को पढ़ने के लिए वृहद् संचार माध्यम आधारित प्रणाली है। इसका नाम वैब अर्थात जाल इसलिए है कि यह एक साथ जुड़ी साइटों से मिलकर बनी होती है; प्रयोगकर्त्ता वृहद संपर्कों पर क्लिक कर एक साइट से दूसरी साइट पर जा सकता है। विश्व व्यापी वैब (www) इण्टरनैट का एक हिस्सा है जिसमें नेटवर्क से जुड़े संसाधनों की एक आकाशगंगा होती है। इसके इण्टरनैट सर्वर दस्तावेज़ों और हाइयर टैक्स्ट मार्कअप लैंग्विज (HTML) में संरचित फाइलों को हस्तांतरित करने के लिए एच टी टी पी (HTTP) का उपयोग करते हैं। इण्टरनैट पर सभी सर्वर विश्वव्यापी वैब का हिस्सा नहीं होते।

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

संदर्भ सूची

अब्राहम, बीजू पाल, 2000, "दि इमर्जिंग पेटेन्ट्स एंड इन्टिलैक्चुअल प्रोपर्टी राइट्स रिजीमः इम्प्लिकेशन्ज़ फॉर इंडियन इकॉन्मी". पुरुषोत्तम भट्टाचार्य एवं अजिताभ रॉय चौधरी (सं.) कृत *ग्लोबलाइज़ेशन एंड इंडियाः ए मल्टिडाइमेन्शनल पर्सपेक्टिव*, लैन्सर्स बुक्सः नई दिल्ली

आचार्य, एस. 2001, *इंडियाज़ मैक्रोइकनॉमिक मैनेजमैंट इन द नाइनरीज़*, भारतीय अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध अनुसंधान परिषद्ः नई दिल्ली

एंडरसन, बेनेडिक्ट, 1983, *इमेजिन्ड कम्यूनिटीज़ः रिफ्लेक्शन्ज़ ऑन दि ऑरिजिन एंड स्प्रैड ऑफ नेशनलिज़्म*, वर्सोः न्यूयार्क

एपीईसी इकॉनॉमिक कमेटी, 2000, *टुवर्ड्स नॉलेज-बेस्ड इकॉनामीज़ इन ए पी ई सी.*, एपीईसी सचिवालयः सिंगापुर http://www.apecsec.org.

ऑस्ट्रेलियन काउन्सिल ऑफ ट्रेड यूनियन्स, 1994, *ग्रीन जॉब्स इंडस्ट्री.*, ऑस्ट्रेलियन कन्ज़र्वेशन फाउन्डेशनः ऑस्ट्रेलिया

बालकृष्णन, एन. 2001, "इन्फॉर्मेशन एंड कम्युनिकेशन टैक्नॉलोजीज़ एंड द डिजिटल डिवाइड इन द थर्ड वर्ल्ड कन्ट्रीज़". *करन्ट साइन्स* में, 81(8): 966-972

बालकृष्णन, पी. 1996. "द करन्ट मैक्रोइकानॉमिक स्टेबिलाइज़ेशन प्रोग्राम एंड दि इंडियन इकानॉमी", एम. चट्टोपाध्याय, पी. मेटी एवं रक्षित (सं.) कृत *प्लैनिंग एंड इकानॉमिक पॉलिसी इन इंडिया* में, सेज पब्लिकेशन्ज़ः नई दिल्ली

बन्दोपाध्याय, डी. 1997, "पीपल्स पार्टिसिपेशन इन प्लैनिंगः केरल एक्सपेरिमैंट", *इकानॉमिक एंड पालिटिकल वीकली* में, 32(39): 2450-54

बनर्जी, अरूण कुमार, 2000, "एडजस्टिंग टु द प्रोसेस ऑफ चेन्जः इंडिया एंड ग्लोबलाइज़ेशन", पुरुषोत्तम भट्टाचार्य एवं अजिताभ रॉय चौधरी (सं.) कृत *ग्लोबलाइज़ेशन एंड इंडियाः ए मल्टीडाइमेन्सनल पर्सपैक्टिव* में, लांसर्स बुक्सः नई दिल्ली

वर्धन, पी., 2001, "सोशल जस्टिस इन ग्लोबल इकानॉमी", *इकानॉमिक एंड पालिटिकल वीकली*, फरवरी 3-10

————, 2003, *पॉवर्टी, एग्रेरियन स्ट्रक्चर एंड पालिटिकल इकानॉमी इन इंडिया*, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

बैरेट, एम. 1998, वीमन्स ऑप्रेसन टुडे, वर्सोः लंदन

बाटलीवाला, एस. 1993, इम्पॉवरमैन ऑफ़ वीमन इन साउथ एशियाः कन्सैप्ट्स एंड प्रैक्टिसिज़, आसबाफ़ (ASSBAF) एंड एफ ए ओ फ्रीडम फ्रॉम हंगर अभियान, ऐक्शन एंड डिवेल्पमैंटः नई दिल्ली

बक्शी, उपेन्द्र, 1992, ग्लोबलाइज़ेशन – ए वर्ल्ड विदाउट अल्टरनेटिव्ज़, साउदर्न इकनॉमिस्ट्सः नई दिल्ली

बेदी, अर्जुन एस. 1999, "द रोल ऑफ़ इन्फ़ारमेशन एंड कम्युनिकेशन टैक्नॉलाज़ीज इन इकानॉमिक डिवैल्पमैंटः ए पार्शियल सर्वे" ग्लोबल डेवेल्पमैंट नेटवर्क मीटिंग, बॉन में प्रस्तुत निबंध

बैल, डैनियल, 1976, द कमिंग ऑफ़ पोस्ट-इंडस्ट्रियल सोसाइटीः एस्सेज़ ऑन आइडिऑल्जीज़ एंड इन्स्टीट्यूशन्ज़, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

MAADHYAM IAS

बेटेली, आँद्रे, 2000, एन्टीनॉमीज़ ऑफ़ सोसाइटीः एस्सेज़ ऑन आइडिऑलाजीज़ एंड इन्स्टीट्यूशन्ज़, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

बेयर, पीटर, एफ़, 2003, "फ़ोर एप्रोचिज़ टु ग्लाबलाइज़ेशन क्रीटिकल कॉन्सैप्ट्स इन सोशियोलॉजी में, रूटलेजः लंदन

ब्लानी, डी. एल. एवं एम. के पाशा, 1993, "सिविल सोसाइटी एंड डिमॉक्रसी इन द थर्ड वर्ल्डः एम्बिग्यूटीज़ एंड हिस्टॉटिकल पॉसिबिलिटीज़". स्टडीज़ इन कम्पैरेटिव इंटरनेशनल डेवेलपमैंट, खंड 28, नं. 1:3-24 में

ब्लाउस्तें, एस. व अन्य, 1992, ऐन एसैसमैंट ऑफ़ द कैमिकल इंडस्ट्रीज़ कमिटमैंट टु द प्रिंसिपल्स ऑफ़ कम्युनिटी राइट्स टु नो, आर एम आई टीः मैलबोर्न

ब्लूमर, एच. 1951, "सोशल मूवमैंट" ए.एन. लैस (सं.) कृत न्यू आइटलाइन्स ऑफ़ प्रिंसिपल्स ऑफ़ सोसाइटी में. बार्न एंड नोबलः न्यूयार्क

बॉडमर, डब्ल्यु. 1985, द पब्लिक अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ सांइस, रॉयल सोसाइटीः लंदन

बॉशियर, आर. डब्ल्यू. व अन्य, 1997, "बैस्ट एंड वर्स्ट-ड्रैस्ड वैब कोर्सिजः स्ट्रटिंग इनटु द फ़्यूचर इन कम्फ़र्ट एंड स्टाइल". डिस्टैन्स एजुकेशन में. 18, 1:327-349

बॉय्ड बैरेट, ओ. 1998, "मीडिया इम्पिरिएलिज़्म रिफ़ॉर्म्युलेट", डी. के. थुस्सू (सं.) कृत इलैक्ट्रॉनिक इम्पायर्सः ग्लोबल मीडिया एंड लोकल रिजिस्टन्स में, आर्नोल्डः लंदन

ब्रेसर, पीरिया एवं कार्लो लुई, 1996, इकानॉमिक आइसिस एंड स्टेट रिफ़ॉर्म्स इन ब्राज़ीलः टुवर्डज़ ए न्यू इंटरप्रिटेशन ऑफ़ लैटिन अमेरिका. लिन रीनरः बोल्डर एंड लंदन

ब्रायन, पिन्टो एवं ज़हीर फ़राह, 2004, व्हाई फ़िस्कल एडजस्टमैंट नायो वर्ल्ड बैंक पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर नं. 3230 मार्च

बुग्गी, सी. एस. रैड्डी एवं जी. गोडा, 2001, "इम्पैक्ट ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन ऑन एग्रैरियन क्लास स्ट्रक्चरः इट्स इम्पिलीकेशनज़ फ़ॉर इंडियन विलिजिस". थर्ड कॉन्सैप्ट, जनवरी पृ. 17-19 में

बर्न, ई. ब्रैडफोर्ड, 1993, ए हिस्ट्री ऑफ ब्राजील, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रैसः कोलम्बिया

बुश, स्टीफ़न, 1993, "इंडिजिनस नॉलेज ऑफ़ बाइओलॉजिकल रिसोर्सिजः द रोल ऑफ़ ऐन्थ्रपॉलिजी". अमेरिकन ऐन्थ्रपॉलाजी में, 95(3): 653-686

ब्रायर (सं.) 1998, दि इंडियन इकानॉमीः मेजर डिबेट्स सिन्स इंडिपैन्डन्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

केबल, विन्सेंट, 1999, ग्लोबलाइज़ेशन एंड ग्लोबल गवर्नेन्स, द रॉयल इंस्टीटयूट ऑफ़ इंटरनेशनल अफ़ेयर्सः लंदन

कास्तल, एम. 2001, दि इंटरनैट गैलेक्सीः रिफ़्लेक्शन्ज़ ऑन द इंटरनैट, बिजनिस एंड सोसाइटी, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः न्यूयार्क

——————, 1998, दि इन्फ़ारमेशन एजः इकानॉमी, सोसाइटी एंड कल्चर. खंड 1: द राइज ऑफ़ नेटवर्क सोसाइटी, ब्लैकवैल पब्लिशर्ज़ः लंदन

चड्ढा, जी. के. एवं पी. पी. साहू, 2002. "सैटबैक्स इन रूरल इम्पलायमैंटः इश्यूज़ फ़ॉर फ़र्दर स्क्रूटिनी", *इकोनॉमिक एंड पॉलिटीकल वीकली,* मई 25 में

MAADHYAM IAS

चांद, रमेश, 1999, इमर्जिंग क्राइसिस इन पंजाब एग्रीकल्चरः सिवैरिटी एंड ऑप्शन्ज़ फ़ॉर फ़्यूचर", *इकॉनामिक एंड पालिटिकल वीकली*, मार्च 27 में

चंदा, आर, 2002, गैट्स एंड इट्स इम्पिलीकेशन्ज़ फ़ॉर डेवेलपिंग कन्ट्रीज़: की इश्यूज़ एंड कन्सन्सर्ज़. आर्थिक एवं सामाजिक मामले विभाग, संयुक्त राष्ट्र संघः न्यूयार्क

चन्दोक, नीरा, 1995, स्टेट एंड सिविल सोसाइटी: एक्सप्लोरेशन्ज़ इन पालिटिकल थीयोरी, सेजः नई दिल्ली

कोहेन, ज़ाँ एल, एवं आँद्रयू आरतो. 1994, सिविल सोसाइटी एंड पॉलिटिकल थियोरी, दि एम आई टी प्रैसः कैम्ब्रिज

कोइकौद, ज़ाँ मार्क एवं हीस्कानन बीज़ो (सं.) 2001, द लैजिटिमेसी ऑन इंटरनेशनल ऑर्गेनाइज़ेशनज़, यूनिवर्सिटी प्रैसः रोक्यो

कोरिया, कार्लो एम., 2000, इन्टिलैक्चुअल प्रोपटी राइट्स, द डब्ल्यु टी ओ एंड डिवेलपिंग कन्ट्रीज़: द ट्रिप्स (TRIPS) एग्रीमैंट एंड पॉलिसी ऑप्शन्ज़, थर्ड वर्ल्ड नेटवर्कः पिनांग

केडे, एन्ड्रयूज़ एंड रोबिन मान्सेल, 1998, नॉलेज सोसाइटीज़ इन ए नटशैलः इन्फारमेशन टैक्नॉलाजी फ़ॉर सस्टेनेबल डेवेलपमैंट, आई डी आर सीः कनाडा

कुर्रन, जे. एवं एम. गुरेविच (सं.) 2001, मास मीडिया एंड सोसाइटी. एडवर्ड आर्नोल्डः लंदन

डैटन, ए., 2003, "इज़ वर्ल्ड पॉवर्टी फ़ॉलिंग?" साउदर्न इकनॉमिस्टस. जनवरी पृ. 21

डैटन एंड द्रेज़., 2002, पॉवर्टी एंड इनक्वैलिटी इन इंडियाः ए री-इग्ज़ेमिनेशन. सैन्टर फ़ॉर डेवेलपमैंट इकॉनामिक्स वर्किंग पेपर, दिल्ली स्कूल ऑफ़ इक्नॉमिक्सः नई दिल्ली

देसाई, मेघनाद एवं याहिया सेद (सं.) 2004, ग्लोबल गवर्नेन्स एंड फ़ाइनैन्शल क्राइसिस, रूटलिजः लंदन

देसाई, मीरा के, 2005, "इंट्रा एंड इंटर-कल्चरल डाइवर्सिटीज़ इन द ईरा ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशनः ट्रान्सनेशनल टेलिविज़न इन इंडिया", ग्लोबल मीडिया जर्नल, खंड 4, अंक 7 में. http://lass.calumet.purdue.edu/cca/gmj/fall2005/non_referreed/DesaiFa05.htm

देशिङ्गकर, जे. पी. एवं एंडरसन, 2004, "एग्रीकल्चर एंड नैचुरल रिसोर्स. बैस्ड लाइवलिहुड्स' इन एन ईरा ऑफ़ इकॉनॉमिक रिफ़ार्म एंड ग्लोबलाइज़ेशन", जे. पी. देशिंगकर एवं सी. जॉनसन (सं.) कृत पॉलिसी विन्डोज़ एंड लाइवलिहुड फ़्यूचर्सः ट्रन्ड्ज़ एंड प्रास्पैक्ट्स फ़ॉर पॉवर्टी रिडक्शन इन रूरल इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ल

देव एवं मूइज, 2002, "सोशल सैक्टर एक्सपैन्डीचर्स इन द 1990'ज़ एनालिसिस ऑफ़ सैन्टर एंड स्टेट बजट्स", *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, मार्च 2-8 में

देव, एस. महेन्द्र एवं अजीत रानाडे, 1999, "पर्सिस्टिंग पॉवर्टी एंड सोशल इन्सैक्यूरिटी: ए सिलेक्टिव एसैस्मैंट", कीरित एस. पारिख (सं.) कृत इंडिया डेवेलपमैंट रिपोर्ट में. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

डेरेक, एम. एवं सी. वाँ ग्रोत (सं.) 2000, बिट्वीन अंडरस्टैण्डिंग एंड ट्रस्टः द पब्लिक, साइंस एंड टैक्नोलॉजी, हार्वर्ड ऐकेडमिक पब्लिशर्ज़: एक्स्टर्डम

ड्रकर पीटर, एफ. 1988, "द कमिंग ऑफ़ द न्यू ऑर्गेनाइज़ेशन", हार्वर्ड बिज़िनस रिव्यू, 88: 45-53 में

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

————————, 1994, पोस्ट-कैपिटलिस्ट सोसाइटी, हार्पर बिज़िनिसः न्यूयार्क

एडसॉल्ट, एस., 2000, गैट्स टु इम्पैक्ट पब्लिक एजुकेशन, एन एस डब्ल्यू टीचर्स फ़ैडरेशनः एजुकेशन ऑन लाइव. डेवेलपमैंट पॉलिसी नं. 7, अगस्त

एडवर्ड, माइकल, 2000, एन जी ओ राइट्स एंड रिस्पॉन्सीबिलिटीः ए न्यू डील फ़ॉर ग्लोबल गवर्नेन्स, सैन्ट्रल बुक्सः यू. के.

एरिक्सन, जे. 1998, ऑनलाइन – और यथा रीति, "दि इंटरनैट कम्स इनटु इट्स ओन ऐज़ ए कैटलिस्ट फ़ॉर पॉलिटिकल चेंज एंड इकॉनामिक एक्टिविटी", एशिया वीक, दिसम्बर 25 में

आयरमैन, आर. एवं ए. जैमिसन, 1991, सोशल मूवमैंटः ए काग्नीरिव एप्रोच, पॉलिटी प्रैसः कैम्बिज

फ़ैदर, जॉन 1998, दि इन्फ़ारमेशन सोसाइटीः ए स्टडी ऑफ़ कान्टिन्यूटी एंड चेंज, लाइब्रेरी एसोशिएसन पब्लिशिंगः लंदन

फ़ॉरे, डी. एंड बी. ए. लूँढ्वाल, 1996, "द नॉलेज-बेस्ड इकानॉमीः फ्रॉम दि इकनॉमिक्स ऑफ़ नॉलेज टु द लर्निंग इकानॉमी". ओ ई सी डी इम्प्लायमैंट एंड ग्रोथ इन द नॉलेज-बेस्ड इकॉनॉमी. ओ ई सी डीः पेरिस

फुकॉल्ट, एम., 1977, डिसिप्लिन एंड पनिशः द बर्थ ऑफ़ द प्रिज़न (फ्रांसीसी भाषा से एलन शेरीदां द्वारा सनूदित), एलन लेनः लंदन

फ्रांस, पी. एवं बी. ओ' सुलिवां, 2003, द फ़्यूचर ऑफ़ एजुकेशन अंडर द डब्ल्यु टी ओ. www.campusdemocracy.org/wtoed.html

फ्रीमैन, एल., 1999, गुलीवर इन साउदर्न अफ्रीकाः साउथ अफ्रीका एंड ज़िम्बाब्वे इन द पोस्ट-अपार्थीड ईरा. पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया विश्वविद्यालय, पर्थ में प्रस्तुत निबंध, 26-29 नवम्बर 1999

फ्रेयर, पी., 1972, पैडागजी ऑफ़ द ऑप्रैस्ड. पेंग्विन बुक्सः मिडिलसैक्स

गैलीगन, बी. डब्ल्यू. रॉबर्टसन एवं जी. त्रिफ़िलेती, 2001, ऑस्ट्रेलियन्स एंड ग्लोबलाइज़ेशनः दि एक्स्पीरिएन्स ऑफ़ टू सैन्चुरीज़. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैसः यू. के.

गैल्तुंग, जे., 1979, डेवेलपमैंट, इन्वायरन्मैंट एंड टैकनोलॉजीः टुवर्डज़ ए टैक्नोलॉजी ऑफ़ सैल्फ़ रिलाइन्स, संयुक्त राष्ट्रसंघः न्यूयार्क

जोर्जियो, आई. व अन्य 2004, सोशल एंड इकॉनोमिक ट्रान्सफ़र्मेशन इन डिजिटल ईरा, इंडिया ग्रूपः यू. के.

घोष, ए., 1991, "लिबरलाइज़ेशन डिबेट्स". टी. जे. बायर (सं.) कृत दि इंडियन इकॉनोमीः मेजन डिबेट्स सिन्स इन्डिपेन्डन्स में, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

गिडन, ए., 2000, द थर्ड वेमर्ड एंड इट्स किटिक्स, मास पॉलिटीकल प्रैसः माल्डन

झब्वाला, रेनाना एवं शालिनी सिंहा, 2002, "लिबरलाइजेशन एंड द वीमेन वर्कर्स", *इकॉनोकिम एंड पॉलिटिकल वीकली*, मई

गिल, एस. एस., 2003, "ग्लाबलाइज़ेशनः हायर एजुकेशन बिल सफ़र", द ट्रिब्यून, जुलाई 20 में

ग्लादियू, एल. ई. एवं डब्ल्यू. एस. स्वेल., 1999, द वर्चुअल यूनिवर्सिटी एंड एजुकेशनल ऑपर्चूनिटी. दि कॉलेज बोर्डः वाशिंगटन, डी. सी.

गॉर्डन, सैन्डी., 1997, "ग्लोबलाइज़ेशन एंड द इकॉनोमिक रिफ़ॉर्म्स इन इंडिया", ऑस्ट्रलियन जर्नल ऑफ़ इंटरनेशनल अफ़ेयर्स, खंड 51, नं. 1 में

भारत सरकार 1988, इंडिया, 1988-89, प्रकाशन विभाग, भारत सरकारः नई दिल्ली

————, 2003, इंडिया, 2003-04, प्रकाशन विभाग, भारत सरकारः नई दिल्ली

गैम्स्की, ए., 1998, (पुनर्मुद्रण). सिलैक्शन्ज़ फ्रॉम द प्रिज़न नोटवुक्स, ऑरियन्ट लांगमैनः चेन्नई

ग्रे, आर. एच. एवं सी. डी. बेकर, 1993, "इन्वायरन्मैंटल क्लीनअपः द चैलिन्ज ऐट द हैन्फ़ोर्ड साइट, वाशिंग्टन, यू एस ए". इन्वायरन्मेंट मैनेजमैंट. 17:461-475

ग्रिफ़िन, केथ., 2004, "ग्लोबलाइज़ेशन एंड कल्चर". स्टीफन कलनवर्ग एवं प्रशांत के. पटनायक (सं.) कृत ग्लोबलाइज़ेशन, कल्चर एंड लिमिट्स ऑफ़ द मार्किट में, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

ग्रिफ़िन, माइकल, 2002,"फ्रॉम कल्चरल इम्पिरिएलिज़्म टु ट्रांसनेशनल कॉमर्सिअलाइज़ेशनः शिफ़्टिंग पैराडिम्स इन इंटरनेशनल मीडिया स्टडीज़", ग्लाबल मीडिया जर्नल, खंड 1, अंक 1 (http://www.lass.calumet.purdus.edu/from cultural imperialism.htm)

गुहा, ए. एवं एस. एस. रे., 2000, "मल्टीनेशनल वर्सिज़ एक्सपैरियर एफ डी आईः ए कम्पैरिटिव एनैलिसिस ऑफ़ द चाइनीज़ एंड इंडियन एक्सपीरियन्स", भारतीय अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध अनुसंधान परिषद

गस्फ़ील्ड, जे. आर., (सं.) 1972, प्रोटैस्ट्स, रिफॉर्म्स एंड रिवॉल्टः ए रीडर इन सोशल मूवमैंट, न्यू विली एंड सन्ज़ः नई दिल्ली

हैबरली, आर. 1972, "टाइप्स एंड फंक्शन्ज़ ऑफ़ सोशल मूवमैंट", इंटरनेशनल इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ सोशल सांइसिस. मैकमिलन एंड कंपनीः न्यूयार्क

हार्डीमैन, डी. 1998, "वैल इरिगेशन इन गुजरातः सिस्टम्स ऑफ़ यूज़ हाइरार्कीज़ ऑफ़ कन्ट्रोल", इकॉनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 33: 25, पृ. 1533-1544

हैज़ल, हैन्डरसन, 1999, बियॉन्ड ग्लोबलाइज़ेशनः शेपिंग ए सस्टेनेबल ग्लोबल इकॉनॉमी, बैस्ट हार्टफ़ोर्ड, सीटीः कुमारियन

हेलेन, मूसा, 1999, ग्लोबल सर्ज इन फोर्सड माइग्रेशन लिंकड टु कलोनियल पास्ट, थीमनज़ प्रैसः टोरेन्टो

हैन्डरसन, डी. 1999, दि एम ए आई अफ़ेयरः ए स्टोरी एंड इट्स लैसन्स, द रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंटरनेशनल अफ़ेयर्सः लंदन

हर्बस्ट, जैफ़री, 1990, स्टेट पॉलिटिक्स इन ज़िम्बाब्वे, ज़िम्बाब्वे विश्वविद्यालय प्रैसः हरारे

हिग्गॉट, रिचर्ड एवं पेनि एन्टनी (सं.) 2001, न्यू पॉलिटिकल इकॉनॉमी ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन, चेल्टनहमः यू. के.

हिलेरी, जॉन, 1999, ग्लोबलाइज़ेशन एंड इम्प्लायमैंटः न्यू ऑपर्चूनिटीज़, रिअल थ्रैट्स, पैनो ब्रीफ़िंग नं. 33. http://www.nswef.org.au/edu

हॉफ़मां, डी. एल. एवं टी. पी. नोबक, 1998, "ब्रिजिंग द रेसिअल डिवाइड ऑन द इंटरनैट", सांइस, अप्रैल 17, 390-391

हरेल, एन्ड्रयू 1992, "दि इंटरनेशनल पॉलिटिक्स ऑफ़ डीफ़ॉरेस्टेशन", एन्ड्रयू हरेल एवं बेनेडिक्ट किंग्सबरी (सं.) कृत दि इंटरनेशनल पॉलिटिक्स ऑफ़ दि इन्वायरन्मैंट, ऐक्टर्स, इंटरैस्ट्स एंड इंस्टीट्यूशन्ज़. क्लेरैन्डन प्रैसः ऑक्सफ़ोर्ड

इला पटनायक, 2003, इंडियाज पॉलिसी स्टान्स ऑन रिज़र्वस एंड द करैंसी, वर्किंग पेपर्स 108, भारतीय अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध अनुसंधार परिषदः नई दिल्ली

जेम्स, एय. मार्श (मुख्य संपादक) 1988, द कनैडियन एन्साइक्लोपीडिया, द्वितीय संस्करण, खंड 1, मर्टिन पबिल्शर्ज़ः एडमन्टन

यीशू, बॉब, 2003, "द स्टेट एंड द कन्ट्राडिक्शन्ज़ ऑफ़ द नॉलेज-ड्राइवन इकॉनॉमी", ब्रायसन, जे. आर. व अन्य (सं.) कृत नॉलेज, स्पेस, इकॉनॉमी. रूटलिजः लंदन

जोशी. वी. एवं लिटिल, आई. एम. डी., 1998, इंडियाज़ इकॉनॉमिक रिफ़ॉर्म्स 1991-2000, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ल

काकोविक, ऐरी एमत्र 1999, रीज़िनलाइज़ेशन, ग्लोबलाइज़ेशन एंड नेशलनिज़्मः कन्वजैंट, डाइवजैंट और ओवरलैपिंग अल्टरनेटिव्ज़? नोत्रे छेम विश्वविद्यालयः इंडियाना

कपिला, उमा (सं.) 2000, इंडियन इकॉनॉमी सिन्स इन्डिपैन्डेन्स, एकेडेमिक फ़ाउन्डेशनः नई दिल्ली

केनिस्टन, एस. 2003, सी एम टी ई – द अंडरग्राउण्ड पोटैन्शल, सी एम टी ई पोस्टग्रेजुएट कॉन्फ्रैन्स. ब्रिसबेनः ऑस्ट्रलिया 19 मई

खान, ए. आर., 2003, इकॉनॉमिक सर्वे 2003-04, वी पी. जी. बुक्सः दिल्ली

खोर, मार्टिन, 2001, रीथिडिंग ग्लोबलाइज़ेशनः क्रीटिकल इश्यूज़ एंड पॉलिसी चॉइसिज़, बुक्स फ़ॉर चेन्जः बैंगलोर

कोनन्बर्ग, जे., 1986, इम्पॉवरमैंट ऑफ़ द पुअरः ए कॉपरैटिव अनैलिसिस ऑफ़ टू डेवेलपमैंट एन्डवर्स इन कीनिया, निन्लिज़क इंस्टीट्यूट वू द मोयां

कुण्डू, ए. बाग्ची एवं डी. कुण्डू, 1999, रीजिनल डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ़ इन्फ्रास्ट्रचर एंड बेसिक अमैनिटीज़ इन अर्बन इंडियाः इश्यूज़ कन्सर्निंग इम्पॉवरमैंट ऑफ़ लोकल बॉडीज़", *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* 34(28), जुलाई

कुण्डू, अभिताभ, 2001, "अर्बन डेवेलपमैंट, इन्फ्रास्ट्रक्चर फ़िनैन्सिंग एंड इमर्जिंग सिस्टम्स ऑफ़ गवर्नैन्स इन इंडियाः ए पर्सपैक्टिव", सोशल साइंसिज़ सिलैक्शन, खंड 4, नं. 5, अप्रैल

कुरियन, सी. टी., 1994, ग्लोबल कैपिटेलिज़्म एंड द इंडियन इकॉनोमी ऑरियन्ट लॉन्गमैनः नई दिल्ली

लैचम, सी. एवं डी. हन्ना, 2002, "लीडरशिप फ़ॉर ओपन एंड फ़्लैक्सिबल लर्निंग", ओपन लर्निंग, 17(3) 2003-215

ली, सी. सी., 1980, "सवैतो ऑनलाइन", सैलोन मैगज़ीन, 16 नवम्बर

लियोनार्द, ए., 1998, "द मीनिंग ऑफ़ पब्लिक अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ साइंस", पब्लिक अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ साइंस, 1, 45-68

लोकायन बेलेटिन (संपादकीय) 1991, "डैम्स ऑन द रिवर नर्मदाः ए कॉल टु कॉन्शन्स", मई-अगस्त, खंड 9, सं. 3 व 4, पृभठ 1-10

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

लूँद्धाल, बी. ए. एवं बी. जॉनसन, 1994, "द लर्निंग इकॉनामी", जर्नल ऑफ़ इण्डस्ट्री स्टडीज़, खंड 1, नं. 2, दिसम्बर, पृभठ 23-42

लियॉन, डी., 1988, दि इन्फ़ारमेशन सोसाइटीः इश्यूज एंड इलूयन्स, पॉलिटी प्रैसः कैम्ब्रिज

मकाम्बे, जॉन, 1996, पार्टिसिपेटेरी डेवेलपमैंटः द केस ऑफ़ ज़िम्बाब्वे, ज़िम्बाब्वे विश्वविद्यालय प्रैसः हरारे

मैल्कम, वाटर्स, 2001, ग्लोबलाइज़ेशन, रूटलिज़ः ऑक्सफ़ोर्ड, यू. के.

मण्डला, आर., 1994, प्राइवेटाइज़ेशन इन द थर्ड वर्ल्ड, विकास पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली

मैण्डर, जेत्र, 1996, "कॉर्पोरेट कैपिटलिज़्म", रीसर्जेन्स, नवम्बर-दिसम्बर, नं. 179: 10-12

मैण्डर, जैरी एवं एडवर्ड गोल्डस्मिथ, 1996, द केस अगेंस्ट द ग्लोबल इकॉनामी एंड फ़ॉर ए टर्न टुवर्ड द लोकल, सायरा क्लब बुक्सः सैन फ्रांसिस्को

मारिया, जे. एफ. विल्लम्सन एवं एदुआर्दो ज़िआंनती दा फ़ोन्सेका (सं.) 1997, द ब्राज़ीलियन इकॉनामीः स्ट्रक्चर एंड परफ़ॉरमैन्स इन रीसैन्ट डैकेड्स, नार्थ-साउथ सैन्टर प्रैसः मियामी विश्वविद्यालय

मार्तिनूसैन, जॉन डैग्नोब्ल, 2001, पॉलिसीज़, इन्स्टीट्यूशन्ज़ एंड इण्डस्ट्रियल डेवेलपमैंट, सेज पबिलकेशन्सः नई दिल्ली

मास्कैरेना, एम., 2003, "अन्पैलेटेबल ट्रुथ", द हिन्दू, जून 22

माथुर, हरि मोहन एवं डेविड मार्सडन (सं.) 1998, डेवेलपमैंट प्रोजैक्ट्स एंड इम्पॉवरिशमैंट रिस्क्स, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

मैक्ऐडम, डी., 1982, पॉलिटिकल प्रोग्रैस एंड द डेवेलपमैंट ऑफ़ ब्लॉक इन्सर्जेन्सी 1930-1970 शिकागो विश्वविद्यालय प्रैसः शिकागो

मैक्कली, पैट्रिक, 1998, साइलैन्स्ड रिवर्सः द इकॉलाजी एंड पॉलिटिक्स ऑफ़ लार्ज डैम्स, ऑरियन्ट लॉन्गमैन लि.: दिल्ली

मैक्डैलां एवं स्टिवर्ड इंक, 2000, द केनैडियन एन्साइक्लोपीडिया, 1999, द केनैडियन पब्लिशर्ज़ः टोरन्टो, कनाडा

मैक्लेनन, ग्रेगर, 2000, "द न्यू पॉज़िटिविटी", जॉन एल्डरिज़ व अन्य (सं.) कृत फ़ॉर सोसियोलॉजीः लिगेसी एंड प्रास्पैक्ट्स में, द सोसियोलॉजी प्रैसः दुर्हम

मैक्लुहन, मार्शल, 1964, अंडरस्टैंडिंग मीडिया, मैक्ग्रानहिलः न्यूयार्क

मलूकी, ए, 1996, सिम्बॉलिक चैलिन्ज ऑफ़ कान्टैम्परेरी मूवमैन्ट्सः एस एम बुएशलर एवं जेत्र सिल्के (सं) कृत स्टडिंग कलैक्टिव ऐक्शन, सेज पबिलकेशन्ज़ः लंदन

मोदेल्स्की, जोर्ज एवं काज़ीमीर पॉज़ान्सकी, 1996, इपेल्यूशनरी पैरडाइम्स इन द सोशल सांइस", इंटरनेशनल स्टडीज़ क्वार्टरली 40 (3): 315-20

मॉरिस, मैरिल एवं ऑगन, क्रिस्तीन, 1996, "द इंटरनैट ऐज़ ए मास मीडियन", जर्नल ऑफ़ कम्युनिकेशन, 46(1). 39-40

मूसा, हेलेन, 1999, ग्लोबल सर्ज इन फ़ोर्स्ड माइग्रेशन लिंक्ड टु क्लोनियल पास्ट, वीमन'ज़ प्रैसः टोरन्टो

MAADHYAM IAS

मोयो, एस., 1995, द लैंड क्विश्चन इन ज़िम्बाब्वे, सेप्स (SAPES) पब्लिकेशनः हरारे

नेस्बिट, जे., 1986, रीइन्वैन्टिग द कॉर्पोरेशनः ट्रान्सफ़ॉर्मिंग यूअर जॉब एंड युअर कंपनी फ़ॉर द न्यू इन्फ़ॉरमेशन सोसाइटी, निकोलाः लंदन

नय्यर, डी., 1996, इकॉनामिक लिबरलाइज़ेशन इन इंडियाः ऐनलिटिक, एक्स्पीरियन्स एंड लैसन्स, ऑरियन्ट लॉगमैनः हैदराबाद

————, 1997, ग्लोबलाइज़ेशनः द पास्ट इन अवर फ़्यूचर, थर्ड वर्ल्ड नेटवर्कः पिनांग, मलेशिया

ह्लेमा, ए. जी., 2002, डेमोक्रेसी इन ज़िम्बाब्वेः फ्रॉम लिबरेशन टु लिबरलाइज़ेशन, ज़िम्बाब्वे विश्वविद्यालय प्रकाशनः हरारे

नाइट, जे., 2002, ट्रेड इन हायर एजुकेशन सर्विसेजः दि इम्पलिकेशन्ज़ ऑफ़ गैट्स, द ऑब्ज़र्वेटरी ऑन बॉर्डरलैस हायर एजुकेशनः लंदन

नोबल, डी., 1997, डिजिटल डिप्लोमा मिल्ज़ः द ऑटोमेशन ऑफ़ हायर एजुकेशन

ओ' ब्रायन, आर., 1992, ग्लोबल फ़िनैन्शियल इंटरप्रिटेशनः द ऐन्ड ऑफ़ जियोग्राफी, द रॉयल इन्स्टीट्यूट ऑफ़ इंटरनेशनल अफ़ेयर्सः लंदन

ओइमी, के., 1990, द बॉर्डरलैस वर्ल्ड. कोलिन्सः न्यूयार्क

ऑस्बोर्न, थॉमस, 2003, "ऑन मीडिएट्र्सः इंटिलैक्चुअल्स एंड द आइडियाज़ ट्रेड इन नॉलेज सोसाइटी", इकॉनामी एंड सोसाइटी, 33(4) 430-447

ऑत्, सी., 1998, "क्म्टयूटर्स इन द क्लासरूम प्रोमोट ए कन्ज़र्वेटिव विज़न ऑफ़ एजुकेशन बट लिबरल्स डोन्'ट सीम टु हैव नोटिस्ड", सैलेन मैगज़ीन, अगस्त 28

पणिक्कर, के. एन., 1995, ग्लोबलाइज़ेशन एंड कल्चर", द हिन्दू 4 अक्टूबर

पारिख, कीरित एस., (सं.) 1999, इंडिया डेवेलपमैंट रिपोर्ट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

————, एवं अजय शाह, 1999, "सेकण्ड जनरेशन रिफ़ॉर्म्स", कीरिज एस. पारिख (सं.) कृत इंडिया डेवेलपमैंट रिपोर्ट में. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः नई दिल्ली

पटनायक, पी., 1986, "पब्लिक डैट ऐज़ ए मोड ऑफ़ फ़िनैन्सिंग पब्लिक एक्सपैन्डीचरः सम. कॉमेन्ट्स", *इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, खंड II, नं. 35, अगस्त, पृ. 1545-1552

————, 2003, ऑन द इक्नामिक्स ऑफ़ 'ओपन इकॉनामी' डी-इण्डस्ट्रियलाइज़ेशन. वी. वी. गिरि स्मारक व्याख्यान – भारतीय समाज अर्थशास्त्र वार्षिक सम्मेलन, कोलकाता में प्रस्तुत, http://www.macroscan.com पर उपलब्ध

————, 2004, "ऑन फ़िनैन्सिंग इन्फ्रास्ट्रक्चर ऑन द स्ट्रैन्थ ऑफ़ रिज़र्वस", *इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, दिसम्बर 25

पटनायक, यू., 2004, द रिपब्लिक ऑफ़ हंगर. सफ़दर हाशमी के 50वें जन्मदिवस के अवसर पर प्रस्तुत व्याख्यान, सहमत (सफ़दर हाशमी मैमोरियल ट्रस्ट) द्वारा आयोजित, अप्रैल, नई दिल्ली

पाव्लिक, जॉन वी. एवं ऐवरैट ई. जैनिस, 1998, न्यू मीडिया टैक्नोलॉजीः कल्चरल एंड कॉमर्शियल पर्सपैक्टिव्ज़, द्वितीय संस्करण. एलिन एंड वेकैनः बोहरन

MAADHYAM IAS

पीटर, फ़्लिन, 1996, "ब्राज़ीलः द पॉलिटिक्स ऑफ़ द "प्लेनो रियल", थर्ड वर्ल्ड क्वार्टर्ली

पीयर्रस, जे. एन. 2001. ग्लोबलाइज़ेशन एंड कलैक्टिव एक्शन, पीयरे हैमल (सं.) कृत ग्लोबलाइज़ेशन एंड सोशल मूवमैन्ट्स में. पाल्ग्रेवः ग्रेट ब्रिटेन

पीयरे, हैमल व अन्य 2001, "द शिफ्टिंग ऑफ़ कलैक्टिव एक्शन. पीयरे हैमल (सं.) कृत ग्लोबलाइज़ेशन एंड सोशल मूवमैन्ट्स में. पाल्ग्रेवः ग्रेट ब्रिटेन

पिन्टो, बी. एवं एफ. ज़ाहिरी. 2004. इंडियाः व्हाई फ़िस्कल एडजस्टमैंट नाओ. वर्ल्ड बैंक पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर 3230, मार्च

पि़ोदा, एस. 1993. "डेवेलपमैंट, डिमॉक्रासी, एंड द विलेज़ टेलीफ़ोन". हार्वर्ड बिज़िनस रिव्यू, नवम्बर-दिसम्बर, 66-68

पौ, सी. 2001. कल्चरल इम्पिरिअलिज़्म. http://iml.jou.ufl.edu/projects/spring01/poux/cultural%20imperialism.html

पुरनम, आर. डी. 1993, मेकिंग डिमॉक्रेसी वर्कः सिविल ट्रेडीशन्ज़ इन मॉडर्न इटली, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रैसः प्रिंसटन, एन जे

पायल, ज़्याँ एल. 2002. "ग्लाबलाइज़ेशन, यूनिवर्सिटीज़ एंड सस्टेनेबल डेवेलपमैंटः ए फ्रेमवर्क फ़ॉर अंडरस्टैंडिंग दि इश्यूज़". ज़्याँ एल. पायल एवं रॉबर्ट फ़ॉर (सं.) कृत ग्लोबलाइज़ेशन, यूनिवर्सिटीज़ एंड इश्यूज़ ऑफ़ सस्टेनेबल ह्यूमन डेवेलपमैंट. एम पी जी बुक्स लि.: कॉर्नवैल

रक्षित, एम. 1991. "द मैक्रोइकॉनॉमिक एडजस्टमैंट प्रोग्रामः ए क्रीमिक", इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, खंड XXVI: 34, 1977-1988

————, 2002, "सम मैक्रोइकानॉमिक्स ऑफ़ इंडियाज़ रिफ़ॉर्म्स एक्स्पीरियन्सः ऐन आउटलाइन", भारतीय अर्थव्यवस्था सम्मेलन, कॉर्नेल विश्वविद्यालय में प्रस्तुत निबंध, अप्रैल. डाउनलोड-योग्य-http://www.arts.cornell.edu/econ/indiacomf/Rakshit%20outline.pdf

————, 2004, "सम पज़ल्स ऑफ़ इंडियाज़ मैक्रो इकॉनॉमी", सेंट थॉमस कॉलेज में प्रो. के. एन. राज के सम्मान में राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रस्तुत निबंध, थ्रीसुर, अक्टूबर

————, 1998, स्टडीज़ इन द मैक्रोइकोनॉमिक्स ऑफ़ डेवेलपिंग कन्ट्रीज़, ओ. यू. पी.: नई दिल्ली

रेने मोरिसेन, ज़्यूलिन झाँ एवं मैरी द्रोल, 2003,"आर फ़ैमिलीज़ गैटिंग रिचर", कैनेडियन सोशल ट्रेण्ड्स. ऑटम 2002, नं. 66

रोमर, पॉल एम. 1990, "एन्डोजीनस टैक्नॉलॉजीकल चेंज", जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल इकॉनामी. शिकागो श्विविद्यालय प्रैस, खंड 98(15), पृ. 71-102

रॉय, आलोक. 1997, "इकनॉमिक लिबरलाइज़ेशन इन इंडियाः बैलेंस ऑफ़ पेमेन्ट्स इम्प्लिकेशन्ज़". *इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली*, जुलाई 11

————, 2000. "ग्लोबलाइज़ेशन चैलिन्जिज़ इन इंडिया". पुरुषोत्तम भट्टाचार्य एवं अजिताभ रॉय चौधरी (सं.) कृत ग्लोबलाइज़ेशन एंड इंडियाः एड मल्टीडायमैन्शनल पर्सपैक्टिव में लान्सर्स बुक्सः नई दिल्ली

शिलर, एच. आई., 1976, क्म्युनिकेशन एंड कल्चरल डॉमिनेशन, इंटरनेशनल आर्ट्स एंड सांइसिज़ प्रैसः व्हाइट प्लेन्स, न्यूयार्क

MAADHYAM IAS

शोल्टे, जे. ए. 1999, "ग्लोबलाइज़ेशनः प्रॉस्पैक्ट्स ऑफ़ पैरंडाइम शिफ़्ट", एम. शॉ (सं.) कृत पॉलिटिक्स ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशनः नॉलेज, एथिक्स एंड एजेन्सी. रूटलेजः लंदन

स्कॉट, एम., 2001, "डैन्जर लैंडमाइन्सः एन जी ओ – गवर्नरमैंट कोलैबरेशन इन द ओटावा प्रोसैस". नॉन-प्रॉफ़िट एंड वॉलन्टरी सैक्टर क्वार्टर्सी

सैल्नो, जी. डब्ल्यु., 2000, "इंटरनैट एथिक्स". आर. ई. जूनियर डैन्टन (सं.) कृत पॉलिटिकल कम्युनिकेशन एथिक्सः ऐन ओक्सिमरोन? में प्रेजर पब्लिशर्ज़ः सी टी, वैस्टपोर्ट

सैन, ए. एंड हिमान्शु., 2004, "पॉवर्टी एंड इन्क्वैलिटी इन इंडिया-II, वाइडनिंग डिस्पैरिटीज़ ड्यूरिंग द 1990'ज़". इकॉनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. सितम्बर 25. 4361-4375

सैन, जी. एंड सी. क्राउन, 1988, डवेलप्मैंट, क्राइसिज़ एंड अल्टरनेटिव विज़न्स. अर्थस्क्रेनः लंदन

'सेवा' 2004, इम्पैक्ट ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन ऑन इन्फ़ॉर्मल सैक्टरः ए केस स्टडी ऑफ़ सेवा मैम्वर्स. http://www.sewa.org

शर्मा, के. 1992, "ग्रास-रूट ऑर्गेनाइज़ेशन्स एंड वीमन'ज़ इम्पॉवरमैंटः सम इश्यूज़ इन कन्टैपरेरी डिबेट्स". साम्य शक्ति, 1(16): 28-43

शॉ, अन्नपूर्णा, 1999, इमर्जिंग पैटर्न ऑफ़ अर्बन ग्रोथ इन इंडिया", इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अप्रैल 17-24

सिंह, एन. एवं टी. एन. श्रीनिवासन, 2004, "फ़िस्कल पॉलिसी इन इंडियाः लैसन्स एंड प्राइयोरिटीज़". एन आई पी एफ पी - आई एम एफ (NIPFP-IMF) सम्मेलन, नई दिल्ली में प्रस्तुत निबंध, फ़रवरी

सिंह, निर्विकार एवं टी. एन. श्रीनिवासन. 2004. फ़ॉरिन कैपिटल इन्फ़लोज़, स्टर्लाइज़ेशन, क्राउडिंग-आउट एंड ग्रोथ. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रैसः प्रिंसटन

सिंहरॉय, डी. के. 2003, (पुनर्मुद्रण). सोशल डेवेलपमैंट एंड द इम्पॉवरमैंट ऑफ़ द मार्जिनलाइज़्डः पर्सपैक्टिव्स एंड स्ट्रेटिजीज़. सागा पब्लिकेशन, नई दिल्ली

शिवा, वंदना, 2005, "इंडियाः सॉफ़्ट ड्रिंक्स, हार्ड केसिस", ल मोन्द दिप्लॉमैटीक, मार्च (http://www.mindfully.org)

स्मिथ, पीटर, 2001, "दि इम्पैक्ट ऑफ़ ग्लोबलाइज़ेशन ऑन सिटीज़नशिपः डिक्लाइन ऑर रिनेसन्स?" जर्नल ऑफ़ केनैडियन स्टडीज़ 36(1) 116-140

स्मिद, ई. एवं पी. जे. स्मिथ, 2003, "एन जी ओ'ज़ टैक्नोलॉजी एंड द चेंजिंग फ़ेस ऑफ़ ट्रेड पॉलिटिक्स". के. एल. ब्रॉक (सं.) कृत डेलिकिट डान्सिसः पब्लिक पॉलिसी एंड द नॉन-प्रॉफ़िट सैक्टर. मैक्जिल-क्वीन'ज़ यूनिवर्सिटी प्रैसः लंदन

स्पैनिश रिपोर्ट, 1998, ग्रीन जॉटस दि प्रोजैक्ट

श्रीनिवासन, टी. एन., 2003, इंडियन इकॉनामिक रिफ़ॉर्म्सः ए स्टॉक टेकिंग. स्टैनफ़ोर्ड सेंटर फ़ॉर इंडिया प्रोग्राम. वर्किंग पेपर नं. 190

स्टेटिस्टिक्स कनाडा 2001, नैशनल इन्कम एंड एक्सपैन्डिचर एकाउण्ट्सत्र कैटलॉग नं. 13-001-पी पी बी, 4थी तिमाही

स्टेर, नाइको, 2001, द फ्रैजिलिटी ऑफ़ मॉडर्न सोसाइटीज़ः नॉलेज एंड रिस्क इन दि इन्फ़ामेशन एज. सेज पब्लिकेशन्ज़ः लंदन

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

स्टीफन, दीरी एवं किन्नी निकोला (सं.) 2003, कॉल सैंटर्स एंड ह्यूमन रिसोर्स मैनेजमैंटः ए क्रॉस-नेशनल पर्सपैक्टिव. बेसिंग्स्टॉकः हैम्पशायर, न्यूयार्क

स्टीवन व अन्य, 2004, द इम्पैक्ट ऑफ़ रिफ़ार्म ऑफ़ इंटरनेशनल ट्रेड ऑन अर्बन एंड रूरल चेंज. रिपोर्ट टु द रूरल-अर्बन चेंज पॉलिसी डिवीज़न. डी एम आई डीः लंदन

स्ट्रेन्ज, एस. 1996, द रिट्रीट ऑफ़ द स्टेटः द डिफ्यूज़न ऑफ़ पॉवर इन द वर्ल्ड इकॉनामी. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस; न्यूयार्क

स्ट्रेटन, पी., 1998, द कॉन्ट्रिब्यूशन ऑफ़ नॉन-गवर्नमैंटल ऑर्गेनाइज़ेशन्स टु डेवेलपमैंटः पॉलिटिकल इकॉनामी जर्नल ऑफ़ इंडिया. खंड 6, नं. 2:111-21

सुन्दरम, के. एवं एस. डी. तेंदुलकर 2003,"पॉवर्टी हैज़ डिक्लाइन्ड इन द 1990'ज़ः ए रैजल्यूशन ऑफ़ कॉम्पैरेबिलिटी प्रॉब्लम्स इन एन एस एस कन्ज़्यूमर एक्सपैंडिचर डेटा". इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जनवरी 25

सुन्दरम, के., 2001, "इम्प्लॉयमैंट – अनइम्प्लॉयमैंट सिचुएशन इन द नाइन्टीज़ः सम रिज़ल्ट्स फ्रॉम द एन एस एस 55थ राउन्ड सर्वे". इकॉनामिक एंड पॉलिटिकल वीकली, मार्च 17

स्वाति मित्तर, 2001, "ग्लोबलाइज़ेशन एंड आई सी टीः इम्प्लॉयमैंट ऑपर्चुनिटीज़ फ़ॉर वीमन", आई टी इन्फ़र्मेशन टैक्नोलॉजी, खंड 11, नं. 2, दिसम्बर

टैरो, एस., 1994, पॉवर इन मूवमैंटः सोशल मूवमैन्ट्स कलैक्टिव ऐक्शन एंड मास पॉलिटिक्स इन द मॉडर्न स्टेट. कैम्ब्रिज यूनिघर्सिटी प्रैसः न्यूयार्क

टेलर, चार्ल्स, 1990, इन्वोकिंग सिविल सोसाइटी, वर्किंग पेपर्स, नं. 5, सैन्टर फ़ॉर ट्रान्सकल्चरल स्टडीज़ः शिकागो

टॉक, एच., 1965, सोशल साइकोलॉजी एंड सोशल मूवमैन्ट्स, बॉब-मेटिलः इंडियानापोली

टॉफ़लर, ॲलाविन, 1980, द थर्ड वेब, पैन बुक्सः लंदन

टॉली, 1978, फ्रॉम मोबिलाइज़ेशन टु रिवैल्यूशन, एडीसन-वैस्लीः मैसाशुसैट्स

टॉमिलसन, 1991, कल्चरल इम्पिरियलिज़्मः ए क्रिटीकल इन्ट्राडक्शन, पिन्टर पब्लिशरः लंदन

टकमैन, जी., 1981, (संशोधित संस्करण). "द तिम्बॉलिक अनाइलेशन ऑफ़ वीमन वाई द मास मीडिया". एस. कोहन एवं जे यंग (सं.) कृत द मैन्युफ़ैक्चर ऑफ़ न्यूज़ में. कॉन्टेबलः लंदन

अंकटैड (UNCTAD) 1996, द ट्रिप्स एग्रीमैन्ट्स एंड डिवैल्पिंग कन्ट्रीज़. न्यूयार्क एवं जेनेवा

यू एन डी पी (UNDP) 1999, ह्यूमन डेवेलपमैंट रिपोर्ट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः न्यूयार्क

——————, 2003, ह्यूमन डेवेलपमैंट रिपोर्ट, ओ यू. पीः नई दिल्ली

यूनाइटिड नेशन्स, 1999, वर्ल्ड सर्वे ऑन द रोल ऑफ़ वीमन इन डेवेलपमैंटः ग्लोबलाइज़ेशन, जैण्डर एंड वर्क. यूनाइटेड नेशन्स पब्लिकेशनसः जेनेवा

बिरमानी, ए. 2001, इंडिया'ज़ 1990-91 क्राइसिसः रिफ़ार्म्स, मिथ्स एंड पैराडॉक्सिस. योजना आयोग वर्किंगज पेपर नं. 4, दिसम्बर

वोल्कर, इन्ग्रिद, 2003, अपलैक्टिबल स्पेसिज़ इन द ग्लोबल पब्लिक स्फ़ियर,, मीडिया मैमरीज़ एक्रीस जेनेरेशन्स. जॉं शोरन्स्तें सैंटर ऑन द प्रैस, पॉलिटिक्स एंड पब्लिक पॉलिसी, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी, कैम्ब्रिज, वर्किंग पेपर सीरीज़, 2003-05

वॉन्ग जी., ज़्याँ सर्वे एवं ए., गुवाशेखर 2000, द कम्युनिकेशन्ज़ लैंडस्केप, डिमिस्टिफायइंग मीडिया ग्लोबलाइज़ेशन. रूटलेजः लंदन

वैब्स्टर, फ्रैंक, 1995, थीयोरीज़ ऑफ़ द इन्फ़र्मेशन सोसाइटी, रूटलेजः लंदन

वीज़मैन, डी. एल एवं शिब्ली डी. एस., 1998, "रेज़िंग राइवल्स कोस्ट्सः दि एन्ट्री ऑफ़ ऐन अपस्ट्रीम मोनोपोलिस्ट इनटु डाउनस्ट्रीम मार्किट्स". इन्फ़र्मेशन इक्नॉमिक्स एंड पॉलिसी. 10, 451-470

विल्सन, जे. 1973, इन्ट्रोडक्शन टु सोशल मूवमैंट्स. बेसिक बुक्सः न्यूयार्क

बूल्गर, स्टीव (सं.) वर्चुअल सोसाइटी? टैक्नोलॉजी, साइबर बोल, रियॅलिटी. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैसः ऑक्सफ़ोर्ड

वर्ल्ड वैंध. 1997, द वर्ल्ड डेवेलपमैंट रिपोर्ट, ओ यू पीः नई दिल्ली

वैबसाइट पते

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'

NOTES

MAADHYAM IAS
'way to achieve your dream'